

ऋग्वेद संहिता भाग-भाष्य

सामृ १



(८२)

गुरु-

गुरु-

॥ ओ३३ ॥

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(चतुर्थ खण्ड)

भाष्यकार—

श्री परिणित जयदेव शर्मा,
विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—

आर्य-साहित्य-मण्डल, लिमिटेड, अजमेर.

प्रथमावृत्ति | } सं० १९९१ वि० | मूल्य
 २००० | } ४) रुपये

आर्य-साहित्य मण्डल लिमिटेड् अजमेर के
सर्वाधिकार सुरक्षित.

मुद्रकः—

दी फाइन आर्ट प्रिन्टिंग प्रेस, अजमेर.

ऋग्वेद विषय सूची

तृतीयोऽष्टके । पञ्चमे मण्डले

(सप्तचत्वारिंशत्सूक्तादारभ्य)

तृतीयोऽध्यायः (पृ० १-६५)

सू० [४७]—माता के कर्तव्य । माता का नवयुवति कन्या का उपदेश । (२) पुत्र पुत्रियों को माता का उपदेश । (४) जीव की उत्पत्ति का रहस्य । (५) शरीर की उत्पत्ति का रहस्य । (६) सन्तति के प्रति खियों का कर्तव्य । सन्तान बनाने में माता के उत्तम संकल्पों की आवश्यकता । (७) वर वधू, माता पिताओं को उपदेश । (पृ० १-५)

सू० [४८]—राजसभा और सेना का योग्य नायक वरने का कर्तव्य । (२) नायक के कर्तव्य । (३) सूर्य के किरणों के तुल्य अधीनों की नियुक्ति । (४) परशु और राष्ट्र के आभूषणवत् सैन्य, शम्बुबल की स्थिति । (५) वृत राजा का पितावत् कर्तव्य । (पृ० ६-८)

सू० [४९]—पितावत् शासकों के कर्तव्य । (२) तेजस्वी नायक का आदरणीय पद । (३) सर्वपोषक की दानशीलता का कर्तव्य । (४) अहिंसक दयाशील राजा के प्रति प्रजा का कर्तव्य । (पृ० ९-११)

सू० [५०]—विद्वानों वीरों को उत्तम मित्र और धनैश्वर्य प्राप्ति का उपदेश । (२) समवाय बनाने का उपदेश । (३) सैन्यों, खियों और

शिष्यों का आदर करने का उपदेश । (४) प्रजापालक के गुण ।
 (५) रथाध्यक्ष, सेनाध्यक्षों से शान्ति सुख की आशा । (पृ० ११-१३)

सू० [५१]—राजा वा शासक का पुत्रवत् प्रजा के पालन का कर्त्तव्य । (२) धर्मात्माओं को प्रजापालन में योग देने का उपदेश । (३) विद्वान् का कर्त्तव्य । (४) प्रजा के पुत्रवत् पालक शासक के अभिषेक का प्रस्ताव । (५) उसका मधुपर्कादि से आदर । (६) विद्वान् बलवान्, जनों को आमन्त्रण । (७) शासकों, शिष्यों के कर्त्तव्य । अन्न के गुण । (८-१०) राजा प्रजा का गुरु शिष्यवत् कर्त्तव्य । (११) राजा के कल्याण की प्रार्थना । (१२-१४) विद्वानों शिलिष्यों, तथा भौतिक शक्तियों से भी कल्याण-याचना (१५) उत्तम आचरण और सत्संग का उपदेश । (पृ० १३-१९)

सू० [५२]—राजा, अधिनायक के कर्त्तव्य । (२) बलवान् पुरुषों के कर्त्तव्य, प्रजारक्षण । (३) वायुवत् उनके कर्त्तव्य । (४) वायुवत् शत्रुविजय का उपदेश । (५) वीरों के सत्संग का उपदेश । (६) विजुलीयुक्त वायुओं के तुल्य शस्त्राख्ययुक्त वीर सेनाओं के कर्त्तव्य । (७-८) वायुवत् वीरों के बल (९) उनकी परुष्णी अर्थात् पालन नीति । शत्रुभेदन का उपदेश । (१०) अन्तःपथ, अनुपथ आदिनाना मार्गों में विचरने का उपदेश । (११) वायुवत् वीर विद्वान् वैश्यों के कर्त्तव्य । (१२) कूपवत् राजा वा प्रभु का आश्रय । (१३) वीरों का आदर । (१४-१५) उनके साथ उत्सुकता से भेट करने का उपदेश । (१६) राजा वा आचार्य का पिता माता का पद । (१७) नियन्त्रित सेना बल से शक्ति और ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश । (पृ० १९-२६)

सू० [५३]—वायुओं, प्राणों, विद्वानों, और मनुष्यों की उत्पत्ति का रहस्य । उनका नियोक्ता कौन ? (२) रथी वीरों का प्रयाण, (३-४) उत्तम वीर तेजस्वी, पुरुषों से उपदेश की प्रार्थना । (६) नायकों

के विजुली मेघादिवत् गुण । (७) जलप्रवाह, अश्व, नदी, वायु आदि दृष्टान्त से वैश्यों के कर्तव्य । (९) परिहारयोग्य स्थान । (१०) वीरों के पीछे अनुगमन । (११-१२) उन्नति के निमित्त उपदेश । (१४) निन्दाओं की परवाह न करके आगे बढ़ने की प्रार्थना । (१५-१६) तेजस्वी होने आदि की प्रार्थना । (पृ० २७-३४)

सू० [५४]—विद्वानों के कर्तव्य । पक्षान्तर में वृष्टि लाने वाले वायुओं, मेघों और विजुलियों की भौतिकविद्या का वर्णन । उनके दृष्टान्तों से नाना प्रकार के उपदेश । (६) चोरी का निपेद । (७) कृषि व्य-पारादि की आज्ञा । (११) वीरों की पोशाक और उनका तेजः स्वरूप । चमकते मेघोंवत् शत्रु पर वीरों के आक्रमण की आज्ञा । (१४) साम-उपाय का उपदेश । (पृ० ३४-४३)

सू० [५५]—मरुतों, वीरों का वर्णन उनके कर्तव्य । (पृ० ४३-४८)

सू० [५६]—मरुतों, वीरों, विद्वानों के कर्तव्य । (१) वीरों का स्वर्णपदकों से सजना । (२) उनको उत्साहित करना । (३) मेघ-मालावत् प्रजा, सेना और सूर्य वा ऋक्ष के दृष्टान्त से राजा के कर्तव्य । (४) वीरों का वर्णन । (५) प्रमुख नायक । (६) योग्य पुरुषों की नियुक्ति । (७) उनके कर्तव्य और योग्य आदर । (पृ० ४८-५३)

सू० [५७]—वीरों विद्वानों, के कर्तव्य । मरुतों का वर्णन । (१०) श्रेष्ठ रथों का उपभोग । (२) उत्तम वीरों को उपदेश । ‘पृश्नि मातरों’ का रहस्य । (३) मेघमालाओं और वायुओं के दृष्टान्त से उनका वर्णन । उनके कर्तव्य । (पृ० ५३-५८)

सू० [५८]—वीरों, विद्वानों का वर्णन, उनके कर्तव्य । (२) उत्तम नायक । (३) जलदाहो, वृष्टिप्राप्त वायुगणवत् उनका वर्णन । (४) रक्षक होने योग्य पुरुषों के गुण । (५) अरों के दृष्टान्त से उनको उपदेश ।

(६) वर्षते मेघों की तुल्यता से वर्णन । (७) वायुवत् कर्त्तव्य । (पृ० ५८-६२)

सू० [५९]—मरुतों का वर्णन । वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य । (१) मेघोंवत् उनके कर्त्तव्य । (३) शोभा और ऐश्वर्य के निमित्त बल धारण का उपदेश । सूर्यदत् नायक का वर्णन । (५) वीरों को सुव्यवस्थित होकर मुद्द करने का उपदेश । (६) ऊंचे लक्ष्य तक पहुँचने का उपदेश । (७) मेघवत् वीरों को कर्त्तव्योपदेश । (८) राजा, सेनाओं और स्त्रियों के कर्त्तव्य । (पृ० ६२-६७)

सू० [६०]—मरुतों के दृष्टान्त से वीरों, विद्वानों का वर्णन । (१) प्रजा की उत्तम अभिलाषा । (४) विवाहित वरों के तुल्य सुट्टद, सुन्दर होने का उपदेश । (५) आतृवत् समान रूप से उनको रहने का उपदेश । (६) सन्तोष का उपदेश । (७) ऐश्वर्य दान का उपदेश । (८) राजा को विद्वान् होने का उपदेश । (पृ० ६७-७२)

सू० [६१]—मरुतों के दृष्टान्त से प्रजाजनों, वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्यों का वर्णन । (१०) परस्पर कुशलप्रश्न व्यवहार का उपदेश । अध्यात्म में—ग्राणों का वर्णन । (३) अंगों को बांधने का उपदेश । (४) दूर देश में विवाह और यात्रा और ब्रह्मचर्य का उपदेश । (५) स्त्री को वीर, जितेन्द्रिय पुरुष के वरण का उपदेश । (६) उत्तम स्त्री का वर्णन । उसको उत्तम २ उपदेश । (८) प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों की गृहस्थ दृष्टि से विवेचना । (९) दामपत्य के लिये प्रेमपूर्वक वरण का उपदेश । (१७) संसार सागर से पार उतारने वाले साथी की प्रशंसा (११-१२) विद्वान् यशस्वी सफल गृहस्थ (१३-१६) सज्जनों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (१७) दूत का कार्य । विद्युत् यन्त्रों से दूर देश में व्याख्यानों को पहुँचाने और यानों द्वारा मेल-सर्विस का उपदेश । (१८) विद्वान् के प्रति उपयुक्त विनय । (१९) रथी का सामर्थ्य । (पृ० ७२-८०)

सू० [६२]—मित्र और वरुण । (१) सूर्यवत् राजा-प्रजा वगों को सत्य व्यवहार का उपदेश । (२) राजा प्रजावर्ग, पुरुष शिष्यों को उपदेश । (३) भूमि सूर्यवत् स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्य । (४) श्रेष्ठ प्रमुख पुरुषों के कर्तव्य । उनका न्यायासन पर रथवत् आरोहण । (५) राजा अभाव्य, स्त्री पुरुषों को भवन और स्तम्भवत् रहने का उपदेश । (६) प्रमुख की स्तम्भ और कशा के समान स्थिति । शालावत् सेना का कर्तव्य । (७) देह में प्राण उदानवत् सभा-सेनाध्यक्षों के वर्णन । (पृ० ८०-८५) ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ८५-९७)

सू० [६३]—मित्र और वरुण । (१) देह में प्राण उदानवत्, गृह में पतिपल्नीवत्, रथी सारथिवत् राजा प्रजा के कर्तव्य । (२) राजा अभाव्य के कर्तव्य । (३) वायु सूर्यवत् उनके कर्तव्य । (४) सूर्य विद्युत्वत् उनके कर्तव्य । (५) विद्युतों के तुल्य वीरों की गति । (६) मेघवत् गुरु और वायुवत् शिष्यों के व्यवहार । ‘पर्जन्य’ का रहस्य और उसके गृहार्थ । (७) सभा सेनाध्यक्षों को उपदेश । (पृ० ८४-९०)

सू० [६४]—मित्र वरुण । वरुण, राजा । (२) व्रात्यण क्षात्रवर्ग के कर्तव्य । ऐश्वर्यवानों के कर्तव्य । (पृ० ९०-९३)

सू० [६५]—मित्र वरुण । गुरु शिष्य के कर्तव्य । (३) गुरु शिष्यवत् सैन्य और नायक का व्यवहार । (४-६) मित्र का लक्ष्य । (पृ० ९३-९५)

सू० [६६]—मित्र और वरुण । ज्ञानप्रद गुरु और आचार शिक्षक आचार्य का वर्णन । (३) मार्ग पार करने के लिये रथ में अग्नि जलवत् राष्ट्र में न्याय और शासन विभागों का वर्णन । (४) स्त्री पुरुषों को ज्ञानोपार्जन का उपदेश । (५) बहुपाल्य स्वराज्य के लिये यत्न का उपदेश । (पृ० ९५-९८)

(६)

सू० [६७]—मित्र और वरुण । दो प्रजापालकों के कर्तव्य । (२) सूर्य विद्युदवत् उनके कर्तव्य । (३-) सब अन्य अधिकारियों का वर्णन । (पृ० ९८-१००)

सू० [६८]—मित्र और वरुण । न्याय और शासन के दो अध्यक्षों का वर्णन । (२) वैद्युत और भौम अग्निवत् सभा-सेना के अध्यक्षों के कर्तव्य । (पृ० १००-१०२)

सू० [६९]—मित्र और वरुण । न्याय और शासन कर्त्ताओं को तीनों वेदों के ज्ञान का आदेश । (२) सभा-सेनाध्यक्षों की शक्तियों, प्रजाओं के कर्तव्य और तीन सभाओं का वर्णन । ब्रह्मचर्य काल में वेद वाणी के अभ्यास का उपदेश । (पृ० १०२-१०५)

सू० [७०]—मित्र वरुण । सभा सेनाध्यक्षों के कर्तव्य । उनके गुण । (३) स्वोपार्जित धन के भोग का उपदेश । (पृ० १०५-१०६)

सू० [७१]—मित्र और वरुण । ज्ञानी और सर्वग्रिय जनों का ज्ञान और लोकोपयोगी कर्मों के बढ़ाने का उपदेश । (पृ० १०६-१०७)

सू० [७२]—मित्र और वरुण । उक्त अध्यक्षों को माता पितावत् प्रजा पालन का उपदेश । (पृ० १०७-१०८)

सू० [७३]—अधिजन, रथी सारथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । (२) उनके आदर का उपदेश । (३) उनको परस्पर बंधने और गृहस्थ चलाने का उपदेश । गृहस्थ का उच्च आदर्श । (५) उत्तम काम का उपदेश । (८) दोनों को व्यापार, यात्रादि का उपदेश । (पृ० १०८-११३)

सू० [७४]—दो अश्वी, गृहस्थ स्त्री पुरुषों को उपदेश । (४) राष्ट्र में उनकी उत्तम पद्धों पर नियुक्ति । (५) बृहों को पृथक् कर समर्थ युवकों की नियुक्ति । (६-८) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । (९-१०) सभा सेनाध्यक्षों के कर्तव्य । (पृ० ११३-११८)

(७)

सू० [७५]—दो अश्वी । विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्तव्य ।
(पृ० ११८-१२२)

सू० [७६]—दो अश्वी । रथी सारथिवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के परस्पर के कर्तव्य । (पृ० १२२-१२५)

सू० [७७]—प्रधान पुरुषों के कर्तव्य । (पृ० १२५-१२७)

सू० [७८]—दो अश्वी । सत्याचरण का उपदेश । दो हंसों और हरिणों के दृष्टान्त से उनके कर्तव्यों का वर्णन । (५) वनस्पति, आचार्य के कर्तव्य । उसका मातृवत् कर्तव्य । अध्यापक आचार्य के कर्तव्य । (७-९) गर्भस्ताविणी उपनिषत् ॥ गर्भविज्ञान, उत्तम प्रसवविज्ञान ॥ (पृ० १२७-१३२)

सू० [७९]—उषा । प्रभात वेला के दृष्टान्त से स्त्री के कर्तव्यों का वर्णन । (२) 'दिवः दुहिता' का रहस्य । (२) पति पही दोनों के पक्षों में समान योजना (८) उत्तम माता के कर्तव्य । दान का उपदेश । (पृ० १३२-१३८)

सू० [८०]—उषा के दृष्टान्त से उत्तम विदुषी गुणवती स्त्री का वर्णन । (२) जीवन मार्ग को सुखी बनाने वाली सहायक स्त्री । (३) उत्तम गृहिणी । (४) पतिव्रता का कर्तव्य । (५) वरवर्णिनी का आदर (६) उसके कर्तव्य । (पृ० १३८-१४२)

सू० [८१]—परमात्मा का वर्णन । (१) सर्वोपरि स्तुत्य । (२) जगद्-उत्पादक, जगत्-पालक, सर्वसम्राट्, पापनाशन । (३) जगन्निर्माता, सर्वाग्रणी, सर्वनेता । (४) सबका आद्यन्त । सर्वमित्र । (५) एक अद्वितीय, सर्वपोषक, विराट् । (पृ० १४२-१४६)

सू० [८२]—सविता, परमेश्वर का वर्णन । उसके ऐश्वर्य का वरण । (२) अविनाशी सामर्थ्यवान् प्रभु । (३) उससे ऐश्वर्य की याचना । (४) दुःस्वग्ननाशन की प्रार्थना, (५) भद्र-कल्याण की प्रार्थना ।

(८)

(६) निष्पाप होकर ऐश्वर्य धारण की प्रार्थना । (७) सर्वपाल सविता प्रभु का वरण (८) सर्वोपास्य सर्वसाक्षी प्रभु (९) सर्वगुरु प्रभु । (पृ० १४६-१४८)

सू० [८३]—पर्जन्य मेघवत् राष्ट्रपालक का वर्णन । (२) शत्रु पराजयकारी का मेघवत् वर्णन । उसका शत्रु वध का भयंकर कार्य । (३) सैन्यप्रबन्धक, एवं सारथिवत् विचेता का मेघवत् रूप । (४) बरसते मेघ के साथ युद्ध का विशिष्ट वर्णन । और उसके सत्कल । (५) सर्वपोषक राजा और मेघ । (६) धारावान् मेघ और सेनाच्यक्ष । (७) वर्षते मेघवत् राष्ट्र पोषक राजा के कर्तव्य । उत्तम न्याय व्यवस्था का आदर्श । (८) मेघवत् कोश वृद्धि और सद् व्यय का उपदेश (९) मेघवत् उदार सर्वप्रिय राजा । (१०) मेघवत् परविजयी राजा के कर्तव्य । (पृ० १४९-१५६)

सू० [८४]—पृथिवी के तुल्य माता का वर्णन । (२) उसका पति के प्रति कर्तव्य । (३) उसका भूमिवत् राजशक्ति के तुल्य वर्णन । (पृ० १५६-१५७)

सू० [८५]—वरुण, सर्वश्रेष्ठ प्रभु । (२) राजा के राष्ट्रोपयोगी कर्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । (३) प्रजा का कष्टवारक सम्राट्, वरुण, (४) राजा के भूमि सेचन के कर्तव्य । उसके वीरोचित कार्य । (५) मेघवत् का पालन । सर्वग्राणपति, महान् असुर, निर्माता, माता प्रभु । (६) सर्वदेवमय प्रभु । (७) पापमोचन की प्रार्थना (पृ० १५७-१६२)

सू० [८६]—इन्द्र, अग्नि । विद्युत् अग्निवत् नायक, अध्यक्षों के कर्तव्य । (३) उनका स्वरूप राजा और विद्वान् । (५) दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । (पृ० १६३-१६५)

सू० [८७]—मरुद् गण । मनुष्यों को कर्तव्यों का उपदेश ।

मरुत्वान् प्रभु का वर्णन । उत्तमों का आदर, सत्संग और गुरु जनों से ज्ञानप्राप्ति का उपदेश । (३) विद्वानों का कर्तव्य ज्ञानप्रसार । (४) सेनापति का वर्णन । (५) अग्निवत्, वायुवत् वीर पुरुषों का वर्णन । उनके कर्तव्य । (पृ० १६५—१७१)

इति पञ्चमं मण्डलम्

ॐ लूङ्

अथ षष्ठं मण्डलम्

सू० [१]—अग्नि । अग्निवत् तेजस्वी वीर विद्वान् के कर्तव्य । पक्षान्तर में प्रभु से प्रार्थना । (३) अनुगामी जनों, के कर्तव्य । (६) उपासना का प्रकार । (७) नायक के कर्तव्य, प्रजा का चित्तरञ्जन । (८) विश्वपति राजा और ईश्वर । उसकी उपासना । (९) ईश्वर भक्त को सत्फल (१०) अग्निहोत्र की सत्कार से तुलना । प्रभु से सन्मति की याचना । (११) ईश्वर से ज्ञानों की प्रार्थना । राजा, विद्वान् ‘अग्नि’ है । (१२) उसका ‘वसु’ रूप । (१३) ऐश्वर्यों की याचना । इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ (पृ० १६२—१७९')

पञ्चमोऽध्यायः (पृ० १७९—२६१)

सू० [२]—अग्निवत् तेजस्वी पुरुष और पक्षान्तर में ईश्वर का वर्णन । उसकी उपासना, प्रार्थना, स्तुति । (५) यज्ञ और उपासना । (६) अग्नि और ईश्वर का औपम्य । (७) सर्वब्यापक सर्वेश्वर । (८) राजा आत्मा विद्वान् सबका समान रूप से वर्णन । (१०) विश्वपति का स्वरूप । (१२) संसार से तरने के लिये ज्ञान की याचना । (पृ० १७६—१८४)

सू० [३]—विद्वान्, राजा, प्रभु इनका समान रूप से वर्णन । उपासना का सत्फल । (२) अग्निहोत्र, वा यज्ञ का सत्फल । (३) सूर्य-

(१०)

वत् ज्ञानवान् प्रभु । (४) विद्वान् राजा का परशु, आज्य, नियारिया और अग्निवत् कर्तव्य । (५) उसको असंग होकर धनुर्धर वा श्येन पक्षी-वत् कर्तव्यपालक होने का उपदेश । (६) उत्तम उपदेशा, सन्मार्गदर्शक के कर्तव्य । (७) सूर्यवत् सैन्यपति के पालन का राजा का कर्तव्य । (पृ० १८४-१८९)

सू० [४]—अग्नि । नायक होने योग्य गुण । (३) परमेश्वर सर्व-स्तुत्य, सब तेजों का धारक, पावन, सर्व बन्धन शिथिल करता है । (४) राजावत् परमेश्वर का शासन । (५) प्रभुख नायक । (६) सूर्यवत् राजा के कर्तव्य । (७) उसका वरण । (८) परमात्मा से निर्विघ्न मार्ग से ले जाने की प्रार्थना । पक्षान्तर में राजा के कर्तव्य । (पृ० १८९-१९३)

सू० [५]—उत्तम राजा का वर्णन । उसके कर्तव्य । (पृ० १९३-१९६)

सू० [६]—जिज्ञासु का ज्ञानोपदेशा, ज्ञानप्रद गुरु के समीप पहुँचना । (२) वीर नायक का कर्तव्य । (३) दिग्विजयी वीरों का विजय । उनको अग्नि से उपमा । (४) उत्तम शासकों का करसंग्रह और उच्च पद । (५) शासन और शत्रु नाश । (६) सूर्य के प्रकाश प्रसार-वत् राजा का राज्यप्रसार । (पृ० १९७-२००)

सू० [७]—वैश्वानर । तेजस्वी व अग्नि, सूर्यवत् नायक का स्थापन । उसके कर्तव्य । (६) पक्षान्तर में सर्वहितैषी प्रभु का वर्णन । प्रभु, सर्वकर्ता, सर्वप्रकाशक है । (पृ० २००-२०४)

सू० [८]—वैश्वानर । आचार्य और ब्रतपाल ब्रह्मचारी के कर्तव्यों का वर्णन । (३) आचार्य का स्त्री पुरुषों को दो चर्मखण्डों के तुल्य संयोजन । (४) जलों और मेघों से यन्त्रों से विजुली के तुल्य प्रजाओं में से तेजस्वी राजा का उपसंग्रहण । (५) परशु से वृक्षवत् दुष्टों के नाश का उपदेश । (६) उसके अन्य कर्तव्य । तीनों सभाओं के सभापति से रक्षा की प्रार्थना । (पृ० २०४-२०८)

सू० [९]—वैश्वानर । रात्रि-दिनवत् राजा प्रजा वा वर वधु के कर्तव्य । वैश्वानर राजा के गृह में बालकवत् अनुरंजक होने की स्थिति । (२) पिता से बढ़कर पुत्रवत् विद्वान् की स्थिति । यज्ञपक्ष में ब्रह्मवाद के पक्षों का स्पष्टीकरण । (४) जीव का वर्णन । जीव नश्वर देहों में अमर ज्योति । पक्षान्तर में नश्वर लोकों में ईश्वर तत्व । (५) देह में मन की स्थिति । (६) इन्द्रिय नमन आदि की चेतनवत् स्थिति । (७) इन्द्रियों का आश्रय आत्मा (पृ० २०८-२१३)

सू० [१०]—विद्वान् नायक का साक्षिवत् स्थापन । प्रभु की साक्षिवत् स्थिति । (२) तेजस्वी के मातृवत् कर्तव्य । (३) गोणाल वत् प्रजाबल । (४) तमोनिवारक सूर्यवत् गुरु का कार्य । (५) राजा के अन्यान्य कर्तव्य । (पृ० २१३-२१७)

सू० [११]—प्रमुख नायक के कर्तव्य । (२) देह की गृहस्थ से तुलना । (३) स्वयंवरण का प्रचार । (४) अग्नि तुल्य वर का रूप । (५) गृहस्थ यज्ञ । (पृ० २१७-२२२)

सू० [१२]—अग्नि के दृष्टान्त से राजा और विद्वान् गृहपति का वर्णन । (२) उसको यज्ञ का उपदेश । (३) घोड़ों पर चाबुक के समान राजा वा नायक की स्थिति । उसे अद्वैही, चुस्त होने का उपदेश । (४) नायक के अग्नि, अश्व, पिता के समान कर्तव्य । उसे वनस्पति भोजी 'द्रुञ्ज' होने का उपदेश । (५) द्रवत् विद्युत् का वर्णन, उसके सहश राजानुरंजक राजा के कर्तव्य । (६) राजा प्रजा को निन्दनीय जमों से बचावे । (पृ० २२२-२२६)

सू० [१३]—(१) वृक्ष से शाखावत् सूर्य से वृष्टियों के समान राजा से राज-सभासदाओं का विकास । (२) अग्नि से प्रकाश और जाठराग्नि से प्राणों के तुल्य राजा से न्याय की उत्पत्ति । (३) सूर्य से जल, मेघ, अन्नवत् राजा से राज्यों की वृद्धि । (४) उसकी तीक्ष्ण तेज-

स्विता और स्वामित्व । (५) राजा के बल ऐश्वर्यादि धारण करने के प्रयोजन, दुष्टों का निग्रह, और प्रजाहित । (६) राजा, और प्रभु से धन, पुत्र ऐश्वर्यादि की प्रार्थना । (पृ० २२६-२३०)

सू० [१४]—अग्निवत् गुरु के अधीन विद्याभ्यास से ज्ञान का वृद्धि । (२) विद्वान् अग्नि का स्वरूप । वह यथार्थ ज्ञान प्रकाश करने से 'अग्नि' है । (३) धन, सम्पदा के लिये स्पर्धा करने वाले क्षत्रिय और वैश्य दोनों का स्वामी विद्वान् ब्राह्मण है । (४) क्षत्राग्नि तेजस्वी नायक का सर्वोत्तम दान शत्रुभयकारी बल है । (५) ज्ञानबल से निन्दकों पर विजय लाभ (६) प्रभु से शुभ ज्ञान, उत्तम भूमि, ऐश्वर्य की याचना, पार्णी और शत्रुओं को पार करने की याचना । (पृ० २३०-२३२)

सू० [१५]—वेद के भोजन से ज्ञान की वृद्धि । प्रातः जागने का रहस्य । जीवन के प्रथम भाग-ब्रह्मचर्य में पालन का उपदेश । (२) वन-स्पति रूप आचार्याग्नि के कर्तव्य । (३) विद्वान् गुरुवत् राज्याश्रमी राजा के कर्तव्य । वीतहव्य का रहस्य । (४) विद्वान् की सेवा और पूजा । (५) स्तुत्य प्रभु का रूप । (६) अग्नि-परिचार्यवत् प्रभु-परिचर्या का वर्णन । (७) उपासनाओं द्वारा यज्ञाग्निहोत्र-उपासना और गुरु-उपासना । (८) अमृत, विश्वति विभु की उपासना । (९) तिमंजिले भवन के समानत्रि विध तापवारक प्रभु । (१०) ज्ञानी प्रभु की गुरुवद् उपासना । (११) गुरु के कर्तव्य । (१२) राजा के गुरुवत् और गुरु के राजावत् कर्तव्य । (१३) 'जातवेदा' का लक्षण । 'अग्नि' का लक्षण, उसके होता, गृहपति आदि अन्वर्थ नाम । (१४) परमेश्वर, राजा का यज्ञकर्ता और अग्नि के तुल्य वर्णन । (१५) विद्वान् और राजा के कर्तव्यों का विम्ब-प्रतिविम्ब भाव । (१६) विद्वान् और सेनापति के कर्तव्यों का विम्ब-प्रतिविम्ब भाव । (१७) संघर्ष द्वारा मथ कर उत्पादित विद्युत् या अग्नि के तुल्य परस्पर विवाद-

संघर्ष द्वारा विद्वान् नायक की उत्पत्ति । (१८) उसका लक्ष्य राज्य यज्ञ का धारण और उत्तम कर्मचरण । (२०) सर्वहितार्थ यज्ञाभिवत् विद्वान् नायक का आधान । जिससे वह तीक्ष्ण तेज से शासन करे । (पू० २३२-२४४)

सू० [१६]—ज्ञानमय जगदीश्वर की स्तुति । विद्वान् की जनता में स्थिति । (२) विद्वान् के कर्तव्य । वेदोपदेष्टा प्रभु । (३) सन्मार्ग-दर्शी प्रभु, ज्ञानी । (४) उसकी सगुण निर्गुण, उपासना के प्रकार । (५) पात्रप्रद विवेकी प्रभु । (६) दृतवत् प्रभु । (७) स्तुत्य प्रभु । अनुकरणीय प्रभु । (९) मनु, वह्नि, अग्नि, सर्वाश्रय ज्ञानी प्रभु । (१०) ज्ञान की पुकार । राजसभा में राजा को प्रधान पद की प्राप्ति । (११) ज्ञानाभिमि का यज्ञाभिवत् प्रज्वालन । (१२) प्रकाशवत् ज्ञानवितरण । (१३) मेघस्थ अग्निवत् शिरोमणि विद्वान् की स्थिति । उसकी उत्पत्ति और कर्तव्य । पक्षान्तर में आत्माभिमि का मथन । (१४) अथवा दध्यङ्क् ऋषिके अग्नि मथन का रहस्योऽन्तेद । (१४) पाथ्य वृषा, मेघवत् प्राण का वर्णन । दृष्टान्त से राजा का वर्णन । (१६) उपदेष्टा की चन्द्रवत् वृद्धि । (१७) उत्तम बल प्राप्ति का उपदेश । (१८) राजकार्यों पर राजा की आंख रहने की आवश्यकता । वा समर्थ राजा का लक्षण । (१९) सत्पति का लक्षण । दिवोदास का रहस्य । (२०) अनबूझ अग्नि राजा । (२१) राजा को राज्य विस्तार का उपदेश । (२२) अग्रणी के गुण स्तवन, उपदेश । (२३) विद्युतवत् विद्वान् अध्यक्ष, उसकी दीर्घायु । (२४) राजा का कर्तव्य गृहस्थों का बसाना । (२४) राजा विद्वान् और प्रभु का सम्यग् दर्शन सर्वलोक-हितार्थ है । (२६) उसका कर्तव्य पापों से प्रजा की रक्षा । (२६) आत्मसमर्पक की ब्रह्मप्राप्ति । (२७) प्रभु, स्वामी के सच्चे सैनिक । (२८) प्रजाभक्षकों का नाश, राजा का कर्तव्य । (२९) दुष्टों का उत्पीडन (३०) पापों और पापियों से प्रजा का पालन । (३१) दुष्टों का मूलोच्छेदन । (३२) हमारे विरोधी दुष्ट

पुरुष को वचन द्वारा दण्डित करना या वाक्‌छेदन करने का दण्ड । (३३)
 अन्न-बलयासियों के हाथ से ऐश्वर्य की याचना । (३२) जल सूर्यवत् राजा के कर्तव्य । (३५) परमेश्वर । माता के गर्भ में बालकवत् राज्य गर्भ में राजा की स्थिति । और सभाभवन के मुख्यासन पर पिता के पिता (पितामह) पदकी प्राप्ति । (३६) धन, ज्ञानप्रद जातवेदा का स्वरूप । (३७) सम्यग् इष्टि वाले ज्ञानी के पास से ज्ञानोपार्जन । (३८) धूप में उस की छायावत् प्रभु शरण प्राप्ति । (३९) बलवान् राजा का शत्रुपुर भेदन । (४०) प्रजा का राजा के प्रति मातृतुल्य स्नेह । (४१) योग्य की योग्य पद आदर प्राप्ति । (४२) उसका योग्य पद पर स्थापन । (४३) उत्तमों की उत्तम कार्यों में नियुक्ति । (४४) राष्ट्र पालनार्थ राजा का सैन्य धारण । (४५) उसकी सर्वोच्च स्थिति और चमकने का उपदेश । (४६) सर्वोच्च की आदर पूजा करने का प्रकार । (४७) राजा के अधीन जनों के गुण । (४८) अग्रासन योग्य जन के कर्तव्य । ऐश्वर्य प्राप्ति, दुष्ट नाश । (पृ० २४४-२६१) इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चोऽध्यायः (पृ० २६२-३२८)

सू० [१७]—शत्रु दमन के साथ राष्ट्र में कृपि की वृद्धि का उपदेश । (२) राजा के सद्गुण । (३) उसके कर्तव्य । (४) उसका अभिषेक । (५) उपावत् सूर्य के तुल्य राजा प्रजा का अभ्युदय । (६) प्रजा की वृद्धि के नाना द्वारा खोलने का उपदेश । (७) बृहत् सैन्य धारण और प्रजा के शासन का उपदेश । (८) गुरुवत् राजा का वरण । (९) राजा के दो भय, उनसे विनीत प्रजा । (१०) राजा के बल के ५ गुण, भयकारी सर्वनाश में समर्थ तीक्ष्ण, सुखद, सर्वाश्रय योग्य (११) सूर्यवत् राजा के दो कार्य । १. अन्नवत् शत्रुपाक, २. सरोवरपूरक मेघवत् राष्ट्र के ज्ञानी बली, धनी तीनों प्रजावर्गों का समृद्धि योग । (१२) मेघस्थ जलवत् बल का प्रयोग और प्रजाजन का सन्मार्ग पर ले चलना । (१३).

ऐसे राजा का वरण । (१४) उसका कर्तव्य । (१५) उत्तम प्रार्थना ।
(पृ० २६१—२६९)

सू० [१६]—सुत्य स्वामी, प्रभु । (२-३) एक हेशर की स्तुति ।
उसका वेदोपदेश । (४) स्वामी का महान् भीतिप्रद शासनबल ।
उसका कार्य शत्रु का नाश । (६) राजा के अनेक उत्तम कर्तव्य । (७)
सर्वोपरि राजा के गुण । (८) प्रजा के सुखार्थ प्रजा के भक्षकों का दमन ।
(९) महारथी होने का उपदेश । उसको कर्तव्य का उपदेश । (१०)
विजुलीवत् शत्रुओं का नाश । (११) दुष्टों को धनापहार का दण्ड ।
(१२) अद्वितीय बलशाली, प्रभु और राजा का वर्णन । (१३) राजा
को उपदेश । शासन, दान, उच्चयन, शक्तिवर्धन । (१४-१५) प्रधान
के स्तुत्य कार्य । (पृ० २६९—२७६)

सू० [१९]—शरीर में प्राणवत् राजा की स्थिति । वह सहायकों
से बढ़े । (२) उसके कर्तव्य । (३) पशुपालवत् प्रजा का पालक ।
(४) सदाचारी प्रजा होने के उद्देश्य से राजा की स्थापना । (५) राजा
के उत्तम गुण । (६-९) उसके कर्तव्य । प्रजा का शक्तिवर्धन (१०—
१३) अभ्युदयादि । प्रजा की नाना कामनाएँ । (पृ० २७६—२८२)

सू० [२०]—राजा के गुण । (२) विद्युत्वत् राजा का सम-
वाय बना कर शत्रुहनन । (३) राजा के उत्तम गुण । (४) दशा-
वरा परिषत्पति का बलशाली पद । उसका प्रभाव । (५) राजा
महारथी । (६) राजा, सेनापति का कर्तव्य, नमुचि के शिरोमथन
का रहस्य । शुण के वध का रहस्य । (७) 'पिपु' शत्रु का रूप ।
उस का दमन । अहार्य धन का दान । (८) राघूमाता का बालकवत्
सुपुत्र राजा । शासनार्थ उत्तम उपकरण, दशान्तरा, हस्ती यान, सैन्य बल,
आदि का ग्रहण । (९) न्यायासन पर विराजे अधिकारी के कर्तव्य ।
(१०) उत्तम सैन्यशिक्षा । (११) राजा के नितातुल्य कर्तव्य ।

(१२) जलधारावत् प्रजाओं का सन्मार्ग में प्रवर्तन । राजा का आदर । धुनि, चुमुरि के हनन का रहस्य । (पृ० २८२-२८६)

सू० [२१]—प्रभु का महान् ऐश्वर्य । (३) प्रभु के अनुग्रहे-च्छुओं का अहिंसा महावत् । (४) प्रभु का सर्वश्रेष्ठ रूप, (५) वह सर्वज्ञ है । (६) उसके प्राप्तिर्थ दीक्षा, स्तुति आदि । ईश्वर का सर्वातिशायी बल । पक्षान्तर में इन्द्र, जीव और रक्षस् विघ्नों का वर्णन । (७) इन्द्र, राजा को उपदेश । (८) उसके कर्तव्य । (९०) बहुशक्तिशाली प्रभु का वर्णन । उसके प्रति प्रार्थना । (पृ० २८९-२९५)

सू० [२२]—इन्द्र की अर्चना । (२) उसके सत्संगी । उसके पितृणां । (३) राजा के अधिकार का निरूपण । (५) उसको अधिकार दान । कर्तव्य शिक्षण । (७) सर्वधारक प्रभु । (८-११) पक्षान्तर में राजा के कर्तव्य । (पृ० २९५-३००)

सू० [२३]—राजा की निःसंग स्थिति । उसके उत्तम २ कर्तव्य । (५) स्तुत्य प्रभु । (७) ऐश्वर्यवान् के कर्तव्य । (९) सभा सदस्यों द्वारा राजा का अभिषेक । (१०) अभिपिक्त के कर्तव्य । (पृ० ३००-३०५)

सू० [२४]—प्रजा के पुत्रवत् पालक राजा के कर्तव्य । (२) उसकी शक्तियों की शाखावत् वृद्धि । (३-४) गौओं और बछड़ों के तुल्य और प्रभु राजा की शक्तियों, सेनाओं और प्रजाओं की स्थिति । (५) राजा का सर्वप्रिय रूप । (६) नदीवत् प्रजाओं के स्वभाव । (७) उस प्रभु की महती शक्ति । (८) मेघवत् शस्त्रवर्षी बल । (९) पितावत् राजा के कर्तव्य । (पृ० ३०६-३११)

सू० [२६]—रक्षक स्वामी के कर्तव्य । (२) प्रजा की संकटों में रक्षा । (३) पीड़ाकारियों का नाश । (४) उत्तम न्यायकारी का पद इन्द्र । (५) सर्वोपरि शासक । (६) न्यायानुसार विभाजक इन्द्र पद । (७) त्राता दुष्टसंहारक (पृ० ३११-३१५)

(१७)

सू० [२६]—प्रजा सेवकादिभक्त इन्द्र । उसका दुष्टदमन का कर्त्तव्य । (पृ० ३१५-३१६)

सू० [२७]—राज्यैश्वर्य की रक्षा और दुष्ट दमन के उपायों का उपदेश । (२) न्याय का उपदेश । (३) इन्द्र का अज्ञेय ऐश्वर्य । (४) उसका सर्वभयकारी बल । (५) शिष्य को शिक्षा, ताड़ना के समान राजा का शासन । 'हरियूपीया' का रहस्य । (६) राजा की ३००० सेना और सैन्यों के कर्त्तव्य । (७) राजा की शत्रु-उच्छेदक नीति । (८) राजसभा के २० सदस्यों का विधान । (पृ० ३१९-३२४)

सू० [२८]—गौओं के दृष्टान्त से कुलवधुओं का वर्णन । (२) राजा का प्रजाजन को खजाने के समान रक्षा करने का कर्त्तव्य । (३) अचोर्य धन । (४) ज्ञानी इन्द्र की अहिंस्य गौणें, वाणियें हैं । (५) इन्द्र से राजा, गृहपति, विद्वान् से भूमि, गौ वाणी दान करने की याचना । (६) गौओं और वाणियों के उत्तम गुणों की तुलना । (७) गौओं वाणियों के तुल्य व्यवहार और प्रकृति । (पृ० ३२४-३२८)
इति षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः (पृ० ३२८-४१२)

सू० [२९]—महत्वाकांक्षियों को इन्द्र, गुरु, आदि की शरण जाने का उपदेश । (२) प्रधान पुरुष, इन्द्र की योग्यता । (३) उसकी सूर्यवत् स्थिति । (४) राजा के उत्तम गुण, 'सोम', 'धाना', 'पक्षि' 'ब्रह्मकार' आदि का स्पष्टीकरण । (५) सर्वरक्षक महाप्रभु । (६) अनुपम बलशाली इन्द्र । (पृ० ३२८-३३१)

सू० [३०]—सूर्य पृथिवीवत् राजा भूमि का प्रकाश्य-प्रकाशक भाव । सूर्यवत् उसका महान् प्रभाव । (२) उसका महान् अविनाशी, दर्शनीय सामर्थ्य । (३) विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य । (४) सूर्यवत्

(१८)

अनुपम प्रभु । राजा के कर्तव्य । (५) शत्रु विजय, सेना-उत्पादन का उपदेश । (पृ० ३३१—३३४)

सू० [३१]—रथिपति इन्द्र । उसका प्रस्ताव अनुमोदन, बाद-विवाद द्वारा निर्वाचन । (२) उसके सदगुण । विद्युत्वद् भयकारी बल । (३) इन्द्र कृपक का वर्णन । राज्ञचक्र प्रवर्तन । दुष्टनाश । प्रजा की शिक्षा का प्रबन्ध करने का उपदेश । (५) गुरुजन संग का उपदेश (पृ० ३३४—३३७)

सू० [३२]—स्तुत्य, महान् इन्द्र का उपस्तवन । (२) उसके सूर्यवत् कर्तव्य । (३) गुरु शिष्यों और वीरों आदि को सम्मता, शिष्टाचार का उपदेश । उनको एक साथ काम करने की शिक्षा । (४) पंक्तिबद्ध पुरुषीर सेनाओं का उपदेश । (५) सेनापति और अध्यक्ष के सेनाओं को नदी-सागर दृष्टान्त से प्राप्त होने का उपदेश । (पृ० ३३७—३४०)

सू० [३३]—उत्तम उदार, बलवान् राजा का कर्तव्य । (४) उसको प्रजा का रक्षार्थी आहान । उसका प्रजा के प्रति उचित भाव । (पृ० ३४०—३४३)

सू० [३४]—समस्त वाणियों, स्तुतियों, प्रवचनों का एक मात्र पात्र प्रभु 'इन्द्र' । (२) वह रथवत् सर्वाश्रय, उपास्य है । (३) सर्वस्तुत्यः शान्तिदायक प्रभु । अमावास्या में सूर्य में चन्द्रवत् परमात्मा में जीव की एकता । मरु में जलों के तुल्य यज्ञों से प्रभु की महिमा की वृद्धि । (पृ० ३४३—३४५)

सू० [३५]—राजा के जानने और करने योग्य कर्तव्यों का उपदेश । (५) विद्वानों की सेवा, आदर का उपदेश । (पृ० ३४५—३४७)

सू० [३६]—ऐश्वर्यों के न्यायानुसार विभक्त करने वाले अधिकार और कर्तव्य । (३) उसकी बलवती विभूति । (४) उसको दान का उपदेश । (५) प्रजा के प्रति सावधान कान वाला, सर्वप्रिय होने का उपदेश । (पृ० ३४८—३५०)

सू० [३७]—योग्य अधिकारी सहायकों की नियुक्ति । उनके गुण । इथ में लगे अश्रों से उनकी तुलना । (४) 'इन्द्र' पद के योग्य पुरुष का वर्णन । (५) उसका कर्तव्य । (पृ० ३५०-३५२)

सू० [३८]—उत्तम शासक का वर्णन, उसके कर्तव्य । (२) विद्वान्, ज्ञानोपदेष्टा का ज्ञानप्रसार । (३) गुरु का आदर (४) समृद्धि की वृद्धि का उपदेश । गुरुसेवावत् राजसेवा का वर्णन । (पृ० ३५२-३५५)

सू० [३९] ज्ञानप्राप्ति का उपदेश । (२) गुरु शिष्य के कर्तव्य । (३) चन्द्र सूर्यवत् उनके परस्पर व्यवहार । (पृ० ३५५-३५८)

सू० [४०]—प्रजा के प्रति राजा के कर्तव्य । राष्ट्र का अन्नवत् उपभोग । (२) राजा के सन्मार्ग पर चलाने का विद्वानों का कर्तव्य । उसके शिष्यवत् कर्तव्य । (५) यज्ञवत् राष्ट्र का पालन । (पृ० ३५८-३६१)

सू० [४१]—इन्द्र, स्वामी को उसके कर्तव्यों का उपदेश । (पृ० ३६१-३६४)

सू० [४२]—प्रजाजन के कर्तव्य । राजा प्रजा के परस्पर के सम्बन्ध । (पृ० ३६४-३६६)

सू० [४३]—शत्रु नाशपूर्वक राष्ट्रश्वर्य का पालन और उपभोग । राजा का अभिषेक । (४) पुत्रवत् राजा । (पृ० ३६६-३६७)

सू० [४४]—अभिषेक योग्य सोम स्वधापति । उसके कर्तव्य । (४) इन्द्र पद के योग्य पुरुष के लक्षण और आवश्यक गुण । उसके कर्तव्य । (८) उसके प्रति विद्वानों के कर्तव्य । (९) बुरी आदतों को त्यागकर राजा की आयुवृद्धि का उपदेश । (१०) सर्वोपरि बन्धु प्रभु । (११) प्रजा की न्यायोचित मांगें । (१२) राजा के कर्तव्य । (१४) सूर्य मेघवत् राजा का शत्रु नाश और प्रजापालन का कार्य । (१५) राजा की

आवश्यक योग्यताएँ । (१६) राजा से प्रभु की तुलना । (१७) शत्रु दमन का उपदेश । (२०) वीरों के कर्तव्य । नायक का वरण । (२१) संगठनकारी राजा । (२२) शत्रुबल का स्तम्भन धारण । (२३) उत्तम सेनाओं का बनाना । (२४) सूर्यवत् उभय लोक का शासन । (पृ० ३६७-३७८)

सू० [४५]—सखा ईश्वर स्वामी । उसके गुण । (४) उत्तम राजा की स्तुति उसके कर्तव्य । (१०) वाजपति गुरु, का राजावत् वर्णन । उसके कर्तव्य । प्रजा के वचन श्रवण, शत्रु के बल का विजय, राष्ट्र की उच्चति करे । (१६) कैसे प्रसिद्ध हो । विद्वानों का उत्तम बन्धु मित्र । (१७) अजेय । (२०) एक, अद्वितीय (२१) तीनों वर्णों के राजा के प्रति कर्तव्य । (२४-२५) प्रजाओं को वत्सों के प्रति गोवत् राजा के प्रति वात्सल्य भाव । (२६) अविनाशी मैत्रीभाव । (२७) अन्न का उपभोग । (२९-३०) संशयच्छेता विद्वान् का आदर । (३२) उच्च तटवत् ज्ञानी की स्थिति । (पृ० ३७८-३८९)

सू० [४६] प्रभु सत्पति का अह्वान । (२) उसका कर्तव्य ऐश्वर्य वितरण । (३) इन्द्रपद वाच्य । (४) सर्वोपरि शास्त्रा । (५) उसके कर्तव्य । संघ में बल देना राजा का कर्तव्य । (१२) युद्ध समय में उसके कर्तव्य, प्रजा रक्षण । श्येनों के समान वीरों का पलायन । (पृ० ३८९-३९५)

सू० [४७]—सोम, उसका अप्रतिम बल, शत्रु के ९९ प्रकार के बलों के नाशक । (३) ओषधि रस के दृष्टान्त से राजा के कर्तव्य । (४) व्यापक सोमतत्व । (६) प्रखर सूर्यवत् उसकी स्थिति । (९) अधीन दो पुरुषों की नियुक्ति । (१०) दीर्घ जीवन, बुद्धि, वाणी की प्रार्थना । (११) इन्द्र के लक्षण । (१२) उसके कर्तव्य । (१४) सर्वस्तुत्य प्रभु । (१५) राजा का उच्चति पद की ओर बढ़ने का प्रकार ॥

(१८) राजा और जीवात्मा का वर्णन । (२०) मार्गरहित क्षेत्र में मार्ग के ज्ञान की प्रार्थना । मार्गरहित क्षेत्र की अध्यात्म व्याख्या । (२१) राजा का सूर्यवत् शासन । (२२) राजा की मेघवत् स्थिति । उसके ऐश्वर्य का मेव जल के समान उपभोग । (२३) राजा का विभूतिदान । (२६) राजा का वनस्पति रूप । राजा के नाना कर्तव्य । (२८) इन्द्र का वज्र । उसका उपभोग । (३०) इन्द्र की दुन्दुभि । राजा का दुन्दुभि रूप, उसका उपयोग । (पृ० ३९५-४१२)

अष्टमोऽध्यायः (पृ० ४१२-४८९)

सू० [४८]—ज्ञातवेदाः प्रभु की स्तुति । राजा के कर्तव्य । (५) मथित अग्नि के समान राजा का प्रकट होना । (६) सधूम अग्निवत् राजा का स्वरूप । (८) अग्निवद् गृहपति । (९) वसु, आचार्य, गृह-पति अग्नि । उससे उचित याचना, प्रार्थना । (१०) विश्वदोहस्, विश्वभोजस्, वेदवाणी का गोवत् दोहन । (१४) इन्द्र का वस्ण, अर्यमा, विष्णु रूप । (१५) विद्वान् शासक के कर्तव्य । (१७) उसकी वन-स्पतिवत् स्थिति । राजा का अच्छिद्र पात्रवत् सख्य । उससे प्रार्थनाएँ । (२१) तेजस्वी का लक्षण । (२२) सूर्य भूमिवत् राजा प्रजा । (पृ० ४१२-४२२)

सू० [४९]—ब्रह्म, क्षत्र के कर्तव्य । (३) रात्रि दिनवत् शिष्य शिष्याओं के कर्तव्य । (४) विदुषी खी और विद्वान् को उपदेश । पक्षान्तर में धोगी को उपदेश । (६) मेघ वायुवत् खी पुरुषों को उपदेश । (१३) व्यापक प्रभु की स्तुति प्रार्थना । (पृ० ४२३-४३०)

सू० [५०]—देवी अदिति । (२) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् राजा के कर्तव्य । सूर्य भूमिवत् खी पुरुषों को उपदेश । (४) विद्वानों के कर्तव्य । (६) विद्वान् गुरु की अर्चना (७) आसजनों के कर्तव्य । (८) तेजस्वी रक्षक के कर्तव्य । (९) अधीन के कर्तव्य । (१०)

विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । (११) दानशील पुरुषों के कर्तव्य ।
(पृ० ४३०-४३८)

सू० [५१]—मित्र रूप स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । (२) विद्वान् रूप आंख का सूर्यवत् वर्णन । (४) उत्तम नायकों का वर्णन । (५) उत्तम माता पिता, भाई आदि से प्रार्थना । (६) उत्तम पुरुषों से प्रार्थना । (८) पूज्यों का आदर । वीर बलवानों के कर्तव्य । (११) उत्तम रक्षक । (१२) ज्ञानी, गुरु और रश्मियों के गुण । (१३) सत्पति, उसके कर्तव्य । (१५) राजाधीन वीरों के कर्तव्य । (१६) परम पन्था प्रभु । (पृ० ४३८-४४७)

सू० [५२]—उत्तम यज्ञशील का अभ्युदय । (२) दुष्ट पुरुषों के प्रति वीरों के कर्तव्य । (३) राजा का कर्तव्य । (४) मनुष्य के उत्तम रक्षक । (६) उत्तम पिता आचार्य इन्द्र । (७) विद्वानों की अर्चना । उनसे निवेदन । (८) सूर्य पर्जन्यवत् पिता और आचार्य । (१७) यज्ञवत् विद्वान् की अर्चना । (पृ० ४४७-४५५)

सू० [५३]—पथस्पति पूषा । विद्वान् राजा । उसके कर्तव्य । (४) दुष्टों का दमन । (७) व्यवहार पत्र लेखनादि का उपदेश । चाकुकवत् वाणी का प्रयोग । (पृ० ४५५-४५८)

सू० [५४]—पूषा विद्वान् आचार्य । उसका सत्संग । (३) पूषा राजा के कर्तव्य । (८) उससे न्याय की याचना । (पृ० ४५८-४६१)

सू० [५५]—पूषा राजा । ऐर्थर्यवान् मित्र, आदेष्टा । (१) सूर्य वत् प्रकाशक । 'स्वसुर्जार', 'मातुर्दिघिपु' का रहस्य । (६) रथ के अश्वों के समान अमात्यों के कर्तव्य (पृ० ४६१-४६४)

सू० [५६]—प्रजापोषक पूषा राजा । अयाचित दाता प्रभु । (२) सत्पति इन्द्र । आत्मा । (३) रथीतम् । उसके नाना कर्तव्य । प्रजा के निवेदन । (पृ० ४६४-४६६)

सू० [५७]—इन्द्र, कृषक जन पुथिवीपति पूषा । व्यापारी वर्ग और कृषक वर्ग इन्द्र और पूषा । (३-४) इन्द्र राजवर्ग, प्रजा पूषा । (६) दोनों की भिन्न व्यवस्था । (पृ० ४६६-४७१)

सू० [५८]—रात्रि-दिनवत् स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । (२) गृह-पति पूषा । (पृ० ४६८-४६९)

सू० [५९]—सूर्य अग्निवत् स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । (५) उसका विद्युत् अग्निवत् वर्णन । (६) उत्तम स्त्री । पक्षान्तर में विद्युत् का वर्णन । तेजस्वी स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । (पृ० ४७१-४७६)

सू० [६०]—उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । उनका उत्तम आदर । पक्षान्तर में अग्नि-विद्युत्-विज्ञान । (पृ० ४७६-४८३)

सू० [६१]—सरस्वती नदी से यन्त्र संचालक वेग और बल प्राप्ति के समान प्रभु और वेदावाणी से ऐश्वर्य, ज्ञान और शक्ति का लाभ । (२) नदीवत् वाणी का वर्णन । (५) सरस्वती विदुषी का वर्णन उत्तम विद्या का वर्णन । (पृ० ४८३-४८९) इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति चतुर्थोऽष्टकः

८४४@१००

पञ्चमोऽष्टकः

सू० [६२]—सूर्य उषावत् विवेचक स्त्री पुरुषों का वर्णन । उनके कर्तव्य । (४) वायु विद्युत्, उनके कर्तव्य । (६) विद्युत् पवन । विज्ञान । वायुयान-निर्माण । पक्षान्तर में स्त्री पुरुषों के कर्तव्य का वर्णन । (८) तेजस्वी प्रजा जनों के कर्तव्य । (पृ० ४९०-४९७)

सू० [६३]—स्त्री पुरुषों के सत् कर्तव्य । (५) उषावत् कन्या का वर्णन । वर वधू के कर्तव्य । (पृ० ४९७-५०३)

सू० [६४]—उषा के दृष्टान्त से वरवर्णिनी वधू और विदुषी स्त्री के कर्तव्य । (पृ० ५०३-५०७)

सू० [६५]—उषा के दृष्टान्त से ख्रियों के कर्तव्यों का वर्णन ।
 (५) कन्या के प्रति विद्वानों के उपदेश और वर प्राप्ति । (पृ० ५०७—५११)

सू० [६६]—देह का वर्णन । (२) विद्वानों मरुतों के कर्तव्य ।
 (३) उत्तम सन्तानोपादन का उपदेश । (६) बलवान् पुरुषों के
 कर्तव्य रक्षा आदि । (७) वायुओं द्वारा विना अश्वादि के रथ के समान
 जीवन का निष्पाप मार्ग । (८) वीरों से रक्षित नायक का अनुपम वल ।
 (९) वीरों विद्वानों के कर्तव्य । अग्निवत् नायक और वीरों का वायु-
 वत् वर्णन । सेनानायक का आदर सत्कार । (पृ० ५११—५१७)

सू० [६७]—मित्र वरुण । स्नेही दुःखवारक प्रधान पुरुषों के
 कर्तव्य । (२) मित्र-वरुण वरवधू के कर्तव्य । उनको गृहस्थ जीवन
 सम्बन्धी अनेक उपदेश । (पृ० ५१७—५२३)

सू० [६८]—इन्द्र वरुण, युगल प्रमुख पुरुषों के कर्तव्य । (५)
 इन्द्र वरुण की व्याख्या । (१०) इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुषों का वर्णन ।
 (पृ० ५२३—५२८)

सू० [६९]—इन्द्र विष्णु । सूर्य विद्युतवत् राजा प्रजा वर्गों के
 परस्पर कर्तव्य । (२) सूर्य विद्युतवत् स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । (३)
 सभापति सेनापति के कर्तव्य । (४) ऐश्वर्य और जनसंघशक्ति अर्थात्
 कोश और दण्डाध्यक्षों को उपदेश । (५) राजा विद्वान् दोनों के परा-
 क्रम और (७) ऐश्वर्य की वृद्धि और उत्पत्ति का उपदेश । उक्त सबको
 अन्न ऐश्वर्य से पेट भरने का उपदेश । (८) अपरिमित ज्ञान, बल ऐश्वर्य
 प्रकट करने की प्रेरणा । (पृ० ५२८—५३२)

सू० [७०]—द्यावा पृथिवी, भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा,
 माता पिता, वर वधू वा स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । वे स्नेही, आश्रय योग्य,
 विशाल हृदय, मधुर अन्न वचन के दाता, बलवान् हों । (२) वे सूर्य
 भूमि वा जल-अन्न सम्पन्न, शुद्धाचार, दानी उत्तम सन्तति के माता पिता:

हों। (३) दोनों में आदर्श पुरुष का वर्णन। (४) दोनों का आदर्श पारस्परिक कर्तव्य। (पृ० ५३२-५३६)

सू० [७१]—सविता। सूर्यवत् उत्तम निषुण राजा के कर्तव्य। (३) वह प्रजा के प्राणों की रक्षा करे। स्वयं सत्यवान् हो। (४) अपराध को न सहे। (५) सुप्रसन्न रहे, (६) प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करे। (पृ० ५३६-५३९)

सू० [७२]—इन्द्र सोम। सूर्य चन्द्रवत् छी पुरुषों, गुरु शिष्यों के कर्तव्य, वे प्रभु को जानें। अज्ञान को दूर करें, निन्दय व्यवहारों का नाश करें। (२) युवा-युवति को बसावें। माता भूमि का आदर करें, पक्षान्तर में आचार्य शिष्य के कर्तव्य, (३) आचार्य और विद्युत-पवन परस्पर सहायकों के कर्तव्य। (४) परिपक्व वीर्य से सन्तान उत्पन्न करें। (५) धनादि उपार्जन करें। (पृ० ५३९-५४२)

सू० [७३]—गृहपति परमेश्वर पिता और राष्ट्रपालक राजा। (२) वीर राजा का वर्णन। (३) बड़े राष्ट्र के स्वामी के कर्तव्य। (पृ० ५४२-५४४)

सू० [७४]—सोम रुद्र। चन्द्र और वैद्य वा औषधि और वैद्यवत् शत्रु-रोगनाशक राजा सेनापति के कर्तव्यों का वर्णन। जल और अग्नि के तुल्य वैद्यों को आरोग्यरक्षार्थ औषध संग्रह का उपदेश। (पृ० ५४४-५४५)

सू० [७५]—संग्राम सूक्त। युद्धोपकरण, कवच, धनुष, धनुष की डोरी, धनुष कोटि, तरकस, सारथि, रासें, अश्व, रथ रक्षक, वाण, कशा हाथ का रक्षक चर्म आदि २ पदार्थों के वर्णन तथा उनके महत्व। (२) धनुष के बल से संग्राम विजय का उपदेश। (३) प्रिय स्त्रीवत् धनुष डोरी का वर्णन। संग्राम पार करने की सहायक डोरी। (४) माता पिता के समान धनुष कोटियों और पार्श्वतीर्ती सेनाओं का वर्णन। (५) बहु-

चुत्र पितावत् तरक्स का वर्णन । संग्राम विजय में उसके साथ पीठ पीछे लगे वीर की तुलना । (६) रासों का महत्व, अध्यात्म में आत्मा रथों का वर्णन । (७) शत्रुविजयी वीरों का वर्णन । (८) युद्ध रथ । (९) सेनाध्यक्ष पितरों का वर्णन । (१०) विद्वान् वाह्यण पितरों का वर्णन । वाणों का वर्णन । पक्षान्तर में भूमि और भूमिपालों का महत्व पूर्ण वर्णन । (१२) वाणवत् सरल पुरुष का वर्णन । (१३) अश्व चालक कशा का वर्णन । (१४) सूर्यवत् हस्तत्राण और वीर पुरुष का वर्णन । (१५) विष से बुझे बाण तथा सुन्दर छी का वर्णन । (१६) छोड़े हुए बाणवत् सेना का वर्णन । (१७) विद्यार्थियों के तुल्य बाणों का वर्णन । (१८) वीर का कवच धारण । (पृ० ५४५—५५५)

इति पष्ठं मण्डलम्

अथ सप्तमं मण्डलम्

सू० [१]—मथन द्वारा प्रकट होने वाले अभिवत् परस्पर विचार विवाद द्वारा दूरदर्शी प्रधान नायक का निर्णय । (२) ऐसे दूरदर्शी पुरुष को चुनने के प्रयोजनों का कर्तव्य । (३) नायक के गुण । (४) विद्वान् तेजस्वियों के कर्तव्य । (५) यन्त्ररथवत् सर्वांग्रणी । (६) वरवत् प्रधान नायक का वर्णन । (७) उसके कर्तव्य, वह प्रहृष्टभाषी को दण्ड दे । (८) सेना, दण्ड को तीक्ष्ण करे । (९) पिताओंवत् शासक जन एवं सेना पुरुष । (१०) उनके कर्तव्य । (११) प्रधान नायक का वरण । (१२) उसके कर्तव्य । (१३) उत्तम रक्षक अभि, नायक । (१४) उसकी यज्ञाभि से तुलना । (१५) उससे अभिहोत्रवत् व्यवहार । (१६—२७) प्रजा के आवश्यक निवेदन । राजा के कर्तव्य और अकर्तव्य । (पृ० ५५७—५६८)

(२७)

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२]—यज्ञाभिवत् शासक नायक का वर्णन । उसके कर्तव्य । । (२) उत्तम विद्वानों का सत्कार । (३) उत्तम कार्य के लिये सच्चे, कुशल, स्तुत्य पुरुष का वरण । (४) यज्ञवत् सदाचार शिक्षण । (५) विद्वानों के वीरों के तुल्य कर्तव्य । (६) दिन रात्रिवत् युवा युवति जन के कर्तव्य । (७) उनके कर्तव्य । (८) विदुषी देवियों के कर्तव्य । (९) प्रजा काम गृहस्थी को उपदेश । (१०) सूर्य वनस्पतिवत् राजा के कर्तव्य । पाचकवत् नायक के कर्तव्य । शमिता अग्नि का स्वरूप । (११) अग्निवत् सेना नायक का वर्णन । उसकी सुपुत्रवती माता से तुलना । (पृ० ५६८—५७४)

सू० [३]—सूर्य अग्नि विद्युतवत् तेजस्वी दूतवत् प्रमुख पुरुष के कर्तव्य । (२) प्रयाणशील राजा की अग्नि और सैन्य की प्रबल बात से तुलना । अश्व अग्नि राजा का समान वर्णन । अध्यात्म में—आत्मा अश्व । (३) अग्नि की लपटों के तुल्य राजा के अन्यवीरों का वर्णन । (४) जठराग्निवत् राजा का राष्ट्र शासन का कर्तव्य । (५) अग्निवत् अश्ववत् सेनानायक का वर्णन । विद्वानों को नायक के प्रति कर्तव्य । (६) तेजस्वी, विद्वान् और सेनापति का वर्णन । (७) अग्निवत् नायक की परिचर्या । (८) नायक की रक्षा का कार्य । (९) शशधारा के तुल्य राजा की शक्ति । (१०) प्रजा के विनय । (पृ० ५७४—५८०)

सू० [४]—अग्निवत् राजा शासक की परिचर्या और उसके कर्तव्य । (२) मता से उत्पन्न बालकवत् उसका स्वरूप । (३) सेना नायक के गुण । (४) अग्निवत् उसकी स्थापना । (५) उसके कर्तव्य देवकृत योनिप्राप्ति का रहस्य । (६) ज्ञानी को मोक्ष प्राप्ति । अनालसी होने का उपदेश । (७) पराये धन और पुत्र का निषेध । (८) उस से सुख प्राप्त नहीं होता । (९) राजा से उत्तम आशंसा । (पृ० ५८०—५८५)

सू० [५]—यज्ञाभिवत् शासक की परिचर्या । वैश्वानर प्रभु का वर्णन । (३) सुक्षिदाता प्रभु । (४) सर्वं व्यापक प्रभु । (५) उसकी दरण प्राप्ति । (६) उससे प्रार्थनाएँ । (पृ० ५८५—५९०)

सू० [६]—बलवान् पुरुष की सूर्य-विद्युत्वत् प्रशंसा । (२) उसके उत्तम कर्तव्य । (१) अयज्ञशीलों को तिरस्कार करने का उपदेश । (४) नायक के अन्य कर्तव्य । (६) ज्ञानप्रदं पितामातावत् वैश्वानर । (७) दानशील वैश्वानर । (पृ० ५९०—५९३)

सू० [७]—विद्वान् और राजा के कर्तव्य । (४) गार्हपत्य अभिवत् उसकी स्थापना । (५) वृत्तवर अभिवत् । (६) ज्ञानी के सत्य ज्ञान का सद् उपयोग । अतः उसका वरण । उत्तम वसु वसिष्ठ जन । (पृ० ५९३—५९७)

सू० [८]—उदयशील सूर्यवत् आहवनीय अभिवत् । उसके समान शासक स्वामी । उसकी होमवत् परिचर्या और संदीपन । (२) अभिवत् राजा का वर्णन । उसके कर्तव्य । (पृ० ५९७—६०१)

सू० [९] उदयशील सूर्यवत् नाना प्रद गुरु अभिवत् । उसके कर्तव्य । उसका पवित्र करने का कर्तव्य । (३) सूर्यवत् सभापति का कर्तव्य । (४) किरणों से सूर्यवत् वेदवाणियों से पावन प्रभु का ज्ञान । (५) विद्वान् का दूतवद् । (६) विद्वान् का विद्योपदेश कर्तव्य । (पृ० ६०१—६०५)

सू० [१०]—सूर्यवत् विद्वान् के कर्तव्य । वह सबको प्रबुद्ध करे । अभिवत् वरणीय वर का वर्णन । तद्रूप आचार्य का वरण । (४) विद्वान् का कर्तव्य । ईश्वर का ज्ञान प्रसार । पक्षान्तर में राजा का विद्या प्रचार का कर्तव्य । (५) चन्द्रवत् प्रधान राजा का सर्वं प्रिय होना । (पृ० ६०५—६०८)

सू० [११]—जीवों का सुखप्रद स्वामी राजा । शत्रुग्नशक दूतवत् शासक । उसके कर्तव्य । (पृ० ६०८—६१०)

सू० [१२]—विद्युत् अभिवत् का वर्णन । उसके तुल्य प्रभु स्वामी के कर्तव्य । (३) वही वरुण, मित्र है । (पृ० ६१२—६१३)

सू० [१३]—सर्वाहृतैषी वैश्वानर प्रभु की स्तुति । (२) उससे मुक्ति की याचना । (३) ज्ञान की याचना । (पृ० ६१२-६१३)

सू० [१४]—अग्निवत् ज्ञानी की अर्चना । (पृ० ६१४-६१५)

सू० [१५]—यज्ञवत् विद्वान् की परिचर्या । उससे उत्तम २ प्रार्थनाएँ । ज्ञानी पुरुषों से ज्ञान प्रकाश की याचना । (९) प्रभु की उपासना और प्रार्थना । (१४) राजा रानी को उपदेश । (१६) राजा से पापाचारी को दण्डित करने का निवेदन । (पृ० ६१५-६२०)

सू० [१६]—तेजस्वी बलवान् का आदर सत्कार का उपदेश । (२) सुब्रह्मा, वेदज्ञ का आदर । (३) उसका तेजस्वी सूर्य और अग्निवत् स्वरूप । (५) गृहपति अग्नि । (६) उससे नाना प्रार्थनाएँ । (११) द्रविणोदा ऐश्वर्यप्रद प्रभु, कर्मफलप्रद है । वही सर्वाश्रय वरण योग्य है । (पृ० ६२०-६२६)

सू० [१७]—यज्ञाग्निवत् विद्वान् शासक के कर्तव्य । (पृ० ६२५-६२८)

सू० [१८]—राजा और अग्निवत् विद्वान् का वर्णन, उसके कर्तव्य । (४) उत्तम राजा के कर्तव्य । राजा गोपति । (६) श्रम और अधिक द्रव्य की व्यवस्था का उत्तम फल । (७) उत्तम राजपुरुषों का आकार प्रकार । (८) दुर्बुद्धि और कुमारीं के लक्षण । (९) वशी राजा के सत्फल । (१०) गोपाल और गौओं के तुल्य प्रभु और जीवगण इसी प्रकार प्रजा राजा । (११) राज समिति के २१ सदस्य । (१३) शत्रु साधन । (१५) राजा के वीर जन । (१६) राजा का अपना कर्तव्य । (१७) 'इन्द्र' पदस्थ राजा के कर्तव्य । (१८) अधीनस्थों के कर्तव्य । (२०) प्रजाओं के कर्तव्य । (२२) उत्तम राजा के दो अधिकारी । (२३) ४ वेदज्ञों के कर्तव्य । (२४) तीक्ष्ण राजा के कर्तव्य । सुदास, दिवोदास, पैजवन आदि का रहस्य । (पृ० ६२८-६४१)

सू० [१९]—तीक्ष्णशंग वृषभ के। समान हन्द्रपदस्य उत्तम शासक का वर्णन। उसका दुष्टों के दमन करने का कार्य। (२) मुख्य पद के योग्य गुण। उसके प्रयोजन। शत्रु विनाश का उपदेश। राजा के अन्यान्य कर्तव्य। कुत्स, शृण, कुथव, वीतहव्य, सुदास, पौरुषिस, वृत्र, चुमुरि, धुनि, नमुचि, कौन हैं? (५) हन्द्र का ९९ पुरी भेदन और नमुचिवध का रहस्य। (पृ० ६४१-६५६) इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सू० [२०]—उत्तम रक्षक के कर्तव्य। उससे प्रजा की नाना प्रार्थनाएं। उसके महान् कर्तव्य। (५) सेना नायक के कर्तव्य। (७) बड़ों का छोटों को शिक्षा देने का उपदेश। उसी प्रकार राजा का पद। (८) करप्रद प्रजा की रक्षा का कर्तव्य। प्रजा के अधिकार। (पृ० ६४७-६५१)

सू० [२१]—भूमि से अन्न उत्पन्न करने का उपदेश करने का राजा का कर्तव्य। विद्वानों के कर्तव्य। सूर्य विद्युत् के तुल्य राजा का प्रजा को सन्मार्ग में चलाने के कर्तव्य। वह शत्रु और दुष्टों के कार्यों को गुप रूप से पता लगाकर दण्डित करे। दुष्ट का भी जन यज्ञादि में विघ्न न करें। राजा सबको पराजित करे। (७) सैन्यादि के कर्तव्य। (८) उत्तम रक्षक की पुकार। (९) रक्षक उत्तम सखा। प्रजा को अभय प्राप्त हो। (पृ० ६५१-६५६)

सू० [२२]—सूर्य मेववत् शासकों के कर्तव्य। राजा का सोमयान, राष्ट्रपालन। (२) वृत्रहनन शत्रुनाश। (३) अन्नोत्पत्ति, ब्रह्मज्ञान, धन प्राप्ति। (४) मेघ के जलपानवत् ज्ञानार्जन। (५) राजा की वाणियों की अवहेलना न कर उसकी काँति कहना। (६) स्तुत्य राजा। (७) राजा का अधिकार। (८) विद्वान् जन वेदार्थ का प्रकाश करें। (पृ० ६५६-६६०)

सू० [२३]—दसिष्ठ विद्वान्, और राजा का वर्णन। उनके कर्तव्य। (२) आज्ञापक सेनापति की आज्ञा का वर्णन। पापों के रक्षक राजा। (३) सेनापति के कर्तव्य। (४) आप विद्वान् प्रजाओं के कर्तव्य। (५) रक्षक का वर्णन। (६) उत्तम रक्षक का समादर। (पृ० ६६०—६६३)

सू० [२४]—रक्षक का मानपद। (२) उत्तम गृहपतिवत् राष्ट्रपति का वर्णन। (३) उसके कर्तव्य। पुत्रवत् प्रजापालन। (४) प्रजा की विपत्तियों को दूर करना। (५) अभिषेक का प्रयोजन। सूर्यवत् शासक पद। (६) उसका कर्तव्य प्रजा को समृद्ध करना। (पृ० ६६३—६६६)

सू० [२५]—देशरक्षार्थ सेनाओं का युद्ध, शब्दसञ्चालन और शब्द का उद्यम। (२) शत्रुओं का रोगवत् नाश करने का उपदेश। (३) हिंसक दुष्ट का नाश और विजेता को प्रशंसा प्राप्त हो। (४) राजा का प्रजा को आश्रय। राजा का समवाय बनाना। सब शास्त्रादि बल शासन की वृद्धि के लिये हों। (पृ० ६६६—६६९)

सू० [२६]—‘असुत सोम इन्द्र को हर्ष नहीं देता’, उसकी व्याख्या सोम और इन्द्र के परस्पर सम्बन्धों का रहस्य स्पष्टीकरण। सोम, प्रजाजन, पैशर्य, ओषधि रस आदि, इन्द्र राजा, भास्मा, गुरु आदि। अभिषिक्त शास्ता के कर्तव्य। (४) इन्द्र का सर्वोपरि पद। उसके न्यायशासन कर्तव्य। कृषिवृद्धयर्थ मेघवत् प्रजावृद्धयर्थ राजा की स्तुति। (पृ० ६६९—६७२)

सू० [२७]—राजा की आवश्यकता। प्रभु का स्मरण और प्रार्थना। (२) वह हमारे लिये धन और ज्ञान के द्वार खोले। (३) राजा के अधिकार। (४) राजा का धन, बल दोनों पर नियन्त्रण ही प्रजा को सुख दे सकता है। (५) प्रजा का सेवक राजा। (पृ० ६७२—६७४)

सू० [२८]—उत्तम विद्वान् और राजा के कर्तव्य । वे प्रजा की चात सुनें । (२) ज्ञान धन का रक्षक राजा । उसका घोर वज्र और वह स्वयं असहा हो । (३) शासकों का शासन करे, कर न देने वालों को दण्ड दे । वडे धन बल का स्वामी हो । (४) न्याय का उत्तम दाता हो । (५) वही उत्तम रक्षक 'इन्द्र' पद योग्य है । (पृ० ६७५—६७७)

सू० [२९]—उत्तम ऐश्वर्य का दाता राजा । (२) चतुर्वेदज्ञ शासक पद के योग्य है । वही सुख दे सकता है । (३) विद्या का अलंकार, विद्वान् से विनय । (४) गुरुस्वीकरण । (५) वही गुरु 'इन्द्र' पद योग्य है । (पृ० ६७७—६७९)

सू० [३०]—'इन्द्र' ऐश्वर्य का स्वामी और बलशाली है । (२) सेनापति होने योग्य पुरुष । उसको तहुचित आदेश । (पृ० ६७९—६८१)

सू० [३१]—वीर्यपालक वृद्धचारी, वज्रज्ञान पिपासु सुसुक्ष्म, ऐश्वर्यपालक राजा सब 'सोमपावन्' हैं उनका विवरण, उनका आदर, उनके अधिकार और कर्तव्य । (४) वसु, इन्द्र से विनय । (५) वह दुष्ट के निमित्त प्रजा को पीड़ित न करे । (७) प्रजा के कवचवत् राजा । (८) सूर्याधीन आकाश पृथिवीवत् स्त्री पुरुषों को सम्बद्ध रखने वाला राजा । 'स्वधावरी रोदसी' की व्याख्या । (९) राजा सदा स्तुत्य हो । (१०) सबका आदरणीय हो । (१०) राजा और विद्वान् के कर्तव्य । (११) विद्वानों का कर्तव्य । वे मर्यादा न तोड़ें । (१२) सेनाओं और वाणियों के कर्तव्य । (पृ० ६८१—६८६)

सू० [३२]—राजा के कर्तव्य । वह विषयविलास में रत न होकर प्रजा के सुखों में सुखी रहे । (२) विद्वानों का मधु मख्ती के समान मधुवत् । (३) रथवत् प्रभु में उनकी मनःकामना । (३) धनार्थी का पुत्रवत् पिता तुल्य प्रभु का स्मरण । (४) राष्ट्र धारणार्थ शासक को राजा नियुक्त करे । (५) वह राजा की प्रजा के कष्टों को सुने ।

(६) राजा के गम्भीर शासनों के पालक की वृद्धि । (७) राजा के विविध धन का भोग प्रजा को प्राप्त हो । (८) इन्द्रार्थ सोमसवन अर्थात् राष्ट्रपति पद पर वीर्यवान् पुरुष का अभियेक । उसका समारम्भ । (९) वीर्यवान् पुरुषों को उपदेश । वे परस्पर का नाश न करके महान् ईश्वर्य के लिये यत्नशील हों । (१०) प्रभुरक्षित का अपार बल । (१२) बड़ा अधिकारी वह जो अपने बल को प्रभु के निमित्त व्यय करे । (१३) उत्तम मन्त्र, रक्षा का उपदेश । प्रभुभक्त को ही धर्मबन्धन तराते हैं । (१४) प्रभुभक्त का अपार बल । (१५) प्रभु राजा का वैभव । (१६) युद्धों में भी सहायक प्रभु ही है । (१७) धन का स्वामी हांकर मनुष्य क्या करे ? विद्वानों का पालन । (१९) पूज्यों को धन दे । सर्वोपरि पाल ह प्रभु । (२०) राष्ट्रतारक राजा, संसारतारक प्रभु । (२१) दुष्ट को न धन और न शक्ति मिले । वे दोनों भक्त को मिलें ! (२२) ईश्वर के प्रति वात्सल्य प्रेम । (२३) अनुपम, अपूर्व सर्वांतिशायी प्रभु । (२५) शत्रुओं को दूर करने की प्रार्थना । (२७) पालक गुरु ज्ञानप्रकाश की याचना (२९) पापमोचन की प्रार्थना । (पृ० ६८६—६९६)

सू० [३३]—मार्गदर्शी विद्वानों से सादर प्रार्थना । (२) उनका सादर वरण, उनसे उत्तम २ प्रार्थनाएँ । उनके कर्तव्य । (३) उनका संप्रेरक दण्डवत् कर्तव्य । (७) प्रकाश मार्ग से जाने वाली प्रजाओं का श्रेय । उत्तम विद्वान् मार्गदर्शी हों । (८) वे ही सद्गृहस्य हों । (१०) जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य । विद्युत् की ज्योति के समान जीव का प्रकाशमय रूप । (११) मैत्रावरुण, वसिष्ठ और उर्वशी का रहस्य । उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ जीव, मित्र वरुण, प्राण अपान । (१२) माता आचार्य से उत्पन्न बालक और शिष्य की तुलना । (१३) लड़का लड़की दोनों का गुरुगृह-वास और ब्रत-स्नान । (१४) उत्तम आचार्य वसिष्ठ । उसका शिक्षण । (पृ० ६९७—७०५)

सू० [३४]—(१) विदुषी स्त्री । (२) आस खियों के कर्तव्य । (३) आस प्रजाजनों का कृषि आदि कार्य । (४) नायक का कर्तव्य । सन्मार्ग पर बढ़ने का उपदेश । (५) ध्वजावत् चीर का स्थापन । खियों को ज्ञान-वान् उत्तम पुत्रधारण का उपदेश । (६) पृथिवीवत् स्त्री के कर्तव्य । आचार्य का अहिंसाब्रती होकर शिष्यों का आह्वान । (७) सूर्यवत् शासक का कर्म । (८) जलवत् राजा का कर्तव्य । (९) विद्वान् जनों के रक्षण आदि कर्तव्य । (१०) नायक कैसा हो । (११) मित्र होने योग्य मेघ सूर्यवत् पुरुष । (१२) उनकी स्तुति । बुद्ध्य अहि, मेघ-वत् सर्वाधार पुरुष । (१३) क्षत्रतापन । (१४) तेजस्वी राजा के कर्तव्य । (१५) धनवानों के कर्तव्य । (१६) सूर्य भूमिवत् सैन्य, और सेनापति आदि के कर्तव्य । (१७) अध्यक्षों के कर्तव्य । (पृ० ७०६—७१३)

सू० [३५]—शान्तिसूक्त, समस्त भौतिक तत्वों से शान्ति प्राप्त करने की प्रार्थना । (पृ० ७१३—७२०)

चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ७२०—८९०)

सू० [३६]—गुरुगृह में ज्ञानोपार्जन । (१) मित्रवस्त्र, प्राण उदान, माता पितावत् सभा-सेनाध्यक्ष और प्रभु और जीव । (२) श्रेष्ठ पुरुष का कर्तव्य उत्तम उपदेष्टा और न्यायी शासक का वरण । उसको अधिकार । (३) सप्तमी वाणी का वर्णन । (४) विद्वानों का सत्संग (५) विद्वानों की प्रतिष्ठा । प्रभु की स्तुति । (पृ० ७२०—७२४)

सू० [३७]—तेजस्वी पुरुष क्या करें । (१) विद्वान् न्याय-कर्ता का कर्तव्य । (२) विद्वान् का अतिथ्य । (३) उससे नाना प्रश्न । (४) चतुराश्रमी का दीर्घजीवन । अस्व-वेश राजा और परिवाजक । (५) ऐश्वर्यादि की याचना । (पृ० ७२४—७२८)

सू० [३८]—उत्तम वसु, सेव्य, और स्तुत्य प्रभु । परमेश्वर से

नाना रक्षा की प्रार्थनाएं । (७-८) विद्वानों, रक्षकों से प्रार्थनाएं । (पृ० ७२८-७३१)

सू० [३९]—उत्तम मार्गगामी तेजस्वी की अग्नि से तुलना । उसके कर्तव्य । (२) छी पुरुषों के कर्तव्य । (४) सभास्थ सदस्यों को आदर । (५) उनके कर्तव्य । (पृ० ७३२-७३५)

सू० [४०]—विद्वान् सम्पन्न वीर शासकों के कर्तव्य । तेजस्वी राजा के कर्तव्य । (पृ० ७३५-७३७)

सू० [४१]—प्रातः प्रभु की प्रार्थना, स्तुति । भगवान् से नाना प्रार्थनाएं । (६) दधिकावा प्रभु और विद्वान् का वर्णन । (पृ० ७३८-७४४)

सू० [४२]—उत्तम उपदेशा जनों के कर्तव्य । उत्तम विद्वानों के कर्तव्य । (३) दान के सत्पात्र । (४) अतिथियज्ञ । (पृ० ७४१-७४४)

सू० [४३]—वृक्ष की शाखावत् वेदज्ञ विद्वानों के ज्ञान प्रसार के कार्य । (२) अग्निहोत्र की ज्वालाओं के समान सहयोग का उपदेश । (३) माता को प्राप्त पुत्रोंवत् शासकों की उच्चत पद प्राप्ति । (४) उनकी सत्यवाक् प्रतिज्ञाएं । (५) उनका वेतनवद् धनक्रीत सा होना । (पृ० ७४४-७४६)

सू० [४४]—विद्वानों के कर्तव्य । उनके गुण वर्णन । (४) दधिकावा का स्वरूप । रथी सारथी । सन्मार्ग नेता उसका अश्ववत् वर्णन । (पृ० ७४६-७४९)

सू० [४५]—सविता, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष । पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । उससे भोग्य और रक्षा की प्रार्थना । (पृ० ७४९-७५१)

सू० [४६]—सेनापति का वर्णन । उसके कर्तव्य । उसका बलवत् पराक्रम और प्रजा के प्रति दयाभाव । (पृ० ७५१-७५३)

सू० [४७] आपः । आप विद्वान् जनों के कर्तव्य । (३) इन्द्र-पान की व्याख्या । सूर्य और जल तथा वृष्टिविज्ञान, उससे उत्पन्न अन्नवत् राजा का ऐश्वर्य उत्पादन । (पृ० ७५३-७५६)

सू० [४८]—ज्ञानी शिल्पी पुरुषों के कर्तव्य । यान, रथ, युद्ध-शब्द यन्त्र आदि निर्माण । (पृ० ७५६-७५७)

सू० [४९]—मेघ, वृष्टिविद्या । आप: द्वारा सैनापत्य अभिषेक । (२) नाना जलधारावत् प्रजाओं के नाना विभाग । (२) द्विव्य खनित्रिम और पावक तीन प्रकार की प्रजाएँ । (३) सत्यानृत विवेकी वर्णन का आश्रय प्रजाएँ । अभिषेक कारिणी प्रजाओं के कर्तव्य । (पृ० ७५७-७६०)

सू० [५०]—मित्रावरुण, माता पितावत् विद्वान् रक्षक जन । विष-चिकित्सा । नाना विषों को गुप्त प्रकृति और उनका प्रतिकार । (पृ० ७६०-७६३)

सू० [५१]—अदिति ईश्वर के उपासकों के ज्ञान का सत्संग उनके कर्तव्य । (पृ० ७६४-७६५)

सू० [५२]—व्रह्मचर्यनिष्ठ विद्वानों के कर्तव्य । उनका ज्ञान प्रसार और रक्षा का कार्य । (पृ० ७६८-७६६)

सू० [५३] भूमि सूर्यवत् विद्वान् माता पिताओं का कर्तव्य । (पृ० ७६६-७६८)

सू० [५४]—वास्तोपति, राष्ट्रपति, गृहपति, परमेश्वर । उसके कर्तव्य । उसका तारकवत् वर्णन, उससे प्रार्थना । (पृ० ७६८-७६९)

सू० [५५]—गृहपति, राष्ट्रपति, देहपति, वास्तोपति । सारमेय विद्वान् पहरेदार का वर्णन । (३) नगररक्षक सैन्य जन (पोलिस) के कर्तव्य । (४) सैन्य का शत्रु के प्रति कर्तव्य । (५) उनके शासन में राष्ट्र प्रजा को सुख । (६) उत्तम गृहवत् देहनिर्माण । सबके सुख पूर्वक रहने सोने का प्रबन्ध । (पृ० ७६९-७७२)

सू० [५६] रुद्र सेनापति के वीरजन । आचार्य के जितेन्द्रिय शिष्यों का वर्णन । उनके कर्तव्य । (२) जीवों के जन्म मरणादि का विज्ञान ।

(६) योग्य भूमियों स्थियों को सदुपदेश । सेनानायक के उत्तम गुण और योग्यता । (९) वीरों विद्वानों के वायुओं के तुल्य कर्तव्य । (पृ० ७७३-७८३)

सू० [५७-५८]—विद्वानों और वीरों के मेघ लाने वाले वायुगण के तुल्य कर्तव्य, (२) अध्यक्षों के कर्तव्य, उनको उत्तम २ उपदेश । (पृ० ७८३-७८४)

सू० [५९]—विद्वानों वीरों के कर्तव्य । (६) मधुवत् करसंग्रह, भिक्षासंग्रह का उपदेश । न्यायोपाजित धन ग्रहण का उपदेश । (७) रसांवत् वीरों तथा परिव्राजकों का वर्णन । (८) दुष्टों का दमन । (९) सान्तपन अभिं, विद्वान् ब्राह्मण का वर्णन । (१०) गृहस्थ सज्जनों का वर्णन । (१२) युक्ति की प्रार्थना । व्यञ्जक् का रहस्य । (पृ० ७८५-७९४)

सू० [६०]—सूर्य, न्याय शास्ता के प्रति प्रार्थना । उसके महत्व-पूर्ण कर्तव्य, सर्व श्रेष्ठ वरुण, मित्रादि का वर्णन । उनके अधीन रथ शासकों के लक्षण । स्थियों का आदर । उनके अनादरकारी को दण्ड । शासकों की समिति और सत्संग का वर्णन । मित्र वरुण, माता पितावत् सभा सेनाध्यक्षों से प्रार्थना । (पृ० ७९४-८००)

इति पञ्चमेऽष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥



शुद्धाशुद्ध-पत्रम्



पृष्ठ	पंक्ति:	अशुद्ध	शुद्धम्
७	८	प्रस	प्रास
३१	९	निरन्त	निरन्तर
९७	२	अभियम	अभिजल
१०३	१५	वृषभासः	वृषभासः
१६५	१५	अद्यवत्	अज्ञवत्
१८०	१८	वृक्ष के प्राप्त	वृक्ष के समान प्राप्त
२०६	१२	नश	नाश
२२४	१३	पुरुष की भी	पुरुष भी
२३२	८	सुक्षित	सुक्षिति
२३५	१६	चितयन्ता	चितयन्त्या
३०१	२३	निसंगत को	निःसंग होकर
३२२	२१	कवचधारी	कवचधारी
३७२	६	तत्वदर्शी	तत्वदर्शी
४८३	१४	हे (इयम्)	(इयम्)
४८३	१८	करता	करती
५३२	३	चल	बल
५३२	२४	दाता	दाता
५३६	१०	(इत्	(उत्
५९४	४	चावक	चावुक
६२४	२५	‘बज्र’	‘बज्र’
६८४	७	मरुस्वती	मरुत्वती



* ओ३म् *

ऋग्वेद-संहिता

अथ तृतीयोऽष्टके तृतीयोऽध्यायः ।

(पञ्चमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके)

[४७]

प्रतिरथ आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ७ त्रिष्टुप् ॥
भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

प्रयुक्तज्ञती दिव पति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिमनीषा पितृभ्य आ सदन्ते जोहुवाना ॥१॥

भा०—माता के कर्तव्य ! (मही माता) पूज्य माता (प्रन्युज्ञती)
उत्तम प्रयोग अर्थात् सन्तानों को उत्तम मार्ग में प्रेरित करती हुई (दिवः)
कामना योग्य पति के लिये (दुहितुः) दूर में विवाह करने योग्य कन्या
को (ब्रुवाणा) उपदेश करती हुई (दिवः) सूर्य से उत्पन्न उषा के समान
और (बोधयन्ती) उसे अज्ञान निद्रा से जगाती, ज्ञानवान् बनाती हुई
(पति) प्राप्त होती है । और वह (युवतिः) यौवन दशा को प्राप्त होकर
(आ-विवासन्ती) अपने नाना गुणों का ग्रकाश करती हुई (मनीषा)
स्वयं अपनी बुद्धि से, (पितृभ्यः) अपने चाचा, मामा, श्वशुर आदि पालक-

पुरुषों के (सदने) गृह में भी (आ जोहुवाना) आदरपूर्वक डुलाइ जाकर (एति) प्राप्त हो । वहां भी वह अपना सदा मान बनाये रखें ।
अजिरासुस्तदप् ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सौं परि द्यावा पृथिवी यन्ति पन्थाः॥२॥

भा०—(अजिरासः) कभी न नाश होने वाले, वा वेगवान् (तद् अपः ईयमानाः) उस प्रभु परमेश्वर के उपदिष्ट कर्मों का आचरण करते हुए और (अमृतस्य) अमृतमय मोक्षस्वरूप प्रभु के (नाभिम्) वांधने वाले प्रेम वा प्रभु पर (आतस्थिवांसः) स्थित (अनन्तासः) अनन्त, (उरवः) और वडे २ (पन्थाः) मार्ग (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी के तुल्य द्वी पुरुषों के सम्बन्ध में (विश्वतः परियन्ति) सब तरफ जारहे हैं । हे पुत्रि ! वा पुत्र ! तू उनको जान । अथवा—(तदपः ईयमानाः) उस गृहस्थाश्रम कर्म को प्राप्त होने वाले (अमृतस्य नाभिम् आतस्थिवासम्) प्रजा सन्तति के बांधने वाले आश्रय पर स्थित हों ।

उक्ता समुद्रो अरुषः सुपुर्णः पूर्वस्य योनि पितुराविवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरशमा वि चक्रमे रजस्प्रात्यन्तौ॥३॥

भा०—हे पुत्रि ! मनुष्य का कर्तव्य है कि वह (उक्ता) वीर्य सेचन एवं गृहस्थ धारण करने में समर्थ हो । वह (समुद्रः) समुद्र के समान गंभीर, समान भाव से द्वी के सहयोग में रह कर स्वयं और उस को प्रमोद, रति आदि करने में समर्थ और (अरुषः) स्वयं तेजस्वी और द्वी पर अनुग्रह द्वाद्विं वा रोष न करने हारा हो । वह (सुपुर्णः) उत्तम पालन करने वाला होकर अपने (पूर्वस्य पितुः) पूर्वक पिता के (योनिम्) गृह को (आविवेश) प्रविष्ट होता है अर्थात् पुरुष अपने पिता के गृह का स्वामी हुआ करता है । (दिवः मध्ये निहितः पृश्निः) जिस प्रकार आकाश के बीच में स्थित सूर्य (अशमा) व्यापक होकर (वि चक्रमे)

विविध कार्य करता और (रजसः अन्तौ पाति) समस्त संसार के अन्तों, छोरों का भी पालन करता है इसी प्रकार पुरुष भी (दिवः मध्ये) पृथिवी के बीच (दिवः मध्ये) ध्ववहार में और (दिवः मध्ये) कामना योग्य अपनी छी के हृदय में (निहितः) स्थिर होकर (पृश्निः) मेघवत् रस वर्षण, वीर्य निषेक करने में समर्थ और (अश्मा) शिला के समान दृढ़ एवं भोक्ता होकर, वा मेघवत् दानशील होकर (वि चक्रमे) विविध प्रकार से आगे कळम बढ़ावे और (रजसः अन्तौ) रजोभाव की दोनों सीमाओं की (पाति) रक्षा करे । अर्थात् यौवन के आदि और अन्त वा गर्भ काल के आदि अन्त दोनों सीमाओं के बीच काल में अपने और अपने पती के जीवन, बल-वीर्य की रक्षा करे । अथवा (रजसः अन्तौ) लोकों के दोनों अन्त अर्थात् दोनों मूल कारण रज और वीर्य वा परिमाम रूप पुत्र और पुत्री दोनों की समान भाव से रक्षा करे ।
 चृत्वारं ईं विभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।

त्रिधातृवः परमा अस्यु गावो दिवश्चरन्ति परि सुद्यो अन्तान्॥४॥

भा०—जीवकी उत्पत्ति का रहस्य । जिस प्रकार (चत्वारः) पृथिवी, जल, वायु और अग्नि चारों तत्व (क्षेमयन्तः) सबका कुशल क्षेम करते हुए (ईं गर्भ) इस अन्तरिक्षगत मेघ को (विभ्रति) पुष्ट करते और (दश) दशों दिशाएं (चरसे) उसको विचरण के लिये (धापयन्ते धारण करती हैं और (अस्य) इस सूर्य के (परमा) उल्कष्ट (त्रिधा-तवः) तीनों लोकों का धारण पोषण करने वाले (गावः) किरण (सदः) शीघ्र ही (दिवः अन्तान् परि चरन्ति) पृथ्वी वा आकाश के दूर २ की सीमाओं तक फैलते हैं उसी प्रकार (ईम् गर्भम्) इस गर्भ गत जीवको (क्षेमयन्तः) उसकी क्षेम, रक्षा, कुशल चाहते हुए, चारों वर्ण वा चारों आश्रम (विभ्रति) पुष्ट करते हैं । और (चरसे) कर्म फल भोग के लिये (दश धापयन्ते) दशों प्राण उसको पुष्ट करते हैं (अस्य)

इस जीवात्मा की (परथा) सर्वोक्लष्ट (गावः) किरणवत् इन्द्रियें (त्रि-धातवः) उस आत्मा को गर्भ, जीवन और भरणोत्तर, तीनों कालों में धारण करती हैं । वे (सद्यः) सब दिनों (दिवः अन्तान्) प्रकाशमय मोक्ष या कामना योग्य भोगक्षेत्र की समस्त सीमाओं तक (परिचरन्ति) उस आत्मा की सेवा करती हैं, उसके साथ रहती और सुख दुःख का ज्ञान कराती हैं ।

इदं वपुर्निवचनं जनासुश्वरन्ति यन्नव्यस्तस्थुरापः ।

द्वे यदौ विभूतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्याऽसवन्धू ॥ ५ ॥

भा०—शरीर की उत्पत्ति का रहस्य । हे (जनासः) मनुष्यो ! (इदं) यह (वपुः) वीजद्वारा वपन करने योग्य शरीर (निवचनम्) निश्चय से प्रवचन और श्रवण करने योग्य है । (यत्) जिसमें (आपः) जलमय रुधिर की नाड़ियाँ (नद्यः) इस पृथ्वी पर चलती नदियों के तुल्य (चरन्ति) गति कर रही हैं । (यत्) जो (दे) दो (ईम्) इस शरीर को (मातुः) माता के गर्भाशय में (विभूतः) धारण करते हैं वे दोनों (अन्ये) भिन्न भिन्न प्रकृतियाँ हैं और वे दोनों (इह इह जाते) इस ओर, इस पुरुष वा स्त्री-शरीरों में उत्पन्न होते और वे दोनों (यम्या) एक दूसरे को बांधने वाले वा (यम्या) रात्रि दिनवत् और (स-बन्धू) एक दूसरे के साथ बंधने वाले होते हैं । मातृ-गर्भ में वीर्य कीट और डिम्बकोश दोनों मिलकर शरीर बनाते हैं ।

वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।

उपग्रहे वृष्णो मोदमाना दिवस्पथा वृध्वो यन्त्यच्छु ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मातरः) माताएं (पुत्राय) अपने पुत्र को पहनाने के लिये (वस्त्रा वयन्ति) वस्त्रों को एक २ तन्तु करके बुनती हैं । उसी प्रकार वे (अस्मै) इस पुत्र या सन्तान के लिये (धियः)

संकल्प विकल्प तथा (अपांसि) नाना प्रकार के उत्तम कर्म (वि तन्वते) किया करे । माताओं के उत्तम कर्म और संकल्प ही सन्तान की रक्षा, पालन पोषण करते और उनको जीवन काल में सद्गुणों से सुशोभित करते हैं । (वधः) उत्तम वधुएं (अस्मै) इस पुत्र के लाभ के लिये ही (वृषणः उप प्रक्षे) बलवान्, वीर्य सेचन में समर्थ पुरुषों के समीप आलिंगन करने के लिये (दिवः पथा) पुत्र कामना के आनन्दप्रद और हर्षदेश के मार्ग से (मोदमानाः) अति प्रसन्नता अनुभव करती हुई (अच्छ यन्ति) उन्हें प्राप्त होती हैं । अथवा (दिवः वृषणः उपप्रक्षे पथा यन्ति) वीर्यवान् पुरुष के आलिंगन करने के लिये विवाहित स्त्रियों तेजस्वी पति के ही पीछे उसके मार्ग से जाती हैं । पुत्राभिलाषा सर्वत्र विद्यमान है, तब है माताओं ! उसको उत्तम बनाने के लिये तुम सदा उत्तम कर्म और उत्तम संकल्प किया करो ।

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योऽस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे वृहते सादनाय ॥७॥ १ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) एक दूसरे को स्नेह करने वालो ! हे एक दूसरे को वरण करनेवाले परस्पर के मित्र वर वधू ! माता पिता जनो ! हे (अग्ने) विद्वन् ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (इदम्) यह ऐसा उपदेश (शस्तम्) आप बराबर किया करो और (तत्) वह (शं योः अस्तु) शान्तिकारक और दुःखनाशक हो । (उत्) और हम लोग (गाधम् अशीमहि) मनचाहा ऐश्वर्य पदार्थ भोग करें (उत्) और (प्रतिष्ठाम् अशीमति) प्रतिष्ठा, वंश की स्थिरता और कीर्ति प्राप्त करें । (दिवे) ज्ञान और तेज़ प्राप्त करने के लिये (वृहते) बड़े भारी (सादने) उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये हम (नमः अशीमहि) विनय, बल, तेज़ प्राप्त करें । इति प्रथमो वर्गः ॥

[४८]

प्रतिभानुरोत्रय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—?, ३ स्वराद् त्रिष्टुप् ।

२, ४, ५ निचूजगती ॥ पचञ्चं सहम् ॥

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वृयम् ।

आमेन्यस्य रजसो यदुभ्व आँ अपो वृणाना वित्तनोति मायिनी १

भा०—(वयं) हम लोग (क० उ) कब (प्रियाय) प्रिय, (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने के लिये, (महे) बड़े (स्वक्षत्राय) अपने डल और (स्वयशसे) अपने यश से युक्त राज्य वा राजा की वृद्धि के लिये (मनामहे) स्वीकार करें, (यत् अभ्रे आ वृणाना मायिनी अपः आ वित्तनोति) जिस प्रकार विद्युत् शक्तिशालिनी होकर मेघ में व्यापक होकर जलों को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार (मायिनी) वृद्धि से युक्त वा शत्रुनाशक शक्ति से युक्त राजसभा वा सम्पन्न सेना, (आमेन्यस्य) चारों ओर से माप लेने योग्य (रजसः) लोक समूह, या राष्ट्र के बीच में (अभ्रे) मेघ तुल्य उदार नायक के अधीन (आ वृणाना) सर्वत्र शासकों का वरण करती हुई (अपः) राज्य कार्य को (वि त्तनोति) विविध रूप से करे । अर्थात् बड़े राजा सन्नाद् का अभ्युदय तभी चाहे जब कोई राजसभा समस्त राष्ट्र में अधीन शासकों का चुनाव करके राज्य कार्य करने को उद्यत हो ।

ता अत्तनत वृयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।

अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तरते देवव्युर्जनः ॥ २ ॥

भा०—(देवयुः जनः) विद्वान्, व्यवहारज्ञ, और तेजस्वी विजयशील पुरुषों को कामना करने वाला, वा ऐसे पुरुषों का स्वार्मा जिन (पूर्वाभिः) समृद्ध एवं पूर्व विद्यमान प्रजाओं से (प्रतिरते) स्वयं बढ़ता है और (अपाचीः) दूर विद्यमान (अपराः) अन्य शत्रुसेनाओं को

(अपो, अप एजते) दूर से दूर ही भगा देता है और जिनसे वह (वीर-वक्षणम्) वीर पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य या वीरों के धारण करने के (वयुनं) कर्म वा विज्ञान को (समान्या वृत्या) समान रूप से मान करने योग्य, एवं वरण की गयी सहचरी जीवनसंगिनी स्त्री के तुल्य प्रजा के द्वारा चुनी गयी, समान रूप से सब के आदर से युक्त राजसभा द्वारा (विश्वं रजः) समस्त लोक समूह को (आतिरते) अपने अधीन कर उसकी वृद्धि करता है (ताः) उन शक्तिशालिनी प्रजाओं सेनाओं या समृद्धियों को (अल्पत) प्रस्त करो ।

आ ग्रावभिरहृन्येभिरकुभिर्विरिष्टं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।

शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तु वि च वर्तयन्त्रहा ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य की किरणें सैकड़ों, सहस्रों (अहा संवर्तयन्तः प्रचरन् वि वर्तयन्) होकर भी दिन को प्रकट करते और विविध रूपों को दर्शाते हैं उसी प्रकार (यस्य) जिस राष्ट्रपति के (स्वे दमे) अपने गृह तुल्य शत्रुदमनकारी शासन में (शतं वा प्रचरन्) सैकड़ों पुरुष अच्छी प्रकार गमनागमन करते हैं, और (अहा) उत्तम, स्थिर कार्यों को (संवर्तयन्तः) अच्छी प्रकार करते हुए (वि वर्तयन् च) विविध प्रकार से आजीविकादि व्यवहार करते हैं वह राजा नायक (मायिनि) कुटिल माया-वी पुरुष के निमित्त (अहन्येभिः अकुमिः) दिन और रात, दोनों कालों में पृथक् २ रूप से नियुक्त (ग्रावभिः) द्वद शक्तियों से अपने (वरिष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, शत्रु के वारण करने में समर्थ (वज्रम्) शब्दाचल को (आ जिघर्ति) प्रदीप्त रखते ।

तामस्य रुतिं परशोरिवं प्रत्यनीकमख्यं भुजे श्रस्य वर्णसः ।

सच्चा यदि पितुमन्तमिव ज्ययुं रत्नं दधाति भरहृतये विशे ॥४॥

भा०—(अस्य वर्णसः) इस, नाना रूप के प्राणियों से युक्त, सुन्दर

राष्ट्र के (भुजे) भोग करने और पालन करने के लिये मैं (अस्य) इस राजा के (अनीकं) सैन्य बल को, (परशोः रीतिम् इव प्रति अल्प्यम्) परशु अर्थात् कुलहाड़े के धार के समान ही रखता हूँ । (यदि) क्योंकि वह (विशे) प्रजा के पालन करने के लिये उस सैन्य को (सचा) सदा अपने साथ (पितुमन्तं रत्नं क्षयम् इव) अज्ञ से समृद्ध सुन्दर गृह अज्ञादि समृद्धि सम्पन्न रत्न सम्पदा के समान (दधाति) धारण करता है, और (भर-हूतये) संग्राम में शत्रु को ललकारने के लिये उस सैन्य को (पितुमन्तं) पालक जनों से युक्त (क्षयं) शत्रु का नाश करने वाले सैन्य को (रत्नं इव) रत्नादि आभूषण वत् (सचा) सदा अपने साथ समवाय बनाकर (दधाति) रखता और उसको पालता है । कुलहाड़ी को भी मनुष्य अपने शत्रु के नाश, अपनी रक्षा और अज्ञ फलादि को प्राप्त करने का साधन बनाता है उसी प्रकार राजा की सेना है ।

स जिह्व्या चतुरनीकं ऋजुते चारु वसानो वरुणो यत्त्वरिम् ।
न तस्य विद्व पुरुषत्वता वृयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ५॥२॥

भा०—(सः वरुणः) वह प्रजा के दुःखों, को वारण करने में समर्थ और प्रजा द्वारा सर्वश्रेष्ठ वरण किया हुआ राजा (चारु वसानः) सुन्दर वस्त्र धारण करता हुआ, (अरिं यतन्) शत्रु को वश करता हुआ (जिह्व्या) अपनी वाणी या आज्ञा के बल से ही (चतुरनीकः सन्) चतुर्मुख, पुंच चारों प्रकार के सैन्यों से युक्त होकर (ऋजुते) कार्य साधन कर, राज्य संचालन करे । हम (तस्य) उसके (पुरुषत्वता न विद्व) पुरुषार्थ को नहीं जान सकते, (यतः) जिससे वह (भगः) सबसे अधिक सेवनीय, ऐश्वर्यवान् और (सविता) सबका प्रेरक और उत्पादक पिता के तुल्य होकर (वार्यम् दाति) समस्त ऐश्वर्य का दान करता और निवारण करने योग्य शत्रु का नाश भी करता है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[४६]

प्रतिप्रभ आत्रेय नृषिः ॥ विश्वदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४ भुरिक्
त्रिष्टुप् । ३ निनृत् त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥

देवं वो अद्य सवितारमेष्ये भग्नं च रत्नं विभजन्तमायोः ।

आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्चिना सखीयन् ॥१॥

भा०—(अद्य) आज हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के
चीच (देवं) दानशील, तेजस्वी, (सवितारं) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक, पिता-
चन् पूज्य (भग्नं) ऐश्वर्य युक्त और (आयोः) मनुष्यमात्र को (रत्नं
विभजन्तं) उत्तम बल, ऐश्वर्य न्यायानुसार बांटते हुए को (आ ईषे)
आदर पूर्वक प्राप्त होकर्तं और मैं (सखीयन्) मित्र के समान आचरण करता
हुआ (दिवे दिवे) दिनों दिन (अश्चिना चित्) दिन वा रात्रि या सूर्य
चन्द्र के तुल्य (पुरु-भुजा) बहुतों के पालन करने वाले (नरा) उत्तम
नेता स्वरूप (वाम्) आप दोनों राजा रानी, पति पत्नी वा राजा सचिव
दोनों को (आ ववृत्याम्) उत्तम व्यवहार में नियुक्त करूं ।

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्तसूक्ष्मदेवं सवितारं दुवस्य ।

उप ब्रुवीत् नमसा विजानव्येष्टुं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (असुरस्य) सबको जीवन देने वाले
मेघ के (प्रयाणं प्रति) आगमन को प्रत्यक्ष रूप से (विद्वान्) जानता
हुआ (सूक्ष्मः) उत्तम वचनों से (सवितारं) जिस प्रकार उसके
उत्पादक (देवं) तेजस्वी सूर्य की महिमा का वर्णन करता है उसी प्रकार
(असुरस्य) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले सैन्य बल के (प्रयाणं प्रति विद्वान्)
प्रयाण को प्रत्यक्ष रूप से जान कर तू उसके (सवितारं) प्रेरक (देवं)
बजिगीषु राजा वा सेनापति का (सूक्ष्मः) उत्तम आदर युक्त वचनों
से (दुवस्य) सत्कार कर । (आयोः ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तम् नमसा विजा-

नन् उपव्रुवीत) जिस प्रकार मनुष्य मात्र को सर्वोत्तम सुख या तेज प्रदान करने वाले सूर्य से अन्न आदि पाकर मनुष्य सूर्य के गुण वर्णन करता है उसी प्रकार (आयोः ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तम्) मनुष्य के न्यायानुकूल उत्तमोत्तम रत्न, धनादि का विभाग करते हुए राजा को भी मनुष्य (विजानन्) विशेष जान कर उसके प्रति (नमसा उप व्रुवीत) आदरपूर्वक आवेदनादि करे ।

श्रद्धया दृथते वायर्याणि पुषा भग्नो आदितिर्वस्तु उत्थः ।

इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दृस्माः॥३॥

भा०—(पूजा) सबका पोषक (भग्नः) ऐश्वर्यवान् ! (अदितिः) अखण्ड शासनकर्ता पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी होकर, (अदत्रया वायर्याणि) खाने योग्य अज्ञों को और धनों को (दृथते) दान करे, और रक्षा भी करे । वह (उत्थः) किरणों के तुल्य सहायकों को (वस्ते) अपने अधीन सुरक्षित रखें । (इन्द्रः) ऐश्वर्य पुरुष, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्य वाला, (वरुणः) उदानवत् उत्तम वरण योग्य और (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, (दृस्माः) ये सब दुःखों का नाश करने हारे होकर (भद्रा अहानि) सुखकारी दिनों को (जनयन्त) उत्पन्न करें ।

तत्त्वो अनुर्वा सविता वरुथुं तत्सिन्धव इषयन्तो अनुगमन् ।

उप यद्वाचे अध्वरस्य होता रायः स्यामु पत्नयो वाजरत्नाः॥४॥

भा०—(सविता) सूर्य (अनुर्वा) अहिंसक रूप होकर (नः वरुथुं) हमारे गृह को प्राप्त हो, इसी प्रकार अहिंसक, तेजस्वी पुरुष हमारे राष्ट्र को प्राप्त हो, (सिन्धवः) नदियें, बहती जल-धाराएं (इषयन्तः) वेग से बहती हुईं (तत् अनुगमन्) उसके पीछे आवें । उसी प्रकार तेजस्वी सेनापति के पीछे २ वाणादि साधते हुए (सिन्धवः) सैन्य प्रवाह चलें । (यत्) जैसा कि (अध्वरस्य) अहिंसनीय, राष्ट्र या राज्य-कार्य का (होता)

धारक राजा (उपवोचे) आज्ञा करे उसी प्रकार हम प्रजा गण (वाज-रत्नाः) अन्न और उत्तम रत्नों के स्वामी, और (रायः पतयः) धन के मालिक (स्याम) हों ।

प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्यो मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।

अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (सूक्तवाचः) उत्तम वाणी बोलने वाले, लोग (मित्रे वरुणे) स्त्रेही, श्रेष्ठ पुरुष के अधीन (वसुभ्यः) बसने वाले पुरुषों को (ईवत् नमः अदुः) ज्ञान और रक्षा सहित अन्न, वीर्य, और विनय की शिक्षा प्रदान करते हैं वे आप विद्वान् पुरुष ही (दिवः पृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी के (वरीयः) उत्तम २ (अभ्वं) बड़े भारी धन, और तेज को (कृणुत) उत्पन्न करें और वह (अवैतु) हमें प्राप्त हो । और (अवसा) रक्षा, और ज्ञान से हम (मदेम) सदा अनन्दित हों । इति तृतीयो वर्णः ॥

[५०]

स्वस्त्योत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ स्वराहुष्णिक् । २ निचृ-
दुष्णिक् । ३ भुरिगुष्णिक् । ४, ५ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चमं सूक्तम् ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मतौ तुरीत सूख्यम् ।

विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! वीर पुरुषो ! (विश्वः मर्त्तः) सब मनुष्य (नेतुः देवस्य) नायक, तेजस्वी विद्वान्, और विजिगीषु, दानशील, व्यवहारज्ञ राजा की (सूख्यम्) मित्रता (तुरीत) चाहो । (विश्वः) सभी (राये) धन की (इषुध्यति) इच्छा करें, या धन की प्राप्ति के लिये वाण आदि धारण करें, (पुष्यसे) पुष्ट होने के लिये सभी लोग (द्युम्नं) धन को (वृणीत) प्राप्त करो । अथवा हे प्रजा जनो ! आप लोग (द्युम्नं वृणीत) ऐश्वर्य-

आस करो और उसका विभाग करो । हे राजन् (तेन त्वं पुष्यसे) उस धन से तू भी पुष्ट हो ।

ते ते देव नेतृर्ये चेमाँ अनुशसे ।

ते राया ते ह्याऽपृचे सचेमहि सचुथ्यैः ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) विजिगीषो ! विद्वन् ! राजन् ! हे (नेतः) नायक ! (ते ते) वे तेरे ही अधीन हों (ये च) जो भी (इमान्) इन समस्त तेजों को (अनुशसे) तेरे अनुगामी होकर शासन करने के लिये नियुक्त हों । (हि) क्योंकि और (ते) वे लोग (राया) धन द्वारा तेरे साथ सम्बद्ध हों अर्थात् वेतनादि से बधें । और (ते हि) वे (आपृचे) परस्पर के सम्बन्धों से बंधे रहने के लिये भी समवाय बनावें । उसी प्रकार हम प्रजा वर्ग भी (सचुथ्यैः) उन समवायों के उत्तम नेताओं से मिल कर (सचेमहि) इड़ समवाय बना कर रहें ।

अतो न आ नृनतिथीनतः पत्नीदशस्यत ।

आरे विश्वं पथेष्टां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अतः) इस कारण से वा इस राष्ट्र में हे राजन् ! (नः) हमारे (नृन्) नेता पुरुषों को, हमारे (अतिथीन्) मान्य परिवाजक, अतिथियों को, और (नः पत्नीः) हमारी स्त्रियों और सेनाओं को, (दशस्यत) उत्तम रीति से आदर सत्कार करो, और (आरे) अपने समीप स्थित (पथेष्टां) सम्मार्ग में स्थित (विश्वं) सबका आदर सत्कार करो । और (यूयुविः) सब शत्रुओं को दूर करने हारा और सत्यासत्य का विवेकी पुरुष (द्विषः) शत्रुओं को (युयोतु) दूर करे ।

यत्र वहिंरभिहितो दुद्रवदोरयः पशुः ।

नृमणा वीरपुस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र में, (द्रोण्यः पशुः) शीघ्रगामी जन्तुओं में

सर्वश्रेष्ठ पशु के समान वेग से आगे बढ़ने वाला, एवं (द्रोण्यः) राष्ट्र में उत्तमः (पशुः) स्वयं व्यवहारों का द्रष्टा और अन्यों को उत्तम मार्ग दिखाने वाला (वह्निः) कार्य भार को उठाने में समर्थ नेता (अभि-हितः) अभिषिक्त होकर (दुद्रवत्) मार्ग पर चलता और राष्ट्र का संचालन करता है वहाँ वह स्वयं (नृमणाः) सब मनुष्यों के मन के अनुकूल और (वीर-पस्त्यः) वीर पुरुषों को अपने गृह वा प्रजाओं के तुल्य वा पुत्रों के तुल्य प्रजाओं का पालक हो, वह (धीरा इव) बुद्धिमती माता के समान (अर्णा सनिता) धनों और अन्यों का देने और वेतनादि रूप में न्यायपूर्वक विभाग करने वाला हो ।

एष तै देव नेता रथस्पतिः शं रुयिः ।

शं रुये शं स्वस्तयै इषुःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥४॥

भा०—हे (देव) दानशील पुरुष ! तेजस्विन् ! राजन् ! (ते) तेरा (एषः) यह (रथस्पतिः) रथों का स्वामी, सेना का स्वामी, महारथी नेता (शं) शान्ति कराने वाला और तेरा (रुयिः) ऐश्वर्य का स्वामी भी (शं) शान्ति सुख देने वाला हो और शान्तिपूर्वक (राये) और ऐश्वर्य की दृद्धि के लिये हो, (स्वस्तये) वह सब राष्ट्र के सुख समृद्धि और कल्याण के लिये हों । हम लोग (इषुःस्तुतः) सेनाओं, आज्ञाओं और उत्तम इच्छाओं द्वारा प्रशंसित और (देवस्तुतः) विद्वानों में स्तुति योग्य तेरे से (मनामहे) यही प्रार्थना करते हैं ऐसा ही चाहते हैं । अथवा हे राजन् (हे इषुस्तुतः देवस्तुतः मनामहे) तेरे सेनाओं के शिक्षकों और सैनिकों के शिक्षकों का भी हम आदर करते हैं । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[५१]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः ॥ विश्वदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ गायत्री । २, ३, ४ निचूदगायत्री । ५, ६, ८, १० निचूदुष्णिक् । ६ उष्णिक् । ७ विराङ्गुष्णिक् । ११ निचूत्रिष्टुप् । १२ विष्टुप् । १३ पंक्तिः । १४, १५ अनुष्टुप् ।

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरुमेभिरा गंहि ।
देवेभिर्हृव्यदातये ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक अग्निवत् तेजस्विन् ! राजन् ! तू (विश्वेभिः) समस्त (ऊमैः) रक्षा-साधनों और रक्षकों सहित (सुतस्य पीतये) उच्चम ओषधि के रसके समान राष्ट्र से प्राप्त ऐश्वर्य, एवं ज्ञासित राज्यपद के उपयोग के लिये और उत्पन्न किये निज पुत्रवत् प्रजावर्ग के पालन करने के लिये और (हृव्य-दातये) देने योग्य अग्न, धन, अधिकार आदि देने के लिये (देवेभिः) उच्चम विद्वानों, व्यवहार-कुशल पुरुषों सहित (आ गंहि) हमें प्राप्त हो ।

ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् ।
अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २ ॥

भा०—हे (सत्यधर्माणः) सत्य न्याय को अपना धर्म जानकर उसको धारण करने और पालन करने वाले धर्मात्मा जनो ! आप लोग (ऋत-धीतये) ऐश्वर्य के धारण, सत्य ज्ञान और न्याय के पालन के लिये (अध्वरम्) हिंसा और विनाश से रहित, प्रजा पालन के कार्य में (आ गत) आओ और योग दो । और (अग्नेः जिह्वया) अग्रणी, तेजस्वी नायक की वाणी से (पिबत) राष्ट्र का उपयोग वा पालन करो ।

विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातुर्याचभिरा गंहि ।
देवेभिः सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (विप्र) विविध विद्याओं और ऐश्वर्यों से स्वयं पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने हारे ! हे (सन्त्य) विवेक, प्रीतिपूर्वक विभाग, दान और चर्तुमान व्यवहार में कुशल ! तू (सोम-पीतये) ऐश्वर्य को पालन और उपभोग के लिये (प्रातः-न्यावसिः विप्रेभिः) प्रातः सबसे

पूर्व उद्देश्य पर पहुँचने वाले, धनादि पूरक, उत्तम मतिमान् पुरुषों सहित
(आ याहि) हमें प्राप्त हो ।

श्रीयं सोमांश्चमूसुतोऽमत्रे परिं षिद्यते ।

प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त वृद्धि और (वायवे) वायु के
चुल्य शत्रु को उखाड़ने में समर्थ पद के लिये (प्रियः) प्रिय, उत्सुक,
(अयं सोमः) यह अभिषेक योग्य पुरुष (चमू-सुतः) सेनाओं पर
अभिपिक्त और सेनाओं का पुत्रवत् पालक है । उसका (अमत्रे) दुःख-
दायी कष्ट से त्राण करने वाले रक्षक पद पर (परि षिद्यते) अभिषेक
किया जाना उचित है ।

वायवा याहि वीतये जुषाणे हृव्यदातये ।

पिवा सुतस्यान्धसो श्राभि प्रयः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवान् ! ज्ञान और बलकी कामना करने
हारे विद्वन् ! बलवन् ! तू (वीतये) प्रजा की रक्षा, अपनी कान्ति और
तृप्ति के लिये और (हृव्य-दातये) दान योग्य उत्तम पदार्थ देने के लिये
भी (आ याहि) आ, (प्रयः अभि पिव) उत्तम जल, और अज्ञ, दुर्घादि
पुष्टिकारक पदार्थ पान कर और (सुतस्य अन्धसः) उत्तम रीति से बनाये
अज्ञ का उपभोग कर । इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।

ताऽजुषेथामरेपसांवभि प्रयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वायो) बलवन् ! विद्वन् ! आप और (इन्द्रः) ऐश्वर्य-
वान् पुरुष ! आप दोनों (सुतानां) उत्तम रीति से बने पदार्थों और अधीन
अभिषिक्त पदाधिकारियों वा सामन्तों का (पीतिम्) पान, उपभोग और
पालन (र्हथः) करने योग्य हैं । आप दोनों (अरेपसौ) निष्पाप होकर

(प्रयः अभि) उत्तम अज्ञ प्राप्त कर (तान् ज्येष्ठां) उन उत्तम ऐश्वर्य युक्त पदार्थों का भी सेवन करो ।

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।

निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥

भा०—(सुताः) उत्पन्न हुए पुत्रवत् पालित और अभिषेक द्वारा सखृत, (दध्याशिरः) पद को धारण करने के विशेष सामर्थ्य, बल पराक्रम से युक्त, (सोमासः) सौम्य शासक जन (इन्द्राय वायवे) ऐश्वर्य वान्, बलवान् नायक के (प्रयः अभि) अति प्रिय कार्य को लक्ष्य करके (निम्नं सिन्धवः न) बहते जल जैसे नीचे को जाते हैं वैसे ही वेग से (यन्ति) जावें, (२) सोम और शिष्य पुत्र गण, इन्द्र, पिता और वायु गुरु दोनों के प्रिय कार्य के निमित्त दौड़ कर जावें और करें (३) दधि आदि खाद्य पदार्थों से युक्त सुसंस्कृत अज्ञ आदि पदार्थ ऐश्वर्यवान् और विद्वान् पुरुषों के प्रिय तृप्ति वेग से करें ।

सूजूर्विश्वेभिर्देवोभिरुश्वभ्यामुषसा॑ सूजूः ।

आ याह्यमे अत्रिवत्सुते रण ॥ ८ ॥

सूजूर्मित्रावरुणाभ्यां सूजूः सोमैन् विष्णुना॑ ।

आ याह्यमे अत्रिवत्सुते रण ॥ ९ ॥

सूजूरादित्यैर्वसुभिः सूजूरिन्द्रेण वायुना॑ ।

आ याह्यमे अत्रिवत्सुते रण ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अन्ने) विद्युतवत् व्यापक और तीव्र सामर्थ्य वाले इन्द्र और प्रकाश के समान ज्ञानत्तेज का प्रकाश करने वाले विद्वन् ! राजन् ! तू (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् पुरुषों से (सूजूः) समानभाव से प्रीति युक्त होकर और (अश्विभ्याम्) अश्वों वा अपने इन्द्रिय गणों

के स्वामी, जितेन्द्रय स्त्री पुरुषों से (सज्जः) समान प्रीतियुक्त होकर, (आयाहि) आ, और (अत्रिवत्) त्रिविध दोषों और त्रिविध पापों वा तापों से रहित पुरुष के समान होकर (सुते) पुनर्तुल्य प्रजागण वा शिल्पगण के निमित्त (रण) ज्ञान का उपदेश कर । [२] (मित्रां वरुणाभ्यां सज्जः) स्त्रेहवान मित्र और उत्तम पुरुषों के साथ (सोमेन) ऐश्वर्य युक्त (विष्णुना) व्यापक सामर्थ्यवान् नायक से मिलकर हे विद्वन् तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्रिवत् सुते रण) यहां ही विद्यमान प्रत्यक्ष गुरु के तुल्य हमें उपदेश कर । [३] (आदित्यै वसुनिः सज्जः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों और २५ वर्ष तक गुरु के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले विद्वानों के साथ और (इन्द्रेण वायुना) ऐश्वर्यवान्, पुरुषों के साथ प्रीति युक्त होकर (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्र वत् सुते रण) उत्तम ऐश्वर्य भोक्ता के तुल्य प्रभुवत् हम को ऐश्वर्य के निमित्त उपदेश कर ।

स्वस्ति नो मिमीतास्त्विना भगः स्वस्ति द्रव्यदितिरनुर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना ११

भा०—(अश्विना) अध्यापक, उपदेशक, स्त्री और पुरुष, दिन और रात, सूर्य और चन्द्र और प्राण और अपान वे दो दो, (नः स्वस्ति मिमीतास्) हमें सुख दें, हमारा कल्याण करें । (भगः स्वस्ति) ऐश्वर्य, और उसका स्वामी, और सेवन करने योग्य वायु हमें सुख दे । (देवी अदितिः) सूर्य, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष और अखण्ड शासक राजा (अनर्वणः) अप्रतिम होकर (स्वस्ति) हमारा कल्याण करें । (पूषा असुरः) पुष्टिकारक प्राण, जीवन देने वाला अन्न और मेघ (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे । (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी, पिता और माता दोनों (सुचेतुना) उत्तम प्रकाश चेतना और ज्ञान से हमारा (स्वस्ति) कल्याण करें ।

स्वस्तये वायुमुपं ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वंगणं स्वस्तये स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२॥

भा०—हम लोग (स्वस्तये) सुख प्राप्त करने और सौभाग्य, कल्याण की वृद्धि के लिये (वायुम्) वायु के समान बलवान् और पुरुष ज्ञान के अभिलाषुक, (सोमं) अभिषेक योग्य राजा, शिष्य और ज्ञानवान् पुरुष के (उप ब्रवामहै) समीप जाकर अपना प्रार्थनावचन, प्रवचन और स्तुति-वचन कहें । (यः भुवनस्य पतिः) जो समस्त विश्व का पालक है वह भी हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे । हम सर्वग्रेक और सर्वोत्पादक सर्वेश्वर्यवान् उसकी स्तुति करते हैं । (सर्वंगं) सब गणों के स्वामी बृहस्पति (स्वस्तये) बड़े भारी राष्ट्र और वेदवाणी के पालक विद्वान् की हम कल्याण के लिये स्तुति करें । (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी तथा १२ मास भी (नः) हमारे (स्वस्तये भवन्तु) कल्याण के लिये हों ।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरुग्मिः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः प्रात्वंहसः ॥ १३ ॥

भा०—(विश्वेदेवाः) समस्त तेजस्वी पदार्थ, सूर्य के किरण, विद्वान् गण और हमारे इन्द्रिय गण (अद्य) वर्तमान में (नः स्वस्तये भवन्तु) हमारे कल्याण के लिये हमें प्राप्त हों । (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हित-कारी, सब का नेता, (वसुः) सब में बसने वाला वा सबको बसाने वाला (अग्निः) अग्नि, ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष और परमात्मा (नः स्वस्तये) हमारे सुख-कल्याण के लिये हो । (क्रभवः) सत्य तेज से प्रकाशमान, एवं शिल्पी जन (देवाः) व्यवहारकुशल, नाना कामनाओं से युक्त पुरुष (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हों । (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, ज्ञान का उपदेश करने वाला (स्वस्ति) सुखपूर्वक (नः अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे ।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।

स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४ ॥

भा०—हे (पथ्ये रेवति) जीवन-मार्ग में सुखकारिणी ! हे धनैश्वर्य-चति ! तू (मित्रावरुणौ) प्राण अपान के तुल्य (स्वस्ति) सुख कल्याण (कृधि) कर । (इन्द्रः च अग्निः च) विद्युत् और अग्निवत् ऐश्वर्ययान् ज्ञान-वान् पुरुष दोनों (स्वस्ति) कल्याण करें । हे (अदिते) अखण्डित चरित्र आदि से युक्त तू (नः स्वस्ति कृधि) हमारा कल्याण कर ।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसौविव ।

पुनुर्दद्वताद्विता जानुता संगमेमहि ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (पन्थाम्) उत्तम मार्ग पर (स्वस्ति) सुखपूर्वक (अनु-चरेम) एक दूसरे के पीछे चलें । और (सूर्याचन्द्रमसौविव) हम स्त्री पुरुष सूर्य और चन्द्र के समान अन्यों को सुख देने के लिये उत्तम आचरण का अनुष्ठान करें । (पुनः) बार २ हम लोग (दद्वता) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले और (अद्वता) व्यर्थ ताड़न, हिंसा और कठोर दण्ड न देने वाले (जानता) ज्ञानवान् पुरुष से (संगमेमहि) मिला करें, उसका सत्संग किया करें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[५२]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५, १५ विराङ्-
कुष्ट्यूप् । २, ७, १० निचृदनुष्टुप् । ६ पांक्तिः । ३, ६, ११ विराङुष्टिकः ।
८, १२, १३ अनुष्टुप् । १४ वृहती । १६ निचृदवृहती । १७ वृहती ॥

सप्तदशर्च सुक्तम् ॥

प्र श्यावाश्व धृष्णुयाचीं सुरुद्गिर्वृक्तभिः ।

ये अद्वोघमनुष्वधं अत्रो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥

भा०—हे (श्यावाश्व) श्यामकर्ण, शिखा से सज्जित अर्थों के स्वामिन् ! (यं) जो (अद्वोघम्) द्वोह से रहित, (अनु-स्वधम्) अपनी २

धारण शक्ति या अन्न, वेतनादि के अनुसार रहकर (यज्ञियाः) यज्ञ, पुरु-
स्पर मिलकरं रहने और कर वेतनादि के दान के योग्य होकर (अवः)
अन्न, ज्ञान और स्थाति लाभ कर। (मदन्ति) प्रसन्न होते और सन्तोष
लाभ करते हैं। उन (ऋक्भिः मरुद्धिः) सत्कार करने वाले और सत्कार
करने योग्य वायुवत् बलवान् और व्यवहारकुशल पुरुषों से (धृष्णुया)
दृढ़ता पूर्वक (प्र अर्च) खूब तेजस्वी बन।

ते हि स्थिरस्य शर्वसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।

ते यामन्ना धृष्णुद्विनस्त्वना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥

भा०—(ते हि) और वे (धृष्णुया) दृढ़, शत्रुओं का धर्षण करने
वाले वीर पुरुष (स्थिरस्य) स्थायी (शर्वसः) बल के (सखायः) मित्र
होकर (सन्ति) रहते हैं। (ते) वे (यामन्) प्रयाण काल में ही
(धृष्णुद्विनः) शत्रु का धर्षण करने वाले, बल उत्साह से युक्त होकर (श-
श्वतः) बहुत से प्रजा गण को (तना) अपने विस्तृत बल और धन से
(आ पान्ति) सब प्रकार से रक्षा करते हैं।

ते स्वन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।

मरुतामधा महोऽदिवि कुमा च मन्महे ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे वीर पुरुष (स्वन्द्रासः) कुछ जानैः २ आगे बढ़ने
हारे (उक्षणः) सेचन समर्थ मेंदों और सूर्य की किरणों के समान
(शर्वरीः) रात्रिवत् अपने पक्ष का नाश करने वाली शत्रु सेनाओं को
(अति ष्कन्दन्ति) अति क्रमण कर जाते हैं, वा (उक्षणः न शर्वरीः अति-
ष्कन्दन्ति) जिस प्रकार सांड गौओं को प्राप्त कर उनमें वीर्य आहित
करता है, उसी प्रकार जानैः २ गतिशील वायुगण रात्रि-काल में जल प्रच्छुत
करते या अन्तरिक्ष को जलयुक्त करते हैं। (अध) और हम (मरुताम्)
उन वीर पुरुषों की (दिवि) व्यवहार, तेज और विजयेच्छा में (महः
क्षमा च) बड़े सामर्थ्य और सहनशीलता को (मन्महे) स्वीकार करें।

मुरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मत्यै रिषः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे प्रजागण ! (ये) जो (विश्वे) समस्त जन (रिषः) हिंसा से (मानुषा युगा पान्ति) मनुष्यों के जोड़ों अर्थात् समस्त खी पुरुषों की रक्षा करते हैं (व:) उन आप लोगों के बीच (मरुत्सु) वायुवत् तीव्रगामी, शत्रुओं को भारने वाले एवं विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर ही (व:) आप लोगों के (धृष्णुया) शत्रु को पराजय करने वाला, और इदं (स्तोमं) बल, वीर्य, ज्ञान और (बलं च) परस्पर संगति और मैत्रीभाव को (दधीमहि) धारण करें ।

अर्हन्तो ये सुदानं वो नरो असामिश्रवसः ।

प्र यज्ञं यज्ञिये भ्यो दिवो अर्चा मुरुद्धयः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) नायक पुरुष (अर्हन्तः) योग्य पदों के योग्य, (सुन्दानवः) उत्तम दानशील और शत्रुओं को सुखपूर्वक खण्डित करने वाले, (असामि-शवसः) बहुत पूर्ण बलशाली हैं उन (यज्ञिये-भ्यः) यज्ञ, परस्पर दान, सत्संग के योग्य (मरुद्धयः) उत्तम विद्वानों और वीर पुरुषों के (दिवः) परस्पर के ज्ञान-प्रकाश, तथा व्यवहार के (यज्ञं) देन लेन प्रार्थना, और सत्संग को (प्र अर्च) अच्छी प्रकार चला, प्राप्त कर । इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ रुक्मैरायुधा नरं ऋष्वा ऋषीरसृक्षत ।

अन्वेनां अहं विद्युतो मुरुतो जज्ञतीरिव भानुर्ते तमना दिवः ६

भा०—(एनान् मरुतः अनु जज्ञतीरिव विद्युतः) जिस प्रकार तीव्र वेग वाले वायु गण के पीछे २ शब्द करने वाली, और गर्जना वाली जल-धाराएं और विजुलियाँ उत्पन्न होती हैं (एनान् मरुतः अनु) इन वेग-वान् सैनिकों के पीछे २ (विद्युतः) विशेष दीसियुक्त और (जज्ञतीः)

गर्जना करने वाली तोपें और शक्तिमान् विद्युदध्वं चलें । (ऋष्याः नरः) बड़े २ नायक गण (रुद्रमैः) कान्तियुक्त अस्त्रों और (युधा) युद्ध या शत्रु पर प्रहार करने वाले बल से युक्त, (ऋषीः) अपनी २ सेनाओं को (आ-असुक्षत) आगे २ ले चलें । इस प्रकार विजिगीषु राजा (भानुः) सूर्य-वत् तेजस्वी होकर (दिवः) किरणों के तुल्य कामना योग्य विजयों को (तमना अर्त) अपने सामर्थ्य से ही प्राप्त करे ।

ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्षं आ ।

बृजने वा नदीनां सृधस्थे वा मुहो विवः ॥ ७ ॥

भा०—(ये) जो (पार्थिवा) पृथिवी के हितकारी वायुगण के तुल्य बलवान् (पार्थिवाः) राजा गण पृथिवी पर प्रसिद्ध होकर (ये उरौ-अन्तरिक्षे) और जो विशाल अन्तरिक्षवत् राष्ट्र के भीतर (आ वृधन्त) सब प्रकार से वृद्धि प्राप्त करते हैं वे ही (नदीनां बृजने) समृद्ध प्रजाओं के कार्य व्यवहार में और (महः विवः सधस्थे) बड़े तेजस्वी सूर्य के पर-मोच्च पद के तुल्य सर्वोच्च पद पर भी (वृधन्त) वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।

शधो मारुत्मुच्छुस सृत्यशैवसमृभवसम् ।

उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजतु त्मना ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (सत्य-शवसम्) सत्य ज्ञान और बल से युक्त (ऋभवसम्) सत्य से या बड़े तेज से प्रकाशित और सामर्थ्यवान् पुरुषों को प्राप्त (मारुतं शर्धः) वायु के तुल्य उत्तम वीर पुरुषों के बल को (उत् शंस) उत्तम रीति से बतला, उसके लाभ और गुणों का वर्णन कर । (ते) वे (नरः) नायक पुरुष (शुभे) राष्ट्र की शोभा के लिये (स्पन्द्राः) शनैः २ आगे बढ़ने हारे होकर (तमना) अपने सामर्थ्य से (प्र युजत स्म) उत्तम २ कार्य एवं प्रयोग करते हैं । अध्यात्म में—विद्वान् लोग कल्याण के लिये शनैः २ आगे २ बढ़ते हुए अपने आप से (प्र यु-जत) उत्तम समाधि योग करें ।

उत स्म ते परुष्यामूर्णी वसत शुन्ध्यवः ।

उत पव्या रथानामदिं भिन्दुन्त्योजसा ॥ ९ ॥

भा०—(उत स्म) और (ते) वे वीर पुरुष (परुष्याम्) पालक साधनों से युक्त, तेजस्विनी, अति गहन राष्ट्र रक्षा या राजनीति में (ऊर्णः) अच्छी प्रकार कवचों से अच्छादित होकर या युद्ध की विषम गति में (शुन्ध्युवः) शुद्ध आचारवान् होकर (वसत) रहें । (उत) और (रथानां पव्या) रथों की चक्रधारा के तुल्य महारथियों की वज्र शक्ति से वे (ओजसा) बल पराक्रम द्वारा (अदिं भिन्दन्ति) मेघ को सूर्य या विद्युत् के तुल्य पर्वतवत् अचल शत्रु को भी भेद दें ।

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।

एतेभिर्मह्यं नामभिर्युद्धं विष्टार ओहते ॥ १० ॥ ९ ॥

भा०—(विस्तारः) विविध प्रकार से विस्तृत देश तथा उसमें रहने वाले प्रजा वर्ग (मह्यं) मुखे (एतेभिः नामभिः) इन २ नामों या रूपों से (यज्ञम् ओहते) यज्ञ, अर्थात् सुप्रबन्ध को धारण करें । वे (आपथयः) सब ओर जाने वाले मार्गों से युक्त, (विपथयः) विशेष मार्ग वाले (अन्तःपथाः) भीतर, भूगर्भ के बीच २ में से जाने योग्य मार्ग वाले और (अनुपथाः) बड़े २ मार्गों में आ मिलने वाले गौण मार्गों के भी स्वामी हों । इति नवमो वर्गः ॥

अधा नरोन्योहुतेऽधा नियुतं ओहते ।

अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दशर्या ॥ ११ ॥

भा०—(अधा) और (नियुतः नरः) नाना पदों पर नियुक्त वा लक्षणों की संख्या में नायक गण (नि ओहते) नियत पद को धारण करते हैं । वे (अधा) भी (पारावताः) दूर २ देशों तक जाकर भी (चित्रा) अनुत् (दशर्या) दर्शनीय, (रूपाणि) रूपों वा पदार्थों को (ओहते) धारण करते हैं । और स्वयं भी देश से देशान्तरों में व्यापारी होकर नाना पदार्थ लेजाते हैं ।

छन्दस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।

ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२॥

भा०—(ये) जो सेरे राष्ट्र में जिस प्रकार (कुभन्यवः) जल के इच्छुक जन (उत्सम् आ नृतुः) कूप को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (छन्दस्तुभः) वेद मन्त्रों का उपदेश करने वाले (कीरिणः) स्तुतिकर्ता जन भी (उत्सम् आ) उत्तम पद के भोक्ता राजा वा प्रभु को प्रसन्नता पूर्वक प्राप्त करें । (ते) वे (चित्) कोई भी हों तो भी वे (तायवः न) चोरों के समान न होकर (दृशि त्विषे च) यथार्थ दर्शन करने और तेज की बृद्धि के लिये वे (ऊमाः) उत्तम रक्षक हों । इसी प्रकार वीर पुरुष भी (छन्दः-स्तुभः) युद्ध को नाना गति से शत्रु दल को मारने वाले, (कीरिणः) उखाड़ने वाले, (कुभन्यवः) धनार्थी हों वे कूपवत् गंभीर नाम को प्राप्त कर प्रसन्न हों ।

ये ऋष्वा ऋषिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।

तमृषे मारुतं गुणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥

भा०—(ये) जो (ऋष्वाः) महान् उदार हृदय, (ऋषि-विद्युतः) शब्दों से विशेष रूप से चमकने वाले, शब्दों में विद्युत् का प्रयोग करने वाले या विद्युत् के विशेष ज्ञानी (कवयः) क्रान्तदर्शी, (वेधसः) नाना पदार्थों को शिल्पद्वारा निर्माण करने में कुशल, विद्वान् और उद्धिमान् होते हैं हे (ऋषे) वेदार्थ को जानने के उत्सुक शिष्य एवं साक्षात् ज्ञाता पुरुष ! (तं मारुतं गणं) उन, वायुस्वभाव, बलशाली, अप्रमादी, और ज्ञानी जनों को (गिरा) उत्तम वेद वाणी, और न्याययुक्त वचन से (नमस्य) आदर कर और (रमय) आनन्दित कर ।

अच्छु ऋषे मारुतं गुणं द्रुना मित्रं न योषणा ।

दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥

भा०—(योषणा मित्रं न) जिस प्रकार वीर अपने स्वेह करने वाले प्रिय पति के अभिमुख होती है उसी प्रकार हे (ऋषे) विद्वन् ! तू (दाना) आदर सत्कार पूर्वक अन्न वस्त्र आदि नाना दान देने योग्य पदार्थों सहित (मारुतं गणं) उत्तम विद्वान् वा वीर जनों के समूह को भी (अच्छ) आदर से प्राप्त कर । हे (धृष्णवः) बल ब्रुद्धि से प्रतिस्पर्धी का धर्षण करने हारे (वा) और (दिवः) विजय के उत्सुक एवं धनादि की कामना करने वाले वीर विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (धीभिः) उत्तम स्तुतियों, ज्ञानों और कर्मों द्वारा (स्तुताः) प्रशंसित, उपदिष्ट वा शिक्षित होकर (ओजसा) बल पराक्रम द्वारा (दाना इषण्यत) दान दिये गये धनों को प्राप्त किया करो । अध्यात्म में—हे विद्वन् ! तू (मारुतं गणं) प्राण गण को मित्रवत् अन्नादि दोनों से पुष्ट कर । हे प्राणगण ! बलवान् होकर तुम ब्रुद्धि, कर्म से प्रयुक्त होकर ग्राह्य विषय प्रहण करो ।

नू मन्वना एषां देवाँ अच्छा न बृक्षणा ।
दाना सचेत सुरिभिर्यामश्रुतेभिरुजिभिः ॥ १५ ॥

भा०—(वक्षणान) नदी जिस प्रकार (दाना सचेत) जलों को प्राप्त करती है और (वक्षणा न दाना) विवाह करने योग्य वंधु जिस प्रकार नाना धनों को वा (देवान्) कार्य पुरुषों, वरों को अभिमुख प्राप्त करती है उसी प्रकार (एषां) इन वीर और राष्ट्र में बसे प्रजाजनों के बीच (मन्वानः) मननशील पुरुष ही (देवान्) श्रेष्ठ, वीर, व्यवहारप्रिय पुरुषों को (अच्छा) अभिमुख होकर प्राप्त करे । (याम-श्रुतेभिः) प्रति प्रहर श्रवण करने वाले, वा यम नियमों के पालन करते हुए वेदादि का गुरुमुख से श्रवण कर चुकने वाले, (अजिभिः) अपने गुणों का प्रकाश करने वाले, तेजस्वी (सुरिभिः) विद्वानों सहित (दाना सचेत) नाना दान योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करे और विद्वानों को प्रदान भी करे ।

प्र ये मे वन्ध्वेषे गां वोचन्त सुरयः पृथिं वोचन्त मातरम् ।

अधा पितरस्मिष्मणै रुद्रं वोचन्त शिक्षः ॥ १६ ॥

भा०—(ये सूर्यः) जो विद्वान् पुरुष (मे) सुज्ञे (वन्ध्वेषे) बन्धुवत् चाहते हुए (गां वोचन्त) वाणी का उपदेश करते हैं वे (पृथिम्) पालन करने वाले विद्वान् आचार्य और भूमि को भी (मातरम् वोचन्त) माता बतलाते हैं (अध) और वे (शिक्षः) शक्तिशाली पुरुष (इष्मिणम्) बलवान् और ज्ञानवान् (इन्द्रम्) शत्रुओं को रुलाने वाले राजा और ज्ञानोपदेश करने वाले गुरु को ही (पितरं वोचन्त) 'पिता' नाम से कहते हैं । (२) (सूर्यः) सूर्य की किरण वा शक्तियें जीवों के परम बन्धु 'इष्' वृष्टि और अन्न को उत्पन्न करने के लिये (गां) भूमि और (पृथिं) सूर्य को (मातरं वोचन्त) सब की माता बतलाते हैं (अध) और (इष्मिणं) अन्न सम्पदा से सम्पन्न (रुद्रं) पशु पालक कृषक जन और वृष्टियुक्त मेघ को (शिक्षः) शक्तिशाली पुरुष एवं प्रबल वायु भी (पितरं) सब प्रजाओं का पालक पिता (वोचन्त) बतलाते हैं । सुप्त मे सुप्त शाकिन् एकमेका शता ददुः ।

यमुनायामधि श्रुतमुद्रायो गव्यं मृजे निराधो अश्वर्यं मृजे १७।१०

भा०—(मे) मेरे (सप्त सप्त) सात सात (शाकिनः) शक्तिशाली नायक गण (एकम-एका) एक एक से मिलकर (शता) सैकड़ों ऐश्वर्यं (मे ददुः) मुज्ज्ञे प्रदान करें । (यमुनायाम् अधि) नियन्त्रण करने वाली सेना वा राष्ट्र नीति पर अधिकार करके मैं (श्रुतम्) प्रसिद्धं कीर्तिजनक (गव्यं राधः) श्रवण करने योग्य, वाणी द्वारा प्राप्त करने योग्य, वाङ्मय ज्ञान सम्पदा के तुल्य, (गव्यं राधः) भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्यं को (उत्त मृजे) उत्तम रीति से शुद्धतापूर्वक प्राप्त करूँ और (अश्वं राधः नि मृजे) अश्व अर्थात् राष्ट्रसम्बन्धी सैन्य बल को अच्छी प्रकार स्वच्छं शत्रुहीन, निष्कण्ठक करूँ । इति दशमो वर्गः ॥

[५३]

श्यावाश्व आव्रेय त्रिष्ठः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ मुरिग्गायत्री । ८, १२
गायत्री । २ निचृद्बृहती । ६ स्वराङ्गबृहती । १४ वृहती । ३ अनुष्टुप् । ४,
५ उष्णिक् । १०, १५ विराङ्गुष्णिक् । ११ निचृद्बृष्णिक् । ६, १६ पंक्तिः ।
७, १३ निचृत्पंक्तिः ॥ षोडशाचं सूक्तम् ॥

को वैद जानमेषुं को वा पुरा सुम्भेष्वास मृहताम् ।
यद्युयुजे किलास्यः ॥ १ ॥

भा०—(कः) कौन (एषां मरुताम्) इन वायुओं, प्राणों और
मनुष्यों के (जानम्) उत्पत्ति के रहस्य को (वेद) जानता है (वा)
और (कः) कौन इनके (सुम्भेषु) समस्त सुखों के बीच भोक्ता रूप से
(आस) स्थिर रूप से विद्यमान रहता है ? [उत्तर] (पुरा यत्) जो
इन सबसे पूर्व, इन सबके बीच (किलास्यः) निश्चित रूप से प्रमुख
होकर वा स्थिर वाणी वाला होकर इन को (युयुजे) कार्य में नियुक्त
करता, वश कर समाहित करता, वा जो उनको (किलास्यः) अर्थों के
समान देह में प्राणों को, राष्ट्र में अधीन भूत्यों को युद्ध में सैनिकों को वा
यन्त्रों में वायुओं को प्रयोग करता है वही इनके (जानं वेद) उत्पत्ति के
रहस्य को भी जानता है ।

ऐताब्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कुथा यथुः ।

कस्मै सस्तुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सुह ॥ २ ॥

भा०—(रथेषु तस्थुषः) रथों पर विराजमान (ऐतान्) इन वीर
विजिगीषु, वायुवत् शत्रुओं की उखाड़ने में समर्थ पुरुषों को (कः शुश्राव)
कौन अपनी आज्ञा सुनाता है ? और वे (कुथा) किस प्रकार (यथुः)
प्रयाण करें ? (कस्मै अनु सस्तुः) वे किसके अभ्युदय के लिये आगे बढ़े ?
[उत्तर] वे (आपयः) वन्यु के तुल्य प्राप्त होकर (सुदासे) उत्तम

दानशील वृत्तिदाता स्वामी के लिये वा उत्तम भूत्यों के स्वामी के अधीन रहकर (इडाभिः सह) अब्बों सहित (वृष्टयः इव) जल वृष्टियों के तुल्य रथों पर विराजें, युद्ध में आगे बढ़ें और स्वामी के लिये शस्त्रपूर्ण, शबूच्छेदन करते हुए आगे बढ़ें। वृष्टिः वश्वतेश्छेदनकर्मणः ॥

ते मे आहुर्य आयुयुरुपु द्युभिर्विभिर्मदे ।

नरो मर्यां अरेपस्त इमान्पश्यन्निति षट्हिः ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) उत्तम नाथक, (मर्याः) मरणधर्मा, (अरेपसः) निष्पाप, निलेप, निष्काम, होकर (द्युभिः) तेजों और (विभिः) कान्तिमय, ज्ञानयुक्त रथों या अश्वों से (उप आययुः) हमारे समीप आवें (ते) वे (मे) मुझे (आहुः) उपदेश करें। (इमान् पश्यन्) उन उत्तम पुरुषों को देखकर हे मनुष्य ! तू (हति) इसी प्रकार से (स्तुहि) स्तुति वचन और प्रार्थना किया कर ।

ये अज्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः घृन्तु रुक्मेषु खादिषु ।

श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो पुरुष (अज्जिषु) अपने द्योतक विशेष चिह्नों, प्रकट पोशाकों वा उत्तम गुणों में (स्व-भानवः) स्वयं अपनी कान्ति से युक्त हैं (ये वाशीषु स्व-भानवः) जो अपनी वाणियों में और शस्त्र प्रयोगों में अपने बल और कौशल से चमकने वाले हैं और जो (सक्षु) मालाओं और मणियों और (रुक्मेषु) स्वर्ण के आभूषणों के बीच में भी और (खादिषु) उत्तम भोजनों के प्राप्त होने पर वा शास्त्रों में भी (स्व-भानवः) स्वयं अपने तेज से चमकने वाले तेजस्वी हैं, जो रूप, वस्त्र, शस्त्र, माला, स्वर्णाभरणादि बाध्य साधनों के होते हुए भी स्वतः तेजस्वी हैं और जो (रथेषु) रथों, महारथियों और (धन्वसु) धनुर्धारियों में भी (श्रायाः) सिंहनाद सुनाने वाले वा गुणों द्वारा प्रसिद्ध वा स्थिरता से

सबके आधारभूत हैं (ते मे आहुः) वे सुझे उत्तम उपदेश करें। वे हर्ष की वृद्धि के लिये उत्तम रथों, तेजों सहित सुझे प्राप्त हों।

युष्माकं स्मा रथां अनु सुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।

वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यतीः द्यावः अनु वृष्टीः इव) जिस प्रकार चलती हुई विजुलियों या व्यापारयुक्त सूर्य प्रकाशों के पश्चात् जल वृष्टियों को जीवगण अपने हर्ष-प्रमोद के लिये प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषो ! हे (जीरदानवः) प्राणियों या प्रजाजनों को जीवन प्रदान करनेवाले उत्तम परोपकारी रक्षक पुरुषो ! मैं (युष्माकं रथान् अनु) आप लोगों के रथों को अपने अनुकूल (सुदे) सबके सुख के लिये (अनु दधे) धारण करूँ ।

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।

वि पुर्जन्यै सृजन्ति रोदस्ती अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (सु-दानवः) उत्तम रीति से जल देने में कुशल वायु गण (दिवः कोशम् अचुच्यवुः) अन्तरिक्ष से जलगम्भित मेघ को बरसाते हैं, (पर्जन्यं वि सृजन्ति) मेघ को रचते हैं और (धन्वना वृष्टयः अनु यन्ति) जल सहित, अन्तरिक्ष मार्ग से जल वृष्टियां आती हैं उसी प्रकार (यं) जिस (कोशम्) सुवर्णादि के कोश को (सु-दानवः) उत्तम दानशील (नरः) पुरुष (दिवः) अपने व्यापार, युद्धादि विजय से (अचुच्यवुः) सब ओर से प्राप्त करते हैं और (पर्जन्यं) मेघवत् धन्वन् जन करने वाले पुरुष को (वि सृजन्ति) विविध प्रकार से उज्ज्ञत करते, (यं अनु) जिसके पीछे २ वर्षाओं के तुल्य शूरवीर होकर (धन्वना यन्ति) धनुष, शम्बास्त्र लेकर चलते हैं वह पुरुष उनका नायक होने योग्य हैं । वह ही उनके उद्धव को जानता है ।

ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र संस्तुर्धेनवो यथा ।

स्यन्ना अश्वा हुवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्त्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥

भा०—(यथा क्षोदसा रजः ततृदानाः सिन्धवः रजः प्रसस्तुः) जिस प्रकार जल से करारों की मट्ठी तोड़ते हुए जल प्रवाह बहते हैं और (यथाधेनवः क्षोदसा रजः ततृदानाः प्रसस्तुः) जिस प्रकार गौवें भूमिमय प्रदेश में धूलि उड़ाती हुई आगे बढ़ती हैं और जिस प्रकार (विमोचने) खुला स्वच्छन्द छोड़ देने पर (अश्वा हृव) छोड़े (अध्वनः) मार्गों में (स्यन्नाः) वेगवान् होकर (रजः ततृदानाः) धूल उड़ते हुए (प्रसस्तुः) आगे बढ़ते हैं और जिस प्रकार (एन्यः) नदियां (रजः ततृदानाः) धूल या मट्ठी काटती हुईं (वि वर्त्तन्ते) विविध मार्गों से आती हैं उसी प्रकार वायुगण (क्षोदसा रजः ततृदानाः प्रसस्तुः) जल सहित अन्तरिक्ष चीरते हुए वेग से चलते और (विवर्त्तन्ते) विविध रूप से बहते हैं उसी प्रकार व्यापारी और वीर जन भी (क्षोदसा) जल मार्ग से (रजः ततृदानाः) भूलोक को पार करते हुए (प्रसस्तुः) दूर देशों में जाते और (विवर्त्तन्ते) विविध वार्ता व्यापारादि करें और वीर पुरुष (क्षोदसा रजः ततृदानाः) वेग से शत्रु जन को काटते हुए आगे बढ़ें और (विमोचने) भाग छूटने पर (विवर्त्तन्ते) विविध मार्गों पर गमन करें। विविध व्यूहादि बनावे। विविध चालें चलें।

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादुमादुत ।

माव स्थात परावतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) प्रजाजनो ! हे व्यापारी वर्ग के प्रजाजनो ! हे वीर पुरुषो ! आप लोग वायुवत् (दिवः) भूमि और (अन्तरिक्षात्) आकाश से (उत्त) और (अमात्) गृह और (परावतः) दूर २ के देश से भी (आ यात) आया जाया करो। (मा अवस्थात) किसी स्थान पर रुक्कर मत्त पड़े रहा करो।

मा वो इसानितभा कुभा कुमुर्मा वृः सिन्धुर्नि रीरमत् ।

मा वृः परिष्ठ्रात्सरयुः पुरीषिणयुस्मे इत्सुमनमस्तु वः ॥ ९ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! व्यापासियो और वीर पुरुषो ! (अनितभा) जिस भूमि या गहरी नदी आदि जलमयी खाई में सूर्य की कान्ति न जाती हो, (कुभा) वा कान्ति था दीपि बुरी, न्यून, अति कष्टदायी रूप से पड़े ऐसी (रसा) भूमि वा नदीं (वः) आप लोगों को (मा नीरीरमत्) कभी निरन्तर विहार के योग्य न हो । इसी प्रकार (क्रुमुः सिन्धुः) ऊँची तरङ्गे फेंकने वाला महानद वा सागर भी (मा नीरीरमत्) निरन्त निवास के लिये न हो । (पुरीषिणी सरयुः) जल वाली नदी या नहर (वः परिस्थात्) आप लोगों के आगे बाधक रूप से न आये । (अस्मे इत् वः) हम और आप सब लोगों को सदा (सुम्रम् अस्तु) सुख प्राप्त हो ।

तं वृः शर्धं रथानां त्वेषं गुणं मारुतं नव्यसीनम् ।

अनु प्रयन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (वः) आप लोगों में से (मारुतं गणं) मनुष्यों के समूह और वायुवत् वेग से शत्रुओं का मूलोच्छेद करने वाले पुरुषों का और उनके (नव्यसीनां रथानां) नये से नये रथों का (गणं) गण और (वः शर्धं) आप लोगों के बड़े भारी बल या शरीरादि धारण करने वाले सैन्य बल के (अनु) पीछे (वृष्टयः अनु प्रयत्नि) वायु गण के साथ २ आने वाली जल वृष्टियों के समान (अनु प्रयन्ति) अच्छी प्रकार आया जाया करे ।

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणज्ञाणं सुशस्तिभिः ।

अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—(वः एषां) इन आप लोगों के (शर्धं शर्धं) बल २ को (व्रातं व्रातं) समूह २ को और (गणं गणं) गण गण को हम लोग (सु-शस्ति-भिः) उत्तम २ नाम, प्रशंसा वचनों और शासनों और (धीतिभिः) उत्तम

उत्तम कर्मों से (अनु क्रमेम) अनुक्रमण करे, अर्थात् आपके बल के कार्यों ब्रताचरणों, मिल कर किए कार्यों और गणना योग्य संघों का हम उत्तम ख्यातियों और कर्मों से अनुगमन और अनुकरण करें ।

कस्मा॑ श्रद्धा॒ सुजाताय॑ रातह॑व्याय॒ प्र यथुः॑ ।

एना॑ यामेन॑ सृष्टः॑ ॥ १२ ॥

भा०—(मृष्टः) उत्तम मनुष्य (अश्च) आज (सुजाताय) उत्तम विद्या आदि गुणों से सुसम्पन्न (रातहृव्याय) दातव्य गुरुदक्षिणा देने वाले दानशील (कस्मै) किस उत्तम पुरुष के दर्शन वा पूजा सत्कार के लिये (एना यामेन) इस मार्ग से, (प्र यथुः) जाते हैं [उत्तर] उस (कस्मै) सुखरूप (सु-जाताय) उत्तम, सर्व पूज्य रूप से प्रसिद्ध, सब ज्ञानादि के दाता परमेश्वर की उपासना के लिये (मृष्टः) विद्वान् गण और अध्यात्म में प्राण गण (एना यामेन) इस पूर्वोपदिष्ट याम अर्थात् नियत, व्यवस्थित विधि से (प्र यथुः) आगे उत्तरि मार्ग पर बढ़ें ।

येन॑ त्रोकाय॑ तन॑याय॑ धान्यं॑ वीजं॑ वह॑ध्वे॑ अक्षितम्॑ ।

ऋस्मभ्यं॑ तद्वच्चन्॑ यद्भु॑ ईमहे॑ राधो॑ विश्वायु॑ सौभगम्॑ ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (येन) जिस प्रकार से आप लोग (त्रोकाय) उत्तम पुत्र और (तनयाय) अगली संतति पौत्र आदि को प्राप्त करने के लिये (धान्यं) आधान योग्य, (अक्षितम्) अक्षय, अमोघ, (वीजं) बीज को (वहृध्वे) धारण करते हो (तत्) उसको (ऋस्मभ्यम्) हम प्रजा जनों के कल्याण के लिये ही (धत्तन) धारण करो और हमें भी धारण कराओ । जिस (राधः) उत्तम ऐश्वर्य की हम (वः) आप लोगों से (ईमहे) याचना करते हैं वह (विश्वायु) समस्त जीवन पर्यन्त (सौभगम्) उत्तम सेवन करने योग्य, सुख कल्याणजनक हो । उसको आप धारण करो और कराओ ।

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।

वृष्ट्वी शं योरापु उक्षि भेषजं स्याम् मरुतः सुह ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (निदः) निन्दा करने वाले पुरुषों को (अति इयाम) अतिक्रमण करें । उनकी निन्दाओं की परवाह न करके आगे उत्तरि मार्ग पर बढ़ें । (स्वस्तिभिः) सुख-जनक कल्याणकारी उपायों से (अवद्यम्) निन्दनीय कार्य को (हित्वा) छोड़ कर (अरातीः) शत्रुओं को (तिरः अति इयाम) तिरस्कार कर उन से भी आगे बढ़ें, उन पर विजय प्राप्त करें । (आपः वृष्टि) जलों को वर्षा कर (शं) शान्तिकारक, सुखजनक (योः) दुःख वारक (भेषजम्) औषध आदि को प्राप्त करें और (सह स्याम) सदा अपने लोगों के साथ सुख से बने रहें ।

सुदेवः समहासति सुवर्तीं नरो मरुतः स मर्त्यैः ।

यं त्रायध्वे स्याम् ते ॥ १५ ॥

भा०—हे (समह) पूजा सत्कार योग्य जन ! और हे (नरः) नायक (मरुतः) वीर पुरुषो ! (यं त्रायध्वे) आप लोग जिस की रक्षा करते हो (सः मर्त्यैः) वह मनुष्य (सु-देवः) उत्तम विद्वान् और तेजस्वी तथा दानशील, व्यवहारकुशल (असति) हो जाता है । (ते) वैसे ही वे हम भी उत्तम विद्वान्, दानी, तेजस्वी आदि (स्याम) हो जावें ।

स्तुहि भोजान्तस्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।

यतः पूर्वां इव सख्तिरनुद्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् शासक ! तू (स्तुवतः) उत्तम स्तुति करने और उपदेश करने वाले (भोजान्) प्रजा के पालक पुरुषों की (स्तुहि) स्तुति कर, उनके प्रति अपने उत्तम वचन कह । वे प्रजाजन (अस्थ यामनि) इसके उत्तम शासन में (यवसे गावः न) अज्ञादि उपभोग वा

ब्रूत्ति आजीविका के लिये गौओं के समान सुशील होकर (रणन्) आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं । (यतः) जिस कारण से (पूर्वान् इव सखीन्) पूर्वकाल के मित्रों के समान प्रेम से वर्ताव करने वालों को ही (अनुह्ये) आदर से बुलाया जाता है ! उसी प्रकार हे राजन् ! विद्वन् ! तू (कामिनः) उत्तम विद्या धन आदि की इच्छा करने वाले पुरुषों को भी (गृणीहि) अपने पास बुला और उनको सत् उपदेश किया कर ।

[५४]

श्यावाण्य आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ७, १२ जगती । २ विराङ्गजगती । ६ भुरिर्जगती । ११, १५ निचूर्जजगती । ४, ८, १० भुरिक् त्रिष्टुप् । ५, ६, १३, १४ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशाच्च सूक्तम् ॥

प्र शर्धायु मारुतायु स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
चर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृमण्मर्चत ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मारुताय) वायु के समान ग्रबल, शत्रुनाशक पुरुषों के (स्व-भानवे) स्वयं देदीप्यमान (पर्वत-च्युते) में वा पर्वत के समान ग्रबल शत्रु को भी छिन्न भिन्न करने वा उखाड़ देने में समर्थ, (शर्धायु) बल को बढ़ाने और प्राप्त करने के लिये (इमां) इस (वाचं) वेद वाणी का (मारुताय) मनुष्यों के समूह को (अनज) उपदेश करो । (दिवः घर्मस्तुभे) सूर्यवत् तेजस्वी, पुरुष के तेज को स्तुति या उपासना करने वाले (पृष्ठ-यज्वने) अपने पीछे आने वाले शिष्यों को भी ज्ञान का दान करने वा पीठ पीछे भी गुरुजनों का आदर सत्कार करने वाले (द्युम्न-श्रवसे) यज्ञ, धन और श्रवणीय ज्ञान से सम्पन्न पुरुष को (महि नृमणम्) मनुष्यों से पुनः अभ्यास करने योग्य बड़े भारी ज्ञान और मनुष्यों के मनोभिलषित धन राशि का (अर्चत) अदर पूर्वक दान किया करो ।

अ वौ मरुतस्तविषा उद्दन्यवौ वयोवृधौ अश्वयुजः परिज्यः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरूप्त्यापोऽवना परिज्यः ॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों में से जो (उदन्यवः) वायुओं के तुल्य जलवत् उत्तम ज्ञान को ग्रहण करने के इच्छुक, (तविषाः) बलवान्, (वयोवृधः) ज्ञान, बल, आयु की वृद्धि करने वाले, (अश्वयुजः) प्रबल अश्वों को रथ में लगाने वाले एवं योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा में लगाने तथा इन्द्रिय गण को अपने वश में करने वाले, (परिज्यः) सर्वत्र, सब ओर जाने में समर्थ, हों, और जो (विद्युता) विजुली से, (सं दधति) यन्त्रों का संधान करते, अथवा विशेष कान्ति वा ज्ञान दीसि से युक्त विद्वान् पुरुष के साथ (स दधति) प्रेम से मिलकर ज्ञान धारण करते हैं, जो (त्रितः) तीनों से (वाशति) ज्ञानोपदेश ग्रहण करते, मन्त्रों का पाठ करते, (स्वरन्ति) और स्वरसहित गान करते हैं वे (आपः) आप सुरुष (अवना) भूमि पर (परिज्यः) जल-धाराओं के समान सर्वत्र गमन करें और शान्ति ग्रदान करें । (२) वायुगण, बलशाली, सूर्य ताप से भूमिस्थ जल को ग्रहण करने वाले, अन्न को बढ़ाने वाले, विद्युत् से मिलने वाले होकर गर्जते हैं उनके साथ, जल वृष्टियां भूमि पर गिरती हैं ।
विद्युन्महसो नरो अश्मदिव्यवो वातत्विषो मुरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयद्मा रभुसा उदोजसः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः विद्युन्म-हसः) वायु गण विजुली की कान्ति से चमकने वाले, (अश्म-दिव्यवः) मेघ को प्रकाशित करने वाले, (वात-त्विषः) प्रबल वायु से चमकने वाले (पर्वत-च्युतः) मेघों को छुलाने वाले होते हैं और वे (अब्दया मुहः ह्रादुनीवृतः) जल देने वाली मेघ माला से युक्त, गर्जती विजली को उत्पन्न करने वाले और (स्तनयद्-अमा:) गर्जते मेघ के साथ रहते हैं उसी प्रकार (नरः) उत्तम नायक गण एवं

विद्वान् पुरुष भी (विद्युत्-महसः) विशेष द्युति कान्ति से चमकने वाले हों, वे (अश्म-न्दियवः) व्यापक प्रभु वा आत्मा में चमकने वाले, और 'अश्म' अर्थात् शत्रुनाशक आयुधों से चमकने वाले, (वात-त्विषः) सूर्य की कान्ति को प्राप्त, (पर्वत-च्युतः) बड़े २ पर्वतवत् अचल शत्रु को भी रणच्युत करने वाले हों। वे (अद्याद्य) आप जनों की दानशील किया से युक्त होकर (हादुनीवृतः) आह्नादकारिणी वाणी से वर्तने वाले हों और वे (स्तनयद्-अमाः) अपने गृहों को उत्तम धोपां, वायादि के शब्दों से गुंजाते हुए (सभसाः) वेग से आक्रमण करने वाले (उद्-ओजसः) उत्तम बल पराक्रमशाली हों।

व्य॑क्तुब्रद्वा व्यहानि शिक्सो व्य॑न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्ञाँ अजथ नाव॑ ई यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह॑ रिष्यथ४

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् पुरुषो ! जिस प्रकार वायुगण (शिक्सः धूतयः भवन्ति) शक्तिशाली और वृक्षादि सब पदार्थों को कंपाने वाले होते हैं वे सब रातें, सब दिनों (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष में (रजांसि) समस्त लोकों को वा धूलियों को और (अज्ञान्) मेघों को (वि-अजथ) विविध प्रकार से उड़ाते हैं, उसी प्रकार आप लोग (अक्तून् अहानि वि अजथ) सब दिनों सब रातों और विविध रूप से जाते हो, और आप लोग (रुद्रः) दुष्टों को रुलानेहारे (शिक्सः) शक्ति शाली, और (धूतयः) सब शत्रुओं को कंपाते हुए (अन्तरिक्षं) मध्य में विद्यमान देश को और (रजांसि वि) समस्त प्रजा जनों को और (अ-ज्ञान् वि अजथ) बड़े २ योद्धाओं को विविध उपायों से उखाड़ फेंक दिया करें। और (यथा नावः ई) नौकाओं को वायु गण चलाते हैं उसी प्रकार आप विद्वान् लोग (दुर्गाणि वि अजथ) दुःख से गमन करने योग्य विषमताओं को दूर करो और (अह) तिस पर भी (न रिष्यथ) स्वयं नष्ट नहीं होवो ।

तद्वीर्यै वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान् सूर्यो न योजनम् ।

एता न याम् अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्नयातना गिरिम् ।५।१४॥

भा०—हे (मरुतः) वीर, विद्वान् प्रजा जनो ! हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों का (तत्) वह अलौकिक (वीर्य) बल पराक्रम (महित्वनम्) बड़ा भारी है । जिस प्रकार (सूर्यः न) सूर्य भी अपने (योजनम्) सब तक पहुंचने वाले (दीर्घं ततान्) प्रकाश को दूर २ तक विस्तृत करता है और जिस प्रकार (एताः) वेग से जाने वाले अश्व (यामे) मार्ग में (योजनं) योजन भर दूरी निकल जाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (योजनम्) अपने २ प्रयोजन तथा उद्योग धन्यों के साथ अपना लगाव बनाते रहें, और (अगृभीत-शोचिषः) अग्नि की ज्वाला के समान असहा तेज वाले होकर (यामे) राज्यादि के नियन्त्रण में अपना (योजनं) लगाव बनाये रखें । और (अनश्वदां गिरिम्) किरणों को बाहर न जाने देने वाले मेघ को जिस प्रकार सूर्य छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (अनश्वदाम् गिरिम्) अश्व सैन्य को मार्ग न देने वाले पर्वत के समान अचलवत् दृढ़ शत्रु को आक्रमण करते हुए (नि अयातन) सर्वथा पीड़ित करो ।

अभ्राजि शधौ मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपुनेव वेधसः ।

अध॑ स्मानो अरमाति॒ सजोषसुश्वदृ॒रिव॑ यन्तमनु॑ नेषथा सुगम् ६

भा०—हे (मरुतः) वायु के तुल्य बलपूर्वक शत्रुओं के कंपा देने वाले कर्मनिष्ठ वीर एवं विद्वान् जनो ! (यत्) जिस प्रकार जब (शर्धः) सूर्य का तेज (अभ्राजि) खूब तपता है तब वायुगण का बल भी (अर्णसं मोषथ) जल को हर लेता है उसी प्रकार जब राजा या सेनापति का (शर्धः) शशादि शस्त्रों का धारक शत्रुहंसक बल (अभ्राजि) शत्रु को परित्स करता है और चमकता है तब वह आप लोगों का बल, सैन्य (अर्णसं मोषथ) धनैश्वर्य से युक्त शत्रु का अनायास हर लेता है । (कप-

ना इव वृक्षम्) जिस प्रकार कंपादेने वाले वायु के झोंके वृक्ष को गिरा देते हैं वा जिस प्रकार कृमिगण वृक्ष को भीतर २ खोखला कर देते हैं उसी प्रकार हे वीरो ! आप (वेधसः) कार्यकर्त्ता मतिमान् लोग भी (कपनः) शशु को कंपाते हुए (वृक्षं) काट गिराने योग्य शशु को (मोषथाः) उसका धनैश्वर्य सर्वस्व हर कर खोखला कर दो । और आप लोग परस्पर (सजोपसः) समान प्रीति से युक्त होकर (चक्षुः इव) मार्गदर्शक आंख के समान (सुगं यन्तम्) सुखप्रद मार्ग पर जाने वाले (अरमतिम्) अति ज्ञानवान् पुरुष को (अनु) अनुकूल रूप से (नेषथ) सत् मार्ग पर लेजाओ । अथवा—हे मनुष्यो ! (यत् अर्णसं मोषथ) यदि तुम धन चुराओगे तो तुम्हारे लिये (वेधसः शर्धः अश्राजिः) दण्ड-विधान कर्त्ता राजा का बल दण्ड देने के लिये चमक उठे, वह तुम्हें दण्ड दे । (कपना इव वृक्षं) शोकों के समान वृक्षवत् तुम्हें ताङ्गित करे, (चक्षुः इव अरमतिं सुगं यन्तम् अनु नेषथ) आंख के समान मार्गदर्शी सन्मार्ग पर जाने वाले विद्वान् पुरुष के अनुकूल होकर अपने को चलाओ ।

न स जीयते मरुतो न हन्यते न सेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप॑ दस्यन्ति नोतयु ऋषि॑ वा यं राजानं वा
सुषृद्ध॑थ ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! एवं विद्वान् जनो ! (यं वा) जिस (ऋषिं) सर्वदृष्टा, वेदार्थज्ञानी विद्वान् पुरुष वा (राजानम्) तेजस्वी, पुरुष को (सु-सूदथ) तुम लोग सुख वा आदरपूर्वक प्राप्त होते हो, जिसकी उपासना वा सत्संग करते हो, (सः) वह (न जीयते) कभी पराजित नहीं होता, (न हन्यते) कभी मारा नहीं जाता, (न सेधति) न नाश को प्राप्त होता है, (न व्यथते) न कभी पीड़ित होता है, (न रिष्यति) न हिंसा करता है । (अस्य रायः)

उसके धनादि ऐश्वर्यं (न उप दस्यन्ति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होते !
और (न उतयः उप दस्यन्ति) न उसके रक्षा साधन ही कभी नष्ट होते हैं ।
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्थमणो न मूरुतः कवन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सुं यदिनासो अस्वरुन्वयुन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा८

भा०—जिस प्रकार जब (इनासः अस्वरन्) सूर्य के किरण
अतितापयुक्त होते हैं (कवन्धिनः मूरुतः उत्सं पिन्वन्ति) जल से भरे
वायुगण मेघ आदि जलाशय को जल से पूर्ण करते हैं और (पृथिवीं
मध्वः अन्धसा वि उन्दन्ति) पृथिवी को मधुर जल और अन्न से गीला
करते हैं । उसी प्रकार हे (मूरुतः) प्रजा के मनुष्यो ! पूर्वं वीर पुरुषो !
आप लोग (नियुत्वन्तः) अधों और अधीन नियुक्त पुरुषों तथा लक्षों
सहायक पुरुषों के स्वामी होकर (ग्रामजितः) जन समूहों, ग्रामों, देशों
को जीतने वाले होवें । (अर्यमणः) सूर्यवत् तेजस्वी एवं शत्रुओं को
निव्यत्रण करने में समर्थ न्यायकारी (नरः) नायक और (कवन्धिनः)
उत्तम हृष्टपुष्ट देह वाले होकर (यत् इनासः अस्वरन्) जब स्वामीगण
अपना स्वर ऊँचा करें, आज्ञा प्रदान करें तत्र (उत्सं पिन्वन्ति) उत्तम पद
के धारक नायक को पुष्ट करें, उसके साथ सहोद्रोगी हों । और (पृथिवीं)
भूमिको (मध्वः अन्धसः) अन्न जल के उत्तम अंश से (वि उन्दन्ति)
ये सम्पन्न करें, उत्तम कृषि व्यापार आदि से ऐश्वर्य की वृद्धि करें ।
प्रवत्वतीयं पृथिवीं मूरुद्धर्यः प्रवत्वतीं द्यौर्भवति प्रयद्धर्यः ।

प्रवत्वतीः पुरुषाः अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९॥

भा०—(प्रयद्धर्यः) प्रयत्नशील (मरुद्धर्यः) बलशाली वीर पुरुषों
के लाभ के लिये (इयं पृथिवी) यह पृथिवी (प्रवत्वती) उत्तम फलों
से युक्त होती है, एवं उनके आगे छुकती है । उनके लिये ही (द्यौः प्रव-
त्वती) यह विशाल आकाश वा सूर्य भी उत्तम सुखदायक होकर छुकता
है । (अन्तरिक्ष्याः पर्वताः) मध्य आकाश के मार्ग भी उनके लिये (प्रव-

त्वती) उत्तम फलदायक और उनके समक्ष निश्च हो जाते हैं उनके लिये (पर्वताः) पर्वत भी (प्रवत्कन्तः) अपने सिर छुका लेने वाले एवं (जीर्दानवः) जीवनोपयोगी जल ओषधि अन्न आदि देने वाले हो जाते हैं । यन्मरुतः सभरसः स्वर्णः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः । न चोऽश्वाः श्रथयन्ताहु सिन्धृतः सुद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ १०।१५

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे प्रजा जनो ! हे व्यापारियो ! यत् जब आप लोग (स-भरसः) एक समान रूप से पालन पोषण करते हुए, समान होकर युद्धादि करते हुए, (स्वः नरः) सबके सुख, तेज वा पराक्रम के मार्ग में आगे जाने वाले, और (दिवः नरः) ज्ञान प्रकाश के नायक वा स्वयं धनादि की कामनाशील पुरुष होकर (सूर्य-उदिते) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उदय होने पर (मदथ) खूब प्रसन्न होते हो उस समय भी (अह) निश्चय से (वः अश्वाः) आप लोगों के घोड़े (सिन्धृतः) चलते २ भी (न श्रथयन्त) शिथिल न हों, और आप लोग (अस्य अध्वनः) इस बड़े भारी मार्ग के (पारम अश्नुथ) पार पहुंच जाते हैं ।

अंसेषु व ऋष्यः प्रत्सु खादयो वक्षः सु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभैभ्योःशिप्राः शीर्षसु वित्ता हिरुययीः ११

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (अंसेषु) कन्धों पर (ऋष्यः) शत्रुहिंसक शस्त्राघ सजें, (प्रत्सु) पैरों में (खादयः) भोक्ता जनों के समान नाना भोग्य पदार्थ प्राप्त हों, वा स्थिरता युक्त जूते आदि हों (वक्षःसु) छातियों पर (रुक्माः) सुवर्ण के आभूषण हों । वे (रथे शुभः) रथों पर सुशोभित हों वे (अग्नि-भ्राजसः) अग्नि के समान कान्ति और प्रताप से युक्त होकर (गभैभ्योः) बाहुओं में (विद्युतः) विशेष चमक वाले शस्त्र अघ धारण करें और (शीर्षसु) सिरों पर (वित्ताः) विविध

प्रकार से मढ़ी वा बुनी हुई (हिरण्ययीः) सुवर्ण वा लोह की बनी (शिप्राः) पगड़ियाँ हों ।

तं नाकम्यर्यो अगृभीतशोचिषु रुश्तिपष्ठलं मरुतो वि धूनुथ ।

समच्यन्त वृजनाऽतित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं वितत्सृतायवः ॥२

भा०—जिस प्रकार (मरुतः पिष्ठलं वि धुन्वन्ति) वायु गण मेघ स्थ जल को कंपाते हैं, (अगृभीत-शोचिषं नाकं वि-धुन्वन्ति) जिसके तेज को कोई पकड़ न सके ऐसे विद्युन्मय मेघ को भी वे कंपा देते हैं तब (वृजना सम् अच्यन्त) जल एकत्र हो जाते हैं और (वृजना अतित्विषन्त) आकाश के भाग खूब चमक उठते हैं, (ऋतायवः घोषं स्वरन्ति) जल युक्त मेघ गर्जन भी करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) प्रजा के बीर, व्यापारी एवं विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अर्यः) स्वामी, राजा के तुल्य ही (तं) उस (अगृभीत-शोचिषं) अस्त्रिवत् असद्य तेज को धारण करने वाले (नाकम्) अति सुखमय, (रुशत्) चमचमाते, (पिष्ठलं) ऐश्वर्यवान् शत्रु को भी (वि धूनुथ) विशेष रूप से कंपावे । (ऋतायवः) अज्ञ, ज्ञान और धन के इच्छुक लोग पद पद पर (सम् अच्यन्त) अच्छी प्रकार सत्संग किया करें, (वृजना) अपने गमनयोग्य मार्गों को (अतित्विषन्त) खूब प्रकाशित करें और स्वयं भी प्रकाशित हों । और (ऋतायवः) सत्य, ज्ञान, धन के इच्छुक पुरुष भी (यत् वितत्ं) विस्तृत (घोषं स्वरन्ति) जिसके उपदेश आज्ञावचन को प्राप्त करते हैं उसको प्रसन्न वा प्राप्त करो ।

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रुयः स्याम रथ्योऽवयस्वतः ।
न यो युच्छ्रिति त्रिष्योऽवया दिवोऽस्मे रारन्त मरुतः सह-
स्रिणाम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु वत् देश से देशान्तर को जाने वाले वैद्य
अजा जनो ! हे (विचेतसः) विविध प्रकार के ज्ञान वाले पुरुषो ! हे

(रथः) महारथियो ! रथ के स्वामी जनो ! हम लोग (युप्मा-दत्तस्य) आप लोगों के दिये (वयस्तः) अज्ञ, जीवन और वल से युक्त (रायः)-धनैश्वर्य के स्वामी (स्याम) हों। हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् प्रजा जनो ! (अस्मे) हमारे बीच में (यः) जो पुरुष (तिष्यः यथा) सूर्य के समान (न युच्छति) कभी प्रमाद नहीं करता, उस (सहस्रियं) सहस्रों वीरों, धनों और सेनाओं के स्वामी पुरुष को तुम लोग सदा (दिवः) कामना करते हुए (ररन्त) अच्छी प्रकार प्रसन्न करते रहो ।

युं रथिं मरुतः स्पाहैवीरं युयमृष्यिमवथु सामविप्रम् ।

युयमवैन्तं भरताय वाजं युं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) पुरुषार्थी, व्यवहारज्ञ एवं वीर पुरुषो ! आप लोग (स्पाहै-वीरं) वीर पुरुषों से अभिलाषा करने योग्य (रथिम्) ऐश्वर्य को और (साम-विप्रम्) सामों को जानने वाले विद्वान् एवं 'साम' उपाय द्वारा राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने में समर्थ, (ऋषिम्) मन्त्रार्थ वेत्ता, द्रष्टा पुरुष को (अवथ) सुरक्षित रखो, उसको प्राप्त एवं सुप्रसन्न करो । और (भरताय) राष्ट्र के प्रजा जनों को भरण पोषण करने के लिये (अर्वन्तं) शत्रु का नाश करने वाले पुरुष एवं (वाजं) ज्ञान, वल, अज्ञ ऐश्वर्य को भी (यूं धत्थ) आप लोग धारण करो । और (श्रुष्टिमन्तम्) शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने वाले अज्ञ सम्पत्ति के स्वामी (राजानं) राजा, तेजस्वी पुरुष को भी (धत्थ) पुष्ट करो ।

तद्वौ यासि द्रविणं सद्युक्तयो येनां स्वर्णं तृतनांसु नृणभि ।

इदं सु मै मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेसु तरसा शुतं हिमाः १५।१६.

भा०—हे (सद्य-उत्तयः) अति शीघ्र रक्षा, ज्ञान, गमन प्राप्ति करने में कुशल, (मरुतः) पुरुषार्थी लोगो ! मैं (वः) तुम्हारा (तत्) उस प्रकार का (द्रविणं) धनैश्वर्य (यासि) चाहता हूँ (येन) जिससे हम सब लोग (नृ अभि) सब मनुष्यों के लिये (स्वः न) सूर्य के समान,

जल, वा प्रकाशवत् (ततनाम) फैला दें, जो सबके लिये उपयोगी सुख-
कारी हो । (यस्य तरसा) जिसके बल पर हम (शतं हिमाः) सौ वर्ष
जीवन (तरेम) पार कर लें । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मे)
मेरे (इदं वचः) इस वचन को (सु हर्यत) अच्छी प्रकार इच्छापूर्वक-
ग्रहण करो । इति पोडशो वर्गः ॥

[५५]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ५ जगती । २, ४,
७, ८ निचृजगती । ९ विराङ् जगती । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, १० निचृत्-
त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रयज्यवो मुरुतो भ्राजदृष्टयो वृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिग्नशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥

भा०—(प्रयज्यवः) उत्तम ज्ञान के प्रदान करने वाले, उत्तम
सत्संग, मैत्री, सौहार्द, मान, सत्कार उत्तम पदार्थ की याचना के
योग्य, (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमचमाते अछों, से सुशोभित, एवं अति
प्रकाशयुक्त मति वाले, (स्वम-वक्षसः) सुवर्ण के आभूषणों को
आती पर धारण करनेवाले, एवं सबको रुचिकर कान्तिमान् तेजः
को धारने वाले, तेजस्वी, विद्वान् और वीर पुरुष (वृहत् वयः दधिरे)
बड़ा भारी बल, ज्ञान और बड़ी आयु धारण करें । (सु-यमेभिः अश्वैः)
उत्तम श्रिति से काबू किये अश्रों के समान, उत्तम नियमों के पालन द्वारा
वश किये गये (आशुभिः अश्वैः) शीघ्रगामी, अप्रमादी इन्द्रियों और
पुरुषों द्वारा तक भली प्रकार उद्देश्य को (ईयन्ते) प्राप्त होते हैं । (शुभं
याताम्) शुभ, धर्मानुकूल मार्ग पर चलने वालों के (अनु) पीछे (रथाः)
उत्तम रथ व आनन्द प्राप्ति के समस्त साधन भी (अवृत्सत) स्वयं प्राप्त
हो जाते हैं ।

स्वयं दधिद्वे तविषीं यथा विद् वृहन्महान्त उविंया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥२॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार से (वृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (विद्) प्राप्त कर सको और जिस प्रकार से बड़े भारी ज्ञान को प्राप्त कर सको उस प्रकार से आप लोग (स्वयं) अपने आप, (तविषीं) बड़ी भारी सेना व शक्ति को (दधिद्वे) धारण करो । और आप लोग (महान्तः) बड़े भारी सामर्थ्यवान् होकर (उविंया) खूब बहुत अधिक (विराजथ) सुशोभित होओ । (ओजसा) बल पराक्रम से आप लोग (अन्तरिक्षं) वायुओं के समान आकाश को वा राष्ट्र के समस्त भीतरी भाग को (वि ममिरे) विविध प्रकार से मापो और उसको वश करो, और (अन्तरिक्षं वि मिमरे) अन्तरिक्ष भाग को विमान द्वारा प्राप्त होओ, इस प्रकार (शुभं याताम्) शुभ, सन्मार्ग पर जाने वालों के (रथाः) रथ वा देहादि सत् साधन भी (अनु अवृत्सत) उत्तरोत्तर अनु-कूल होकर रहें और वृद्धि को प्राप्त हों ।

स्राकं जाताः सुभ्वः स्राकमुक्तिताः श्रिये चिदा प्रतुरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्यस्येव रुश्मयुः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥३॥

भा०—(साकं जाताः) एक साथ उत्पन्न वा प्रसिद्ध, (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान् एवं उत्तम भूमियों के स्वामी, (साकम् उक्तिताः) एक साथ ही अभिषेक को प्राप्त हुए, (नरः) सेना नाथक जन (श्रिये चित्) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (प्रतुरं) खूब सहोदयोग से अच्छी प्रकार (आ वृधुः) सब ओर वृद्धि को प्राप्त हों । वे (सूर्यस्य इव रश्मयः) सूर्य किरणों के समान (विरोकिणः) विविध रुचि, कान्ति एवं विविध प्रवृत्तियों वाले (प्रतुरं वावृधुः) खूब बड़े एवं उज्ज्ञाति करें । (शुभं याताम् रथाः अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर जाने वालों के रथ और रमण योग्य आत्मा निरन्तर अनुकूल होकर रहते और वृद्धि को प्राप्त करते हैं ।

अध्यात्म में—प्राणगण के विषय में देखो अर्थवेद (का० १।१४।१६) में आये ‘साकंजो’ का वर्णन ।

आभूषेषर्यै वो मरुतो महित्वनं दिव्वक्षेत्रयु सूर्यस्येव चक्षणम् ।

उतो अस्मां अमृतत्वे दधातन् शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (महित्वनं) महान् सामर्थ्यं (आ-भूषेष्यम्) आप लोगों को सब प्रकार से आभूषण के तुल्य शोभाजनक, एवं सर्वत्र, सब ओर कार्य करने में सामर्थ्यप्रद हो । और (वः चक्षणं) आप लोगों का वचन और ज्ञान दर्शन भी (दिव्वक्षेष्यम्) दर्शनीय और सत्य ज्ञान का दर्शनी वाला, (सूर्यस्य इव चक्षणं) सूर्य के प्रकाश के तुल्य सत्य हो । (उतो) और आप लोग प्राणों के समान प्रिय होकर (अस्मान्) हमें (अमृतत्वे) अमृत, नाशरहित, दीर्घायु युक्त परम जीवन एवं मोक्ष सुख में (दधातन) स्थापित करो । (शुभं याताम्) सन्मार्ग पर जाने वाले आप लोगों के (रथाः) रमणीय आत्मा, रथ के तुल्य रस रूप आनन्दमय आत्मा (अनु अवृत्सत) निरन्तर सुखपूर्वक रहें और उन्नति की ओर बढ़े ।

उदीर्यथा मरुतः समुद्रतो युयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।

न वौ दस्त्रा उप॑ दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ५॥१७॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् एवं वीर पुरुषो ! जिस प्रकार (मरुतः पुरीषिणः समुद्रतः वृष्टिं उत् इर्यन्ति) वायुगण जल सम्पन्न होकर समुद्र से वृष्टि को उठा कर लाते और वर्षाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (पुरीषिणः) स्वयं ऐश्वर्य सम्पन्न होकर (समुद्रतः) समुद्र से (वृष्टिम्) ऐश्वर्य की वृष्टि का (उत् इर्यथ) उठाकर लाओ । समुद्र से खूब व्यापार द्वारा रत्न मुक्ता आदि ऐश्वर्य प्राप्त करो और (वर्षयथ) प्रजाजनों पर वरसा दो, समान रूप से निष्पक्षपात होकर विभक्त करो । (वः) आप लोगों की (दस्ताः) दुःखों के नाश करने वाली (धेनवः) गौणं वा वाणियें (न उपदस्यन्ति) ।

कभी नाश को प्राप्त न होवें । (शुभं याताम्) धर्मानुकूल सत्य पथ पर चलने वाले आप लोगों के रथ (अनु अवृत्सत) प्रति दिन आगे बढ़ें और वृद्धि प्राप्त करें वा आप लोग भी सन्मार्ग पर जाने वाले के पीछे चलें ।
 यदश्वान्धूर्षु पृष्ठतीरयुग्धं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्धम् ।
 विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथु शुभं यातामनु रथा अवृत्सता ॥६॥

भा०—(यत्) जब आप लोग हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! (धूर्षु) रथों को धारण करने वाले भुरों में (अश्वान्) शीघ्रगामी अश्वों एवं (पृष्ठतीः) शशवर्षणशील सेनाओं की (अयुग्धम्) योजना करो और (हिरण्ययान् अक्तान्) सुवर्ण वा लोह आदि धातु के बने कवचों को (प्रति अमुग्धम्) धारण करो और तुम (विश्वाः इत् स्पृधः) समस्त स्पर्धशील शत्रुओं को (वि अस्यथ) विशेष रूप से उखाड़ डालो ! (शुभं याताम् रथाः अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर शोभा पूर्वक जाने वालों के रथ निरन्तर उत्तरि की और बढ़ें ।

न पर्वता न नद्यो वरन्त चो यत्राचिंधवं मरुतो गच्छुथेदु तत् ।
 उत द्यावा पृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (यत्र) जहां (अचिंधवं) पूजा सत्कार प्राप्त करो वा जहां तक जा सको, (तत्) उस स्थान तक (गच्छथ इत् उ) अवश्य जाओ ! (वः) आप लोगों को (पर्वताः न वरन्त) पहाड़ भी न रोक सकें और (न नद्यः वरन्त) न नदियें रोक सकें, ये आपके मार्ग में बाधक न हों । (उत्) और आप लोग (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों स्थानों पर (परि याथन) परिभ्रमण करो । (शुभं याताम्) उत्तम रीति से जाने वाले आप लोगों के (रथाः अनु अवृत्सत) रथ यान विमान आदि अनुकूल रूप से चला करें ।

यत्पूर्वं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च श्रस्यते ।

विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में रहने हारे प्रजा जनो एवं गृहस्थ में जाने हारे विद्वानो ! हे आचार्य के अधीन बसने वाले विद्यार्थी जनो ! एवं प्रजाओं के राष्ट्र में बसने हारे वीर पुरुषो ! हे (मरुतः) बलवान् पुरुषो ! (यत् पूर्वम्) जो पूर्व के विद्वानों और पुरुषों से अभ्यस्त ज्ञान और संचित धन है, (यत् च नूतनं) जो नवा, प्राप्त ज्ञान वा धन है और (यत् उद्यते) जिसका उपदेश किया जाता है, (यत् शस्यते) जो अन्य विद्वानों द्वारा शोक्त रूप में अनुशासन किया जाता है, हे (न वेदसः) न जानने और न प्राप्त करने हारे धनहीन और ज्ञानहीन पुरुषो ! आप लोग (तस्य विश्वस्य) उस सब ज्ञान वा धन के स्वामी (भवथ) होवो । (शुभं याताम्) शुभ उद्देश्य को लक्ष्य करके जाने वाले पूर्व के सब पुरुषों के पीछे २ आप लोगों के (रथाः) रथवत् शरीर और आत्मा (अनु अवृत्सत) अनुगमन करें । वा, आप लोग सुप्रसन्न होकर रथों के तुल्य पूर्वों के बनाये मार्ग से चला करो ।

मृलतं नो मरुतो मा वधिष्ठनास्मभ्यं शर्मं बहुलं वि यन्तन ।

आधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन् शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ९

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! हे वीर पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (मृलत) सुखी करो । (मा वधिष्ठन) हमारा बध मत करो, हमें पीड़ित मत करो । (अस्मभ्यं) हमारे लिये (बहुलं शर्म) बहुत सुख, गृह शरण आदि (वि यन्तन) विविध प्रकारों से दिया करो । (स्तोत्रस्य सख्यस्य) उत्तम प्रशंसनीय मैत्रीभाव को (अधि गातन) सर्वोपरि उपदेश किया करो । (शुभं याताम अनु) शुभ मार्ग वा उद्देश्य पर जाने वालों के (अनु) पीछे २ (रथाः) उत्तम रथों के समान सन्मार्ग पर (अवृत्सत) सदा चलते रहा करो ।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।

तेन यात्रात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यति ॥

युथमस्मान्नयत् वस्यो अच्छ्रु निर्हृतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।

जुषध्वं नो हृव्यदातिं यजत्रा वृयं स्याम् पतयो रथीणाम् १०॥१८

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् एवं वीर पुरुषो ! (यूयम्) आप लोग (अस्मान् वस्यः अच्छ नयत्) हमें उत्तम धन प्राप्त कराओ, वा उत्तम ऐश्वर्य तक हमें पहुंचाओ वा (वस्यः अस्मान्) हम उत्तम ब्रह्म-चारियों वा राष्ट्र के उत्तम वसने वाले वा उत्तम धन सम्पद हम लोगों को (अच्छ नयतः) आदर पूर्वक उत्तम मार्ग में ले चलो । और (गृणानाः) उत्तम उपदेश करते हुए आप लोग हमें (अंहतिभ्यः) पापों से (निः नयत्) बचां कर लेते चलो । (यजत्राः) दान देने और मान आदर सत्संग आदि करने योग्य पूज्य पुरुषो ! (नः) हमारे (हृव्यदातिम्) आदर पूर्वक देने योग्य अन्न वस्त्र आदि के दान को प्रेम से (जुषध्वम्) सेवन किया करो । और हम (रथीणां पतयः स्याम्) ऐश्वर्यों के स्वामी बने रहें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५६]

स्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृद्वृहती ।

४ विराङ्गवृहती । ६, ८ वृहती । ३ विराद् पंक्तिः । ६, ७ निचृतपंक्तिः ॥

नवर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने शर्धीन्तमा गुणं पिण्डं रुक्मेभिरुक्षिभिः ।

विशो अद्य मरुतामवृह्ये द्विवश्चिद्रोचनादधिः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! प्रधान पुरुष जनो ! (दिवः चित् रोचनात्) कान्तिमान् सूर्य से अधिकृत (मरुतां गणम्) वायुओं के समान (रोचनात्) सबको रुचिकर और सबको प्रसन्न करने वाले, सर्व-

प्रिय, (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (अधि) अधिकृत, उसके अधीन (शर्धन्तम्) बलवान्, सैन्यवत् शूरवीर, (अंजिभिः) अपने २ वर्गों को अभिव्यक्त करने वाले (रुक्मेभिः) रुचिकर स्वर्णमय, पदकों, पदसूचक चिह्नों, वा टाइटिलों से (पिण्ठ) सुशोभित (मस्ताम् गणम्) मनुष्यों, विद्वानों, सैनिक एवं वैद्य प्रजाजनों के गण तथा (विशः गणम्) प्रजा के समूह को (अद्य) आज, विशेष २ अवसर पर (अवः हृषे) विनयपूर्वक बुलाता हूँ ।

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।

ये ते नेदिष्टं हृवनान्यागमन्तान्वर्धं भीमसन्दृशः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक पुरुष ! तू (हृदा) अन्तःकरण से (यथा चित् मन्यसे) जैसे भी उत्तम जाने (तत् इत्) वे ही (आशसः) उत्तम स्तुति योग्य, अधिकार पद पर रहकर शासन करने वाले वा (मे आशसः) मेरे अधीन रहकर शासन करने वाले, और मुझे चाहने वाले हैं वे (मे जग्मुः) मुझे प्राप्त हों । और हे नायक ! नेतः (ये) जो (ते नेदिष्टं) तेरे अति समीप (हृवनानि) देने योग्य कर आदि, और लेने योग्य वेतनादि (आ गमन्) प्राप्त कराते और लेते हैं (तान्) उन (भीम-सं-दृशः) भयंकर रूप से दीखने वाले, विशाल आकार के प्रचण्ड पुरुषों को भी (वर्धं) बढ़ा, प्रोत्साहित कर और पद की वृद्धि कर । राजा अपने अधीन, नायकों द्वारा उत्तम, शासकों और प्रचण्ड सैनिकों को रखें, उन्हें वेतन दे, उनसे करादि संग्रह करे और शासन करे । मील्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्युस्मदा ।

ऋक्षो न वौ मरुतः शिर्मीवाँ अमो दुधो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥

भा०—(मीहुष्मती पराहता, मदन्ती) वर्षा करने वाले मेघ से युक्त मेघमाला जिस प्रकार वायु से प्रेरित होकर सबको हर्ष देती हुई आती है उसी प्रकार (मीहुष्मती) बाण वर्षा और ऐश्वर्यों की वर्षा करने में

समर्थ, योग्य, वलवान् प्रजापोषक स्वामी की भी (पृथिवी) पृथिवी चासिनी प्रजा (परा-हता) शत्रु सेना से ताड़ित होकर (मदन्ती) हर्ष-युक्त होती हुई (अस्मत्) हम शासक जनों को (आ एति) प्राप्त होती है। हे (महतः) प्रजाजनो, विद्वानो वा वीर पुरुषो ! (वः) आप लोग (अमः) सहायक, शरण योग्य, गृह के समान आश्रय दाता पुरुष (अमः) शत्रु से न मरे जाने वाला, शत्रु को पीड़ित करने में समर्थ, अप्रतिम, ऐश्वर्य वा वलशाली, (क्रक्षः न) सूर्यवत् तेजस्वी, सदा अचौनीय, वेदाज्ञाओं का पालक, वा क्रक्ष अर्थात् रीढ़ के समान भयंकर, वलशाली, (शिमीवान्) कर्मण्य, (दुधः) शत्रु से अजेय, (गौः इव) महा वृषभ के समान (भीमयुः) भयप्रद होकर प्रयाण करने हारा। वा (गोः न भीमयुः) गमनशील अश्व के समान भी प्रचण्ड वेग से जाने हारा हो। नि ये रिणन्त्योऽसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।

अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो वीर पुरुष (गावः न) अश्वों या बैलों के समान (दुर्धुरः) कठिनता से वश आने वाले, प्रचण्ड होकर (ओजसा) पराक्रम से (वृथा) अनायास हीं। (नि रिणन्ति) शत्रुओं को नाश करते हैं। वे (यामभिः) अपने प्रयाणों, या चढ़ाइयों द्वारा (स्वर्य अश्मानं) गर्जते मेघ के समान और (पर्वतं) पर्वत के समान अचल, उक्तत (गिरिम्) अपने राष्ट्र को निगलने वाले या गर्जते शत्रु को भी (प्र च्यावयन्ति) अस्थिर कर देते हैं। अथवा—(स्वर्यं चित् अश्मानं) शब्दकारी, और संतापकारी 'अइम्', विद्युत् वा वज्र के समान ही (गिरिं पर्वतं) मेघ और पर्वतवत् गर्जते, एवं पालन करने वाले अपने राजा को भी (प्र च्यावयन्ति) उत्तम रीति से चलाते उत्तम पद को पहुंचाते हैं।

उत्तिष्ठ नुनमैषां स्तोमैः समुक्तिनाम् ।

मुरुतां पुरुतमपूव्यं गवां सर्गमिव ह्ये ॥ ५ ॥ १९॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! तू (पषाम्) इन (समुक्षितानाम्) अच्छी प्रकार से अभिपिक्त, (मरुतां) वायुवत् बलवान् पुरुषों के (स्तोमैः) उत्तम बलवीरों द्वारा (नूनम्) निश्चय से (उत् तिष्ठ) सब से उच्च पद पर चिराज । मैं तुझको (गवां सर्गम् इव) गौओं के बीच में सृष्टि उत्पादक वृषभ के समान वा (गवां सर्गम्) समस्त वाणियों, आज्ञाओं का दाता, एवं समस्त भूमिवासी प्रजाओं के बीच, विधाता, शासक और (पुरुतमम्) सब प्रजाओं में श्रेष्ठ, (अपूर्वम्) अपूर्व, सर्वोत्कृष्ट पद के योग्य (ह्ये) कहता हूँ । उत्तम पद के योग्य बतलाता हूँ । (२) हे विद्वान् ! शिष्य ! तू सम्यक् स्नात, निष्णात विद्वानों के (स्तोमैः) उपदेशों से ऊंचा उठ । पूर्व के जनों से अप्राप्त सर्वश्रेष्ठ, वाणियों के उत्पन्न पुत्रवत् वा सूर्य की किरणों से उत्पन्न जलवत् जानकर तुझको (ह्ये) मैं गुरु उपदेश करूँ । इत्येकोनविशो वर्गः ॥

युद्धवं हारुषी रथे युद्धवं रथेषु रोहितः ।
युद्धवं हरी अजिरा धुरि वोद्धवे वहिष्ठा धुरि वोद्धवे ॥६॥

भा०— हे विद्वान्, वीर, एवं शिल्पी जनो ! आप लोग (रथे) रथ में (अरुषीः) लाल वर्ण की धोड़ियों के समान (रथे) रमण करने योग्य गृहस्थ आदि उत्तम कार्यों में (अरुषीः) दीसियुक्त, तेजस्विनी, रोपरहित प्रजाओं को (युद्धम्) नियुक्त करो । (रथेषु रोहितः) रथों में लाल धोड़ों के तुल्य उत्तम २ कार्य में (रोहितः) तेजस्वी पुरुषों को (युद्धम्) नियुक्त करो । (वोढवे धुरि) वहन करने अर्थात् काम का भार या जिम्मेवारी अपने ऊपर उठाकर चलने वाले पुरुष के कार्य के धारण करने के मुख्य पद पर (धुरि हरी) रथ के धुरा में दो अध्यों के समान दो उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों को (युद्धम्) नियुक्त करो, उनमें एक मुख्य और एक सचिव हो । इसी प्रकार (वोढवे धुरि वहिष्ठा) वहन या कार्यसञ्चालन करने वाले के स्थान पर दोनों योग्य

पुरुष (वहिष्ठा) कार्य को आगे बढ़ाने और ले चलने में सबसे उत्तम होने चाहियें ।

उत स्य वाज्यं पुरुषस्तुविष्वाशीरिह स्म धायि दर्शीतः ।

मा वौ यामेषु मरुतश्चिरं करुत्प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (अरुषः) तेजस्ती और रोप से रहित, अकोधी, (तुविस्त्वनिः) बहुत उच्च ध्वनि करने में समर्थ, (दर्शीतः) दर्शनीय रूप और गुणों वाला (स्यः वाजी) वह ज्ञान और शक्ति तथा पैश्वर्य का स्वामी राजा वा प्रधान, बलवान् अश्व के समान समर्थ पुरुष (इह धायि स्म) इस कार्य में स्थापित किया जाय । हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे वैश्य जनो ! (वः) जो आप लोगों के (या मेषु) आने जाने के मार्गों और प्रजा के नियन्त्रण के कार्यों में कोई नियुक्त पुरुष एवं रथ में जुता अध्यादि भी (चिरं मा करत्) विलम्ब न किया करे । (रथेषु) रथों में लोग अश्व के समान आप लोग (तं) उसको (रथेषु) रमण योग्य, एवं शीघ्रता से करने योग्य कार्यों में (प्र चोदत) अच्छी प्रकार प्रेरित करो ।

रथं नु मारुतं वृयं श्रवस्युमा हुवामहे ।

आ यस्मिन्तुस्थौ सुरणान्ति विभ्रती सचा मरुतसु रोदसी ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (मारुतं) वायु के बल वा वेग से चलने वाले (श्रवस्युम् रथं) यशोजनक, वा श्रवण योग्य शब्द वा विशेष ध्वनि से युक्त (रथम्) रथ को (आ हुवामहे) उत्तरोत्तर उश्चत रूप में बनाना चाहें । (यस्मिन्) जिसमें (सुरणानि) उत्तम रमण, आनन्द-विनोद एवं उत्तम युद्ध कीड़ा आदि (विभ्रती) करते हुए (रोदसी) दुष्ट को रुलाने वाले पालक सूर्य पृथिवीवत् राज प्रजा वर्ग सचा, एक साथ (मरुतसु) मनुष्यों के बीच (तस्थौ) विराजें । अथवा । (मारुतं) मनुष्यों के हितकारी, (श्रवस्युम्) उत्तम उपदेश

योग्य वा कीर्ति जनक उत्तमोत्तम राष्ट्र रूप रथ पर चढ़कर उत्तम रूप से रमण करते हुए (सचा) सुख से प्रजावर्ग के साथ रहें ।

तं वृः शर्वै रथेशुभै त्वेषं पन्तस्युमा हुवे ।

यस्मिन्नसुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मील्हुषी १२०।४

भा०—हे प्रजाजनो ! हे वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (रथे शुभं) रथ में शोभा पाने वाले, (त्वेषम्) अति दीसि युक्त (पनस्युं) स्तुत्य, (शर्वम्) बल, सैन्य को मैं (आहुवे) आदर पूर्वक बुलाता हूँ । (यस्मिन्) जिसमें (सुजाता) उत्तम, कार्यों से प्रसिद्ध (मीढुषीं) शत्रु पर शर आदि बरसाने वाली सेना (मरुत्सु मीढुषी) वायुओं पर आश्रित बरसती घटा के तुल्य (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती स्त्री के तुल्य (महीयते) मान आदर प्राप्त करती है । इति विंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थैऽनुवाक ॥

[५७]

श्यावाश्व आत्रेय क्रीषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५ जगती । २, ६ विराङ्गजगती । ३ निचूर्जगती । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ निचूर्तन्त्रिष्टुप् ॥
अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ रुद्रासु इन्द्रवन्तः सजोपसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वौ अस्मत्प्रति हर्यते मृतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने वाले, शत्रुओं को रोकने वाले, और (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान् एवं शत्रुहन्ता नायक को अपना स्वामी बनाकर, (सजोपसः) समान प्रीतियुक्त, समान रूप से अधिकारों और ऐश्वर्यों का भोग करते हुए (हिरण्यरथा) सुवर्ण लोह आदि धातुओं के बने रथों पर स्थित होकर (सुविताय = सु-इताय) सुख से जाने वा उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (आ गन्तन) आया

जाया करो । (हमं) यह (मतिः) ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत्) हमसे और (दिवः) हमारी शुभ कामना (वः) आप लोगों को (प्रति हर्यते) निरन्तर ऐसे प्राप्त हो जैसे (उदन्यवे तृष्णजे) जल के इच्छुक, पियासे पुरुष के लिये (उत्साः) कूप की जलधाराएँ वा (दिवः उत्साः) आकाश से जलधाराएँ प्राप्त हों । अर्थात् हमारे शुभ संकल्पों के लिये आप सदा उत्सुक रहा करें ।

वाशीमन्त ऋषिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान् इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मंस्तोयाथना शुभम् ॥३॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो, शिल्प जनो और वीर पुरुषो ! आप लोग (वाशीमन्तः) उत्तम वाणियों, शिल्प साधनों से युक्त, (ऋषिमन्तः) ज्ञान और युद्धोपयोगी शक्तियों से युक्त, (मनीषिणः) मन को यथेष्ट विषय में प्रेरने वाले, जितेन्द्रिय, मनस्वी, ज्ञान के इच्छुक, (सुधन्वानः) उत्तम धनुर्धर, (इषुमन्तः) वाणों से सम्पन्न, (निषङ्गिणः) तर्कस और खाण्डे वाले, (सु अथाः) उत्तम अश्वारोही, (सु-रथाः) उत्तम रथारोही, (सु-आयुधाः) उत्तम हथियारों से सजे, और (पृश्निमातरः) आदित्य के समान तेजस्वी वेद, गुरु वा राजा, अन्तरिक्ष के समान आश्रयदाता और भूमि के समान अच्छप्रद स्वामी को माता के समान मानने वाले होवो । आप लोग (शुभं) शुभ, शोभाजनक, उत्तम मार्ग को या युद्धकर्म को लक्ष्य करके (याथन) प्रयाण करो । पक्षान्तर में—वायुगण (पृश्निमातरः) सेचक मेघों के उत्पादक हैं । वे (शुभं याथन) सर्वत्र जल प्राप्त करावें ।

धुनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृष्ठीरयुग्धवम् ॥३॥

भा०—हे (पृश्निमातरः) पृथिवी माता वा तेजस्वी ज्ञानी वा वीर पुरुष को मानृसमान जान उसके पुत्र जनो ! वीर पुरुषो ! विद्वानो !

आप लोग (यद्) जब (उग्रः) उग्र, बलवान्, होकर (पृष्ठीः) चित्र विचित्र, जल वर्षाने वाली मेघघटाओं के समान अश्वों और सेनाओं को (शुभे) जल प्रदान के तुल्य उत्तम कर्म, शरवर्षण के निमित्त (अयुड्धम्) रथ, युद्धादि कार्यों में लगाते हो तब (याम्) कामना योग्य तेजस्वी नायक पुरुष को (धूनुथ) प्राप्त होते हो, (यां धूनुथ) पृथिवी को वा अन्तरिक्ष और विजिगीपु शत्रु को और (पर्वतान्) पर्वत वल दृढ़, अचल शत्रु जनों को भी (धूनुथ) कंपा देते हो । हे (यामनः) यान करने हारो ! (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (वना) वायुओं से वनों के समान (वना) शत्रु के वनवत् सैन्य समूह (निजिहते) पराजित होकर कांपते, एवं रण छोड़ कर भागते हैं । आप लोग (पृथिवी) समस्त भूमण्डल को (कोपयथ) विक्षुद्ध करने में समर्थ होते रहे । वांतत्विषो मरुतो वृष्टिनिर्णिजो युमा इव सुसंदृशः सुपेशासः । पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसुः प्रत्वक्षसो महिना यौरिंवोरवः ४

भा०—(वात-त्विषः) वायु वा प्राण के समान विद्युत् वा उत्तम तीक्ष्ण कान्ति को धारण करने वाले, (वर्ष-निर्णिजः) वर्षों तक शुद्ध आचरण से अपने को शुद्ध करने हारे जलों द्वारा पदभिषिक्त (यमाः इवः) संयम के पालक तपस्वियों के समान, इन्द्रियों के नियन्ता (सु-स-दृशः) उत्तम रीति से सबको एक समान देखने वाले, (सु-पेशासः) उत्तम रूपवान्, (पिशङ्गाश्वाः) पीले घोड़ों वाले, (अरुणाश्वाः) और लाल घोड़ों वाले, (प्रत्वक्षसः) अच्छी प्रकार शत्रुओं का छेदन भेदन करने में समर्थ और (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (यौः इव) सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी वा नायक के तुल्य (उरवः) महान् पराक्रमी हों । और वे —

पुरुद्रुप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसन्दृशो अनवभ्राधसः ।
सुजातासो जनुषां रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ५२१

भा०—पूर्वमन्त्र में कहे वीर पुरुष (पुरुदप्साः) वायुओं के समान अपने में जलवत् बहुत प्रकार के बलों, वीरों को धारण करने वाले, (अ-ज्ञिमन्तः) नाना कामनाओं और अभिव्यञ्जक चिन्हों को धारण करने वाले (सु-दानवः) उत्तम जलवत् धनैश्वरों के दान करने और शत्रु खण्डन और प्रजाओं का पालन करने वाले, (त्वेष-सन्दशः) कान्ति वा तेज से समान रूप से दर्शनीय, (अनवभ्र-राधसः) धनैश्वरों को नाश न होने देने वाले, सदा सम्पन्न, (जनुषा) जन्म से ही (स्वभावतः सुजातासः) माता और गुरु जनों से जन्म, और विद्या जन्म प्राप्त कर उत्पन्न वा प्रसिद्ध हुए, (रुक्म-वक्षसः) छाती पर सुवर्ण के आभूषण धारण करते हुए, (दिवः-अर्काः) सूर्य के किरणों के तुल्य, तेजस्वी, पूज्य, होकर (अमृतं नाम) अमृत, अविनाशी मार्गों को (वि भेजिरे) धारण करें । (२) वायु गण (वर्ष-निर्णिजः) वर्षा द्वारा जगत् को धोने वाले वा वर्षाओं के दोष को दूर कर शुद्ध करने वाले, (पुरुदप्साः) बहुत जलों वाले, (त्वेष-संदशः) विद्युत् दीपि से ज्ञात होने वाले, (अमृतं) जल और प्राण जीवन को धारण करते हैं । इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऋषयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो ब्राह्मो बलं हितम् ।
नुम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वृः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ६

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् शूरवीर पुरुषो ! (वः अंसयोः अधि) आप लोगों के कंधों पर (क्षष्टयः) शत्रुनाशक हथियार हों और (वः ब्राह्मोः) आप लोगों की बाहुओं में (सहः) शत्रु को पराजय करने में समर्थ (ओजः बल) पराक्रम और बल (हितम्) विद्यमान हों । और (शीर्षसु) आप लोगों के शिरों पर (नुम्णा) मनुष्यों को अच्छा लगाने वाले मुकुट, पगड़ी आदि हों और (वः रथेषु) आप लोगों के रथों पर (आयुधानि) शत्रु अस्ति हों, और (वः तनूषु अधि) आप लोगों के शरीरों पर (विश्वा श्रीः पिपिशे) समस्त ऋकार की लक्ष्मी, विराज कर सुशोभित करे ।

गोमुदश्वांवृद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवृद्राधो मरुतो ददा नः ।

प्रशस्ति नः कृणुत रुद्रियासो भक्तीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७॥

भा०—हे (मरुतः) वीरो और विद्वानो ! आप लोग (गोमत्) गौओं (अश्वावत्) अश्वों और (रथवत्) रथों से सम्पन्न और (चन्द्रवत्) सुवर्णादि से युक्त (सुवीरं) उत्तम पुत्रों और वीरों से सेवित, (राधः) ऐश्वर्य (नः दद) हमें प्राप्त कराओ । हे (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वाले 'रुद्र' सेनापति के हितैषी जनो ! (नः प्रशस्ति कृणुत) आप लोग हमारा शासन उत्तम रीति से करो । हम लोग (वः) आप लोगों के (दैव्यस्य) देव, तेजस्वी राजा के द्वारा अनुशासित (अवसः) रक्षा आदि प्रबन्ध का (भक्तीय) अच्छी प्रकार भोग करें ।

हुये नरो मरुतो मूळतो नस्तुवीमधासो अमृता ऋतज्ञाः ।

सत्यश्रुतः कवयो युवान्नो बृहदृद्धिरयो बृहदुक्तमाणाः ॥८॥२२॥

भा०—(हये) हे (नरः) नायक, नेता पुरुषो ! हे (मरुतः) वायुचत् बलवान् शत्रुओं को मारने और शरीर से युद्धादि जीवन संकटों में स्थिर भी मरने वाले ! वीरो ! विद्वानो ! आप लोग (तुविमधासः) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामी, (अमृताः) दीर्घायु, (ऋतज्ञाः) सत्य ज्ञान को जानने वाले, (सत्यश्रुतः) सत्य ज्ञान को श्रवण करने वाले, (कवयः) दूरदर्शी, मेधावी, (युवानः) जवान, (बृहदृगिरयः) बड़े उपदेष्टा और (बृहत्) बड़े भारी ज्ञान और ऐश्वर्य को (उक्षमाणाः) वहन करने वाले होकर (नः मृडत) हमें सुखी बनाओ । इसि द्वाविंशी त्र्यगः ॥

[५८]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ चन्द्रः—१, ३, ४, ६ निचृत-

त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

तमुं नुनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गुणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य श्राश्वश्वा अमृद्वहन्त उतेशिरे श्रमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसीनां) नयी, नयी, सदा नवीन, प्रजाओं में विद्य-
मान (एषां) इन मनुष्यों के (तविषीमन्तं) बल से युक्त (मारुतं गणं)
शत्रुओं को मारने वाले प्रबल गण के विषय में—(स्तुषे) मैं उपदेश
करता हूँ (ये) जो (आशु-अश्वाः) तीव्र वेगवान् अश्वों अश्वारोहियों के
स्वामी हों और जो (स्व-राजः) स्वयं तेज से देवीप्यमान होकर (अमवत्)
बलवीर्य के तुल्य (अमृतस्य) दीर्घ आयु को (वहन्त) धारण करते हुए
(ईशिरे) ऐश्वर्य प्राप्त करते और शासन करते हैं ।

त्वेषं गुणं त्रुवसुं खादिंहस्तं धुनिंवतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्रतुविराधसो नृन् ॥२॥

मा०—हे (विप्र) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हरे राजन्
विद्वन् ! मेधाविन् ! तू (त्वेषं) दीप्तिमान्, (तवसं) बलवान्, (खादि-
हस्तं) हाथों में कटक आदि आभूषण तथा, वज्र, तलवार आदि लिये,
सशस्त्र, (धुनि-वतं) शत्रु को कंपाने का कार्य करने वाले, अथवा जल-
प्रवाह के समान एक समान रूप से जाने वाले, (मायिनम्) उत्तम बुद्धियों
से सम्पन्न, (दातिवारम्) दान, को प्रेम और श्रद्धा से स्वीकार करने
वाले, (गणं) गण्य, मान्य पुरुषों को (वन्दस्व) अभिवादन कर और
उनके गुणों की प्रशंसा किया कर । और (ये) जो लोग राष्ट्र में (मयो-
भुवः) सुख शान्ति उत्पन्न करने हरे (महित्वा) महान् सामर्थ्य से
(अमिताः) अनन्त पराक्रम और ज्ञान से सम्पन्न हों उनको और
जो (तुवि-राधसः नृन्) बहुत अराधना करने वाले या बहुत ऐश्वर्य वाले
नायक पुरुष हों उनको भी (वन्दस्व) आदर पूर्वक नमस्कार कर ।
वेद ने मानवों में आदरणीय सभी गुणों को दर्शाने वाले ताजा विशेषण

दर्शाएँ हैं, उन नाना गुणों से युक्त नाना प्रकार के पुरुषों का मान आदर करना चाहिये ।

आ वौ यन्त्रद्वाहसो अद्य वृष्टि ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।

अयं यो अशिर्मृतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (ये) जो (विश्वे मरुतः) सब मनुष्य वायु गण के समान (वृष्टि) वर्षा के तुल्य ऐश्वर्य, धन, सम्पदा का वर्षण (जुनन्ति) करते हैं वे (उद्वाहसः) जलों को नाना स्थानों पर पहुंचाने वाले जल-विद्यावित्, जल, नहर कूप आदि के शिल्पीजन (वः) तुम लोगों को (आ यन्तु) प्राप्त हों । हे (मरुतः) विज्ञानवान् पुरुषो ! (यः अयं) यह जो (सम-इद्धः) खूब तेजस्वी (अग्निः) अग्नि के तुल्य, अग्नी, ज्ञानप्रकाशक और प्रताप से युक्त वीर और विद्वान् पुरुष हैं वे आप (कवयः) विद्वान् बुद्धिमान् (युवानाः) युवा पुरुषो ! (एतं जुषध्वम्) उसका नित्य सेवन किया करो ।

युयं राजानुभियं जनाय विभवतष्टं जनयथा यजत्राः ।

युष्मदेति मुष्टिहा ब्राहुजूतो युष्मत्सदैश्वो मरुतः सुवीरः ॥ ४ ॥

भा०—हे (यजत्राः) यज्ञशील, पुरुषो ! परस्पर संगत स्त्री पुरुषो ! मैत्री और संघ बनाकर रहने वाले प्रजाजनो ! (युयम्) आप लोग, (इयं) शत्रुओं को कंपाने और भूत्यों व अधीनों को सन्मार्ग में चलाने वाले (विभवतष्टं) मेधावी ज्ञानवान् पुरुषों द्वारा उपदेश, ताडना, शिक्षा विषयादि द्वारा तैयार किये वा उनके बीच तीव्र प्रजायुक्त, पुरुष को (जनाय) प्रजाजन के हित के लिये (राजानम्) तेजस्वी (जनयथा:) बनाओ । ऐसे को अपना रक्षक बनाओ । हे (मरुतः) मनुष्यो ! (ब्राहु-जूतः) ब्राहुबलशाली, (मुष्टिहा) मुक्तों से ही शत्रु को मार देने वाला, वा राष्ट्र में से मुष्टि अर्थात् चोरी आदि का नाश कर देने वाला, वा

(मुष्टिहा) मुष्टी के समान संघ बना कर रहने वाले पांचों प्रजाओं द्वारा शत्रु को दण्डित करने वाला पुरुष (युध्मत् एति) तुम लोगों के बीच में से ही आता, प्रकट होता है और (सद्-अथः) उत्तम अश्वों का स्वामी, और जितेन्द्रिय (सु-वीरः) उत्तम वीर्यवान्, वीर सैन्य पुरुष भी (युध्मत्-एति) तुम में से ही उत्पन्न होता है ।

आरा इवेदचरमा अहेऽव प्रश्न जायन्ते अकवा महोभिः ।

पृश्नः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मृत्या मृत्युः सं मिमिक्षुः॥५॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः अचरमा) वायु गण अनन्त, (अकवा:) अकुलित विमल जल वाले, (पृश्नः पुत्राः) सूर्य के पुत्र और पृथिवी के पुरुषों के पालक (स्वया मत्या) अपनी शक्ति से (संमिमिक्षुः) खूब वर्षा करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) हे वीर मनुष्यो ! आप लोग (अरा: इव) चक्र में लगे आरों या ढण्डों के समान (अचरमा:) एक दूसरे के ऐसे पीछे रहा कि कोई अन्तिम, अरक्षित प्रतीत न हो अर्थात् चक्रव्यूह बना कर रहो । और आप लोग (महोभिः) तेजों और महान् सामर्थ्यों से (अहा इव) दिनों के समान प्रकाशित होकर (अकवाः) परस्पर कभी कुलित वचन न कहते हुए, अनल्प सामर्थ्यवान् होकर (प्र प्र जायन्ते) बराबर एक दूसरे के पीछे आते जाया करो ऐसे आप लोग (पृश्नेः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा और अद्वदात्री भूमि और मेघवत् निष्पक्षपात् गुरु और सेक्ता पिता के (पुत्राः) पुत्र होकर (उपमासः) सभी एक दूसरे के तुल्य एवं अन्यों के आगे उपमा या उत्तम दृष्टान्त होने योग्य, सर्वानुकरणीय, (रभिष्ठाः) अति अधिक बल से कार्य प्रारम्भ करने वाले, वेगवान्, बलवान् होकर (स्वया मत्या) अपनी वृद्धि और शक्ति से (सं मिमिक्षुः) परस्पर मिल कर शत्रु पर शरवर्षण, गृहस्थ में निषेक, एवं राष्ट्र में राज्याभिषेक, और प्रजावर्ग में श्रेवादि सेक और परस्पर की वृद्धि किया करो ।

यत्प्रायासिष्टु पृष्ठीभिरश्वैर्व॒द्गुप्ति॑भिर्म॒रुतो रथै॒भिः ।

क्षोदन्तु आपै॒ रिणै॒ते वन्नान्यवैस्त्रियौ॒ वृप॒भः कृन्दतु॒ द्यौः ॥६॥

भा०—(मरुतः पृष्ठीभिः) वायु गण जिस प्रकार जल सेचन करने वाली मेघ-घटाओं से और (वीढु-पविभिः) वलवान् वज्राधातों से प्रहार करते हैं, तब (आपः क्षोदन्ते) जल वून्द २ में फट २ कर आते हैं और (वनानि रिणते) वृक्ष-वनों को आधात करते हैं और (उस्त्रियः वृपभः) किरणों का स्वामी वर्षणशील (द्यौः) सूर्य और (उस्त्रियः) पृथिवी का हितैषी मेघ रूप से गर्जता है। उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जब आप लोग (पृष्ठीभिः) शत्रु पर शरवर्षण करने वाली सैन्य घटाओं और मद सेचन करने वाली गज घटाओं तथा (अष्टैः) वेगवान् अश्वों से और (वीढु-पविभिः) दृढ़ चक्र धार वाले (रथैभिः) रथों से (प्रायासिष्ट) प्रयाण करते और तुम्हारा नेता भी उक्त साधनों सहित प्रयाण करता है, तब (आपः) आस, प्रजा गण (क्षोदन्ते) धनैश्वर्यादि से बरसते हैं, और (वनानि रिणते) सैन्य जन और ऐश्वर्य ग्रास होते हैं और (उस्त्रियः) भूमि का हितैषी, वा किरणों से तेजस्वी, (द्यौः) सूर्य के समान प्रकाशमान वीर पुरुष (अव क्रन्दतु) गर्जना करे ।

प्रथिष्ट याम॑न्पृथिवी चिंदेषु॑ं भर्तै॒व गर्भ॑ स्वमिच्छु॒वो धुः ।

वातुान्व्यश्वा॑न्धुर्यौ॒ युयु॒ज्ञे वृष्ट॑ स्वेद॑ चकिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥

भा०—(एषां यामन् पृथिवी प्रथिष्ट) वायुओं के चलने पर जिस प्रकार पृथिवी भी अति विस्तृत क्षेत्र है उसी प्रकार (एषां यामन्) इन वीर पुरुषों के शासन और प्रयाण करने के काल में (पृथिवी) यह भूमि (प्रथिष्ट) अति विस्तृत और प्रसिद्ध हो । (भर्ता यथा स्वं शवः गर्भं दधाति) रुदी का पति जिस प्रकार अपने वीर्य को गर्भ रूप से धारण करता है उस प्रकार वायु गण भी (स्वं शवः) अपने जल रूप (गर्भ),

गृहीत अंश को अन्तरिक्ष में धारण करते हैं उसी प्रकार वीर पुरुष भी (भर्ता इव) अपने पालक राजा के समान ही (गर्भम्) ग्रहण करने योग्य (स्वम् इत् शब्दः) अपने धन और बल को (धुः) धारण करे जिस प्रकार (धुर्याः) धारक वायु गण (वातान् युयुज्रे) वायु के ज्ञकोरों का लगाते हैं उसी प्रकार (धुर्याः) सैन्यों और राष्ट्र के धारण करने में समर्थ, कुशल पुरुष (वातान् अश्वान्) वायुवत् तीव्रगामी अश्वों को (युयुज्रे) रथ में जोड़े । और (रुद्रियासः) दुष्टों को रुलाने वाले वे वीरजन (वर्ष) वर्षा के तुल्य ही प्रस्वेद को (स्वेदं चक्रिरे) उत्पन्न करें अर्थात् श्रमपूर्वक धनोपार्जन और विजय करें ।

हृये नरो मरुतो मूळता नस्तुवीमधासो अमृता प्रृत्वाः ।

सत्यश्रुतः कवयो युवानो वृहद्गिरयो वृहदुक्तमाणाः ॥१॥२३॥

भा०—हे (मरुतः नरः) वायुवत् बलवान्, प्राणवत् प्रिय, नायक पुरुषो ! आप लोग (तुवि-मधासः) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी (अमृताः) दीर्घायु और (ऋत-ज्ञाः) सत्य ज्ञान के जानने वाले होकर (नः मृडत) हमें सदा सुखी करो । आप लोग (सत्य-श्रुतः) सत्य ज्ञान का श्रवण करने वाले, (कवयः) कान्तदर्शीं, (युवानः) सदा जवान, शक्तिमान्, (वृहद्-गिरयः) गुणों में बड़े, पर्वत वा मेघ के तुल्य सुखों की धारा बहाने वाले और (उक्तमाणाः) वायुओं के तुल्य क्षेत्रों में जल वीर्यादि सेचन करते हुए (वृहत्) बहुत सा धन धान्य, प्रजा, ऐश्वर्य भी प्राप्त करो । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५६]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ अन्दः—१, ४ विराङ् जगती ।
२, ३, ६ निचृज्जगती । ५ जगती । ७ स्वराद् त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥
प्र वः स्पल्क्रन्तसुविताय द्वावनेऽर्चाँ द्विवे प्र पृथिव्या ऋृतं भरे ।
उक्तन्ते अश्वान्तरुपन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१॥

भा०—हे राजन् ! जो वीर पुरुष एवं प्रजा के लोग (सुविताय) उत्तम मार्ग में सुखपूर्वक जाने के लिये, सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिये और (दावने दिवे) दानशील तेजस्वी पुरुष राजा के लिये और (पृथिव्यै) और पृथिवी वा उसके वासी जनों और अज्ञानी आश्रित जनों के (भरे) भरण पोषण वा संग्रामादि के लिये (क्रतम् प्र अक्रन्) जल, अन्न उत्पन्न करते और सत्य न्याय की व्यवस्था वा प्रयाण करते हैं, हे राजन् ! तू (स्यद्) सर्वदृष्टा, सर्वाध्यक्ष होकर भी उनका (प्र अर्च) अच्छी प्रकार आदर-सत्कार किया कर । इसी प्रकार जो वीर, प्रजा जन (अश्वान् उक्षन्ते) अश्वों को सेचते या अश्व सैन्यों को संवालित करते हैं, उनका भरण पोषण, वर्धन आदि का भार अपने ऊपर लेते हैं, और जो (रजः) समस्त लोक को (तरुणत्वे) व्यापते, दुनियां भर में जाते आते रहते हैं, और जो (अर्णवैः) जल भरे समुद्रों वा नदियों द्वारा (अनु) निरन्तर (स्वं भानुं) अपने तेज वा देवीप्यमान धनैश्वर्य को (श्रथयन्ते) सञ्चित करते हैं उन व्यापारी और यान-कुशल लोगों का भी तू (प्र अर्च) अच्छी प्रकार आदर कर । ये वायुगण (दिवे पृथिव्यै क्रतम् अक्रन्) आकाश से जल और पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करते हैं (अश्वान्) मेघों वा सूर्य किरणों को धारते, उन द्वारा वृष्टि कराते, (रजः) अन्तरिक्षों में वेग से जाते, जलों सहित (भानुं) सूर्य प्रकाश को शिथिल, सहा कर देते हैं ।

अमदेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पुर्णी क्षरति व्यथिर्युती ।
द्वूरेद्युगो ये चितयन्तु एमभिरन्तर्महे विदश्ये येतिरे नरः ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन वायुवत् बलवान् पुरुषों के (भियसा) भय से (भूमिः) भूमि (नौः न) नाव के समान (पृजति) कांपती है । और (अमात् यती) घर से निकलती हुई (व्यथिः) दुःखों से पीड़ित हुई द्यों के तुल्य यह (पूर्ण) जल से पूर्ण, या सर्वपालक अन्तरिक्ष परराष्ट्र

भूमि भी (क्षरति) अश्रुवत् जल वर्षण करती है । (ये) जो विद्वान् और वीर पुरुष (दूरे-दशः) दूरवीक्षणादि यन्त्रों से दूर देशों तक देखने में समर्थ एवं वृद्धिपूर्वक दूर भविष्य को भी देख लेने वाले हैं वे (एमभि:) ज्ञानों से, मार्गों से, और अपने गमन, आचरणादि से (चितयन्त) अन्यों को सेचत करें और (नरः) वे नायक जन (अन्तः महे विद्यथे) भीतरी, बड़े भारी ज्ञान और यज्ञ संग्रामादि में भी (येतिरे) यज्ञशील हों ।

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षु रजसो विसर्जने ।

अत्या इव सुभव श्वारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३॥

भा०—हे (नरः) उत्तम नायको ! हे विद्वान् पुरुषो ! (गवाम-इव शृङ्गम् उत्तमम्) जिस प्रकार गौवों का सींग सब से ऊंचा तथा (श्रियसे) उसके शरीर की शोभा के लिये भी होता है उसी प्रकार आप लोगों का (उत्तमम्) सबसे उत्तम (शृङ्गम्) शक्तु को मारने वाला शक्त्यास बल भी (श्रियसे) प्रजा को आश्रय देने और शोभा, लक्ष्मी की वृद्धि के लिये हो । (रजसः विसर्जने सूर्यम् चक्षुः) प्रकाश और जल के देने के लिये जिस प्रकार सूर्य ही सर्वप्रकाशक है, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! (रजसः विसर्जने) राजस भावों के ल्याग और अन्य लोगों के विविध मार्गों में चलाने के लिये आप लोगों का (चक्षुः) सत्य तत्त्वदर्शीं दर्शन ही सूर्यवत् प्रकाशक हो । और आप लोग (अत्याः इव) वेगवान् अश्वों के समान (सुभवः) उत्तम सामर्थ्यवान्, उत्तम क्षेत्र से उत्पन्न, उत्तम भूमियों के स्वामी और (चारवः) उत्तम मार्ग में चलने वाले (स्थन) होवो । और आप लोग (श्रियसे) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (मर्या: इवः) सामान्य मनुष्यों के समान होवो, (चेतथ) सदा सावधान रहो, पदाधिकार के मद में अपव्ययी और उपेक्षाकारी मत होवो ।

को वौ महानित महतामुदश्ववत्कस्काव्या मरुतः को ह पौस्या ।
युयं ह भूर्मि किरणं न रैजथ प्र यद्वरध्वे सुविताय द्रावने ॥४॥

भा०—हे वीरो विद्वान् पुरुषो ! (महतां वः) आप बड़े सामर्थ्यवान् लोगों के (महान्ति) बड़े २ विज्ञान आदि सामर्थ्यों को (कः) कौन (उत् अश्वत्) पा सकता है । आप लोगों के (काव्या) विद्वानों द्वारा कहे कार्यों, विद्वान् बृद्धिमान् पुरुषों द्वारा बनाये शक्तियों का भी पार (कः) कौन पा सकता है, (पौस्या) और आप लोगों के पौरुष, पराक्रमों को भी (कः ह) कौन भुक्तावला कर सकता है । (यूयं ह) आप लोग (भूमि) भूमि को (किरणं न) सूर्य के प्रकाशक किरण के समान (प्र रेजथ) उत्पन्न और विचलित कर सकते हो । (यत्) आप लोग (सुविताव) ऐश्वर्यवान् दाता, स्वामी की वृद्धि के लिये (प्र भरध्वे) उत्तम रीति से प्रजा का भरण पोषण तथा शत्रु पर प्रहार करते हो । वे भरण पोषण द्वारा प्रजा को उज्ज्ञत और प्रहारों द्वारा शत्रु को विचलित करते हैं ।

अश्वा॑ इ॒वेद॒रुषासु॑ः सव॑न्धवः॑ शूरा॑ इव प्रयुधः॑ प्रोत् युयुधुः॑ ।

मर्या॑ इव सुवृधो॑ वावृधुर्नरः॑ सूर्यस्य॑ चक्षुः॑ प्र मिनन्ति॑ वृष्टिभिः॑ ॥

भा०—वे वीर और विद्वान् पुरुष (अश्वा॑ः इव) वेगवान् धोड़ों वा बुद्धिमानों के समान (अरुषासः) लाल वर्णों की पोषाकों वाले, वा तेजस्वी अथवा रोषरहित, (स-बन्धवः) समान रूप से परस्पर बन्धुवत् वा एक ही नायक के अधीन एक साथ समान रूप से बंधे हुए, वे (शूरा॑ः इव) शूरवीर योद्धाओं के समान (प्र-युधः) अच्छी प्रकार प्रहार करने में समर्थ होकर (युयुधुः) युद्ध करें । वे (नरः) नायक पुरुष (मर्या॑ः इव) मनुष्यों के समान (सु-वृधः) प्रजाओं की वृद्धि करते हुए स्वयं भी (ववृधुः) बढ़ें । (वृष्टिभिः) वर्षाओं से जिस प्रकार वायुगण (सूर्यस्य चक्षुः प्रमिनन्ति) सूर्योदि के प्रकाशक तेज को नष्ट करती हैं उसी प्रकार वे भी (वृष्टिभिः) शक्ताख वर्षाओं द्वारा संग्राम में (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी शत्रु जन के (चक्षुः) आंखों को (प्र मिनन्ति) अच्छी प्रकार नाश करें ।

ते अञ्ज्येष्टा अकनिष्ठास उद्धिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृथुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आनो अच्छां जिगातन ६

भा०—(ते) वे (अञ्ज्येष्टा :) ज्येष्ठ, अपने से बड़े पुरुष से पृथक् (अकनिष्ठासः) बहुत छोटे व्यक्तियों से पृथक् और (अमध्यमासः) मध्यम, समान व्यक्तियों से पृथक्, निर्मम (उद्धिदः) पृथकी को फोड़ कर उत्पन्न होने वाले वृक्षों के समान सदा ऊंचे लक्ष्य को भेदने वाले, अश्रवा उत्तम फल उत्पन्न करने वाले, उत्तम मनुष्य (महसा) महान् सामर्थ्य से (वि वृथुः) विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त करें । वे (सुजातासः) उत्तम ऐश्वर्य आदि गुणों में प्रसिद्ध (जनुषा) जन्म से, स्वभावतः (पृश्नि-मातरः) सूर्य से उत्पन्न किरणों के समान सर्वपोषक, भूमि-माता के पुत्र एवं ज्ञान, पोषक आचार्य के पुत्र तुल्य वीर जन (दिवः) नाना कामनाओं को करने वाले (मर्याः) मनुष्य (नः) हमें (अच्छ जिगातन) उत्तम रीति से प्राप्त हों ।

वयो न ये श्रेणीः पुत्तुरोज्यसान्तानिदुवो वृहृतः सानुनुस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूरचुच्युवुः ॥७॥

भा०—जो वायुवत् बलवान् वीर सैनिक गण (वयः) पक्षियों वा सूर्य की किरणों के समान (श्रेणीः) श्रेणियां या पंक्तियें बनाकर (पसुः) प्रयाण करते और (ओजसा) बल पराक्रम से (वृहृतः दिवः) बड़े २ व्यवहारों वा बड़ी कामनाओं को और (सानुनः परि) अन्न शिखर-वत् भोगने थोग्य उत्तम पद के ऊपर भी प्राप्त होते हैं । जिस प्रकार वायु गण (पर्वतस्य नभनून् अचुच्युवुः) मेघ की गर्जती जलधारों और वज्रों को चलाते वा गिराते हैं उसी प्रकार (एषाम्) इनके (उभयं) दोनों प्रकार के (अश्वासः) अश्वारोही जन (यथा विदुः) जैसा भी जानते और ऐश्वर्यादि प्राप्त करते हैं तदनुसार, (पर्वतस्य) अपने परिपालक राजा वा सेनापति के (नभनून्) आज्ञा के वचनों को (प्र अचुच्युवुः) अच्छी प्रकार

पालन करते हैं। पूर्वोर्ध्वे में कहे इनके अश्वों को दो प्रकार जानें एक जो पंक्ति-बद्ध होकर चलें दूसरे जो सुख्य पद पर स्थित हों वा स्वयं व्यवहार व्यापार एवं नाना कार्यों में नियुक्त होकर पृथक् २ जावें। न भन्वः इति तदी नाम ।

मिमांतु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।

आचुच्यवुर्दिव्यं कोशस्तेत ऋषे रुद्रस्य मुरुतो गृणानाः ॥८॥२४॥

भा०—(द्यौः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (नः वीतये) ज्ञान से प्रकाशित करने और पालन के लिये (मिमांतु) हमें प्राप्त हो, हमें उन्नत बनावे। और (अदितिः) पृथिवी जिस प्रकार (वीतये) खाने के लिये अन्न को पैदा करती है उसी प्रकार अखण्ड शासक राजा वा माता और पिता (नः वीतये) हमारे तेज और भोजनादि के लिये उपाय करे। (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान कान्तिमती, प्रिय स्त्रियें (दानुचित्राः) नाना देने योग्य आभूषणों से चित्र विचित्र, मनोहर होकर (सं यतन्ताम्) पुरुषों के साथ उद्योग किया करें। अथवा—(उषसः) दानु दग्ध करने वाली तेजस्विनी सेनाएँ (दानु-चित्राः) छेदन भेदन करने वाले हथियारों से अद्भुत आश्रयकारिणी होकर (सं यतन्ताम्) मिल कर विजय का उद्योग किया करें। हे (ऋषे) द्रष्टः ! सर्वाध्यक्ष ! (एते) ये (गृणानाः मरुतः) स्तुति योग्य पुर्व अन्यों का उपदेश करने वाले वीर और विद्वान् पुरुष, (रुद्रस्य) दुष्टों के रुलाने वाले सेनापति तथा सर्वोपदेष्ठा आचार्य के (दिव्यं कोशम्) दिव्य खङ्ग तथा दिव्य ज्ञानमय कोश को (अचुच्युवुः) आगे बढ़ कर प्रयोग में लावें। इति चतुर्विंशतो वर्गः ॥

[६०]

श्यावाश्च आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो मरुतो वाग्निश्च देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृतविष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । विराट् त्रिष्टुप् । ७, ८ जगती ॥

अष्टचं सूक्तम् ॥

ईळे आग्नि स्ववसुं नमोभिरिह प्रसुत्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिख प्र भरे वाज्यन्धिः प्रदक्षिणम् रुतां स्तोमसृध्याम् ॥१॥

भा०—मैं प्रजाजन (सु-अवस) उत्तम रक्षा करने वाले (अग्निस्) ऐसे अग्रणी पुरुष को (नमोभिः) आदर सत्कारों से (ईडे) अपने ऊपर अधिकारी बनाना चाहता हूँ जो (प्र-सत्तः) उत्कृष्ट पद पर विराज कर (नः) हमारे (कृतं) किये कामों को (वि चयत्) विवेक पूर्वक जाने, अच्छे बुरे का अच्छी प्रकार विवेक करे । और (वाज्यन्धिः रथैः) संग्राम करने वाले रथों से जिस प्रकार (मरुतां स्तोमम् भरे) शत्रु को मारने वाले वीर पुरुषों का गण संग्राम में अच्छी प्रकार समृद्ध होता है, उसी प्रकार मैं प्रजाजन (भरे) अपने पालन पोषण के लिमित (वाज्यन्धिः रथैः) अन्न ऐश्वर्यादि के लिये गमन करने वाले रथों, यानों से (प्र-दक्षिणित्) खूब पृथिवी भर के देशों का चक्र लगाता हुआ (मरुतां स्तोमम्) राष्ट्रवासी मनुष्यों के समूह की (प्र क्रध्याम्) अच्छी प्रकार समृद्ध करूँ । अथवा—(वाज्यन्धिः रथैः हव प्र भरे) संग्रामकारी यानों से जिस प्रकार शत्रुओं पर प्रहार करूँ उसी प्रकार धनैश्वर्यादि से लदी गाड़ियों से मैं खूब (प्र भरे) अपनों को पुष्ट करूँ वा खूब समृद्धि अपने देश में लाऊँ । और (प्र-दक्षिणित्) आदर पूर्वक प्रदक्षिणा करता हुआ (मरुतां स्तोमम् क्रध्याम्) विद्वानों के उपदेश स्तुत्य गुणों को अच्छी प्रकार बढ़ाऊँ, अधिक सफल और उच्च करूँ ।

आ ये तुस्युः पृष्ठतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मुरुतो रथेषु ।

वना॑ चिदुग्रा जिहते॒ नि वौ॑ भिया॑ पृथिवी॑ चिद्रेजते॒ पर्वतश्चित् २

भा०—(ये) जो (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने और सबको उपदेश करने वाले वीरजन, विद्वान् जन (सुखेषु रथेषु) सुखजनक रथों में और (श्रुतासु पृष्ठतीषु) चित्र विचित्र अश्वों और हृदय, अन्तःकरण में

ज्ञान का रस वर्पने वाली, श्रवण योग्य विद्याओं में (आतस्थुः) विराजते हैं उन (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (बना चित्) सूर्य की किरणों के समान तीक्ष्ण, (उग्राः) वेग से चलने वाले वायु के समान शत्रुगण भी (नि जिहते) नीचे हो जाते हैं, विनीत हो जाते हैं । (पृथिवी चित् रेजते) पृथिवी के समान उसमें निवासिनी प्रजा भी कांपती है, उसका आतङ्क और आदर मानती है, (पर्वतः चित् रेजते) पर्वत या मेघ के तुल्य ऊंचा राजा घोर योद्धा शत्रु भी कांपता, विचलित हो जाता है ।

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो विभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्कीळथ मरुतं क्रष्टिमन्तु आपं इव सुध्रध्यञ्चो धवध्वे ॥ ३ ॥

भा०—हे वीर, विद्वान् पुरुषो ! (वः स्वने) आपका गर्जन और उपदेश होने पर (पर्वतः चित्) मेघ वा पर्वत के तुल्य (वृद्धः) बल शक्ति में बढ़ा हुआ शत्रु भी (महि विभाय) बहुत अधिक भयभीत होता है । (दिवः चित् सानु) आकाश के उच्च भाग के समान (दिवः सानु) तेजस्वी, और धनार्थी पुरुष का भी शिखर, शिर आदि कांप जाता है, वह भी अस्थिरबुद्धि हो जाता है । हे (मरुतः) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जब आप लोग (क्रष्टि-मन्तः) शत्रों और उत्तम ज्ञानों से सम्पन्न होकर (क्रीडथ) विहार, विनोद करते हो तब जिस प्रकार वायु वेगों से जलधाराएँ मेघ से एक साथ नीचे आ उतरती हैं उसी प्रकार आप लोग भी (आपः) जलधाराओं के समान, आप, (सध्यञ्चः) एक साथ गमन करते हुए (धवध्वे) शत्रुगण को कंपाओ और आगे बढ़ो ।

बुरा इवेद्रौवतासु द्विरेण्यैरुभि स्वधार्भिस्तुन्वः पिपिशे ।

श्चिये श्रेयांसस्तुवसु रथेषु सुत्रा महांसि चक्रिरे तुनूषु ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (वरा इव रैवतासः) जिस प्रकार विवाह योग्य वर लोग धन सम्पन्न, होकर (तन्वः) शरीरों को (हिरण्यैः)

सुवर्ण के आभूषणों से और (स्वधामिः) अज्ञों से (पिपिश्रे) अपने को सजाते और अंग २ को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (रैवतासः) धन-धान्य और पशु सम्पत्ति से सम्पन्न होकर (हिरण्यः स्वधामिः) हित और रमणीय गुणों, सुवर्णादि आभूषणों और अपने देह की धारक शक्ति और अज्ञों से (तन्वः पिपिश्रे) अपने शरीर के प्रत्येक अंग को सुन्दर और ढढ़ करो । और आप लोग (श्रेयांसः) अति श्रेष्ठ और (तवसः) बलशाली होकर (रथेषु) रथों पर आरूढ़ होकर और (तन्मूषु) अपने देहों में सुशोभित रहकर (श्रिये) धन समृद्धि और शोभा की वृद्धि के लिये (महांसि सत्रा) बड़े २ युद्ध और बड़े २ यज्ञ, अधिवेशन आदि (चक्रिरे) करें ।

अ॒ञ्ज्येष्टासु अ॑कनिष्ठास ए॒ते सं भ्रात॑रो वावृथुः सौभगाय ।

युवा॑ पिता स्वपा॑ रुद्र ए॑षां सुदुधा॑ पृश्चिः सु॑दिना॑ म॒रुद्भ्यः ॥ ५ ॥

भा०—(एते) ये मनुष्य, समस्त विद्वान् और वीरगण, (अञ्ज्येष्टासः) परस्पर न एक दूसरे से बड़े और (अकनिष्ठासः) न एक दूसरे से छोटे, एक समान, मान-आदर, पदाधिकार से युक्त होकर (भ्रातरः) भाइयों के समान एक दूसरे को पुष्ट करते हुए (सौभगाय) सौभग्य, अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ववृथुः) खूब बढ़ें । (एषां) इनका (पिता) पालन करने वाला (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, उनको दूर करने में समर्थ, एवं उत्तम उपदेष्टा, और (युवा) सदा बलशाली, (सु-अपा॑ः) उत्तम सुखजनक कर्मों का करने वाला वा (स्व-पा॑ः) अपने बन्धुवत् वा परिजनों की वा ऐश्वर्य की रक्षा करने हारा है । (मरुद्भ्यः) इन वायुवत् बलवान् और कर्मण्य प्रजावर्गों के लिये (पृश्चिः) सूर्य, आकाश और पृथिवी, (सु-दुधा॑) गौ के समान सुख पदार्थ देने वाली, और जलवर्षी और अज्ञदात्री हों और (सु॑दिना॑) सूर्य उत्तम दिन प्रकट करने हारा हो । इसी प्रकार 'वायु' अर्थात् ज्ञाति की कामना-

करने वाले शिष्यगण 'मरुत्' हैं वे समान रूप से भ्रातुवत् रहें, उनका पिता आचार्य और विद्वान् वेदवित्, उत्तम ज्ञान-रस देने हारा हो ।

यदुच्चमे मरुतो मध्यमे वा यद्वात्मे सुभगासो दिवि ष्ठ ।

अतो नो रुद्रा उत वा न्वः स्यामै वित्ताद्विष्ठो यद्यजाम ॥६॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान्, वीर, ज्ञानी पुरुषो ! आप लोग जो (यत् उत्तमे यत् मध्यमे यत् वा अवमे) जो, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट (दिवि) व्यवहार वा काम्य कर्मों में, या पदों या स्थानों पर (स्थ) रहते हो वहां भी आप लोग (सु-भगासः) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर रहो । (हे रुद्राः उत वा हे अमे) हे दुष्टों को रुलाने वालो ! और हे अग्नि के समान तेजस्विन् नाथक ! हम लोग (यत् यजाम) जो कुछ दें वा आप लोगों का आदर सत्कार करें आप लोग (अस्य हविषः) इस देने योग्य अज्ञ आदि को (नु) सदा (नः वित्तात्) हमारा आदर पूर्वक स्वीकर करें ।

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहृध्व उत्तरादधि षण्मिः ।
ते मन्दसाना धुनेयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ७

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! आप (विश्व-वेदसः) सब प्रकार के धनों के स्वामी (अग्निः) अग्नणी, तेजस्वी पुरुष आप (दिवः) ज्ञान प्रकाश तेज की कामना करते हुए (उत्तरात्) अपने से उत्कृष्ट (दिवः) ज्ञानयुक्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (स्तुभिः) अन्य उत्तम इच्छावान् पुरुषों सहित वा ज्ञान के उपदेशों द्वारा (यत् अधि वहृध्वे) जो अधिकार वा ज्ञान प्राप्त करते हो, (ते) वे आप लोग (मन्दसानाः) आनन्द प्रसन्न (धुनयः) बाह्य और भीतरी शनुओं को कंपाते, दूर करते हुए (रिशादसः) हिंसक प्राणियों का नाश करते हुए (यजमानाय) ज्ञान आदि का दान, उत्तम गुणों की याचना और सत्संग आदि करने

वाले तथा (सुन्वते) अन्न ऐश्वर्यादि देने वाले पुरुष की वृद्धि के लिये (वासं) उत्तम ऐश्वर्य (धत्त) प्रदान करो ।

अग्ने मूरुद्धिः शुभयद्विर्त्तकभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।

पावकेभिर्विश्वासुन्वेभिरायुभिर्विश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥२५

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (वैश्वानर) समस्त नरों के हितैपिन् ! सबके नायक ! हे विद्वान् आचार्य ! तू (शुभयद्भिः) शोभायुक्त, शुभ मार्ग से जाने वाले, (ऋक्भिः) वेदज्ञ, (गणश्रिभिः) गण की शोभा धारण करने वाले, पुरुषों से (मन्दसानः) आनन्दित, होता हुआ (सोमं पिब) ऐश्वर्य का उपभोग कर और (पावकेभिः) अन्यों को यजित्र करने वाले, अग्नि के समान कण्टकशोधन करने हारे (विश्वमिन्वेभिः) समस्त विश्व को प्रसन्न करने वाले, वीर विद्वान् (आयुभिः) पुरुषों सहित तू (प्रदिवा केतुना) अति तेजस्वी ध्वजा वा उत्तम व्यवहार युक्त अति पुरातन सर्वज्ञपक, ज्ञानमय वेद से (सजूः) समान रूप से सुशोभित होकर तू (सोमं पिब) सौम्य शिष्यगण एवं राजगण का पालन कर । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६१]

स्यावाश्च आत्रेय ऋषिः ॥ १—४, ११—१६ मरुतः । ५—८ शशीयसी तरन्तमहिपी । ६ पुरुमील्लहो वैददधिः । १० तरन्तो वैददधिः । १७—१९ रथवीतिर्दालभ्यो देवताः ॥ छन्दः—१—४, ६—८, १०—१६ गायत्री ।

५ अनुष्टुप् । ६ सतोवृहती ॥ एकोनविशत्यृत्यूचं सूक्तम् ॥

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमाय पक्कएक आयुय ।
परमस्याः परावतः H १ ॥

भा०—मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार कुशल प्रश्न आदि व्यवहार करना चाहिये इसका उपदेश करते हैं । हे (नरः) विद्वान् पुरुषो ! आप

लोग (के स्थ) कौन हैं । (ये) जो (श्रेष्ठतमाः) अति श्रेष्ठ हैं वे (एकः एकः) आप एक एक करके (परमस्याः) परम, सर्वोत्तम बहुत ही (परावतः) दूर की सीमा से (आयथ) आया करते हैं । दूर २ के देश से आने वाले एक २ व्यक्ति का भी आदरपूर्वक आतिथ्य करना चाहिये । उनका नाम पूछते रहना चाहिये ।

कव॑वोऽश्वाः कवा॒भीशवः कृथं शेक कृथा यथ ।
पृष्ठे सदो नुसोर्यमः ॥ २ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (अश्वाः कः) अश्व कहां हैं ? (अभीशवः कः) बाग डोरें कहां हैं । (कथं शेक) किस प्रकार आप शीघ्र गमन करने में समर्थ होते हैं । (कथा यथ) किस प्रकार से गमन करते हो ? (पृष्ठे सदः) पीठ पर किस प्रकार बैठने का साज है ! (नसोर्यमः) नासिकाओं में नाथ के समान पशु आदि को नियन्त्रण करने वाला सारथी कहां है ! अध्यात्म में—(१) ये मरुत गण लोग जीव हैं, श्रेयो मार्ग में स्थित होने से श्रेष्ठतम हैं, अकेला जीव संसार में जन्मता है, परम धाम से आता है सही पर वह जीव क्या है ? (२) उनके 'अश्व' प्राणादि अभीशु । वासनादि कहां रहते हैं किस प्रकार वे शरीर धारण में समर्थ होते हैं किस प्रकार वे गति करते हैं ? इन प्राणगण की पृष्ठ देश में किस प्रकार से स्थिति है नासिका छिद्रों में किस प्रकार उनका नियन्त्रण है ? अर्थात् जीवों और प्राणों का इस देह में जीवन, प्राण-ग्रहण आदि का क्या रहस्य है ?

ज्ञघने॒ चोद॑ एषां॒ वि॒ स॒कथानि॒ नरो॑ यमुः ।
पृत्रकृथे॒ न॒ जनयः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अश्वों के (जघने चोदः) जघन अर्थात् चूतड़ भाग पर कशा का प्रहार होता है उसी प्रकार (एषां) इन मनुष्यों और वीर पुरुषों के (जघने) निरन्तर गमन कार्य और हनन कार्य में भी

(चोदः) प्रेरक पुरुष नियुक्त हो । वे लोग इस अवसर पर (सक्थानि वि यमुः) अपने घुटने से दख्खने तक की टांगों को विशेष प्रकार से बांध लिया करें । और जिस प्रकार (पुत्र-कृथे न) पुत्र उत्पन्न करने के लिये (जनयः) स्त्री वा पुरुष लोग (वि यमुः) विशेष रूप से नियमपूर्वक प्रतिज्ञावद्ध होकर परस्पर विवाहित हो जाते हैं उसी प्रकार ये मनुष्य भी (पुत्र-कृथे) पुत्रादि के लिये, (सक्थानि वि यमुः) प्राप्त करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये विशेष २ नियमों से बद्ध हों ।

परा वीरास एतन् मर्यासो भद्रजानयः ।

अग्नितपो यथासंथ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वीरासः) वीर पुरुषो ! हे (मर्यासः) शत्रुओं को मारने वाले सैनिक जनो ! जिस प्रकार (भद्र-जानयः) सुखकारी स्त्री को प्राप्त करने वाले पुरुष दूर २ देश तक जाते और दूर देश में विवाह करते हैं उसी प्रकार आप लोग (भद्र-जानयः) सुखकारी पदार्थों को जानने और पैदा करने हारे होकर (परा एतन्) दूर देशों तक जाया करो और जिस प्रकार विवाहेच्छुक जन (अग्नि-तपः) यथा पूर्ववयस में अग्नि अर्थात् आचार्य के अधीन ब्रह्मचर्यादि तप करके रहते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (अग्नि-तपः) अग्रणी पुरुष के आधीन प्रतापी एवं अग्नि वा शत्रु को तपाने वाले (असथ) हुआ करो ।

सनुत्साश्वयं पशुमुत गदयं श्रुतावयम् ।

श्यावाश्वस्तुताय यो दोर्वर्णरायोपवर्वृहत् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(या) जो स्त्री (श्यावाश्व-स्तुताय) श्यामकर्ण या लाल, काले, तैलिये रंग के अश्वों द्वारा प्रशंसित अथवा जितेन्द्रिय होने से प्रशंसित (वीराय) वीर्यवान् पुरुष को (दोः) अपनी भुजा (उप वर्वृहत्) सिरहाने के समान देती है वह स्त्री वीर पुरुष से विवाह करके (अश्वयं) अश्वों (गवयं) गौबों से युक्त (पशुम्) नाना पशु सम्पदा

को और (शतावयम्) सैकड़ों भेड़ों के धन को भी (सनत्) निरन्तर भोग करती है । इति षट्विंशो वर्गः ॥

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी ।
अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥

भा०—(त्वा) वह स्त्री जो (वस्यसी) उत्तम धन सम्पन्न है वह (पुंसः शशीयसी भवति) पुरुष को समस्त संकटों से पार करनेहारी, प्रशंसनीय है । वह (अदेवत्रात्) जो मनुष्य देव अर्थात् अपने भीतर उत्तम उज्ज्वल गुणों और विद्वान् पुरुषों की रक्षा नहीं करता, और (अराधसः) आराधना नहीं करता वा धन से हीन है उससे पृथक् रहे ।

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्ण्यन्तं वि कामिनम् ।
देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥

भा०—(या) जो स्त्री ! (जसुरिं) पीड़ा देने वाले, (तृष्ण्यन्तं) तृष्णातुर और (कामिनं) कामी पुरुष को (वि वि) विपरीत भाव से (जानाति) जान लेती है वह अपने (मनः) मन को (देवत्रा कृणुते) देव, दानशील, विद्वान् तेजस्वी पुरुषों में लगा देती है । और वह पीड़क, तृष्णातुर, लोभी, विषयासक्त कामी पुरुष को न वर कर उत्तम पुरुषों में अपना पति बरण करे ।

उत धा नमो अस्तुतः पुमाँ इति व्रुवे प्रणिः ।
स वैरदेय इत्सुमः ॥ ८ ॥

भा०—(उत ध) और जो (पुमान्) पुरुष (नेमः) गृहस्थ में स्त्री का अधाङ्क है वह पुरुष (अस्तुतः) अप्रशस्त, गुणहीन है और वह जो (प्रणिः) प्रशंसनीय विद्यादि गुणों से युक्त है वे दोनों भी (वैरदेये), परस्पर वैर अर्थात् कलह पालने के कार्य में, अथवा (वैरदेये) वीर्य द्वारा पुत्र के दान करने के कार्य में स्त्री पुरुषों में (समः इत्) दोनों समान हैं (इति व्रुवे) मैं ऐसा कहता वा जानता हूँ । कलह उत्पन्न होजाने पर

मूर्खं पण्डितं दोनों समानं रूपं से अधिय हो जाते हैं, इसी प्रकार पुत्रं प्राप्ति के लिये भी मूर्खं और विद्वान् गुणहीनं और गुणाड्यं प्रेमं भावं बने रहने पर पुत्रं लाभं के कार्यं में समानं ही स्त्रीं का आद्या अंगं बने रहते हैं ।

उत्तं मेरपद्युवतिर्मैमन्दुषी प्रति॑ श्यावाय॑ वर्तनिम् ।

वि रोहिता पुरुषील्हाय॑ येमतुर्विप्राय॑ दीर्घयशसे ॥ ९ ॥ ।

भा०—(युवतिः) जवान स्त्रीं (ममन्दुषीं) इष्ट, प्रसन्न चित्तं होकर (रोहिता) लोहित, वर्णं के उत्तमं वैवाहिक वस्त्रं धारणं करती हुई, अनुराग-वती होकर (पुरुषील्हाय) बहुत से पुत्रों का नियेक करने में समर्थं, बहुत वीर्यवान् (श्यावाय) स्वयं भी रक्तवर्णं, अथं के समानं ददृ, हष्ट पुष्ट उज्ज्वलं वर्णं (विप्राय) विद्वान् (दीर्घयशसे) महा यशस्वी (मे) मेरे लिये (वर्तनिम्) अपने मार्गं वा व्यवहारं को (अरपत्) आलाप द्वारा कहे तब दोनों स्त्रीं पुरुषं (रोहित) रक्तं वर्णं के, परस्परानुरक्तं होकर (वि येमतुः) विशेषं रूपं से दाप्तत्यं सम्बन्धं में बंधं जाते हैं ।

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथाददत् ।

तरन्त इव मंहना ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो पुरुषं (मंहना) बड़े भारी नाव द्वारा (तरन्तः-इव) समुद्रं के पार उतार देने वाले नाविक के समानं अपने महान् सामर्थ्यं या दानशीलता से संसार के सागर से पार उतारने हारा होकर (वैददश्विः) अश्चों इन्द्रियों को अपने वश करता है वह जितेन्द्रियं पुरुषं ही (मे) मुझे (धेनूनां शतं) मानो सैकड़ों दुधार गौवें तथा उत्तमं २ वाणियां देता है ।

य इं वहन्त श्राशुभिः पिवन्तो मदिरं मधुं ।

अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (अत्र) इस लोकं में (श्रवांसि) श्रवणं करने योग्य ज्ञानों, अज्ञों और कीर्तियों को (दधिरे) श्रवणं करते हैं और (म-

दिरं) हर्षजनक (मधु) अन्न और ज्ञान का (पिबन्तः) पान करते हैं वे (आशुभिः) शीघ्रगामी अश्रों से रथ के समान अपने (आशुभिः) वेग से जाने वाले दृढ़ अंगों द्वारा (इं) इस गृहस्थ रूप रथ को भी (वहन्ते) धारण करते हैं ।

येषां श्रियाधि रोदसी वि भ्राजन्ते रथेष्वा ।

दिवि रुक्म इवोपरि ॥ १२ ॥

भा०—(दिवि उपरि रुक्मः इव) आकाश में उपर जिस प्रकार अति रुचिकर तेजस्वी सूर्य प्रकाशमान होता है और उसकी (श्रिया रोदसी) कान्ति से आकाश और पृथिवी दोनों प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार (येषां श्रिया) जिनकी लक्ष्मी और कान्ति से (रोदसी) ये समस्त स्त्री और पुरुष (अधि) अधिक शोभा पाते हैं और जो वे ही (रथेषु) रथों में और रमण योग्य गृहस्थ कार्यों में भी (वि भ्राजन्ते) विशेष रूप से चमकते हैं ।

युवा स मारुतो गुणस्त्वेषरथो अनेद्यः ।

शुभंयावाप्रतिष्कृत ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु गण (त्वेष-रथः) दीप्तिमान् सूर्य के द्वारा वेग से जाने हारा होता है तथा वह (अप्रतिष्कृतः) किसी से भी उसकी शक्ति बाधित नहीं होती और वह (शुभं-यावा) जल वृष्टि प्राप्त करता है उसी प्रकार (युवा मारुतः गणः) युवावस्था में मनुष्य होते हैं । (सः) वह भी (त्वेष-रथः) अति चमकीले रथ में चढ़कर (अनेद्यः) अनिन्दनीय, भव्य वेश, उत्तम आचारवान् सज्जन हों । पुर्वं (शुभं-यावा) शोभा युक्त होकर शुभ धर्मयुक्त मार्ग पर चलें । एवं (अप्रतिष्कृतः) अन्यों से स्पर्द्धा में अपराजित, सुदृढ़ हों । (२) प्राणों का गण (त्वेष-रथः) तेजोमय आत्मा में गति करता है । जल के आश्रय गति करता है ।

को वैद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः ।
ऋतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥

भा०—वायु गण के समान जो (धूतयः) वृक्षों के तुल्य हरे भरे हृष्ट पुष्ट, शत्रुओं को कंपाने वाले (ऋत-जाताः) सत्य न्याय, व्यवहार, ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान के लिये प्रसिद्ध और (अरेपसः) निष्पाप पुरुष (यत्र) जिस विशेष कार्य में प्रसन्न रहते हैं उसको (नूनम्) निश्चय पूर्वक (किः वैद) कौन जान सकता है (२) अध्यात्म में शरीर को संचालित करने से ‘धूतयः’ और अज्ञ जल से उत्पन्न वा प्रादुर्भूत होने से ‘ऋतजात’ हैं उनके रमण के आधार स्थान को विरला ही जाना करता है ।

युयं मर्ते विष्ण्वः प्रणेतार॑ इत्था धिया ।
श्रोतार्यो याम॑हूतिषु ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (विष्ण्वः) विशेष मेधावी और विविध स्तुत्य व्यवहारवान् पुरुषो ! (युयं) आप लोग (मर्तम्) मनुष्य को (प्र-णेतारः) उत्तम मार्गों में चलाने हारे (याम-हूतिषु) आप लोगों पर नियन्त्रण करने वाले सेनापति की आज्ञाओं को (श्रोतारः) सुनने हारे हैं, वे आप लोग (इत्था धिया) इसी प्रकार की उत्तम बुद्धि से विचार कर ठीक २ कार्य सम्पादन करें । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ते नो वसूनि काम्या पुरुष्वन्द्रा रिशादसः ।
आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

भा०—हे (यज्ञियासः) दानशील, यज्ञ करने हारे, सत्संग योग्य (रिशादसः) हिंसकों के नाशक, (पुरु-चन्द्राः) बहुत सी धन सम्पदाओं के स्वामियो ! (ते) वे आप लोग (नः) हमारे लिये (काम्या वसूनि) भाना कामना करने योग्य ऐश्वर्यों को (आ ववृत्तन) पुनः २ प्राप्त करो और उनको व्यवहार में लाओ ।

एतं मे स्तोममूर्ख्ये दाभ्यायु परा वह ।
गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥

भा०—हे (ऊर्ख्ये) रात्रि के समान सुखदायिनी, उत्तम ऊंचे से शब्द ! बोलनेहारी ! हे (देवि) तेजस्विनि ! विद्युत ! (रथीः इव) रथी जिस प्रकार (स्तोमं वहति गिरश्च परा वहति) नाना धान्य आदि पदार्थों को और दूसरों के वचनों या संदेशों को भी देशान्तर तक ले जाता है उसी प्रकार तू भी (दाभ्याय) 'दर्भ' अर्थात् शत्रुओं को विदारण करने में कुशल वा शत्रु हिंसकों में श्रेष्ठ नायक के लिये (मे पुनः स्तोमं) मेरे इस सुति-वचन और (गिरः) उत्तम वाणियों को (परा वह) दूर तक प्राप्त करा । यान, रथ, गाड़ी आदि जैसे सामान ढोने तथा चिट्ठी पत्री ले जाने के अर्थात् 'मेल' सर्विस् के भी काम आते हैं । उसी प्रकार विद्युत के यन्त्र भी लम्बे व्याख्यानों को एक देश से दूर २ देश तक पहुंचाते हैं ।

उत मे वोचतादिति सुतसोमं रथवीतौ ।

न कासो अप वेति मे ॥ १८ ॥

भा०—(सुत-सोमे) जिसने ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान प्राप्त किया और (रथवीतौ) रथ के द्वारा आदरपूर्वक गृहों पर प्राप्त हों ऐसे आदर-णीय पुरुष के प्रति ऐसी प्रार्थना करें कि हे विद्वन् ! (मे इति वोचतात्) सुख श्रोताजन को ऐसा सत्योपदेश कीजिये कि (मे कामः) मेरी श्रवण करने की अभिलाषा (न अप वेति) कभी दूर नहीं हो ।

एष क्षेत्रि रथवीतिसुघवा गोमतीरनु ।

पर्वतज्जपश्चितः ॥ १९ ॥ २९ ॥

भा०—(एषः) यह (रथवीतिः) रथों से प्राप्त होने वाला (म-घवा) उत्तम धनधान्य सम्पन्न पुरुष (गोमतीः अनु) उत्तम भूमियों और वाणियों से युक्त दाराओं को प्राप्त कर (अनुक्षेति) धर्मानुकूल होकर रहे और (पर्वतेषु) पर्वतों वा मेघों के तुल्य उत्तम उत्तम, ऊंचे और

आकाश व्यापी भवनों और यानों में (अपश्रितः) स्थित एवं दूर देशों तक जाने हारा हो । एकोनन्दिशो वर्गः ॥

[६२]

श्रुतिविदात्रिय कृषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६ निचृत-त्रिष्टुप् । ७, ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ नवचं सूक्तम् ॥

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विसुचन्त्यश्वान् ।

दशं शता सुह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (क्रतम्) सत्यस्वरूप सूर्य का मण्डल (क्रतेन अपहितं) तेज से आच्छादित है, (यत्र) जिस सूर्य के आश्रित रह कर नाना ग्रह उपग्रह आदि (सूर्यस्य) सूर्य के ही (दश शता अश्वान् विसुचन्ति) हजारों किरणों को विविध रूप से धारण करते और प्रतिक्षिप्त करते हैं और जिस सूर्य के आश्रय ही वे (सह तस्थुः) एक साथ मिलकर स्थित हैं (तत्) वह (एक) एक (देवानां) तेजो युक्त, (वपुषां श्रेष्ठं) पिण्डों में सर्वश्रेष्ठ, (ध्रुवं) स्थिर, निश्चल सूर्य है उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! राजा प्रजावर्गो ! (वां) आप दोनों वर्गों का (ध्रुवं) स्थिर (क्रतम्) सत्य व्यवहार भी (क्रतेन) सत्य वेद, ज्ञान से (अपिहितम्) आच्छादित तन्मय हो । (यत्र) जिस प्रधान नाथक के आश्रय पर (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी राजा के (दश शता अश्वान् विसुचन्ति) हजारों धूड़सावार ढौड़ रहे हैं और (सह तस्थुः) सब एक साथ विद्यमान रहते हैं (तत् एकं) उस एक को (वपुषां देवानां) देहधारी मनुष्यों के बीच (श्रेष्ठं) सर्व श्रेष्ठ रूप से (अपश्यम्) देखता हूं । वही (क्रतम् ध्रुवं) सत्य परमैश्वर्य, न्यायरूप है ।

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तुस्थुषीरहभिर्दुहे ।

विश्वाः पिन्वथः स्वस्तरस्य धेना अनु वामेकः पविरा वर्वर्त ॥२॥

भा०—जिस प्रकार दिन और रात्रि, मित्र और वरुण इन दोनों का (तत् महित्वम्) यही महान् सामर्थ्य है कि (ईर्मा) सूर्य (अहमिः तस्थुषीः दुदुहे) तेजों द्वारा समस्त स्थानों, शरीरों को रस प्रदान करता है दिन रात्रि दोनों (विश्वा: स्वसरस्य धेनाः पिन्वथ) सूर्य की सब रश्मियों को प्राप्त करते हैं उन दोनों का (एकः पविः अनु आवर्त्त) एक ही प्रकार का क्रम प्रतिदिन चक्रधारा के समान पुनः २ आता है। उसी प्रकार हे (मित्रावरुणा) मित्र एक दूसरे के स्नेही, रक्षक और हे 'वरुण' एक दूसरे को वरण करने हारे स्त्री पुरुषो ! शिष्य अध्यापको ! राजा-प्रजा वर्गो ! (वाम्) आप दोनों का (तत्) वह (सु-महित्वम्) यही सर्वश्रेष्ठ महान् सामर्थ्य है कि (ईर्मा) बाहुदृढ़ बलवान् पुरुष ही (तस्थुषीः) स्त्रिर ग्रजाओं को (अहमिः) अविनाशी बलों से (दुदुहे) ऐश्वर्य पूर्ण करने में समर्थ होता है। और आप दोनों (स्वसरस्य) अपने ही सामर्थ्य से आगे बढ़ने वाले नाथक को (विश्वा: धेनाः पिन्वथः) समस्त वाणियों को प्रेमपूर्वक प्राप्त करें, और (वाम्) तुम दोनों का (एकः पविः) एकही पवित्र मार्ग, एक ही घाणी, एक ही बल (अनु आवर्त्त) प्रति दिन रहे, कभी भेदभाव न हो ।

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोमिः ।
वृद्धयत्तमोषधीः पिन्वतं गा अव॑ वृष्टि सृजतं जीरदानू ॥ ३ ॥

भा०—(मित्र-राजाना) मित्र बने हुए राजाओं वा राजा रानी के समान विराजने वालो ! एवं (वरुणा) परस्पर एक दूसरे को वरण करने वालो ! (पृथिवीम् उत द्यां) भूमि और सूर्य को जिस प्रकार अग्नि और जल धारण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों (पृथिवीम्) प्रजोत्पादक भूमि स्त्री (उत द्याम्) और कामनायुक्त व्यवहारज्ञ, तेजस्वी पुरुष दोनों को (महोमिः) बड़े उत्तम शुभ विचारों से (अधारयत्म्) धारण करो अर्थात् तुम दोनों स्त्रीपुरुष परस्पर अपने को बीज को वपनार्थ भूमि और तेजस्वी,

चीजप्रद जानकर धारण करें । आप दोनों (ओषधीः) अज्ञ आदि ओषधियों तथा 'ओष' अर्थात् दाहकारी अग्नि को धारण करने वाले तेजस्वी, वीर पुरुषों और विद्वानों को (वर्धयतम्) बढ़ावें, (गा॒ः पिन्वतम्) भूमियों को सेचें, वाणियों को प्रयोग करें, गौओं को पुष्ट करें, और दोनों (जीर॑-दान॒) जगत् को जीवन देने हारे होकर (वृष्टिं अव सृजतम्) मेघ वा सूर्य के तुल्य सुखों की वर्षा किया करें ।

आ वामश्वासः सुयुज॑ वहन्तु युतर॑शमयु उप॑ यन्त्ववांक् ।

घृतस्य निर्णिंगनु॑ वर्तते वामुप॑ सिन्धवः प्रदिवि॑ ज्ञानन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् धी पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों को (सु-युजः) उत्तम रीति से जुते हुए (अश्वासः) घोड़े, उनके समान (सु-युजः अश्वासः) उत्तम रीति से नियुक्त विद्या आदि शुभ गुणों में व्याप्त जन (वां) आप दोनों को (आ वहन्तु) आदर पूर्वक सर्वत्र ले जावें । और (यत-रद्धमयः) वे कसी लगामों वाले अश्व वा अश्वों के लगामों को वश करने वाले सारथि लोग और उनके समान अपने अधीनस्थों तथा शक्तियों को संयम करने वाले पुरुष भी (अर्वांक् उप यन्तु) आप दोनों के समीप प्राप्त हों । (वां) आप दोनों को (घृतस्य) धी के बने शोधक उचटन के समान तेज का (निर्णिंग्) शुद्ध रूप (वाम् अनु वर्तते) आप दोनों को प्राप्त हो । और (प्र-दिवि) उत्तम ज्ञानप्रकाश के निमित्त (सिन्धवः) ज्ञान के समुद्र जन (वाम् उप क्षरन्ति) मेघों के समान आप लोगों के प्रति ज्ञान जलों से वर्षा करें, आपको सेचें ।

अनु॑ श्रुताम् मति॑ वर्ध॑दुर्वी॑ बृह्दिरित्व॑ यजु॑षा॒ रक्ष॑माणा॒ ।

नम॑स्वन्ता॒ धृतदुक्षाधि॑ गते॑ भित्रासाथे॑ वरुणेऽस्त्वन्तः ॥५॥३०॥

भा०—हे (मित्र वरुण) एक दूसरे के स्नेही और परस्पर वरण करने हारे, हे जगत् को मरण से बचाने वाले एवं श्रेष्ठ पुरुषो ! आप

दोनों (श्रुताम् अनु) श्रवण की गई ज्ञानपद्धति के अनुरूप ही (अमतिम् वर्धत्) अपने उत्तम सौम्य रूप को बढ़ाते हुए, (यजु-
षा बहिः इव) यजुर्वेद से यज्ञ के समान (यजुषा) परस्पर की संगति,
और दान, आदर सत्कार, संघबल से (बहिः इव) वसे लोकों के समान
ही (उच्चां रक्षमाणा) विशाल पृथिवी की रक्षा करते हुए (नमस्वन्ता)
एक दूसरे का आदर करने वाले वा अन्नों के स्वामी और (धृत-दक्षा)
बलवान् होकर (गते अधि) रथ में और सभा के न्यायासन पर (इडासु
अन्तः) वाणियों और अपने अधीन भूमियों के बीच (आसाथे)
विराजा करो । इति त्रिशो वर्णः ॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेष्ठास्वन्तः ।
राजाना नृत्रमहृणीयमाना सुहस्त्रस्थूणं विभृथः सुह द्वौ ॥ ६ ॥

भा—हे (वरुणा) दोनों श्रेष्ठ जनो ! हुःखों को वारण करने वाले !
सभा के स्वामियो, राजा अमात्यो ! खी पुरुषो ! आप दोनों (अक्र-
विहस्ता) अहिंसक एवं अकृपण, दयालु दानशील हाथ वाले होकर
(सुकृते) उत्तम पुण्यकार्य की वृद्धि के लिये (परस्पा) एक दूसरे
की रक्षा करते हुए भी (इडासु) भूमियों, वाणियों और आदर सत्कार
की कियाओं के (अन्तः) बीच (यं त्रासाथे) जिसकी रक्षा करते वा
जिसको भय दिलाते हों, हे (राजाना) तेजस्वी राजपद पर विराजने
वालो ! उस शत्रु तथा (क्षत्रम्) बलशाली सैन्य को (अहृणीयमाना)
क्रोधरहित होकर (सह द्वौ) दोनों साथ मिल कर (सहस्रस्थूणं)
सहस्रों वा दृढ़ स्तम्भों से युक्त विशाल भवन के समान महान् राष्ट्र को
भी (विभृथः) निरन्तर परिपुष्ट करो ।

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा विभ्राजते दिव्यश्वाजनीव ।
भृद्रे व्येत्रे निर्मिता तिलिंवले वा सुनेमु मध्वो अधिगत्यस्य ॥७॥

भा०—(अस्य) इस राष्ट्र वा क्षात्रबल का स्वरूप (हिरण्य-

निर्णिग्) सुवर्ण के समान कन्तिमान् एवं राष्ट्र के लिये हितकारी और सुन्दर रमणीय हो । (अस्य) इस क्षात्रबल का (अयः) प्राप्त करने और चलाने वाला प्रधान पुरुष ही (स्थूणा) मुख्यकीलक वा प्रधान स्तम्भ के समान है । (अश्वाजनी इव) घोड़े को हांकने वाली चाबुक के समान वह प्रधान नायक ही (दिवि) विजय के निमित्त (अश्वा-जनी) अश्वों से बने सैन्य और राष्ट्र की संचालन करने वाली सेना के तुल्य (विभ्राजते) विविध रूपों में चमकता है । स्तम्भ को जिस प्रकार (भद्रे क्षेत्रे) कल्याणकारी क्षेत्र में अथवा (तिलिक्ले) स्नेहयुक्त चिकनी मिट्ठी वाले भूमि में (निमित्ता) बनी शाला सुखप्रद होती है उसी प्रकार (भद्रे क्षेत्रे) सुख-प्रद क्षेत्र और स्नेहयुक्त वाणी से युक्त व्यवहार के आश्रय पर (निमित्ता) वश की हुई सेना भी हो । इस प्रकार हम लोग (अधिगत्यस्य-मध्वः) घर में रक्खे अज्ञ के समान अश्व रक्षादि सैन्य से प्राप्त बल और ऐश्वर्य का (सनेम) भोग करें ।

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।

आ रोहथो वरुण मित्र गर्त्तमतश्चाथे अदितिं दितिं च ॥८॥

भा०—हे (वरुण हे मित्र) शरीर में प्राण उदान के समान, राष्ट्र में शत्रु का वारण करने और प्रजा के प्रति स्नेह करनेवाले आप दोनों राजा अमात्य ! (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय होजाने पर और (उषसः) उषा के (व्युष्टौ) अच्छी प्रकार निकल जाने पर जिस प्रकार स्त्री पुरुष (अयः-स्थूणा) सुवर्ण या लोह के बने कील या स्तम्भ से युक्त (हिरण्य-रूपम्) हित और रमणीय एवं स्वर्णमय (गर्त्तम्) गृह के तुल्य रथ पर (आ-रोहथः) चढ़ते और (दितिम् अदितिम् च चक्षाथे) अदिति माता, पिता, एत्र आदि और 'दिति' देने और रक्षा करने योग्य भूत्यादि सब को देखते हैं । उसी प्रकार आप दोनों भी (सूर्यस्य उदिता) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के उदय होने पर और (उषसः व्युष्टौ) शत्रु को दृध करने में समर्थ सर्व

चशकारिणी सेनाबल के प्रकट होने पर तुम दोनों सभा, सेना के अध्यक्ष जनो ! (हिरण्य-रूपं) सुवर्णादि से रूपवान् ऐश्वर्य युक्त (अयःस्थूलं) सुवर्ण धन के प्रबल स्तम्भ पर आश्रित तथा हितकारी, रमणीय, लोहखण्डादि पर अवलम्बित कान्तिमय, (गर्भम्) सभास्थल तथा युद्ध रथ पर (आरोहथः) आराहण करो और वहां न्यायकारी सभापति तथा सेना नायक के पद पर विराजो और (अतः) तदनन्तर (अदितिम्) अखण्ड-नीय सत्य तथा (दितिम्) दिति अर्थात् खण्डनीय असत्य पक्ष को तथा (अदितिं) अखण्डनीय प्रबल मित्र वा शत्रु और (दितिम्) खण्डनीय वा पालनीय शत्रु वा मित्र को (चक्षाथे) देखो, उनका विवेकपूर्वक निर्णय करो । यद्वंहिष्ठं नातिविधे सुदानु अच्छिद्वं शर्मी भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणाविष्टु सिपासन्तो जिगीवांसः स्याम । १।३।३॥

भा—हे (गोपा) राष्ट्र की रक्षा करने हारे, (मित्रा वरुणा) स्नेह युक्त, प्रजाजन को मरने से बचाने वाले, एवं श्रेष्ठ, शत्रुवारक सभापति सेनापति एवं राजा अमात्य जनो ! (यत्) जो बहुत बड़ा, (अच्छिद्रं) छिद्र, मर्मादि से रहित, (शर्म) शरणदायक दुर्ग आदि सुखप्रद स्थान हो (अतिविधेन) जिसे अतिक्रमण करके शत्रु प्रजा को पीड़ित और और ताड़ित न कर सके, हे (सुदान्) उत्तम दानदील, तथा शत्रुनाशक जनो ! (तेन) वैसे गृह दुर्ग आदि उपाय से (नः अविष्टम्) हमारी रक्षा करो । हम लोग (जिगीवांसः) विजय करते हुए (सिपासन्तः) ऐश्वर्यों का परस्पर विभाग करते हुए (स्याम) सुख से रहें । इति एकत्रिंशो वर्गः । इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

[६३]

अर्चनाना अत्रिय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवतं ॥ अन्दः—१, २, ४, ७ निचू-
जगती । ३, ५, ६ जगती ॥ सप्तमं सूक्तम् ॥

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्मणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमतिन्वते दिवः॥१॥

भा०—(क्रतस्य) सत्य व्यवहार, सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य और तेज के (गोपौ) रक्षक, (सत्य-धर्मणा) सत्य धर्म का पालन करने वाले (परमे व्योमनि) सर्वोल्कृष्ट रक्षक, आकाशवत् व्यापक, परमेश्वर पर आश्रित वा सर्वोच्च पद पर स्थित होकर (रथम् अधि तिथष्टः) रमण करने योग्य रथवत् राष्ट्र का शासन करने के लिये उसके अध्यक्ष पद पर विराजे और उसका संचालन रथी सारथिवत् करें । हे (मित्रावरुणा) शरीर में प्राण उदान वत् एवं गृह में पतिपत्नीवत् एक दूसरे के स्नेह और एक दूसरे को स्व-स्वामिभाव से वरण करने वाले होकर वे (युवं) आप दोनों (अब्र) इस राष्ट्र में (सम् अवथः) जिस प्रजा जन की रक्षा करते हो (तस्मै) उसको (दिवः) आकाश या अन्तरिक्ष से (मधुमत् वृष्टिः) जलमय वृष्टि के समान (दिवः) तेजस्वी क्षात्रवर्ग और ज्ञानमय ब्राह्मण वर्ग और कामना योग्य व्यवहारवित् वैद्यव वर्ग से (मधुमत् वृष्टिः) ज्ञान, बल और अन्नमय वर्षा (पिन्वते) प्रजाजन की पुष्टि और वृद्धि करे ।

सुम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्द्धशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापुष्टिवी वि चरन्ति तन्यवः २

भा०—हे (मित्रा वरुणा) वायु सूर्य के समान राजन् ! अमात्य ! परस्पर मिलकर प्रजा को मृत्यु से बचाने और दुष्टों का वारण करने वाले आप दोनों (अस्य भुवनस्य) इस जगत् को (सम्राजौ) अच्छी प्रकार प्रकाशित करने वाले (विदथे) ज्ञान, व्यवहार और धनैश्वर्य लाभ में (स्वर्द्धशा) उत्तम सुख, उत्तम प्रकाश को देखने वाले होकर (राजथः) विराजते हो । हम लोग (वां) आप दोनों से (वृष्टिम्) उत्तम वृष्टि और (राधः) धन ऐश्वर्य और (अमृतत्वं च) अमृतत्व, दीर्घ जीवन, रक्षा,

की (ईमहे) याचना करते हैं, आप दोनों के (तन्यवः) विस्तृत शक्ति-मान् लोग (यावा वृथिवी वि चरन्ति) किरणों के समान आकाश और पृथिवी में विचरते हैं ।

सुम्राजा॒ उग्रा॑ वृषभा॑ दिवस्पती॑ पृथिव्या॑ मित्रावरुणा॑ विचर्षणी॑ ।
चित्रेभिरुम्भैरुपै तिष्ठथो॑ रवं॑ द्यां॑ वर्षयथो॑ असुरस्य॑ मायया॑ ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) प्रजाओं के स्नेही और उनके द्वारा वरण करने योग्य पुरुषो ! आप वायु सूर्य दोनों के समान (सम्राजा) अच्छी प्रकार चमकने वाले, (उग्रा) बलवान्, (वृषभा) जलों के समान प्रजा पर काम्य सुखों की वर्षा करने वाले, (दिवः पृथिव्याः दिवस्पती) आकाशवत् विस्तृत पृथिवी के भी पालक (वि-चर्षणी) प्रजा के विविध व्यवहारों से देखने वाले, विविध प्रजाओं के स्वामी, होकर (चित्रेभिः) नाना, अद्भुत (अश्रौः) मेघों के तुल्य आस प्रजाओं की रक्षा करने वाले नायकों सहित (उप तिष्ठथः) विराजते हो । और (रवं द्यां) गर्जन, आज्ञा वचन और विजुली के प्रकाश के समान तेज प्रकट करते हो, और (असुरस्य मायया) मेघ के तुल्य बलवान् क्षात्र सैन्य की शक्ति और बुद्धि से (वर्षयथः) नाना सुखों की प्रजा पर वृष्टि करते हो ।

माया॑ वां॑ मित्रावरुणा॑ दिवि॑ श्रिता॑ सूर्यो॑ ज्योतिंश्चरति॑ चित्रमा-
युधम् । तमुभ्रेण॑ वृष्ट्या॑ गृहथो॑ दिवि॑ पर्जन्यद्रुप्सा॑ मधुमन्त॑
ईरते॑ ॥४॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) देह में प्राण और उदानवत् राष्ट्र में राजा और सचिव ! प्रजा के स्नेही और श्रेष्ठ पदपर वरण करने योग्य ! जिस प्रकार (दिवि सूर्यः ज्योतिः) आकाश में सूर्य और विद्युत् (चित्रम् आयुधम्) चित्रमय धनुषाकार होता है और (अभ्रेण वृष्ट्या तं गृ-हथः) मेघ और वृष्टि द्वारा उसको आच्छादित करते हैं और (मधुमन्तः

द्रप्साः ईरते) जलमय रस बहते हैं उसी प्रकार हे (मित्रा वरुणा) राजा और अमात्य, सभा सेनापतियो ! (वां) आप दोनों की (दिवि) विद्वानों की राजपरिषद् और संग्राम में विजय कार्यं, वा राज-प्रजा व्यवहार में (माया श्रिता) बुद्धि संलग्न तथा स्थिर रहे । आप लोगों का (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी (ज्योतिः) ज्ञान और प्रताप तथा (चित्रम्) आश्र्वय करने वाला (आयुधम्) शशबल (दिवि चरति) पृथिवी पर विचरे । (तम्) उस प्रताप को आप लोग (अन्नेण वृष्ट्या) मेघवत् प्रजा के पोषक स्वरूप तथा प्रजा पर नाना सुखों के वर्षण द्वारा (गृह्यतः) संबृत रक्खो । हे (पर्जन्य) प्रजाओं को ऐश्वर्य देने हारे ! मेघवत् उदार जन ! राजन् ! तेरे (मतुमन्तः) अज्ञादि समृद्धि से सम्पन्न (द्रप्साः) अन्यों को मोह में डाल देने वाले आप जन जल स्रोतों के समान (दिवि ईरते) पृथिवी पर सर्वत्र विचरें ।

रथं युजते मृहतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।

रजांसि चित्रा विचरन्ति तन्यवो दिवः संप्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५

भा०—हे (मित्रा वरुणा) सूर्य पवन के समान मित्र, सदको ग्रिय, जीवनदाता और सर्वश्रेष्ठ, दुःखवारक पुरुषो ! (मृहतः) विद्वान् लोग (शुभे) कल्याण के लिये (सुखं) सुखप्रद (रथं) रथ को (शूरः न) शूरवीर के समान (युजते) जोड़ते और (गविष्टिषु) किरणों के प्राप्त होने पर जिस प्रकार (चित्रा रजांसि) विविध नाना अङ्गत लोक और (तन्यवः) नाना विद्युतें (वि चरन्ति) विविध दिशा में चलती हैं उसी प्रकार राशू में (गविष्टिषु) भूमियों को प्राप्त करने के लिये शूरवीर (चित्रा रजांसि) विविध और अङ्गत शूरवीर लोग और (तन्यवः) गर्जनशील विद्युत् अस्त्र (वि चरन्ति) चलते हैं । हे (संप्राजा) सेना व सभा के स्वामी जग्नो ! (नः दिवः) हम् ऐश्वर्यादि की कामना करने वालों को (पयसा) मेघ के समस्त पोषणकारी जल अज्ञादि से (उक्षतम्) सींचो, पुष्ट करो ।

वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभा वसत मृहतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसंम् ॥६॥

भा०—हे (मित्रावरुण) स्वेहयुक्त और एक दूसरे को वरण करने हारे गुरु शिष्यजनो ! (पर्जन्यः यथा त्विषीमतीं इरावती चित्रां वाचं वदति) मेघ जिस प्रकार विद्युत् और जल से युक्त अद्भुत गर्जना करता है उसी प्रकार लोकोपकारार्थ (पर्जन्यः) पिता के समान उत्थादक, ज्ञान से नृप करने वाला आचार्य, (चित्राम्) आश्र्वयजनक, ज्ञान देने वाली (त्विषीमतीम्) उत्तम विद्या प्रकाश से युक्त, (इरावतीम्) जलवत् स्वेहयुक्त (वाचं वदति) वाणी का उपदेश करे । हे (मृहतः) वायुओं के समान आलस्य रहित शिष्यजनो ! आप लोग (मायया) ब्रुद्धि से (अभा) मेघों के समान ज्ञानजल से पूर्ण होकर (सु वसत) सुख पूर्वक रहो । (अरुणाम्) अरुण, तेजस्विनी, (अरेपसम्) अपराध पापादि से रहित, (द्याम्) कामना, ज्ञान प्रकाश को (वर्षयतम्) आप दोनों एक दूसरे के प्रति सेचन करो, उसकी ब्रुद्धि करो । ‘पर्जन्यः’—पर्जन्यस्तुपेराचन्तविपर्यस्य, तर्पयिता जन्यः । परो जेता वा जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम् । इति यास्कः ॥ निरु० ३० ॥ १ ॥ १० ॥ इसी प्रकार राष्ट्र में—सभा सेनापति ‘मित्रावरुण’ है । उनमें (पर्जन्यः = परोजेता) ‘पर्जन्य’ उत्कृष्ट विजेता नाथक है । वह अद्भुत ओजस्विनी वाणी बोले, (मृहतः) सैन्यगण मेघों के समान शरवर्षी होकर रणकाश को धेरें और (द्यां) कान्तियुक्त निष्काम विजय करें ।

धर्मेण मित्रावरुणा विपश्चिता ब्रुता रक्षेथे असुरस्य मायया ।

ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धृत्थो द्विवि चित्रं रथम् ॥१

भा०—हे (विपश्चिता मित्रा वरुणा) विद्वान् सर्वस्तेही एवं सर्व-श्रेष्ठ न्यायाधीश, सेनापति जनो ! आप दोनों (असुरस्य मायया) ग्राणों के देने वाले मेघ वा सूर्य के समान जीवनप्रद बलवान् पुरुष की कार्य-

कर्त्ता शक्ति और ज्ञानवतीं बुद्धि से और (धर्मणा) धारण करने में समर्थ बल से (ब्रता) समस्त उत्तम कर्मों, सत्य भाषण आदि नियमों को (रक्षये) पालन किया करो । (ऋतेन) सत्य ज्ञान और धनैश्वर्य और तेज से (विश्वं भुवनं) समस्त लोक को प्रदीप करो । (दिवि सूर्यम्) आकाश में (सूर्यम्) सूर्य के समान, (दिवि) इस भूमि में भी तेजस्वी (चित्रं) अनुत्त शक्तियों से युक्त (रथं) विमान, रथ आदि गमनागमन के साधन को (आ धर्थः) धारण करो । (२) हे गुरु शिष्यो ! एवं विद्वान् खी पुरुषो ! आप लोग (दिवि) ज्ञानप्रकाश के निमित्त (चित्रं रथं सूर्यम्) ज्ञानप्रद रमणीय, आनन्दप्रद तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करो । इति प्रथमो वर्गः ॥

[६४]

अर्चनाना ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ विराङ्गुष्टुप् । ६
निचृदनुष्टुप् । ३, ५ भुरिगुण्डिक् । ४ उण्डिक् । ७ निचृत् पंक्तिः ॥
संसर्वं सूक्तम् ॥

वरुणं वो रिशादसमुच्चा मित्रं हृचामहे ।
परि ब्रजेवं बाह्वोर्जग्न्वांसा स्वर्णरम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों के बीच में (वरुण), शत्रुओं के वारक, सबमें से वरण करने योग्य, (मित्रं) सर्वस्त्रेही, प्रजा को नाश होने से बचाने वाले और (ब्रजा-इव) ज्ञानपूर्वक विचरण करने वाले विद्वान् संन्यासी के समान (बाह्वोः) बाहुओं के बल से (परिजग्न्वांसा) सर्वत्र गमन करने वाले सभा व सेना के अध्यक्षो ! तथा (स्वःनरम्) प्रतापयुक्त सैन्यबल के नायक, सुखप्रद नेता को भी (ऋचा हृचामहे) उत्तम स्तुति तथा आदरपूर्वक बुलावें, स्वीकार करें ।

ता ब्राह्मा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।

शेवं हि जार्यं वां विश्वासु ज्ञासु जोगुवे ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) प्रजा के स्थेही एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण एवं क्षात्र वर्गो ! पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (अस्मै) इस (अर्चते) स्तुति करने हारे प्रजाजन को (ब्राह्मा) अपने शत्रु-वाधक बाहुबल और अज्ञान-वाधक (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान से (जार्यं) स्तुति करने योग्य, दुःखों को जीर्ण करने वाला (शेवं) सुख (प्र यन्तम्) प्रदान करो । और मैं विद्वान् प्रजाजन (वां) आप दोनों के (जार्यं) स्तुत्य कार्य की (विश्वासु आसु) समस्त भूमियों में (जोगुवे) प्रशंसा करूं वा उपदेश करूं ।

यन्त्रुनभूश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।

अस्य प्रियस्य शर्मणयहि सानस्य सञ्चिरे ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (प्रियस्य) सर्व प्रिय (अहिंसानस्य) अहिंसक (मित्रस्य) सर्वस्तेही पुरुष के (शर्मणि) शरण में सज्जन (यत् गतिष्ठ) जिस उत्तम ज्ञान वा सद्गति का (सञ्चिरे) लाभ करते हैं, (नूनम्) निश्चय से मैं भी उस (गतिं) ज्ञान और सद्गति को (अश्याम्) प्राप्त करूं । और मैं भी (मित्रस्य पथा) उसी स्थेहवान्, परम मित्र के सन्मार्ग से (यायाम्) गमन करूं ।

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।

यद्धु ज्येऽसुधोनां स्तोतृणां च स्पूर्धसे ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) मित्र वरुण ! हे सर्वस्तेही ! हे सर्व श्रेष्ठ जनो ! (सुधोनां) धन सम्पद, धनदानी और (स्तोतृणां च) ज्ञान सम्पद उपदेष्टा लोगों के (क्षये) गृह में (यत् ह स्पूर्धसे) जो स्पर्धा करने योग्य उत्तम धन और ज्ञान (उपमं) सर्वोपमायोग्य हो, उसे मै

(युवाभ्याम्) आप दोनों की सहायता से, (धेयाम्) प्रदान और पुष्ट करूँ और स्वयं भी धारण करूँ।

आ नौ मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सुधस्थु आ ।
स्वे क्षये मृघोनां सखीनां च वृधसे ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहवान् पुरुष ! हे (वरुणः च) श्रेष्ठ जन ! आप दोनों, (सधस्ये) समान निवास स्थान में रहकर (मधोनां) उत्तम ऐश्वर्यवान् और (सखीनां) मित्र रूप हम लोगों को (वृधसे) बढ़ाने के लिये (नः) हमारे (स्वे क्षये) अपने गृह में आकर (सुदीतिभिः) उत्तम दीसियुक्त सम्पत्तियों तथा उत्तम दानशील क्रियाओं सहित हमें (आ) प्राप्त होवो ।

युवं नौ येषु वरुण कृतं वृहच्च विभृथः ।
उरु ग्नो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहयुक्त ! हे (वरुण) दुःखों के बारण करने हारे ! (युवं) आप दोनों (नः) हमारे (क्षत्रं) बल और (वृहत्) महान् राष्ट्र को (विभृथः) धारण और परिपुष्ट करते हो ! और (साये) ऐश्वर्य की वृद्धि (स्वस्तये) कल्याण के लिये और (वाजसातये) धनैश्वर्य, जल और संप्रामकारी बल को प्राप्त करने के लिये (उरु कृतम्) बहुत प्रयत्न करो । अथवा—(नः उरुकृतं विभृथः) हमारे बड़े भारी किये यतन को भी धारण वा पुष्ट करो ।

उच्छ्रुत्यां मे यज्ञता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरापुद्भिर्धीवतं नरा विभ्रतावर्चुनानासम् ॥७॥

भा०—हे (मित्रा वरुणो) स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (रुशद्-गवि) प्रदीप किरणों से युक्त (देव-क्षत्रे) प्रकाश के धनी सूर्य के आश्रय से जिस प्रकार उषा प्रकट होती है उसी प्रकार (रुशद्-गवि) दीसियुक्त अरुण अश्वों, पक्षाङ्ग की कान्ति से युक्त भूमियों के स्वामी एवं

(देवक्षत्रे) योद्धागण के बल से सम्पन्न सेनापति के अधीन सेना के (उच्छत्यां) प्रकट हो जाने पर, हे (नरा) उत्तम सभा वा सेना के नायक पुरुषो ! तुम दोनों भी (अर्चनानसं) श्रेष्ठ नासिका से युक्त सुमुख उत्तम प्राणवान् बलवान्, (सुतं सोमं) अभिषिक्त ज्ञापक पुरुष का (विभ्रतौ) परिपुष्ट करते हुए (हस्तिभिः न) हस्तवान् कार्यकुशल पुरुषों के तुल्य (पड्भिः) शीघ्र जाने वाले पदातियों वा रथों से (धावतं) वेग से आगे बढ़ो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६५]

रातहन्त्र आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ स्वराङ्गाधिष्ठाक् । भुरिगुष्मिक् । ६ विराट् पंक्तिः ॥ पद्मूर्च्छकम् ॥

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवता स ब्रवीतु नः ।

वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वन्ते गिरः ॥ १ ॥

भा०—(यः चिकेत) जो ज्ञानवान् है, (सः) वह (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म करनेहारा भी हो । (सः) वह (नः) हम (देवता) विद्या के अभिलाषी जनों को (ब्रवीतु) उपदेश करे । अथवा वह (देवता) विद्याभिलाषी जनों का रक्षक गुरु उपदेश करे । (यस्य) जिसका (मित्रः) स्नेहवान् शिष्य हो वह (वरुणः) वरण करने योग्य (वा) भी हमें (गिरः वन्ते) उत्तम ज्ञान वाणियें प्रदान करे ।

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।

ता सत्पती ऋतावृधं ऋतावाना जनेजने ॥ २ ॥

भा०—(ता हि) वे दोनों भी (श्रेष्ठ-वर्चसा) उत्तम तेज और अध्ययन व्रतादि से सम्पन्न (राजाना) राजाओं के समान तेजस्वी, (दीर्घ-श्रुत्तमा) दीर्घकाल तक गुरुपदेश श्रवण करने और करानेहारे अति विद्वान् हों, (ता) वे दोनों (सत्-पती) सज्जनों, सद्गुणों और

- सत्यदार्थों के पालन करने वाले, (क्रता-वृद्धा) सत्य ज्ञान की वृद्धि करने वाले और (जने-जने) प्रत्येक जन समूह में (क्रतावाना)
- सत्योपदेश को प्रदान करने और सत्य ज्ञान, सत्य व्रत को धारण करने वाले हों ।

ता वामित्यानोऽवस्तु सूर्वा उप ब्रुवे सचा ।

स्वश्वासः सुचेतुना वाजान् अभि प्र दावने ॥ ३ ॥

- भा०—(स्वश्वासः दावने वाजान् अभि) जिस प्रकार उत्तम अश्वा-
रोही गण आजीविका देने वाले स्वामी के लिये संग्रामों को लक्ष्य करके
आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार (सु-चेतुना) उत्तम ज्ञानसहित (स्वश्वासः)
उत्तम इन्द्रियों वाले, जितेन्द्रिय, लोग (दावने) ज्ञान प्रदान करने वाले
गुरुजन के यशोबृद्धि के लिये (वाजान् अभि) ज्ञानों को उद्देश्य करके
आगे बढ़ें । जिस प्रकार राष्ट्रवासी जन सैन्य और नायक दोनों (अवसे
उपवृते) रक्षा की प्रार्थना करता है उसी प्रकार (इयानः) प्राप्त
होने वाला नव शिष्य में (ता वाम) उन दोनों (पूर्वा) पूर्व विद्यमान आप
मान्य जनों को (अवसे) ज्ञान देने और रक्षा के निमित्त (सचा) एक
साथ, (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूँ ।

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।

मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमृतिरस्ति विधुतः ॥ ४ ॥

- भा०—(मित्रः) स्नेहवान् मित्र वही है जो (अंहोः चित् क्षयाय)
पाप से पृथक् रहने के लिये अथवा (अंहोः चित् क्षयाय) पाप और
पापाचारी के नाश करने के लिये (गातुं) वाणी का (उरु) खूब (वनते)
प्रदान करता है । राष्ट्र में वही मित्र है जो परस्पर हत्या कलह आदि पाप
से रहित होकर निवास करने के लिये (गातुं वनते) पृथिवी का न्याय
पूर्वक विभाग कर देता है । (मित्रस्य) सबसे स्नेह करने वाले (प्रतूर्वतः)
अति शीघ्र कार्य करने में कुशल और (विधुतः) विशेष विधान अर्थात्

धर्म मर्यादा स्थिर करने वाले पुरुष की (हि) निश्चय से (सु-मतिः अस्ति) सदा शुभ मति हो । अथवा शीत्रकारी (विधतः) परिचर्या करने वाले स्नेही शिष्य की उत्तम बुद्धि होती है ।

ब्रुयं मित्रस्यावसि स्याम् सुप्रथस्तमे ।

आनेहसुस्त्वोतयः सुत्रा वरुणशेषसः ॥ ५ ॥

भा०—(वयम्) हम सब लोग (मित्रस्य) स्नेहवान् एवं अज्ञान रूप मृत्यु के गढ़ से बचाने वाले गुरु के (सप्रथस्तमे) अति विस्तार युक्त (अवसि) ज्ञान और रक्षा में (सत्रा) सदा सत्य व्रत के पालक (अनेहसः) अहिंसक, पापरहित (वरुण-शेषसः) श्रेष्ठ दुःखवारक पुरुष के पुत्र के समान, एवं श्रेष्ठ पुत्रों वाले (त्वा ऊतयः) तुक्ष द्वारा रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने हारे होकर (स्याम) रहें ।

युवं मित्रेमं जनं यत्थः सं च नयथः ।

मा मुघोनः परि ख्यतं मो आस्माकुभृषीणां गोपीथेन उरुष्य-
तम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा) स्नेह करने वाले उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! वा अध्यापक उपदेशक जनो ! आप लोग (युवं) दोनों (इमं जनं) इस शिष्यजन को (यत्थः) यत्तपूर्वक प्रेरणा करो । और (सं नयथः च) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में ले जाओ ! (अस्माकुं) हमारे बीच में (मवोनः) दान योग्य उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (ऋषीणां गो-पीथेन) वेदार्थ विज्ञ, विद्वान् पुरुषों की वाणियों के पान करने के कार्य से (मा परि ख्यतम्) कभी विज्ञित न करो । ज्ञान देने के निमित्त उनका तिरस्कार न करो । इति तृतीयो वर्गः ॥

[६६]

रातहृष्य आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१,५,६ विराङ्गनुष्टुप् ॥

२ निचृदनुष्टुप् । ३, ४ स्वराङ्गनुष्टुप् ॥ षष्ठ्यं सूक्तम् ॥

आ चिकितान् सुक्रतूं देवौ मर्ति रिशादसा ।

वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥ १ ॥

भा०—हे (चिकितान) ज्ञानयुक्त विद्वान् पुरुष ! हे (मर्ति) मनुष्य ! तू (सुक्रतू) कर्म करने वाले, उत्तम प्रज्ञायुक्त (रिशादसा) दुष्टों के नाश करने वाले, (देवौ) दो ज्ञान प्रकाशक पुरुषों को (वरुणाय) श्रेष्ठ, (ऋत-पेशसे) सत्य ज्ञान के धनी (प्रयसे) प्रयत्नवान् (महे) बड़े पुरुष के उपकार के लिये (आ दधीत) आदरपूर्वक स्थापित कर । एक ज्ञान दान करे, एक आचार सुधारे । एक सन्मार्ग में प्रेम से प्रवृत्त करे, एक ताड़ना से दुष्ट मार्ग से बारण करे ।

ता हि कृत्रमविहृतं सुम्यगसुर्युमाशाते ।

अधे व्रतेव मानुषं स्वर्णं धायि दर्शतम् ॥ २ ॥

भा०—(ता हि) वे दोनों ही (अविहृत) कुटिलता से रहित (असुर्य) प्राणवान् जन्मुओं के हितकारक (क्षत्रम्) बल को (सम्बद्ध) अच्छी प्रकार (आशाते) बश करने में समर्थ होते हैं (अधे) और उन द्वारा ही (व्रता इव) कर्तव्य कर्म के समान (दर्शतम्) दर्शनीय आदर्श (मानुषं) मनुष्यों का (स्वः न) परम सुखकारी राष्ट्र (धायि) धारण किया जाता है । वे मनुष्यों के हितकारी सुखजनक राज्य को भी अपना कर्तव्य समझकर पालन करते हैं ।

ता ब्रामेषु रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।

रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृकस्तोमैर्मनामहे ॥ ३ ॥

भा०—(एषाम् रथानाम्) इन उत्तम, वेगवान् रथों के (जर्वीं गव्यूतिम्) बड़े मार्ग को (पूषे) चलने के लिये (ता ब्राम्) उन आप दोनों को ही अग्नि जलवत् मुख्य प्रवर्तक (मनामहे) स्वीकार करते हैं और (रात-हव्यस्य) अग्न आदि भोज्य पदार्थ देने वाले स्वामी

की (सुस्तुतिं दध्क्) उत्तम स्तुति, को भी धारण करने वाले आप दोनों को ही (स्तोमैः मनामहे) उत्तम स्तुत्य वचनों द्वारा स्वीकर करते हैं । अग्नि, यम दोनों तत्व जिस प्रकार रथों के दीर्घ मार्ग चलने में कारण होते हैं राष्ट्र में प्रजाओं के भी दीर्घ काल तक निभन्ने में मुख्य दो बल न्याय, और शासन-विभाग कारण हैं । वे प्रधान राजा की उत्तम कीर्ति को धारते हैं । देह में प्राण, अपान दीर्घ जीवन के कारण हैं वे आत्मा के स्तुत्य शक्ति के धारक हैं । इन जीवों के लिये बड़ी (गव्यूति) ज्ञान वाणियों की प्राप्ति में गुरु-शिष्यपरम्परा ही मुख्य कारण है । वे दोनों ज्ञानप्रद प्रभु परमेश्वर के उत्तम स्तुति रूप, उपदिष्ट वेद को धारण करने वाले हों ।

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरङ्गुता ।

नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

भा०—(अध हि) और (पूत-दक्षसा) पवित्र बल को धारण करने वाले (युवं) आप दोनों (दक्षस्य) बल के (पूर्भिः) पूर्ण करने वाले शिष्यों सहित (अङ्गुता) अङ्गुत (काव्या) विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुषों के द्वारा ज्ञान करने योग्य ज्ञानों का (जनानां) मनुष्यों के हितार्थ (केतुना) ज्ञापक शास्त्र द्वारा (नि चेकेथे) निरन्तर ज्ञान करो, उसका बराबर अभ्यास किया करो ।

तद्वतं पृथिवि बृहच्छ्रूत्व एष ऋषीणाम् ।

ज्युसानावरं पृथ्वति त्तरन्ति यामभिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पृथिवी) पृथिवी के समान ज्ञान को विस्तार करने हारी विदुषी स्त्री (श्रवः) पृथिवी पर अच के समान जीवन देने वाला (ऋषीणाम्) मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियों का (तत्) वह (त्रतं) सत्यमय (बृहत्) बड़ा भारी (श्रवः) श्रवण करने योग्य ज्ञान है जिसको मेघों के समान विद्वान् जन (यामभिः) आठों प्रहर (पृथु) बड़े विस्तृत रूप में (अति) खूब (क्षरन्ति) बरसाते हैं । हे (ऋषसानौ) ज्ञानमार्ग

से जाने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उसको अन्नवत् (अरं) सब प्राप्त करो और उपभोग लो ।

आ यद्वामीयचक्षसा मित्रं वृयं च सूरयः ।

व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतैमहि स्वराज्ये ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा) परस्पर स्नेहवान् स्त्री पुरुषो ! हे (ईय-चक्षसा) ज्ञान करने योग्य दर्शन वा कथन करने वाले विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो (वाम्) आप लोगों के बन्धुजन हैं वे और (वयं च) हम भी (सूरयः) समस्त विद्वान् जन मिलकर (व्यचिष्टे) अति विस्तृत (वाहुपाय्ये) बहुत से वीर पुरुषों द्वारा रक्षा करने योग्य (स्वराज्ये) स्वराज्य के निमित्त (आ यतैमहि) सब प्रकार से यत्नवान् होते रहें । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६७]

यजत आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्ठृ ।
३, ५ विराङ्गनुष्ठृ ॥ एकादशर्च सुक्रम् ॥

वल्लित्था देव निष्कृतमादित्या यज्ञतं बृहत् ।

वरुण मित्रायैमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाये ॥ १ ॥

भा०—हे (देवा) दानशील, तेजस्वी, हे (आदित्या) भूमि के पुत्रवत् हितकारी, हे (वरुण मित्र अर्यमन्) दुष्टों के वारक, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाले, स्नेहयुक्त ! शत्रुओं और प्रजाजनों का नियन्त्रण करने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों (बृहत्) बड़े भारी (क्षत्रं) बल सेन्य को (यज्ञतं) प्राप्त करो । और (वर्षिष्ठं) उत्तम ऐश्वर्यदायक, शत्रु पर अस्त्र वर्षी तथा राज्य का उत्तम प्रबन्ध करने में समर्थ (क्षत्रं) बल सम्पत्ति को (आशाये) प्राप्त करो ।

आ यद्योर्नैं हिरण्यश्च वरुण मित्रं सद॑थः ।

धूर्तारं चर्षणीनां युन्तं सुमनं रिशादसा ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ, शत्रुवारक, प्रजा से सुख्य पद पर वरण करने योग्य, हे स्त्रेहयुक्त जनो ! आप दोनों (यत्) जब (हिरण्ययं) हितकारी और रमणीय तथा सुवर्णादि के बने, तेजोयुक्त गृह, पदासन तथा कारण को (आ सदथः) सब्र प्रकार से विराजते और वश करते हो तब आप (चर्षणीनं धर्त्तारा) प्रकाशक किरणों को धारण करने वाले सूर्य, विद्युत् के समान (चर्षणीनं धर्त्तारा) समस्त विद्वान् मनुष्यों को धारण करने वाले और (रिशादसा) दुष्टों को नाश करने में समर्थ होकर (चर्षणीनं सुम्नं यन्तम्) मनुष्यों को सुख प्रदान करो ।

विश्वे हि विश्ववेदस्तो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

ब्रता प्रदेव सश्विरे पान्ति मत्यं रिषः ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य उत्तम धनों, ज्ञानों वेतनादि का विभाग करने वाला सर्वश्रेष्ठ राजा, (मित्रः) सर्व स्नेही, और (अर्यमा) न्यायाधीश, (विश्वे) समस्त (विश्व-वेदसः) समस्त धनों, ज्ञानों को जानने वाले विद्वान् पुरुष (ब्रता) कर्तव्यों, कर्मों को (पदा इव) अवदय रखने योग्य पदों, कदमों या ज्ञान साधनों वा अर्थबोधक पदों के समान (सश्विरे) करते हैं । वे (मत्यं) मनुष्यमात्र को (रिषः) हिंसक, दुष्ट पुरुष से वा नाश होने से (पान्ति) बचाते हैं ।

ते हि सत्या ऋृतस्पृशः ऋृतावान् जनेजने ।

सुनीथासः सुदानवौऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥ ४ ॥

भा०—(ते हि) और वे निश्चय से (सत्याः) सत्याचरणशील, (ऋतस्पृशः) तेजस्वी, (ऋतावानः) ऐश्वर्यवान् (सु-नीथाः) उत्तम वेद चाणी के बोलने हारे, (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुष (जने जने) (अंहोः चित्) पाप से भी मुक्त होकर (उरु-चक्रयः) बहुत बड़े २ कार्य करने वाले हैं ।

को तु वौं सित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।

तत्सु वामेष्टते सुतिरत्रिभ्यु एषते सुतिः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहयुक्त प्रजा को मरण से बचानेहारे ! हे (वरुण) दुखनाशक, वरणीय जनो ! (वाम) तुम दोनों को (तनूना) देह धारियों में से (कः) कौन जन (अस्तुतः) अप्रशंसित, अनुपदिष्ट, मूर्खं पुरुषं (एषते) प्राप्त हो सकता है । जो (मतिः) मननशील पुरुष (अत्रिभ्यः) तीनों प्रकार के दोषों और दुःखों से रहित विद्वानों से (एषते) ज्ञानं प्राप्त करता है वही (मतिः) मतिमान् होकर (वाम् एषते) तुम दोनों के पद को प्राप्त करता है । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६८]

यजत आवेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ कन्दः—१, २ गायत्री । ३, ५ निचूदायत्री । ५ विराढ् गायत्री ॥ पञ्चमं सूक्तम् ॥

प्र वौं सित्राय गायत्र वरुणाय विपा गिरा ।

नहिंक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (वः) अपने (मित्राय) स्नेही और (वरुणाय) दुःखों के वारण करने वाले, (महि क्षत्रौ) बड़े बलशाली, (विपा) विविध प्रकारों से पालन करने वाले, (बृहत् कृतं) बड़े भारी सत्यमय न्याय और ऐश्वर्य को देने वाले या उनकी रक्षा करने वाले दोनों को (गिरा) वाणी द्वारा (प्र गायत्र) अच्छी प्रकार स्तुति करो ।

सन्नाजा या धृतयोनीं सित्रश्चोभा वरुणश्च ।

देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (धृतयोनी) जल और स्त्रियों पदार्थ से उत्पन्न होने वाले वैद्युत् और भौम अभि दोनों (सन्नाजा) अच्छी प्रकार चम-

कते हैं और (देवेषु प्रशस्ता) प्रकाशमान् पदार्थों में उत्तम हों उसी प्रकार (या) जो दोनों (धृत-योनी) तेज या दीपि के आश्रय पर रहने वाले (सम्राजा) अच्छी प्रकार चमकने वाले, अति तेजस्वी (मित्रः वरुणः च) स्नेही, सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ सभा व सेना के (उभा) दोनों अध्यक्ष हैं वे (देवा) दानशील दोनों पुरुष (देवेषु) उपस्थित विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के दोनों वर्गों में (प्रशस्ता) उत्तम प्रशंसनीय हों।

ता नः शङ्कुं पार्थिवस्य मुहो रायो दिव्यस्य ।

महि वां कृत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनों सभा व सेना के अध्यक्ष जनो ! (नः) हमारे (महः) बड़े भारी (पार्थिवस्य) पृथिवी और (दिव्यस्य) न्याय व्यवहार, वार्ता आदि व्यापारों से प्राप्त (रायः) धन के ऊपर (शक्तम्) शक्तिमान् बनो । (वां) आप दोनों का (देवेषु) दानशील, व्यवहारकुशल और तेजस्वी पुरुषों में (महि कृत्रं) बड़ा भारी बल विद्यमान है ।

ऋतमुतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।

अद्वृहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥

भा०—आप दोनों (अद्वृहा) परस्पर कभी द्वोह न करते हुए (देवा) तेजस्वी, दानशील, एक दूसरे की सत्कामना करते हुए (ऋतम् ऋतेन सपन्ता) ऐश्वर्य को सत्य व्यवहार और न्याय से प्राप्त करते हुए (इपिरम् दक्षम्) इच्छानुकूल सबको शासन करने वाले, सर्व प्रेरक बल और ज्ञान को (आशाते) प्राप्त करो और (वर्धेते) बढ़ो, वृद्धि को प्राप्त होओ ।

वृष्टिद्यावा शीत्यपेषस्पती दानुमत्याः ।

वृहन्तं गर्त्तमाशाते ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु और विद्युत् (वृष्टि-द्यावा) जल वृष्टि और दीपि से युक्त और (शीत्यापा) जल प्रवाह कराने वाले होकर (दानु-

मत्या: इषः पती) भूमि के पालक होकर (बृहन्तं गर्त्म् आशाते) बड़े भारी सूर्य वा मेघ को व्यापते हैं उसी प्रकार 'मित्र' और वरुण न्यायधीश और सेनापति, दोनों (बृष्टि-यावा) जल बृष्टि के समान तेजस्वी (रीत्यापा) ज्ञान और गति तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति करने वाले, होकर (दानु-मत्या:) देने योग्य नाना ऐश्वर्यों की स्वामिनी, राज्यशक्ति वा पृथिवी के (इषः पती) अन्नादि के स्वामी तथा शासक, बल के पालन करने वाले होकर (बृहन्तं गर्त्म्) बड़े भारी सभापति के पद तथा महान् रथ को (आशाते) प्राप्त करते हैं । 'गर्तः' सभास्थाणः, रथश्च । इति षष्ठो वर्गः ॥

[६६]

उत्तरक्रिरात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ अन्तः—१, २ निनृत्रिष्टुप् ,
३, ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्थं सूक्तम् ॥

त्री रोचना वृरुण त्रीरुँत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावृमति त्रात्रियस्यानु वृतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) दुष्टों के वारण करने वाले ! हे (मित्र) ग्राण-वत् प्रिय, सर्वस्नेही न्यायकारिन् ! आप दोनों (त्री रोचना) अग्नि, सूर्य और विद्युत् तीनों दीप्तिमान् पदार्थों के तुल्य सर्वप्रकाशक तीनों वेदों के ज्ञानों को (उत्) और (त्रीन्) तीन (द्यून्) प्रकाशों के समान तीनों प्रकारों के व्यवहारों को और (त्राणि रजांसि) तीनों वर्णों के लोगों को (धारयथः) धारण करते हो । आप दोनों (क्षत्रियस्य) बलवान् क्षत्रिय के (अमतिम्) रूप को (वावृधानौ) बढ़ाते हुए और (अजुर्यम्) कभी नाश न होने वाले, स्थिर (व्रतं) कार्य व्रत की (अनुरक्षमाणौ) सबके अनुकूल, उत्तरांतर, प्रतिदिन रक्षा करते हुए सबों को धारण करते हो ।

इरावतीर्विरुण धेनवो वां मधुमद्रां सिन्धवो मित्र दुहे ।
वयस्तस्तस्थुर्वृषभासि स्तिसुणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (इरावतीः धेनवः) दूध वाली गौवें (मधु-
मद् दुहे) मधुर रसयुक्त दूध देती हैं और जिस प्रकार (इरावतीः
सिन्धवः मधुमत् दुहे) जल से पूर्ण नदियें अक्ष से युक्त जल-राशि वा
जल से युक्त अक्ष प्रदान करती हैं उसी प्रकार हे (मित्र वरुण) सर्वप्रिय
न्यायाधीश, सभापते ! हे दुष्टों के वारक, सेनापते ! (वाम्) आप दोनों
की (धेनवः) वाणियां (इरावतीः) रस से युक्त और अपने अधीन
पुरुषों को प्रेरणा करने वाली होकर (मधुमत्) ज्ञान और बल से युक्त
ऐश्वर्यों को उत्पन्न करें और (वां सिन्धवः) आप लोगों की प्रेरणा शक्ति
वाली, वेग से जाने वाली और प्रजागण को उत्तम प्रबन्ध में बांधने वाली
आज्ञाएँ और सेनाएँ (मधुमत् दुहे) मधुर फल एवं बलयुक्त राष्ट्र को
प्रदान करती हैं । जिस प्रकार (तिसृणाम् धिषणानाम्) सूर्य, आकाश
और पृथिवी तीन लोकों के बीच में (त्रयः वृषभासः रेतोधाः द्युमन्तः वि
तस्थुः) तीन बलवान् वर्षणशील, जल, वीर्य को धारण करने वाले तेजस्वी
सूर्य विद्युत् और अग्नि वा अग्नि, वायु और जल तीनों विशेष रूप से विरा-
जते हैं उसी प्रकार (तिसृणां) तीन (धिषणानाम्) अध्यक्ष होकर आज्ञा
प्रदान करने वाली राष्ट्रधारक, तीन सभाओं के ऊपर (त्रयः) तीन
(वृषभाः) बलवान्, उत्तम प्रबन्धकर्ता, धर्मानुकूल शासन से चमकने
वाले (रेतोधाः) बल वीर्य को धारण करने वाले, (द्युमन्तः) तेजस्वी,
व्यवहार कुशल, इच्छाशक्ति से युक्त, प्रधान पुरुष (वि तस्थुः) विशेष
रूप से स्थित हों ।

प्रातदेवीमदिति जोहवीमि मध्यनिंदन उदिता सूर्यस्य ।

श्राये मित्रावरुणा सुर्वतातेऽत्तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥

भा०—मैं (प्रातः) प्रभात काल में और जीवन के प्रभात काल अर्थात्

प्रथम चतुर्थांशा जीवनकाल २५ वर्ष की आयु तक (देवीभू अदितिम्) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश देने वाली, और भूमि के समान अज्ञ और ज्ञान देने वाली माता और आचार्य एवं सावित्री वेदवाणी को (जोहवीभि) निश्चयपूर्वक स्वीकार करुं, आदरपूर्वक उसको ग्रहण करुं उसी प्रकार उसको मैं (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदयकाल में, (मध्यन्दिने) मध्याह्न-काल में भी आदरपूर्वक प्राप्त करुं । अर्थात् यौवन में भी उसकी उपेक्षा वा निरादर न कर अभ्यास करता रहुं । इसी प्रकार राज्य के उदयकाल में अज्ञात्री भूमि का मैं प्रजाजन आदर करुं, सूर्यवत् तेजस्वी राजा के उदय और उसके मध्याह्नवत् तपने पर भी भूमि अर्थात् उसमें वसी प्रजा को ही आदर पूर्वक देखुं । मैं (राये) दान देने योग्य ज्ञान एवं धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये (मित्रा वरुणा) स्वेही और वरण करने योग्य आचार्य, उपदेशा और प्रजा के स्वेही, न्यायाधीश और दुष्टवारक, सेनापति दोनों को माता पिता के सदृश जान कर (सर्वताता) सबके हितार्थ, तथा (तोकाय तनयाय शंथोः) पुत्र पौत्र के तुल्य पालनीय, सैन्यगण और सामान्य प्रजागण के सुख-कल्याण और दुःख निवारण के लिये हम उनको (ईडे) चाहें, उनकी स्तुति करें और स्वीकार करें ।

या धर्तारा रजसो रोचनास्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति ब्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवार्णं ४।७

भा०—हे (मित्रा वरुणा) स्वेहवान् एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठ-जनो ! (या:) जो आप दोनों (रोचनस्य) तेजस्वी, सूर्यवत् ज्ञान प्रकाश से उक्त, सर्वप्रिय एवं (पार्थिवस्य) पृथिवी पर रहने वाले समस्त (रजसः) लोकों को (धर्तारा) धारण करने वाले, (दित्या) ज्ञान प्रकाश में और विजिगीषा, व्यवहार आदि में प्रौढ़, (आदित्या) ज्ञान और कर आदि लेने और देने में तथा भूमि और सरस्वती के वक्ष करने में चतुर हो उन (वां) आप दोनों के (अमृता) कभी नाश न होने वाले

(ध्रुवाणि व्रतानि) स्थिर व्रतों, कर्मों को (देवाः) ज्ञानाभिलाषी शिष्य और ऐश्वर्याभिलाषी प्रजाजन (न आमिनन्त) कभी खण्डित नहीं करते । इति सप्तमो वर्गः ॥

[७०]

उरुचक्रिरात्रयं ऋषिः ॥ मित्रवरुणो देवते ॥ गायत्री छन्दः ॥ चतुर्वर्षं सूक्तम् ॥

पुरुहणा चिद्धयस्त्यवौ नूनं वां वरुण ।

मित्रं वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥

भा०—हे (मित्र वरुण) स्नेहवान् ! हे श्रेष्ठ पुरुषो ! (नूनं) निश्चय ही (वां अवः) आप दोनों का ज्ञान और रमण सामर्थ्य, प्रेम और बल, (पुरु-उरुणा अस्ति चित् हि) बहुत प्रकार का महान् और उत्तम है । मैं (वां) आप दोनों के (सु-मतिम्) शुभ मति, उत्तम ज्ञान को (वंसि) प्राप्त करूँ ।

ता वां सम्यग्द्रुहवाणेष्वमश्याम् धायसे ।

वृयं ते रुद्रा स्याम् ॥ २ ॥

भा०—(ते वयम्) वे हम लोग (अद्वृद्धाणा) कभी द्रोह न करने वाले, (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, और दुःख से बचाने वाले वा रोते हुए आदमियों द्वारा शरण रूप में प्राप्त करने योग्य (ता वां) उन आप दोनों के (इष्म्) शासन को हम अपने (धायसे) पोषण और रक्षा के लिये अक्षवत् (अश्याम्) उपभोग करें ।

प्रातं नौ रुद्रा प्रायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।

तुर्याम् दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने और पीड़ितों को शरण देने वाले मित्र और वरुण ! सभा सेना के अध्यक्षो ! आप दोनों (नः) हम प्रजाओं को (प्रायुभिः) नाना रक्षा साधनों से (उत) तथा (सुत्रात्रा)

उत्तम पालक दण्ड विधान से (पातं) पालन करो और (त्रायेयाम्) संकटों से बचाओ । हम स्वयं (तनूभिः) अपने शरीरों से तथा पुत्र पौत्रों तथा विस्तृत सैन्यादि से (दन्त्यन् तुर्याम्) दुष्ट, हिंसक पुरुषों का नाश करें ।

मा कस्याद्गुतक्रत् युक्तं भुजेमा तनूभिः ।
मा शेषस्त्रा मा तनसा ॥ ४ ॥ ८ ॥

भा०—हे (अद्गुत-क्रत्) आश्र्वर्यजनक बृद्धि और कर्म से सम्पन्न स्नेही और वरणीय उत्तम पुरुषो ! हम (कस्य) किसी का भी (यक्षं) दान दिया धन आदि (तनूभिः) अपने शरीरों से (मा भुजेम) कभी भोग न करें और (शेषसा मा) अपने पुत्र से प्राप्त धन का भी भोग न करें, (मा तनसा) पौत्र का दिया धन भी हम भोग न करें । इसी प्रकार हम अपव्य और पौत्रादि द्वारा भी अन्य किसी का दिया धन न भोगे अर्थात् हमारे पुत्र पौत्रादि भी किसी अन्य के दिये धन का भोग न करें । वे भी स्वबाहूपर्जित धन पर ही जीवन व्यर्तीत करें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[७१]

वाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ गायत्री छन्दः ॥ तृतीं सूक्तम् ॥

आ नो गन्तं रिशाद्सा वरुण मित्रं वर्हणा ।
उपेमं चारुमध्वरम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) शत्रुओं के वारण और प्रजाओं को प्रेम करने हारो ! आप दोनों (रिशाद्सा) दुष्टों का नाश करने वाले, और (वर्हणा) प्रजाओं की ऐश्वर्य, रक्षा, पालन आदि से बृद्धि करने वाले हो, आप दोनों (नः) हमारे (इमं) इस (चारुम्) उत्तम (अध्वरम्) हिंसारहित, प्रजा के पालक, यज्ञ, राष्ट्र को (आ उप गन्तम्) सदा आदर्श यूर्वक ग्रास होवो ।

विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।

ईशाना पिप्यतुं धियः ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) वरुण अर्थात् श्रेष्ठ पदार्थों, ज्ञानों और गुणों के प्रदान करने वाले हे स्नेहवान्, मृत्यु आदि से बचाने वाले, (प्र-चेतसा) प्रकृष्ट ज्ञान से सम्पन्न पुरुषो ! हे (ईशाना) सामर्थ्यवान् जनो ! आप लोग (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र के (हि) निश्चय से (राजथः) राजा के तुल्य विराजते हो । आप दोनों (धियः) हज़ारों समस्त कर्मों और ज्ञानों को (पिप्यतम्) बढ़ाओ, पुष्ट करो ।

उप॑ नः सुतमा गंतुं वरुण मित्र दाशुषः ।

आस्य सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥ ९ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ और स्नेहवान् जनो ! स्त्री पुरुषो ! आप लोग (दाशुषः) दानशील, सुखप्रद ऐश्वर्य के देने वाले (अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्यमय राष्ट्र के पालन और उपभोग के लिये (नः) हमारे (सुतम्) बनाये इस यज्ञ, वा राष्ट्र वा अभिपिक्त नृपति आदि को (उप आ गतम्) प्राप्त होवो । इति नवमो वर्गः ॥

[७२]

वादुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणो देवते ॥ उधिकू छन्दः ॥ तृतीं सूक्तम् ॥

आ मित्रे वरुणे वृयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।

नि वृहिंषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥

भा०—(वृयं) हम लोग (मित्रे वरुणे) स्नेहयुक्त, और श्रेष्ठ पुरुष के अधीन रहकर (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (अत्रिवत्) तीनों दुःखों से रहित यहाँ की ही प्रजा के समान (जुहुमः) यज्ञ आदि कार्यों में त्याग वा कर प्रदान करें तथा उत्तम ऐश्वर्य का भोग करें । हे स्नेहयुक्त एवं श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (सोम-पीतये) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और

राजा के पुत्रवत् पालन करने के लिये (बहिंषु) आसन और वृद्धिशील प्रजा के ऊपर अध्यक्ष रूप से (नि सदतम्) स्थिर होकर विराजो ।

ब्रतेन॑ स्थो धुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।

नि बहिंषि॒ सदतं॑ सोमपीतये ॥ २ ॥

भा०—हे स्नेहयुक्त, प्रेम और आदर से एक दूसरे को योग्य कार्य के लिये वरण करने वाले और वरण करने योग्य ! एवं श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (धर्मणा ब्रतेन) धर्मानुकूल ब्रताचरण से (धुवक्षेमा) स्थिर रक्षण और कल्याण युक्त तथा (यातयत्-जना) मनुष्यों को सन्मार्ग पर यत्नशील बनाते हुए (सोमपीतये) अन्न जल आदि ऐश्वर्य के भोग एवं पालन के लिये (बहिंषि) आसन एवं वृद्धिशील राष्ट्रप्रजाजन के ऊपर अध्यक्ष रूप से (नि सदतम्) नियमपूर्वक विराजो ।

सित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां युव्वसिष्टये ।

नि बहिंषि॒ सदतं॑ सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—(मित्रः च) स्नेहवान्, प्रिय एवं (वरुणः च) वरण करने योग्य उक्त दोनों प्रकार के वर्ग (इष्टये) अभीष्ट कल्याण एवं सुख प्राप्ति के लिये (नः) हमारे (यज्ञम्) श्रेष्ठ कर्म यज्ञ, संगति, याचना प्रार्थना आदि को (जुषेताम्) प्रेम पूर्वक सेवन वा स्वीकार करें । और (सोमपीतये) अन्न, ओषधिरस आदि के सेवन के लिये (बहिंषि) उत्तम आसन पर (नि सदताम्) विराजो । इसी प्रकार (सोमपीतये बहिः नि सदताम्) ऐश्वर्यदि उपभोग वा प्रजापालन के लिये वृद्धिशील प्रजाजन पर अध्यक्षवत् विराजो । इति दशमो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[७३]

नैर आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७ निचूद-
नुष्टुप् ॥ ३, ६, ८, ९ अनुष्टुप् ॥ १० विराङ्गनुष्टुप् ॥ दर्शनं सूक्तम् ॥

यदुद्य स्थः परावति यद्वावित्यश्विना ।

यद्वा पुरुषुभुजा यदन्तरिक्षं आ गतम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारिथी के समान एक ही गृहस्थ रथपर विराजने वाले वा आशु अर्थात् शीघ्र गमन करनेवाले साधनों के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (परावति स्थः) कभी दूसरे देश में रहो, (यत् अवाविति स्थः) और जो कभी निकट देश में भी रहते हो (यत् वा) वा (पुरुषुभुजा) बहुत से जनों के पालक एवं बहुत ऐश्वर्यों के भोक्ता होकर (पुरुस्थः) बहुत से प्रदेशों में रहे हो (यत् अन्तरिक्षः स्थ) और जो कभी आप दो अन्तरिक्ष में विमानादि द्वारा विचरे हों वे २ आप लोग दूर निकट, एवं नाना देशों और अन्तरिक्षादि में विचरने वाले स्त्री पुरुषो ! आप सब लोग (अद्य आयातम्) आज हमें प्राप्त होवो ।

इह त्या पुरुभूतमा पुरु दंसास्ति विभ्रता ।

वरस्या याम्यधिगृ हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

भा०—(त्या) वे आप दोनों (पुरुभूतमा) बहुत से प्रजाजनों में उत्तम सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्य पुत्रादि को उत्पन्न करने वाले, बहुतों के उत्तम आश्रय रूप और (पुरु दंसासि) नाना कर्मों को (विभ्रता) धारण करने वाले (वरस्या) अति श्रेष्ठ, परस्पर को वरण करने वाले आप दोनों को मैं (इह) इस अवसर में (यामि) प्राप्त होता हूँ और (अधिगृ) भूमि पर, अधिकारवान्, एवं मार्ग गगन में दूर २ देशों तक जाने वाले (तुविष्टमा) अति बलवान्, प्रचुर धन के स्वामी आप दोनों को मैं (हुवे) आदर पूर्वक बुलाता हूँ ।

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।

पर्यन्या नाहुषा युगा मङ्गा रजौसि दीयथः ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (ईर्मा) संसार मार्ग पर जानेवाले युगल स्त्री पुरुष

(रथस्य चक्रम्) रथ के चक्र के तुल्य (वपुषे वपुः) एक शरीर के सहरे के लिये (अन्यत् वपुः) उससे भिन्न दूसरे शरीर को जानकर परस्पर को (येमधुः) नियन्त्रित करते, नियम में बांधते और विवाह बन्धन में बांधते हों। उसी प्रकार (अन्यः) अन्य भिन्न २ प्रकार के (नाहुषायुगा) परस्पर बन्धन में बंधने वाले मनुष्यों के जोड़ों को (परिदीयथः) चलाते और (महा) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रजांसि) समस्त लोकों को (परि दीयथः) बसाते और संचालित कर रहे हों। अर्थात् सर्वत्र जीव संसार में रथ चक्रवत् एक स्त्री शरीर दूसरे पुरुष शरीर का संगी होकर नर मादा संसार चला रहे हैं।

तदुषु वासेना कृतं विश्वा यद्वामनुष्टुचे ।

नाना॑ ज्ञाताव॑रेपसा॒ समुस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो (यत्) जो काम (वाम्) आप दोनों के (अनु स्तवे) अनुकूल रूप से स्तुति करने योग्य है, जिसका मैं आप को उपदेश करता हूँ (तत् विश्वा) वे समस्त काम आप दोनों (एना) इस विधि से (कृतम्) करो। और दोनों (अरेपसा) पापरहित होकर (नानाजातौ) भिन्न २ वंश में उत्पन्न होकर वा भिन्न २ स्त्री पुरुष पृथक् पृथक् अपने २ गुणों में प्रसिद्ध होकर भी (अस्मे) हमारे वृद्धि के लिये (बन्धुम्) बन्धन को (सम् आ ईयथुः) अच्छी प्रकार प्राप्त होवो।

आ यद्वां सुर्यां रथं तिष्ठद्युष्यदं सदा ।

परिवामरुषा वयो॑ द्युणा॒ वरन्त आतपः ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (वा) आप वर वधू दोनों में से (सूर्यो) उषा के समान कान्तिमती, सूर्यवत् तेजस्विनी, उत्तम ऐश्वर्यवती, सन्तान उत्पादन करने में समर्थ स्त्री सदा (रघु-स्यदं) वेग से जाने वाले (रथम्) रथवत् रमण करने योग्य गृहस्थ आश्रम को (अतिष्ठत्) धारण करती है, तब ही वर वधू ! (वाम् परि) आप दोनों के ऊपर (अरुषाः) दीसि

युक् (घृणा:) जल सेचन करने वाले (आतपः) खूब तपने वाले सूर्य किरण जिस प्रकार (आवरन्त) आवरण करते या पड़ते हैं उसी प्रकार गृहस्थ में आप दोनों के ऊपर (अहषाः) रोष रहित, सौम्य (घृणा:) ज्ञान, स्नेह का प्रवाह वहाने वाले, द्रव्या स्नेह के सेचन एवं उस द्वारा पोषण करने वाले, (आतपः) सब प्रकार से नपस्त्रो, जन (आ वरन्त) तुम को आवृत करें, तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हें प्राप्त हों। इत्येकादशो वर्गः ॥

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।

घर्म यद्वामरेपसुं नासत्यास्ना भुरुग्यति ॥ ६ ॥

भा०—हे (नरा) दोनों स्त्री पुरुषो ! हे (मासत्या) असत्य आचरण न करने वालो ! (यत्) जो (वाम्) आप दोनों के (घर्म) सेचने योग्य वा तेजोयुक्त (अरेपसं) पापरहित कर्म को (आस्ना) मुख द्वारा (भुरुग्यति) उपदेश करता है, वह (अत्रिः) तीनों लाभों और तीनों दुःखों से रहित विद्वान् पुरुष (सुम्नेन चेतसा) उत्तम मननशील, शुभ चिन्त से ही (युवोः चिकेतति) आप दोनों को ज्ञान का उपदेश करे ।

उग्रो वां ककुहो यथिः शूण्वे यामेषु सन्तुनिः ।

यद्वां दंसोभिरश्वनात्रिनरावुवर्तीति ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) शीघ्र चलने वाले अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय पुरुषो ! (यत् अत्रिः) जो भोक्ता, एवं इस लोक में विद्यमान पुरुष (दंसोभिः) नाना कार्यों से (आवर्त्तति) आजीविका सम्पादन करता है वह (उग्रः) बलवान् पुरुष (वां) आप दोनों में से (ककुहः) श्रेष्ठ, (सन्तुनिः) वंश का विस्तार करने वाला और (यामेषु) समस्त मार्गों पर (यथिः) जाने में स्वतन्त्र (शूण्वे) सुना जाय, प्रसिद्ध हो। या जो (अत्रिः) विद्वान् आप दोनों को कर्मों के उपदेशों से युक्त करता है वह महान् उग्र, आचार्य (यामेषु यथिः) नियमादि पालन कार्यों ले जाने वाला हो ।

मध्वं ऊ पु मध्युवा रुद्रा सिषक्ति पिष्युषी ।

यत्स्मुद्राति पर्षथः पुक्वाः पृक्तो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मध्युवा) मधुर पदार्थों को परस्पर मिलाने वाले, जल, तेज और अज्ञ, के मिश्रण और विश्लेषण करने वाले हैं (रुद्रा) दुष्ट पुरुषों को रुलाने वाले उत्तम खी पुरुषो ! (यत्) जब (रुद्रा) गर्जन पूर्वक द्रवण होने वाली (पिष्युषी) अन्नादि को बढ़ाने वाली जल-वृष्टि (मध्वः सिषक्ति) अन्नों को सींचती हैं, इधर आप दोनों (समुद्रा) अन्तरिक्षों और समुद्रों को भी (अति पर्षथः) पार कर लिया करो, और (पक्वा पृक्षः) पके सुमधुर अज्ञ (वाम् भरन्त) तुम दोनों को पालन पोषण करें । देश में जल वृष्टि से अंत बढ़े, खी पुरुष समुद्रों पार व्यापार करें । उत्तम खेती पकें, लोग उन अन्नों से पुष्ट होवें ।

सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मर्योभुवा ।

ता यामन्यासुहृत्तमा यामन्ना मृद्युत्तमा ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) अर्थों को उत्तम स्वामियों के समान रथी सारथिवत् इन्द्रियों को दमन करने हारे उत्तम खी पुरुषो ! (सत्यम् इत् वा) निश्चय से आप दोनों को लोग जो (मथः-भुवा आहुः) सुख उत्पन्न करने वाले (आहुः) बतलाते हैं सो (सत्यम् इत् वा उ) निश्चय से ठीक ही है । (ता) वे आप दोनों (यामन्) संयम और परस्पर के विवाह आदि बन्धन पूर्वक एक दूसरे को कर्त्तव्य में बांधने के निमित्त याम-हृत्तमा) संयमशील पुरुषों को आदरपूर्वक गुह रूप से स्वीकार करने वालों से श्रेष्ठ होकर विवाह करो और (यामनि) उस संयम युक्त विवाह बन्धन में दोनों (आ मृद्युत्तमा) एक दूसरे को प्राप्त होकर अति अधिक सुखी करने वालों बनो ।

इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।

या तद्वाम् रथां इवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—(या) जिन (ब्रह्माणि) धनों, ज्ञानों और उत्तम अक्षों को हम (रथान् इव) रथों और नाना रम्य पदार्थों के समान (तक्षाम) उत्पन्न करते और बनाते हैं वे (अश्विभ्यां) जितेन्द्रिय रथी सारथिवत् राजा रानी, गृहपति पत्नी आदि स्त्री पुरुषों को (वर्धना) बढ़ाने वाले होकर (शन्तमा) अत्यन्त शान्तिवायक (सन्तु) हों। हम आप दोनों का (बृहत् नमः) बड़ा उत्तम आदरसूचक नमस्कार का वचन (अवोचाम) कहा करें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[७४]

आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, १० विराङ्गुष्टप् । ३ अनुष्टप् । ४, ५, ६, ८ निचूदुष्टप् । ७ विराङ्गुष्णिक् । ८ निचूष्णिक् ॥ एकादशर्च सूक्तम् ॥

कृष्टो देवावश्विनाद्या द्विवो मनावस् ।

तच्छ्रुत्वथो वृषणवस् अत्रिवर्मा विवासति ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (देवौ) दानशील, सत्य वचन को प्रकाशित करने वाले, एक दूसरे की कामना करने वाले होकर (कृ-स्यः) भूमि पर विराजते हों। आप दोनों (दिवः) उत्तम व्यवहार, ज्ञान प्रकाश और उत्तम कामना के (मनावस्) मन और ज्ञान को वसु अर्थात् धन रूप से रखने और (दिवः मनावस्) तेजोमय प्रभु के ज्ञान के धनी होवो । हे (वृषणवस्) हे वृषन् ! हे वसु ! हे वीर्यसेचक पुरुष, एवं पुरुष को अपने आश्रय बसाने वाली स्त्री ! तुम दोनों (तत्) उस ज्ञानोपदेश का सदा (श्रवथः) श्रवण किया करो जिसको (अत्रिः) त्रिविध दुःखों से पारंगत और गृहस्थ वा तीन वर्णों से भिज चतुर्थांश्रमी विद्वान् (वाम्) आप दोनों को (आ विवासति) आदर पूर्वक उपदेश करे ।

कुहू त्या कुहू नु श्रुता दिवि देवा नास्त्या ।

कस्मिन्ना यत्थो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥

भा०—परस्पर प्रश्न करने की रीति । हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो (त्या कुहू आयतथः) वे आप दोनों किस स्थान में यत्नवान् होकर रहते हो । (कुहू) किस गुरु-आश्रम में (नु) भला आप दोनों (दिवि) ज्ञान प्राप्ति के निमित्त (श्रुतौ) विद्योपदेश अवण किये हो ? हे (देवा) परस्पर की कामना से युक्त एवं दोनों विद्वान् तेजस्ती पुरुषो ! आप अब (कस्मिन् जने) किस जन समूह में (आ यत्थः) विद्या प्रचार आदि का यत्न करते हो । (वां) आप दोनों की (नदीनाम्) समृद्ध वाणियों और सम्पत्तियों का (कः) कौन (सचा) सहयोगी है ?

कं याथः कं हूँ गच्छथः कमच्छ्रुं युज्ञाथे रथम् ।

कस्य ब्रह्माणि रणयथो वृयं वामुशमसीष्टये ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (कं याथः) किसको लक्ष्यकर जाते हो । (कं हूँ गच्छथः) किसके पास जाते हो । (कम् अच्छ) किसके प्रति (रथम् युज्ञाथे) जाने के लिये उत्तम यान जोड़ते हो । वा किस (रथम्) उद्देश्य चा लक्ष्य को रखकर योगाभ्यास किया करते हो । (कस्य) किस रमणीय के (ब्रह्माणि) वेद-चर्चनों, धनों और अद्वां का (रणयथः) प्रसन्नता पूर्वक उपभोग करते हो । (वृयम्) हम लोग (वाम्) आप दोनों को (इष्टये) यज्ञ एवं स्व-अभिलाषा के लिये (उप्मसि) चाहते हैं । “कं । हूँ । जग्मयः ।” इति पदपाठगतः पाठः ।

पौरं चिद्धृथूदप्रतुं पौरं पौराय जिन्वथः ।

यदीं ग्रभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

भा०—हे (पौर) पुर के निवासी वा हे मनुष्य की सन्तान स्त्री पुरुष जनो ! आप लोग (पौराय) पुर के निवासी जनों के हित के लिये (उद्धन्तुं) जल से अभिषिक्त, (पौरम्) ‘पुर’ अर्थात् नगर निवासी

जनों के हितैषीं (ईम्) इस (सिंहम् इव) सिंह के समान तेजस्वी पुरुष को (गृभीत-तातये) हाथ में लिये राष्ट्र के कल्पाण के लिये और (हुः) शत्रु से द्रोह अर्थात् संग्राम, लड़ाई-क्षणदि के (पदे) कार्य पर वा मुख्य नायक पद पर (जिन्वथः) अभिषिक्त करो, स्थापित करो ।

प्र च्यवानाजुरुरुषो वृत्रिमत्कुं न मुञ्चथः ।

युवा यदी कृथः पुनरा काममृणवे वृध्वः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे उत्तम पुरुषो ! वा सेना, सभा के अध्यक्ष जनो ! आप लोग (जुरुरुषः) जरावस्या को प्राप्त (च्यवानात्) निरन्तर क्षीण होते जाने वाले पुरुष से (वत्रिम्) वरण करने योग्य पद वा अधिकार को (अक्कं न) रूप या कवच के समान (प्र मुञ्चथः) परित्याग करा दो । और (पुनः) फिर उस स्थान पर (युवा) जवान पुरुष जिस प्रकार (वधः कामम्) वधु के कामना योग्य रूप को (ऋण्वे) प्राप्त करता है उसी प्रकार (यदि युवा) जवान बलवान्, पुरुष (वधः) ‘वधु’ अर्थात् कार्य भार वहन करने की शक्ति के (कामं) कान्तियुक्त पद को (ऋण्वे) प्राप्त करे, तो उसी को आप दोनों (पुनः वत्रिम् कृथः) पुनः उस वरण करने योग्य नायकत्व पद पर ही नियुक्त करें । जैसे बूढ़े असमर्थ आदमी से सेना में कवच ले लिया जाता है और जो कवच को उठा सके उस पुरुष की पुनः दे दिया जाता है इसी प्रकार वरणयोग्य नायक पद भी बूढ़े से ले लिया करो और (युवा यदि वधः कामं ऋण्वे) जवान यदि कार्य-भार को वहन करने की इच्छा करे तो उसको (कृथः) उस पद पर नियत करो । इति व्रयोदशो वर्गः ॥

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सुन्दाशि श्रिये ।

नू श्रुतं म् आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥

भा०—हे सभा वा सेना के अध्यक्ष जनो (वाम्) आप दोनों को (स्तोता) उत्तम उपदेश करने और आज्ञा करने वाला भी (इह) इस-

राष्ट्र में (अस्ति हि) हो । और हम (वां) आप दोनों के (श्रिये)
लक्ष्मी, शोभा वा सम्पत्ति की वृद्धि या आश्रय प्राप्ति के लिये, आप के
(संदशि) उत्तम दर्शन या अध्यक्षता वा निष्पक्षपात शासन में
(स्मसि) रहें । आप दोनों (मे नु श्रुतम्) हमारे वचन सुनिये । हे
(वाजिनी-वसु) संग्रामकारिणी सेना और अज्ञादि ऐश्वर्य से युक्त वा
शानवान् पुरुषों से युक्त राजसभा के बीच स्वयं विराजने वा उसको
बसाने वा उसको धनवत् पालने वाले अध्यक्ष जनो ! आप लोग (अवो-
भिः) उत्तम रक्षा साधनों सहित (आ गतम्) हमारे समीप आइये ।

को वांसुद्य पुरुणामा वैष्णवं मत्यानाम् ।

को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वैजिनीवसृ ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्र-वाहसा) विविध ऐश्वर्यों और विद्याओं से अपने को
पूर्ण करने वाले शिष्यों को धारण करने वाले ! एवं (वाजिनी-वसु) ऐश्वर्य,
संग्राम, बल और ज्ञान से युक्त सेना और वाणी को बसाने, उनको
द्रव्यवत् पालने वाले सेनापति राजा और आचार्य जनो ! (अद्य) आज
(पुरुणाम् मत्यानाम्) मरणशील वा शत्रुओं को मारने वाले मनुष्यों में
से (कः वाम् वन्वे) कौन आप दोनों की सेवा करता है, (कः विप्रः)
कौन विद्वान् और कौन पुरुष (यज्ञैः) आदर सल्कारों, दानों प्रार्थना-
वचनों और सत्संग आदि से (वां वन्वे) तुम दोनों से वर्त्ताव, प्रार्थनादि
करता है, इसका सदा विचार रखो ।

आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।

पुरु चिंदस्मयुस्तिर आङ्गूष्ठो मत्येष्वा ॥ ८ ॥

भा०—हे (अधिना) विद्याओं में पारंगत, जितेन्द्रिय स्त्री
पुरुषो ! अश्वादि सैन्यों के स्वामि जनो ! (रथानां येष्ठः) अन्य रथों में
चलने में सबसे उत्तम (वां रथः) आप दोनों का रथ (आ यातु) आवे ।
(मत्येषु) मनुष्यों में (पुरु चित् तिरः) बहुत से ऐश्वर्यों को प्राप्त करने,

वाला आप दोनों का (अस्मयुः) हमें प्राप्त होने वाला (आद्युपः) उत्तम उपदेश भी (आ यातु) हमें प्राप्त हो ।

शमुषु वां मधुयुवास्माकं मस्तु चर्कृतिः ।

अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥ ९ ॥

भा०—(मधु-युवा) मधुर जल, अज्ञादि पदार्थों को प्राप्त करने योग्य वा जल, अन्नवत् परस्पर मिलने वाले आदरणीय स्त्री पुरुषो ! (अस्माकं) हमारी (चर्कृतिः) सत्कार किया (वाम् शम् उ सु अस्तु) आप दोनों को शान्तिदायक हो । आप (विचेतसा) विशेष ज्ञानयुक्त होकर (श्येना इव) वाजों के समान (विभिः) आकाशगामी रथों से (अर्वाचीना) हमारे सन्मुख (दीयतम्) आवो और जावो ।

अश्विना यद्गु कहिं चिच्छुश्रूयात्मिमं हवम् ।

वस्त्रीरुषु वां भुजः पृच्छन्ति सु वां पृच्छः ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! अर्थों वा विद्वानों के स्वामियो ! रथी सारिथिवत् राष्ट्र के अध्यक्ष सभा-सेनाध्यक्षो ! आप दोनों (यत् कहिं चित्) जहां कहीं भी होवो । (इमं) इस (हवम्) ग्रहण करने योग्य और देने योग्य वेद के सत्य ज्ञानमय वचन को (शुश्रूयातम्) सुनते और सुनाते रहो । (वां) आप दोनों को (वस्त्रीः) अध्यापक उपदेशक के अधीन बसने वाली शिष्य मण्डलियों के समान राष्ट्र में बसने वाली प्रजाएँ (भुजः) आप दोनों के पालन करने वाली वा राष्ट्र का भोग करने वाली होकर (सु पृच्छन्ति) आप दोनों से भली प्रकार सम्बद्ध होती हैं । वे (वां) आप दोनों के साथ (उ सु) उत्तम रीति से (पृच्छः) सदा सम्पर्क बनाये रखें और आप को सुख देती रहें । इसी प्रकार गुरु शिष्य सदा इस ज्ञान को सुनते सुनाते रहें, शिष्य जन वा प्रजाएँ उनको पालन करें और प्रेम से उनका सत्संग करती रहें । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७५]

अवस्थुरात्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ अन्दः—१, ३ पंक्तिः । २, ४, ६,
७, ८ निचृत्पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः । ६ विराट् पंक्तिः ॥ नवचं सुकूम् ॥

प्रति॑ प्रियतं॒ रथं॒ वृषणं॒ वसुवाहनम् ।

स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन् प्रति॑ भूषति॑ माध्वी मम॑ श्रुतं
हव॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय एवं वेगवान् अश्वादि साधनों के स्वामी
विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (ऋषिः = ऋं गति॑ सिनाति॑ यः) गति अर्थात् क्रिया और
ज्ञानशक्ति को उत्तम रीति से बांधने में समर्थ विद्वान् पुरुष, (वृषणं) खूब
बलवान्, सुखप्रद और अच्छी प्रकार सुप्रबन्ध से युक्त (वसु-वाहनम्) धन
को लाने लेजाने में समर्थ वा अपने मैं बैठने वालों को उठाकर दूर लेजाने
में समर्थ (प्रियतमं-रथं) अति प्रिय रथ एवं रमण करने योग्य रसरूप
वा देने योग्य ज्ञान वचन को (स्तोमेन) उसके सम्बन्ध में उपदेश करने
योग्य ज्ञानरहस्य के साथ ही (वाम् प्रति॑ भूषति॑) आप दोनों को प्र-
त्यक्ष रूप में देता और आपको अलंकृत करता और कहता है है (माध्वी)
मधुर वचन बोलने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मम हवं श्रुतम्) मेरा
ग्रहण करने योग्य अध्ययनादि वचन श्रवण करो ।

श्रुत्यायात्मश्विना तिरो विश्वा॑ श्रुहं सना॑ ।

दस्त्रा॑ हिरण्यवर्तनी॑ सुषुस्त्रा॑ सिन्धुवाहस्ता॑ माध्वी॑ मम॑ श्रुतं॑ हव॑म् २

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! एवं अश्वादि वेग-
युक्त साधनों से सम्पन्न जनो ! (अहं) मैं (सना) सनातन से प्राप्त
(विश्वा) समस्त (तिरः) सर्वतः श्रेष्ठ विद्यमान ज्ञान को प्राप्त करता
हूँ । आप दोनों (दस्त्रा) दुःखों के नाश करने में समर्थ (हिरण्य-वर्तनी)
हित और रमणीय मार्ग पर चलते हुए, (सु-सुस्त्रा) उत्तम सुख से युक्त

(सिन्धु-वाहसा) प्रवाह से बहने वाली नदी के द्वारा अपनी नौका को लेजाने वाले केवट के समान सिन्धुवत् प्रवाह से ज्ञान देने वाले गुरु को प्राप्त हो कर (माध्वी) मधुर ज्ञान को मधुकरों के समान सेवन करते हुए (मम) मेरे (हवम्) ग्रहण योग्य और दातव्य ज्ञानोपदेश का (श्रुतम्) श्रवण करो । आ नो रत्नानि विभ्रताविभिना गच्छतं युवम् ।

रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसु माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

भा०—हे (अधिना) अश्वों, इन्द्रियों और आशुगामी साधनों के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (रत्नानि) रमणीय सुन्दर गुणों और रत्नों को (विभ्रतौ) धारण करते हुए (नः आ गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो । (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, पीढ़ा को दूर करने वाले (हिरण्य-वर्तनी) हित रमणीय मार्ग से जाने वाले, (वाजिनी-वसु) ज्ञानयुक्त वाणी के निमित्त गुरु के अधीन व्रतपूर्वक वसने वाले आप दोनों (जुषाणा) प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए (माध्वी) मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर (मम हवं) मेरे ज्ञानोपदेश को (श्रुतम्) श्रवण करो ।

सुषुभो वां वृष्णवसु रथे वाणीच्याहिता ।

उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ४

भा०—हे (वृष्णवसु) मेघवत् ज्ञान वर्षण करने वाले आचार्य के अधीन व्रत पालनार्थ अन्तेवासी होकर रहने वाले स्त्री पुरुषो ! (सु-स्तुभः) उत्तम उपदेष्टा की (वाणीची) वाणी (वां रथे) आप दोनों के रमणीय आत्मा में (आ-हिता) अच्छी प्रकार धारण की जावे । (उत) और (ककुहः) महान् (मृगः) आत्मा, आचरणादि का शोधन करने वाला गुरु (वापुषः) शरीर देने वाले पिता के समान (वां) आप दोनों का (पृक्षः) सर्पके जोड़ने वाले अन्नवत् ज्ञान का (कृणोति) उपदेश करता है । हे आप दोनों (माध्वी) मधु, अन्नवत् ज्ञान संग्रही होकर (मम हवं श्रुतम्) मेरा वचनोपदेश श्रवण करो ।

बोधिन्मनसा रथ्यैषिरा हवनश्रुता । विभिश्च्यवानमश्विना
नि याथो अद्याविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—(रथ्या अश्विनौ इषिरा विभिः च्यवानम् यातः) जिस प्रकार
महारथी सारथि दोनों अश्वों को प्रेरणा करते हुए वेग से जाने वाले अश्वों
द्वारा आते, शत्रु के प्रति प्रयाण करते हैं उसी प्रकार उत्साह से युक्त
जितेन्द्रिय हैं स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (बोधिन्मनसा) ज्ञानयुक्त चित्त वाले
और (हवन-श्रुता) ग्राह्य गुरुपदेश को श्रवण करने वाले, (रथ्या) उत्तम
देह और आत्मा से युक्त, (इषिरा) प्रबल, उत्तम इच्छावान्, होकर
(च्यवानम्) ज्ञानघृद (अद्याविनम्) द्वन्द्व भाव अर्थात् बाहर कुछ
और भीतर कुछ इस प्रकार के भावों से रहित, निष्कपट, निष्पक्षपात
च्यवहार करने वाले गुरु को (विभिः) अपने कान्ति और गति से युक्त
अवयवों सहित (नि याथः) नम्रतापूर्वक प्राप्त होतो । (माध्वी) मधु-
संग्रही ऋमरों के समान ज्ञान को संग्रह करते हुए (मम हवं श्रुतम्)
मेरा ग्राह्य उपदेश श्रवण करो । इति पञ्चदशो वर्णः ॥

आ वां नरा मनो युजोऽश्वासः प्रुषित-प्सवः ।

वयो वहन्तु पीतये सुह सुम्भेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ६

भा०—हे (नरा) स्त्री पुरुषो ! (अश्वासः प्रुषित-प्सवः वयः सु-
म्भेभिः वां वहन्ति) जिस प्रकार अज्ञादि खाने वाले, नाना रूप पुर्व इन्धन,
तैल, जल, कोयला आदि को दग्ध करने वाले, वेगवान् अश्व, रथ यन्नादि
वेगवान् होकर सुखों सहित तुम दोनों को दूर देश तक पहुंचा देते हैं उसी
प्रकार (मनः-युजः) मन रूप रासों से जुते (अश्वासः) ये इन्द्रिय, प्राण
गण (वयः) स्वयं कान्ति वा दीसि से युक्त होकर (वां) आप दोनों को
(वीतये) सुख भोगने के निमित्त (सुम्भेभिः) सुखों सहित (वहन्तु)
धारण करें अथवा, (वां वयः पीतये सुम्भेभिः वहन्तु) आप दोनों के
जीवन को सुखों सहित उपभोग करने के लिये धारण करें । (माध्वी)

अज्ञ, मधु आदिवत् ज्ञान संग्रही आप दोनों (मम हवं श्रुतम्) मेरा उपदेश श्रवण करो ।

अश्विनुवेह गच्छतुं नासत्या मा वि वेनतम् ।

तिरश्चिदर्युया परि वृत्तिर्यात्मदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

भा०—(अश्विनौ) हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इह) इस लोक में (आ गच्छतम्) आदर पूर्वक आइये । हे (नासत्या) परस्पर कभी असत्याचरण न करने वाले ! आप दोनों (मा वि वेनतम्) कभी विरुद्ध कामना न करो । आप दोनों (अर्यमा) स्वामी होकर (तिरः चित् वर्तिः) प्राप्त आजीविका के कार्य मार्ग को वा गृह को (अदाभ्या) अहिंसित अपीडित होकर (परि यातम्) जाओ । (मम हवम्) मेरे उपदेश को (माध्वी श्रुतम्) मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर श्रवण करो ।

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।

अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥

भा०—हे (शुभस्पती अश्विना) कल्याणकारी व्यवहार के पालन करने वाले जितेन्द्रिय, उत्तम अश्व इथ के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस परस्पर संगति द्वारा करने योग्य यज्ञ में (अदाभ्या) कभी पीडित न होकर (युवं) तुम दोनों (जरितारं) उत्तम उपदेष्टा (अवस्युं) ज्ञान और रक्षा करने वाले (गृणन्तं) उपदेश करते हुए विद्वान् के (उप) समीप (भूषथः) प्राप्त होओ । (माध्वी मम श्रुतं हवम्) मधुवत् अज्ञ और ज्ञान के संग्रही होकर मेरे बचन श्रवण करो ।

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्युत्वियः ।

अर्योऽजि वां वृषरवसु रथो दस्यावमत्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ११६

भा०—गृहस्थन्थ । (उषा रूपत् पशुः अभूत्) जिस प्रकार उषा चमकते जगत् को रूप दिखाने वाले किरणों से युक्त होती है और (अग्निः

अधायि) विद्वानों द्वारा अग्नि आधान किया जाता है उसी प्रकार जब (उषा) कान्तिमती, कामना करने वाली स्त्री, (रुष्ट-पशुः) दीपि युक्त तेजस्त्री, उत्तम पशुसम्पदा से युक्त, अथवा उत्तम अंगों वाली होती है और (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्त्री, अग्रणी नायक पुरुष (रुष्ट-पशुः) तेजस्त्री अंगों वाला हो तब वह (ऋत्वियः) ऋतु काल में गमन करता हुआ (अधायि) गर्भ रूप से स्थित हो । हे (वृषणवसु) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष एवं उसके अधीन रहने वाली स्त्री (वां) तुम दोनों का (रथः) सुखपूर्वक रमण अर्थात् उपभोग करने योग्य गृहस्थ रूप रथ (अमर्त्यः) कभी न नाश होने योग्य रूप से (अयोजि) रथवत् ही जुड़े, हे (दस्ती) दर्शनीय, हे कर्म करने वाले, हे परस्पर दुःख नाशक आप दोनों (माधवी मम हवं श्रुतम्) उत्तम अन्न, मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर मेरे उपदेश श्रवण करो । इति पोडशो वर्गः ॥

(७६)

अत्रिर्द्युषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पत्तिः । ३, ४, ५
निचृतविष्टुप् ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

आ भान्त्यग्निरुषसामनीकुमुदिप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाच्चान् नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसंमश्विना घर्ममच्छु ॥ १ ॥

भा०—(अग्निः उषसाम् अनीकम्) जब सूर्य उषाओं के मुखवत् प्रकाशित होता है और (विप्राणाम्) विद्वान् पुरुषों की (देवयाः) ईश्वर को लक्ष्य कर निकलने वाली (वाचः) वाणियाँ (उत् अस्थुः) उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, रथी सारथिवत् एक गृहस्थ रथ पर स्थित स्त्री पुरुषो ! (उषासम्) शत्रुओं के दल को दग्ध करने वाली, राष्ट्र को वश करने वाली सेनाओं के (अनीकम्) समूह को प्राप्त कर उनका प्रमुख (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्त्री नायक (आ भाति)

सूर्यवत् सब तरफ़ प्रकाशित होता है । उस समय (विप्राणां) विद्वानों की (देवयाः वाचः) तेजस्ती, दानशील विजिगीषु को लक्ष्य करके निक- कलने वाली वाणियां (उद्भ अस्युः) उत्पन्न होती हैं । अतः हे स्त्री पुरुषो ! (नून्) निश्चय से (रथ्या) रथ पर स्थित महारथियों के समान आप दोनों (अर्वाङ्गा) अश्व के बल से जाने वाले होकर (इह) इसी राष्ट्र में (पीपिवांसम्) अच्छी प्रकार बढ़ने वाले, अन्यों को बढ़ाने वाले (धर्मम्) तेजस्ती, सुखों को सेचन करने में समर्थ, मेघ वा सूर्यवत् निष्पक्ष, दान- शील विद्वान् पुरुष वा गृह्य यज्ञ, प्रभु वा राजा को (अच्छ यातम्) भली प्रकार प्राप्त होवो ।

न संस्कृतं प्र मिर्मीतो गमिष्टान्ति नूनम् श्विनोपस्तुतेह ।

दिवाभिन्पित्वेऽवसागमिष्टा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्टा ॥ २ ॥

भा० - (अश्विना) नाना उत्तम पदार्थों के भोक्ता जनो ! इन्द्रियों के स्वामियो ! रथि सारथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (संस्कृतं) उत्तम रीति से किये कार्य को (नः प्र-मिर्मीतः) नहीं विनाश करते । वा, आप दोनों उत्तम संस्कार युक्त पुत्रादि को (न प्रमिर्मीतः) क्यों नहीं उत्पन्न करते ? (नूनम्) निश्चय से आप लोग (इह) इस लोक में (अन्ति) एक दूसरे के अति समीप (गमिष्टा) प्राप्त होकर (उपस्तुता) प्रशंसित होते हो । (दिवा) दिन के समय (अभिन्पित्वे) प्राप्त होने पर (अवसा) उत्तम रक्षा, ज्ञान और प्रीति के साथ (आ-गमिष्टा) एक दूसरे के पास जाने वाले होवो और (दाशुषे) दानशील विद्वान् के उपकार के लिये (अवर्ति प्रति) अज्ञ आजीविका और मार्गादि से रहित बेचारे पुरुष के प्रति (शम्भविष्टा) कल्याण करने में समर्थ होवो ।

उता यातं सङ्गवे प्रातरहौ मध्यन्दित्त उदितु दूर्यस्य ।

दिवा नक्षमवस्ता शन्तेमन् नेदानीं प्रीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, रथि सारथिवत्

गृहस्थ स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (संगवे) गौवों के दोहन काल में एकत्र आजाने वा किरणों के प्राप्त होने के साथं समय में और (अद्वः प्रातः) दिन के प्रातः समय में वा (मध्यन्दिने) दिन के मध्य काल, दोपहर में वा (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के ऊपर आजाने पर अर्थात् (दिवा-नक्तम्) दिन और रात्रि सब समय (शं-तमेन) अत्यन्त शान्तिदायक (अवसा) ज्ञान, प्रेम और रक्षासाधन सहित (आ यातम्) आया जाया करो । (इदानीम्) अभी भी (पीतिः) पान, अचादि का उपभोग वा रक्षासाधन (न तत्तान) नहीं हुआ है । अर्थात् सदा ही उत्तम रक्षा साधन से युक्त रहो, कभी भी रक्षा का भरोसा करके वेपरवाह मत होवो ।
 इदं हि वाँ प्रदिवि स्थानमोक्त इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।

आ नो दिवो वृहतः पर्वतादाङ्गयो यातुमिष्यमूर्जं वहन्ता ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्व रथादि के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (वाँ) आप दोनों (हि) निश्चय से (प्र-दिवि) उत्तम ज्ञान और प्रकाश में (स्थानम्) स्थित होवो । (प्रदिवि स्थानम्) उत्तम भूमि में रहने का स्थान और उसमें ही (ओकः) तुम्हारा रहना हो, (इमे गृहाः) ये गृहस्थाश्रम को धारण करने वाले पुरुष स्त्रियें भी उत्तम ज्ञान, प्रकाश वाले भूभाग में रहें । (इदं दुरोणम्) और यह गृह (प्रदिवि) उत्तम, ऊँची भूमि और उत्तम प्रकाश में ही दुर्गवत् हो । आप दोनों (वृहतः दिवः) बड़े भारी आकाश से (इषम्) वृष्टि को और (वृहतः दिवः इषम्) बड़े तेजस्वी सूर्य से प्रेरक बल, जीवन का और (वृहतः पर्वतात्) बड़े भारी मेघ से (इषम्) वृष्टि को और (अज्ञयः इषम् ऊर्ज) अन्तरिक्ष और जलों से अज्ञ और बल पुष्टि को (वहन्त) प्राप्त करते और कराते हुए (नः आयातम्) हमें प्राप्त होवो ।

समश्विनेऽरवस्त्रा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
 आ नो रुद्यं वहत्मोत वीराना विश्वान्यमृता सौभग्यानि ॥५।१७॥

भा०—हम लोग (अश्विनोः) विद्याओं को जानने वाले, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के (नृतनेन) सदा नवीन, रमणीय (मयोभुवा) सुखप्रद (अवसा) ज्ञान और रक्षा से वा प्रेम से और (सु-प्रणीती) उत्तम, प्रेम-व्यवहार और उत्कृष्ट नीति से (सं गमेम) संगति लाभ करें। वे दोनों (नः) हमें (रथिम्) ऐश्वर्य (आ वहतम्) प्राप्त करावें, (उत वीरान्-आ वहतम्) और वीर पुत्रों को प्राप्त करें, और (विश्वानि) सब प्रकार के (अमृता) उत्तम जलों, अक्षों और अविनाशी दीर्घायु जीवनों और न नष्ट होने वाले (सौभग्यानि) उत्तम ऐश्वर्यों को (आ वहतम्) प्राप्त करें, करावें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

(७७)

अत्रिर्द्विः ॥ अश्विनौ देवते ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

प्रातर्यावाणा प्रथमा यज्ञध्वं पुरा गृध्रादरूपः पिबातः ।

प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कृवयः पूर्वभाजः ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! विद्वान् पुरुषो ! जो सभा-सेना के अध्यक्ष जन (अररुपः) अदानशील वा अति क्रोधी और (गृध्रात्) लोभी पुरुष से राष्ट्र की (पिबातः) रक्षा करते हैं वे उन (प्रातर्यावाणा) प्रातः काल, कार्य के प्रारम्भ में ही उपस्थित होने वाले (प्रथमा) सर्व प्रथम प्रधान पुरुषों को (यज्ञध्वम्) आदर भाव से प्राप्त होतों। (अश्विना) उत्तम अश्वों के स्वामी वा जितेन्द्रिय दोनों (प्रातः यज्ञं दधाते) प्रातः काल में नित्यकर्म रूप यज्ञ के समान ही (प्रातः यज्ञं) सब से पूर्व प्रजा-पालन वा सुप्रबन्ध रूप यज्ञ के (हि) ही (दधाते) धारण करते और पालते हैं। यज्ञशील स्त्री पुरुषों के तुल्य ही उन दोनों की भी (पूर्वभाजः) पूर्व पुरुषाओं से उपार्जित ज्ञान को प्राप्त करने वाले (कृवयः) विद्वान् पुरुष (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं और उनको उत्तम २ उपदेश करते

हैं । उसी प्रकार जो स्त्री पुरुष (अरुषः गृध्रात्) अति क्रोधी और लोभी पुरुष से पृथक् रहकर (पुरा) जीवन के पूर्व काल में (पिचातः) ज्ञान का पान और व्रत का पालन करते हैं उन (प्रातर्थवाणः) जीवन की प्रभात वेला में गुरु के समीप जाने वाले स्त्री पुरुषों का सत्संग और आदर करो । वे दोनों प्रातः यज्ञ करते हैं पूर्वज्ञान वेद के विद्वान् उनकी प्रशंसा करते हैं ।

प्रातर्थ्यं जघ्वमुश्विना हिनोत्त न सायमास्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावुः पूर्वैः पूर्वैः यजमानो वनीयान् ॥२॥

भा०—हे प्रजा जनो ! (अश्विना) अश्वादि के नायकों और उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषों का (प्रातः) दिन के पूर्व काल में (सायम्) और सायं समय में भी (यजघ्वम्) सत्संग किया करो । और उनको (हिनोत्त) प्रसन्न, तृप्त करो, बढ़ाया करो (देवथाः) विद्वान् पुरुषों के आदर करने योग्य पदार्थ (अजुष्टम् न अस्ति) प्रीति से सेवन करने के अयोग्य (न) नहीं होता प्रत्युत देव जन आदर से दिये को सदा ही प्रेम से स्वीकार करते हैं । (उत) और जो (अस्मत्) हम से (अन्यः) दूसरा कोई भी (यजते) उत्तन ज्ञान दान करता है और (वि अवः च) विशेष रूप से हमें प्रेम पूर्वक अश्वादि देता या तृप्त करता है वह भी (पूर्वः पूर्वैः) हम से पूर्व पूर्व अर्थात् वयस् और विद्या में वृद्ध पुरुष भी (यजमानः) दान सत्संग यज्ञादि करने वाला (वनीयान्) अति उत्तम रीति से सेवा करने योग्य होता है, वह भी आदर करने योग्य है ।

हिरण्यत्वद् मधुवर्णो धृतस्तुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना चातरंहा येनातियाथो दुर्हितानि विश्वा ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (हिरण्यत्वद्) सुवर्ण या लोह के आवरण से तुक्त, दृढ़ (मधुवर्णः) मधु के समान चिकने, सुन्दर रंग वाले (धृतस्तुः) तेल आदि स्तिंघ फदार्थ से शुद्ध, नित्य

स्वच्छं, (पृष्ठः ब्रह्म) अन्नादि पदार्थों को लेजाने वाला, बड़ा (रथः) रथ (वाम् वर्त्तते) आप दोनों के प्रयोग में आवे। उसमें (मनोजवाः) मन के संकल्पमात्र से वेग से जाने वाले, स्वल्प प्रयास से ही अति दीप्र चलने वाले (वातरंहाः) वायु के वेग से युक्त अश्व, यन्त्रादि हों। (येन) जिस रथ से आप दोनों (विश्वा) समस्त (दुरितानि) दुर्गम स्थानों और कट्टों को (अति याथः) पार करने में समर्थ होतो।

यो भूयिष्ठं नास॑त्याभ्यां विवेषु चनिष्ठं पित्वो रर्ते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरुच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदुमित्तुर्यात् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष, (नासत्याभ्याम्) कभी असत्य व्यवहार न रखने वाले रुपी पुरुषों के लिये (भूयिष्ठं) बहुत अधिक और (चनिष्ठं) उत्तमोत्तम अन्न (विवेष) प्रदान करता है और (विभागे) विविध प्रकार से विभक्त करने के निमित्त (पित्वः) अन्न का (ररते) दान करता है (सः) वह (शमीभिः) अपने शान्तिजनक कर्मों से (अस्य) इस राष्ट्र के (तोकम्) पुत्र के समान प्रजाजन को ही (पीपरत्) पालन करता है, और (अनूर्ध्वभासः) ऊपर को उठने वाली दीपियों से रहित, अभि आदि से रहित, अथवा अतेजस्वी, अल्पदीपि अग्निवत् स्वल्प शक्ति वाले दीन जन वा राष्ट्र के (सदम्) प्राप्त दुःख वा नाशकारी कष्ट को (इत्) ही (तुर्यात्) नाश किया करे।

समुश्विनोरवस्तु नूत्नेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रुर्यं व॒हृत्मोत वृग्नाना विश्वान्यमृता सौभैगानि ॥५॥१८॥

भा०—व्याख्या देखो इसी मण्डल के सूक्त ७६ का ५ वां मन्त्र।
इत्यष्टादशो वर्गः ॥

(७८)

सप्तव॒भृत्रिये ऋषाः ॥ अश्विनौ देवतं । ७, ६ गर्भसाविणी उपनिषद् ॥ छन्दः—
१, २, ३ उष्णिक् । ४ निचृत्त-त्रिष्ठप् । ५, ६ अनुष्ठप् । ७, ८ निचृद-
नुष्ठप् ॥

अश्विनावेह गच्छतुं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततुमा सुताँ उप ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इह) इस गृहस्थाश्रम में रथीवत् होकर (आगच्छतम्) आया करो । हे (नासत्या) कभी असत्याचरण और अधर्म युक्त कार्य न करते हुए, सदा सत्यपूर्वक परस्पर के व्यवहारों को करते हुए (मा वि वेनतम्) एक दूसरे के विपरीत कभी इच्छा भत किया करो । प्रत्युत (सुतान् उप) अपने वृत्पन्न पुत्रों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (हंसौ इव) हंस हंसिनी युगल के समान (आ पततम्) आया करो ।

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततुमा सुताँ उप ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथि वा दो अश्वारोहियों के समान एक साथ मार्ग चलने वाले वर वधु, स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार (यवसम्) धास, यव आदि धान्य को लक्ष्य करके (हरिणौ इव गौरौ इव) दो हरिण और दो गौर मृग जाते हैं और जिस प्रकार जलों की ओर (हंसौ इव) दो हंस जाते हैं उसी प्रकार (सुतान् उप आ पततम्) पुत्रों, ऐश्वर्यों एवं ओषधिरसों को लक्ष्य कर आप दोनों भी जाया आया करो ।

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां युक्तमिष्टये ।
हंसाविव पततुमा सुताँ उप ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे (वाजिनीवसू) ज्ञान-ऐश्वर्य बल आदि से युक्त कर्म करने में निष्ठ आप दोनों (इष्टये) देवपूजन, दान, सत्संग मैत्रीभाव की वृद्धि के लिये (यज्ञम्) यज्ञ, परस्पर सौहार्द, सत्संग आदि का (जुषेथाम्) सेवन ऐमपूर्वक किया करो । (सुतान् उप हंसौ इव आ पततम्) पुत्रों और

उत्पन्न आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के किये दो हंसों के समान सहयोगी होकर (हंसौ) एक साथ मार्ग पर गमन करते हुए जाया करो ।
अत्रिर्थद्वामवरोहेह्नवीसुमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवस्त्रा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४॥१९॥

भा०—हे (अधिना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (अत्) जो (अत्रिः) तीनों प्रकार के दुःखों वा दोषों से रहित, वा (अत्रिः) इसी राष्ट्र या आश्रम का वासी जन वा शिष्य (नाधमाना इव योषा) याचना, आशा वा कामना करती हुई, स्त्री के समान अति विनीत, और तम्य होकर (ऋबीसम् अवरोहन्) तेजो रहित, सरल रूप से झुककर विनम्र होकर (वाम् अजोहवीत्) आप दोनों को बुलावे । तब आप दोनों (श्येनस्य चित्) वाज के से (ज्ञवसा) वेग से (नूतनेन) नूतन (शन्तमेन) अति शान्तिदायक रूप से (आ गच्छतम्) प्राप्त होइये । (ऋबीसम्) अपगतभासम् अपहृतमासम्, अन्तर्हितभासं, गतभासं वा ॥ निर० ६ । ६ । ७ ॥ स्त्री पुरुषों के पक्ष में—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों में से जो (अत्रिः) भोक्ता पुरुष है वह (ऋबीसं) दीपक से प्रकाशित गृह को प्राप्त हो और (योषा) स्त्री भी (नाधमाना इव) ऐश्वर्य या पुत्रादि की कामना करती हुई (अजोहवीत्) पति को स्वीकार करे । वे दोनों (श्येनस्य चित् ज्ञवसा) शान्तियुक्त नये प्रेम से गृह में आकर मिलें । एकोनविशो वर्गः ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।

श्रुतं मै अधिविना हवै सुसवार्धिं च मुञ्चतम् ॥५॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवन करने योग्य जलों, शिष्यों के स्वामी, मेघ वा सूर्यवत् ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे महावृक्षवत् आश्रित याचक, सेवक जनको पालन करने वाले ! (सूष्यन्त्या: इव) प्रसव करने वाली स्त्री का (योनिः) योनि जिस प्रकार प्रसव-काल में विवृत होकर सुरूप बालक को जन्म देता है हे आचार्य ! आप भी इसी प्रकार (वि जिहीष्व) विवृत होवो ।

और शिष्य रूप पुत्र को आप विद्या-गर्भ में रखकर गुरुगृह से जन्म देते हों। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय विद्वान् आचार्य उपदेशक जनो ! (मे) मुझे (हवं) उत्तम देने योग्य ज्ञानोपदेश (श्रुतं) श्रवण कराओ और (सप्तवधिम्) सातों ज्ञान मार्गों में बंधे हुए अर्थात् आंख, नाक, मुख, कान, इन सातों द्वारों को वश करनेवाले मुक्तको (वि मुञ्चतम्) बन्धन से मुक्त करो। वा उपनयन द्वारा स्वीकार करें। जो विद्यार्थी उक्त सातों इन्द्रियों पर वश करे, अथवा वह आंख, नाक, कान, त्वचा वाणी और मन इन सातों इन्द्रियों पर वश करके उनको 'वधि' अर्थात् उद्देशरहित करके विद्याभ्यास करे, वह 'सप्त-वधि' कहाता है। जिस प्रकार वधिया बैल निर्मद शान्त, सरल होकर विनय से रहता है उसी प्रकार शिष्य भी इन सातों इन्द्रियों को दमन करके विनीत, शान्त सरल होकर रहे। गर्भ में आने वाले जीव के सातों प्राण निर्वल, प्रसुत रूप से होते हैं ऐसे बीज रूप जीव को छी-पुरुष धारण करें।

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवधये ।

मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या में व्याप्त चित्त वालो ! अथवा विद्या में व्याप्त होने वाले शिष्य जनों के स्वामी पालक, अध्यापक, आचार्य जनो ! (भीताय) संसार के संकटों से भयभीत हुए, (नाधमानाय) शरण की याचना करते हुए, (सप्त-वधये) सातों उच्छृंखल इन्द्रियों को वधिया बैल के समान शान्त, सरल, विनीत रखने वाले, (ऋषये) ज्ञानको जानने के लिये उत्सुक विद्यार्थी के उपकार के लिये (युवं) आप दोनों (मायाभिः) बुद्धियों तथा उपदेशमय, शब्दमय वाणियों से (वृक्षम्) उच्छेद करने योग्य अज्ञान को (सम्च) अच्छी प्रकार से और (वि च) विविध प्रकार से (अच्यः) दूर करो। अथवा (वृक्षं) वृक्षवत् स्थिर भूमि पर बैठे हुए मुक्तको (सम् अचयः) अच्छी प्रकार ग्रांस करो और (वि अचयः) विशेष रूप से

अहण करो । (२) जन्मान्तराकांक्षी जीव को उत्पन्न करने के लिये स्थी पुरुष दोनों नाना स्नेहयुक्त क्रियाओं से गृहस्थ आश्रम को प्रेमपूर्वक लूता जैसे वृक्ष को प्राप्त हो वैसे परस्पर मिलें । इस सूक्त के १, २, ३ मन्त्रों में पुत्रों को लक्ष्य कर वर वधू दोनों को मिल कर ज्ञान का उपदेश है आचार्य के प्रसवकारिणी माता के समान बालक शिष्य को उत्पन्न करने का वर्णन पूर्व मन्त्र में कहा है अब बालक की उत्पत्ति को शिष्य की उत्पत्ति से दर्शाते हैं ।

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सूर्वतः ।

एवा ते गर्भै पज्जु गिरैतु दशमास्यः ॥ ७ ॥

भा०—७-९ गर्भसाविणी उपनिषत् । (यथा) जिस प्रकार से (वातः) वायु (सूर्वतः) सब ओर से (पुष्करिणीं) पोखरिणी वा कमलिनी को (समिङ्गयति) अच्छी प्रकार कंपाता है उसी प्रकार शरीर का अपान वायु गर्भस्थ बालक को (पुष्करिणीं) पुष्ट करने वाली जल भरी थैली को कम्पित करता है । (एव) इसी प्रकार से (गर्भः) गर्भगत बालक (पज्जु) कांपे, शानैः २ स्पन्दन करे । और इसी प्रकार (दशमास्यः) वह दश मास में पूर्ण होकर (निः एतु) बाहर निकल आवे । आचार्य ‘वात’ है, पोषक वाणी पुष्करिणी माता है, गृहीत शिष्य गर्भ है । दश मास तक पुष्ट बालकवत् दशों प्राणों में पूर्ण, सर्वाङ्ग बालक ‘दशमास्य’ है ।

यथा वातो यथा वन् यथा समुद्र पज्जति ।

एवा त्वं दशमास्य सुहावेहि जुरायुरुणा ॥ ८ ॥

भा०—(यथा वातः) जिस प्रकार वायु (पज्जति) वेग से चलता है, (यथा वन्) और जैसे ‘वन्’ स्वयं वायु के झोकों से कंपता है वा जिस प्रकार (समुद्रः पज्जति) समुद्र कंपता है । (एव) उसी प्रकार हे (दशमास्य) दश मास में परिपक्व होने वाले गर्भ ! तू (जुरायुरुणा सह)

जेर के साथ (अव इहि) नीचे आजा । गर्भ में अपान का बल, जल तथा बालक होते हैं उनके तीन उपमान हैं ससुद्र, वन और वात ।

दश मासाङ्गशशयानः कुमारो अधि मातरि ।

निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥ २० ॥

भा०—(कुमारः) बालक (मातरि अधि) माता के भीतर अधिकार पूर्वक अर्थात् माता के शरीर पर अपना विशेष प्रभाव रखता हुआ (दश-मासान् शशयानः) दस मास तक सुखपूर्वक प्रसुप्त रूप से रहता हुआ (जीवः) जीवित रूप में (अक्षतः) किसी प्रकार की चोट, आघात, अंग-भंग को प्राप्त न होकर (जीवः) जीव (जीवन्त्या: अधि) जीती हुई माता से (निर आ एतु) बाहर आ जावे । इति विंशो वर्गः ॥

[७६]

सत्यश्वा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ स्वराढ्ब्रह्मी गायत्रा ।
२, ३, ७ भुरिग्वृहती । १० स्वराढ्ब्रह्मी । ४, ५, ८ पंक्तिः । ६, ९
निचृत्पंक्तिः ॥

मुहे नो अद्य वोध्योषो गाये दिवित्मती ।

यथा चिन्ना अवोधयः सुत्यश्वसि ब्राये सुजाते अश्वसूनुते ॥ १ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती, पति और पुत्रों की प्रेम से कामना करने हारी ! विदुषी खी ! (अद्य) आज, सदा तू (दिवित्मती) दीसियुक्त, ज्ञान, उत्तम व्यवहार और कान्ति, उत्तम पदार्थों की कामना से युक्त होकर (नः) हमें (महे राये) बड़े भारी ऐश्वर्य और प्राप्त करने योग्य उद्देश्य के लिये (वोधयः) जगाया कर । हे (अश्व-सूनुते) भोक्ता पति वा हृदय में व्यापक पुरुष के प्रति उत्तम वाणी

बोलने हारी, वा 'अश्व' अर्थात् भोजन करने वालों को 'सूनृत' अर्थात् अज्ञ देने वाली ! वा 'अश्व' व्याप्ति, हृदयंगम, महत्वयुक्त वाणी, अज्ञ आदि की स्वामिनि ! हे (सुजाते) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध ! माता पिता के उत्तम गुणों से युक्त ! हे (वाय्ये) तन्तु सन्तान रूप से उत्तम सन्ततियों को उत्पन्न करने हारी ! तू (सत्य-श्रवसि) सत्य अर्थात् सात्त्विक अज्ञ, सत्यश्रवण योग्य ज्ञान और सत्य कीर्ति के निमित्त (यथाचित्) जैसे भी हो उस रीति से (नः अबोधयः) हमें सचेत किया कर। यह कान्त संमित उपदेश करने का वर्णन है। वाणी पक्ष में—(अश्व-सूनृते) विद्या के मार्ग में वेग से जाने वाले विद्वान् की वाणी ! तू (नः) हमारे (सुजाते) उत्तम रीति से ब्राह्म आदि संस्कार में उत्पन्न पुत्र रूप (वाय्ये) शिष्य रूप से सन्ततिवत् उत्पन्न सत्य प्रतिज्ञ बालक में जैसे हो तू मानृ-वत् ज्ञान प्रदान कर।

या सुनीथे शौचद्रुथे व्यौच्छ्रो दुहितर्दिवः ।

सा व्युच्छ्रु सहीयसि सृत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न, उसकी पुत्रीवत् उषा के तुल्य एवं (दिवः दुहितः) कामनावान् पति की कामनाओं को पूर्ण करने वाली वा दूर देश में विवाहित होकर हितकारिणी ! वा दूर देशों में सेवादि द्वारा पति का हित करने हारी ! (या) जो तू (शौचद्रुथे) कान्ति युक्त रथ वाले सूर्य व तेजस्वी एवं शुद्ध आत्मा वाले, शुद्ध कान्ति-युक्त, रमणीय, (सुनीथे) उत्तम वाणी युक्त, और उत्तम न्यायाचरण करने वाले पुरुष के अधीन (वि औच्छः) अपने गुणों को विविध प्रकार से प्रकट कर। हे (सहीयसि) अति सहनशीले ! हे (सत्यश्रवसि) सात्त्विक अज्ञ और सात्त्विक सत्य ज्ञान और यश से युक्त ! हे (वाय्ये) तन्तु रूप से सन्तान उत्पन्न करने हारी ! हे (सु-जाते) उत्तम गुणों सहित उत्पन्न ! हे (अश्व-सूनृते) अश्ववत् बलवान् गृहस्थ रथ के सञ्चालक पति

के प्रति उत्तम वाणी और अन्न प्रस्तुत करने वाली ! हे (सुनीये) उत्तम वाणी और नीति व्यवहार तथा उत्तम मार्ग पर चलने हारी ! हे (शौचद्रथे) कान्तियुक्त रमणीय सुन्दर रूप से युक्त, उत्तम रथ पर चढ़ने हारी वध् ! तू अपने अनुकूल (सुनीये) उत्तम वाणी, व्यवहार और मार्ग पर चलने हारे (शौचद्रथे) कान्तियुक्त देह वाले, तेजस्वी, उत्तम रथ पर स्थित, उत्तम रमणीय भव्य व्यवहारवान् (सहीयसि) अति सहनशील बलवान् दृढ़, (सत्य-श्रवसि) सत्यप्रतिज्ञ, सत्य ज्ञानवान्, कीर्तिमान् (वास्ये) सन्तान के उत्पादन करने में समर्थ (सुजाते) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध, अपने माता पिता के उत्तम पुत्र, (अश्वसूनृते) विद्याओं में पारंगत, विद्वानों तथा अश्ववत् भोक्ता राजा, के समान उत्तम वाणी बोलने हारे पुरुष के अधीन रहकर और उसी के निमित्त (वि उच्छ्व) विविध प्रकार से अपने गुणों और कामनाओं को प्रकट कर ।

इस मन्त्र में 'सुनीये शौचद्रथे, सहीयसि, सत्यश्रवसि, वास्ये, अश्वसूनृते' ये सब विशेषण पद विभक्ति श्लेष द्वारादीपकालंकार से सम्बोधन रूप से स्त्री के प्रति तथा और आश्रय निमित्त रूप से पति के प्रति लगते हैं । इस प्रकार योग्य स्त्री को तदनुरूप पति प्राप्त करने का उपदेश करते हैं । यही रीति समस्त सूक्त में समझनी चाहिये ।

**सा नो अद्याभुरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छुः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्येसुजाते अश्वसूनृते ॥३॥**

भा०—हे (दुहितः) कन्ये ! हे (दिवः दुहितः) कामनावान् तेजस्वी पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी वा सूर्यवत् उत्तम विद्वान् की कन्ये ! तू (भरद्वसुः) धन सम्पदा को अपने गृह में लाने हारी वा पितृगृह से लेजाने हारी और (भरद्वसुः) वसाने वाले पति आदि का मातृवत् भरण पोषण करने हारी होकर (नः) हमारे आगे (सा) वह तू (वि उच्छ्व) उपावत् अपने गुणों का प्रकाश कर (यः) जो (सहीयसि)

सत्यश्रवसि, वायये, सुजाते, अश्वसूनृते वि औच्छः) हे सहनशील, हे सत्यप्रतिज्ञे, हे उत्तम सन्तानोत्पादक ! हे सुपुत्रि ! हे शुभवाणि ! तू बलवान् सत्य प्रतिज्ञ, उत्तम सन्ततिजनक, शुभगुणवान् और विद्वान् पुरुष के अधीन रहकर (वि औच्छः) विशेष रूप से गुणों को प्रकट कर । अर्थात् उत्तम कन्या को अपने गुणों की परीक्षा देना आवश्यक है ।

अभिये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वहयः ।

मुद्यैर्मधोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ४

भा०—हे (विभावरि) विशेष कान्ति से युक्त ! उषावत सुन्दरि ! हे (सुजाते) उत्तम कन्ये ! हे (अश्वसूनृते) उत्तम महत्वयुक्त वाणी बोलने हारी ! अश्ववत इड बलवान् पुरुष के प्रति सुख से गमन करने हारी (ये) जो (वहयः) अस्त्रिवत् तेजस्वी, गृहस्थ-भार को बहन करने में समर्थ विवाहेच्छुक पुरुष (स्तोमैः) उत्तम प्रशंसनीय वचनों से (त्वा-अभि) तुझे लक्ष्य करके (गृणन्ति) बात करते हैं हे (मधोनि) उत्तम धनों को स्वामिनि ! वे भी तुझे प्राप्त कर (मधैः) ऐश्वर्यों से (सु-श्रियः) उत्तम शोभा और लक्ष्मीयुक्त और (दामन्वन्तः) दानशील तथा (सुरातयः) उत्तम मित्र, पुत्र और अभिलिपित पदार्थ द्रव्य आदि शुभ दान की इच्छा से युक्त हों । ‘रातिः’ मित्रमिति कपर्दी । पुत्र इत्येके अभिलिपितार्थ इति साथणः ।

यच्चिद्धि ते गुणा इमे छुदयन्ति मधत्तये ।

परि चिद्वष्यो दधुर्ददतो राधो अह्यं सुजाते अश्वसूनृते ५।२१॥

भा०—हे (सुजाते) सुपुत्रि ! हे (अश्वसूनृते) विद्वान् के तुल्य उत्तम वाणी बोलने हारी विदुषी ! (यत् चित् हि) जो भी (ते गणाः) तेरे सेवक जन (वष्टयः) नाना धनों की अभिलाषा करने वाले हैं (इमे) वे भी (अह्यं राधः) लज्जा वा संकोच से रहित होकर प्राप्त करने योग्य उत्तम धन (ददतः) देने वाले पुरुषों को (मधत्तये) उत्तम धन देने के

लिये ही (परि च्छदयन्ति चित्) उनको आच्छादित करें, उनकी सेवा करें उनकी राह में खड़े रहें। और उनकी (परि दधुः) सब प्रकार से सेवा करें, और रक्षा वा पोषण करें। हृत्येकविंशो वर्गः ॥

ऐसु धा वीरवृद्धश उषो मधोनि सूरिषु ।

ये ज्ञो राधांस्यहृया मधवान्तो अरासतु सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुणों से युक्त उत्तम पुत्रि ! हे (अश्व-सूनृते) बलवान् वा विद्वान् पुरुषों के प्रति उत्तम वाणी बोलने हारी ! हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमति ! कमनीये ! हे (मधोनि) उत्तम ऐश्वर्य, सौभाग्य से युक्त सौभाग्यवति ! (ये) जो (मधवानः) स्वयं धनसम्पद होकर (नः) हमें (अश्वथा) बिना लज्जा वा संकोच के प्राप्त करने योग्य (राधांसि) ज्ञान आदि धनों को (अरासत) दान करते हैं (पृष्ठु) उन (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में रहकर तू (वीर-चत्) उत्तम पुत्रादि से युक्त (यशः) कीर्ति, अन्न, धन आदि को (आ-धाः) सब प्रकार से धारण कर और उनमें (यशः) श्रद्धा से अन्न आदि प्रदान कर ।

तेभ्यो चुम्नं वृहद्वशु उषो मधोन्या वह ।

ये ज्ञो राधांस्यश्वया गृव्या भजन्त सुरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥७॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुणों से प्रसिद्ध ! हे (अश्वसूनृते) विद्वानों के प्रति शुभ ज्ञानयुक्त वाणी बोलने और उनसे ग्रहण करने तथा उनको उत्तम अन्न देने हारी उत्तम विदुषि ! (ये सूरयः) जो विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (अश्वथा) अश्वों से युक्त और (गृव्याः) गौओं से युक्त या अश्वों गौओं के हितकारी (राधांसि) धनों को (भजन्त) सेवन करते उनको अपने व्यवहार में लाते हैं हे (मधोनि) सौ-भाग्य लक्ष्मीचाली ! (उषः) हे कान्तियुक्त ! तू (तेभ्यः) उनको (वृहत्) बड़ा (चुम्नं) धन और (यशः आ वह) यश प्राप्त करा ॥

उत नो गोमतीरिषु आ वहा दुहितर्दिवः ।

• साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचन्द्रिरचिभिः सुजाते अश्वसन्नते ८

भा०—हे (सुजाते) उत्तम गुणों से युक्त उत्तम पुत्रों की माता ! हे (अष्ट-सूनृते) उत्तम पुरुषों के प्रति उनके तुल्य उत्तम वचन बोलने हारी ! हे (दिवः दुहितः) कामनावान् प्रिय पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी वा (दिवः दुहितः) सूर्यवत् तेजस्वी ज्ञानी पिता वा आचार्य की पुत्रि ! तू (सूर्यस्य) सूर्य की (शुक्रैः) शुद्ध (शोचन्द्रिः) कान्ति-वाली, प्रकाशयुक्त (अर्चिभिः) कान्तियों और (रशिभिः) किरणों के साथ २ (शुक्रैः शोचन्द्रिः अर्चिभिः) शुद्ध कान्ति युक्त अस्ति ज्वालाओं से, और पवित्र करने वाले सत्कारोचित जलों से (नः) हमारी (गोमतीः इषः) उत्तम दुर्घट आदि से युक्त अन्न और शुभ वाणी से युक्त उत्तम कामनाओं, सत अभिलाषाओं को (आ वह) प्राप्त कर और करा ।

• दयुच्छा दहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।

नेत्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाति अश्वसूनते १

भा०—हे (सुजाते) उत्तम गुणवती पुनिः ! हे (अश्वसूनृते)
उत्तम विद्वानों को उत्तम वाणी से सक्कार करने हारी ! हे (दिवः दुहितः)
अन्नादि की कामना वाले याचकादि के मनोरथों को पूर्ण करने वाली !
वा गृहस्थ व्यवहार के लिये दूर देश में विवाहित होकर हितकारिणी ! तु
(वि उच्छु) अपने विविध गुणों को प्रकट कर और (अपः) गृह के
आवश्यक कार्यों को (चिरं मा तनुथाः) देर लगाकर मत किया कर ।
(स्तेनं रिपुं) चौर शत्रु को (यथा) जिस प्रकार (सूरः तपाति) सूर्य-
वत् तेजस्वी पुरुष सन्ताप, पीड़ा देता है उसी प्रकार (त्वा इत्) तुम्हे भी
(सूरः) तेजस्वी पुरुष (अर्चिषा) क्रोध आदि से (न तपाति) न
गीड़ित करे ।

एतावद्वेदुपस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि । या स्तोत्रभ्यो विभावर्यु-
च्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसृनुते ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (वि-भावरि) विशेष कान्ति से प्रकाशित होने वाली ! हे (सु-जाते) शुभ गुणों से युक्त हे शुभ सन्तान वाली ! हे (अश्व-सूनुते) विद्वान् वलवान् पुरुषों के प्रति उत्तम वाणी और अज्ञ देनेहारी ! हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमति ! हे कमनीये ! पापों को दग्ध कर देने हारी ! तू क्या (एतावद् वा इत् दातुम् अर्हसि) इतना ही केवल देने योग्य है ! (वा) अथवा (भूयः दातुम् अर्हसि) तू अधिक भी देने में समर्थ है । इस बात का सदा विचार रख । (या) जो तू (उच्छन्ती) अपने दानशीलता आदि सद्गुणों का प्रकाश करती हुई (स्तोत्रभ्यः) विद्वान् उपदेष्टाओं के लिये (न ग्र-मीयसे) कभी सत्यु, वा विधाद को प्राप्त न हो । अर्थात् शक्ति से अधिक दे देने पर स्वयं पीड़ित न हुआ करे, प्रत्युत अपनी शक्ति को देखकर ही विद्वानों को दान आदि दिया करे; जिससे वह आगे भी यथाशक्ति देती रह सके । इति द्वाविशो वर्गः ॥

(८०)

सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृत-विष्टुप् ॥
२ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ भुरिक् पंक्तिः ॥

द्युतद्यामानं वृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमिषुषसुं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मृतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (विप्रासः द्युत-द्यामानं अरुणप्सुं स्वः आवहन्तीं देवीम् उषसं मतिभिः जरन्ते) विद्वान् पुरुष आकाश को चमकाने वाली, रंग लिये, प्रकाश को लाने वाली, तेजो युक्त उषा, प्रभात वेला को प्राप्त कर (प्रति) प्रतिदिन स्तुतियों से भगवान् की स्तुति करते हैं उसी-

प्रकार (वृत्-द्यामानम्) कामनावान् , व्यवहारवित् तेजस्वी पति को अथवा इस पृथिवी को अपने गुणों से चमका देने वाली, (ऋतेन) सत्य ज्ञान, तेज और धनैश्वर्य से (वृहतीम्) बड़ी, सबको बढ़ाने वाली, (ऋताव-रीम्) अज्ञ धनादि से सम्पन्न, (अरुणप्सुम्) लाल, तेजोयुक्त रूपवती (वि-भातीम्) विशेष गुणों से सबके मन को अच्छी लगाने हारी, (देवीम्) विदुषी, दानशील, (स्वः आहवन्तीम्) ग्राहा सुखों को प्राप्त कराने वाली, (उपसं) कान्तियुक्त, कमनीय, एवं पति आदि सम्बन्धियों को हृदय से चाहने वाली, स्त्री के प्रति (विप्रासः) विद्वान् लोग सदा ही (मतिभिः) स्तुतियों से (जरन्ते) प्रत्येक बात में उसकी प्रशंसा करते हैं ।

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृणवती यात्यग्रे ।

बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोशा ज्योतिर्यच्छ्रुत्यग्रे अहाम् ॥ २ ॥

भा०—(एषा उषा) यह प्रभात वेला जिस प्रकार (दर्शता) देखने योग्य होकर (जनं बोधयन्ती) जन्तु मात्र को जगाती हुई (पथः सुगान् कृणवती) माँगों को सुगम, सुखदायक करती हुई (अग्रे) आगे २ बढ़ती चली जाती है । उसी प्रकार (एषा) यह (उषा) कान्तिमती, कमनीय गुणों वाली, पति की कामना करने वाली उत्तम स्त्री भी (दर्शता) दर्शनीय रूप, गुणों से युक्त होकर (जनं बोधयन्ती) समस्त मनुष्यों को सन्मार्ग और धर्म कर्मों का बोध कराती हुई मनुष्य या वृत पति के (पथः) जीवन के भावी माँगों को (सुगान्) सुख पूर्वक गमन करने योग्य (कृणवती) बनाती हुई (अग्रे याति) आगे आगे चलती है । विवाह के अवसर पर स्त्री परिक्रमा में जो आगे २ जाती है वह भी पति के संकट माँगों को मानो सुगम कर देने के लिये स्वयं उन पर प्रथम चलने का अभिनय करती है । और जिस प्रकार उषा (बृहद्रथा) बड़े भारी रमणीय ग्रकाश से युक्त, (बृहती) स्वयं बड़ी विस्तृत, (विश्व-मिन्वा) विश्वभर में व्याप्त होकर (अहाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में (ज्योतिर्य-

च्छति) सबको प्रकाश देती है उसी प्रकार वह स्त्री भी (वृहद्-रथा) वडे रथ पर चढ़कर पतिलोक को जाने वाली, वा (वृहद्-रथा) बड़े रमणीय, सुन्दर रूप और कर्म करने वाली, (वृहती) कुल को बढ़ाने वाली, होकर (अहाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में, मध्याह्न के पूर्व ही (ज्योतिः यच्छति) उत्तम अज्ञ प्रदान करे ।

एषा गोभिरुणेभिर्युजानाच्चेऽधन्ती रयिमप्रायु चके ।

पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुषुता विश्ववारा वि भाति ॥३॥

भा०—जिस प्रकार उषा (अरुणेभिः गोभिः) लाल किरणों से (युजाना) संयोग करती हुई (रयिम् अप्रायु चके) प्रकाश को स्थायी कर देती है और (सुविताय) सुख से जाने के लिये (पथः रदन्ती) मार्गों को चमकाती हुई (विश्ववारा विभाति) सबसे वरण योग्य होकर चमकती है उसी प्रकार (एषा देवी) यह विदुषी स्त्री भी (अरुणेभिः गोभिः) अपनी अनुराग युक्त वाणियों से (युजाना) सब बातों का समाधान करती हुई, (रयिम्) गृह के ऐश्वर्य को (अप्रायु) कभी नष्ट न होने देने वाला (चके) बनावे । वह (सुविताय) सुख से जीवन व्यतीत करने के लिये (पथः) स्वयं उत्तम २ मार्गों को (रदन्ती) बनाती हुई (पुरुषुता) बहुतों से प्रशंसित होकर (विश्व-वारा) सबसे वरण करने योग्य, सर्वप्रिय, सब संकटों का वारण करने और सबको अज्ञादि विभाग करने वाली होकर (वि भाति) विविध प्रकार से सबको अच्छी लगे ।

एषा वयेनी भवति द्विवर्ही आविष्कुरुवाना तन्वं पुरस्तात् ।

ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार (वि पनी भवति) विशेष रूप से श्वेत प्रकाश वाली, होती है, और वह (द्वि-वर्हा) रात्रि दिन दोनों से बढ़ने वाली, (पुरस्तात् तन्वं आविः कृष्णवानः) आगे अपने विस्तृत प्रकाश को

प्रकट करती हुई (क्रतस्य पन्थाम् अनु एति) तेज या सूर्य के मार्ग का प्रति दिन अनुगमन करती है और (न दिशः मिनाति) मानो दिशाओं को मापती सी है अथवा दिशाओं का भी नाश नहीं करती । उसी प्रकार (एषा) यह विदुषी स्त्री, भी (वि-एनी) विशेष रूप से हरिणी के समान उत्तम चक्षु वाली, अति वेगवती एवं गुणों में शुभ्र, (भवति), हो । वह (द्वि-बह्वः) दोनों कुलों को बढ़ाने वाली हो । वह (उरस्तात्) पति के आगे (तन्वम्) अपने देह को (आविः-कृणवाना) प्रकट करती हुई, पति के आगे २ चलती हुई, (क्रतस्य) सत्याचरण एवं वेद के उपदिष्ट सत्य के (पन्थाम्) मार्ग का (अनु एति) अनुगमन करे । वह (सातु) भली प्रकार (दिशः प्र जानती इव) दिशाओं, कर्त्तव्यों को भली प्रकार जानती हुई (क्रतस्य पन्थाम् न मिनाति) कर्म के मार्ग का नाश नहीं करे ।

एषा शुभ्रा न तु न्वो विद्वानोर्ध्वेव स्नाती दुशये नो अस्थात् ।

अप द्वेषो बाधमात्रा तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार प्रभात वेला (शुभ्रा) कान्ति में शुभ्र वर्ण की (नः दशये ऊर्ध्वा अस्थात्) हमें दिखाने के लिये ऊचे विराजती है, और (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् तेज को दोहने और दूर तक फैलाने वाली (तमांसि अप बाधमाना) अनधकारों को दूर करती हुई (ज्योतिषा आगात्) ज्योतिर्मय सूर्य के साथ आती है उसी प्रकार (एषा) यह (दिवः दुहिता) तेजस्वी, व्यवहारज्ञ पिता की पुत्री पवं पति, भाई, पिता आदि की उत्तम कामनाओं और अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली, (दुहिता) दूर देश में विवाहने योग्य, (उषा) कान्तिमती, कमनीय कन्या, (शुभ्रा) सुशोभित रूपवाली होकर (तन्वः विद्वाना) अपने अंगों को भली प्रकार साधती हुई (स्नाती) विशेष संस्कारार्थ स्नान कर शुद्ध होती हुई (नः दशये) हमारी दृष्टि को प्रसन्न करने के

लिये (ऊर्ध्वा इव अस्थात्) उत्तम पद पर सदा स्थित आदर योग्य सी बनी रहे । वह (द्रेषः) द्रेष के भावों तथा (तमांसि) दुःखकर शोकादि को भी (अप वाधमाना) दूर करती हुई दीपक के समान अन्धकारों को हटाती हुई (ज्योतिषा) विद्या और गुणों के प्रकाश सहित (आ अगात्) आवे । एषा प्रतीची दुहिता दिवो नन्योर्वेव भूद्रा नि रिणीते अप्सः । वयुर्गर्वती दाशुषेव वार्याणि पुन्नज्योर्तिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥२३॥

भा०—(दिवः दुहिता) प्रकाशों से जगत् को पूर्ण करने वाली, सूर्य की पुत्री के तुल्य उपा, (प्रतीची) अभिमुख आती हुई, (भूद्रा) सुखप्रद, (अप्सः निरणीते) रूप को प्रकट करती है (वार्याणि वि ऊर्णवती) उत्तम प्रकाशों को धारे हुए, (पूर्वथा) पूर्व दिशा में (पुनः) वार २ (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है । उसी प्रकार (एषा) यह (दुहिता) कन्या वा पति आदि के प्रति प्रेम कामनाओं को प्रकट करने वाली, जीवन में दूर तक भी हिताचरण करने वाली, दूर देश में चिवाहित कन्या, (नृन् प्रति योषा इव) मनुष्यों के प्रति युवती ली के समान ही (अप्सः) अपने उत्तम रूप को (नि रिणीते) प्रकट करे । तब (दाशुषे) अन्न वस्त्र, हृदयादि देने वाले पति के दिये (वार्याणि) उत्तम पहनने योग्य वस्त्रों को (वि ऊर्णवती) विशेष रूप से धारण करती हुई, अथवा उसके लिये (वार्याणि) वरण करने योग्य गुणों, वचनों को प्रकाशित करती हुई (युवतिः) नव युवति (पूर्वथा) प्रथम (पुनः ज्योतिः अकः) वार २ अग्नि को प्रदीप करे । इति व्रयोर्विशो वर्गः ॥

[द१]

श्यावाश आत्रेय ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१, ५ जगती । २ विराघ् जगती । ४ निच्छज्जगती । ३ स्वराघ् निष्ठुप् ॥ पञ्चर्च सूक्तग् ॥

युज्ञते मनू त्तुत युज्ञते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेकु इन्मुही देवस्थ सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥

भा०—परमात्मा का वर्णन । (विप्राः) विद्वान् लोग उससे (ब्रह्मतः) सबसे बड़े (विपश्चितः) स्तुत्य, ज्ञानवान्, अनन्त विद्या के सागर (विप्रस्य) विशेष रूप से जगत् में पूर्ण, परमेश्वर के बीच अपने (मनः युज्ञते) मन को योग द्वारा लगाते हैं । और वे (धियः) अपने बुद्धियों, कर्मों को भी उसीसे (युज्ञते) जोड़ते हैं । वह (एकः इत्) अकेला ही (वयुनवित्) समस्त ज्ञानों और लोकों को जानने और धारण करने वाला, (होत्राः विदधे) समस्त वाणियों को धारण करता और वेद वाणियों का प्रकाश करता, तथा (होत्राः) जगत् को धारण करने वाली समस्त वक्तियों को विशेष रूप से धारण करता है, (देवस्य) उस सर्वप्रकाशक (सवितुः) सर्वोत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर की (मही) बड़ी भारी (परिस्तुतिः) स्तुति, महिमा है ।

अथवा—['होत्राः' इति 'विप्राः' इत्यस्य विशेषणम् ।] ज्ञानादि के देने और लेने वाले विद्वान् भी मन ज्ञान और कर्मों का सम्बन्ध उसी प्रभु से करते हैं । वे उसी के निमित्त संकल्प विकल्प, तर्क करते, ज्ञान प्राप्त करते, यज्ञं दानादि करते हैं । अथवा—[होत्रा, इति वाङ्नाम ।] वे विद्वान् उस प्रभु के ही वर्णन में ही (होत्राः युज्ञते) अपनी वाणियों का प्रयोग करते हैं । अथवा—[विप्राः विपश्चितः ब्रह्मतः विप्रस्य मनः युज्ञते, धियः युज्ञते होत्राश्च युज्ञते । एक इत् वयुनवित् मनो विदधे, धियो विदधे, होत्राः विदधे] विद्वान् लोग उस महान् ज्ञानवान् प्रभु के ज्ञानमय मन के साथ अपना मन उसकी धारणावती बुद्धियों के साथ अपनी बुद्धियों और उसके अनुकरणीय महान् कर्मों के साथ अपने कर्मों का योग करें, समाधान करें, दोनों को परस्पर एक दूसरे के अनुकूल करें । वही समरत् ज्ञानों, बुद्धियों और वाणियों और कर्मों का विधान करता है । उस सर्वोत्पादक की ही बड़ी भारी (परिस्तुतिः) महिमा वा उपदेश है ।

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासादीद्भ्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुपस्तो वि राजति ॥२॥

भा०—(कविः) सबसे अधिक बुद्धि वाला, परमज्ञनवान् परमेश्वर (विश्वा रूपाणि) समस्त रूपवान् पदार्थों को (प्रतिमुञ्चते) प्रतिक्षण धारण करता है । वह ही, (द्विपदे) दोपाये और (चतुष्पदे) चौपाये अर्थात् समस्त जीवों के हित के लिये (भद्रं) सुखजनक, कल्याणमय जगत् को (प्र प्रसादीत्) उत्पन्न करता है । वह ही (सविता) समस्त जगत् का उत्पादक पिता, (नाकम् वि अख्यत्) दुःख से रहित सुख को प्रकट करता है, वह (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ, वरने योग्य, उत्तम मार्ग में ले जाने हारा (उषसः प्रयाणम् अनु) उषाकाल के गमन के पश्चात् उगने वाले सूर्य के समान और (उषसः प्रयाणम् अनु) शत्रु को दग्ध करने वाली सेना के प्रयाण करने के बाद सिंहासन पर विराजने वाले सम्राट् के समान (उषसः प्रयाणम् अनु) सब पार्पों को भस्म कर देने वाली विशेष प्रज्ञा के उत्तम रीति से प्राप्त होने के अनन्तर (अनु विराजति) उत्तरोत्तर हृदय में प्रकाशित होता है ।

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्युयुदेवा देवस्य महिमानमोजसा ।

यः पार्थिवानि विमुमेस पतश्चो रजांसि देवः सविता महित्वना ३.

भा०—(यस्य) जिस (देवस्य) सर्वप्रकाशक, तेजस्वी, सब सुखों के देने वाले परमेश्वर के (प्रयाणम्) उत्तम प्राप्तव्य, और सबको संचालन करने वाले (महिमानम्) महान् पराक्रम का (अन्ये देवाः) और समस्त विद्वान् एवं नाना दिव्य पदार्थ एवं कामना करने वाले मनुष्य (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (अनु षयुः) अनु गमन करते हैं (यः) जो (पतशः) शुभ्र शुक्र वर्ण वाला, प्रकाशस्वरूप, सर्वव्यापक (देवः) सर्वप्रकाशक, (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (पार्थिवानि) पृथिवी के समस्त पदार्थों और (रजांसि) अन्तरिक्ष और

आकाश के समस्त लोकों को भी (विनम्रे) जानता और बनाता है । (सः एतशः) वही सर्वव्यापक, तेजोमय सबके उपासना करने योग्य है । जिस सेनापति वा मुख्य नायक राजा के पथान के अनन्तर अन्य विजिगीषु सैनिक वा सामन्त चलते हैं जो समस्त पार्थिव ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है वह सामर्थ्य से ही देव, सूर्यवत् तेजस्वी (एतशः) महारथी वा शुक्र वर्णवान् शुभ्रकर्मा सर्वगुण विभूषित है ।

**उत यासि सवितुस्त्रीणि रोचुनोत सूर्यस्य रुश्मभिः समुच्यसि।
उत रात्रीमुभयतुः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥**

भा०—(उत) और हे (सवितः) जगत् के उत्पन्न करने हारे प्रभो ! तू (व्रीणि रोचना) तीनों प्रकाशमान् सूर्य, विद्युत, अग्नि इनमें (यासि) व्याप्त है, तू (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मभिः) किरणों के साथ भी (समुच्यसि) विद्यमान है । (उत) और तू ही सूर्यवत् (रात्री) महा प्रलय रात्रि को (उभयतः परीयसे) दोनों ओर से व्यापता है, उसके आदि में भी तू और अन्त में भी तू, जगत् का उत्पादक और संहारक भी तू ही है । (उत) और तू ही हे (देव) सर्वप्रकाशक ! सर्वदातः ! (धर्मभिः) जगत् को धारण करने वाले बलों से, कानूनों और नियमों से राजा के तुल्य (मित्रः भवसि) सबका स्नेही, सबको मृत्यु से बचाने हारा है ।

**उतेशिषे प्रसुवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः। उतेदं
विश्वं भुवनं चि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥५॥४**

भा०—हे (देव) देव ! सर्व सुखों के देने हारे ! तेजोमय ! सर्व प्रकाशक ! (त्वम् एकः इत्) तू अद्वितीय ही (प्रसुवस्य) इस संसार को उत्पन्न करने के लिये (ईशिषे) पूर्ण समर्थ है । (उत) और (त्वम् एकः इत् यामभिः पूषा भवसि) तू अकेला ही, सब नियमों द्वारा सब का पोषक हो रहा है । (उत) और (इदं) इस समस्त (भुवनं),

लोक को (विराजसि) प्रकाशित करता है और विविध रूप से उस पर राजा के तुल्य शासन भी करता है । हे (सवितः) सबके उत्पादक प्रभो ! (इयाव-अश्वः) ज्ञानवान् आत्मा वाला अथवा प्रदीपि किरणों वाला सूर्य भी (ते) तेरे (स्तोमम् आनशे) स्तुति योग्य सामर्थ्य को प्राप्त करता है । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[८२]

श्यावाश्व आत्रेय कृषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ निचृश्नुष्ठप् । २, ४, ६ निचृद्गायत्री । ३, ५, ६, ७ गौयत्री । ८ विराद्गायत्री ॥ नवचं सूक्तम् ॥

तत्सवितुर्वृणीमहे वृथं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥

भा०—(वयम्) हम (सवितः) सबके उत्पादक (देवस्य) सर्व-प्रकाशक, सर्वप्रद, सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, परमेश्वर के (तत्) उस सर्वोत्तम (भोजनम्) पालन और भोग्य ऐश्वर्य को (वृणीमहे) प्राप्त करें और (भगस्य) सकल ऐश्वर्य युक्त, सर्व सेवनीय उस प्रभु के (श्रेष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (सर्वधातमैम्) सबसे अधिक उत्तम, सबके धारक पोषक (तुरं) अविद्यादि दोषनाशक बल को (धीमहि) धारण करें ।

अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ।
न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥ २ ॥

भा०—(अस्य सवितुः) इस सर्वैश्वर्यवान्, सर्वजनक प्रभु के (स्वयशःतरम्) अपने ही सर्वोत्कृष्ट यश और वीर्य वाले (प्रियम्) अतिप्रिय (स्वराज्यं) राज्य के समान अपने तेज को (कत् चन) कोई भी, कभी भी (न मिनन्ति) नहीं नाश कर सकते हैं ।

स हि रत्नानि दाशुषेऽसुवाति सविता भगः ।
तं भागं चित्रमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—जो (सविता) सर्वोत्पादक (भगः सन्) सर्वैश्चर्यवान् प्रभु है वह (दाशुषे) दानशील दाता पुरुष के हितार्थ (रत्नानि) नाना रमण करने योग्य ऐश्वर्यों को (सुवाति) प्रदान करता है (तं) उस (भागं) सेवा करने योग्य, भजनीय एवं भग अर्थात् ऐश्वर्यों के स्वामी (चित्रम्) अद्भुत आश्र्वर्यकारी को लक्ष्य करके हम (इमहे) याचना करते हैं ।

आद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
परा दुःख्वन्यं सुव ॥ ४ ॥

भा०—(अद्य) आज्ञ है (देव) ज्योतिर्मय ! (नः) हमें (सौभगम्) उत्तम समृद्धि, (प्रजावत्) प्रजा के समान (सावीः) प्रदान कर, हे (सवितः) सर्वोत्पादक ! (नः) हमारे (दुःख्वन्यं) बुरे स्वप्न आने के कारण को (परा सुव) दूर कर ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भुद्रं तन्न आ सुव ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक प्रभो ! हे (देव) सर्व सुखों के दातः ! परमेश्वर ! (विश्वानि दुरितानि) सब दुःखों को (परा सुव) दूर करो और (यद्य भद्रं) जो कल्याणकारक सुखजनक हो (तत् नः आ सुव) वह हमें प्रदान करो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सुवे ।
विश्वा वामानि धीमहि ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (देवस्य सवितुः) दानशील, सर्वप्रकाशक, तेजस्वी (सवितुः) सूर्यवत् सर्वोत्पादक प्रभु के (सवे) परमैश्चर्यरूप शासन में रहकर (अदितये) माता, पिता, पुत्र, बन्धु आदि सम्बन्धी जन तथा भूमि आदि के हितार्थ (अनागसः) अपराध एवं पापाचरण से रहित होकर (विश्वा वामानि) सब प्राप्त करने, विभाग करने और दान करने योग्य ऐश्वर्यों को (धीमहि) धारण करें ।

आ विश्वदेवं सत्पति सुकैरुद्या वृणीमहे ।
सुत्यसंवं सवितारम् ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (विश्वदेवं) विश्व के प्रकाशक, सबके दाता और सर्वोपास्य, समस्त शुभ गुणों के धारक, सर्वकाम्य, सर्वविजयी, सर्वव्यवहारकुशल, (सत्पति) समस्त सज्जनों और सत्पदार्थों के पालक (सत्यसंवं) सत्यवैश्वर्य युक्त, (सवितारम्) सर्वोत्पादक, पिता परमेश्वर की (आ वृणीमहे) सब प्रकार से भक्ति करें ।

य इमे उमे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् ।
स्वाधीदेवः सविता ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (सविता उमे अहनी अप्रयुच्छन् पुरः एति) सूर्य दिन रात्रि दोनों के पूर्व प्रमादरहित होकर आता है उसी प्रकार (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (देवः) सर्वप्रकाशक, सर्वसुखदाता (सु-आधीः) सुखपूर्वक, उत्तम रीति से जगत् को प्रकृति में, मातृगर्भ में पिता के समान अव्यय बीज का आधान करने वाला प्रभु (इमे) इन (अहनी) कभी नाश न होने वाले जीव और प्रकृति (उमे) दोनों अनादि पदार्थों के (पुरः) पूर्व ही (अप्रयुच्छन्) संतत प्रमादरहित सर्व साक्षी होकर (एति) व्याप्त रहता है । वही परमेश्वर सबको उपासना करने योग्य है ।

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (इमा) इन (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न हुए स्थावर और जंगम जीवों को (श्लोकेन) विद्वान् उपदेष्टा के समान वेद वाणी द्वारा (आ श्रावयति) सर्वत्र ज्ञानोपदेश करता है और (प्र सुवाति) उत्तम रीति से आचार्यवत् उनको उत्तम जन्म देता है वही (सविता) 'सविता' उत्पादक पिता कहाने योग्य है । इति षड्विंशो वर्गः ॥

(द३)

अत्रिर्थिः । पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्तिष्ठुप् । २ स्वराट् त्रिष्ठुप् ।
३ भुरिक् त्रिष्ठुप् । ४ निचृजगती । ५, ६ त्रिष्ठुप् । ७ विराट् त्रिष्ठुप् । ८,
९ भुरिक् पंक्तिः । १० निचृदन्तिष्ठुप् । दशां शकम् ॥

अच्छ्रौ वद तुवसं गीर्भिरुभिः स्तुहि पुर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिकृदद्वृष्टभो जीरदानु रेतो दधात्योषधोषु गर्भम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू(आभिः)इन (गीर्भिः) वाणियों से (तवसं) बलवान् (पर्जन्यं) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ, और मेघ के तुल्य प्रजाओं को समृद्धि सुखों से तृप्त और जनों का हित करनेवाले पुरुष के (स्तुहि) गुणों का वर्णन किया कर और (अच्छ वद) उसका उपदेश कर जो वस्तुतः मेघ के समान समस्त संसार को (नमसा) अन्न से और शासन दण्ड से (विवास) विविध प्रकार से बसाता है, जो (वृषभः) बड़े बैल के समान बलवान्, वर्षणशील मेघ के तुल्य (कनिक्रदत्) गर्जता और (जीरदानुः) जलवत् जीवनसाधन प्रदान करता हुआ (ओषधीषु) वृक्षों और लताओं के समान शत्रुसंतापक बल को धारण करने वाली सेनाओं में (रेतः) जलवत् बल (दधाति) धारण करता है। और (गर्भम् दधाति) उनके ही बल पर गृहीत राष्ट्र का पालन करता है। मेघ भी वनस्पतियों पर जल बरसाता और उनमें फल प्रसवार्थ गर्भ धारण करता है, एवं वृथित्री पर नाना ओषधियों के उत्पादनार्थ गर्भ धारण करता है।

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं विभायु भुवनं महावधात् ।
उतानांगा ईषते वृष्ण्योवतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः २

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्यः स्तनयन् दुष्कृतः हन्ति) मेघ गर्जता हुआ दुःखदायी, अकाल, दुर्भिक्ष आदि को नाश करता है जो (भुवनं

हन्ति) जल को आघात कर बरसाता है । ((वृष्ण्यवतः ईषते) बरसाने वाले मेघ खण्डों को प्रेरता है उसी प्रकार (यत्) जो (पर्जन्यः) शत्रुओं को पराजय करने और प्रजाओं को सुख समृद्धि से तुस करने वाला, मेघ तुल्य उदार राजा वा विद्वान् पुरुष, (स्तनयन्) गर्जता हुआ, उपदेश करता हुआ (दुःःकृतः) दुष्टाचरण करने वाले, प्रजाओं को दुःख देने वाले दुष्ट पुरुषों और दुरे कमाँ का भी (हन्ति) नाश करता है वह (वृक्षान्) काट कर उखाड़ देने योग्य, वा भूमि पर कब्जा करनेवाले उच्छेष्य शत्रुओं को (वि हन्ति) विविध उपायों से नाश करे, (उत्) और (रक्षसः) विनाकारी दुष्ट पुरुषों और भावों का (वि हन्ति) विधात करे । और उनको भी नाश करे जिनके (महावधात्) बड़े नाशकारी हत्याकाण्ड से (विश्वं भुवनं विभाय) समस्त संसार डरता है, अथवा जिसके (महावधात्) बड़ा हिंसाकारी धोर शश्वास्त्र बल से जगत् भय खाता है, (उत्) और वह (अनागः) दोष अपराध आदि से रहित होकर (वृज्यवतः) शश्वर्षीं, बलवान् शत्रुओं को भी (ईषते) नाश करता और प्रकस्त्रित करता है

रथीवृक्षशयाश्चौ अभिक्षिपत्राविर्दुतान्कृणुते वृष्ण्यैऽ अहं
दुरात्मिस्त्रहस्यै स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वृष्ण्यैऽ नभः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्यः नभः वृष्ण्यैऽ कुरुते) मेघ अन्तरिक्ष को वृष्टि करने वाला बना देता है, (वर्षान् दूतान् आविः कृणुते) वर्षा के दूत सदृश शीतल वायुओं को प्रकट करता है, (सिंहस्य स्तनथा उत् ईरते) सिंहवत् गर्जनाएँ होती हैं उसी प्रकार (यत्) जब (पर्जन्यः) शत्रु पराजयकारी, प्रजा को समृद्ध करने वाला राजा (वर्ष्यम्) वृष अर्थात् बलवान् शश्वर्षीं वीर भट्टों से बने सेन्य को (नभः) सुप्रबद्ध (कृणुते) करता है और (रथी इव) जिस प्रकार कोचवान् (कशया) हण्ठर से (अश्वान् अभिक्षिपति) घोड़ों को हांकता है, और मेघ जिस प्रकार

(कशया अश्वान् अभिक्षिपन्) दीपि युक्त विद्युलता से मेघ एवं वेग युक्त वायुओं को ताड़ता है उसी प्रकार (रथी) वह महारथी, (कशया) अपनी वाणी से ही (अश्वान्) वेग से जाने वाले अपने अश्व सैन्यों को (अभिक्षिपन्) सब ओर शीघ्र भेजता हुआ और (वर्ण्यन्) वर्षों में वृद्ध (दूतान्) शत्रुसंतापक एवं उत्तम कुशल अनुभवी पुरुषों को अपना दूत (आविः कृषुते) बनाता है । उसी समय (सिंहस्य) सिंह के समान पराक्रमशाली वीर जनों के (स्तनथाः) गर्जन शब्द (दूरात्) दूर से (उत् ईरते) उठते, सुनाई देते हैं ।

प्र वाता वान्ति प्रत्यन्ति विद्युत् उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पूर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

भा०—(यत्) जब (पर्जन्यः) समस्त विश्व को जल और अज्ञ से तृप्त और समस्त जन्तुओं का हित करने वाला मेघ (रेतसा पृथिवीं अवति) जल से भूमि को खूब तृप्त कर देता है, उस समय, (वाताः प्र वान्ति) वायुगण खूब बहते हैं, (विद्युतः पतयन्ति) विजुलियें गिरती हैं, (ओषधीः उत् जिहते) ओषधि-वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं । (स्वः पिन्वते) अन्तरिक्ष से जल झरता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त संसार के लिये (इरा जायते) जल और अज्ञ उत्पन्न होता है । इसी प्रकार (पर्जन्यः) शत्रुविजयी राजा जब (रेतसा) अपने बल वीर्य, पराक्रम से तथा जल की नहरों से (पृथिवीम् अवति) राष्ट्र भूमि की रक्षा करता और सींचता है, तब (वाताः प्र वान्ति) वायु के समान बलवान् सेनापतिगण वेग से जाते हैं, (विद्युतः) विशेष दीपि युक्त अस्तादि (पतयन्ति) चलते हैं, और (वाताः प्र वान्ति) वायु वेग से जाने वाले रथ, व्योमयान आदि एवं व्यापारी जन वेग से जाते आते हैं और (विद्युतः) विशेष दीपियुक्त समृद्धियें (पतयन्ति) राष्ट्र ऐश्वर्य को बढ़ाती हैं, (विद्युतः पतयन्ति) विशेष दीपियुक्त खियें पति की कामना करती हैं, विवाहित

हो गृहस्थ बसाती हैं । (ओषधीः उत् जिहते) तेज धारण करने वाली सेनाएं ओषधिवत् ही उठ खड़ी होती हैं । और प्रजाएं उच्चति के मार्ग पर नमन करती हैं । (स्वः पिन्वते) राष्ट्र समस्त सुखों को उत्पन्न करता है, और आकाश जल यथासमय वर्षाता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त प्रजाजन के लिये (इरा जायते) अन्न भी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होता है ।

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शकवृज्जर्मुरीति ।

यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ्रुपारेषु

भा०—जिस प्रकार मेघ के वृष्टि कर्म होने पर (पृथिवी नन्नमीति) पृथिवी के रजोरेणु नीचे आ जाते हैं और (शकवृत् जर्मुरीति) खुरों वाले गौ आदि पशु पुष्ट होते हैं और (विश्वरूपाः ओषधीः) सब प्रकार की ओषधि चन्द्रस्पतिएं पुष्ट होती हैं और (महि शर्म यच्छ्रुति) मेघ प्रजाओं को भारी सुख देता है उसी प्रकार हे (पर्जन्य) शकु-विजयकारिन् ! हे प्रजाओं के पोषक ! (यस्य) जिस तेरे (व्रते) प्रजापालन रूप कर्म के अधीन (पृथिवी) समस्त भूमण्डल (नन्नमीति) विनय से छुकता है, और (यस्य व्रते) जिसके ब्रत अर्थात् प्रजापालन करने पर (शकवृत्) खुरों वाले पशुगण भी (जर्मुरीति) खूब पालित पोषित होते हैं । (यस्य व्रते) जिसके प्रजापालन करने पर (विश्वरूपा ओषधीः) सब रूपवती, तेज वा वीर्य को धारण करने वाली स्त्रियें भी (जर्मुरीति) उचित रीति से पालित पोषित होती हैं । (सः) वह तू हे राजन् ! (नः) हम प्रजाजनों को (महि शर्म) बड़ा सुख (यच्छ्रुति) प्रदान कर । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

द्विवो नौ वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत् वृष्ट्यो अश्वस्य धाराः ।

अर्वाङ्गेतेन स्तनयित्वुनेद्युपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः द्विवः वृष्टिं रात्नि) वायुगण अन्तरक्ष

से वृष्टि में प्रदान करते हैं और (वृष्णः धारा प्र पिन्वत) वरसने वाले मेघ की जल धाराओं को बरसाते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे लिये (दिवः) व्यापार, व्यवहार से (वृष्टि) ऐश्वर्य की समृद्धि, पुष्टि, (ररीध्वम्) प्रदान किया करो । और (वृष्णः) राष्ट्र का प्रबन्ध करने में कुशल (अश्वस्य) अश्ववत् हृष्ट पुष्ट और राष्ट्र के भोक्ता राजा के (धाराः) आज्ञा वाणियों को और अश्व सैन्य की 'धारा' नाम विशेष चालों को (प्र पिन्वत) खूब परिपुष्ट करो (स्तनयित्वुना असुरः निषिङ्गन् अर्वाङ् एति) जिस प्रकार मेघ वर्षता हुआ गर्जनशील विद्युत् के साथ आता है उसी प्रकार (नः पिता) हमारा पितावत् पालन करने वाला राजा (अपः) राज्यकर्म को और आप प्रजाजनों को (नि सिङ्गन्) सर्व प्रकार से पुष्ट करता हुआ (स्तनयित्वुना) उपदेश करने वाले विद्वान् वा गर्जनशील योद्धाजन वा अश्व समूह के साथ (अर्वाङ् एति) हमें प्राप्त हो ।

अभि क्रन्द स्तुनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
द्विति सुकर्षु विषितं न्यञ्चं सुमा भवन्तुद्वतो निपादाः ॥ ७ ॥

भा०—मेघ (यथा क्रन्दति गर्भम् आधन्ते, उदन्वता रथेन परिदयति, विषितं न्यञ्चं द्विति सुकर्षति, उद्वतः निपादाः समा भवति तथा) जिस प्रकार गर्जता है, विद्युत् चमकता है, जलमय रस्य रूप से आकाश में व्यापता है, नीचे आ उतरते हुए चिदीर्ण मशक समान अपने 'द्वति' अर्थात् जल पूर्ण भाग को अच्छी प्रकार बन्धन रहित सा करके खोल देता है और ऊंचे और निम्न खड़ों वाले सब प्रदेश जलमय होकर एक समान हो जाते हैं, उसी प्रकार हे राजन् ! प्रजापालक पुरुष ! त (अभि क्रन्द) स्वयं सब ओर गर्जना कर, अपनी घोषणाएं दे (स्तनय) घोर नाद् कर, अथवा स्तन के समान मेघ जिस प्रकार संतति-पालनार्थ दूध से भरता वा पुष्ट हो जाता है उसी प्रकार मेघ भी प्रजापोषणार्थ जल

से भर कर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हे राजन् तू भी प्रजापालनार्थ (स्तनव) स्तनवत् उत्तम परिपोषक अन्न आदि देने में समर्थ, समृद्ध, पुष्ट होजा । तू (गर्भम् आधाः) गृहीत राष्ट्र का पालन पोषण कर, राष्ट्र को अपने गर्भ अर्थात् वश में सुरक्षित रख । (उदन्वता रथेन परिदीयाः) बलशाली रथ सैन्य से राष्ट्र की सब ओर से रक्षा कर वा उस प्रकार के सैन्यसहित राष्ट्र में बस और राष्ट्र को बसा वा शत्रु का नाश कर । (न्यञ्च) नीचे विनय से झुकने वाले (वि-षितं) बन्धनादि से मुक्त वा विशेष रूप के नियम-प्रबन्धादि से प्रबद्ध, (दृतिं) शत्रु बल को विदारण करने में समर्थ सैन्य बल को (सुकर्ष) अच्छी प्रकार सञ्चालित कर और विनीत, बन्धन युक्त, (दृतिं) भयप्रद शत्रु बल को (सुकर्ष) खूब निर्बल कर जिससे (उदन्वतः) उत्कृष्ट बल वाले और (निषादाः) निष्ठ स्थान पर स्थित सभी प्रजाजन भी (समाः भवन्तु) न्याय इष्टि से समान हो जाय । उत्तम पदस्थ निश्चोंको न सता सकें । 'सुकर्ष'—'स कर्ण् महर्तीं सेना ॥ रघु०॥ यश्च सेनां विकर्षति ॥ महाभार इत्यादि प्रयोगेषु कृष्णातोः सैन्यस्य नाथकवत् सञ्चालनार्थे प्रयोगेऽप्रिप्राचीनः ।

महान्तुं कोशमुद्दाचा नि विक्व स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावा पृथिवी व्युन्ति सुप्रपाणं भवत्वृद्ध्याभ्यः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ (महान्तं कोशम् उत् अन्वति) बड़ी भारी जल राशि को अपने भीतर उठाता है, (वि-सिन्नति) उसे बरसाता है, (स्यन्दन्ति कुल्याः विषिताः) बहुतसी धारा निर्बन्ध होकर दूर बहती हैं और मेघ, आकाश और भूमि दोनों को (घृतेन व्युनति) जल से आर्द्ध कर देता है (अद्याभ्यः सुप्रपाणं भवति) गौ आदि पशुओं के पीने के लिये बहुत जल हो जाता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (महान्तं कोशम्) बड़े भारी कोश, खजाने को (उद्भव) उन्नत कर, और बहुत बलवान् (कोशं) खड़ अर्थात् शस्त्र बल तथा धन को उत्पन्न कर, (नि सिन्न) उस कोश-

को शब्द को प्रजागण और शत्रु पर वरसादे, जिससे (उरस्तात्) आगे (वि-सिताः) कटी (कुल्याः) राष्ट्र में जल को और रण में रक्त की नहरें (स्यन्दन्ताम्) बह जावें और (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमि-वत् राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को (धृतेन) स्नेह से (वि-उन्धि) आद्र कर, वे दोनों प्रेम से एक दूसरे पर कृपालु और अनुरक्त रहें। (अ-ध्याभ्यः) गौओं के समान अहिंसनीय प्रजाओं के लिये (सुप्रपाणं) उत्तम, सुखजनक पालन की व्यवस्था (भवतु) हो।

यत्पर्जन्य कनिकदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।

प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पर्जन्य) शत्रुओं के विजेता और प्रजाओं को समृद्धि से तृप्त करने हारे ! (यत्) जब तू मेघ के समान (कनिकदत्) गर्जता और (स्तनयन्) विद्युत के समान कट कटाता अथवा (स्तनयत्) स्तन के समान मधुर सुखों की वृष्टि करता हुआ (दुष्कृतः हन्ति) दुष्टाचारियों का नाश करता है तब (इदं विश्वं) यह विश्व (यत् किं च) जो कुछ भी (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी पर स्थावर जंगम सुष्टि है वह (प्रति मोदते) तुझे देख प्रसन्न होती है।

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकृधन्वान्यत्येत्वा उ ।

अजीजन् ओषधीर्भोजनायु कमुत प्रजाभ्यो विदो मनीषाम् १०२८॥

भा०—जिस प्रकार (वर्षम् अवर्षीः) मेघ वरसता है (धन्वनि वर्षम् अकः) मरुस्थलों और अन्तरिक्ष प्रदेशों को अतिक्रमण करता हुआ भी वृष्टि को धारण करता है, (ओषधीः भोजनाय अजीजनः) ओषधियों को सब जन्तुओं के भोजन के निमित्त उत्पन्न करता है (प्रजाभ्यः मनीषाः विदः) प्रजाओं से प्रशंसा प्राप्त करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (अति एत्वा उ) अपने शत्रुगण को अतिक्रमण करने और उनसे बढ़

जाने के लिये (धन्वानि) धनुषों को (गृभाय) ग्रहण कर और (वर्षम् अकः) शर वृष्टि कर । (अवर्णः) प्रजाओं पर सुखों की वृष्टि कर और (भोजनाय) प्रजाओं के भोग और भोजन के निमित्त (ओषधीः) अन्न शाक आदि वनस्पतियां (अजीजनः) राष्ट्र में उत्पन्न कर और (भोजनाय) स्वयं राष्ट्र को भोगने और पालन करने के लिये (ओषधीः जनय) शश्वदाहक पराक्रम को धारण करने वाली सेनाओं को भी प्रकट कर । (उत्कम्) और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं की भी (मनीषाम्) उत्तम सम्मति को (विदः) प्राप्त कर लिया कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८४]

अत्रिर्च्छिः । पृथिवी देवता ॥ अन्दः—१, २ नितृदनुष्टुप् । ३ विराङ्गनुष्टुप् ॥
तृचं सूक्तम् ॥

बल्लित्था पर्वतानां खिद्रं विभर्षि पृथिवि ।

प्रया भूमै प्रवत्वति महा जिनोषि महिनि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी (पर्वतानां महा) पर्वतों और मेघों के महान् सामर्थ्य से (खिद्रं विभर्ति, भूमि च जिनोषि) दीन प्रजाओं को पालती और भूमि को जल धाराओं और नदियों से संचरती है उसी प्रकार हे (पृथिवि) पृथिवी के समान विशाल हृदय वाली ! हे (प्रवत्वति) उत्तम गुणों वाली ! हे (महिनि) पूज्ये ! दानशीले महान् सामर्थ्य वाली ! तू भी (पर्वतानां महा) मेघ या पर्वतों के तुल्य उदार और पालन सामर्थ्यों से युक्त पुरुषों का पालन कर, और अपनी (भूमि) अन्न-सस्योत्पादक भूमि और सन्तत्युत्पादक अंग को भी (प्र जिनोषि) उत्तम रीति से संच और उत्तम प्रजा उत्पन्न कर ।

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति षोभन्त्यकुम्भिः ।

प्रया वाज्ञ न हेषन्तं प्रेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥

भा०—हे (विचारिणि) विचार करने वाली स्त्रि ! वा राजसभे ! (स्तोमासः) उत्तम विद्वान् पुरुष (अक्षुभिः) सब दिन (त्वा प्रति स्तोमन्ति) तेरी स्तुति, प्रशंसा करें। (या) जो तू पृथिवी के समान हे (अर्जुनि) उषा के तुल्य कमनीये ! शुद्धाचरण वाली ! एवं प्रकाशवत् अर्थ सञ्च करने हारी ! तू (हेषतं वाजं न) हिनहिनाते अश्व के समान गर्जते (पेहं) मेघ को पृथिवी के समान, पालक पुरुष, अधींग सुप्रसन्न और पूरक पति को (अस्यसि) सन्मार्ग में प्रेरित करती, ऊपर उठाती है। उसके अभ्युदय, और यश का कारण होती है।

द्वलहा चिद्या वनस्पतीन्द्रियमया दर्धुर्ष्योजसा ।

यत्ते अुभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥ ३ ॥ २९ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी (द्वा चित्) दृढ़ होकर (क्षमया) सामर्थ्य से (ओजसा) और बल से (वनस्पतीन् दर्धर्ति) बड़े २ वृक्षों को धारे रहती है उसी प्रकार हे स्त्री वा राजशक्ति (या) जो तू (द्वा) दृढ़ रहकर (वनस्पतीन्) ऐश्वर्यों के पालक महावृक्षवत् आश्रय दाता पुरुषों को (ओजसा) पराक्रम, तेज से और (क्षमया) क्षमाशीलता से वा भूमि के बल से (दर्धर्थि) धारण कर रही है और (यत्) जो (ते) तेरे (अब्रस्य) मेघवत् सुखप्रद धन की (विद्युतः) विशेष कान्ति वाली (वृष्टयः) सुखों की वृद्धियें (दिवः) आकाश से मेघ की बिजुली युक्त वर्षाओं के समान तेरी कामना और सदृश्यवहार से (वर्षन्ति) बरसती हैं इससे तू अतिपूज्य है। इति एकोनविंशो वर्गः ॥

[८५]

आत्रिर्कृषिः ॥ वर्षणे देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्ठुप् । ३, ४, ६, ८ निचृतिर्षुप् । ५ स्वराट् पांकिः । ७ ब्राह्मचुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सहस्रम् ॥

प्र सुम्राजे वृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघानं शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो सेनापति (सूर्याय) सूर्य के समान तेजस्वी राष्ट्रपति पद की प्राप्ति के लिये (शमिता इव) विघ्न शमन करने वाले के समान (वि जघान) विद्वाँ का नाश करता है और (चर्म) बिछाने योग्य मृग छाला के समान (पृथिवीम्) पृथिवी को (शमिता इव) शमसाधक योगाभ्यासी के समान ही (उपस्तिरे) विस्तृत कर अपना आश्रय बनाता है उसपर विजय करता है । उस (सम्राजे) सम्राट् (वरुणाय) दुष्टों और उपद्रवों के निवारण करने में समर्थ श्रेष्ठ जनों के रक्षक गुरु द्वारा श्रवण करने योग्य शास्त्रों में निष्णात एवं जगत् प्रसिद्ध पुरुष के लिये (वृहत् अर्च) बहुत बड़ा सत्कार कर और (गभीरं) गम्भीर अर्थ वाला, (प्रियं) प्रिय, मनोहर (ब्रह्म) ज्ञान वर्धक, सर्वोत्तम ज्ञान का उसे उपदेश कर । (२) परमेश्वर पक्ष में— हे विद्वन् ! तू सबके सम्राट्, दुःखवारक, सर्वप्रसिद्ध, सूर्यवत् स्वयं प्रकाश उस प्रभुकी उपासना कर, प्रिय वेद का अभ्यास कर । प्रभुसर्वत्र व्यापक है और भूमि को विछौने के समान विछाये है ।

वनेषु व्युन्तारिक्षं ततान् वाजमवैत्सु पयं उत्स्थियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वं ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ २ ॥

भा०—वह (वरुणः) उत्तम पद के लिये वरण करने योग्य राजा (वनेषु) सूर्यवत् भोग्य पदार्थों वा वन उपवनों में (अन्तरिक्षं) जल को (वि ततान्) विविध उपायों से प्रसारित करे । (अर्वत्सु वाजम्) अर्थों में वेग और अश्व सैन्यों के आधार पर संग्राम की (अदधात्) तैयारी या योजना करे । (उत्स्थियासु पयः) गोओं में पुष्टि कारक दूध, भूमियों में जल और अन्न को (अदधात्) पुष्ट करे और जो (हृत्सु) हृदयों में

(कतुं) ज्ञान को (अदधात्) स्थापित करे, (अप्सु अग्निम्) जलों में अग्निवत् प्रजाओं में ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष को नेता को (अदधात्) नियत करे । वह (दिवि सूर्यम् अदधात्) आकाश में सूर्य के समान इस पृथिवी में तेजस्वी पुरुष को और ज्ञान रक्षा में सर्वप्रकाशक विद्वान् को अध्यान पद पर स्थापित करे, और (अद्रौ सोमम् अदधात्) मेघ में जल और पर्वत पर ओषधिवत् शब्द बल पर ऐश्वर्य को पुष्ट वा धारण करे । (२) परमेश्वर ने सूक्ष्म जलों में या वृक्षों के ऊपर भी आकाश ताना है, अश्वों में वेग, गोओं में दृध, भूमियों में जल, अज्ञ, हृदय में कर्म और ज्ञान सामर्थ्य, समुद्रों में बड़वानल, वा रसों में विद्युत्, आकाश में सूर्य, मेघों में जल, पर्वतों पर सोम आदि ओषधि वर्ग बनाया है । वही 'वरुण' सर्वोपास्य है ।

नीचीनवारं वरुणं कवन्धं प्र संसर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिव्युनत्ति भूमि ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणः) प्रजा के कट्ठों का वारण करने वाला सम्राट् राजा (कवन्धं) जल को (नीचीनवारं) नीचे के स्थानों में नाना धाराओं में विभक्त होकर बहने वाला करें । अर्थात् पर्वत आदि उच्च स्थलों में स्थित जल को नीचे के प्रदेशों में नंहरों या नलों द्वारा बहाकर सेचन आदि का प्रबन्ध करे । वह (रोदसी) आकाश और भूमि, जासंक और शास्य वर्ग दोनों के बीच (अन्तरिक्षम्) अन्तःकरण में बसने वाला, जलवत् पारस्परिक स्नेह उत्पन्न करे । (तेन) उससे (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त 'भुवन', भूगोल का राजा (वृष्टिः भूम यवं न) जो के बड़े और बहुत से यव के खेतों को वृष्टि के समान सुखदायक होकर (भूम) बहुत से प्रजाजनों को (विननत्ति) विविध उपायों से स्नेहार्द्द करे । (२) परमेश्वर मेघ जलआदि बनाता विश्व का राजा होकर सबके हृदयों को दर्थार्द्द करता करुणा जलों से संचता है ।

उनचि भूमि पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वप्यगदित् ।
समुभेण वसत् पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥ ४ ॥

भा०—(यदा) जिस समय (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, प्रजा के उपद्रवों और कष्टों का वारक राजा (दुग्धं) गौ से दूध के समान पृथिवी से अन्न (वष्टि) प्राप्त करना चाहे (आत्-इत्) तब वह (पृथिवीम्) अति विस्तृत भूमि को (उत्) और (द्याम्) आकाश को (अश्रेण) मेघ से (उनत्ति) जलों द्वारा गीला करे । अर्थात् यज्ञ और वर्षा के उपायों से आकाश में मेघों को उत्पन्न करे और नहरों मेघों से भूमि सेचने का प्रबन्ध करे । हे (वीराः) वीर पुरुषो ! आप लोग (तविषीयन्तः) सेनाएँ बनाते हुए (पर्वतासः) पर्वतों के समान अचल और मेघों के समान शर वर्षी होकर (वसत्) रहो और दुष्टों को (श्रथयन्त) शिथिल करते रहो । जिससे प्रजा सुख से रहे । इसी प्रकार जब राजा प्रजा से ऐश्वर्य दोहना चाहे, तो वह शत्रु की भूमि को रक्त से और स्व प्रजा को स्नेह से और (द्यां) तेजस्ती शासक वर्ग को भी स्नेहार्द करे । वीर युद्ध में अचल एवं शर वर्षी हो प्रजा के आश्रय हों । (२) वरुण, परमेश्वर भूमि के वृष्टि और आकाश को जल से गीला करता है, जब चाहता है अन्नादि से पूर्ण करता है । मेघ और वायु बलयुक्त और विद्युत् युक्त होकर आकाश को आच्छादित करते हैं ।

इमाम् ज्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मनेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो मुमे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥३०॥

भा०—मैं (असुरस्य) मेघ के ब्रत को पालन करने वाले (श्रुतस्य) जगत् प्रसिद्ध, वेदों के विद्वान्, बहुश्रुत (वरुणस्य) प्रजा के दुखों को वरण करने वाले, सर्वश्रेष्ठ पुरुष की (इमाम् महीं मायां) इस बड़ी, अदरणीय त्रुट्टि का (सु-प्रवोचम्) उत्तम रीति से सब लोगों को उपदेश करूँ । (यः) जो राजा (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (तस्थितवान्)

स्थित वायु के समान स्वयं बलवान् और निर्बल, वा वादी प्रतिवादियों के बीच न्यायासन पर विराज कर (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी रूप, प्रभाव या न्याय-प्रकाश से (मानेन इव पृथिवी) मापने के दण्ड से जैसे भूमि को मापा जाता है उसी प्रकार जो (मानेन) सर्वमान्य न्याय-दण्ड से (पृथिवीं ममे) भूमि का शासन करता है । (२) परमेश्वर सर्वप्राणप्रद होने से 'असुर' है, उसकी बड़ी भारी यह 'मान' अर्थात् निर्माण शक्ति है जो अन्तरिक्ष में सूर्य के साथ पृथिवी को भी मानदण्ड से मापने के समान (मानेन) निर्माण कौशल से स्वयं मापता, व्यापता और बनाता भी है । अर्थात् वही माता और वही पिता है ।

इमाम् उ कुवित्मस्य मायां मुहीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।

एकं यदुद्गा न पुण्यन्त्येनीरासि अन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ ६ ॥

भा०—(कवित्मस्य) समस्त क्रान्तदर्शी विद्वानों के बीच में सर्वश्रेष्ठ (देवस्य) दानशील, सर्वविजयी, तेजस्वी राजा और प्रभु की (इमाम् उ नु महीं मायाम्) इस बड़ी भारी बुद्धि और निर्माण-चातुरी को (नकिः आ दधर्ष) कोई भी तिरस्कार नहीं कर सकता, (यत्) कि (एनीः अवनयः) जिस प्रकार सदा बहती हुई नदियें भी (आ सिद्धन्तीः) सब ओर से जल सेंचती हुई भी (समुद्रं उद्ना न पृणन्ति) समुद्र को जल से नहीं भर पातों उसी प्रकार (एनीः) सब ओर से प्राप्त, (अवनयः) ये भूमिवासिनी प्रजाएँ या भूमियें भी (एकं समुद्रं) एक समुद्र के समान अथाह बलवाली राजा को (आ सिद्धन्तोः) सब प्रकार से सेंचती हुई, अभिषेक करती हुई भी (न पृणन्ति) ऐश्वर्य से पूर्ण नहीं कर पातीं ।

श्रुत्यस्य वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सद्मिद्भ्रातरं वा ।

वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्स्तीमागश्चकृमा शिश्रेष्टस्तत् ॥ ७ ॥

भा०—हे (वरुण) सम्राट्, राजन् ! सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! हम

(अर्यम्यं) शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों को बंधन में बाधने वाले, पोलीस वा न्यायकारी, न्यायाधीश, (मिथ्यं) सर्वस्त्रेही ब्राह्मणगण, (सखायं वा) समान नाम पद वाले मित्रवर्ग, (सदम्) साथ बैठने वाले (भ्रातरं वा) भाई के प्रति (वा) अथवा (वेशं) सबके प्रवेश योग्य या सभास्थान वा गृह वा राष्ट्र में अन्य देशों से आने जाने वाले वैश्य वर्ग या निकटवर्ती पड़ोसी और (अरणं वा) जो अपने से रण नहीं करते, उनके प्रति (यत् सीम् आगः चक्रम्) जो कभी अपराध करें हैं राजन् ! तू (तत्) उसको और उसी समय (नित्यं शिथितः) सदा शिथिल करता रह, उस अपराध पर नियन्त्रण करके हमें अपराध न करने दिया वर । (२) परमेश्वर भी हमें उन सब पापों से बचावे ।

किञ्चित्वासो यद्विरिपुर्न दीवि यद्वा॑ घा॒ सुत्यमु॒त यन्न विद्ध ।

सर्वा॑ ता॒ वि॒ ष्य॑ शिथिरेव॑ देवाधा॒ ते॑ स्याम॑ वरुण॑ प्रियासः॑ ॥३१

भा०—(दीवि न कितवासः) चूत कार्य में जूआ खोर लोग जिस प्रकार योंही निराधार छल कपट से एक दूसरे पर दोष आरोप करते हैं उसी प्रकार जो (कितवासः) तेरा क्या है ? इस प्रकार डरा धमका कर अन्यों का माल क्षपट लेने वाले छली लोग भी (यत् रिरिपुः) जो हम पर चोरी आदि का मिथ्या दोषारोप करें (यद् वा व सत्यम्) और जो सचमुच हमारा कम्पुर हो, (उत) और (यत् न विद्ध) जिस अपराध को हम नहीं जानते और कर बैठते हैं (ता सर्वा) उन सब अपराधों को हे (देव) दण्ड देने हारे ! हे (वरुण) दुष्टवारक ! तू (शिथिरा द्वा॑) ढीला सा (वि॒ ष्य॑) करके हमसे छुड़ा दे । राष्ट्र के पाप की प्रवृत्तियों को सदा दबाते रहने से वे ढीली पड़कर प्रजा में से आप से आप, डाल से फल के समान या बंधी रस्सी के समान छूट जाय (अध) और (ते) तेरे हम (प्रियासः स्याम) प्रिय हों । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[८६]

अतिर्क्षिः ॥ इन्द्राशी देवते ॥ छन्दः—१, ४, ५ स्वराङ्गणिक् । २, ३ वि-
राङ्गुष्टप् । ६ विराट् पूर्वानुष्टप् ॥

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृक्ष्वा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राशी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! हे अग्नि, अग्रणी नायक !
और हे इन्द्र, ज्ञान को साक्षात् दिखाने, अज्ञान को भेदने वा दूर भगा देने
वाले ! हे अग्ने, पाप को दग्ध करने वाले ! आप दोनों (वाजेषु) संग्रामों
में विवृत और अग्नि वा सेनापति और नायक के तुल्य ज्ञानों और ऐश्वर्यों
को प्राप्त करने के अवसरों में (यम् मर्त्यम् अवथ) जिस मनुष्य को
रक्षा करते और तृप्त करते हो और अन्नों पर जिसको पालते हो (सः)
वह (दृढ़ा चित्) बड़े २ दृढ़ शत्रु सैन्यों को वीर पुरुष के समान, दृढ़,
जटिल अवसरों को (प्र भेदति) ऐसे भेदकर पार हो जाता है, जैसे
(त्रितः) तीनों वेद विद्याओं में पारंगत पुरुष (द्युम्नाः वाणीः प्र भेदति)
यशोजनक, उत्तम ज्ञानप्रकाशक व वेदवाणियों के मर्मों को भेदकर,
भली प्रकार जानकर, इस अज्ञान-सागर से पार उत्तर जाता है ।

या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।

या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥

भा०—(या) जो (इन्द्राशी) इन्द्र और अग्नि (पृतनासु)
सेनाओं के बीच सेनापति और नायक के समान (पृतनासु दुस्तरा)
मनुष्यों के बीच में रहते हुए, मान-आदर, शक्ति और ज्ञान में लांघे नहीं
जा सकते, (या) और जो दोनों (श्रवाय्या) प्रशंसनीय हैं (या च)
और जो दोनों (पञ्च) पांचों प्रकार की (चर्षणीः अग्नि) ज्ञानेन्द्रियों
के ऊपर मन और आत्मा के तुल्य प्रजाओं के ऊपर राजा और सचिववत्

हैं (ता इन्द्रामी) उन दोनों ऐश्वर्य युक्त और अस्तिवत् तेजस्वी समस्त पुरुषों को हम (हवामहे) आदरपूर्वक स्वीकार करते हैं ।

तयोरिदम् बृच्छ्वस्तिग्मा दिव्युन्मधोनोः ।

प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गव्यां वृत्रघ्न एपते ॥ ३ ॥

भा०—इन्द्र-अग्नि का स्वरूप दर्शाते हैं । (तयोः) उन दोनों का (शब्दः) बल और ज्ञान (अमवत्) मृह के समान शरण देने वाला और उन दोनों (मधोनोः) दानयोग्य धन और ज्ञान के स्वामियों की (तिग्मा दिव्युत्) तीक्ष्ण शक्ति और ज्ञान वाणी होती है, (गभस्त्योः) बाहुओं के समान राष्ट्र वा अधीन शिष्य को ग्रहण करने हारे राजा आचार्य दोनों का (शब्दः) शक्ति, वाणी रूप बल (द्रुणा) रथ तथा वेग से (गव्यां वृत्रघ्ने) वाणियों और भूमियों के बाधक शत्रु और अज्ञान के नाश करनेवाले (प्रति आ ईपते) बाधक कारणों का नाश करता है । विद्वान् का ज्ञान और बलवान् राजा का बल दोनों राष्ट्र की दो बाहुओं के समान है वह दोनों का बल क्रम से शत्रु और अज्ञान का नाश करता है । एक हुतगामी ज्ञान से दूसरा हुतगामी रथ या काष्ठ के बने रथ या धनुष से ।

ता चामेषे रथानामिन्द्रामी हृवामहे ।

पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वैणस्तमा ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रामी) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुविदारक राजन् ! और हे अग्ने ! ज्ञान से विद्याओं का प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुष ! हम लोग (वास्) आप दोनों के (रथानाम्) रथों और रमणीय, ज्ञान रसों के (पृष्ठे) प्राप्त करने के लिये-आप दोनों को (हवामहे) हम बुलाते हैं । आप दोनों (तुरस्य) शत्रुनाशक, अज्ञानविद्यातक सैन्य और ज्ञान के (पती) पालक हैं । और (विद्वांसा) व्रह्मवेत्ता और राष्ट्र लाभ करने वाले, (गिर्वैणस्तमा) उत्तम वाणियों का सेवन करने वाले हो ।

ता वृधन्तावनु द्यून्मतीय देवावद्भा ।

अर्हन्ता चित्पुरो दुर्धेऽशेव देवावर्ते ॥ ५ ॥

भा०—आप (अनु वृन्) सब दोनों (वृधन्तौ) बढ़ते हुए (देवौ) द्रानशील तथा तेजस्वी, (अदभा) अहिसनीय हैं, (अर्हन्ता) स्वयं पूज्य और अन्यों का सकार करने वाले, (ता) उन आप दोनों (देवौ) ज्ञान और धनादि सुख के दाताओं को (मर्तीय) मनुष्यों के हित के लिये मैं (अंशा इव) एक ही पदार्थ के दो पूरक भागों के समान (पुरः दधे) अपने समक्ष रखता हूँ ।

ऐवन्द्रामिभ्यामहो वि हृव्यं श्रुष्यं वृतं न पूतमद्रिभिः ।

ता सूरिषु श्रवो वृहद्विष्यं गृणत्सु दिधृतमिष्यं गृणत्सु दिधृतम् ३२

भा०—(इन्द्रामिभ्याम् एव) उन दोनों ऐवचर्यवान् शशुविदारक इन्द्र और अमिवत् तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक क्षत्र और व्रह्म दोनों से (एव) ही (अद्रिभिः पूतं वृतं न) मेघों से प्राप्त जल तथा (अद्रिभिः पूतं वृतं न) प्रस्तर खण्डों से कुटे छने द्रवित हुए ओषधि रस के समान (हृव्यं) खाने योग्य (श्रुष्यं) बलकारक अच्यवत् ज्ञान और बल प्राप्त होते हैं । (ता) वे दोनों (गृणत्सु सूरिषु) उपदेश करने वाले विद्वानों में (वृहत् श्रवः) बड़ा भारी श्रवण करने योग्य ज्ञान और यश और अन्न (वृहत् रथिम्) बड़ा भारी धन (दिधृतम्) धारण करें और वे (गृणत्सु इपं दिधृतम्) उपदेशा जनों के निमित्त (इपं) प्रबल इच्छा प्रेरणा या शासन बल, अन्न और सैन्य को भी (दिधृतम्) धारण करें । इति द्वारिंशो वर्गः ॥

[८७]

८ व्यामन्दावेय ऋषिः ॥ मन्तो देवताः ॥ छन्दः—१ अति जगती । २, ६

स्वराद् जगती । ३, ६, ७ मुरिं जगती । ४ निचृजजगती । ५, ९

विराद् जगती ॥ नवचं सूक्म् ॥

प्र वौ मुहे मृतयो यन्तु विष्णवे मूरुत्वते गिरिजा एव्यामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रथ्यज्यवे सुखादये तुवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय
शवसे ॥ १ ॥

भा०—जो (गिरिजाः) वाणी में प्रसिद्ध और (एव्या-मरुत्) उत्तम गमन करने योग्य मार्गों पर जाने और पहुंचाने वाला और वायु के समान बलवान् ज्ञानी पुरुष है उस (महे) महान् (मरुत्वते) मनुष्यों के स्वामी, (विष्णवे) विविध विद्याओं के प्रवाह बहाने वाले, व्यापक सामर्थ्यवान् प्रभु पुरुष के आदर के लिये, उसको प्राप्त करने के लिये (वः) आप लोगों की (मतयः) बुद्धियां (प्र यन्तु) सदा आगे बढ़ें । हे विद्वान् पुरुषो ! (वः मतयः) आप लोगों में से जो मननशील ज्ञानी पुरुष हैं वे भी उक्त स्वामी के प्राप्त करने के लिये प्रयत्नवान् हों । और वे (शर्धाय) बल प्राप्त करने के लिये, (प्र-यज्यवे) उत्तम दानशील, सत्संग योग्य (सु-खा-दये) उत्तम रीति से ऐश्वर्यों के भोक्ता, (तत्से) सर्वशक्तिमान् (भन्द-दिष्टये) कल्याणकारी दान, सत्संगादि से युक्त, (धुनि-व्रताय) दुष्टों को कंपा देने वाले कर्म करने में समर्थ है उसके आदरार्थं आप लोगों की बुद्धियां, वा आप में से बुद्धिमान् जन (प्र यन्तु) आगे बढ़ें । (२) परमेश्वर सब जीवों का स्वामी होने से 'मरुत्वान्' है । वेद में प्रसिद्ध होने से 'गिरिजाः', ज्ञान मार्ग पर जाने वाले जीवों का स्वामी वा प्राणों का ग्राण होने से 'एव्यामरुत्' है । वह बलमय होने से 'शर्धः' सर्वैश्वर्य दाता होने से 'प्रयज्यु' सर्व जगत् का संहारक होने से 'सुखादि' सब जगत् को अपने कर्म से सञ्चालक होने से 'धुनिव्रत' है । उसकी (शवसे) ज्ञान बलादि प्राप्ति के लिये उपासना करो । उसकी स्तुति करो ।

प्र ये जाता महिनो ये चूनु स्वयं प्र विज्ञनो ब्रुवत् एव्यामरुत् ।
कत्वा तद्वो मरुतो नाधृष्टे शवो द्राना महा तदेष्वामधृष्टासो
नाद्रयः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर वा विद्वान् पुरुषो ! (ये) जो आप लोग (महिना विद्वना जातः) बड़े भारी ज्ञान सामर्थ्य से प्रसिद्ध हैं और (ये च नु स्वयं विद्वना क्रत्वा प्र ब्रुवते) जो स्वयं अपने ज्ञान बल से और कर्म द्वारा भी अन्यों को उत्तम उपदेश करते हैं (तत् वः) उन आप लोगों के (शब्दः) बल को (एवयामरूत्) मार्गों वा यान साधनों से जाने वाला मैं सामान्य मनुष्य कभी (न आधृष्ये) तिरस्कार न करूँ । हे सामान्य जनो ! आप लोग भी (एषाम्) इन आपके (महादाना) बड़े भारी विद्यादि दान से (शब्दः) सदा ज्ञान प्राप्त करके (अधृष्टासः) कभी भी ढीठ, न रहकर चिनीत (अद्रयः) मेघ के समान विनम्र होकर अन्यों को धन, ज्ञान आदि देने वाले होवो ।

प्र ये द्विवो वृहतः शृणिव्वरे गिरा सुशुक्तानः सुभ्व एवयामरूत् ।
न येषामिरीं सुधस्थु ईष्टु आँ शृश्ययो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो
धुनीनाम् ॥ ३ ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, (वृहतः दिवः) बड़े तेजस्वी सूर्यवत् ज्ञान प्रकाशक गुरु से (शृणिव्वरे) ज्ञान अवण करते हैं और (एवयामरूत्) शिष्य जनों को ज्ञान मार्ग से ले जाने हारे गुरु की (गिरा) वाणी से ही (सु-शुक्तानः) उत्तम रीति से शुद्ध कान्तियुक्त होकर (सु-भ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान्, ज्ञान बीजों के लिये उत्तम भूमिवत् हैं और (येषां सधस्ये) जिनके साथ रहने में (इरी) उनका सद्वालक गुरु भी (न ईष्टे) कभी इनको भय या त्रास उत्पन्न नहीं करता, वे आप लोग (अद्रयः न) अंग में चिनयी, एवं अभिवत् तेजस्वी, (स्व-विद्युतः) स्वयं विशेष दीसियुक्त और (धुनीनाम्) उत्तम वाणियों के, वा (स्पन्द्रासः अथवा स्पन्द्रासः प्र) प्रेरित करने वाले ज्ञान रस को बहाने वाले होवो ॥
स चक्रमे महृतो निरुरुक्तमः समानस्मात्सदस एवयामरूत् ।

यदायुक्तं तमना स्वादधि षण्भिर्विष्पर्धसु विमहसु जिगाति
शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥

भा०—सेनापति का वर्णन (सः उस्कमः) वह महान् पराक्रमी (एवयामरुत्) गमन साधन रथों से जाने वाले शत्रुमारक, बलवान् पुरुषों का सेनापति (समानस्मात् सदसः) समान, अनुरूप, अपने महागृह से (निश्चकमे) निष्क्रमण करता है । वह (शेवृधः) सुख बढ़ाने वाले (विष्पर्धसः) विशेष स्पर्धा से युक्त (विमहसः) विशेष महान् सामर्थ्य वाले पुरुषों को अश्वों के समान (तमना) अपने बल से (यदा) जब (अधि अयुक्त) उनको अध्यक्ष रूप से नियुक्त करता है तब वह (स्तुभिः) उन अभिधिक (नृभिः) नायकों से (जिगाति) विजय प्राप्त करता है । (२) इसी प्रकार बालक निष्क्रमण काल में अपने अल्प प्राणों को बश करे ।

स्वनो न वोऽम॑वात्रेज्यद्वृष्टा त्वेषो युयिस्तचिष प॒व्याम॑रुत् ।
येना सहन्तं ऋज्ञत् स्वरोचिषः स्थार॑शमानो हिरण्ययाः स्वा-
युधास॑ इप्मिणः ॥ ५ ॥ ३३ ॥

भा०—वह (अमवान्) बलवान् (एवयामरुत्) पूर्वोक्त वेग से जाने वाले वीर सैनिकों का स्वामी (वृष्टा) मेघवत् शशवर्णी, वृपभवत् बलवान् प्रबन्धकर्ता, (त्वेषः) तेजस्वी, (युयिः) प्रयाणशील, (तचिषः) बलवान् होकर (स्वनः) भारी शब्द के समान वा उपदेष्टा के समान हो (रेजयत्) वह आप लोगों को सञ्चालित करे । (येन) जिसके साथ आप लोग (स्वरोचिषः) स्वयं कान्तिमान् (स्थाः रशमानः) स्थिर किरणों के समान वा स्थिर स्वायत्त वागडोर वाले, (हिरण्ययाः) स्वर्णवत् कान्ति युक्त, (सु-आयुधासः) अपने शस्त्रबल धारण करते हुए, (इप्मिणः) धनुष वाणवान् होकर (असहन्त) विजय कर्म करें । (ऋज्ञत) और अपना कार्य सम्पन्न करें । इति त्रयोर्विंशो वर्गः ।

अपुरो चौ महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेव्यामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ सून्दरिः स्थन् ते न उरुष्यता निदः
शुशुक्वांसो नाम्यः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृद्ध-शवसः) अति अधिक बड़े हुए बलशाली ! वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (महिमा) महान् सामर्थ्यं (अपारः) अर्जार है । उसको कोई शत्रु लांघ नहीं सकता । (वः) आप लोगों के (त्वेषं) अति तीक्ष्णं तेज और (शवः) बल की (एव्यामरुत्) रथादि से प्रयाण करने वाले मर्द वीरों का स्वामी सदा (अवतु) रक्षा करे और उसको पूर्ण, तृप्त, सुप्रसन्न करता रहे । आप लोग (अग्न्यः न) अद्वियों तथा ज्ञानवान् पुरुषों के समान (शुशुक्वांसः) सदा तेजस्वी, कान्तिमान् होकर स्वामी के (प्रसितौ) उत्तम बन्धन और उत्तम नियन्त्रण तथा उसके (संदर्भः) सम्यक् प्रकार के निरीक्षण से (स्थातारः) स्थिर रूप से नियत होकर (स्थन) रहा करो । और (ते) वे आप लोग (नः) हमें (निदः) निन्दा करने, निकृष्ट नीति से छेदन भेदन करने वाले, दुःखदायी शत्रु से (उरुष्यत) रक्षा किया करो ।

ते रुद्रासः सुमखा अग्न्यो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेव्यामरुत् ।
दीर्घं पृथु प्रथे सद्ग पार्थिव्यं येपामज्जेष्वा मृहः शर्धांस्यद्भुतै-
नमाम् ॥ ७ ॥

भा०—(येपाम्) जिन (अद्भुत-एनसाम्) अपराधरहित, निष्पाप जनों के (महः शर्धांसि) बड़े शत्रु हिंसक बल, सैन्य आदि हैं और जिनके (अज्जेषु) संग्रामों के अवसरों पर (दीर्घं) अति दीर्घं, (पृथु) विस्तृत, (पार्थिवम्) पृथिवीमय, वा पृथिवी पर बना हुआ (सद्ग) वर है (ते) वे (रुद्रासः) दुष्टों को दण्ड देकर खलाने हारे, सज्जनों को उत्तम उपदेश करने हारे वीर और विद्वान् जन (यथा) जिस प्रकार

(सुमखाः) उत्तम यज्ञशील (अग्रयः) अग्नियों के तुल्य (तुकि द्युम्नाः) बहुत प्रकाशमान् होकर (एवयामरुत) रथादि साधनों से जाने वाले वीर पुरुषों तथा ज्ञान मार्गों से जाने वाले विद्वान् पुरुषों की रक्षा करे उसी प्रकार वे भी हमारी रक्षा करें ।

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन् श्रोता हृवै जस्तिनुरेव्यामरुत् ।
विष्णोमैहः समन्यवो युयोतन् स्मद्गृथ्योऽन दुंसनाप द्वेषांसि
सनुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् तीव्र वेग से जाने वाले वीरो ! प्रजाजनों और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अद्वेषः) द्वेषरहित होकर (नः गातुम्) हमारी वाणी को श्रवण करो । हमारी (गातुम् एतन्) भूमि को प्राप्त करो । (एवयामरुत्) पूर्वोक्त प्रकार से रथगामी वीरों वाले (जस्तिः) उपदेष्टां, आज्ञापक पुरुष के (हृवै) आह्वान का (श्रोता) श्रवण करो । हे (समन्यवः) समान ज्ञान और उग्रता, मन्यु कोधवान् पुरुषो ! आप लोग (रथ्यः न) रथी योद्धाओं के समान (समन्यवः) क्रोध से प्रचण्ड होकर (विष्णोः) व्यापक शक्तिमान् राजा के (महः) बड़े २ (दुंसना) कर्मों को करो और (सनुतः) सदा (द्वेषांसि अप युयोतन्) द्वेष भावों, शत्रुओं को दूर करो ।

गन्तानो युवैं यज्ञियाः सुशमिश्रोता हृवैमरुक्ष एव्यामरुत् ।
ज्येष्ठासुो न पर्वतासुो व्योमनि युयं तस्य प्रचेतसः स्यात्
दुर्धर्तीवो निदः ॥ ९ ॥ ३४ ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—हे (यज्ञियाः) यज्ञ, दान आदि सत्कार और सत्संग करने योग्य विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (यज्ञं गन्त) यज्ञ, आदर, सत्कार, सत्संग एवं देवपूजन आदि कर्म के अवसर पर प्राप्त होतो । हे

(एवयामरुत) उत्तम रथों से जाने वाले पुरुषों के स्त्रामी के (सुशसि)
उत्तम कर्म बतलाने वाले, (अरक्षः) विष्णों से रहित (हवम्) आज्ञा
वचन को (श्रोत) श्रवण करो । (यूर्य) आप लोग (तस्य प्रचेतसः)
उस उत्कृष्ट चित्त और ज्ञान से युक्त पुरुष के (व्योमनि) विविध रक्षाओं
से सम्पन्न राज्य में (ज्येष्ठासः) बड़े भाइयों के समान और (पर्व-
तासः न) मेघ या पर्वत के तुल्य उदार और अचल, सहिष्णु होकर (दुर्ध-
र्त्वः) दुःखदायी कष्टों को भी सहारते हुए (स्थात) अचल होकर स्थिर
रहो । इति चतुर्थिंशो वर्गः । इति षष्ठोऽध्यायः । इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

इति विद्यालंकार मीमांसातीर्थविरुद्धालंकृतैन श्री पं० जयदेवशर्मणा विरचिते
ऋग्वेदालोकभाष्ये पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ षष्ठं मण्डलम्

—————>०<————

[१]

भाद्राजो वाहस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निरेवता ॥ कन्दः—१, ७, १३ मुरिकू पांक्तः ।
२ स्वराट् पंक्तिः । ५ पंक्तिः । ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्विष्टप् । ८, १२
विष्टप् । ६ विराट् विष्टप् ॥ इति त्रयोदशचं मनोताम् ॥

त्वं ह्यमे प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्मु होता ।
त्वं सीं वृषव्वक्षणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहस्रे सहध्यै ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! वीर पुत्रं विद्वन् ! हे
अग्रणी ! प्रभो ! (त्वं हि) क्योंकि तू (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ, सबसे प्रथम,
अति प्रसिद्ध, (मनोता) ज्ञान और अन्यों के मनों को अपने में बांध लेने
वाला, मन के समान अति वेग से जाने में समर्थ है । इसलिये हे (दस्म)
दुःखों और अज्ञान के नाशक ! (अस्याः धियः) इस ज्ञान और कर्म
का तू (होता) अन्यों को उपदेश करने वाला (अभवः) हो । (त्वं) तू
(सीम्) सब प्रकार से हे (वृषन्) बलवत् ! मेघवत् ज्ञान का दान
करने हारे ! तू (सहः) सहनशील, बल को और उसको (विश्वस्मै)
सब प्रकार के (सहस्रे) बल पराक्रम को करने और (सहध्यै) विद्वन्,
बाया एवं शत्रुजन को पराजित करने के लिये अपने बल को (दुस्तरीतु)
अज्ञेय, दुःसाध्य (अकृगोः) बना ।

अधा होता न्यसीदो यज्ञीयाजिल्लस्पुद इपयुन्नीडयः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देव्यन्तो मुहो ग्राये चितयन्तो अनुगमन् ॥२॥

भा०—(अध) और हे विद्वन् ! हे वीर नाशक ! हे प्रभो ! तू
(यज्ञीयान्) सबसे उच्चम पूज्य, दानी, संसांगी और (होता)

सबके भक्ति शद्ग्रा प्रेम आदि से कहे वचनों, और दिये उपहारों को भी स्वीकार करने हारा होकर (इडः पदे) भूमि को प्राप्त करने के उत्तम पद पर, बाणी के बीच में (नि असीदः) विराजमान् है । त् (ईङ्गः) सबसे स्तुति करने योग्य होकर (इष्यन्) सबको चाहता हुआ, सबको इष्ट प्रदान करता रह । (देवयन्तः नरः तं त्वा) उस तुक्ष सर्वप्रकाशक दानशील की कामना करते हुए नायक लोग (चित्यन्तः) तेरा ज्ञान लाभ करता हुआ (महो राये) वडे भारी ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (त्वा अनु गमन्) तेरा ही अनुगमन करते हैं ।

वृतेव यन्तं बहुभिर्वस्त्वैऽस्त्वे रथिं जागृवांसो अनु गमन् ।
रुशन्तमुम्भिं दर्शतं वृहन्तं वृपावन्तं विश्वहा दीदिवांसंम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! (त्वे) तेरे अधीन, तुक्ष में ही रमते हुए, तेरे ही आश्रित (जागृवांसः) तेरे ही निमित्त सदा जागते हुए, सावधान जन (रथिं) दानशील तुक्ष को ही सर्वस्व जानकर तेरा ही (अनुगमन्) अनुगमन करते हैं । वे (बहुभिः) बहुत से (वस्त्वैः) शिष्यवत् अधीन वसने वाले प्रजावत् पुरुषों सदित (वृता इव यन्तं) सन्मार्ग पर सदा सत्-पथ से जाते हुए का (अनुगमन्) अनुगमन करते हैं । वे (विश्वहा) सदा ही (रुशन्तः) चमकते हुए (अम्भिम्) अम्भि के समान देवीप्यमान (दर्शतं) सबको ज्ञान प्रकाश दर्शाने वाले, स्वयं दर्शनीय (वृहन्तं) महान् (वृपावन्तं) बीज पेर कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति वाले एवं शत्रुवत् विक्षों की छेदक भेदक शक्ति से सम्पन्न (दीदिवांसं) तेजस्वी पुरुष का अनुगमन करते हैं ।

पुरुं देवस्य नमस्ता व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपञ्चमृक्षम् ।

नामानि चिह्नधिरे युहियानि भद्रायां ते रणयन्तु सन्दृष्टौ ॥ ४ ॥

भा०—(देवस्य) समस्त सुखों के देने और समस्त ज्ञानों और

सूर्यादि लोकों को प्रकाशित करने वाले परमेश्वर के (पदं) ज्ञान करने और (श्रवः) श्रवण करने योग्य स्वरूप को (नमसा) नमस्कार, विनय पूर्वक (व्यन्तः) प्राप्त करते हुए (श्रवस्यवः) श्रवण योग्य ज्ञान के अभिलाषी जन उस (अमृक्तम्) परम पवित्र स्वरूप को (आयन्) प्राप्त करते हैं । वे परमेश्वर के (यज्ञियानि नामानि) यज्ञ अर्थात् उपासना योग्य नाना नामों को (दधिरे) धरते, उसका नाना नामों से स्मरण करते हैं, वे (भद्रायां) सुख और कल्याण करने वाले (सं-दृष्टि) सम्यक् दृष्टि में विराजते हुए (रणथन्त) अति ऊनन्द लाभ करते हैं । (२) देव दाता राजा वा स्वामी के पद वा चरण का आदर करते हुए (श्रवस्यवः) अब, आजीविका के इच्छुक लोग (अमृक्तं श्रवः) पवित्र अज्ञ को पाते हैं । वे उसके नाना आदरणीय पूज्य नाम धरते और सुखकारी प्रेममय संदृष्टि रखकर सुखी रहें । परस्पर भेद भाव दुर्दृष्टि न किया करें ।

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय॑ उभयासुो जनानाम् ।

त्वं ब्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदुमिन्मानुषाणाम् ॥५।३५

भा०—(पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर हे राजन् ! हे परमेश्वर ! (क्षितयः) बसने वाले जीव और प्रजागण ! (त्वा वर्धन्ति) तुझे ही बढ़ाते हैं । तेरे ही यश की वृद्धि करते हैं । (रायः त्वा) समस्त ऐश्वर्य भी तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरा ही गौरव बतलाते हैं । (जनानां उभयासः) मनुष्यों में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों वर्ग भी तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरा ही यशोगान करते हैं । तू ही (सदम् इत्) सदा ही वा आश्रय गृह के समान (मनुष्याणां ब्राता) मनुष्यों का रक्षक और (तरणे) संसार-सागर को पार करने के निमित्त (चेत्यः) उत्तम दान देने हारा, (भूः) है । और तू ही (पिता माता) पिता माता के तुल्य पालक और उत्पादक है । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

सुपुर्येण्यः स प्रियो चिद्वा॑ग्निर्होता॑ मुन्द्रो नि षसादा॒ यजीयान् ।
तं त्वा॑ ब्रुयं दम् आ दी॑दिवांसु मुप॑ज्ञवाधो नम्सा॒ सदेम ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान् विद्वन् नेता॑ आचार्य और
प्रभु, परमेश्वर (सपर्येण्यः) सदा पूजा, उपासना, सत्कार, सेवा करने योग्य
हैं । वह (विक्षु) समस्त प्रजाओं में (होता) ज्ञान और सुखों का देने
वाला और (यजीयान्) दान, सत्संग, मैत्रीभाव आदि करने में सबसे
श्रेष्ठ होकर (नि ससाद) विराजता है । वह (मन्द्रः) स्तुत्य और आनन्द-
प्रद है । हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! (तं) उस (दीदिवांस) देवी-
प्रमाण अग्निवत् स्वयं प्रकाश तेजस्वी (त्वां) आप को (दमे) घर में
वा इन्द्रियों के दमन करने वा प्रजाशासन के निमित्त (ज्ञु-वाधः) धुटने
मोड़कर (नम्सा) विनयपूर्वक नमस्कार करते हुए (उप सदेम)
समीप बैठें, तेरी उपासना करें ।

तं त्वा॑ ब्रुयं सुध्यो॑ नव्यमग्ने॒ सुम्नायव॑ ईमहे॒ देव्यन्तः॑ ।
त्वं विशो॑ अनयो॒ दीद्यानो॒ दिवो॑ अग्ने॒ बृहता॒ रोचनेन॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वयंप्रकाश ! ज्ञानवन् ! विद्वन् !
नेतः ! (वयं) हम लोग (सुम्नायवः) आपना सुख चाहते हुए और (देव-
यन्तः) तुझे चाहते हुए (सुध्यः) उत्तम सद्बुद्धि वाले होकर (त्वा॑
ईमहे) तुझे प्राप्त करते, तुझ से (दिवः ईमहे) अपनी २ कामनाएँ
आचना करते हैं । (त्वं) तू (बृहता रोचनेन) बड़े भारी प्रकाश से सूर्य
के समान (दीद्यानः) चमकता हुआ (विशः) समस्त प्रजाओं की
(दिवः) नाना प्रकाशों के समान उनकी समस्त कामनाओं को (अनयः)
प्राप्त करता है, हमें भी प्राप्त करा ।

विशां कुर्विं विश्पर्तिं शश्वतीनां नितोशैनं वृषभं चृषणीनाम् ।
ग्रेतीष्यग्निष्यन्तं पावृकं राजन्तमुग्निं यज्ञतं रथ्येणाम् ॥ ८ ॥

भा०—हम लोग (शश्तीनां) सदा विद्यमान, स्थायी जीवों वा (विशां विशपति) समस्त प्रजाओं के बीच में प्रजाओं के पालक प्रजापति और (चर्पणीनां) समस्त ज्ञानदर्शी, विद्वान् मनुष्यों के बीच (वृपभं) सुखों की वर्षा करने वाले, सर्व-श्रेष्ठ, मेघवत् उदार, बलवान् (नितो-शनं) समस्त दुःखों और बाधक शत्रुओं के नाशने वाले (प्रेति-इषणिम्) प्राप्त पदार्थों के देने और चाहने वाले, अथवा (प्र-इति-इषणं) उत्तम पद को प्राप्त करने की सदा इच्छा करने और अन्यों को प्रेरणा करने वाले (इष्यन्तं) और अन्यों को उद्देश्य तक पहुंचा देने वाले, वा अग्नवत् पुष्ट करने वाले, (पावकं) परम पावन, (राजन्तम्) राजा के समान तेजस्वी देवीप्यमान (रथीणां) नाना ऐश्वर्यों, वलों और भोग्य सुखों के (यजतं) देने वाले (अग्निं) अग्निवत् नायक विद्वान्, प्रभु को हम सदा (ईमहे) प्राप्त हों और उसी की प्रार्थना, उपासना करें ।

सो अग्न ईजे शशमे च मत्तो यस्तु आनन्द सुमिधा हृद्यदातिम् ।
य आहुतिं पाणि वेदा नमोभिर्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् प्रभो ! (यः) जो पुरुष (ते) तेरी (समिधा) समिधा सहित अग्नि के तुल्य अच्छी प्रकार देवी-प्यमान, तेरे गुणों को प्रकाशित करने वाली सुति से (हृद्य-दातिम्) अन्नादि दान क्रिया के तुल्य उत्तम वचन प्रदान (आनन्द) करता है (सः) वह (ईजे) यज्ञ करता है, तेरा सत्संग करता है (सः शशये) वह तेरी सुति प्रार्थना करता है वह शान्ति लाभ करता है । और (यः) जो (नमोभिः) नमस्कारों सहित तेरे निमित्त (आहुति परिवेद) सब प्रकार के दान देता वा (नमोभिः) विनय सत्कारों सहित (ते आहुतिं परि वेद) तेरे नाम की पुकार करता है (सः इत्) वह भी (त्वा-उतः) तेरे से सुरक्षित रहकर (विश्वा वामा) समस्त उत्तम ऐश्वर्य (दधते) धारण करता है ।

श्रस्मा उ ते महि सुहे विधेम् नमोभिरये सुमिधोत हृद्यैः ।
वेदीं सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम॥१०॥

भा०—(नमोभिः, समिधा हृद्यैः) जिस प्रकार अग्नि को अज्ञों, समिधाओं और हवन योग्य पदार्थों से अग्निहोत्र किया की जाती है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! हम लोग (अस्मै) इस (महे) महान्, गुणों से पूज्य (ते) तेरी (नमोभिः) उत्तम अज्ञों, नमस्कारों और विनयपूर्वक सल्कारों से (समिधा) अच्छी प्रकार से चमकने वाली विद्या (उत) और (हृद्यैः) उत्तम अज्ञों, वचनों से (महि विधेम) बड़ा भारी सल्कार किया करें । और (वेदी) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली इस भूमि में हे (सहसः सूनो) शत्रुपराभवकारी सैन्यबल के सञ्चालक राजन् ! विद्वन् ! हम लोग (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियों और (उक्थैः) उत्तम उपदेशों द्वारा प्रेरित होकर (ते) तेरी प्रदान की (भद्रायां सुमतौ) कल्याणकारिणी शुभमति के अधीन रहकर सदा (आ यतेम) सर्वत्र प्रयत्न करते रहें ।

आ यस्ततन्थ् रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य स्तरुत्रः ।
वृहद्दिव्वर्जैः स्थविरेभिरुस्मे रेवद्विरग्ने वितुरं वि भाहि ॥११॥

भा०—(यः) जो प्रभु (रोदसी) आकाशस्थ समस्त पिण्डों और इस पृथिवी को (भासा) अपने प्रकाश से (आ वि ततन्थ) सब और विविध प्रकारों से व्याप रहा है और उनको विविध २ प्रकार का बनाता है जो (श्रवोभिः) गुरुजनों द्वारा श्रवण करने [योग्य ज्ञानमय वेदवचनों द्वारा (श्रवस्य) श्रवण करने योग्य है, जो (वृहद्दिव्वर्जैः) बड़े ज्ञानों, वलों और ऐश्वर्यों से (तस्त्रः) संसार के संकटों से पार उतारने वाला है वह (स्थविरेभिः) ज्ञान और अनुभव में वृद्ध पुरुषों और (रेवद्विः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों द्वारा है (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (अस्मे) हमारे

लिये (वि तरं) विशेष रूप से (वि भाहि) प्रकाशित हो । और (वितरं वि भाहि) हमें विशेष रूप से पार होने का उत्तम उपाय प्रकाशित कर । (२) राजा अपने विशेष तेज से राजा प्रजावर्ग दोनों को या सेनापति रूप दुष्टनाशक की सेनाओं को विशेष रूप से फैलाता है, कीर्ति से प्रसिद्ध शत्रुहिंसक, बहुत से अन्नों वा बलवान् बूढ़ों और लखपतियों से हमें चमकाता है वही अग्निवत् मुख्य पद पाने योग्य है ।

नृवद्वस्तो सद्मिष्टेद्युस्मे भूरि तोकायु तनयाय पश्वः ।

पूर्वीरिषो वृहतीरुरेत्रघा श्रस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥

भा०—हे (वसो) जगत् को बसाने हारे प्रभो ! राष्ट्र, नगरादि के बसाने हारे राजन् ! (अस्मे तोकाय तनयाय) हमारे पुत्र पौत्र के लिये और (नृवत् सदम्) मनुष्यों, भूत्यों से युक्त घर, उत्तम नायकों से युक्त राजसभा को (धेहि) प्रदान कर और (अस्मे) हमें (भूरि पश्वः धेहि) बहुत से पशु प्रदान कर । और (अस्मे) हमें (पूर्वीः इषः) समृद्ध, अन्न, (वृहतीः इषः) बड़ी २ कामनाएँ और बड़ी २ सेनाएँ जो (आरे-अघाः) पापों और पापियों को दूर भगादें, प्राप्त हों (अस्मे) हमारे (भद्रा) सुखदायक, कल्याणजनक (सौश्रवसानि) उत्तम अन्न, ज्ञान और कीर्तियुक्त ऐश्वर्य (सन्तु) हों ।

पुरुण्यश्च पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।

पुरुणि हि त्वे पुरुवार् सन्त्यग्ने वसु विधुते राजनि त्वे १३।३६।४॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! प्रभो ! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! परमेश्वर ! (ते) तेरे (पुरुणि वसूनि) ऐश्वर्य बहुत प्रकार के हैं । इसी कारण (ते वसुता) तेरा राष्ट्र को बसा देने वाला सामर्थ्य और तेरा स्वामित्व भी (पुरुधा) बहुत से प्रजाजनों को धारण पोषण करने में समर्थ है । इसलिये मैं प्रजाजन (ते) तेरे ऐश्वर्यों का (अश्या-

म्) भोग करूँ । हे (पुरुषार) बहुत से वरणीय धनों के स्वामिन् ! चहुतों से वरण करने योग्य, बहुत से दुष्टों को वारण करने में समर्थ ! (त्वे हि) तुक्ष अकेले के अधीन हीं (पुरुषि) बहुत से (वसूनि) ऐश्वर्य (सन्ति) हैं । (त्वे राजनि) तुक्ष राजा के अधीन रहकर हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (विधते) विविध उत्तम शिल्प रचने और विधान बनाने वा विधान की यथार्थ रचना और पालन करने, कराने वाले पुरुष के लिये ही (ते वसु) तेरा समस्त धन या बसा हुआ ऐश्वर्य हो । इति षट्ग्रिंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[२]

भरद्वाजो वाहस्पत्य ऋषिः ॥ आग्नेदेवता ॥ अन्दः—?, ६ भुरिगुणिक् । २
स्वराङ्गुणिक् । ७ निचृदुष्णिक् । ८ उष्णिक् । ३, ४ अनुष्टुप् । ५, ६, १०
निचृदनुष्टुप् । ११ भुरिगतिजगती ॥ एकादशर्च सूक्तम् ॥

त्वं हि क्षैत्रवृद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।

त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष ! जिस प्रकार (क्षैत्र-
वत्) पृथिवी (यशः पत्यते) अज्ञ ऐश्वर्य को खूब बढ़ाती है, उसी प्रकार
तू भी (यशः पत्यसे) अज्ञ और यश का पतिवत् स्वामी हो, अथवा
(क्षैत्रवत् यशः पत्यसे) भूमि में उत्पन्न अज्ञ और तद्वत् भूमि में प्राप्त
यश कीति से भी (पत्यसे) समृद्ध हो । तू (मित्रः न) स्नेही मित्र
के समान और मरण से बचाने वाले जल वा सूर्य के समान (यशः
पत्यसे) अज्ञ और तेज का स्वामी हो । हे (विचर्षणे) विशेष रूप से
राष्ट्र को या ज्ञान को देखने हारे ! (त्वं) तू (श्रवः) अज्ञ और ज्ञान
को (पुष्टिं न) शरीर पोषक अज्ञ वा पशु सम्पदा के समान ही (पुष्य-
सि) पुष्ट किया कर । (२) हे (विश्वचर्षणे वसो) सबके द्वाटा

सब में बसे अन्तर्यामिन् ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (क्षेत्रवत् यशः) पार्थिवं अन्न के समान ही (मित्रः न) मित्रवत् सूर्यवत् पालक है । तू हमारे ज्ञान और ऐश्वर्य को बढ़ा ।

त्वां हि ष्मा चर्षण्यो युज्ञेभिर्गार्भिरील्ते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! (चर्षण्यः) समस्त मनुष्य (यज्ञेभिः) यज्ञों से, और (गीभिः) वाणियों से, (त्वां हि ईडते स्म) तेरी ही स्तुति करते और तुझे चाहते हैं । (अवृकः) चोरी कुटिलता आदि से रहित (वाजी) वेगवान्, बलवान्, ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् प्रजाजन (त्वां) तुझे (याति) प्राप्त होता है । तू (रजस्तः) समस्त लोकों का प्रेरक और (विश्वचर्षणिः) समस्त विश्व का द्रष्टा है ।

सुजोषस्त्वा दिवो नरो युज्ञस्य केतुमिन्धते ।
यद्द्व स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुहे अध्वरे ॥ ३ ॥

भा०—विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (दिवः नरः) नाना कामनाएं वा आशाएं करने वाले जन और ज्ञान प्रकाश, व्यवहार और विजिगीषा आदि के प्रमुख नायक, जन (सजोषः) समान प्रीति से युक्त होकर (यज्ञस्य केतुम्) परस्पर संगति और मान सत्कार के ज्ञापक (त्वा) तुक्षको ही यज्ञ के ध्वजा रूप अग्नि के तुल्य (इन्धते) बराबर प्रदीप करते हैं तुझे ही त्यागों से बढ़ाते हैं । (यत् ह) क्योंकि (स्यः मानुषः जनः) वह मननशील मनुष्यगण, (सुम्नायुः) सुख की कामना करता हुआ (अध्वरे) हिंसा आदि दोषों से रहित यज्ञ उपासनादि कर्म में, (जुहे) तेरे प्रति अपने को प्रदान करता और (त्वा जुहे) तुझे पुकारता, और स्वीकार करता है । सन्जोषसः । त्वा । इति पदपाठः ॥

ऋध्यद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तीः शशमते ।

ऊर्ती ष वृहुतो दिवो छिषो अंहो न तरति ॥ ४ ॥

भा०—(यः मर्तः) जो मनुष्य (सुदानवे) उत्तम दानशील (ते)
तेरे निमित्त स्वयं (क्रधत्) समृद्ध हो और (विद्या) बुद्धि, ज्ञान और
कर्म से (ते शशमते) तेरी ही स्तुति करता और तेरे लिये ही स्वयं शान्ति
धारण करता है । हे प्रभो ! स्वामिन् ! (सः) वह (ऊती) तेरी रक्षा,
और तेरे दिये ज्ञान सामर्थ्य से (बृहतः) बड़ी २ (दिवः) कामनाओं
को, (बृहतः दिवः) बड़े २ लोकों को और (बृहतः दिवः) बड़े २ सूर्यों
को और (द्विषः) शत्रुओं को भी (अंहः न) पाप के समान (तरति)
पार कर जाता है, उनसे कहाँ आगे बढ़ जाता है ।

सुमिधा यस्तु आहुतिं निशितिं मत्यौ नशत् ।

वृथावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! हे
अग्निवत् देह को चेतन करने हारे आत्मन् ! (समिधा) काष्ठ सहित
(आहुतिं) आहुति अग्नि में दी जाती है और वह बढ़ता है उसी प्रकार
(यः मत्यैः) जो मरणधर्मा मनुष्य (ते) तेरे लिये (समिधा) अच्छी
प्रकार प्रदीप होने वाले जल वायु के साथ २ (आहुतिम्) आदर श्रद्धा
पूर्वक खाने योग्य अज्ञ, आदि और (आहुतिं) आदर पूर्वक वचन, स्तुति
आदि (निशितं) खब सूक्ष्म, और प्रभावजनक रूप से (नशत्) प्रदान
करता है । (सः) वह (वयावन्तं क्षयम्) शाखा वाले वृक्ष के प्राप्त
कर चरणादि से युक्त इस देह को, (शतायुषम्) सौ वर्ष तक (पुष्यति)
युष्ट कर लेता है अर्थात् पूर्ण जीवन जी लेता है । इति प्रथमो वर्गः ॥

त्वेषस्ते धूम ऋग्वति दिवि षष्ठ्युक्त आततः ।

सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावकु रोच्से ॥ ६ ॥

भा०—(धूमः दिवि) जिस प्रकार अग्नि का धूम और (त्वेषः)
अकाश आकाश में फैलता है उसी प्रकार हे (पावक) अग्नि के समान

राष्ट्र को, देह को और चित्तों को पवित्र करने हारे राजन् ! आत्मन् ! परमात्मन् ! (ते) तेरा (शुक्रः) अति शुद्ध, कान्तिमय, (व्वेषः) तीक्ष्ण तेज, प्रताप और (धूमः) शशुओं, रोगों और पापों को कंपा देने वा दूर करने वाला सामर्थ्य (दिवि) भूमि राजसभा और मनो कामना में (ऋणवति) व्यापता है और (त्वं) तू स्वयं (शुक्रः) कान्तिमान् (आत्मतः) सर्वत्र व्यापक, (सूरः न) सूर्य के समान (श्रुता) कान्ति से और (कृपा) कर्म सामर्थ्य से वा करुणा से (रोचसे हि) प्रकाशित होता और सबके चित्तों को अच्छा प्रतीत होता है ! सब तुझे तेरी कान्ति और कृपा के कारण चाहते हैं ।

अथा हि विद्वीङ्ग्योऽसि प्रियो ज्ञो अतिथिः ।

रणवः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाख्यः ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (अथा हि) तू निश्चय में (विक्षु) समस्त प्रजाओं में (ईङ्गः) स्तुति करने योग्य और (अतिथिः) अतिथि के समान पूज्य, सबको अतिकरण करके स्थित, सर्वोपरि और (नः प्रियः) हमारा व्यारा (असि) है । तू (पुरि इव जूर्यः) नगरी में रहने वाले वृद्ध, हितोपदेष्टा पुरुष के समान वा (रणः) रण-कुशल-राजा के समान वा (सनुः न) गृह में विद्यमान पुत्र के समान (रणवः) रमणीय, सुखप्रद, (जूर्यः) हितोपदेष्टा, और (सूनुः) सबका प्रेरक और (त्रययाख्यः) तीनों लोकों में व्यापक है । वृद्ध पुरुष तीनों आश्रमों वा बाल्य, यौवन, वार्धक्य तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होने से 'त्रययाख्य' है । राजा मित्र, शशु, उदासीन वा आगे, पीछे और मध्य में आक्रमण करने वाले तीनों पर प्रयाण करने में समर्थ होने से 'त्रययाख्य' है । पुत्र माता आचार्य और यज्ञ वेदी तीनों में जन्म लाभ करने से 'त्रययाख्य' है, विद्वान् विद्या, तप, और कर्म वा तीनों वेदों में निष्ठ होने से 'त्रययाख्य' है ।

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।

परिज्ञेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (क्रत्वा द्रोणे अज्यसे) अग्नि संघर्षण की क्रियासे वा यज्ञ कर्म से वृक्ष के विकार रूप अरणी काष्ठ में वा कुण्डपात्र में प्रकट होता है उसीप्रकार हे विद्वन् ! राजन् ! आत्मन् ! परमेश्वर ! तू भी (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से (द्रोणे) जाने योग्य सन्मार्ग में राष्ट्र में और समस्त विश्व में (अज्यसे) प्रकाशित होता है । तू (वाजी न) वेगवान् अश्व के समान (क्रत्व्यः) समस्त कर्मों का करने हारा है । तू (परिज्ञा इव) सब तरफ जाने वाले वायु के समान (स्वधा) जीवन देने वाला, ऐश्वर्य का पोषक, धारक, तू (गयः) प्राणवत्, गृहवत्, (अत्यः न) वेगवान् अश्ववत् व्यापक, सर्वांतिशायी और (शिशुः) बालक के समान शुद्ध पवित्र और प्रशस्ताचरणवान् एवं (ह्वार्यः) कुटिल पुरुषों का नाश करने वाला है । जीव स्वयं देह का धारक होने से 'स्वधा' है ।

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पुशुर्न यव्से ।

धामा हु यत्ते अजर् वना वृश्चन्ति शिक्सः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! परमेश्वर ! (यवसे पशुः न) धास के निमित्त पशु के समान बुझुक्षित सा होकर (अच्युता त्या चित्) कभी च्युत न होने वाले उन समस्त लोकों को भी वृक्षों को अग्नि-वत् प्रलयकाल में ग्रस लेता है । और जिस प्रकार (शिक्सः) दीसियुक्त अग्नि के (धामा वना वृश्चन्ति) तेज ज्वालाएं वनों को भस्म कर देती हैं उसी प्रकार हे (अजर) अविनाशी ! प्रभो ! (शिक्सः) प्रकाशमान, शक्तिशाली (ते) तेरे (यत् धामा) जो तेज, और धारण सामर्थ्य हैं वे (वना) भोगने योग्य समस्त लोकों का (वृश्चन्ति) विनाश कर देते हैं । (२) इसी प्रकार तेजस्वी राजा के धारक सैन्यादि बल शत्रु के सैन्यों को काट गिराते हैं ।

वेषि ह्याध्वरीयतामश्चे होता दमे विशाम् ।

सुमृधो विशपते कृणु जुपस्व हृव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥

भा०—हे (अमे) विद्वन् ! प्रभो ! तू (अध्वरीयताम् विशाम्)

यज्ञ करने वाले प्रजाओं के (दमे) गृह में (होता) विद्वान् होता के समान दाता होकर (वेषि) प्रकाशित हो । (विशपते) प्रजा के पालक ! तू उनको (समृधः कृणु) समृद्ध कर । और हे (अङ्गिरः) अभिवृत तेजस्विन् ! तू (हृव्यम्) अज्ञ आहुतिवत् ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और अन्न आदि पदार्थ और स्तुत्य वचन को (जुपस्व) प्रेम से स्वीकार कर ।

अच्छां नो मित्रमहो देव देवानश्चोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्ति सुक्षिर्ति विवो नृन्दृषो अंहांसि दुरिता तरेम्
ता तरेम् तवावसा तरेम् ॥ ११ ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) स्वेहवान् मित्रों का आदर करने वाले ! हे (देव) दानशील ! हे (अमे) तेजस्विन् ! तू (देवान् नः) हम कामना-युक्त अर्थियों को (रोदस्योः) माता पिता के समान जनों का (सुमति) शुभ ज्ञान हमें (चोचः) उपदेश कर । तू (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि, उत्तम निवास स्थान को (स्वस्ति) सुखपूर्वक (वीहि) प्राप्त कर, प्रकाशित कर । तू (दिवः नृ) कामनायुक्त पुरुषों को प्राप्त कर । (द्विषः, अंहांसि) शत्रुओं को, और पापों को और (दुरिता) बुरे कर्मों को भी हम (तरेम) पार करें । (तव अवसा) तेरे रक्षण सामर्थ्य से हम (ता) उनको (तरेम) तर जावें और (तरेम) सदा तर जाया करें । राजा सूर्यवत् तेजस्वी होने से वा मित्रों का आदर करने से 'मित्रमहः' है । इति द्वितीयो वर्णः ॥

[३]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप् ।
२, ५, ६, ७ निचृतवृष्टुप् । ८ भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टर्च सूक्तम् ॥

अग्ने स क्षेष्वद्वत्पा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सुजोषा देव पासि त्यज्जसा मर्तमंहः ॥ १ ॥

भा०—हे (अपने) ज्ञानवन् तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (सः) वह (ऋतपा :) सत्य का पालक, धर्मात्मा (ऋते-जा :) सत्य ज्ञान में जन्म लाभ करने वाला, (देवयुः) शुभ गुणों और उत्तम विद्वानों की कामना करने वाला पुरुष (क्षेष्वद्वत्पा) दीर्घ लीबन प्राप्त करता, इस लोक में रहता और (ते ज्योतिः नशते) तेरे परम ज्ञानमय प्रकाश को प्राप्त करता है । हे (देव) राजन् ! प्रभो ! (यं) जिस (मर्तम्) मनुष्य को (सजोषा :) प्रेम से युक्त (वरुणः) सब दुःखों का वारक, सर्वश्रेष्ठ (त्वं) तू (मित्रेण) स्वेहवान् मित्र सहित (त्यजसा) दान से (पासि) पालन करता और (अंहः) पाप नाशक करता है वही परम ज्योति लाभ करता है ।

ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायुग्मये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिनांहौ मर्तं नशते न प्रदृष्टिः ॥ २ ॥

भा०—जो पुरुष (यज्ञेभिः) दान, देवपूजन और सत्संगों से (ईजे) यज्ञ करता है, (शमीभिः शशमे) उत्तम कर्मों से अपने को शान्त करता है वा उत्तम शान्तिजनक उपायों और स्तुतियों से अपने को शान्त करता या प्रभु की स्तुति करता है और जो (ऋधद्वाराय) सम्बन्ध, समृद्ध करने वाले धनों और व्यवहारों से युक्त (अशये) ज्ञानवान् पुरुष के हित के लिये (ददाश) अभिमं आहुति के तुल्य ही दान करता है (एव चन) इस प्रकार निश्चय से (तं) उसको (यशसाम अजुष्टिः) यशों और अज्ञों का अभाव (न नशते) प्राप्त नहीं होता, (तं मर्तं) उस मनुष्य को (अंहः न नशते) पाप भी स्पर्श नहीं करता और उसको (प्रदृष्टिः न नशते) भारी दर्प, घमण्ड वा मोह भी नहीं होता । अथवा अज्ञों की कर्मी, पाप वा दर्प आदि उसे नष्ट नहीं कर सकते ।

सूरो न यस्य दश्तिरेपा भीमा यदेति शुचुतस्तु आ धीः ।

हेष्टस्वतः शुरुधो नायमङ्कोः कुत्रा चिद्रुणवो वैसुतिवैज्ञेजाः ॥३॥

भा०—(यस्य) जिसका (दशतिः) दर्शन, सत्य ज्ञान वा दृष्टि (सूरः न) सूर्य के समान सत्य अर्थ को प्रकाशित करने वाली (अरेपाः) पापों से रहित (भीमा) असज्जनों को भय देने वाली है । और (यत्) (शुचतः) अधिक के समान चमकते हुए जिसको (धीः) उत्तम बुद्धि और कर्म (आ एति) सब ओर से प्राप्त होता है, (अक्तोः) सब पदार्थों को स्पष्ट कर देने वाले और (शुरुधः न) अन्धकार के नाशक तेजस्वी सूर्य के समान ही उस (हेष्टस्वतः) गंभीर गर्जनावत् वाणी बोलने हरे (ते) तुङ्ग उपदेश का (कुत्रचित्) कहीं भी हो वहां ही (रण्वः) अति रमण योग्य (वनेजाः) काष्ठ में अग्निवत्, किरणों में सूर्यवत् ही उत्तम सेवने योग्य ऐश्वर्य वा शान्तिदायक वन में उत्पन्न (वसतिः) निवास होता है ।

तिग्मं चिदेमु महि वर्णो अस्य भसुदश्वो न यमसान आसा ।

विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्विर्विन द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य) इस विद्वान् वा राजा का (एम) ज्ञान और मार्ग (तिग्मं चित्) सूर्य के प्रकाश के समान अतितीक्ष्ण हो और (वर्णः महि) रूप, आकार महान्, विशाल और (भसत्) चमकने वाला, तेजस्वी हो, वह स्वयं (अश्वः न) वेगवान् अश्व के समान (आसा) मुख से (यमसानः) यम अर्थात् संयम का सेवन करनेवाला वाचंयम तथा मिताहारी, निलोभ हो, वह (परशुः न) फरसे के समान अज्ञान के नाश करने में (जिह्वां) अपनी तीक्ष्ण वाणी का धार के समान (वि-जेहमानः) विविध प्रकार से प्रयोग करता हुआ (द्रविः न) ताप से धातु गला कर शोधने वाले स्वर्ण-कार के समान (द्रावयति) समस्त मलों वा शत्रुओं को पिघला कर दूर कर देता है, वह ही अग्नि के समान (दारु) काष्ठवत् अपना छेदन

भेदन करने वालों के सैन्य वा भय मोहादि जनक वा हृदयविदारकः शोकादि को भी (धक्षत्) भस्म कर देता है ।

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यजिङ्गशीति तेजोऽयसुो न धाराम् ।

चित्रध्रजतिरुतियोँ अङ्गोर्वेन द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(असिष्यन् अस्ता इव) जिस प्रकार वाण फेंकने वाला धनुर्धर वाण धनुष में लगाकर शत्रु के प्रति फेंकता है उसी प्रकार (सः इत्) वह विद्वान् भी (असिष्यन्) बन्धन में बंधता हुआ (प्रति धात्) उसको सामर्थ्य पूर्वक सहे और प्रतिकार करे । जिस प्रकार शिल्पी (अयसः धारां शिशीति) लोहे की धार को तेज़ करता है उसी प्रकार विद्वान् युरुष भी (धाराम्) वाणी को (शिशीति) तीक्ष्ण करे, वा वारं २ अभ्यास से तीव्र, कुशलवचन बनावे । (यः) जो (अर्तिः) आगे जाने वाला, वा कहीं एक स्थान पर भी आसक्त न होकर असंग हो, वह (चित्र-ध्रजतिः) अद्भुत वेगवान् गति वाला होकर (अक्तोः) रात्रि काल में (द्रुषद्वा वेः न) वृक्ष पर विराजने वाले पक्षी के समान (रघु-पत्म-जंहाः) लघु तुच्छ २ पदार्थ के प्रति गिरने के व्यसन को छोड़ देता है अथवा वह (अक्तोः वेः न) रात्रि के प्रकाशक सूर्य के तुल्य, तेजस्वी होकर (द्रुषद्वा) रथ से जाने वाले, रथवान् पुरुष के समान (रघु-पत्म-जंहाः) वेग से सुदूर मार्गों को जाने में समर्थ होता है । इति तृतीयो वर्गः ॥

स इँ सुभो न प्रति वस्त उच्चाः शोचिषां रारपाति सित्रमंहाः ।

नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नृनमत्योँ अरुषो यो दिवा नृन् ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (अरुषः) रोष रहित होकर भी (दिवानक्तं) रात दिन (ईम्) इस जगत् को सूर्यवत् सन्मार्ग पर चलाता, जो (अमत्यः) असाधारण मनुष्य होकर (नृन्) मनुष्यों का शासन करता है, और जो (अरुषः) मर्म स्थानों पर वश करके, (दिवा) तेज, ज्ञानः

प्रकाश से (नून्) मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाता है (सः) वह पुरुष ही (रेभः न) सूर्यवत् उत्तम ज्ञानों का उपदेशा, स्वयं पूज्य होकर भी अन्यों का सत्कार करने वाला होकर (उत्थाः प्रति वस्ते) किरणों के तुल्य स्वर्य ऊपर को निकलने वाली वाणियों को धारण करता है, और वह (सित्रमहाः) मित्रों, स्वेही जनों का आदर करने हारा (शोचिपा) अश्वि के समान दीपि युक्त वाणी से ही (रारपीति) उत्तम उपदेश किया करता है ।
 दिवो न यस्य विधुतो नवीनोद्धृता रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
 वृणा न यो ध्रजसा पत्मना यज्ञा रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७॥

भा०—(दिवः न) तेजस्वी सूर्य के समान (विधतः) विधान करते हुए, कर्म करते हुए या उपदेश करते हुए (यस्य) जिसके (नवीनोत्) उत्तम उपदेश ध्वनित होता है, और जो स्वयं (वृणा) वर्षणशील मेघ के तुल्य (रुक्षः) कान्तिमान् वा उत्तम पद पर आरूढ़ होकर (ओषधीषु) वनस्पतियों के तुल्य प्रजाओं और सेनाओं पर (नूनोत्) आज्ञा वा शासन करता है । और (यः) जो (वृणा) दीपि और (ध्रजसा) वेग से युक्त होकर (पत्मना) उत्तम मार्ग से (यन्) जाता हुआ (वसुना) ऐश्वर्य से (सु-पत्नी) सुख से राष्ट्र का पालन करने वाले, (रोदसी) शत्रुओं को रुलाने वाले, सेनापति और सैन्य दोनों को उत्तम पुत्रादि के पालक पति पत्नी के समान ही (दम्) दमन करता वा दानशील होकर पुष्ट करता है ।

धायोभिर्वा यो युज्येभिर्कैर्विद्युत्त दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
 शर्धो वा यो मुरुतां त्रुतक्षं ऋभुर्न त्वेषो रमस्तानो अद्यौत् ॥८॥

भा०—(यः) जो (विद्युत् न) विशेष कान्तियुक्त सूर्य या विजुली के समान (अकैः) अर्चना करने योग्य, मान सत्कार के पात्र, (युज्येभिः) कार्यों में नियुक्त करने योग्य, (धायोभिः) कार्यभारों को उत्तम

रीति से धारण करने वाले अधीनस्थ पुरुषों से किरणों के समान और (स्वेभिः) अपने (शुभ्रैः) शत्रुशोषक बली और सैन्यों से (दविद्योत) निरन्तर चमका करता है, और (यः) जो (मरुताम्) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषों के (शर्धः) सैन्य वा बल को (तत्क्ष) तैयार करता है वह (क्रमुः न) बहुत अधिक तेज से चमकने वाले, महान् सूर्य के समानः (त्वेषः) तीक्ष्ण कान्ति से युक्त (रभसानः) वेगवान्, कार्यकुशल होकर (अद्यौत्) चमकता है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४]

भरद्वाजे वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ५, ६,
७ भुरिक् पंक्तिः । ३, ४ निचृत् पंक्तिः । ८ पंक्तिः । अष्टर्च सूक्तम् ।

यथा होत्तर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहस्रो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशब्दग्न उशतो यज्ञि देवान् ॥१॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मनुषः) मननशील विद्वान् मनुष्यः (यज्ञेभिः) यज्ञों से (देवताता) विद्वानों द्वारा करने योग्य यज्ञ के अवसर पर (यजाति) यज्ञ करता, यथायोग्य सत्कार, दान आदि करता है । हे (होतः) दान देने वाले ! हे (सहसः सूनो) शत्रु पराभवकारी सैन्य बल के सञ्चालक सेनापते बल के देने वाले ! हे (अग्ने) विद्वन् अग्र नायक ! हे प्रभो ! तू भी (एव) उसी प्रकार (अद्य) आज (देवान्) धनैश्चर्यादि कामना करने वाले (उशतः) तुझे चाहते हुए (समानान्) पदाधिकार में समान बलवीर्य वाले, वा मन सहित रहने वाले (नः) हम लोगों को (समना) संग्राम वा यज्ञादि के अवसर पर (यक्षि) उत्तम वेतन सुख ऐश्वर्यादि देता और संगत कर हमें सुप्रबद्ध करता है, तू ही हमारा नायक होने योग्य है ।

स तो विभावा चुक्षणि॒र्न वस्तोऽग्निर्वन्दाहु वेद्यश्चनो धात् ।

विश्वायुर्यो आमृतो मत्यैषूपुर्मुद्रूदतिथिर्जातवेदाः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वायुः) सबको जीवन देने वाला, (अ-
मृतः) अमरणधर्मा, मृत्युरहित, निर्भय, (मर्त्येषु) मरणशील, मनुष्यों
जीवों के बीच में (अतिथिः) अतिथि के समान पूज्य, सर्वव्यापक
(जात-वेदाः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का उत्पादक, समस्त उत्पन्न
पदार्थों का ज्ञाता है (सः) वह (विभावा) विशेष कान्ति से युक्त
(चक्षणिः) सबका द्रष्टा (अग्निः) अग्नि के समान स्वयंप्रकाश (वेदः)
बुद्धि वा ज्ञान से जानने योग्य वा शरणयोग्य प्रभु, स्वामी और विद्वान्
(वस्तोः) वसने के निमित्त, सब दिन (नः) हमें (वन्दाहु) उत्तम
स्तुति करने योग्य (चनः) अज्ञ और ज्ञान (धात्) देवे ।

यावो न यस्य प्रनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।

विय इनोत्यजरः पावकोऽश्रस्य चिच्छश्वथत्पूर्व्याणि ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य) जिस परमेश्वर के (अभ्वं) महान् सामर्थ्य को
(यावः न) ये समस्त चमकने वाले सूर्य, नक्षत्र आदि गण, किरणों के
समान (पनयन्ति) स्तुति करते हैं और जो (सूर्यः न) सूर्य के समान
(शुक्रः) कान्तिमान् स्वयं तेजःस्वरूप होकर (भासांसि) समस्त
ज्योतिर्यों को (वस्ते) आच्छादित या वस्तों को पुरुष के समान धारण
करता है । (यः) जो (अजरः) जरा मरणादि से रहित (पावकः)
सबको पवित्र करने वाला, अश्वित् तेजस्सी, परम पावन होकर (वि-
इनोति) विविध प्रकार से व्यापता है, वह ही अग्नि जिस प्रकार (अ-
श्रस्य पूर्व्याणि शिश्वथत्) भोजन के दृढ़ रूपों को शिथिल कर देता है
उसी प्रकार वह परमेश्वर (अश्रस्य) भोक्ता जीव के भोग्य कर्म
फलादि के (पूर्व्याणि) पूर्व के किये कर्म बन्धनों को (शिश्वथत्) शिथिल
कर देना है ।

वृद्धा हि सूनो अस्यङ्गसद्वा चक्रे अशिर्जुषाज्मान्तम् ।
स त्वं न ऊर्जसन् ऊर्जै धा राजैव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सूनो) समस्त जगत् उत्पादक और सञ्चालक ! तू (वद्धा) चन्दना करने योग्य और सब मनुष्यों को उपदेश करने हारा (असि) है । तू ही (अश्वसद्वा) समस्त भोगने योग्य कर्म फलों पर अधिष्ठातृ रूप से भोजनों में अश्वि के तुल्य स्वादप्रद होकर विराजता है । तू ही (अश्विः) सर्वग्रकाशक होकर (जनुपा) जन्म द्वारा (अज्ञ) प्राप्त करने योग्य (अन्न) अन्नवत् भोग्य फल को (चक्रे) जीवों के लिये बनाता है । (सः) वह (त्वं) तू (ऊर्जसनः) अन्नों बलों का देने हारा होकर (नः) हमें सब प्रकार के (ऊर्ज) अन्न (धा:) प्रदान कर । और तू (राजा इव) राजा के समान (जे:) विजय कर, (अवृके अन्तः) भेड़िये के समान चोर, क्रूर पुरुषों से रहित निर्विघ्न राष्ट्र में बसने वाले राजा के समान ही तू (अवृके अन्तः) चोरी, कुटिलतादि से रहित अन्तःकरण में (क्षेषि) निवास किया कर ।

नितिक्ति यो वारणमन्त्रमत्ति वायुर्न राष्ट्रवत्यत्यकून् ।
तुर्यामु यस्त आदिशामरातीरत्यो न हुतः पततः परिहृत ॥५।५॥

भा०—(यः) जो राजा (वारणम्) शत्रुओं को दूर भगा देने में समर्थ सैन्य बल को (नितिक्ति) खूब तीक्ष्ण बनाये रखता है । और (अन्नम्) भोग्य ऐश्वर्य का अन्न के समान (अत्ति) भोग करता है या जो (नितिक्ति) खूब तीव्र, बलदायक (वारण) उत्तम रोगनाशक अन्न खाता है जो (राष्ट्री) राष्ट्र का स्वामी (वायुः न) वायु के समान बलवान् होकर (अकून्) सब दिनों वा रात्रियों का सूर्य के समान समस्त तेजस्वी पुरुषों को (अतिएनि) अतिक्रमण कर जाता है । हे नायक, प्रभो ! (यः) जो तू वेगवान् अश्व के समान वक्र या विनम्र होकर (परिहृत) सर्वत्र वक्र गति से गमन करता है उस (आदिशाम्)

चौदिशों (पततः ते) प्रयाण करते हुए तेरे (अरातीः) शत्रुओं को हम (तुर्याम्) विनाश करें । या तेरे चारों दिशाओं में स्थित शत्रुओं का नाश करें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

आ सूर्यो न भानुमद्धिरकैरग्ने तुतन्थ रोदसी वि भासा ।

चित्रो नयत्परि तमांस्युक्तः शोचिषा पतमन्नौशिजो न दीयन् ६

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार (सूर्यः भानुमद्धिः अकैः) सूर्य प्रकाशयुक्त होकर (भासा रोदसी वि ततन्थ) दीसि से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है और (पत्मन् अक्तः दीयन् शोचिषा तमांसि परि नयत्) आकाश मार्ग से गमन करता हुआ प्रकाश से अन्धकारों को दूर करता है उसी प्रकार राजा भी (भानुमद्धिः अकैः) सूर्य प्रकाश से पके अज्ञों और तेजस्वी, पूज्य पुरुषों सहित (भासा) अपने तेज से शास्य और शासक दोनों वर्गों को (आ ततन्थ वि ततन्थ) व्याप ले और विशेष रूप से विस्तृत करे और (औशिजः न) कान्तिमान् सूर्य के समान ही कामनावान् प्रजावर्ग का हितकारी होकर (पत्मन् दीयन्) सन्मार्ग से गमन करता हुआ (चित्रः) अहृत विस्मयकारी और (अक्तः) तेजस्वी होकर (शोचिषा) विद्या के प्रकाश से (तमांसि) अज्ञान, शोक, दारिद्र आदि अन्धकारों को (परि नयत्) प्रजावर्ग से दूर करे ।

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैवैवृमहे महिं नः श्रोध्यग्ने ।

इन्दुं न त्वा शवसा देवता यायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे प्रभो ! तेजस्विन् ! (अर्कशोकैः) अर्चना करने योग्य, सूर्यवत् प्रकाशों से (मन्दतमम्) अति आनन्दजनक, अति प्रशंसनीय, (त्वां हि) तुक्षको ही हम (ववृमहे) वरण करते हैं । तू (नः) हमारे वचनों का (महि श्रोषि) खबू श्रवण कर ।

(इन्द्रं न) विद्युत् के समान (शवसा) बल से सम्पन्न (देवता) तेजस्वी, वा मेघवत् दानशील और (शवसा वायुम्) बल से वायुवत् शत्रु और दुःखों को उखाड़ फेंकने वाले वा (शवसा वायुम्) ज्ञान व अन्न से वायुवत् जीवन देने हारे प्राणप्रिय (त्वां) तुहको (नृतमाः) श्रेष्ठ पुरुष (राघसा) धनैश्वर्य और आराधना द्वारा (पृणन्ति) पूर्ण करते और प्रसन्न करते हैं ।

नू नौ अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पृथिभिः पर्ष्यंहः ।

ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्मं मदैम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥६॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! तेजस्वी राजन् ! पापदाहक प्रभो ! तू (नू) शीघ्र ही (नः) हमें (अवृकेभिः पृथिभिः) चोरों से रहित मार्गों से (रायः) धनैश्वर्यों तक (स्वस्ति) कुशलतापूर्वक (वेषि) पहुंचा । और (अंहः पर्षि) पाप से पार कर । तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों और (गृणते) उपदेष्टा गुरुजन वा स्तुति करने वाले को (ता सुम्मं) नाना प्रकार के सुख (रासि) प्रदान करता है । उन्हें प्राप्त करके हम भी (सुवीराः) उत्तम वीरों ओर पुत्रों से सम्पन्न होकर (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदैम) आनन्द प्रसन्न होते हैं । इति षष्ठो वर्गः ॥

[५]

भरद्वाजो वार्षस्पत्य ऋषिः ॥ अधिदेवता ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ७ निचृतिष्टुप् । ३ मुरिकूर्पक्षिः ॥ सप्तर्ष सूक्तम् ॥

हुवे वः सूनुं सहस्रो युवानुमद्रौघवाचं मृतिभिर्यविष्टम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो श्रुधुक् ॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (यः) जो (प्रचेताः) उत्तम चित्त और ज्ञान वाला, (पुरुवारः) बहुत से प्रजाजनों वा सदस्यों से वरण करते

योग्य, (अधुक्) किसी से द्वोह न करने हारा होकर (विश्व-चाराणि) समस्त लोकों से स्वीकार करने योग्य (द्रविणानि) ऐश्वर्यों और ज्ञानों को (इन्वति) प्रदान करता है ऐसे (अद्रोघवाचम्) द्वोह रहित, प्रेम युक्त हितकारी वाणी बोलने हारे (मतिभिः यविष्टम्) उत्तम प्रज्ञाओं से युक्त और बुद्धिमान्, बलवान् पुरुष को (वः) आप लोगों के लिये, वा आप लोगों में से ही (सहसः सूनुम्) बल के सञ्चालक और उत्पादक (हुवे) होने की प्रार्थना करता हूँ ।

त्वे वसूनि पुर्वणीक होतदౌषा वस्तोरेतिरे यज्ञियासः ।

क्षामेत्व विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पात्रुके ॥२॥

भा०—(क्षामा इव) जिस प्रकार भूमि उत्तम राजा के अधीन रहकर (विश्वा भुवनानि सौभगानि धन्ते) समस्त लोकों और समस्त ऐश्वर्यों को धारण करती है उसी प्रकार (यस्मिन्) जिसके अधीन रह कर (यज्ञियासः) परस्पर सत्संग, मेल जोल से रहने वाले प्रजाजन (विश्वा भुवनानि) समस्त उत्पक्ष प्राणियों और (सौभगानि) सुख-जनक ऐश्वर्यों को (दधिरे) धारण करते हैं है (होतः) दाता राजन् ! हे (पुर्वणीक) बहुत सैन्यों के स्वामिन् ! वे सब लोग (दोषा वस्तोः) दिन और रात्रि (वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों को (त्वे) तुझे ही (एतिरे) दे देते हैं ।

त्वं विशु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रुथीरेभ्वो वार्याणाम् ।

अत इनोषि विधुते चिकित्वो द्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥ ३ ॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (त्वं) तू (आसु विशु) इन प्रजाओं के बीच में (क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से (प्रदिवः) उत्तम २ कामनाओं को (सीद) प्राप्त कर, उत्तम २ ज्ञानवान् पुरुषों के ऊपर शासक रूप से विराजमान हो । और (वार्याणाम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनों का (रथीः) प्राप्त करने

चाला और (वार्याणाम्) पदाधिकारों के निमित्त उनने योग्य उत्तम नायकों के बीच में तू ही (रथीः अभवः) महारथी के समान उत्तम सेनापति हो । हे (चिकित्वः) विद्वन् ! तू (विधते) सेवा करने वाले भृत्यजन को (वसुनि) नाना ऐश्वर्य, (आनुष्क्) निरन्तर (वि इनोषि) विविध रूपों से दिया कर । (अतः) इसी कारण तू राजा बन ।

यो नुः सनुत्यो अभिदासदम् यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तम् जरे भिर्बृष्टभिर्स्तव् स्वैस्तपा तपिष्ठ तपस्ता तपस्वान् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (यः) जो (सनुत्यः) निश्चित रूप से छुप कर (नः अभिदासत्) हमारा नाश करे, और (अन्तरः) भीतर आकर (वनुष्यात्) मारे, (तम्) उसको (अजरेभिः) बलवान् (तव स्वेभिः) तू अपने ही निज् पुरुषों और (अजरेभिः) वृद्धावस्था से रहित (वृपभिः) प्रबन्धक, बलवान् पुरुषों द्वारा (तपसा) अपने सन्तापक सामर्थ्य और तप से (तप) तपा, सन्तप्त कर और शुद्ध कर । हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य ! मित्रों के पूजक ! बड़े मित्रों वाले ! तू (तपसा) तपःसामर्थ्य से स्वयं भी (तपस्वान्) तपस्वी होकर (तप) तपस्या कर ।

यस्ते यज्ञेन सुमिधाय उक्थैर्कैभिः सूनो सहस्रो ददाशत् ।
स मत्यैष्वमृतं प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवस्ता वि भाति ॥ ५ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के प्रेरक और उत्पादक स्वामिन् ! (यः) जो पुरुष (यज्ञेन) यज्ञ, दान, सत्संग आदि से और (उक्थैः अर्केभिः) वेदमन्त्रों, उत्तम वचनों और स्तुत्य पदों से (सम्हिधाय) अच्छी प्रकार प्रदीप हुए (ते) तेरी वृद्धि के लिये (ददाशत्) अग्नि में आहुति के समान अपना अंश, कर आदि प्रदान करता है, हे (अमृत) अमरणधर्मा, बलवान् राजन् ! (सः) वह (प्रचेताः) उत्तम ज्ञानवान्

पुरुष (राया) धन से (द्युम्नेन) यश और (शवसा) बल और ज्ञान से (विभाति) विशेष रूप से चमकता है ।

स तत्कृधीपितस्त्यमग्ने स्पृधो वाधस्तु सहस्रा सहस्रान् ।

यच्छ्रस्यसे द्युभिरक्षो वचोभिस्तज्जुपस्व जरितुर्योपि मन्म ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तेजस्विन् नायक ! तू (त्यम्) शीघ्र ही (सहसा) शत्रु पराजयकारी सामर्थ्य से (सहस्रान्) बलवान् होकर (स्पृधः) संग्राम की स्पृधा करने वाली शत्रु सेनाओं को बलपूर्वक (वाधस्व) पीड़ित कर और (इषितः) सेना आदि से सम्पन्न होकर (सः) वह तू (तत्) वह कार्य (कृधि) कर (यत्) जिससे तू (द्युभिः अक्षः) प्रकाश युक्त किरणों से चमकने वाले सूर्य के समान (द्युभिः अक्षः) तेजस्वी पुरुषों से स्नेहवान् होकर (वचोभिः शास्यसे) उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसा प्राप्त कर सके । तू (जरितुः) उत्तम उपदेशा, ज्ञानवृद्ध पुरुष के (मन्म) मनन करने योग्य (धोषि) वेद वाणी के अनुकूल उपदेश को (जुषस्त्व) प्रेमपूर्वक सेवन किया कर ।

ऋश्याम् तं काममग्ने तत्त्वोती ऋश्याम् रुद्धिं रयिवः सुवीरम् ।

ऋश्याम् वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम् द्युम्नमजराजरं ते ॥७॥७॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हम लोग (तत ऊती) तेरी रक्षा में रहते हुए (तं कामम्) उस २ कामना योग्य उत्तम पदार्थ का (अश्याम) भोग करें । हे (रयिवः) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हम (सु-वीरम्) उत्तम वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिम् अश्याम) ऐश्वर्य का भोग करें । हम (वाजयन्तः) बल और धन की कामना करते हुए (ते वाजम्) तेरे अज्ञ और बल का (अश्याम) भोग करें और (ते अजराजरं) तेरे अविनाशी (द्युम्नम्) ऐश्वर्य का (अश्याम) भोग करें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[६]

भरद्वाजो वाईस्पत्य क्रपिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५ निचृ-
लिङ्गप् । ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छ्रु यज्ञेन ग्रातुमव॑ इच्छमानः ।
वृश्वद्वनं कृष्णयामुं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसा) अति नवीन, अति स्तुत्य (यज्ञेन) परस्पर के सम्बन्ध, या दान प्रतिदान द्वारा (ग्रातुम्) सन्मार्ग और उत्तम भूमि और (अवः) रक्षा और ज्ञान प्राप्ति करना (इच्छन्) चाहता हुआ जन (सहसः सूनुम्) बल के सम्पादक, वा सञ्चालक (वृश्वद्-वनम्) वर्णों को काट डालने में समर्थ परशु या अग्नि के समान तीक्ष्ण अज्ञान वा शत्रु के नाशक (कृष्ण-यामम्) आकर्षण करने वाले, यम नियम-न्यवस्थासे सम्पन्न (रुशन्तं) अति तेजस्वी, (होतारं) ऐश्वर्य वा ज्ञान के दाता, (दिव्यं) कामना करने योग्य, पुरुष के पास (वीती) इच्छापूर्वक (अच्छ जिगाति) जावे ।

स श्वित्रानस्तन्यूत् रोचनुस्था श्रुजरेभिर्नानदद्विर्यविष्टः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरुषिणि पुरुन्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ २ ॥

भा०—(पावकः अग्निः पृथूनि भर्वन् अनुयाति) जिस प्रकार अग्नि बहुत बड़े २ काष्ठों को जलाता हुआ उनकी ही ओर जाता है उसी प्रकार (यः) जो (पावकः) अग्नि के समान तेजस्वी, सबको पवित्र करने वाला, (पुरुतमः) बहुतों में श्रेष्ठ सबको पालन पोषण और तृप्त करने हारा, (भर्वन्) शत्रुओं को दग्ध करता और प्रजाओं को पालन करता हुआ (अग्निः) अग्रणी पुरुष (पृथूनि पुरुषिणि) बड़े २ और बहुत से सैन्यों के (अनुयाति) पीछे २ चलता है । (सः) वह (श्वितानः)

विद्युत् के समान अति श्रेत वर्ण, (तन्यतुः) गर्जनाशील, (रोचनस्थाः) सर्वप्रिय पद पर विराजने वाला, (अजरेभिः) जरारहित, जवान, (नानदंडिः) मेघवत् अति समृद्ध और गर्जनाशील अधीन नायकों के साथ मिलकर स्वयं (यविष्ठः) अति बलवान् होकर (पृथूनि पुरुणि भर्वन् अनुयाति) बड़े २ बहुत शत्रु सैन्यों को भस्म करता हुआ अनुगमन करता है ।

वि से विष्वग्वात् जूतासो ऋग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।

तुविष्वक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृष्टता रुजन्तः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) अस्मिवत् अन्यों को प्रकाशित करने वाले विद्वन् ! शत्रुओं को भस्म करने हारे नायक ! (वात-जूतासः शुचयः भामासः) अग्नि के वायु से प्रेरित, कान्तियुक्त ज्वालासमूह जिस प्रकार सब और निकलते हैं उसी प्रकार (ते) तेरे (शुचयः) शुद्ध, ईमानदार, (भामासः) क्रोध या उग्रता से युक्त, (वात-जूतासः) वायुवत् प्रचण्ड वेग से प्रेरित वीर लोग (शुचे) तेज या शुद्ध व्यवहार प्राप्त करने के लिये (विश्वक्) सब और (विचरन्ति) विचरते हैं । और वे (तुवि-श्रक्षासः) बहुतों से मेल करते हुए, (दिव्याः) तेजस्वी, (नवग्वाः) नरी से नरी, भूमि और चाल चलते हुए, (धृष्टता) शत्रु पराजयकारी बल से (वना रुजन्त) शत्रु सैन्य के दलों को, फरसे से वनों के समान छिन्न भिन्न करते हुए (वना वनन्ति) नाना ऐश्वर्यों का उपभोग करते हैं ।

ये ते शुक्रासुः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासु ऋश्वाः ।

अधं भ्रमस्तु उर्विया वि भाति यातयमानो आधि सातुं पृश्नेः ॥४॥

भा०—हे नायक ! हे (शुचिष्मः) शुद्ध कान्तियुक्त तेजस्विन् ! वा शुद्ध व्यवहार वाले ! (ये) जो (ते) तेरे (विषितासः) विशेष रूप से

बन्धन या प्रबन्ध में बंधे हुए (अश्वः) अश्वों के समान आशुगार्भी
अश्व सैन्य वा शुद्धसवार शासक और भूमि के भोक्ता ज़मीदार लोग
(क्षां वपन्ति) भूमि का छेदन भेदन करते, उस पर खेतियों को
बोते वा काटते हैं या प्रजा से धन उगाहते हैं वे (शुक्रासः) शीघ्र
कार्य करने हारे, शुद्ध और (शुचयः) स्वेच्छाचार वाले, सदाचारी और
ईमानदार हों। (अथ) और (ते उर्विया अमः) विशाल अमणशील
या भरण पोषणकारी बल सामर्थ्य (पृथ्वेः सानु अधि) भूमि के उच्च
भाग, ऐश्वर्ययुक्त भाग पर पर्वत, शिखर पर मेघवत् विराजकर (यातय-
मानः) दुष्टों को दण्ड देता हुआ (विभाति) विशेष कान्ति से चमके।
अधि जिह्वा पापतीति प्र वृष्णों गोषुयुधो नाशनिः सृजानाः ।

शूरस्येव प्रसितिः ज्ञातिरुद्गेर्दुर्वर्तुभीमो दयते वनानि ॥ ५ ॥

भा०—(सृजाना अशनिः) उत्पन्न होती हुई विद्युत् की जिह्वा
(वृष्णः) बरसते और (गो-सु-युधः) भूमि पर प्रहार करते मेघ से निक-
लती जीभ के समान (पापतीति) वेग से जाती है उसी प्रकार (गो-सु-
युधः) भूमि के निमित्त युद्ध करने हारे (वृष्णः) बलवान् पुरुष की
(जिह्वा) वाणी भी (पापतीति) बराबर आगे जाती है। वह (शूरस्य)
शूरवीर पुरुष की (प्र-सितिः) प्रबन्धक शक्ति और (क्षातिः) शत्रु को
नाश करने वाली शक्ति, दोनों ही (दुर्वर्तुः) वारण नहीं की जा सकतीं।
(भीमः) इस प्रकार वह भयानक, राजा (वनानि दयते) ऐश्वर्यों वा भोग्य
राष्ट्रों या स्वैन्य दलों को पालता और (वनानि दयते) शत्रु सैन्य समूहों
को नष्ट करता है। 'प्रसिति' अर्थात् प्रबन्धक शक्ति से पालता और 'क्षातिः'
अर्थात् विनाशक शक्ति से नाश करता है। इसी प्रकार (गो-सु-युधः) वाणी
से युद्ध करने वाले तार्किं विद्वान् की वाणी विद्युत् के समान (सृजाना)
नयी रचना करती हुई चलती है, वह उत्तम बन्धनयुक्त, सुग्रथित, दोष-
रहित हो।

आ भानुना पार्थिवानि ज्ञयांसि महस्तोदस्य धृष्टा ततन्थ ।
स बाधुस्वापं भया सहोमिः स्पृधौ वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (भानुना) तेज से (पार्थिवानि ज्ञयांसि आ ततन्थ) पृथिवी पर के पदार्थों को सब दूर प्रकाशित करता है उसी प्रकार उत्तम विद्वान् नायक पुरुष भी (महः) बड़े भारी (तोदस्य) शत्रु को व्यापने वाले सैन्य के (धृष्टा) पराजयकारी सैन्य के (भानुना) तेज से (पार्थिवान्) पृथिवी के (ज्ञयांसि) प्रापुष्य राष्ट्रों, ऐश्वर्यों को (आततन्थ) सब और कैलावे । (सः) वह तू (सहोमिः) अपने ग्रबल सैन्यों से (भया) भय देने वाले कारणों को (अप बाधस्व) दूर करे, स्वयं (वनुष्यन्) राष्ट्र का सेवन वा उपभोग करता हुआ (वनुषः) हिंसाकारी (स्पृधः) संग्रामकारी शत्रुओं को (नि जूर्व) अच्छी प्रकार नष्ट करें । स चित्रं चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्रं चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रथं पुरुषीरं बृहन्तं चन्द्रं चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७॥८॥

भा०—हे (चित्र) आश्रय कर्म करने हारे ! विद्वन् राजन् ! (सः) वह तू हे (चित्र-क्षत्र) आश्रयकारी वीर्य बल और राज्य के स्वामिन् ! तू (अस्मे) हमें (चित्रम्) अहुत (चित्रन्तमस्म) सबसे अधिक संग्रह करने योग्य (वयो-धाम्) जीवन के पालन करने वाले, बलप्रद, अन्नप्रद, (चन्द्रं) आहादकारी (पुरुषीरं) बहुत से वीरों और पुत्रों से युक्त (रथं) ऐश्वर्य और (बृहन्तं) बड़े भारी (चन्द्रं) आहादकारी सुवर्णादि को भी (चन्द्राभिः) आहादकारिणी, सुखजनक वाणियों सहित (गृणते युवस्व) उपदेष्टा पुरुष को प्रदान कर । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[७]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१ विष्टुप् । २ निचृत्विष्टुप् । ३ स्वरात् विष्टुप् । ४ निचृत्यंकिः । ५ स्वरात् पंक्तिः । ५ पंक्तिः । ६ जगती ॥

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानुरमृत आ ज्ञातमग्निम् ।

कर्वि सम्राज्मतिथि जनानामुसन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (दिवः) प्रकाश या भाकाश के (मूर्धानं) मूर्धा वा शिरवत् मुख्य केन्द्र, सूर्य के समान सर्वोपरि विराजमान, (पृथिव्या अरतिम्) पृथिवी के स्वामी, (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी, (ऋते जातम्) सत्यज्ञान, व्यवहार, न्यायज्ञासन और ऐश्वर्यादि में प्रसिद्ध पुरुष को (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी अग्न नेता रूप से (आ जनयन्त) बनावें । और वे (कर्वि) क्रान्तदर्शी विद्वान्, मेधावी, (सम्राजम्) अच्छी प्रकार तेज से चमकने वाले, सम्राट् (जनानां) मनुष्यों के बीच में (अतिथिम्) सबसे अधिक आदर योग्य पुरुष को (आसन्) मुखवत् मुख्य पद पर वा अपना प्रमुख (पात्रम्) पालक रक्षक (आ जनयन्त) बनाया करें । (२) परमेश्वर सूर्यादि प्रकाशमान, पृथिवी आदि अप्रकाशमान लोकों का प्रमुख स्वामी है, वह कर्वि, सम्राट् सर्वव्यापक परम पूज्य है । उसी को देव, विद्वान् जन अपना पालक करके जानते जनाते हैं ।

नाभै यज्ञानुं सदनं रथीणां महामाहावसमभि सं नवन्त ।

वैश्वानुरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी (यज्ञानां नाभिं) सब प्रकार के लेन देन और परस्पर के मेल जोल आदि के नाभिवत् मुख्य केन्द्र, (रथीणां सदनम्) सब ऐश्वर्यों के आश्रय, (महाम्) बड़े २ लोगों से (आहावम्) स्पर्धा करने वाले, वा बड़ों २ को आदर से बुलाने में समर्थ या सबको अज्ञादि देने हारे गृहवत् आश्रय पुरुष को प्राप्त कर उसके समक्ष (अभि सं नवन्त) आदर से झुकते हैं । (अध्वराणां रथ्यम्) यज्ञों वा संग्रामों के बीच महारथी और (यज्ञस्य) यज्ञ, दान, संगति आदि के (केतुम्) ज्ञापक, ध्वजा के

तुल्य सर्वसाक्षी, पुरुष को ही (देवाः) विद्वान् लोग (आ जनयन्त) सर्वत्र ग्रसिद्ध करें ।

त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।

वैश्वानर् त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्स्पृह्याय्याणि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक, परंतप ! हे ज्ञानयुक्त विद्वन् ! हे (राजन्) राजन् ! (त्वत्) तुल्य से ही (विप्रः) विप्र, विद्वान् पुरुष (वाजी) बलवान् और अन्नैश्वर्यवान् (जायते) होता है । (त्वत्) तुल्य से ही अधिकार प्राप्त करके (वीरासः) वीर पुरुष (अभिमातिषाहः) अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने हारे उत्पन्न होते हैं । हे (वैश्वानर) समस्त नायकों के नायक ! (त्वं) तू ही (अस्मासु) हममें (स्पृह्याय्याणि) चाहने योग्य नाना । (वसूनि) ऐश्वर्य (धेहि) धारण करा, हमें प्रदान कर ।

त्वां विश्वे अमृतं जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।

तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर् यत्पित्रोरदीदेः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः) दानशील सम्बन्धीजन जिस प्रकार (जायमानं शिशुं न) उत्पन्न होते हुए नवबालक को (अभि सं नवन्ते) लक्ष्यकर आशीर्वादादि के निमित्त उसके प्रति प्रेम से छुकते हैं उसी प्रकार हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों के नायक ! हे (अमृत) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले ! (यत्) जब तू (पित्रोः) पालक माता पिताओं, एवं पिता वा गुरुजन दोनों के बीच और दोनों के अधीन उत्तम रूप, गुणों और विद्यादि से (अदीदेः) प्रकाशित हो (देवाः) देव, विद्वान् लोग तुल्य (जायमानं) उदय होते हुए, (शिशुं त्वां) प्रशंसनीय तुल्यको (अभि सं नवन्ते) आदरपूर्वक छुकते हैं । वे (तव क्रतुभिः) तेरे कर्मों और ज्ञानों से ही (अमृतत्वम् आयन्) अमृत, अविनाशी सत्ता को प्राप्त हों ।

वैश्वानरु तत्र तानि ब्रतानि मृहान्यग्ने नक्तिरा दद्धर्ष ।

यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वद्वाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों में विद्यादि उत्तम गुणों से नायक होने योग्य ! (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जो तू (पित्रो) माता पिता विद्या और आचार्य उनके समीप (जायमानः) जन्म ग्रहण करता हुआ, अरणियों में अग्नि के समान (अद्वाम्) सब दिनों के करने योग्य (वयुनेपु) कर्मों और ज्ञानों में (केतुम् अविन्दः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त करता है (तत्र) तेरे (महानि ब्रतानि) बड़े २ कार्यों और ब्रताचरणों को (नक्तिः आदर्थर्ष) कोई भी नाश नहीं कर सके ।

वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य
केतुना । तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वृथा इव रुहुः सुस
विस्तुहः ॥ ६ ॥

भा०—(वैश्वानरस्य दिवः केतुना या सानूनि विमितानि) सब मनुष्यों के हितकारी सूर्य के प्रकाश से जिस प्रकार उच्च २ स्थल विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार (वैश्वानरस्य) समस्त जीवों के हितकारी प्रभु के (दिवः) तेजःस्वरूप, कामना योग्य (अमृतस्य) मोक्षरूप अमृत के स्वरूप (चक्षसा) सर्वप्रकाशक (केतुना) ज्ञान से (सानूनि) समस्त भोग्य ऐश्वर्य युक्त पदार्थ (विमितानि) विशेष रूप से बने हैं । (तस्य इत् मूर्धनि) उसके ही शिर पर, उसके ही आश्रय (विश्वा भुवना) समस्त लोक (वृथा : इव) उसकी शाखाओं के समान (अधि रुहुः) स्थित हैं । और उसी के शिर पर उसी के आश्रय (सुस विस्तुहः) सात प्रवाहों के समान सात विकृतियां या सातों प्रकार के विसरणशील जीव सर्ग वा सात प्रकृति विकार (अधि रुहुः) स्थित हैं । (२) अध्यात्म में—अमृत, अविनाशी जीव के दर्शन सामर्थ्य से समस्त इन्द्रियों बनी हैं और उसी के शिर में शाखावत् सात प्राण हैं । विद्वान्

पक्ष में (सप्त विस्तुहः) सात छन्दोमय वाणियें उसके मस्तिष्क में रहती हैं ।

वि यो रजांस्यमिमीत् सुक्रतुर्वैश्वानुरो वि द्विवो रौचुना कृविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽद्वधो गोपा अमृतस्य रक्षिताण् ॥९

भा०—(यः) जो (वैश्वानरः) समस्त प्राणियों और पदार्थों में व्यापक, सबका सञ्चालक परमेश्वर (सुक्रतुः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (रजांसि) समस्त लोकों को (वि अमिमीत) विविध प्रकार से बनाता है और जो (कृविः) क्रान्तदर्शी होकर (द्विः रोचना वि अमिमीत) आकाश के या प्रकाश से युक्त चमकने वाले सूर्यादि लोकों को किरणोंवत् विविध रूप से बनाता है (यः) जो (विश्वा भुवनानि परि पप्रथे) समस्त उत्पन्न हुए लोकों को सब ओर फैलाये है, वह (अद्वधः) कभी नाश न होने वाला (गोपाः) समस्त भूमियों, गतिशील सूर्यों और जन्मुओं का पालक और (अमृतस्य) अमृत, जीव प्रकृति आदि तत्वों का (रक्षिता) रक्षक है । इति नवमो वर्गः ॥

[=]

भरद्वाजो बाह्यस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगतो ।

६ विराङ् जगतो । २, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वौचं विदथा जातवेदसः ।

वैश्वानुराय मृतिर्नव्यस्त्री शुचिः सोम इव पवते चाहरूग्नये ॥१॥

भा०—(पृक्षस्य) स्नेहवान्, विद्यादान आदि सम्बन्धों से सम्पर्क करने वाले, (वृष्णः) मेघ के समान ज्ञानोपदेश को देनेवाले, बलवान्, (अरुषस्य) तेजस्वी, रोष वा हिंसा से रहित (जातवेदसः) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, समस्त धनों के स्वामी पुरुष के (विदथा) ज्ञानों और

प्राप्ति साधनों और (सहः) सहनशीलता और बल की (तु) भी अवश्य हम (प्र वोचम्) स्तुति करें, और उत्तम गुणों वाले पुरुष को बल वृद्धि और ज्ञानों का उपदेश करें। (वैश्वानराय अग्नये) सबके नायक अग्रणी पुरुष की (नव्यसी मतिः) अति स्तुत्य बुद्धि और वाणी (शुचिः) अति पवित्र शुद्ध रूप से (चाहुः) अति सुन्दर होकर (सोम इव पवते) ओषधि रस के तुल्य दुःखनाशक होकर प्रकट होती है।

स जायमानः परमे व्योमनि द्वृतान्यग्निर्वैतुपा अरक्षत ।

व्यं न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानुरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान् , विद्वान् , विनीत शिव्य (परमे) सबसे उक्तष्ट (व्योमनि) विशेष रूप से रक्षा करने वाले, आकाशवत् विशाल, ज्ञानवान् गुरु के अधीन आकाश में सूर्य के तुल्य (जायमानः) जन्म लेता हुआ (व्रत-पाः) व्रतों का पालक होकर (व्रतानि) नाना व्रतों का (अरक्षत) पालन करे। वह (सुक्रुतुः) उत्तम प्रज्ञावान् , उत्तम कर्मकुशल पुरुष (वैश्वानरः) सबका हितैषी सब शिव्यगण को सन्मार्ग पर ले जाने वाला आचार्य होकर (अन्तरिक्षम्), रसवत् भीतर विद्यमान ज्ञान को (वि अग्निमीत) विशेष रूप से ज्ञानः करे। और (महिना) बड़े सामर्थ्य से (नाकम्) सुख को (अस्पृशत्) प्राप्त करे और अन्यों को प्राप्त करावे।

व्यस्त भ्नाद्रोदसी मित्रो अन्द्रुतोऽन्तर्वावदकणोन्योतिषा तमः ।

वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानुरो विश्वमधक्तु वृष्टयम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (रोदसी वि-अस्तभ्नात्) आकाश और पृथिवी दोनों को थामता है, (ज्योतिषा तमः अन्तर्वावद अकृतोत्) प्रकाश से अन्धकार को लुप्त कर देता है, (चर्मणी इव धिषणे वि अवर्त्यत्) दो चमड़ों के समान सबके धारक अन्तरिक्ष, पृथिवी दोनों को

विशेष व्यापारवान् करता है (विश्वम् वृष्ण्यम् अधत्) वर्षण योग्य जल को धारण करता है उसी प्रकार (वैश्वानरः) समरत शिव्यगण को सन्मार्ग पर ले जानेहारा गुरु वा विद्वान् पुरुष (मित्रः) सबको स्नेह करने वाला होकर (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् नर नारी दोनों को (वि अस्तमनात्) विशेष नियमों में स्थिर करे । वह (अद्भुतः) आश्र्यकारक, (ज्योतिषा) ज्ञान ज्योति से (तमः) शोक, अज्ञान रूप अन्धकार को (अन्तः-वावत्) लुप्त (अकृणोत्) करे । वह (धिषणे) ब्रतों और आश्रमों के धारण करने वाले छी पुरुषों को (चर्मणी इव) सूत्रों से दो चर्मों के समान मिला, एवं ग्रथित कर (वि-अवर्त्यत्) विशेष कार्यों में प्रवृत्त करे । वह (वैश्वानरः) सबका नायक, होकर (विश्वम् वृष्ण्यम्) सब बलों को (अधत्) धारण करे, करावे । (२) वह परमेश्वर सूर्य पृथिवी आदि को धारण करता, अन्धकार को सूर्य प्रकाश से नश करता । आकाश भूमि को घुमाता, सब बलों और विश्व को धारता है । अ॒पा॑मुपस्थै॒ माहि॑वा अ॒गृभ्यत् विशे॒रा रा॒जा॑न्मुप॑ तस्यु॒ऋग्मियम् ।
आ॒दुतो॑ अ॒ग्निम॑भरद्विवस्वतो॑ वैश्वानुरं॒ मा॒तृरिश्वा॑ परा॒वतः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् लोग (अपाम् उपस्थे अग्निम् अग्नभ्यत्) जलों और मेघों में से भी विद्युत् और अग्नि को [ग्रहण करते हैं और (मातृरिश्वा दूतः परावतः विवस्वतः अग्निम् वैश्वानरम् अभरत्) ज्ञान वा अग्नि विद्या का वेत्ता पुरुष दूर स्थित सूर्य से भी वैश्वानर अग्नि को यन्त्र द्वारा संग्रह कर लेता है उसी प्रकार (अपाम् उपस्थे) आप जनों के बीच में (विशः) वैश्यजन वा प्रजाएँ । (महिषाः) बड़े भारी ऐश्वर्य को देती हुई (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (राजानम्) तेजस्वी राजा को (उप तस्थुः) प्राप्त हों, उसके समीप आवें । (मातृरिश्वा) भूमि पर वेग से जाने में समर्थ (दूतः) शत्रुओं को सन्ताप देने वाला विद्वान् पुरुष (परावतः) दूर देश के भी (विवस्वतः) विविध वसु अर्थात्

ऐश्वर्योः और प्रजाओं से समृद्ध देश से (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी नायक (वैश्वानरं) सबके नायक, पुरुष को (आ अभरत्) प्राप्त करे ।

युगेयुगे विदुर्थ्यं गृणद्धथोऽग्ने रथि यशसं धेहि नव्यसीम् ।

पुरुषेवं राजन्त्रधशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तू (युगे युगे) प्रति वर्ष, (गृणद्धयः) उपदेश देने वाले विद्वानों को (विद्ध्यं) युद्ध, यज्ञ आदि से उत्पन्न होने वाले (रथि) ऐश्वर्य और (यशसं) अज्ञ और यश एवं (नव्यसीं) अति स्तुत्य, नवी से नवी, शुभ वाणी, और सत्कार किया को (धेहि) दिया और किया कर । हे (राजन्) राजन् ! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंक देने हारे ! जैसे (पव्या इव वनिनं) वज्र या कुठार से बन के वृक्ष को काट डाला जाता है और जैसे (तेजसा वनिनं न) तेज से जल युक्त मेघ को छिन्न भिन्न किया जाता है उसी प्रकार (पव्या) चक्र की धारा वा तलवार से और (तेजसा) तीक्ष्ण तेज से (अघ-शसं) पाप की बात कहने वाले वा पाप हत्यादि करने वाले चोर ढाकू वा (वनिनं) बन में छुपे हिंसक पुरुष को (नीचा निवृश्च) नीचे गिराकर काट डाल ।

अस्माकमग्ने मध्यवत्सु धार्यानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।

ब्रयं जयेम श्रतिनं सहस्रिणं वैश्वानरं वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे अग्रणी नायक ! तू (अस्माकम्) हमारे बीच में जो (मध्यवत्सु) धन ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न पुरुष हैं उनमें (अनामि) कभी न छुकने वाले, अखूट (क्षत्रम्) धनैश्वर्य और (अजरम्) अविनाशी, नरावस्था से, रहित, सदा जवान, शत्रु को उखाड़, फेंकने वाला (सुवीर्यम्) उत्तम बल-वीर्य (धारय) धारण करा । हे (अग्ने) तेजस्विन् (वैश्वानर) सबके नायक ! (बयं) हम

(तत्र ऋतिभिः) तेरी रक्षा साधन, सेनाओं और तेरे उपस्थित किये साधनों से (शतिनं सहस्रिणं वाजम्) सैकड़ों और सहस्रों से युक्त ऐश्वर्य को (जयेम) विजय करलें ।

अद्वधेभिस्तवं गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिपथस्थ सूरीन् ।

रक्षाचनोद्दुषां शर्धो अग्ने वैश्वानरं प्रचतारीः स्तवानः ७।१०।

भा०—हे (त्रिपथस्थ) तीनों सभा स्थानों के स्वामिन् ! तू (इष्टे) तेरे अपने अभिलिखित कार्य में लगे (अस्माकम्) हमारे (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों की (अद्वधेभिः गोपाभिः) न नाश होने वाले, इदं रक्षकों द्वारा सदा (पाहि) रक्षा किया करे । (नः) हमारे (ददुषां) करादि देने वाले प्रजाजनों के (शर्धः) बल की (रक्षा) रक्षा कर । हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों के नायक ! सू (स्तवानः) प्रशंसित होकर (प्रतारीः च) सबको दुःखों से भली प्रकार पार कर । इति दशमो वर्गः ॥

[६]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१ विराट्विष्टुप् । ५
निचृतिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ४ पंक्तिः । ७ भुरिङ्गती ॥
सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अहश्च कृष्णमहरजुनं च च वर्त्तते रजसी वेद्याभिः ।

वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरुज्ज्योतिष्पुग्नेनस्तमांसि ॥१॥

भा०—(कृष्णं च अहः) काला दिन अर्थात् रात्रि, और (अर्जुनं च अहः) श्वेत, प्रकाशित दिन दोनों (वेद्याभिः) स्वयं जानने योग्य नाना घटनाओं सहित (रजसी) सबका मनोरक्षण करते हुए (चिवर्त्तते) बार २ आते हैं और (वैश्वानरः अग्निः) सबका नायक सञ्चालक

सूर्य (राजानम्) राजा के समान देवीप्यमान होकर (ज्योतिषा तमांसि अव अतिरत्) तेज से अन्धकारों को दूर करता है उसी प्रकार (रजसी) एक दूसरों के मनों को अनुरक्षण करने वाले राजा, प्रजा वा स्त्री पुरुष लोग (वेदाभिः) जानने योग्य कर्मां या 'वेदि', वज्ञवेदि पर प्रतिज्ञा रूप से करने योग्य कियाओं द्वारा दिन रात्रि के समान विविध व्यवहार करें और (वैश्वानरः) सबका नायक राष्ट्र में राजा, एवं गृहस्थ में बालक, गृह में आहवनीय अग्नि, गृहपति और हृदय में परमेश्वर तेज से समस्त शोक अज्ञानादि अन्धकारों को दूर करे ।

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समुरतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि पुरो वद्वात्यवरेण पित्रा ॥ २ ॥

भा०—(अहं) मैं (न तन्तुं वि जानामि) न तन्तु वा तनना ही जानता हूं और (न ओतुम्) न बुनना अथवा न बरनी हो जानता हूं और (न) न उसको जानता हूं (यं) जिसको (समरे) समर में गमन करने योग्य परम लक्ष्य के निमित्त (अतमानाः) जाते हुए (वयन्ति) बुनते हैं । इस विषय में (कस्य स्वित् पुत्रः परः) किसी का अति ज्ञानी पुत्र (अवरेण पित्रा) उरे के, अल्प ज्ञानी पिता के द्वारा, (परः) और उक्तृष्ण ज्ञानवान् होकर इस रहस्य के विषय में (वक्त्वानि वदाति) उपदेश करने योग्य चचरों का उपदेश कर सकता है । कोई ही ऐसा विलक्षण पुत्र उत्पन्न होता है जो अपने पिता वा गुरु से शिक्षा पाकर अपने पिता वा गुरु से भी अधिक ज्ञानवान् होकर बहुतत्व आदि वातों को यथार्थ रूप से बतला सके । नहीं तो हम जीवों में इतना अज्ञान है कि हम अरनी-बरनी और वस्त्रादि कुछ भी नहीं जानने वाले अनाड़ी के समान साधन, उपासना और साध्य कुछ भी नहीं जानते । और पैदा हो जाते हैं । याज्ञिकों के मत से—यज्ञ रूप वस्त्र है गायत्री आदि छन्द 'तन्तु' हैं, अध्वर्यु के कर्म 'ओतु' हैं, देवयजन स्थान 'समर' है,

उनमें उन सबका उपदेश कोई ही होता है । ब्रह्मादियों के मत से— यह जगत् प्रपञ्च रूप और दुर्विज्ञेय है, इसमें आकाशादि सूक्ष्म पञ्चभूत तनु हैं और स्थूल पञ्चभूत 'ओतु' हैं, संसारी जीव इस संसार 'समर' में निरन्तर जाते हुए क्या करते हैं यह पता नहीं लगता । इस रहस्य को कोई ही ज्ञानी बता सकता है । वैश्वानर प्रभु का रहस्य वही जाने ।

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।

य इं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्वरन्पुरो अन्येन पश्यन् ॥३॥

भा०—(सः इत्) वह ही (तनुं) तनु को जानता है और (सः ओतुं विजानाति) वही 'ओतु' अर्थात् बरनी को भी जानता है, (सः) वह ही (ऋतुथा) समय २ पर और प्रति ज्ञानयोग्य काल में (वक्त्वानि) उपदेश करने योग्य वचनों का भी (ददाति) उपदेश करता है । (यः गोपाः) जो सबका रक्षक, (परः) सबसे उत्कृष्ट होकर (अन्येन) दूसरे के द्वारा (अमृतस्य पश्यन्) अविनाशी आत्मा का साक्षात् करता हुआ, उसको देखता हुआ भी (अवः चरन्) इस लोक में च्यापता हुआ (इं चिकेतत्) इस रहस्य को जान लेता है । अर्थात् जो विद्वान् अपने से 'अन्य' गुरु द्वारा (अवः) इसके अधीन रहता हुआ ज्ञान का साक्षात् करले, वही उस अमृत अविनाशी तत्व का ज्ञान करता है, वह साधन, साध्य आदि भी जानता है । वही समय २ पर उपदेश भी करता है ।

अयं होता प्रथमः पश्यतेमस्मिदं ज्योतिर्मृतं मत्येषु ।

अयं स जडे ध्रुव आ निष्ठोऽमर्त्यस्तन्वाऽ वर्धमानः ॥ ४ ॥

भा०—जीव का वर्णन—हे विद्वान् पुरुषो ! (अयं हि) यह ही (प्रथमः होता) सबसे उत्तम समस्त सुखों का ग्रहण करने और देने वाला है (इमं पश्यत) इसको साक्षात् किया करो । (मत्येषु) मर जाने वाले

देहों में (इदं अमृतं ज्योतिः) यह कभी नाश न होने वाली 'ज्योति' है । अर्थात् यह चेतन ज्योति कभी नाश को प्राप्त नहीं होती । (अयं) यह (सः) वह (अमर्त्यः) कभी न मरने वाला, (तन्वा वर्धमानः) शरीर से बढ़ता हुआ (ध्रुवः) सदा स्थिर, नित्य होकर भी (आ नि-सत्तः) शरीर या गर्भ में स्थिर होकर (जड़े) जन्म लेता है । ईश्वर पक्ष में—वह सब का स्वामी, इन मरणधर्मा जीवों में ज्योति है । जो सर्वथेष्ट 'होता' सब सुखों का दाता है वह ध्रुव, कूटस्थ, अमृत, (तन्वा) अति विस्तृत ब्रह्माण्ड से भी कहीं बढ़ा हुआ है, (आ नि-सत्तः) सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान है । (स जड़े) वही समस्त संसार को पैदा करता है ।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दुशये कं मनो जविष्टं पुतयत्स्वन्तः ।

विश्वे देवाः समनसुः सकेतु एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५॥

भा०—इस देह में (दशये) दर्शन करने के लिये (ध्रुवं) स्थिर नित्य (ज्योतिः) ज्योति, सुख दुःखादि का प्रकाश करने वाला, स्वयं प्रकाश आत्मा (नि-हितं) स्थित है । जो (कम्) स्वयं सुखमय कर्त्तरूप है । और (पतयत्सु) गति करने वाले वा अपने २ स्थान पर अपनी वृत्तियों के स्वामी के समान वर्तने वाले अध्यक्षों के तुल्य इन प्राणों वा विषयों की ओर दौड़ते हुए इन्द्रियों के बीच में या उनके ऊपर घोड़ों पर सारथि के समान, (अन्तः) देह के ही भीतर (जविष्टं) अति वेग से युक्त (मनः) ज्ञान करने का साधन 'मन' भी स्थित है (विश्वे-देवाः) सब विषयों की कामना करने वाले इन्द्रियगण वा प्राण, (समनसः) मन के सहित मिलकर (सकेताः) ज्ञानयुक्त से होकर (एकम् क्रतुम् अभि) एक ही कर्ता आत्मा की ओरु (वि यन्ति) विशेष रूप से जाते हैं । वे स्वयं मन सहित होकर चेतनवत् देख, सुनकर भी उसी एक कर्ता आत्मा को प्राप्त होते हैं, उसी को अपना ज्ञान भी देते हैं । सब इन्द्रिय शुद्धक् २ होकर भी एक ही भोक्ता आत्मा को बतलाती हैं । “अस्ति

आत्मा दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ॥” न्यायसूत्र । ३ । २ । १ ॥ ये देव प्राणगण ही नर हैं उनका स्वामी जीवत्मा ही ‘वैधानर’ है ।

वि मे कर्णा पतयतो वि चन्तुर्बी॑दं ज्योतिर्हृदयं आहितं यत् ।

वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्वद्वृक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये॒६

भा०—(मे कर्णा वि पतयतः) मेरे दोनों कान विविध दिशाओं को जाते हैं, और (चक्षुः वि पतयति) आंख भी विविध प्रकार से जाती वा ये विविध प्रकार से स्वामिवत् स्वतन्त्र से होकर कार्य करते हैं, कान स्वयं सुनते और आंखें स्वयं देख लेती हैं । और (यत्) जो (ज्योतिः) सबका प्रकाशक और दीपक वा सूर्यवत् स्वयं प्रकाश स्वरूप (इदं) यह प्रत्यक्ष, अनुभववेद्य (हदये आहितम्) हृदय में रक्खा है, यह भी इस शरीर में (वि पतयति) विशेष रूप से स्वामी होकर शासन करता है । और (मे मनः) मेरा मनन करने वाला मन भी (दूरे आधीः) दूर २ देश के पदार्थों का भी निरन्तर ध्यान करता हुआ (वि चरति) विविध प्रकार से विचार करता है, तो फिर इस रहस्य के विषय में मैं (किं स्वद् वक्ष्यामि) वाणी द्वारा क्या और क्योंकर कहूँ, (किम् उ नु मनिष्ये) मैं क्या और क्योंकर मनन कर सकूँ ।

विश्वे॑ देवा अ॒नमस्यन्मिया॒नास्त्वाम॑ग्ने॒ तम॑सि॒ तस्थिवांसं॑म् ।

वैश्वा॒नरो॑ वतुत्ये॒ नो॑मत्त्व्यो॑ वतुत्ये॒ नः ॥ ७ ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! स्वप्रकाश, एवं अग्रणी ! (भियानाः) भय से व्याकुल (विश्वे देवाः) समस्त विषयाभिलाषी इन्द्रियगण (तमसि) अन्धकार में (तस्थिवांसम्) स्थित दीपक के समान चमकने वाले (त्वाम्) तुक्षको (अनमस्यन्) नमस्कार करते हैं, तेरी ही ओर झुकते हैं, तेरो शरण में आपते हैं । अर्थात् जैसे अन्धकार के समय सब लोग भयभीत होकर बनादि में अग्नि या दीपक

की शरण लेते हैं, अज्ञान दशा में गुरु की शरण लेते और प्रजाजन दस्यु आदि से भयभीत होकर प्रतापी पुरुष की शरण लेते, उसके आगे छुकते हैं उसी प्रकार ये इन्द्रियगण मानों मृत्यु या शक्तिरहितता से भय करके पुनः अपनी चेतना लेने के लिये आत्मा के ही शरण जाते हैं । (वैश्वानरः) समस्त प्राणों में स्थित, सब का सञ्चालक, सब मनुष्यों से विद्यमान वह आत्मा ही (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा करने के लिये हमें (अवतु) प्राप्त हो । वह (अमर्त्यः) अविनाशी आत्मा, ही (नः ऊतये नः अवतु) हमारी रक्षा के निमित्त हमें सदा प्राप्त है । (२) इसी प्रकार पापों से भयभीत विद्वान् जन सर्वं प्रभु परमात्मा को प्राप्त करें । वह अपनी रक्षा शक्ति से हमारी रक्षा करे । इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ४ अंगी
पाकः । २, ३, ६ निचृतित्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ७ प्राजापत्या वृहती ॥
सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पुरो वा मन्द्रं दिव्यं सुवृक्ष्मि प्रयुति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति ज्ञातवेदाः ॥१॥
भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (यज्ञे प्रयत्नि) प्रयत्न साध्य
सासंग, देवपूजा, और दान आदि सत्कर्म करने के अवसर में और (अ-
ध्वरे) हिंसादि से रहित प्रजापालन आदि कर्म में (वः) अपने और
अपने में से (मन्द्रं) स्तुति योग्य, (दिव्यं) ज्ञान में कुशल, तेजस्वी,
(अग्निम्) स्वयं प्रकाश, ज्ञानवान्, और अग्रणी पुरुष को (वः पुरः)
अपने आगे साक्षी रूप से (दधिध्वम्) स्थापित करो । उपासना काल में
प्रभु को सर्वसाक्षी उपास्य जानो, यज्ञादि कर्म में विद्वान् को पुरोहित
बनाओ और प्रजा-शासनादि कार्य में प्रतापी नायक को आगे प्रधान पद पर

स्थापित करो । (सः हि) वह निश्चय से (वि-भावा) विशेष कान्ति-युक्त, विशेष रूप से सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला (जात-वेदाः) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाला और ऐश्वर्यों का स्वामी है । वह (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से । (नः) हमारे (पुरः) समक्ष साक्षी होकर (सु-अध्वरा) उत्तम, अहिंसनीय, प्रजापालनादि सत्कार्यों का (करति) सम्पादन करे ।

तसु द्युमः पुर्वणीक होतुरग्ने श्रग्निभिर्मनुष इधानः ।

स्तोमं यमस्मै मूमतेंव शूपं धृतं न शुचि मृतयः पवन्ते ॥ २ ॥

भा०—हे (द्युमः) कान्तिमन् ! हे सूर्यवत् तेजस्विन् हे 'द्यु' अर्थात् पृथिवी और उत्तम कामना सद-व्यवहार आदि के स्वामिन् ! हे (पुर्वणीक) बहुत सी सेनाओं के स्वामिन् ! हे (पुरु-अनीक) बहुत सेमुखों वाले, बहुत मे वक्ता विद्वानों वा सैन्यों के स्वामिन् ! हे (होतः) अधीनों को अन्न वेतनादि देने वाले ! दातः ! हे (अग्ने) अग्नणी, स्वर्यप्रकाश ! शत्रु को दग्ध करने वाले प्रतापिन् ! तू (अग्निभिः) अग्निवत् तेजस्वी, अपने अंगों में नमने वाले, विनयशील भृत्यों, ज्ञानवान् विद्वानों द्वारा (इधानः) स्वयं अवयवों, वा प्रकाशों से अग्नि के समान, चमकता हुआ, (तस् उ स्तोमं) उस स्तुति-वचन को सुन वा स्तुत्यं पद उत्तम सैन्य बल को ग्रहण कर (यम्) जिस (शूपं) सुखकारी वचन को या शत्रुशोषक शुद्ध, पवित्र, धार्मिक बल को, (मृतयः) बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार (पवन्ते) स्वच्छ रूप से प्रकट करते हैं जिस प्रकार (ममता इव शूपं शुचि धृतं न) माता, या बुद्धिमती ऋषी, बलकारी, शुद्ध तेजस्कर दुग्ध, धृत, जलादि को स्वच्छ करती, प्रदान करती है ।

प्रीपायु स अवसुा मत्येषु यो श्रग्नये दुदाशा विप्र उक्थैः ।

चित्राभिस्तमूतिभिर्शिच्चत्रशोचिर्वजस्य स्राता गोमतो दधाति ॥ ३ ॥

भा०—(यः विप्रः) जो विद्वान् पुरुष (अग्नये) अग्नी और विद्वान् पुरुष को (उक्थैः) उत्तम आदर योग्य वचनों से अग्नि में आहुति के समान (ददाश) देने योग्य पदार्थ ज्ञानादि प्रदान करता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच में (पीपाय) वृद्धि को प्राप्त होता है । (चित्र-शोचिः) अनुत्त कान्ति वाला, तेजस्वी पुरुष (तम्) उस दानशील विद्वान् को (चित्राभिः ऊतिभिः) अनुत्त २ रक्षा साधनों से (पीपाय) बढ़ाता है और (गो-पतेः ब्रजस्य) गौओं वाले अर्थात् गो समूह के (साता) सेवनीय ऐश्वर्य के ऊपर (दधाति) उसको पुष्ट करता है, उसका उसे स्वामी बना देता है । प्रजाजन राजा को करादि देता है वह उसको अन्न सम्पदा से बढ़ाता है । उस प्रजाजन को वह तेजस्वी पुरुष उत्तम रक्षा-साधनों से बढ़ाता और गवादि पशु समृद्धि के बल पर या वाणी, शासनाज्ञा से युक्त गमनयोग्य न्याय मार्ग के (सातो) ठीक प्रकार से प्रदान करने पर पालता पोषता है । (२) जो शिष्य गुरु को उत्तम वचनों सहित अपने के आचार्य के अधीन सौंप देता है वह (श्रवसा) श्रवणीय ज्ञान से स्वर्य बढ़ाता है वह उसे नाना विद्याओं से बढ़ाता और वेद वाणियों वाले प्राप्त वेदमय साहित्य के अनुशासन में धारण करता है ।

आ यः पुप्रौ जायमान उर्वी दूरे दशा भासा कृष्णाध्वा ।

अर्धं बहु चित्तम् ऊर्म्यायास्तुरः शोचिष्ठा ददशे पावुकः ॥४॥

भा०—अग्नि वा सूर्य (दूरे-दशा भासा उर्वी आ प्रौ) दूर से दीखने वाली कान्ति से आकाश पृथिवी को पूर्ण कर देता है (अध ऊर्म्यायाः बहु चित् तमः शोचिष्ठा तिरः ददशे) और जिस प्रकार वह रात्रि के बहुत बहुत से अन्धकार को अपनी कान्ति से दूर कर देता है उसी प्रकार (कृष्ण-अध्वा) संसार-मार्ग पर सुख से जाने हारा, कृतकृत्य (यः) जो पुरुष (जायमानः) उदित होते सूर्य के समान प्रकट होकर अपने (दूरे-दशा भासा) दूरदर्शी ज्ञान प्रकाश से, (उर्वी) अपने माता पिता और

बड़े स्त्री पुरुषों को (आ पश्चौ) पूर्ण करता है, वह (पावकः) सबको पवित्र करने हारा, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (ऊर्म्याः) उत्तम ज्ञान सम्पादन करने में लग्न जनता के (बहु चित् तमः) बहुत से अज्ञान अन्धकार को (शोचिषा) ज्ञान दीपि से (तिरः दद्द्वे) दूर करके यथार्थ पदार्थ का दर्शन कराता है ।

नू नश्चित्रं पुरुचाजाभिरुती अग्ने उयिं मधवद्वयश्च धेहि ।

ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्तसुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥५॥

भा०—(ये) जो लोग (राधसा) धनैश्वर्य, ईश्वराराधन और कार्य साधन से और (श्रवसा) यश और ज्ञान से और (सु-कीर्येभिः च) उत्तम वीर्यवान् पुरुषों, बलयुक्त कार्यों और सामर्थ्यों से भी (जनान्) साधारण जनों से (अभि सन्ति) बहु जाते हैं, हे (अग्ने) अग्रणी नाथक ! ऐवं हे तेजस्विन् ! त उन (मधवद्वयः) दान करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्यों के स्वामियों से (च) भी (चित्रं रथिम्) आश्र्वयजनक ऐश्वर्य (पुरुचाजाभिः उत्ती) बहुत अज्ञ और बलवाली भूमियों, सेना और रक्षाकारी उपायों से (नः) हमें (धेहि) प्रदान कर और हमें पालन पोषण कर । अर्थात् राजा को चाहिये कि धनवानों के धनों से भूमियों और सेनाओं को पुष्ट करे और उन द्वारा सामान्य प्रजाओं का पालन और पोषण करने की व्यवस्था करे ।

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसुनो जुहुते हविष्मान् ।

भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्षिमवीर्वाजस्य गध्यस्य स्रातौ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (हविष्मान् उशन् आसानः जुहुते, अग्निः यज्ञं चनः दधाति) अज्ञ चह का स्वामी सुख कामना युक्त होकर अग्नि में हवि होमता और वह अग्नि यज्ञ और अज्ञादि हवि को स्वीकार करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नाथक तेजस्विन् ! (हविष्मान्) अज्ञादि देने योग्य कर आदि से युक्त प्रजाजन (आसानः) सुखपूर्वक राष्ट्र में

रहता हुआ, और (उशन्) तुझे चाहता हुआ और तुझ से शुभ आशाएँ चाहता हुआ (यं ते जहुते) जिस पदार्थ को तेरी वृद्धि के लिये देता है तू (इमं यज्ञं) इस दिये दान, और पूजा सत्कार को और (चनः) अक्षादि पदार्थ को (उशन् धाः) कामनावान् होकर ही धारण कर। तू (भरद्वाजेषु) ऐश्वर्यों, अर्द्धों और बलों, सैन्यों को धारण करने वाले प्रबल पुरुषों के आश्रय ही (सु-वृक्षिम्) राष्ट्र में उत्तम मार्ग और शत्रु सेना का सुख से वर्जन करने वाली शक्ति सेना को भी (दधिषे) धारण पालन कर। (गध्यस्य) सभी के चाहने योग्य ऐश्वर्य की (सातौ) संग्राम के बल पर प्राप्त करने वा प्रजाजनों में यथोचित रीति से विभाग कर देने के लिये (अवीः) रक्षा कर।

वि द्वेषांसीनुहि वृथ्येलां मदेम श्रतहिमाः सुवीराः ॥१७॥१२॥

भा०—हे राजन् ! हे स्वामिन् ! तू (द्वेषांसि) द्वेष के भावों को तथा द्वेष करने वाले शत्रुजनों को (वि इनुहि) दूर कर (इडां) हमारी अभिलाषा करने योग्य, भूमि और उत्तम वाणी को (वर्धय) बढ़ा और हम सब (सुवीराः) उत्तर वीर और उत्तम पुत्रादि से युक्त होकर (शत-हिमाः) सौ २ हेमन्तों, सौ सौ बरसों तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न होकर रहें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[११]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्विष्टुप् ।
४, ६ विराट्विष्टुप् । २ निचृत्पांक्तः । षड्ग्रं सूक्तम् ॥

यजस्व होतरिषितो यजीयानश्चे वाधो मुरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी वृत्याः ॥१॥

भा०—हे (होतः) देने हारे ! तू (यजीयन्) सबसे बड़ा देने हारा, और तू ही (इषितः) हमारे इच्छाओं का विषय, प्रिय है।

(इषितः सन्) हम लोगों से प्रेरित एवं प्राधित होकर है (अने) ज्ञानवन् ! तेजस्त्वन् ! तू (मृताम्) मनुष्यों के (बाधः) तुरे मार्ग से रोकने और (प्रयुक्ति) उत्तम कर्म में लगाने वाला ज्ञान-बल और कर्म-बल (यजस्त्व) प्रदान कर और वह बल हमें दे और (नः होत्राय) हमें देने और हमें अपने अधीन लेने के निमित्त ही (मित्रावरुणा) ज्ञेहवान् , प्रजा को मृत्यु से बचाने वाले श्रेष्ठ और दुष्टों का वारण करने वाले पुरुषों को और (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, एवं नासिका स्थान अर्थात् अग्रपद पर विराजने योग्य, (यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि के तुल्य सबको ज्ञान का प्रकाश और आश्रय तथा, जीवन अज्ञ देने वाले स्त्री पुरुषों को (आववृत्याः) सब प्रकार के कार्यों में आदर्श पूर्वक नियुक्त कर और पुनः उनको अपने कार्य में लगा ।

त्वं होता॑ मन्द्रतमो नो अध्युग्न्तर्देवो विदथा॒ मत्यैषु॑ ।
पावकया॑ जुह्वा॑ वहिं॑ रासाम्ने॑ यजस्व तन्वं॑ तव॒ स्वां॑ ॥३॥

भा०—इस देह की गृहस्थ से तुलना । जिस प्रकार (देवः) बलप्रद आत्मा अस्तिवत् (मर्त्येषु अन्तः अध्रुक्) मरणशील देहों के बीच में देहों का द्रोह या नाश न करता हुआ, (मन्द्रतमः) आनन्द जनक एवं स्फूर्ति जनक (वहिः) शरीर को वहन करने में समर्थ होकर (पावकया जुह्वा) पवित्रकारक, शरीरशोधक अज्ञ ग्रहण करने वाली शक्ति से (स्वां तन्वं यजते) अपने शरीर में यज्ञ करता है, उसी प्रकार है (अने) अग्नि के समान तेजस्त्वन् ! (त्वं) तू (होता) अज्ञादि का दाता, (मन्द्रतमः) अति स्तुत्य, एवं अपने अधीनों को हरित करता और स्वयं अति प्रसन्न रहता हुआ, (अध्रुक्) किसी से द्रोह न करता हुआ, (देवः) दानशील, तेजस्वी, सत्य ज्ञान का प्रकाशक होकर (मर्त्येषु विदथा अन्तः) मनुष्यों के बीच में, यज्ञ में (वहिः) गृहस्थ के भार को वहन करने में समर्थ होकर, (पावकया जुह्वा) अति पवित्र

करने वाली, आहुति अर्थात् वीर्णधान करने योग्य, वा प्रेमोपहारादि देने की पात्ररूप पत्नी के साथ तू (तव स्वां तनू यजस्व) अयने देह को संगत कर, अपना देह उससे मिलाकर पति पत्नी भाव से एक देह होकर रह, और (आसा) मुख अर्थात् वाणी द्वारा भी (यजस्व) उसको अपने साथ मिला । प्रेम प्रतिज्ञादि वचनों द्वारा मिला । (२) इसी प्रकार 'अग्निवत्' तेजस्वी नायक राजा, अद्वैती दाता सदा प्रसन्न प्रकृति हो, (पावकया ज्ञाता) दोष शोधक, देने योग्य, वाणी और मुख से अपने अपने देह के समान राष्ट्र रूप देह को प्राप्त कर ।

धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाजन्म गृणते यज्ञै ।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्धु विप्रो मधु छुन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥३॥

भा०—स्वयं वरण का प्रकार । (यद् ह) जब (विप्रः) विविध विद्याओं और ऐश्वर्यों में पूर्ण, बुद्धिमान् (रेभः) विद्वान् उत्तम वचनों को कहने वाला पुरुष (इष्टौ) यज्ञ में, वा सत्संग के निमित्त (मधु) मधु के समान मधुर, मनोहर ((छन्दः) अपनी स्वतन्त्र हृच्छा को (वदति) कहता है और (अङ्गिरसां मध्ये वेपिष्ठः) धंगारों के बीच में कम्पनशील अग्नि के समान विद्वानों के बीच में (वेपिष्ठः) सबसे उत्तम वेद मन्त्र, उपदेशादि का उच्चारण करता है, हे विवाह करने हारे पुरुष ! (यज्ञै) संगति लाभ करने के निमित्त (देवान्) कन्या के दान करने वालों, उसके पिता, भाई, माता आदि के तथा अन्य विद्वान् पुरुषों के ग्राति अपना (जन्म गृणते) जन्म काल तथा गोत्र, वंश आदि का उच्चारण करते हुए (त्वे) तुझे (धिषणा) गृहस्य धारण करने में समर्थ, और स्वयं पोषण योग्य (धन्या) धनैश्वर्य देने की योग्य पात्री, सौभाग्यवती स्त्री (चित् हि) भी (प्र वष्टि) अच्छी प्रकार कामना करे । (२) इसी प्रकार तेजस्वी पुरुषों से (वेपिष्ठः) शत्रुओं को कंपा देने वाला, आज्ञापक, मधुर

इच्छा को प्रकट करे, वीरों के प्रति अपना स्वरूप बतलावे तब पालने योग्य धन समृद्ध प्रजा उसको अपना पति, स्वामी बनाना चाहती है ।

अदिव्युत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्वि रोदसी उरुची ।

आयुं न यं नमसा रातहृव्या अञ्जनित सुप्रयस् पञ्च जनाः ॥४॥

भा०—अग्नि तुल्य वर का स्वरूप—जिस प्रकार अग्नि (वि-भावा) विशेष कान्ति से युक्त होता है, उसको (पञ्च-जनाः रात-हृव्या अञ्जनित) पांचों जन, काष्ठ आदि उसमें देकर प्रकाशित करते हैं उसी (यं) जिस वरणीय (सु-प्रयसम्) उत्तम प्रथलनशील उद्योगी को (पञ्च जनाः) पांचों प्रकार के जन (रात-हृव्या :) आदर पूर्वक स्वीकार करने योग्य पदार्थों को देकर (आयुं न) अभ्यागत अतिथि वा अपने प्रिय जीवन प्राण के तुल्य (नमसा) आदर पूर्वक नमस्कार और अज्ञादि सत्कार द्वारा (अञ्जनित) सुशोभित करते, और चाहते हैं, वह (अपाकः) अन्यों को सन्तापकारी न होता हुआ (सु अदिव्युत्तत्) अग्नि के तुल्य अच्छी प्रकार प्रकाशित हो । हे (अपने) तेजस्विन् ! तू (वि-भावा) विशेष कान्तियुक्त होकर (उरुची) बहुत आदरयुक्त (रोदसी) अपनी रुचि से तेरे समीप आने वाली पत्नी के साथ (यजस्व) संगति लाभ कर । लोक रीति से वर के लाल कपड़े उसकी अग्नि की तुल्यता को बतलाते हैं । अग्नि, 'काम' और वीर्य वा तेज का प्रतिनिधि है । (२) इसी प्रकार जिसको पांचों जन आदर करें वह तेजस्वी प्रजा को सन्ताप न देता हुआ चमके, (रोदसी) विस्तृत राज प्रजावर्गों को प्राप्त करे । 'रोदसी'—रुद्रस्य पत्नी, 'रुद्रः', रुचा कान्त्या द्रवति आगच्छति ।

वृजे हु यज्ञमसा वृहिंश्चावयामि स्तुगृहृतवर्ती सुवृक्षिः ।

अम्यक्षि सज्ज सद्वने पुरिद्वया अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५॥

भा०—गृहस्थ यज्ञ का वर्णन । गृहाश्रम की यज्ञ से तुलना । जिस

प्रकार (नमसा वर्हिः वृजे) कुशादि अन्त के साथ यज्ञ में भी काटकर वेदी पर लाया और विछाया जाता है, और (सुवृक्तिः धृतवती सुक् अयामि) उत्तम रीति से त्यागने योग्य धीसे भरी सुक्, वहती धार वा सुक् नाम पात्र अस्ति में थामा जाता है तब (यज्ञः अश्रायि) यज्ञ वेदि में स्थिर होता है, उसी प्रकार (यत्) जिस समय (अप्नौ) अस्तिवत् तेजस्वी, विनय-शील, अप्रनायक पुरुष के निमित्त (नमसा) उत्तम अन्त और विनय नमस्कारादि सत्कार द्वारा (वर्हिः) उसको आदर बढ़ाने वाला, आसन (वृजे ह) दिया जाता है, तब (सुवृक्तिः) उत्तम गति वाली उत्तम रीति से पति का वरण करने वाली, या सुखपूर्वक पिता द्वारा वरके हाथों में देने योग्य (धृतवती) धृत के समान स्नेह से युक्त वा देहपर धृत का अभ्यंग किये, वा तेजस्विनी, अर्घ्य, पात्र, जलादि से युक्त, सुन्दर सजी वधू (अयामि) विवाह द्वारा बंधती है, विवाही जाती है । वह (सर्व) अपने आश्रय रूप पति वा पति के गृह को भी (अम्यक्षि) प्राप्त होती है, और उसी समय (यज्ञः) पत्नी के साथ संगति लाभ करने वाला, उसको धन वीर्यादि का दाता पुरुष भी (पृथिव्याः सदने स्वामी इव) पृथिवी के गृह में स्वामी के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के तुल्य स्त्रो को (सदने) प्राप्त कराने वाले गृहाश्रम में (सूर्य-चक्षुः न) सूर्य के प्रकाश से युक्त चक्षु के समान (अश्रायि) स्थित होता है । वधू पति को अपना गृह समझ उस पर आश्रय करे और पुरुष उसको योग्य भूमि जान उसी को अपना गृह जाने, उसमें आश्रय ले, दोनों एक दूसरे के लिये प्रकाश और चक्षु के समान उपकार्य उपकारक, प्रकाश्य प्रकाशक और द्रष्टा और दर्शक हों ।

दृश्यस्या नः पुर्वणीक होतद्वेभिरस्ते श्रुतिभिरिधानः ।

रायः सूनो सहस्रो वावसाना अतिं स्वसेम वृजन्नं नांहः॥६॥१३॥

भा०—हे (पुर्वणीक) बहुत सी कान्तियों या शोभाओं से युक्त

मुख वाले ! सुमुख ! हे (होतः) वधू को अन्न, धन, वस्त्रादि देने, और कन्या को स्वयं स्वीकार करने हारे ! हे (अग्ने) अग्नि के समान कान्तिमान ! तू (अग्निभिः) अग्नि के समान उज्ज्वल (देवेभिः) किरणों से सूर्य के समान उत्तम गुणों से (इधानः) प्रकाशित होता हुआ (नः) हमें (रायः) दान देने योग्य ऐश्वर्य (दशस्य) प्रदान कर । हे (सहसः-सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! एवं बल के उत्पादक ! (वावसानाः) अपने को अच्छी प्रकार कवच, वस्त्रादि से आच्छादित करते, वा बचाते हुए सुरक्षित रूप से हम (वृजनं न) वर्जन करने योग्य शत्रु वा गन्तव्य मार्ग के समान ही (अंहः) पाप की भी (अति स्लसेम) पार कर जावें । उसी प्रकार अग्रणी नायक तेजस्वी, विजयेच्छु पुरुषों सहित देदीस होकर हम प्रजाजनों को ऐश्वर्य दे, हम कवचादि से अच्छादित होकर पापवत् शत्रु को पार करें । बहुत से सैन्यों का स्वामी 'पुर्वणीक' है । इति व्रयोदशो वर्गः ॥

[१२]

भरद्वाजे वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ अन्दः—१ विष्टप् । २ निचृत-
विष्टप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ षड्चं सूक्तम् ॥
मध्ये होता दुरोणे बृहिंषो रात्र्यस्तोदस्य रोदसी यजाध्यै ।
अथं स सूनुः सहस ऋताचा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१॥

भा०—अग्नि के दृष्टान्त से राजा और गृहपति विद्वान् का वर्णन । जिस प्रकार (यजाध्यै बृहिः पंक्तिः मध्ये बलस्य सूनुः रात्र्यस्तोदस्य रोदसी सूर्यः न ततान) यज्ञ के निमित्त विछेकुशामय आस्तरणों के बीच में बल द्वारा उत्पन्न चमकने वाला अग्नि गृह में सूर्य के समान अपना प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक, एवं विद्वान् (रोदसी यजाध्यै) स्त्री पुरुषों और राजा प्रजा वर्गों को परस्पर संगत करने के लिये स्वयं (होता) दानशील होकर (तोदस्य) शत्रुजनों को और पीड़ादायी

(बहिंषः मध्ये) वृद्धिशील बिछे, कुशामय आस्त्रणादि के बीच में (दुरोणे) अन्य प्रतिस्पर्धियों से न प्राप्त न होने योग्य उत्तम आसन वा पद पर या दुर्ग में स्थित होकर (सः) वह (राद्) तेजस्वी सम्राट् (सहसः सूनुः) शत्रु पर भयकारी मैन्य का सञ्चालक और (ऋतावा) सत्य न्याय का पालक होकर (दूरात्) दूर से ही (सूर्यः न) सूर्य के समान (शोचिषा ततान) अपनी कान्ति से अपने राज्य को फैलावे ।

आ यस्मिन्त्वे स्वपके यजत्र यज्ञद्राजन्त्सुर्वतातेव तु यौः ।
त्रिष्पृथस्तत्रुष्पो न जंहो हृव्या मधानि मानुषा यज्ञध्यै ॥२॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील, हे पूज्य ! सत्संग योग्य विद्वन् ! हे (राजन्) राजन् ! (सर्वताता) सर्वहितकारी (यौः) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष और सुखदात्री भूमि (अपाके) अपरिपक्व वृद्धि बल वाले (त्वे यस्मिन्) जिस तुझे (हृव्या मधानि) उत्तम २ प्रहण योग्य नाना (मानुषा) मनुष्यों के उपकारक ऐश्वर्य (आ दक्षन्) प्रदान करती है और तुझे बलवान् बनाती है वह तू (त्रिसधस्थः) तीन सभाओं में स्थित होकर (तत्-रूपः) सबको संकटों से तारने वाले सूर्य के समान (जंहः) सर्वत्र वेग से जाता हुआ (मानुषा मधानि हृव्या यज्ञध्यै यक्षत्) मनुष्यों के हितकर ऐश्वर्यों और नाना खाद्य अन्नों को देने के लिये यज्ञ किया कर ।

तेजिष्ठा यस्यारुतिर्वैने राद् तोदो अध्वन्नवृधसानो अऽयौत् ।
शुद्गुद्घो न द्रविता चैतति त्मन्नमत्येष्वर्त्र ओषधीषु ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि का (अरतिः तेजिष्ठा) बन या जंगल में लगाना ही अति तीक्ष्ण है और जैसे अग्नि (अध्वन् न तोदः) हण्टर के समान मार्ग में बढ़ता है उसी प्रकार (यस्य) जिसका (अरतिः) आगमन ही (तेजिष्ठा) अति तेज वा प्रभाव से युक्त और जो (राद्) स्वयं तेजस्वी

सन्नाट् होकर (तोदः) पशुओं पर चाबुक के समान (अध्वन्) मार्ग में (वृधसानः) चलने वाले प्रजाजनों को आगे बढ़ाने वाला, उनको उन्नति पथ पर लेजाने हारा होकर (अद्यौत्) चमकता है, वह (अद्रोऽः) प्रजा का द्रोह न करने हारा होकर (त्मन्) अपने आप में ही स्वतः (द्रविता न) वेग से जाते रथ के समान वेगवान् होकर (ओषधीपु) ओषधियों में अग्निवत् प्रजाओं में (अवर्णः) किसी से निवारण न किया जाकर (चेतति) सबको चेताता है ।

सास्माकेभिरेतरी न शूषैरुग्मिः ष्ठैर्व दम् आ ज्ञातवैदाः ।
द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोचाः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥ ४ ॥

भा०—(एतरि दमे न) आने वा प्रवेश करने योग्य गृह में जिस प्रकार (अग्निः स्तवे) सबसे प्रथम अग्नि रख यज्ञ किया जाता है वा (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर से मङ्गल प्रार्थना की जाती है उसी प्रकार (जात-वैदाः) ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्नि पुरुष की भी (अस्माकेभिः) हमारे (शूषैः) बल और सुखकारी वचनों से (स्तवे) स्तुति योग्य (दमे) दमन या शासन कार्य में प्रशंसनीय हो । (द्रवन्नः क्रत्वा यज्ञैः जारयायि) काष्ठों को अग्नि के समान खाने वाला अग्नि जिस प्रकार उत्तम यज्ञ और यज्ञांगों से स्तुति किया जाता है, और (अर्वा न क्रत्वा) और जिस प्रकार वेगवती किया के कारण अश्व प्रशंसनीय होता है, और जिस प्रकार (पिता इव) पिता के समान उत्तम सन्तान का उत्पादक नर उत्तम सन्तानों के कारण प्रशंसनीय होता है उसी प्रकार राजा वा गृहपति (हु-अग्नः) वनस्पतियों के फल पत्रादि और अग्नि का भोग करता हुआ (क्रत्वा) कियाशीलता और बुद्धि के द्वारा (उसः वन्वन्) भूमियों, दाराओं और वाणियों का सेवन करता हुआ (पिता इव) पालक पिता के समान ही (यज्ञैः) उत्तम सत्संगों, दानों और सत्कारों आदि से (जारयायि) स्तुति किया जाता है ।

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तज्जदनुयाति पृथ्वीम् ।
सुधो यः स्यन्द्रो विषितो धर्वीयानुणो न तायुराति धन्वा राद्॥५॥

भा०—यह अग्नि या विद्युत् (यत् भासः तक्षत्) जिन दीसियों को पैदा करता है और जो यह (पृथ्वीम् अनुयाति) विद्युत् भूमि की ओर वेग से चला जाता है लोग (अस्य भासः पनयन्ति) इसकी दीसियों की प्रशंसा करते हैं और जिस प्रकार अग्नि, विद्युत् (स्यन्द्रः) जलवत् (विषितः) बन्धनयुक्त होकर बहने वाला, गतिशील, (धर्वीयान्) शरीर को स्पर्श करते ही कंपा देने वाला, (तायुः न ऋणः) चोर के समान चुप चाप निकल भागने वाला, (धन्वा अति राद्) अन्तरिक्ष में खूब चमकता है। उसी प्रकार यह राजा (यत् भासः वृथा तक्षत्) जब तेज अनायास उत्पन्न कर लेता है और तो भी (पृथ्वीम् अनुयाति) पृथ्वी अर्थात् देशवासिनी प्रजा का ही अनुगमन करता है, (अध) तब लोग (अस्य) इसके (भासः) तेजों का नित्यों या चमकते गुणों की (पनयन्ति) प्रशंसा किया करते हैं। (यः) जो राजा (स्यन्द्रः) वेग से रथादि से जाने में कुशल, (विसितः) स्वतः बन्धन से मुक्त या विशेष राज नियमों से बद्ध, (धर्वीयान्) शत्रुओं को कंपा देने वाला वा प्रजा या पृथ्वी रूप पत्नी का सबसे उत्तम पति होकर भी (तायुः न) चोर के समान अलक्षित भाव से पृथ्वी का भोग वा प्रजा का वर्धन करने वाला होकर (धन्वा) धनुष के बल से (अति राद्) सब से अधिक तेजस्वी राजा होकर चमकता है।

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरस्मे श्रुग्निभिरिधानः ।
वेष्वि रायो वि यासि दुच्छुन्ना मदैम शृतहिमाः सुवीराः ॥६॥१४॥

भा०—हे (अर्वन्) शत्रुओं के नाश करने हारे ! हे अश्व के समान नियुक्त होकर राष्ट्र-रथ के सज्जालक ! महारथिन् ! धुरन्धर ! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! परंतप ! (अग्निभिः) आगे जाने वाले नाना नायकों, किरणों वा ज्वालाओं से सूर्य वा अग्नि के समान

(इधानः) खूब देदीप्यमान होकर, (त्वं) तू (निदायाः) निन्दित प्रजा वा निन्दा से (नः) हम लोगों को (वेषि)दूर रख । (नः रायः वेषि) हमारे उत्तम ऐश्वर्यों, धनों की कामना कर, वा उनकी निन्दित जनता वा निन्दित किया से नष्ट होने से (वेषि) रक्षा कर । तू (दुच्छुनाः) दुःख-दायी कुत्ते के समान काटने वाली, वा सुख की नाशक परसेनाओं, वा दुरी जनताओं को (वि यासि) विशेष रूप से चढ़ाइ कर, विविध प्रकार से नाश कर, जिससे हम (सुवीराः) उत्तम वीरों और सन्तानों सहित (शतहिमाः मदेम) सौ २ वर्ष की आयु वाले होकर आनन्द से जीवन व्यतीत करें । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१३]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २ स्वराट्-
पंक्तिः । ३, ४ विराट्त्रिष्ठुप् । ५, ६ निचृत्तिष्ठुप् ॥ पठ्यं सूक्तम् ॥
त्वद्विश्वा सुभग् सौभग्नान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
शुष्णी रुयिर्वाजो वृत्ततूर्ये द्विवो वृष्टिरीड्यो र्तीतिरुपाम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा विद्युत् से (विश्वा सौभग्नानि) समस्त सुखजनक ऐश्वर्य (वनिनः न वयाः) वृक्ष से शाखाओं के तुल्य उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार हे (सुभग) उत्तम, ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (विश्वा सौभग्नानि) समस्त सौभग्य (वनिनः वयाः न) वृक्ष से शाखाओं के समान (वियन्ति) विविध प्रकार से निकलते हैं । अथवा—(वयाः न) पक्षी जिस प्रकार (वनिनः) समस्त सुखों को वृक्ष से (वियन्ति) प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (वनिनः त्वत्) ऐश्वर्यवन् तुक्ष से ही (वयाः) तेरे शाखा के समान राष्ट्र के सब भाग (विश्वा सौभग्नानि) समस्त सौभग्य सुख (वि यन्ति) विशेष रूप से वा विविध प्रकार से प्राप्त करते हैं । जिस प्रकार (श्रुष्टिः रयिः वृत्ततूर्ये

दिवः वृष्टिः अपां रीतिः अद्यः वनिनः च) अज, देह, मेघ, विद्युत्, वृष्टि और जलों की धारा आदि सब ही तेजस्वी सूर्य और विद्युत् से ही उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार हे राजन् ! (श्रुष्टिः) अज समृद्धि, (रायः) ऐश्वर्य, सम्पदा, (वृत्रतूर्ये) शत्रु के नाश करने के निमित्त (वाजः) बल, सैन्य आदि (वृष्टिः) शत्रु-वर्षण और प्रजा पर समस्त सुखों की वृष्टि और (अपां रीतिः) आप सुरुप्तों का आगमन, प्रजाओं का सन्मार्ग में चलना और राष्ट्र में जल धाराओं, नहरों का बहना, आदि सब (दिवः त्वत्). सर्व कामना योग्य, सूर्यवत् तेजस्वी तुक्ष से ही उत्पन्न होता है ।

त्वं भगो नु आ हि रत्नमिषे परिञ्मेव क्षयसि दस्मवचार्याः ।

अग्ने मित्रो न वृहत् ऋतस्यासि कृत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (रत्नम् इषे) सुन्दर प्रकाश को दूर तक केकता, वा देता है, (परिञ्मा इव दस्मवचार्याः क्षयति) वायु या प्राण के समान क्षीण तेज होकर वा अज को देह में क्षय करता हुआ जाठराग्नि रूप से निवास करता है । (ऋतस्य मित्रः) और जल को मित्रवत् ये ह से चाहता है, (भूरेः कृत्ता) बहुत से सुख का दाता है उसी प्रकार हे (अद्य) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! राजन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (भगः) स्वयं ऐश्वर्य-वान् सेवने योग्य होकर (नः) हमारे लिये (रत्नम्) रमणीय ऐश्वर्य को (आ इषे हि) सब और से देता, चाहता वा प्राप्त करता है । तू (दस्मवचार्याः) शत्रुओं के नाशकारी तेज से युक्त होकर (परिञ्मा इव) सर्वत्रगामी वायुवत् (परिञ्मा) भूमि पर जासक होकर (क्षयसि) शत्रु का नाश करता और प्रजा को बसाता है । और तू (मित्रः न) मरण या नाश होने से बचाने वाला सूर्यवत् (वृहतः ऋतस्य) बड़े भारी न्याय, सत्य ज्ञान रूप प्रकाश का (कृत्ता असि) देने वाला हो । और हे विद्वन् ! तेजस्विन् ! दातः ! तू (भूरेः वामस्य) बहुत से सुन्दर संभोग्य ऐश्वर्य का भी (कृत्ता असि) देने वाला हो ।

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि प्रणर्भिर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोपा नप्तापां हिनोषि ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य रूप अग्नि (सत्पतिः) जलों का स्वामी होकर (शवसा वाजम् वि भर्त्ति) जल से अन्न का पोषण करता है, (ऋत-जातः) वह अज्ञों को उत्पक्ष करके (अपां नप्ता) जलों को आकाश से न गिरने देने वाले जलवाहक मेघ द्वारा ही बढ़ाता है उसी प्रकार है (अग्ने) है (प्रचेतः) प्रकृष्ट, उत्तम ज्ञानवन् ! हे विद्वन् ! हे उत्तम धन के संग्रहीता राजन् ! तू (ऋत-जातः) ज्ञान और ऐश्वर्य में प्रसिद्ध होकर (राया) ऐश्वर्य से और (अपां नप्ता) आसजनों, प्रजाओं के सुप्रबन्ध करने वाले, वा उनको सन्मार्ग से न गिरने देने वाले विद्वानों तथा जलधाराओं को बांधने वाले शिल्पीजन से (सजोपाः) प्रेमपूर्वक मिलकर (यं हिनोषि) तू जिसको बढ़ा देता है वह है सूर्य वा अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (सत्पतिः) सज्जनों का पालक, होकर (शवसा) बल से (वृत्रम् हन्ति) विभक्तारी और बढ़ते हुए शत्रु को नाश कर। और (विप्रः) विद्वान् मेधावी जिस प्रकार (पणः वाजम् शवसा वि भर्त्ति) स्तुत्य, पाठशाल शिष्य के ज्ञान को अपने ज्ञान से बढ़ाता है उसी प्रकार तू भी (विप्रः) राष्ट्र को विविध ऐन्नयों से पूर्ण करने हारा (पणः) व्यवहारशील वैश्य जन के (वाजम्) ऐश्वर्य को (वि भर्त्ति) विविध प्रकारों से पूर्ण करता, समृद्ध करता है ।

यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तुं निशितिं ब्रेद्यानंद् ।

विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धुते धून्यं पत्यते वसुव्यैः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुंछ ! हे बलशाली सैन्य के सञ्चालक ! (यः) जो (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियों से (उक्थैः) उत्तम वचनों से, (यज्ञैः) उत्तम सत्संगों और सत्कारों से (वेद्या) वेदिवत् पृथिवी से (निशितिम्) अग्नि के समान तेरी तीक्ष्णता को

(आनट्) प्राप्त करता वा तुक्षे करता है (वः) वह हे (देव) दातः, हे तेजस्त्वन् ! हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! (सः) वह (विश्वं वारम् प्रति-धन्ते) समस्त वरण योग्य धन को धारण करता, और (विश्वं वारं प्रति-धन्ते) सब निवारणीय शत्रु सैन्य का मुकाबला करता और (वारं प्रति-धन्ते) शत्रु वारक सैन्य बल को प्रतिक्षण धारण करता है। और वह (वसव्यैः) ऐश्वर्यों से (पत्यते) बलधारी स्वामी हो जाता है।

ता नृभ्यु आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुण्यसे धाः ।

कृणोपि यच्छ्रवसा भूरि पश्चो वयो वृकायारये जसुरये ॥५॥

भा०—(यत्) जो तू (शवसा) अपने बल से (वृकाय) भेड़िये वा चौर के समान (जसुरये) प्रजा के नाशकारी (अरये) शत्रु को पकड़ने और नाश करने के लिये (भूरि) बहुत भारी (पश्चः वयः) अश्व आदि पशु वा द्रष्टा, अध्यक्ष का बल (कृणोपि) सम्पादन करता है। वह तू हे (अग्ने) अग्निवन् तेजस्त्वन् ! हे (सहसः सूनो) शत्रुपराजयकारी, बलवान् वीर पुरुष के पुत्र ! हे बलवान् क्षत्रबल सैन्य के सज्जालक ! तू (नृभ्यः) उत्तम नेता पुरुषों और प्रजाजनों के हितार्थ (ता) वे वे नाना (सौश्रवसा) उत्तम २ अज्ञ, कीर्ति आदि से युक्त (सुवीरा) उत्तम पुत्र, वीर भूत्यादि से सम्पन्न ऐश्वर्य (पुण्यसे) राष्ट्र को परिपुष्ट करने के लिये (धाः) धारण कर।

वृद्धा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।

विश्वाभिर्गुर्भिरुमि पुर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥१५

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्त्वन् ! हे (सहसः सूनो) सैन्य बल के सज्जालक ! तू (विहायाः) महान् होकर (नः) हमारा (वृद्धा) उपदेष्टा हो। और (नः) हमें (वाजि) अज्ञ, बल, ऐश्वर्यादि सम्पन्न धन तथा (तोकं) वंश को बढ़ाने और दुःख के नाश करने वाले

पुत्र तथा (तनयम्) पौत्र सन्तान (दाः) दे । अथवा—[वाजिनः इत्येकं पदम्] हममें से अन्न ऐश्वर्यादि से युक्त बलवान् जन को पुत्र पौत्रादि दे । वा हमें (वाजिनः) ज्ञानी और बलवान् नाना पुरुष तथा पुत्र सन्तान प्रदान कर । मैं (विश्वाभिः गीर्भिः) समस्त उत्तम वाणियों से (पूर्तिम् अभि अश्याम्) पूर्णता को प्राप्त करूँ । हम सब (सुवीराः) उत्तम वीर होकर (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द लाभ करें । हति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१४]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ अन्दः—१, ३ भुरिगुण्डिक् । २ निचूत्विष्टुप् । ४ अनुष्टुप् । ५ विराङ्गुष्टुप् । ६ भुरिगतिजगती ॥ पठुन्तं सूक्तम् ॥

**अग्ना यो मत्यै दुवो धियै जुजोष धीतिभिः ।
भस्तु ष प्र पूर्व्य इष्वं बुरीतावसे ॥ १ ॥**

भा०—(यः मर्त्यः) जो मनुष्य (धीतिभिः) उत्तम कर्मों से और अपने कर्म करने के अंगों से और धाराओं वा अध्ययनों से (अग्नौ) ज्ञानी मार्ग नेता पुरुष के अधीन रहकर (दुवः) उपासना या सेवा करता और (धियै जुजोष) उत्तम कर्म का आचरण और उत्तम ज्ञान का अभ्यास करता है (सः तु) वह शीघ्र ही (पूर्व्यः) पूर्व विद्यमान अपने से बड़े ज्ञानी गुरुजनों का हितैषी और उनकी विद्या से सुभूषित होकर (प्रभस् २) खब चमक जाता है । और वह (अवसे) अपने जीवन रक्षा करने के लिये (इष्वं) उत्तम अन्न और बल भी (बुरील) प्राप्त करता है ।

अग्निरिद्वि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम् ऋषिः ।

अग्नि होतारमीळते युज्ञेषु मनुष्यो विश्वः ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् अग्नि का रूप ! (अग्निः इति हि) वह अग्नि ही है जो (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान से युक्त और अन्यों को उत्तम ज्ञान से

ज्ञानवान् करता तथा स्वयं उदार हृदय वाला है । (अस्मिः) वह 'अस्मि' कहाने योग्य है जो (ऋषिः) सत्य यथार्थ ज्ञान का दर्शन करने हारा और (वेदस्तमः) सबसे अधिक बुद्धिमान् एवं कर्म करने और विद्यान्, निर्माण करने में कुशल है ।

नाना ह्य॑ ग्रेऽव॑से स्पर्धन्ते रायौ अ॒र्यः ।

तृव॑न्तो दस्यु॑मायवो व्र॑तैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (बाना) बहुत से (आयवः) लोग (व्रतैः) अपने उत्तम कर्मों से (अव्रतम्) कर्महीन, ब्रतादि रहित (दस्युम्) प्रजानाशक पुरुष को (सीक्षन्तः) पराजित करते और (तृव॑न्तः) उसका नाश करते हुए (अर्यः रायः अवसे) शत्रु के धन की प्राप्ति, और स्वामी के धन की रक्षा करने के लिये (स्पर्धन्ते) स्पर्धा करते हैं । अथवा (रायः अवसे स्पर्धन्ते त्वं तेषामर्यः) जो धन के प्राप्ति करने के लिये स्पर्धा करते हैं तू उनका स्वामी हो ।

अ॒ग्निरूप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।

यस्य॑ त्रसन्ति शव॑सः सञ्चक्षि॑ शत्र॑वो भिया ॥ ४ ॥

भा०—तेजस्वी नायक क्या प्रस्तुत करता है ? (अस्मिः) अस्मि, विद्युत् आग्नेय अस्त्रादि द्वारा सुसज्जित नायक हमें (अप्साम्) समस्त प्रजाओं के तथा उत्तम कर्मों को (वीरं) विशेष रूप से उत्साहित करने और स्वयं करने वाला, वीर (ऋतीषहं) शत्रुओं के पराजय करने वाला, ऐसा (सत्पतिम्) सज्जनों का पालक पुरुष (ददाति) देता है (यस्य शवसा) जिसके बल से (शत्रवः त्रसन्ति) शत्रु लोग भय खाते रहते हैं और (सञ्चक्षि) अच्छी प्रकार देखते रहने पर उसके समक्ष (भिया) भय से कांपते रहते हैं ।

अ॒ग्निर्हि॑ विज्ञाना निदो देवो मर्तै॒मुरुष्यति॑ ।

सृहावा॑ यस्याव॑तो रूर्यिर्व॑ज्जुष्व॑वृतः ॥ ५ ॥

भा०—(अस्मि: हि) अग्रणी नायक या ज्ञानवान् पुरुष ही (देवः) तेजस्वी होकर (विग्रहा) ज्ञान के बल से (निदः) निन्दकों का (सहावा) पराजय करता हुआ (मर्त्तम्) मनुष्यमात्र की (उस्त्यति) रक्षा करता है । वह स्वयं (अवृतः) विना किसी के वरण किये हुए या विना कुछ चेष्टा किये भी (यस्य) जिसके (रथिः) ऐश्वर्य और बल (वाजेषु अवृतः) संग्राम करने के अवसरों पर छुपा नहीं रहता ।

अच्छाऽनो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्ति सुक्षित दिवो नृन्दिष्यो अंहांसि दुरिता तरेम्
ता तरेम् तवावसा तरेम् ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २ । मन्त्र ११ ॥ हे (मित्रमहः अग्ने) मित्रों के पूजने योग्य ! हे मित्रों द्वारा आदृत ! हे बड़े २ मित्रों वाले, स्त्रेहवान् पुरुषों के तुल्य महान्, हे (देव) दानशील ! ज्ञानवान् नायक ! तू (नः देवम् अच्छ रोदस्योः सुमतिं वोचः) हम उत्तम वा तुक्षे चाहने वाले, हमें और सूर्य पृथिवी के तुल्य परस्पर उपकारबद्ध गृहस्थ श्री पुरुषों वा राजा प्रजावर्गों के योग्य शुभ ज्ञान उपदेश कर । (स्वस्ति) कल्याणकारी (सुक्षितिं) उत्तम निवास वा उत्तम भूमि को (वीहि) प्राप्त कर, उसे चाह और प्रकाशित वा उपभोग कर (दिवः नन्) कामना करने वाले पुरुषों को चाह । (द्विषः अंहांसि, दुरिता तरेम्) हम शत्रुओं को, पापों को, और दुष्टाचरणों को लांघ जाएं, (ता) उन नाना पदार्थों से पार हो जावें, (तव अवसा) तेरे ज्ञान, रक्षा और कामना से हम (तरेम्) तर जावें । इति योडशो वर्गः ॥

[१५]

भरद्वाजो वार्हस्पत्यो वीतदव्यो वा ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, २, ५
निचृजगती । ३ निचृदतिजगती । ७ जगती । ८ विराङ्गजगती । ४, १४

मुरिक् त्रिष्टुप् । ६, १०, ११, १६, १६ त्रिष्टुप् । १३ विराट् त्रिष्टुप् । ६
निचृदतिशकरी । १२ पंक्तिः । १५ ब्राह्मी वृहती । १७ विराङ्गनुष्टुप् । १८
स्वराङ्गनुष्टुप् ॥ अष्टादशर्च सूक्तम् ॥

इमम् पु वो अतिथिसुपर्वुर्धं विश्वासां विशां पतिमृज्जसे गिरा ।
वेतीद्विवो जनुषा कच्छिदा शुचिज्यर्योह चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (वः) अपने लोगों में से जो (दिवः) ज्ञान प्रकाश के कारण (जनुषा) स्वभाव से (शुचिः) शुद्ध पवित्र है जो (स्वयं गर्भः) विद्यादि प्रहण करने में समर्थ होकर (अच्युतम्) अविनाशी, स्थिर नित्य वेद ज्ञान को (आ अति) सब प्रकार से भोगता है, और (वेति इत) स्वयं विद्या से चमकता है (इमम्) उस (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य, (उषः-द्वधम्) प्रातःकाल स्वयं जागने वाले, यज्ञाभिवृत् वा सूर्यवत् तेजस्वी, अन्यों को प्रभात, वा जीवन के प्रभात वेला बाल्य और कौमार दशा में ज्ञान द्वारा प्रबुद्ध करता है उस (विश्वासां विशाम्) आश्रम में प्रविष्ट समस्त शिष्यों को (पतिम्) प्रजावत् पालन करने वाले गुरु की (गिरा ऋज्जसे) विनीत वाणी से सेवा किया कर। अध्यात्म में 'अच्युत', 'वीतहच्य' जीव है। उसको अपने में ले लेने हारा तेजोमय अग्नि 'प्रभु' है। उसकी वाणी से स्तुति कर।

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वन्सपत्नीङ्यमुर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहृव्ये अङ्गुत् प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥ २ ॥

भा०—(ऊर्ध्वशोचिषम्) अग्नि के समान ऊपर उठती कन्ति वाले (ईव्यम्) पूज्य, वाणी उपदेश के योग्य, विद्या के इच्छुक पुरुष को (वनस्पतौ) सूर्यवत् विद्यायाचक, विद्यार्थी जनों के पालक आचार्य के अधीन रहते हुए नाना (भृगवः) वेद वाणियों को धारण करने वाले (यम्) जिसको (सुधितं दधुः) उत्तम रूप से सुरक्षित रखते हैं (सः

त्वं) वह आप है (अद्भुत) महाशय ! (वीतहृष्ये) दान करने और आदर से ग्रहण करने योग्य ज्ञान के देने वाले गुरु के अधीन ही (सुप्रीतः) अति प्रसन्न होकर (प्रशस्तिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओं और उपदेश वचनों से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (महयसे) पूजा आदर वचनों को प्राप्त हो । ऐश्वर्यों का पालक पद 'वनस्पति' उस पर पूज्य तेजस्वी पुरुष भी (भृगवः) गो रक्षक और बाणों के धारण करने वाले विद्वान् और भूमि के धारक सामन्तजन जिसकी पुष्टि रक्षा करते हैं वह तू महान् ! सुप्रसन्न होकर उत्तम शासनों से दिनों दिन आदर को प्राप्त कर । स त्वं दक्षस्यावृको वृथो भूरर्युः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
रायः सूनो सहस्रो मर्त्येष्वा छुर्दिंयच्छ वीतहृष्याय सुप्रथो भर-
द्वाजाय सुप्रथः ॥ ३ ॥

भा०—(सहसः सूनो) बलवान्, सहनशील तपस्वी पुरुष के पुत्र-वत् (सः त्वं) वह तू (दक्षस्य) बल, तेज और कर्म सामर्थ्य को (वृथः) बढ़ाने हारा और (अन्तरस्य) भीतर के (परस्य तरुषः) हिंसाकारी काम आदि अन्तः शत्रु का भी (अर्यः) अभ्यन्तर स्वामी (भूः) हो । तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (वीतहृष्याय) अपने देय भाग के स्वतः देने वाले प्रजाजन के हितार्थ (सप्रथः) अति विस्तृत (छुर्दिंयच्छ) गृह, शरण प्रदान कर । हस्ती प्रकार (भरद्वाजाय) वाज, ज्ञान, ऐश्वर्य के धरने और ला २ कर संग्रह करने वाले पुरुष को भी (सप्रथः छुर्दिंयच्छ) अति विस्तृत शरण प्रदान कर । राजा भी निष्कपट, अचौर, शत्रुदाहक बल का बढ़ाने वाला, हिंसक शत्रु का नाशक स्वामी हो, वह (सहसः) बल का सञ्चालक 'वीतहृष्य' करप्रद प्रजाजन और (भरद्वाजाय) संग्राम, बल, अज्ञ के पालक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सबको शरण दे ।
द्युतानं चो अर्तिधि स्वर्णरम्भिन्न होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवृचसं सुवृक्तिभिर्हृद्यवाहमर्ति देवमृञ्जसे ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वानो ! (वः) आप लोगों के बीच में (युतानं) सदा चमकने वाले (अतिथि) सर्वत्र व्यापक और अतिथिवत् पूज्य (स्वः-नरम्) सुखमय मार्ग में ले जाने हारे, (मनुषः होतारं) मनुष्य को सब कुछ देने हारे (सु-अध्वरम्) उत्तम, यज्ञ के पालक, स्वयं कभी नाश न होने वाले (द्युक्ष-वचसं) कान्तिवत् उज्ज्वल वाणी को कहने वाले (विप्रं), विविध ज्ञानों से पूर्ण विद्वान् के तुल्य (सु-वृक्षिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओं द्वारा (हव्य-वाहम्) हव्य, अज्ञादि पदार्थों के धारक, अग्निवत् तेजस्वी, (अरतिं) अतिज्ञानी, (देवं) प्रकाशस्वरूप गुरु की और प्रभु की (क्रज्जसे) सेवा किया कर । उत्तम यज्ञमय होने से परमेश्वर ‘स्वध्वर’, प्रकाशस्वरूप होने से ‘युतानं’, आनन्दप्रद, ज्ञानप्रद होने से ‘स्वर्नरं’, अज्ञादि देने से ‘हव्यवाह्’ है उसको हे जीव तू भक्ति स्तुति से सेवा कर ।

पावकया यश्चित्यन्त्या कृपा क्षामेत्रुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामुन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ५।१७

भा०—(यः) जो (पावकया) अन्यों को पवित्र कर देने वाली अग्नि के तुल्य, तीव्र सन्तापजनक (चित्यन्ता) ज्ञान देने वाली, (कृपा) कृपा, सामर्थ्य या शक्ति से (भानुना उषसः न) कान्ति से उषाकालों के समान, वा (उषसः भानुना) प्रभात वेला के समान (क्षामन्) भूमि पर (आ रुहचे) सर्वत्र सबको अच्छा लगता और प्रकाशित होता है, और (यः) जो (घृणे रणे) खूब चमकते रण में (यामन्) प्रयाण काल या मार्ग में (तूर्वन्) शत्रुओं का नाश करता हुआ (एतशस्य) अश्व के स्वामी, महारथी (नू) के समान और (ततृषाणः न) प्यासे के समान (अजरः) जरा रहित बलवान् होकर (आ रुहचे) सब प्रकार से चमकता है । उस स्वामी प्रभु की तू स्तुति किया कर । परमेश्वर परम पावनी ज्ञानमयी कृपा से सर्वत्र चमकता है वह अजर, अमर है तो भी

जल के प्यासे सूर्य के तुल्य वा रण में वीरवत् पापों का नाश करता है । उसकी स्तुति कर । इति सप्तदशो वर्गः ॥

ऋग्निमर्गिन वः सुमिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्ये
देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् भक्त जनो ! (वः) आप लोग अपने में (अग्निम् अग्निम्) अग्नि के समान स्वप्रकाश, अति तेजस्वी प्रभु को अग्नि को समिधा से जैसे, वैसे (दुवस्यत) उपासना करो (वः) अपने (गृणीषणि) स्तुति के कार्य में एकमात्र लक्ष्यभूत (अतिथिम्) सर्वव्यापक, पूज्य (प्रियं-प्रियम्) अति प्रिय उस प्रभु की ही सेवा करो । (वः) आप लोग अपने में (अमृतम्) अमृत, अविनाशी रूप से विद्यमान आत्मा को (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (उप विवासत) उपासना किया करो । (देवः) सर्वदाता, तेजोमय परमेश्वर (देवेषु) अपने कामनावान् भक्तों में ही (वार्य वनते) उत्तम ऐश्वर्य देता और (नः दुवः वनते हि) वही निश्चय से हमारी सेवा, परिचर्चा और स्तुति आदि भी स्वीकार करता है । **समिद्धमर्गिन सुमिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।**
विप्रं होतारं पुरुवारमद्गुहै कुर्वि सुम्नैरीमहे ज्ञातवेदसम् ॥ ७ ॥

भा०—(अध्वरे यथा समिधा समिद्धं अग्निं पुरः गृणे) यज्ञ में जिस प्रकार समिधा से चमकते हुए अग्नि को पुरः स्थापित करके परमेश्वर की स्तुति की जाती है उसी प्रकार (समिधा) अच्छी प्रकार प्रकाशित (गिरा) वाणी से (समिद्धम्) अच्छी प्रकार प्रकाशित (अग्निम्) ज्ञानवान् (ध्रुवं) स्थिर, (पावकं) दोषों को दूर करके पवित्र करने वाले, (शुचिं) शुद्धचित्त प्रभु वा विद्वान् को (अध्वरे) हिंसा आदि से रहित, ज्ञानमय यज्ञ में (पुरः) समक्ष रख उसकी (गृणे) स्तुति

करुं । और (जात-वेदसम्) ज्ञानों के स्वामी, (विग्रम्) विविध विद्याओं से हमें पूर्ण करने वाले (पुरु-वारम्) बहुतों से वरण करने और बहुतों के बहुत से कष्टों का निवारण करने वाले, (अद्वृहं) द्रोहरहित, (होतारं) ज्ञानेश्वर्य के दाता (कविं) क्रान्तदर्शी, विद्वान् प्रभु को (सुन्नैः) शुभ, उत्तम मनन योग्य वचनों और मन्त्रों से हम (ईमहे) प्रार्थना किया करें । त्वां द्रुतमंग्रे अमृतं युगेयुगे हृव्यवाहं दधिरे पायुमीज्यम् ।

देवास॑श्च मर्तीसश्च जागृविं विभुं विशप्ति॒ नमस्ता नि षेदिरे॥१॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवत् ! प्रभो ! (दूतं) दुःखों को दूर करने वाले, शत्रु को संताप देने वाले, (अमृतम्) अविनाशी, (हृव्यवाहं) ग्रहण करने योग्य, उत्तम स्तुतिवचन, अज्ञादि के स्वीकार करने वाले, (पायुम्) पवित्रकारक (ईड्यम्) स्तुति योग्य (जागृविम्) सदा जागृत, चैतन्य (विभुं) विशेष सामर्थ्य से युक्त, व्यापक (विशप्तिम्) प्रजाओं के पालक (त्वां) तुम प्रभु को (देवासः च मर्त्तासः च) विद्वान् जन और साधारण मनुष्य भी (युगे-युगे) प्रतिदिन, प्रतिवर्ष, प्रति युग, (दधिरे) धारण करते, और ध्यान में धरते तथा (नमसा) नमस्कार पूर्वक (नि षेदिरे) उपासना करते रहते हैं और आगे भी नमस्कार द्वारा उपासना करते रहा करें ।

विभूषन्न उभयां अनु ब्रता द्रुतो देवानां रजसी॒ समीयसे ।

यत्ते धीति॒ सुमतिमावृणीमहेऽधि॒ स्मा नस्त्रिवर्तुथः शिवो भव ९

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! विद्वन् ! सर्व प्रकाशक ! प्रभो परमेश्वर ! तू (उभयान् अनु) विद्वान् और अविद्वान् दोनों प्रकार के मनुष्यों को हितकारी, उनके (ब्रता अनु) कर्मों के अनुसार (विभूषन्) व्यवस्था करता हुआ (देवानां) दिव्य समस्त पदार्थों और विद्वानों के बीच में सबसे उपासित, होकर (रजसी) आकाश और भूमि

दोनों लोकों में (सम् ईयसे) व्याप्त हो रहा है । (यत्) जिस (ते धीतिम्) तेरा ध्यान और (सुमतिम्) शुभ मति, शुभ ज्ञान को (आ वृणीमहे) हम आदरपूर्वक वरण करते हैं । हे प्रभो ! (अधः) और तू (नः) हमारे लिये (त्रि-वस्थः) तीन मंजिलों वाले घर के समान (त्रि-वस्थः) मन, वाणी, काय तीनों से वरण करने योग्य, वा तीनों प्रकार के दुःखों का चारण करने वाला होकर (नः शिवः भव) हमारे लिये कल्याणकारी हो । तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वव्चूमविद्वांसो विदुस्तरं सपेम ।

स यन्त्रद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हृव्यमग्निरमृतेषु वोचत् १०।१८

भा०—(तम्) उस (सुप्रतीकं) सुख रूप में प्रतीत होने वाले (सुदृशं) उत्तम द्रष्टा, (स्वव्चूम्) सुख प्राप्त होने और पूजन करने योग्य, (विदुस्तरं) बहुक अधिक विद्वान्, ज्ञानी प्रभु को हम (अविद्वांसः) अविद्वान् जन (सपेम) प्राप्त हों, (सः विद्वान्) वह ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी प्रभु (विश्वा वयुनानि) समस्त ज्ञानों को प्रदान करता है । वह ही (अमृतेषु) अमर अविनाशी हम जीवों के निमित्त (हृव्यम्) सदा ग्रहण करने योग्य पवित्र ज्ञान का (प्र वोचत्) उत्तम रीति से उपदेश करता है । (२) हम (सुप्रतीकं) उत्तम सुख वाले सौम्य सुख, शुभ नेत्र वाले, सुपूज्य विद्वान् के पास (सपेम) एक होकर बैठें, वह हमें सब ज्ञानों का उपदेश करे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्तु आनंद् कवये शूर धीतिम् ।

यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्ति शवसोत ग्राया॥११॥

भा०—हे प्रभो ! विद्वान् ! हे अग्ने) ज्ञानवान् हे तेजस्विन् ! (यः) जो (ते कवये) तुम्ह क्रान्तदर्शी, परम ज्ञानवान् पुरुष के (धीतिं) धारण करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करता है हे (शूर) शूरवीर, पापों के नाशक ! (तं पासि) तू उसका पालन करता है, (उत्) और (तं) उसको

ही (पिपर्षि) पालन पोषण करता है, और हे प्रभो ! विद्वन् ! जो पुरुष तेरे निमित्त (पञ्चस्य निशितिं वा) पूजा का आदर सत्कार की तीव्रता और (उद्दृश्यति वा) उद्गमन, उत्तम मार्ग की ओर बढ़ना और पूज्य के प्रति अभ्युत्थान अर्थात् आदर पूर्वक खड़े होने आदि सत्कार को भी (आनन्द्) करता है, तू (तम् इत्) उसको ही (शब्दसा उत्तराया) बल और धन दोनों से ही (पृष्णक्षिः) पालन करता है ।

त्वं मम् श्वे वनुष्यतो नि पाहि त्वं मु नः सहसावन्नवृद्यात् ।

सं त्वा ध्वस्मन्वद्भयेतु पाथः सं रयिः स्पृह्याय्यः सहस्री॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्नि के समान दुष्टों को दग्ध करने हारे ! प्रभो विद्वन् ! राजन् ! (त्वम्) तू (वनुष्यतः) योग्य पापाचरण के मार्ग से जाने से (नि पाहि) सब प्रकार से रक्षा कर । हे (सहसावन्) बल-शालिन् ! (त्वम् उ) तू ही (नः) हमें (वनुष्यतः) हिंसक पुरुष से रक्षा कर । (ध्वस्मन्वत् पाथः) पापों और दुष्टों का ध्वंस करने वाला (पाथः) मार्ग और पालन सामर्थ्य (त्वा अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो । और (त्वां) तुझे (स्पृह्याय्यः) सबसे चाहने योग्य, (सहस्री) सहस्रों सुखों को देने वाला, सब प्रकार का (रयिः) ऐश्वर्य भी (सम् अभ्येतु) प्राप्त हो । और तेरे द्वारा वही पालन का सुख और ऐश्वर्य हमें भी प्राप्त हो ।

श्रुगिनहौंतो गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवैदाः ।

देवानामुत यो मत्यान्नां यजिष्टुः स प्र यंजतामुतावा ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (देवानाम्) प्रकाश करने वाले सूर्य आदि लोकों और ज्ञानैश्वर्य के देने वाले विद्वानों, ऐश्वर्यवानों और कामना वाले (मत्यानां) मरणशील मनुष्यों और अन्य प्राणधारियों को (विश्वा) समस्त

(जनिमा) उत्पत्ति के रहस्यों को (वेद) जानता है (सः) वही (जात-वेदाः) समस्त उत्पत्ति पदार्थों को जानने हारा होने से ही 'जात-वेदाः' है । (सः) वह (यजताम् यजिष्ठाः) दानशीलों में सबसे बड़ा दानशील, (ऋत-वा) ज्ञान, सत्य न्याय, तेज और धनैश्वर्य का स्वामी परमेश्वर (अग्निः) सबका अग्रणी, सबसे पूर्व विद्यमान होने से अग्निवत् स्वप्रकाशक है और अन्यों को प्रकाशित करने से 'अग्निः' है । (सः होता) वही स्वयं सबका दाता और सबको अपने में आहुति करने वाला होने से 'होता' है और वही (गृहपतिः) गृह स्वामी के समान विश्व का पालक होने से 'गृहपति' है (सः राजा) और वही राष्ट्र में राजा के समान समस्त ब्रह्मण्ड का राजा है । 'अग्निः' देवता वाले मन्त्रों में प्रायः सर्वत्र अग्नि, विद्युत् तत्व के वर्णन के साथ २ गृहपति, राष्ट्रपति नायक राजा और कुलपति आचार्य विद्वान् और परमेश्वर का समान वाक्यरचना से ही वर्णन किया गया है । जिनका स्पष्टीकरण स्थान २ पर किया गया है ।

अग्ने यदुद्युक्तिशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे चंपूं हि यज्वा ।

ऋता यजासि महिना वि यन्द्रूहृद्या वृह यविष्टु या ते श्रद्य ॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान स्वयंप्रकाश ! एवं अन्यों को प्रकाशित करने हारे ! हे (पावक-शोचे) पवित्र करने वाले तेजःप्रकाश से युक्त ! हे (होतः) यज्ञ के होता के समान अपने ऐश्वर्य, बल, ज्ञान आदि के दान करने हारे ! (यज्वा) उत्तम दानशील और संगति, परस्पर मेल करने हारा होकर (अध्वरस्य विशः) यज्ञवत् न नाश करने योग्य प्रजाजन को (त्वं हि वेः) तू सदा हृदय से चाहा कर और उसकी रक्षा किया कर । (यत्) जब या जो तू (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (वि भूः) विशेष शक्तिशाली होता है तब तू (ऋता) ऐश्वर्यों को (यजासि) स्वयं प्राप्त करता और औरों को भी देने में समर्थ होता है । और तभी है (यविष्टु) अति जवान ! बलवन् (या ते हृदया)

जो तेरे भोग करने योग्य नाना अन्नादि पदार्थ हैं उनको भी तू (अथ) आज के समान सदा ही (आ वह) प्राप्त कर और अन्यों को प्राप्त करा । इस मन्त्र में परमेश्वर और राजा का यज्ञकर्ता, होता और अग्नि के समान वर्णन है ।

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत् रोदसी यज्ञध्यै ।
अवा नो मधवन्वाजसातावस्ते विश्वानि दुरिता तरेम् ता तरेम् ।
तवावसा तरेम ॥ १५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! यज्ञकर्ता पुरुष जिस प्रकार (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्यः) उत्तम तृप्तिकारक अन्नों को सब प्रकार से सावधानी से देखता और विद्वान् जिस प्रकार (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्यः) सुख से धारण करने योग्य ज्ञानों का उपदेश करता है उसी प्रकार तू भी हे प्रभो ! राजन् ! (सुधितानि) सुख से, उत्तम प्रकार से धारण करने योग्य (प्रयांसि) उत्तम २ प्रयत्नों और प्रयाससाध्य कार्यों और प्रयासशील सैन्यों को (अभि ख्यः) सब प्रकार से स्वयं देखा कर। और जैसे प्रजाजन (रोदसी इव यज्ञध्यै त्वा दधीत्) सूर्य और पृथ्वी के तुल्य रूप पुरुषों को परस्पर सुसंगत करने के लिये अग्नि का साक्षी रूप से आधान करते हैं उसी प्रकार शासक शास्त्र और राजप्रजावर्ग दोनों को परस्पर सुसंगत करने के लिये (त्वा दधीत्) तुक्ष राजा, प्रभु को साक्षी रूप से (नि दधीत) मध्यस्थवत् स्थापित करें । हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (वाजसातौ) ज्ञान, बल, और धन के लाभ काल में, और उनको प्राप्त करने के निमित्त एवं संग्राम के अवसर में भी (अव) रक्षा कर। हम हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! सब दुःखों के नाशक (तव अवसा) तेरे ज्ञान, रक्षा-सामर्थ्यादि से हम (विश्वानि दुरिता) सब प्रकार के दुष्टाचरण और दुःखदायी कर्मों से (तरेम)

पार हों और (ता तरेम) उन अनेक विलों को पार करें और (तरेम) अवश्य ही पार करें ।

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरुर्गणीवन्तं प्रथमः सीद् योनिम् ।

कुलायिनं धृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १६ ॥

भा०—हे (सु-अनीक) उत्तम मुख वाले, सुन्दर ! सौम्य, सुभूष्ट पत मुख वाले ! सुमधुरभाषिन ! विद्वन् ! हे उत्तम वल, सैन्य के स्वामिन ! हे (अग्ने) तेजस्विन ! विनयशील ! तू (प्रथमः) सबसे प्रथम, श्रेष्ठ है । तू (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वानों, वीरों और मनुष्यों के साथ (ऊर्णवन्तं योनिम्) ऊन के बने आसन, वस्त्रादि सम्पत्ति, तथा प्रजा को उत्तम रीति से आच्छादन, रक्षा करने वाले को (कुलायिनं) गृहोपयोगी, नाना द्रव्यों से समृद्ध, सर्वाश्रयप्रद, (धृतवन्तं) धृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों से पूर्ण गृह वा राष्ट्र को (सीद) प्राप्त कर उस पर शासन कर । और (यजमानाय) कर आदि देने वाले प्रजाजन के (यज्ञं) संगतियुक्त राजसभा आदि के कार्य को, यजमान के यज्ञ को अग्नि वा अध्वर्यु के समान (साधु नय) भली प्रकार चला ।

इममुत्यमर्थवृद्धिं मन्थनित वेधसः ।

यमङ्गुयन्तमानयन्नमुरै श्याव्याभ्यः ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार (वेधसः अथर्ववद् अग्नि मन्थनित) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष ‘अथर्व’ वेद में लिखे प्रमाणे वा अहिंसक, ईश्वरोपासक विद्वान् के समान (अग्नि मन्थनित) आग या विद्युत् को मथकर, रगड़कर पैदा करते हैं और (श्याव्याभ्यः आ नयन्) रात्रि के अनधकारों को दूर करने के लिये प्रकाशक चिह्नों के समान सब पदार्थ को दिखाने वाले दीपक रूप अग्नि को लाते हैं उसी प्रकार (इमम् उत्यम्) उस (अथर्ववत्) अथर्ववेद में जैसा प्रधान पुरुष को चुनाव करने का प्रकार बतलाया है उसी प्रकार वा अहिंसक, सर्वपालक, प्रजापति के तुल्य (अग्नि)

अव्रणी, प्रधान पुरुष को (मन्थन्ति) समस्त प्रजावर्ग में से दही में से मक्खन के समान, खूब गुण दोष विवेचन और वादानुवाद के बाद मथ कर सारवत् प्राप्त करते हैं और (यम्) जिस (अमूरं) मोहरहित, निष्पक्षपात, अहिंसक और सदोत्साही को (अंकूर्यन्तं) चिह्न वा अपने घोतक आदर्श ध्वजा के तुल्य श्रेष्ठ पुरुष को (श्याव्याभ्यः) अज्ञान युक्त प्रजाओं, सम्पन्न समृद्ध सेनाओं के हितार्थ (आनयन्) प्राप्त करें और उसे उत्तम पद प्राप्त करावें। (२) अध्यात्म में तपस्वीजन इस देह को अरणि करके ख्यान योग के अभ्यास से आत्मा रूप अग्नि को, दधि से घृतवत् प्राप्त करते हैं। वह अज्ञान की ओर रात्रियों में प्रकाश करता है।

जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।

आ देवान् वर्क्ष्यमृतां ऋतावृथो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (स्वस्तये) कल्याण करने के लिये (सर्वताता) सबके हितार्थ सर्वत्र और (देव-वीतये) उत्तम गुणों का प्रकाश करने और उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने के लिये (जनिष्व) उत्पन्न वा प्रकट हो। तू (ऋत-वृथः) सत्यज्ञान, न्यायव्यवहार और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले (अमृतान्) दीर्घायु (देवान्) मनुष्यों को (आवक्षि) सब स्थानों से प्राप्त कर और धारण कर। (देवेषु) उन विद्वानों, वीरों और धनार्थी व्यवहारकुशल पुरुषों के आश्रय पर (यज्ञं पिस्पृशः) राज्यपालन रूप यज्ञ को धारण कर, दान आदि उत्तम कार्य कर। दातव्य पदार्थ को स्पर्श करना यह मुहावरा दान देने अर्थ में प्रयुक्त होता है जैसे—‘स्पर्शयता घटोधी’ रघु०।

वयमुत्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म सुमिधा वृहन्तम् ।

अस्थूरि नो गाहैपत्यानि सन्तु तिग्मेनं नुस्तेजसा सं

शिशाधि ॥ १९ ॥ २० ॥ १ ॥

भा०—(सुमिधा वृहन्तम्) जिस प्रकार लोग अग्नि को सुमिधा द्वारा

बढ़ाते हैं उसी प्रकार हे (गृहपते) गृह के उपासक ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्, नायक ! अंग या देह के नेता आत्मा के तुल्य ! (वयम् उ) हम अवश्य (त्वा) तुल्यको (जनानाम्) सब मनुष्यों के हितार्थ (सम-इधा) सम्यक्, समर्थ तेज और ज्ञान से (वृहन्तम् अकर्म) वृद्धिशील, महान् बनावें । जिससे (नः) हमारे (गार्हपत्यानि) गृहपति के समस्त कार्य, (अस्युरि) निर्विघ्न (सन्तु) हों । और तू (तिम्मेन तेजसा) तीक्ष्ण प्रकाश से अग्निवत् ही तीक्ष्ण प्रभाव से (नः) हमें (सं शिशाधि) सन्मार्ग में अच्छी प्रकार शासन कर ॥ इति विश्वो वर्गः । इति षष्ठे मण्डले प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१६]

४८ भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ६, ७ आर्चो उष्मिण् । २, ३, ४, ५, ६, ११, १३, १४, १५, १७, १८, २१, २४, २५, २८, ३२, ४० निचूद्रायत्री । १०, १६, २०, २२, २३, २६, ३१, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४१ गायत्री । २६, ३० विराङ् गायत्री । १२, १६, ३३, ४२, ४४ साम्नीत्रिष्टुप् । ४३, ४५ निचूत् त्रिष्टुप् । २७ आर्चोपंक्तिः । ४६ भुरिक् पंक्तिः । ४७, ४८ निचूदनुष्टुप् ॥

अष्टाचत्वारिंशट्च सूक्तम् ॥

त्वम् ग्रे यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानमय जगदीश्वर ! विद्वन् ! (विश्वेषां) समस्त (यज्ञानां) दान देने योग्य पदार्थों का (होता) देने वाला, समस्त पूजनीय पदार्थों में सबसे बड़ा दानी होकर (विश्वेषां हितः) सब का हितकारी, सबके बीच में प्रधान रूप से स्थित है, तू (देवेभिः) विद्वानों द्वारा (मानुषे जने) मननशील मनुष्य मात्र में प्रतिष्ठित है । तू सबका पूज्य है ।

स नो मन्द्राभिरच्चरे जिह्वाभिर्यजा महः ।

आ देवान्वक्ति यक्ति च ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (सः) वह त् (मन्द्राभिः) स्तुति योग्य,
आह्लादजनक (जिह्वाभिः) वाणियों से (अध्वरे) अविनाशी यज्ञ में
(महः यज) बड़ों का सदा सत्कार कर और (देवान्) विद्वान्
पुरुषों के प्रति (आ वक्ति) आदरपूर्वक वचन बोल और (आ यक्ति च)
आदर से दान दे । (२) हे प्रभो ! आह्लादकारिणी वेदवाणियों से
बड़े दिव्य गुणों का हमें उपदेश कर और हमें अपने से सदा संगत कर ।

वेत्था हि वैधो अध्वनः पुथश्च देवाख्सा ।

अग्ने यज्ञेषु सुकतो ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! ज्ञानमय, प्रकाशस्त्वरूप ! हे (वेदः)
विधातः ! विधानकर्त्तः ! हे मेधाविन् ! हे (देव) दानशील ! हे (सु-
कतो) शुभ कर्म करने और उत्तम प्रज्ञा वाले सुमते ! त् (अख्सा)
अपने प्रकाशक तेज से (अध्वनः) बड़े मार्गों और (पथः) पगदण्डियों
या उपमार्गों को भी (वेत्थ हि) निश्चय से जानता है । हमें भी सन्मार्ग
से ले जा ।

त्वामीळे अधि द्विता भरुतो वाजिभिः शुनम् ।

ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक ! (भरतः) मनुष्यमात्र (शु-
नम्) सुखप्रद, सर्वव्यापक (त्वाम्) तुक्षको (द्विता) अर्थात् सगुण
और निर्गुण दोनों प्रकारों से ही (वाजिभिः) ज्ञानयुक्त उपायों से
(ईंडे) उपासना करे । और (यज्ञेषु) यज्ञों में (यज्ञियम्) पूज्य तुक्ष
को (ईंजे) प्राप्त होता है ।

त्वस्मिमा वार्यौ पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।

भरद्वाजाय दाशुष्वे ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्युद् के समान चमकने हारे स्वामिन् ! (त्वम्) तू (इमा वार्या) इन नाना उत्तम २ धनों को (पुरु) बहुत सी मात्रा में (सुन्वते) ऐश्वर्य प्राप्त करने में यत्कान् (दिवः दासाय) सूर्यवत् तेजस्वी, आचार्य के सेवक के समान (भरद्वाजाय) अग्न बल आदि के धारण करने वाले (दाशुषे) समर्पक भक्त जन को देता है । इत्येक-विंशो वर्गः ॥

त्वं दूतो अमर्त्यं आ वृहा दैव्यं जनम् ।
शृणवन्विप्रस्य सुषुतिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अमर्त्य) अविनाशी ! तू (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष के (सुसुतिम्) उत्तम सुति को (शृण्वन्) श्रवण करता हुआ (दूतः) दूत के समान व शत्रुसंतापक होकर (दैव्यं) दिव्य पदार्थों के जानने वाले (जनं) मनुष्य को (आ वह) आदर से प्राप्त हो, उसे धारण कर ।

त्वामग्ने स्वाध्योऽ मर्त्तासो देववीतये ।
यज्ञेषु देवमील्तते ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (देव-वीतये) शुभ गुणों को प्राप्त करने के लिये (यज्ञेषु) यज्ञों, सत्संगों में (स्वाध्यः) उत्तम रीति से ध्यान और आधान करने वाले (मर्त्तासः) मनुष्य (त्वां देवं ईडते) तुम देव, दाता की सुति करते हैं ।

तव प्र यक्षि सुन्दशमुत क्रतुं सुदानवः ।
विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (सु-दानवः) उत्तम ज्ञान धन आदि दान देने वा लेने हारे और (विश्वे) समस्त (कामिनः) उत्तम कामनावान् पुरुष (तव संदशम्) तेरे सम्यक् तत्त्वदर्शन, यथार्थ ज्ञान (उत) और (क्रतुम्) कर्म को भी (जुषन्त) प्रेम से सेवन करते हैं । तू उनको (प्र यक्षि) ज्ञान और कर्म का उपदेश प्रदान करता है ।

त्वं होता मनुर्हितो वहिरासा विदुष्टरः ।

अन्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! (त्वं) तू (होता) सब सुखों का देने हारा, (मनुः) ज्ञानवान्, मननशील, मान करने योग्य, (वहिः) कार्य-भार को अपने कन्धों पर लेने हारा है । तू (विदु-स्तरः) सबसे अधिक विद्वान् होने से (आसा) मुख से उपदेश द्वारा या मुखवत् मुख्यस्थान प्राप्त करके (दिवः विशः) मुख की कामना करने वाली प्रजाओं को (यक्षि) संगत कर और ज्ञानोपदेश और व्यवस्था प्रदान कर ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हृव्यदातये ।

नि होता सत्स वर्हिषि ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नी नायक ! अग्निवत् तेजस्विन् ! ज्ञान-वन् ! तू (गृणाः) उपदेश देता हुआ (वीतये) हम प्रजाजनों, शिष्यों वा उपासकों को रक्षा करने, ज्ञान से प्रकाशित करने और (हृव्य-दातये) देने योग्य ज्ञानैश्वर्य आदि प्रदान करने के लिये (आ याहि) हमें प्राप्त हो और (होता) दानशील तू (वर्हिषि) वृद्धि, मान आदर युक्त आसन, प्रजाजन वा राज्य सभा में (नि सत्सि) नियत होकर विराज । परमेश्वर (वर्हिषि) प्रत्येक यज्ञ वा वृद्धिशील प्रत्येक चेतन २ में विराजता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तं त्वा सुमिद्धरङ्गिरो धृतेन वर्धयामसि ।

बृहच्छौचा यविष्ट्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अंगिरः) अंगारों में विद्यमान अग्नि के समान अति तेजस्विन् ! (समिद्धिः धृतेन) काष्ठों से और धृत से अग्नि के तुल्य ही हम (तं त्वा) उस तुक्षको (समिद्धिः) अच्छी प्रकार प्रकाश युक्त वचनों और (धृतेन) आदरार्थ दिये जाने योग्य जल, अज्ञ, स्नेह आदि से (वर्धया-

मसि) बड़ावें । हे (यविष्ट्य) अति युचन्, सदा बलशालिन् ! तू (बृहत्) महान् होकर (समिद्धिः धृतेन) उत्तम प्रकाशों और तेजोमय ज्ञान से (शोच) खूब प्रकाशित हो ।

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छ्रादेव विवाससि ।
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञान देने हारे विद्वन् ! हे (अग्ने) अन्धकार में अग्नि के समान ज्ञान के प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारे ! (सः) वह त् (नः) हमें (पृथु) बहुत बड़ा विस्तृत (श्रवाय्य) श्रवण करने योग्य और (बृहत्) बड़ा भारी (सुवीर्य) उत्तम वीर्य, बल के देने वाला, ज्ञान और तप (अच्छ विवाससि) अच्छी प्रकार आप कराओ ।

त्वाम् पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्धो विश्वस्य वाघतः ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार (अर्थर्वा) वायु (विश्वस्य मूर्धनः) समस्त संसार के मूर्धा अर्थात् शिरोभाग, ऊपर या सब से ऊपर विद्यमान (पुष्करात्) सबको पुष्ट करने वाले, अन्तरिक्ष, मेघ से (अग्निश्च निर् अमन्थत) विद्युत् रूप अग्नि को मथकर विद्युत् को प्रकट करता है उसी प्रकार (वाघतः) विद्वान् लोग भी हे (अग्ने) भौतिक अग्ने ! (त्वाम्) तुक्षको (विश्वस्य मूर्धनः) समस्त संसार के शिरों रूप से विद्यमान (पुष्करात्) सबके पोषणकारक सूर्य या मेघ से (त्वाम् निर् अमन्थत) सार रूप से तुक्षको मथ कर प्राप्त करें । और विद्वान् लोग (अर्थर्वा) अहिंसक, प्रजापालक विद्वान् हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! सर्वोपरि विद्यमान, सर्वपोषक कृषक प्रजाजन में से ही (त्वाम् निर् अमन्थत) तुक्ष नायक को सारवान् जानकर वाद विवाद के अनन्तर प्राप्त करें । (२) अहिंसा महाव्रत का पालक 'अर्थर्वा' योगीजन इस देह के शिरो-

भाग कपाल में से अरणियों से आग के समान, आत्मा रूप अस्ति को ध्यान निर्मर्थन द्वारा प्राप्त करें ।

स्वदेहमरणि कृत्वा आत्मानश्चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मर्थनाभ्यासात् पश्येद्वं निगूढवत् ॥ श्वेता० ॥

तमु त्वा दृध्यङ्गुषिः पुत्रैऽधे अथर्वणः ।
वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निं नायक ! हे आत्मन् ! (अथर्वणः) प्रजा का नाश न होने देने वाले सर्वपालक पुरुष का (पुत्रः) प्रतिनिधि पुरुष जो बहुतसों की रक्षा करने में समर्थ है और (दध्यङ्गुषिः) राष्ट्र को धारण करने में समर्थ और (कृषिः) यथार्थ धर्माधर्म, सत्यासत्य का विवेचक हो, वह (तम् त्वाम्) उस तुल्य (वृत्रहणं) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुओं के नाशक और (पुरन्दरम्) शत्रुपुरों के तोड़ने हारे को (ईधे) और भी प्रकाशित करे, तुल्य अधिक शक्तिशाली बनावे । (२) अथर्वा आचार्य का (दध्यङ्गुषिः) ज्ञानधारक एवं ध्यानाभ्यासी शिष्य तुल्य साक्षात् करे । आत्मा या परमात्मा अज्ञानान्धकार का नाशक होने से वृत्रहा और ज्ञान बल से देहबन्धनाश करने से पुरन्दर है । (३) अथर्वा वायु का पुत्र मेघ विद्युत् को चमकाता है ।

तमु त्वा प्राथ्यो वृष्णा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयं रणेररणे ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार (पाथ्यः वृष्णः समीधे) जल युक्त, बरसता मेघ विद्युत् को चमकाता है । उसी प्रकार हे नायक ! (पाथ्यः) धर्म पथ पर आरुह (वृष्ण) बलवान्, प्रबन्धकुशल पुरुष (रणे रणे) प्रत्येक रण में, (धनं-जयम्) धनों, ऐश्वर्यों का विजय करने वाले, (दस्युहन्तमम्) प्रजानाशक डाकुओं के नाश करने हारे (तम् त्वाम् उ) उस

तुक्ष को (समीधे) अच्छो प्रकार प्रकाशित, तेजस्वी बनावे । अध्याःम में ‘पाथ्यः वृषा’ प्राण । इति त्रयोर्विंशो वर्गः ॥

एह्युपु व्रवाणि तेऽग्ने इत्थतंगा गिरः ।

एभिर्वर्धासु इन्दुभिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजलिन् ! तू (आ इहि उ) आ, (ते) तुक्षे मैं (इत्था) इस २ प्रकार की सत्य वेदवाणियों और (इतरा: गिरः) अन्यान्य लौकिक वाणियों का भी (व्रवाणि) उपदेश करुं । तू (एभिः) इन (इन्दुभिः) ओपधियों से देह के समान और चन्द्रकलाओं से पूर्णचन्द्र के समान ऐश्वर्यों से (वर्धासे) वृद्धि को प्राप्त हो ।

यत्र कं च ते मनो दक्षं दधसु उत्तरम् ।
तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे नाथक ! (ते मनः) तेरा मन (यत्र कं च) जहां कहीं भी चाहे वहां ही तू (उत्तरम्) उत्कृष्ट (दक्षं दधसे) बल धारण कर । और (तत्र) वहां (सदः कृणवसे) अपना आश्रय, राजभवन, सभाभवन आदि बना । (२) योगी जिस किसी विषय में चाहे मन को लगावे, वहां ज्ञान वा बल प्राप्त करे और उसमें स्थिति प्राप्त करे ।

नहि ते पूर्तमन्तिपद्मवेमानां वसो ।

अथा दुवौ वनवसे ॥ १८ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में बसने और राष्ट्र को बसाने हारे ! प्रजाजन एवं राजन् ! (ते) तेरे लिये (नेमानां) अन्नों और तेरे आगे झुकने वाले, स्वल्प बल वाले प्रजाजनों को (पूर्तम्) पूर्ण करने वाला बल (नहि अक्षिपत् भुवत्) अंख से परे जाने वाला न हो । वह सदा तेरे निरीक्षण में ही रहे । (अथ) और तू (दुवः वनवसे) सब प्रकार की सेवाओं

और शत्रुतापकारी सेनाओं को भी प्राप्त कर। 'अक्षिपत्' इति दया० सम्मतः पदपाठः । (ते नेमानां पूर्तम् ते नहि अक्षिपत्) अज्ञादि भोग्य पदार्थो वा तुच्छ पुरुषों का पूर्ण करना वा पालन करने का भार तुझे न उखाड़ फेंके प्रत्युत वह (ते भुवत्) तुझे शक्तिशाली बनावे ।

आश्चिर्गामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः ।
दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ १९ ॥

भा०—जिस प्रकार (अमिः) भौतिक, देह में जाठर रूप से, लोक में सौर तेज रूप से (भारतः) सबका भरण पोषण करता है, (वृत्रहा) जीवन के विघ्नकारी कारणों और अन्धकारों का नाशक है (दिवः दासः स्य सत्पतिः) प्रकाश देने वाले पदार्थों का पालक होता है उसी प्रकार (भारतः) 'भरत' अर्थात् मनुष्यों का हितकारी, उनका पोषक, हितैषी, (वृत्रहा) शत्रुओं को नाश करने वाला, (पुरुचेतनः) बहुतों को चेताने, और ज्ञान देने वाला, (अमिः) अग्रणी नायक और तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (आ अगामि) प्राप्त हो । वह (दिवः दासस्य) ज्ञान प्रकाश, वा कामना योग्य पदार्थ के देने वाले गुरु और सेवकादि जनों का (सत्पतिः) उत्तम पालक हो । (२) आत्मा, देह का पोषक, प्रति मनुष्य स्थित होने से भारत, पुरु इन्द्रियों को चेतन करने वाला, कामपूरक देह का उत्तम स्वामी है ।

स हि विश्वाति पार्थिवा उर्यिं दाशन्महित्वना ।
वन्वज्ज्वातो अस्त्रृतः ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (विश्वानि पार्थिवा) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्यों को (अति) अतिक्रमण करने वाले : (रथिम्) ऐश्वर्य को (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (दाशत्) दे । और (अवातः) कभी शत्रुरूप प्रतिकूल वायु से भी न झुककर (अस्त्रृतः) कभी मारा न जाकर सुख से उस ऐश्वर्य को स्वयं भी (वन्वन्) भोग करता रहे ।

(२) भौतिक अग्नि सूर्य ही सब रब सुवर्णादि को उत्पन्न करता, कभी न बुझता, न नाश होता है । इति चतुर्वेशो वर्णः ॥

स प्रत्नवन्ववीयसाग्रे द्युम्नेन संयता ।
वृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥

भा०—(प्रत्नवन्) पुरातन, पहले के प्रतापी नायकों के समान, है (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! राजन् ! (सः) वह तू (नवीयसे) नये से नये, अति श्रेष्ठ, (द्युम्नेन) धन और यश से (भानुना) प्रकाश वा तेज से सूर्य के समान (संयता) अच्छी प्रकार प्रबन्ध करने वाले सैन्य बल से (वृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (ततन्थ) विस्तृत कर ।

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं युज्ञं च धृष्ट्युया ।
अर्च गायं च वेधसे ॥ २२ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! जो (वः) आप लोगों में से (वेधसे) विद्वान् पुरुष के लिये (स्तोमं गाय) उपदेश देता, और (यज्ञं अर्च च) दान योग्य पदार्थ आदर से देता है, उसी (अग्ने) अग्रणी नायक, विद्वान् और (वः) आप लोगों में से (वेधसे) कार्यों के विधान करने में कुशल, बुद्धिमान् पुरुष के आदरार्थ आप लोग भी (स्तोमं यज्ञं अर्च च गाय च) स्तुति युक्त वचन कहो और दान, मान से पूजा सत्कार आदि करो ।

स हि यो मानुषा युगा सीदुद्धोता कुविक्रतुः ।
दूतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥

भा०—(यः) जो (होता) उचित पदार्थ का लेने और देने और आदरपूर्वक अन्यों को बुलाने, सत्कार करने हारा, (कुविक्रतुः) पुरुष केसे कर्म और बुद्धि को धारने वाला, (दूतः) दूत और (हव्यवाहनः) विद्युत्-वत् हव्य, अज्ञों, वक्तव्य वचनों को धारने वाला है, वह विद्वान् पुरुष ही (मानुषा युगा) मनुष्यों के जोड़े, स्त्री पुरुषों के ऊपर अध्यक्ष होकर

(सीदत) विराजे । (२) इसी प्रकार जो विद्वान् (दृतः) तपस्वी, (हव्य-वाहनः) ज्ञान और अन्न का भोक्ता है, वह बहुत मानुष वर्षों तक जीता है ।

ता राजान्ना शुचिवतादित्यान्मारुतं गुणम् ।

वसो यज्ञीह रोदसी ॥ २४ ॥

भा०—हे (वसो) सबके बसाने हारे ! तू (शुचिन्बता राजाना) शुद्ध आचरण वाले, राजा के तुल्य कान्तिमान्, तेजस्वी (रोदसी) सूर्य पृथ्वी के समान पति पत्नी, वर वधु जनों को और (आदित्यान्) सूर्य की किरणों वा बारह मासों के समान सबको सुख देने वाले (आदित्यान् = अदितेः पुत्रान्) भूमि के पालक जनों और (मारुतं जनम्) वायुवत् बलवान्, शत्रुमारक वीरों के समूह तथा सामान्य मनुष्यों को भी (इह). इस अपने राष्ट्र में (यक्षि) एकत्र बसा ।

वस्वी ते श्रुते सन्दृष्टिरिष्यते मर्त्याय ।

ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य वा अग्नि का (संदृष्टिः) अच्छी प्रकार देखना वा प्रकाशित होना मनुष्यमात्र को बसाता है, (इष्यते) अन्न देता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे तेजस्वी पुरुष ! हे प्रकाशस्वरूप ! हे (ऊर्जः नपात्) अन्न और बल को न गिरने देने हारे, उस के धारक ! (अमृतस्य) अविनाशी, हे दीर्घायु ! (ते) तेरा (सम्दृष्टिः) सम्यक् दर्शन ही (वस्वी) सबको बसाने वाला होकर (मर्त्याय इष्यते) मनुष्यमात्र को अन्नवत् पुष्ट करता और प्रेरित करता है । (२) अविनाशी प्रभु का सम्यग् दर्शन मनुष्यमात्र को अन्नवत् पालता, संसार भर को सञ्चालित कर रहा है । यदि हां ह न वर्त्तेय जातुकर्मण्यतन्द्रितः । उत्सीदे युरिमे लोकाः ॥ गीता० ॥ इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोद्य त्वा वृन्वन्त्सुरेकणाः ।

मर्तं आनाश सुवृक्तिम् ॥ २६ ॥

भा०—हे राजन् ! हे प्रभो ! जो पुरुष (अद्य) आज, तेरे प्रति (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से अपने को (दा:) प्रदान कर देता, तुझ पर अपने को न्योद्धावर कर देता है, वह (त्वा वन्वन्) तेरा भजन और सेवन करता हुआ (श्रेष्ठः) सबसे श्रेष्ठ, विद्यावान्, और (सुरेकणः) उत्तम धनवान् (अस्तु) हो और वही (मर्तः) मनुष्य (सुवृक्तिम् त्वाम् आनशे) सुखपूर्वक हुँखों के छुड़ाने वाले तुझ को प्राप्त करता है चा (सुवृक्तिम् आनशे) उत्तम मार्ग को पाता है ।

ते ते अग्ने त्वोता इष्यन्तो विश्वमायुः ।

तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥ २७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! स्वप्रकाश ! (अरातीः अर्यः इव) जन दान देनेवाले कृपणों को जिस प्रकार धनस्वामी अपने वैभव से लांघ जाता है उसी प्रकार जो (अरातीः अर्यः) करादि न देने वाले शत्रुओं को (तरन्तः) पार करते हुए और (वन्वन्तः) उनका नाश करते हुए, (त्वा उताः) तुझ से सुरक्षित रहते हैं (ते ते) वे तेरे अधीन जन (इष्यन्तः) अज्ञ की कामना करते हुए या तेरी सेना बने हुए (विश्वम् आयुः) पूर्ण जीवन प्राप्त करते हैं ।

अग्निस्तिर्गमेन शोचिषा यासुद्विश्वं न्युत्रिणम् ।

अग्निनैव वनते रयिम् ॥ २८ ॥

भा०—(अग्निः) सूर्य वा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (तिर्गमेन शोचिषा) अपने तीक्ष्ण तेज से, (विश्वम् अत्रिणं) समस्त प्रजाभक्षक दुष्ट जन को (नि यासत्) नाश करे । वह (अग्निः) तेजस्वी नायक (रयिम्) ऐश्वर्य (वनते) प्राप्त करता है ।

सुवीरं रुयिमा भरु जातवेदो विचर्षणे ।
ज़हि रक्षांसि सुकतो ॥ २९ ॥

भा०—हे (जातवेदः) धनस्वामिन् ! हे ज्ञानवन् ! हे (विचर्षणे) विविध मनुष्यों के स्वामिन् ! हे विशेष रूप से तत्वज्ञान के देखने हारे ! तू (सु-वीरं) उत्तम पुत्रों, वीरों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त कर और हे (सुकतो) उत्तम कर्म करने में समर्थ ! तू (रक्षांसि) दुष्ट, विप्रकारी पुरुषों को (जहि) नाश कर, उनको दण्ड दे ।

त्वं नः प्राह्यंहसो जातवेदो अधायुतः ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे (ब्रह्मणः कवे) वेद के उपदेश देने हारे विद्वन् ! या हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! (त्वं) तू (नः) हमें और (नः ब्रह्मणः) हमारे विद्वान् ब्राह्मणों को (अंहसः पाहि) पाप से बचा और (अधायुतः) हम पर अत्याचार करने वाले से भी (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर । इति षड्विंशो वर्गः ॥

यो नो अग्ने दुरेव आ मतो ब्रधाय दाशति ।

तस्मात्त्वः प्राह्यंहसः ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्निवत् दुष्ट पुरुष को दग्ध कर देने हारे ! (या) जो (दुरेवः) दुष्ट आचरण करने वाला, दुःखदायक, कर्म करने वाला, (मर्त्तः) मनुष्य (नः ब्रधाय) हमारे नाश करने के लिये (अ दाशति) सब प्रकार से यत्न करता और हमें पकड़ता या अपनाता है, (तस्मात् अंहसः) उस पापी पुरुष से (नः पाहि) हमें बचा ।

त्वं तं देव जिह्व्या परि वाधस्व दुष्कृतम् ।

मतो यो नो जिधांसति ॥ ३२ ॥

भा०—हे (देव) दानशील ! हे शत्रुओं को खण्डित करने और

विजय करने हारे राजन् ! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (नः) हमें (जिधां-सति) मारना चाहता हो (त्वं) तू (दुष्कृतम्) उस दुष्टाचरण करने वाले पापी पुरुष को (जिह्वा) वाणी या आङ्गा द्वारा (परि वाधस्व) विनाश कर ।

**भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य ।
अग्ने वरेण्यं वसु ॥ ३३ ॥**

भा०—हे (सहन्त्य) बलवन्, शत्रुओं को पराजित करने हारे ! (अने) हे तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! तू (भरद्वाजाय) अज्ञ और बल के धारण करने वाले प्रजाजन को (सप्रथः शर्म) विस्तृत शरण (यच्छ) दे और (वरेण्यं वसु) श्रेष्ठ धन, और बसने योग्य भूमि आदि प्रदान कर ।

**अग्निर्वृत्राणि जड़धनदद्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ३४ ॥**

भा०—जल जिस प्रकार (वृत्राणि जंघनत्) बहुते मेघों को प्राप्त करता है और जिस प्रकार (अग्निः) सूर्य या विद्युत् (वृत्राणि जंघनत्) मेघों पर प्रहार करता है, उसी प्रकार हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमन् ! शीघ्र कार्य करने हारे ! तेजस्विन् ! कर्मकुशल ! तू (समिद्धः) खूब प्रदीप, तेजस्वी और (आहुतः) आहुति प्राप्त अग्नि के तुल्य प्रजाजनों द्वारा संवर्धित, पुष्ट और आदर सत्कार पाकर तथा (आहुतः = आहूतः) शत्रुओं द्वारा ललकारा जाकर (विपन्यया), विशेष व्यवहार कुशल, वार्ता, वाणी से (द्रविणस्युः) धन की कामना करता हुआ (वृत्राणि जंघनत्) धनों को प्राप्त करे और विद्वकारी दुष्ट पुरुषों का नाश करे ।

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो श्रक्षरे ।

सीदकृतस्य योनिमा ॥ ३५ ॥ २७ ॥

भा०—(मातुः योनिम् सीदन् गर्भे स्थितः) माता के गर्भाशय में

पहुंचकर वहां ही स्थित गर्भस्थ बालक जिस प्रकार पुष्टि पाता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू (मातुः गर्भे) माता पृथिवी के 'गर्भ' अर्थात् बीच में या स्वगृहीत राष्ट्र में (ऋतस्य योनिम् सीदन्) सत्य-न्याय के घर, सभाभवन में अध्यक्ष पद पर बैठता हुआ (अक्षरे) अविनाशी स्थिर पद पर (दिव्यतानः) आकाश में सूर्यवत् चमकता हुआ (पितुःपिता) पिता का भी पिता होकर विराज । (२) यह अग्नि जीव अक्षय मानुतुल्य ज्ञानवान् जगन्निर्माता परमेश्वर के परम पद में विराजता हुआ मोक्ष सुख भोगे ।

ब्रह्म प्रजावृदा भर जातवेदो विचर्षणे ।

अग्ने यद्विदयद्विवि ॥ ३६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थों के लाभ करने वाले, वा धन-सम्पन्न ! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के देखने हारे ! स्वामिन् ! (यत्) जो (दिवि) पृथिवी पर वा प्रकाश में (दीदयत्) चमकता है या जिससे मनुष्य पृथिवी में, वा ज्ञान, और कान्ति में चमके, ऐसा (प्रजा-वत्) प्रजा, पुत्र शिष्यादि से युक्त (ब्रह्म) वेद ज्ञान, अज्ञ और धन (आ भर) प्राप्त कर और अन्यों को भी प्राप्त करा ।

उप त्वा रुग्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्रत ।

अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७ ॥

भा०—हे (सहस्रत) सहनशीलता, या विजयकारी बल से सम्पन्न ! (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! हम लोग (प्रयस्वन्तः) उत्तम यत्नशील होकर (रुग्वसन्दृशं त्वा उप) उत्तम, सम्यक् दर्शन वाले तेरे समीप रहकर (गिरः) वाणियों का (ससृज्महे) ज्ञान लाभ करें वा हे परमेश्वर ! हम यत्नशील होकर तुझ अतिरमणीय रूप को लक्ष्य कर स्तुति कहें ।

उप ब्रुयामित्र धृणरग्नम् शर्मं ते ब्रुयम् ।

अग्ने हिरण्यसन्दशः ॥ ३८ ॥

भा०—हे (अने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! (हिरण्य-सन्दशः) हित और रमणीय वा तेजोयुक्त सम्यक् दर्शन अर्थात् ज्ञान से सम्पन्न वा सुवर्णादि धनों से अच्छे रूपवान्, सुसज्जित दीखने वाले (ते) तुक्ष (वृणेः) कान्तियुक्त, सूर्यवत् तेजस्वी और कृपालु (शर्म) शरण में (व्रयम्) हम सन्तप्त जन (छायाम् इव) छाया के समान ही (उप-अगन्म) प्राप्त करें और ज्ञान्ति सुख लाभ करें ।

य तुग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।

अन्ते पुरो शुरोजिथ ॥ ३९ ॥

भा०—(तिग्मशृंग वंसगः न) जिस प्रकार ताखे सींगो वाला सांढ (पुरः रुजति) आगे के पदार्थों को तोड़ता है वा जिस प्रकार तीखी किरणों वाला सूर्य मेघादि के आवरण को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (यः) जो (उग्रः इव) ब्रबल वायु के समान शर अर्थात् वाणों से मारने योग्य दुष्ट पुरुषों का नाशक होकर (पुरः शुरोजिथ) शत्रु के पुरों को तोड़ता है । वह तू (वंसगः) सेवनीय ऐश्वर्य को प्राप्त हो ।

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न विभ्रति ।

विशामृत्यि स्वध्वरं ॥ ४० ॥ २८ ॥

भा०—(खादिनं) खाने में संलग्न (जातं शिशुं न) उत्पन्न बालक को जिस प्रकार (हस्ते विभ्रति) हाथों में लेते हैं उसी प्रकार (यं) जिस (स्वध्वरं) उत्तम हिंसारहित, प्रजापालनादि कर्म करने वाले (विशाम्) प्रजाओं के बीच में (यं) जिस (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक को प्रजा जन (हस्ते) शत्रु को नाश करने और दुष्टों को हनन या ढण्ड करने वाले बल के ऊपर (खादिनं) वज्रधर, आयुधसम्पन्न और (शिशुं जातं) उत्तम प्रशंसनीय आचार वाले, प्रसिद्ध पुरुष को (विभ्रति) परिपुष्ट करते हैं वही उत्तम राजा है । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तम् ।

आ स्वे योनौ निषीदतु ॥ ४१ ॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! आप लोग (देव-वीतये) विद्वानों की रक्षा, शुभ गुणों की प्राप्ति, और विजयाभिलाषी और व्यवहारचान, नाना कामनाचान् प्रजाओं के रक्षण के लिये (देवं) ज्ञान वा धन के देनेहरे तेजस्वी (वसु-वित्तम्) प्रजाओं को और ऐश्वर्यों को भली प्रकार लाभ करने वाले पुरुष को (प्र भरत) अच्छी प्रकार पुष्ट करो और वह (स्वे योनौ) अपने उचित स्थान पर (आ निषीदतु) आदर-पूर्वक विराजे ।

आ ज्ञातं ज्ञातवैदसि प्रियं शिशीतातिथिम् ।

स्योन आ गृहपतिम् ॥ ४२ ॥

भा०—(ज्ञात-वैदसि) नाना विद्याओं में प्रसिद्ध गुरु के अधीन (आ-ज्ञातम्) सब प्रकार से विद्या से सम्पन्न (प्रियं) प्रिय (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य (गृहपतिम्) गृह के पालक के समान विद्वान् वा राजा को (स्योने) सुखकारी, पद वा आसन पर (आ) आदरपूर्वक स्थापित करो ।

अग्ने युद्धवा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।

अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ४३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नणो तेजस्वी नायक ! (ये हि) जो भी (तव) तेरे (अश्वासः) अश्वों के समान वेग से जाने वाले, (साधवः) कार्य साधन में चतुर पुरुष (मन्यवे) तेरे मन्यु अर्थात् शत्रु के प्रति संप्रामादि वा तेरे (अभिमत) उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये (अरं व-हन्ति) खूब कार्य-भार उठाते हैं उन को तू (युक्त्व) उचित स्थान पर नियुक्त कर ।

अच्छा नो याद्या वहामि प्रयासि वीतये ।

आ देवान्तसोमपीतये ॥ ४४ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! तू (नः अच्छ याहि) हमें भली प्रकार से प्राप्त हो । (वीतये) हमारे उपभोग और रक्षा करने के लिये (प्र यासि) उत्तम अज्ञों और उत्तम यत्नवान् कर्मों व सैन्यों को (आ वह) धारण कर और (देवान्) विद्वान्, विजयाभिलाषी, वीर और तेजस्वी पुरुषों को (सोमपीतये) ऐश्वर्य के प्राप्त करने और पालन करने के लिये (आ वह) तू प्राप्त कर ।

उद्गने भारत शुमदज्ञेण दिविद्युतत् ।

शोचा वि भाद्यजर ॥ ४५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (भारत) प्रजा के पोषण करने हारे देवं मनुष्यों के स्वामिन् ! तू (शुमत्) कान्तियुक्त (अजस्वेण) अविनाशी, निरन्तर चमकने वाले तेज से (उत् दिविद्युतत्) सूर्य के समान सब से ऊँचा रह-कर प्रकाशित हो । हे (अग्ने) तेजस्विन् नाथक ! हे (अजर) जरादि दोषों से रहित युवा, बलवान् ! हे शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले ! तू (शोचा) कान्ति से (वि भाहि) विविध प्रकार से चमक और प्रजाओं को अच्छा लग । इत्येकोनत्रिशो वर्गः ॥

वीता यो देवं मर्तौ दुवस्येदुग्निमीळीताध्वरे हाविष्मान् ।

होतारं सत्युयज्ञं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥ ४६ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (वीती) कामना से (देवं) उत्तम कामना युक्त, तेजोमय, सर्वसुखदाता, प्रभु की (दुवस्येत) सेवा करता है, और जो पुरुष (हविष्मान्) अज्ञादि उत्तम सामग्री से सम्पन्न होकर (अध्वरे अग्निम्) यज्ञ में विद्यमान अशि के तुल्य अहिंसायोग्य उत्तम कर्मों में ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष का (ईडीत) आदर सत्कार करता है वह (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के तुल्य माता पिताओं के भी

ऊपर विद्यमान (होतारं) ज्ञान दान करने वाले (सत्य-यजं) सज्जनों
के उचित सत्य आचार, सत्य न्याय के देने वाले आचार्य और प्रभु को
(उत्तानहस्तः) ऊपर हाथ उठाकर (नमसा) आदरपूर्वक छुक कर
(आविवासेत्) उसकी सेवा करे, उसका मान पूजा करे । शुरु, राजा,
न्यायपति, पिता और ईश्वर सबके लिये समान रूप से आदर करे ।

आ तैं अग्न ऋचा हुविर्हृदा तुष्टं भरामसि ।

ते तैं भवन्तूक्षणं ऋषभासो वृशा उत ॥ ४७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानमय ! हे स्वप्रकाश ! (ते)
तेरे लिये हम (ऋचा) उत्तम मन्त्र से, उत्तम आदर से युक्त वचन
सहित, (हृदा) हृदय से (तष्टम्) सुसंस्कृत (हविः) ग्राह, अज्ञ
(आ भरामसि) प्रस्तुत करें (ते) तेरे कार्य के लिये (ते) वे सब
(उक्षणः) कार्य-भार उठाने वाले तथा वीर्यसेचन में समर्थ, बलवान्
पशु और मनुष्य, (ऋषभासः) सत्य न्याय से कान्तिमान्, नरश्रेष्ठ
पुरुष (उत वशाः) राष्ट्रों को वश करने वाले अधिकारी, (वशाः)
तुक्षे चाहने वाली प्रजाएँ (ते भवन्तु) तेरे अधीन हैं ।

श्रुतिं देवासो श्रावियमिन्द्रते वृत्रहन्तमम् ।

येना वसुन्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥ ४८ ॥ ३० ॥ ५ ॥

भा०—(देवासः) विजयाभिलाषो चीर पुरुष (वृत्रहन्तमम्)
बढ़ते, विघ्नकारी शत्रुओं के नाश करने में सब से बढ़ के (अग्रियम्) अग्रासन
प्राप्त करने योग्य (अग्रिम्) अग्निवत् तेजस्वी, अग्रणी उस पुरुष को
(इन्धते) अति प्रकाशित और प्रदीप करते हैं (येन वाजिना) जो
संग्रामचतुर और ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न पुरुष (वसुनि आभृता)
नाना धन लाता और (रक्षांसि तृळ्हा) दुष्टों को नाश कर चुकता है ।
इति त्रिशो वर्गः । इति पञ्चमोऽन्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[१७]

भरदाजा वाईस्पत्य ऋषिः ॥ इत्रोऽदेवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ११
त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ७, ८, १०, १२, १४ निचृत्तिष्टुप् ।
१३ स्वराट् पंक्तिः । १५ आच्युष्मिक् ॥

पित्रा सोममभि यमुग्र तर्दै ऊर्वं गव्यं महि गृणान् इन्द्र ।

वि यो धूष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रमस्त्रिया शवोभिः १

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्र को हनन-साधन रूप से अपने वश में
रखने हारे ! हे (धूष्णो) शत्रुओं का बलपूर्वक मान भङ्ग करने हारे !
हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) शत्रुओं का उद्दिष्ट करने में समर्थ !
बलवन् ! (यः) जो तू (शवोभिः) अपने बलों से (वृत्रम्) मेघ को
सूर्य के समान बढ़ते हुए शत्रु को और (विश्वा अभित्रिया) समस्त अमित्र
भाव से रहने वाले जनों को (वि वधिषः) विविध प्रकारों से दण्डित करते
हो वे आप (यम्) जिस (ऊर्वं) हिंसनीय शत्रु का (तर्दः) नाश
करते और (गव्यं) भूमि के हितकारी कृपि आदि (महि) श्रेष्ठ कर्म
का (गृणानः) उपदेश करते हुए आप उस (सोमम्) ऐश्वर्य का (पित्र)
उपभोग करो और पालन करो ।

स इ पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान्वृषभो यो मतीनाम् ।

यो गोत्रभिद्वज्जूभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ श्रुभि तृन्धि वाजान् २

भा०—(यः) जो पुरुष (ऋजीषी) सरल स्वभाव, धर्म मार्ग पर
अन्यों को प्रेरित करने वाला, (तरुत्रः) सब दुःखों से स्वयं पार, और
अन्यों को नाशकों से बचाने वाला और वृक्षवत् अपने अधीनों को छाया-
वत् आश्रय देने वाला है और (यः) जो (शिप्रवान्) उत्तम मुख,
नासिका वाला, सुन्दर सौम्य मुख वा मुकुटधारी है (यः मती नामम्

वृपभः) मननशील विद्वानों के बीच सर्वश्रेष्ठ (यः गोत्रभिद्) पर्वतों को विद्युत् के समान; भूमि के पालक राजाओं को भेदन करने में समर्थ और (यः) जो (हरिष्ठाः) अश्वों, अश्वसैन्यों और मनुष्यों पर अध्यक्ष रूप से स्थित है, (सः इं पाहि) वह तू इस राष्ट्र को पालन कर। और (सः) वह तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (विद्वान्) अहुत २ (वाजान्) संग्राम-कारी बलवान् परसैन्यों को (अभि तृन्धि) युद्ध द्वारा विनाश कर।

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यै कृणुहि पीपिहीयो जुहि शत्रूरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं और अज्ञान के नाश करने हारे राजन् ? विद्वन् ! तू (प्रत्नथा) पुरातन, (ब्रह्म) वेदज्ञान और पूर्वजों के धनों को (पाहि) सुरक्षित कर। वह (त्वा मन्दतु) तुझे नित्य उपदेश दे, एवं प्रसन्न करे। तू उसका (श्रुधि) श्रवण कर। (उत) और (गीर्भिः) वेद्वाणियों तथा उपदेष्टा विद्वान् जनों द्वारा (वावृधस्व) नित्य बढ़ा कर। तू (सूर्य आविः कृणुहि) सूर्य के समान अपने तेजस्वी रूप को प्रकट कर। (इषः पीपिहि) अन्नों का पान कर अथवा (इषः) इष्ट जनों वा अधीन सेनाओं की (पीपिहि) वृद्धि कर। (शत्रून् जहि) शत्रुओं का नाश कर। (गा: अभि) जो अपनी भूमियों पर आक्रमण करें उनको (तृन्धि) काट गिरा। (२) विद्वान् जन ज्ञान-वाणियों से बड़े, तेजो-मय आत्मा का साक्षात् करें, इष्ट वासनाओं को बढ़ावें और बाधक वासना कामादि अन्तःशत्रुओं का नाश करें, आनन्द रसदात्री चित्तभूमियों में स्थित कामादि को समूल करें।

ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।

महामनूरं तुवसुं विभूतिं मत्सुरासो जर्हैषन्त प्रसादम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रु के नाश करने हारे ! (ते) वे (इमे) ये (मदा:) अति हर्षदात्यक और तेरी सुति करने वाले, तुझे

सन्तुष्ट करने वाले और स्वयं तुल्य से वृत्ति पाकर तुल्य होने वाले, (पीताः) पालन किये गये, (मत्सरासः) हर्ष पूर्वक आगे बढ़ने वाले, (द्युमन्त्रम्) तेजस्वी (त्वा) तुल्य (महाम्) महान् , (अनूनं) किसी से अन्यून, सबसे अधिक (तवसं) बलवान् , (विभूतिं) विशेष सामर्थ्य युक्त (प्रसाहम्) उत्तम बलशाली, शत्रु पराजय करने वाले (त्वा) तुल्य को (उक्षथन्त) सीच, तेरा अभियेक करें, तुल्य बढ़ावें । और तुल्ये (जहपन्त) सदा प्रसन्न किया करें ।

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासुयोऽपद्वङ्घानि दर्ढत् ।

महामर्दिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसुः परि स्वात् ॥५॥१

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जिस प्रकार उदय होकर अपने तेजस्वी रूप को और उपा को प्रकट करता, दृढ़ अन्धकारों को दूर करता, पृथिवियों पर बड़े मेघ को प्रेरित करता है वा विद्युत् को फेंकता है उसी प्रकार (मन्दसानः) स्वयं प्रसन्न एवं प्रजा की कामना करता हुआ, (येभिः) जिन उपायों से (सूर्यम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को और (उपसम्) उपा के समान कान्तियुक्त, वा कामनावान् प्रजा वा, शत्रु देहकारी सेना को (अवासथः) अपने राष्ट्र में बसावे, और (द्वार्णि) दृढ़ शत्रु-सैन्यों को (अपदर्ढत्) दूर करने में समर्थ होता है, उन ही उपायों से तू (महाम्) बड़े गुणों में महान्, (सन्तं) सज्जन (अद्रिम्) निर्मय, मेघवत् प्रजा पर कृपालु, न विदीर्ण होने वाले, दृढ़, (अच्युतम्) धर्म से और मार्ग से च्युत न होने वाले, ब्राह्मण वर्ग और क्षात्र, शस्त्र बल को (गाः परि) भूमियों पर, सब ओर (स्वात् सदसुः परि) अपने राजभवन या राजधानी से दूर २ तक (नुत्थाः) भेजा कर । जिससे वह सर्वत्र ज्ञान का प्रसार और राष्ट्र की वृद्धि किया करें । हति प्रथमो वर्गः ॥

तत्र क्रत्वा तत्र तद्वंसनाभिरामासु पुकं शच्या नि दीधः ।

और्णोदुर्गं उच्चियाभ्यो वि द्वङ्घोदुर्वाङ्मा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥६॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (तव कत्वा) वेरी बुद्धि से और (तव दंसनामिः) तेरे नाना कर्मों से, (आमासु) बुद्धि और बल में अपरिपक्व प्रजाओं के बीच तू अपने (पक्ष) परिपक्व बल और ज्ञान को (शक्या) अपनी शक्ति और वाणी द्वारा (नि दीधः) स्थापित कर । (उस्तियाभ्यः) किरणों के लिये वा गौओं के लिये जिस प्रकार द्वार खोले जाते हैं उसी प्रकार (उस्तियाभ्यः) उत्तरितशील प्रजाओं के हित के लिये (दुरः) नाना द्वार, तथा विघ्ननिवारक उपाय, (वि औणोः) प्रकट कर, खोल, और तू (अंगिरस्वान्) प्राणों और तेजस्वी पुरुषों का स्वामी होकर (ऊर्वात्) हिंसाकारी शत्रु से अपनी (गाः) समस्त भूमियों को (वि असृजः) मुक्त कर, छुड़ा ॥

पुप्राथु चां महिंदंसो व्युर्वीसुप द्यामृष्वो वृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यद्वी ऋूतस्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! आप (महि दंसः) बड़े भारी कर्म-कौशल से (उर्वाम् शां प्राथ) बड़ी भारी भूमि को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करो और आप (क्रणवः) महान् होकर (उर्वां द्याम्) बड़ी भारी ज्ञानप्रकाश से युक्त राजसभा को वा शत्रु विजय करने वाली सेना को और (वृहत्) बड़े भारी राज्य को भी (उप स्तभायः) थाम । (ऋतस्य) सत्य न्याय के बल पर (यद्वीः) बड़ी, वा अपने पुत्रों के समान (मातरा) सत्यकी माता, पिता के तुल्य माननीय, (प्रत्रे) सनातन से विद्यमान, (देवपुत्रे) विद्वान्, बलवान् उत्तम पुरुषों को पुत्रवत् उत्पन्न करने वाली, (रोदसी) सूर्य और पृथ्वी के तुल्य परस्पर सम्बद्ध स्त्री पुरुषों तथा राज प्रजावर्ग दोनों को तू (अधारयः) धारण कर । (२) हे परमेश्वर तू महान् है । तू अपने बड़े सामर्थ्य से (ऊर्वाः चां शां प्राथ) भूमि और आकाश को रचता और थामता है । (देवपुत्रे) तेजस्वी सूर्यादि के भी उत्पादक, सनातन से मातृ पितृवत् जगत् के उत्पादक आकाश भूमि को भी धारण करता है ।

अधि त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तुवसं दधिरे भराय ।

अदेवो यद्भ्यौहि॒ष्ट देवान्त्स्वर्पाता वृणत् इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! प्रभो (यद्) जब (अ-देवाः) उत्तम प्रकाश आदि गुणों से रहित, तामसी पुरुष स्वभाव से (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (अभि औहि॒ष्ट) प्राप्त होकर उनके बीच नाना तर्क वितर्क करे तब (स्वः साता) वे उत्तम उपदेश को प्राप्त करने के निमित्त (अन्न) इस लोक में (इन्द्रम्) अज्ञाननाशक विद्वान् गुरु को (वृणते) प्राप्त करते हैं । इसी प्रकार जब (अदेवः) अराजक मनुष्यों का अहित पुरुष (देवान् अभि औहि॒ष्ट) मनुष्यों पर आक्रमण करे तब वे (स्वर्पाता) सुख प्राप्त करने और संग्राम करने के लिये (इन्द्रम् वृणुते) शत्रुहन्ता सेनापति को वरण करें (अधि) और उसी निमित्त (विश्वे देवाः) सब मनुष्य, (एकं) एक, अद्वितीय (तवसं) बलवान्, (त्वा) तुसको, (भराय) अपने पालन पोषण और संग्राम करने के लिये (पुरः दधिरे) तुझे आगे स्थापित करें ।

अधि द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद्वितान्मन्द्रियसा स्वस्य मन्योः ।

अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसान्ति नि चिंद्रिश्वायुः श्रुयथे जुधान् ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जो (विश्वायुः) समस्त मनुष्यों का स्वामी (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (ओहसान्म् अहिम् अभि) सम्मुख आते हुए शत्रु को (श्रुयथे चित्) उसको सुला देने के लिये मानो, (नि जघान) विनाश का सकता है, (अधि) तब (द्यौः चित्) भूमि या आकाश के समान ही (सा) वह प्रजा, हे इन्द्र ! राजन् ! (ते) तेरे समक्ष (द्विता अनयत्) दोनों प्रकार से छुके । एक तो (वज्राद् भियसा) वज्र अर्थात् शश के भय से ढूसरे (मन्योः भियसा) क्रोध के भय से ।

अधि त्वष्टा ते मह उग्र वज्र सुहस्रभृष्टि ववृतच्छ्रुताश्रिम् ।

निकाम्मुरमणसु येन नवन्तमहिं सं पिण्णगृजीपिन् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—(अध) और हे (क्रजीषिन्) ऋजु, सरल, धर्म मार्ग पर अन्यों को चलाने वाले ! और स्वयं भी धर्मानुकूल कामना करने हारे ! (ते महः) तेरे महान् (उग्रं) भयंकर (सहस्र-भृष्टिं) हजारों को एक ही वार में भून देने वाले, (शताश्रिम्) सैकड़ों के ऊपर आश्रित या सैकड़ों को नाश करने वाले, (अरमणसं) शत्रुओं को अच्छा न लगाने वाले (निकामं) यथेष्ट रूप से (वञ्चं) शब्द बल को (व्वष्टा) उत्तम शिल्पी (वृद्धतद्) बनावे । (येन) जिससे तू (नवन्तरम्) स्तुतिशील अति-नम्र (अहिम्) शत्रु को, गर्जते मेघ को विद्युत के समान (संपिणक्) अच्छी प्रकार दण्डित करे । इति द्वितीयो वर्गः ॥

वर्धान्यं विश्वे मृहतः सजोषाः पचच्छुतं महिषाँ इन्द्रं तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्तहणि मदिरमंशुमस्मै ॥१॥

भा०—(यं) जिसको (विश्वे मृहतः) सब बीर एवं प्रजा के पुरुषः (सजोषाः) समान रूप से ग्रीतियुक्त होकर (वर्धान्) बढ़ाते हैं (पूषा) सबका पोषक सूर्य, पृथिवी, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (शतं) सौ, सैकड़ों, अनेक, (महिषान्) बड़े, और श्रेष्ठ भोग्य अच, फल पदार्थों के देने वाले, वृक्षों, और खेतों को (पचत्) परिपक्क करता है, और (विष्णुः) व्यापक (धावन्) निरन्तर वेगसे चलने हारा वायु (त्रीणि सरांसि) तीनों जाने योग्य लोकों को (धावन्) दौड़ता या जाता या उनको पवित्र करता हुआ, (अस्मै) इस उचित राज्य के नायक (वृत्रहणम्) विश्वकारी शत्रुओं के नाशक, (मदिरम्) हर्षजनक (अंशुम्) तेज को भी प्रदान करता है ।

आ क्षोडो महि॑ वृतं नदीनां परिष्टितमसृजमूर्मिसृपाम् ।

तासुमनु॑ प्रवतं इन्द्रं पन्थ्यां प्रादीयो नीची॒रपसः ससुद्रम् ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशक राजन् ! जिस प्रकार सूर्य (नदीनां) नदियों के (अपां) जलों के (ऊमिम्) ऊपर गये

अंश को (महिः क्षोदः) बड़े भारी अति क्षुद्र २ कणिका रूप में विद्यमान (वृतं) मेघ से आच्छादित और (परि स्थितम्) आकाश में सर्वत्र व्यास (असृजः) करता है, और वही (प्रवतः अनु) नीचे के देशों की ओर (तासां पन्थाम्) उन जलों का मार्ग कर देता है और (समुद्रम् प्रति अपसः नीचीः प्र अर्दयः) समुद्र के प्रति उनके वेगों को नीचे की ओर ही वेग से कर देता है वही जल बहकर फिर समुद्र में मिल जाते हैं उसी प्रकार (नदीनाम् अपाम्) समृद्धिशाली आप प्रजाओं के महि) बड़े भारी (वृतं) सुरक्षित और (ऊर्मिम्) उन्नत, और (परि स्थितम्) सब ओर विराजते (क्षोदः) बल को (असृजः) प्राप्त कर। और (प्रवतः अनु) उत्तम उद्देश्यों के प्रति हे (इन्द्र) राजन् ! (तासाम् पन्थाम् असृजः) उन प्रजाओं को मार्ग बना तथा (समुद्रम् प्रति) समुद्र के समान महान् अखिलाश्य, परमेश्वर के प्रति उनके (अपसः प्रार्दयः) कर्मों को प्रेरित कर।

एवा ता विश्वा चकृवांसुमिन्द्रं महामुग्रमजुयं सहोदाम् ।

सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥१३॥

भा०—(एव) इस प्रकार (ता विश्वा) उन २ समस्त कर्मों को (चकृवांसम्) करते हुए, (इन्द्रम्) ऐश्वर्य युक्त, (महार) महान्, (उग्रम्) उग्र, बलवान्, (अजुर्यम्) उदाहे से रहित, सदा युवा, (सहोदाम्) बलप्रद (सुवीरं) उत्तम वीर, (स्वायुधम्) उत्तम शस्त्राश्र से सम्पन्न, पुरुष को प्रजा (अवसे) रक्षा, पालन और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (आववृत्यात्) सब प्रकार से प्राप्त करे और वह (नव्यम्) उत्तम से उत्तम (व्रह्म) महान्, बल, धन और अज्ञादि को प्राप्त करे।

स नो वाजायु श्रवस इषे च गाये धाहे द्युमति इन्द्र विप्रान् ।

भरद्वाजे नृवत इन्द्र सुरीन्दुवि च स्मौधि पार्ये न इन्द्र ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सः) वह तू (द्युमतः) दीसि,

कान्ति आदि से युक्त (नः) हमें (वाजाय) बलैश्वर्य प्राप्त करने, (श्रवसे) अज्ञ, कीर्ति और ज्ञान प्राप्त करने और (इषे) इष्ट वाञ्छित सुख प्राप्त करने और (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (धेहि) धारण और पालन कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नृवृतः सूरीन्) मनुष्यों के स्वामियों और विद्वानों को (भरद्वाजे) अज्ञादि से भरण पोषण करने के काम में और (दिवि) राजसभा और न्यायव्यवहार के कार्य में (धेहि), नियुक्त कर । हे ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (पार्ये) संकटों से पार करने में समर्थ (एधि) हो ।

अथा वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १५॥३॥

भा०—(अया) इस रीति से हम (देवहितम्) मनुष्यों के हित-कारी, एवं विद्वान् पुरुषों से दिये तथा वीर पुरुषों से प्राप्त (वाजं) ज्ञान और ऐश्वर्य, अज्ञ आदि पदार्थ को (सनेम) स्वयं सेवन करें और औरों को भी दान करें । इस प्रकार हम लोग (सुवीराः) उत्तम पुत्रः पौत्रादिवान् होकर, (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न होकर रहें । इति तृतीयो वर्गः ॥

[१८]

भरद्वाजो वीर्हस्पत्य ऋषेः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, १४ निचू-
त्रिष्टुप् । २, ८, ११, १३ त्रिष्टुप् । ७, १० विराट् त्रिष्टुप् । १२ भुरिक्-
त्रिष्टुप् । ३, १५ भुरिक्पांकिः । ५ स्वराट्पांकिः । ६ ब्राह्म्युष्णिक् ॥

तमु प्रुहि यो अभिभूत्योजा वृन्वन्नवातः पुरुहृत इन्द्रः ।

अषाढ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गार्भिर्वीर्धं वृप्तभं चर्पणीनाम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (यः) जो (अभिभूत्योजाः) शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ, पराक्रमशाली हो और जो (आवातः) स्वयं न मारा,

जाकर भी (पुरुहूतः) बहुतों से स्तुति योग्य और पुकारा जाकर (वन्वन्) शत्रुओं का नाश करता हो (तम् उ) उस की अवश्य तू (स्तुहि) स्तुति कर। तू उस ही (चर्षणीनां वृषभम्) मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ (अपाहं) पराजित न होने वाले, (उग्रं) बलवान् (सहमानम्) शत्रुओं को पराजय करने वाले पुरुष को (गीर्भिः) उत्तम २ वाणियों से (वर्धं) बढ़ा।

स युध्मः सत्वा खजुक्तस्मद्वा तुविष्वक्षो नदनुमाँ ऋजीपी।
वृहद्वेषुश्चयवन्नो मानुषीणामेकः कृष्णानामभवत्साहावा॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (युध्मः) युद्ध करने में चतुर, (सत्वा) बलवान्, (खजुक्त्) नाना संग्रामों को करने वाला, (समद्वा = सम्-अद्वा) उत्तम अन्न का भोक्ता, अथवा, सबके साथ आनन्द प्रसन्न रहने वाला, (तुवि-ग्रक्षः) बहुत सी प्रजाओं को ज्ञेह करने हारा, निष्पक्षपात, (नदनुमान्) गर्जनाशील, उपदेष्टा, (ऋजीपी) सरल ऋजु व्यवहार मार्ग में प्रेरणा करने वाला, (वृहद्वेषुः) बहुत से हिंसक चांद पुरुषों का स्वामी, (मानुषीणाम् कृष्णानाम्) मननशील प्रजाओं के बीच (एकः) अकेला, अद्वितीय (च्यवनः) उनका नेता, और (सहावा) बलवान् (अभवत्) हो।

त्वं ह तु त्यद्दमायो दस्युंरेकः कृष्णरेवनोरायांय।
अस्ति स्विष्व वीर्यं तत्त्वं इन्द्रं न स्विदस्ति तद्वतुथा वि वीर्यः॥३॥

भा०—(त्वं ह) तू निश्चय से, (त्यत्) वह है जो (एकः) अकेला, अद्वितीय ही (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुषों के हितार्थ (दस्यून् अद्दमयः) दुष्ट प्रजानाशक पुरुषों का दमन करे और (कृष्णः अवनोः) कृषि करने वाली अहिंसक प्रजाओं का सेवन कर। (तत् ते वीर्यं अस्ति-स्विव) तेरा वह अद्वितीय बल है भी (न स्विद् अस्ति) या नहीं है

(तत्) इस बात को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू (ऋतुथा) अव-
सर २ पर (वि वोचः) विविध प्रकार से बतलाया कर ।

सदिद्धिं तै तुविज्ञातस्य मन्ये सहः सहिष्टु तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवस्तुतवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो वभूव ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहिष्ट) बहुत बलशालिन् ! (तुरतः तुरस्य) हिंसक
दुष्ट पुरुष को मारने वाले वा शीघ्र अश्वादि बल को शीघ्रता से चलाने
वाले (तुविज्ञातस्य) बहुतों में प्रसिद्ध, (ते) तेरा (सहः सद् हि)
शत्रु पराभवकारी बल निश्चय से विद्यमान ही रहता है । (इति मन्ये)
मैं यह स्वीकार करता हूँ । (अरध्रस्य) स्वयं शत्रुओं के वश न आने
वाले, वा अहिंसक (रध्रतुरः) हिंसकों के नाश करने वाले (तवसः)
बड़े बलवान् (उग्रस्य) भयंकर तेरा (तवीयः) अति अधिक (उग्रम्)
बड़ा भयंकर बल (वभूव) हो ।

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदिद्धिर्वलमङ्गरोभिः ।
हन्त्युतच्युद्दस्मेष्यन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५॥४॥

भा०—हे इन्द्र ! राजन् ! (नः) हमारा (युष्मे) तुम्हारे साथ
(प्रत्नं सख्यम्) सदातन से चला आया मैत्रीभाव (अस्तु) बना
रहे । (इत्था) इस प्रकार (वदिद्धिः) प्रतिज्ञापूर्वक सत्य बचन बोलते
हुए (अंगिरोभिः) तेजस्वी पुरुषों की सहायता से तू (वलम्) नगर
धेरने वाले (इषन्तं) सैन्य सज्जालित करते हुए शत्रु को-मेघ को
सूर्य के समान (हन्) नाश करे । (अस्य) नाश करने हारे ! उसके तू
(पुरः वि क्रणोः) नगरों का नाश कर और (विश्वाः दुरः वि क्रणः) अपने
समस्त शत्रुवारक सेनाओं को विविध दिशाओं में भेज, वा (अस्य विश्वाः
पुरः वि क्रणोः) इसके दूर के समस्त द्वारों को तोड़ डाल । इति चतुर्थो वर्गः ॥
स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महृति वृत्तूर्यै ।

स तोकसांता तनये स व्रजी वितन्तुसाथ्यो अभवत्सुमत्सु ॥६॥

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों के द्वारा वा उत्तम स्तुतियों से (हव्यः अस्ति) प्रशंसनीय, आदर करने योग्य हो, वह (महति वृत्तर्यै) बड़े भारी दुष्ट नाशकारी संप्राम में (उग्रः) बलवान्, और (ईशानकृत् अस्ति) सामर्थ्यवान् पुरुषों को अधिकारी बनाने हारा हो । (सः) वह (तनये) पुत्रों में (तोकसाता) धनादि का न्यायपूर्वक विभाजक और (सः) वह (वज्री) दण्डधारी (समन्सु) संग्रामों और एक साथ हर्ष के अवसर उत्सवादि काल में (वितन्तसायः अभवत्) विविध प्रकार के शत्रुओं का नाशकारी और राष्ट्र सम्पत्तिका विस्तार करने वाला हो ।

स मूलमना जनिमु मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र संर्वे ।

स द्युम्नेन स शवसुते राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह राजा स्वयं (मज्जना) बलसे और (अमर्त्येन नाश्ना) और अपने असाधारण शत्रु को नमाने वाले सामर्थ्य से (मानुषाणां जनिम) मनुष्यों के जनसमूह वा मानुष जन्म को (अति प्रसर्वे) लांघ जावे । (सः) वह (द्युम्नेन) यश से (स शवसा) वह बल से और (उत राया) धन से, और (सः वीर्येण) वह वीर्य से (नृतमः) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ और (सम्भोकाः) सब से उत्तम पद, और स्थान को प्राप्त करे ।

स यो न सुहे न मिथु जनो भूत्सु मन्तु नामा चुमुर्दि धुनि च ।

वृणपिक्मु शम्वरं शुष्णु मिन्दः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नूचित् । ८

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशकारी राजा सूर्य के तुल्य तेजस्वी होकर (पिङ्रुं) अपना धन भरने वाले, (शम्वरं) सेधवत् शान्तिकारक सुखों के आहादक, (शुष्णम्) प्रजा के रक्तशोषक (चुमुर्दि) प्रजा के सर्वस्व खा जाने वाले और (धुनिम् च) उसको भय मे कंपाने वाले दुष्ट जनों को भी (वृणक्) नाश करता है, और जो (पुरां)

पूर्ण ऐश्वर्यों के (च्यौत्तनाय) प्राप्त करने (शयथाय नूचित) प्रजाओं के सूखपूर्वक सौने के लिये उक्त दुष्टों का नाश करता है, (यः न सुहे) जो कभी मोह में नहीं पड़ता, (न मिथू जनः भूत) जो कभी असत्यवादी पुरुष नहीं होता (सः) वह ही (सुमन्तु नाम भूत) उत्तम मननशील नाम से प्रसिद्ध होता है ।

**उदावत्ता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्यायु रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रे हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥ ९ ॥**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (उत्त-भवता) उत्तम मार्ग पर चलने हरे, (चक्षसा) शत्रुओं का नाश करने वाले (पन्यसा) अतिसत्यव्यवहार से तू (वृत्रहत्याय) अपने बढ़ते और विज्ञकारी शत्रुओं के नाश के लिये (रथम् तिष्ठ) रथ पर सवार हो । और (दक्षिणत्र हस्ते) दायें हाथ में (वज्रम् धिष्व) शत्रु ग्रहण कर । हे (पुरुदत्र) नाना दान योग्य धनों के स्वामिन् ! तू (मायाः अभि प्रमन्द) उत्तम वृद्धियों को प्राप्त होकर हर्षित और तेजस्वी हो । मन्दतिर्ज्वलितकर्मा पठितः ॥

**श्रग्निर्ण शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्ण भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्वुरिता दुम्भयच्च ॥ १० ॥ ५ ॥**

भा०—(अग्निः शुष्कं वनं न) आग जिस प्रकार सूखे वन को भस्मसात् कर देती है, और जिस प्रकार (भीमा अशनिः न) भयंकर विजुली पड़कर वृक्षादि को जलाती है और प्रहार करती है उसी प्रकार हे (इन्द्र) इन्द्र (यः) जो तू (रुरोज) शत्रु बल को भज्ञ करता (अध्वनयत) घोर नाद करता, और (दुरिता) दुष्ट आचारों को भी (दम्भयत च) विनाश करता है, वह तू है शत्रुहन्तः ! (हेतिः) आधातकारी होकर स्वयं (गम्भीरया) अति बलवती, गम्भीर नाद करने वाली (ऋष्वया)

बड़ी भारी, शक्ति से युक्त होकर (रक्षः नि धक्षिः) दुष्ट पुरुष को भस्म कर डाल । इति पञ्चमो वर्गः ॥

आ सुहस्रं पृथिभिरन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजैभिर्वर्वाक ।

याहि सूनो सहस्रो यस्य नूचिददेव ईशे पुरुहृत योतोः ॥११॥

भा०—हे (सहस्रः सूनो) बल के सज्जालक ! और बलवान् पिता के पुत्र ! वा बल पराक्रम के द्वारा स्वयं उत्पन्न ! हे (पुरुहृत) बहुतों में प्रशंसित ! (यस्य) जिस (योतोः) प्राप्त होने योग्य धन का (अदेदः) अदानशील पुरुष (ईशे) स्वामी बना हुआ है उस धन को तू (आयाहि) अवश्य प्राप्त कर और हे (इन्द्र) दुष्टनाशक ! हे (तुवि-युम्न) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (तुवि-वाकेभिः) बहुत से वेगवान् अश्वादि साधनों से (पृथिभिः) उसम मार्गों से और (राया) ऐश्वर्य के बल से (सहस्रं अर्वाक् आ याहि) हज़ारों प्रकार के धनों और ऐश्वर्यों को साक्षात् प्राप्त हो ।

प्र तुविद्युम्नस्य स्थंविरस्य घृष्ण्वैर्दिवो ररप्ते महिमा पृथिव्याः ।

नास्य शत्रुं न प्रतिमानमस्तु न प्रतिष्ठिः पुरुहमायस्य सह्योः ॥१२॥

भा०—(तुवि-युम्नस्य) बहुत ऐश्वर्यवान्, (स्थंविरस्य) स्थिर, दीर्घजीवी, (घृष्ण्वः) शत्रुओं का धर्षण करने, उनसे टकर लेकर उनको निर्बल कर देने वाले, (पुरु-मायस्य) बहुत बुद्धि वाले, चतुर, (सह्योः) सहनशील पुरुष का (महिमा) महान् सामर्थ्य (दिवः ररप्ते) इस महान् आकाश, तेजस्वी सूर्य से भी बढ़ जाता है, और (पृथिव्याः प्ररप्ते) पृथिवी से भी अधिक होता है । (अस्य शत्रुः न अस्ति) उसका कोई शत्रु नहीं होता । (नः प्रति-मानम् अस्ति) न उसका कोई प्रति-दृन्दी, उसके समान, उसका मुकाबला करने वाला ही होता है । और (न प्रति-र्षिः) न उसके मुकाबले पर खड़ा होने वाला होता है वा न उसका कोई आधाय होता है, प्रत्युत वही सबका आश्रय होता है । (२) परमे-

श्रव तेजःस्वरूप, ऐश्वर्यवान् होने से 'तुविद्युन्न' है, सनातन कूटस्थ होने से 'स्यविर', कालकम से सब पदार्थों के धर्षण वा संहार करने से 'धृष्टि' और जीवों को उपदेश करने, बनाने और बहुप्रज्ञ होने से 'पुरुमाय' और बलशाली होने से 'सद्य' है। उसकी महिमा आकाश, सूर्य, पृथ्वी आदि से कहीं महान् है। उसका न कोई शत्रु, न अतिमा, न माप, और न आश्रय है वही सबका आश्रय है।
प्र तत्त्वं अ॒द्या करणं कृतं भूत्कृत्स्नं यद्युमितिथिग्वमस्मै ।

पुरु सहस्रा नि शिशा अभि ज्ञामूर्च्छीयाणं धृपुता निनेथ॥१३॥

भा०—हे राजन् ! (यत्) जो तू (अस्मै) इस राष्ट्र के हित के लिये (पुरु) बहुत से (कृत्स्न) शख समूह को (नि शिशाः) ज्ञासन कर और (पुरु आयुम् नि शिशाः) बहुत से मनुष्यों को अपने अधीन ज्ञासन कर और (पुरु अतिथिग्वम् नि शिशाः) बहुत से अतिथियों को प्राप्त होने वाले सत्कारयोग्य धन प्रदान कर (पुरु सहस्रा नि शिशाः) बहुत से हजारों धनों, बलों को भी ज्ञासन करता, और (धृपता) शत्रु को पराजय करने वाले बल से (तूर्व-याणं) शीघ्र यान वाले (क्षाम्) राष्ट्र निवासी प्रजाजन को (अभि उत् निनेथ) ऊपर उठाता, उत्तरि की ओर ले जाता, वा उत्तम पद प्रदान करता है (अद्य) आज भी (ते) तेरा (तत्) यह (करणं) करना चाहा (कृतंम्) किया हुआ कर्म भी (प्र भूत्) उत्तम सामर्थ्य को बढ़ाने चाला है। (२) परमेश्वर का यह महान् प्रभुता का कार्य है कि वह इस जीव को ज्ञानवज्ज्ञ, दीर्घ जीवन, और इन्द्रिय देता है। सहस्रों सुख देता है और उसे शीघ्रगामिनी भूमि, नरदेह देता, वा उसको उत्तम पद की ओर ले जाता है।

अनु त्वाहिंच्न अध देव देवा मदन्विश्वे कृवितमं कृवीनाम् ।
कर्तौ यज्ञ वरिंवो वाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ १४ ॥

भा०—हे (देव) राजन् ! दानशील ! तेजस्विन् ! (यत्र) जहाँ
 (वाप्तिकाय) पीड़ित, दुःखित और (दिवे) कामना, युक्त, इच्छुक,
 (जनाय तन्वे) प्रजाजन के शरीर के सुख के लिये (गृणानः) उत्तम
 उपदेश करता हुआ तू ही (वरिवः) उत्तम धन तथा सेवा (करः)
 करने हारा है उस देश में (कवीनां कवितमम्) विद्वान् कान्तदर्शीं,
 दूरदर्शीं पुरुषों में श्रेष्ठ विद्वान् (त्वा) तुझको ही (विश्वे देवाः)
 समस्त प्रजा के मनुष्य प्राप्त करके (अहिन्ने) शत्रु के नाश करने
 के लिये वा मेघनाशक सूर्यवत् तेजस्वी पद प्राप्त करने के लिये (अनु-
 मदन्) तेरे अनुकूल रहकर प्रसन्न होते हैं और (त्वा अनुमदन्) तेरी ही
 स्तुति करते हैं, तुझे ही प्रधान पद के लिये प्रस्तुत और समर्थन करते
 हैं। दुःखित जनों के सुखार्थ सेवा और धनार्पण करने हारे, त्यागी, देश-
 सेवक को ही प्रधान पद पर प्रस्तुत करना चाहिये ।

अनु द्यावापृथिवी तत्त्र ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।

कृष्णा कृत्नो अकृतं यत्तु अस्त्युकथं नवीयो जनयस्व यज्ञैः । १५।६।

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अन्नों के देने वाले ! (अमर्त्याः)
 न मरने वाले, दीर्घजीवी (देवाः) विद्वान् और दानशील प्रजाजन,
 (द्यावापृथिवी अनु) सूर्य और पृथिवी का अनुकरण करते हुए (ते तत्)
 तेरे उस (ओजः) पराक्रम को (अनु जिहत) प्राप्त करें । (यत ते)
 और जो (ते) तेरा (अकृतं) न किया हुआ काम (अस्ति) है हे
 (कृत्नो) करने वाले पुरुष ! तू उसको भी (कृष्ण) करले । और
 (यज्ञैः) परस्पर आदर सत्कार और सत्संगों द्वारा (नवीयः) अति स्तुत्य,
 उत्तमोत्तम (उक्तं जनयस्व) वचन, वेद ज्ञानमय उपदेश को प्रकट कर ।
 इति पष्टो वर्गः ॥

[१६]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, १३ भुरिक्पंक्तिः ।
 ६ पंक्तिः । २, ५, ६, ७ निचृतिविष्टुप् । ५, १०, ११, १२ विराट् त्रिष्टुप् ।
 ८ त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्च सूक्तम् ॥

सहाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विवर्ही अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्ग्रंथवृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कृत्तिभिर्भूत् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (नृवत्) शरीर के नायक ग्राणों और रक्षियों से युक्त है (चर्षणिप्रा) दर्शन कराने वाले आंखों को प्रकाश से पूर्ण करता है । (द्विवर्हीः) अन्तरिक्ष और वायु दोनों से बढ़ने हारा, (वीर्याय) बल की बुद्धि के लिये होता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष, (महान्) महान् हो । वह (नृवत्) नायक पुरुषों का स्वामी, और (चर्षणि-प्रा) प्रजाओं को सुख समृद्धि से पूर्ण करने वाला, (सहोभिः) बलवान् सैन्य वर्ग से (अमिनः) सहायक वर्ग का स्वामी, शत्रु का पीड़क और और प्रजा का अहिंसक (उत) और (द्वि-वर्हीः) सपक्ष विपक्ष, वा प्रजा वा शासक दोनों वर्गों से बढ़ने वाला, एवं दोनों पक्षों को बढ़ाने वाला, होकर (अस्मद्ग्रंथ) हमारे प्रति कृपा-युक्त होकर (वीर्याय) अपने बल बढ़ाने के लिये (वृधे) खूब बढ़े । वह (कर्त्तिभिः) उत्तम कार्य करने वाले सहायकों सहित (सुकृतः) उत्तम कर्म करने हारा, (उरुः) महान् और (पृथुः) विशाल शक्ति-सम्पन्न (भूत्) हो ।

इन्द्रसेव धिषणा सातये धाद्वृहन्तमृष्वमृजरं युवानम् ।

अपाळहेन शवसा शूशुवांसं सुद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (सद्यः चित्) बहुत शीघ्र, वा सदा ही, (असामि) बहुत अधिक (वृधे) बुद्धि को प्राप्त होता है, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (वृहन्तम्) महान् (अजरम्) अविनाशी, (युवानम्) तरुण, (अपाढेन शवसा) असद्य, बल से (शूशुवांसम्) फैलने बढ़ने बढ़ाने वाले, राष्ट्र को व्यापने वाले, पुरुष को प्रजाजन (धिषणा) कर्म और बुद्धि से (सातये धात्) राज्य भोग करने के लिये सर्वोपरि स्थापित करे । (२) उस परमैश्वर्यवान्, महान्, अजर, अविनाशी नित्य, तरुण, महान्

पराक्रम से व्यापक पूर्ण बुद्धियुक्त परमेश्वर को (धिषणा) बुद्धि (सात-
ये धात्) भजन करने के लिये धारण करे ।

पृथू करस्ना॑ वहुला॒ गभस्ती॑ अस्मद्य॑ क्सं मिमीहि॒ श्रवांसि॑ ।
यूथेव॑ पश्वः पशुपा॑ दमूना॑ अस्माँ॑ इन्द्राभ्या॑ वृत्स्वाजौ॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! तू अपने (पृथू) अति विशाल
(करस्ना) नाना कर्मों को करने वाले वा, आर्य जनों को शुद्ध, निर्दोष
करने वाले (गभस्ती) ग्रहणशील, बाहुओं को (वहुला) बहुत धन प्राप्त
करने वाला, बना और उनसे हमें (श्रवांसि) नाना प्रकार के अन्न, धन,
यश और ज्ञानादि (सं मिमीहि) सम्मानपूर्वक प्रदान कर । (पशुपाः
पश्वः यूथा इव) पशुओं का पालक पुरुष जिस प्रकार पशुओं के यूथों को
(आवर्त्तते) अपने वश करता है उसी प्रकार (आजौ) संग्राम काल में
तु (दमूना॑ः) दमनशील जितेन्द्रियचित्त होकर (अस्मान् अभि) हमारे
प्रति (आ वृत्स्व) आ और हमारी रक्षा कर ।

तं वृ इन्द्र॑ चतिन॑मस्य शाकैरिह॑ नृनं वौज्यन्तो॑ हुवेम ।
यथा॑ चित्पूर्व॑ जरितार॑ आसुरनैद्या॑ अनवृद्या॑ अरिष्टाः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुषषो ! प्रजाजनो ! (नृनं) निश्चय से हम लोग
(वः) आप लोगों में से (इन्द्रं) ऐश्वर्यशील, (चतिनम्) शत्रु के
नाशक, पुरुष को (अस्य शाकैः) उसकी शक्तियों और सामर्थ्यों से
(वाज्यन्तः) संग्रामों और ऐश्वर्यों की कामना करते हुए (इह तं हुवेम)
उस राष्ट्र में उसको प्राप्त करें । और (यथाचित्) जिस प्रकार (पूर्वे॑)
पूर्व के (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा, (अनेद्याः) अनिदित आचरण
(अनवृद्याः) स्वच्छ पवित्र, (अरिष्टाः) अहिंसित जीवन होकर (आसुः)
रहे हों वैसे ही हम भी उत्तम आचार चरित्र वाले होकर रहें ।

धृतवृतो॑ धनदा॑ः सोमवृद्धः॑ स हि व्रामस्य॑ वसुनः॑ पुरुज्ञुः॑ ।
सं जग्मिरे॑ पृथ्या॑ रायो॑ अस्मिन्तस्मुद्रे॑ न सिन्धृवो॑ याद॑माना॑ ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह (हि) निश्चय से (धृत-व्रतः) व्रत, उत्तम कर्म करने के दृढ़ निश्चयों, प्रतिज्ञाओं को धारण करने वाला, (धन-दाः) धन देने वाला, (सोम-वृद्धः) ऐश्वर्य और अज्ञादि से परिपुष्ट पुरुष (वाम-स्त वसुनः) सुन्दर, उपभोग योग्य ऐश्वर्य का स्वामी और (पुरुक्षुः) बहुत से अज्ञों का स्वामी हो । (समुद्रे सिन्धवः न) समुद्र में नदियों के समान (अस्मिन्) उसमें (पथ्याः रायः) सम्मार्गों से आने वाले ऐश्वर्य (यादमानाः) निरन्तर आते हुए (सं जग्मिरे) एकत्र हो जावें । इति सप्तमो वर्गः ॥
शविष्ठं तु आ भेर शूर शबू ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणाम् समभ्यं दा हरिवो माद्यध्यैष्ठा ॥

भा०—हे (शूर) शत्रुओं को नाश करने में कुशल ! वीर पुरुष ! (अभि-भूते) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ ! त् (ओजिष्ठम्) सब जनों से श्रेष्ठ और (उग्रम्) अति उग्र (ओजः) पराक्रम और (शविष्ठं शबूः) सब से अधिक उत्तम (नः आभर) हमें प्राप्त करा हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! आप (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (माद्यध्यैष्ठा) आनन्द पूर्वक उपभोग करने के लिये, उनको सुखी और आनन्दित करने के लिये (विश्वा) समस्त (वृष्ण्या) बलवान् पुरुषों के उचित एवं बलजनक, (द्युम्ना) धन, मान, और यश, (अस्मभ्यं दाः) हमें प्रदान कर ।

यस्ते मदः पृतनाषाढ्मृध्व इन्द्रु ते तु आ भेर शूश्युवांस्तम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिर्णीवांस्त्वोताः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) अतिहर्ष, उपदेश वा हर्षकारी, उपदेष्टा (पृतनाषाट्) मनुष्यों वा सेनाओं को विजय करने में समर्थ और (अमृध्रः) कभी नाश न होने योग्य है, (येन) जिसके द्वारा हम (त्वोताः) तुक्ष से सुरक्षित रहकर (जिर्णी-वांसः) विजयशील होकर (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुनर पौत्र के प्राप्त होने,

और धन विभाग के कार्य में ठीक ज्ञान वा न्याय व्यवहार जान सके (तं) उस (शुश्रवांसं) उत्तम गुणों से युक्त, सर्वोत्तम न्यायकर्त्ता पुरुष को (नः आभर) हमें प्राप्त करा ।

आ नो भर वृषणं शुभ्मिन्द्र धनस्पृतं शूश्रवांसं सुदक्षम् ।

येन वंसाम् पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीरँजामीन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः (वृषणं) बलवान्, उत्तम प्रबन्ध करने में चतुर, (शुभ्मम्) शत्रुओं को शोषण करने वाले, सुखप्रद, (धनस्पृतं) धन को पूर्ण करने वाले, (शूश्रवांसम्) अति उत्तम, प्रचुर, (सुदक्षम्) उत्तम व्यवहारकुशल, और बलवान् पुरुष (नः भर) हमें प्रदान कर । (येन) जिसके द्वारा (तव ऊतिभिः) तेरे रक्षा कार्यों से सुरक्षित रहकर हम (पृतनासु) संग्रामों में (जामीन् अजामीन्) क्या बन्धु रूप और क्या बन्धुओं से भिन्न (शत्रून्) समस्त शत्रुओं को (वंसाम) विनाश करें वा उनका (पृतनासु वंसाम) मनुष्यों के बीच न्यायपूर्वक विभाग करें ।

आ ते शुभ्मो वृषभं पतु पश्चादोच्चरादधरादा पुरस्तात् ।

आ विश्वतो अभि समैत्वर्वाङ्मिन्द्रं द्युमनं स्वर्वद्वहास्मे ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! पेश्वर्यवन् ! राजन् ! (ते) तेरा (वृषभः) बलवान् (शुभ्मः) शत्रुओं को शोषण करने में समर्थ, (वृषभः) धर्म से तेजस्वी, बलवान्, पुरुष (पश्चात्) पीछे से (उत्तरात्) बायें से वैसे ही (अधरात्) नीचे से, (पुरस्तात्) आगे से (आ पतु) आये । वह (विश्वतः) सब ओर से (आ पतु) आये, (अभि पतु) आगे बढ़े, (सम् पतु) ठीक प्रकार से चले । हे राजन् ! तू (अस्मे) हमारे उपकार के लिये (अर्वाङ्) हमारे साथ हमें प्राप्त होने वाले (स्वर्वत्) सुखयुक्त, तेजःसम्पन्न, उत्तम उपदेशपूर्ण (द्युम्नं) धन, यश, ज्ञानप्रकाश, (धेहि) धारण कर और करा ।

नृवत्तं इन्द्रं नृतमाभिरुती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
इक्षे हि वस्वं उभयस्य राजुन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शशुहन्तः ! हे सूर्यवत् तेजस्त्रिवन् ! विद्वन् ! (ते) तेरे (नृवत्) उत्तम नेता पुरुषों से युक्त, उत्तम भृत्यादि सम्पन्न (वामं) उत्तम धन और ज्ञान को हम लोग (नृ-तमाभिः) उत्तम पुरुषों से सेवन करने योग्य (ऊती) क्रियाओं, रीतियों और (श्रोमतेभिः) उत्तम पुरुषों से श्रवण करने योग्य वचनों से (वंसीमहि) हम प्राप्त करें । हे (राजन्) उत्तम गुणों से प्रकाशमान ! तू (उभयस्य वस्वः) दोनों प्रकार के धनों, अर्थात् राष्ट्र में वसने वाले प्रजा रूप धन और उपभोग योग्य ऐश्वर्य सुवर्णादि धन को भी (इक्षे हि) निश्चय से देखता है । तू (महा) बड़ा (स्थूरं) स्थिर और (बृहन्तम्) महान् (रत्नं) रमण, सबको प्रसन्न करने योग्य, उत्तम नर रत्न को रत्नवत् (धा:) स्वयं धारण कर और राष्ट्र में स्थापित कर ।

मृहत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारि दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहुमवस्ते नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥

भा०—हम लोग (अवसे) रक्षा कार्य के लिये, ज्ञान प्राप्त करने के लिये (मृहत्वन्तम्) वायु के गुणों से युक्त सूर्यवत् तेजस्त्री एवं मनुष्यों, वीर पुरुषों के स्वामी, (वृषभं) मेघवत् सुखों के वर्षण करने वाले, बैल के समान राज्य शक्ट को उठाने में समर्थ, (वावृधानं) स्वयं बढ़ने वाले (अकवारिम्) शशु भी जिसकी निन्दा न करते हों, ऐसे (दिव्यम्) ज्ञान और तेज में प्रसिद्ध, (शासम्) शश बल के तुल्य शासक, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवन् ! शशुहन्ता, (विश्वासाहम्) सबको पराजित करने वाले, सब कष्टों को सहने वाले, (उग्रम्) बलवान् (सहोदाम्) बलप्रद, (तं) उस पुरुष को (हह) इस राष्ट्र में उच्चपद पर (नूतनाय) सर्वस्तुत्य, सदा नये से नये, (अवसे) रक्षा कार्य और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (हुवेम) आदर पूर्वक प्राप्त करें ।

जनं वजिन्महि चिन्मन्यमानसे भयो नृभयो रन्धया येष्वस्मि ।
अध्या हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥१२॥

भा०—हे (वज्रिन्) शत्रुओं के वर्जन करने में समर्थ ! अस्त्र बल के स्वामिन् ! एवं हे अज्ञान के वर्जन में समर्थ ज्ञान के पालक ! मैं (येषु अस्मि) जिनके बीच में रहता हूं (पुभ्यः नृभ्यः) उन उत्तम जनों के हित के लिये (मन्यमानं जनं) अभिमान करने हारे पुष्प को (रन्धय) वश कर और उसी प्रकार (महिचित्) बड़े भारी, पूजनीय (मन्यमानं) अन्यों से मान आदर पाने योग्य (जनं) उत्तम मनुष्य को (रन्धयः) अच्छी प्रकार आदर सल्कारपूर्वक आराधना कर । (अध हि) और हम (पृथिव्याम्) इस भूमि पर (शूरसातौ) शूरवीरों के एकत्र होने योग्य महासंग्राम में (तनये, गोषु, अप्सु) पुत्र, गौ आदि पशु और प्राणों के निमित्त हम (त्वा हवामहे) तुक्षे प्राप्त करें ।

बृयं तं पुभिः पुरुहूत सुख्यैः शत्रोः शत्रोरुत्तरं इत्स्थाम ।

भन्तो वृत्रागयुभयानि शूर राया मदेम वृहता त्वोताः ॥१३॥८॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे और प्रशंसा किये गये ! राजन् ! (वयम्) हम (ते पुभिः सख्येभिः) तेरे इन मित्रता के कार्यों से हम (शत्रोः शत्रोः) प्रत्येक प्रकार के शत्रु से (उत्तरे) ऊपर, उसको विजय करने में सफल (स्याम) हों, और हे (शूर) शूरवीर ! हम (उभयानि वृत्राणि) दोनों प्रकार के 'वृत्र' अर्थात् विघ्नकारी पुरुषों और वरण करने योग्य धनों को (घनतः) विनाश और प्राप्त करते हुए (वृहता) बड़े भारी (राया) ऐश्वर्य से (त्वा-उत्ता:) तेरे द्वारा रक्षा पाकर (मदेम) सुखमय जीवन व्यतीत करें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२०]

भरद्वाजो वाहस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो दंवता ॥ अन्दः—१ आर्वतुष्ठुप् । २, ३, ७, १२ पांक्तः । ४, ६ भुरिक् पांक्तः । १३ स्वराट् पंक्तिः । १७ निचृत्पंक्तिः ॥ ५, ८, ९, ११ निचृत्पिष्ठुप् ॥ सप्तदशं सूक्तम् ॥

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सुहस्तभरमुर्वरुसां दुद्धिं सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यः) जो (रयिः) दानशील, सुखप्रद ऐश्वर्य वा ऐश्वर्यवान् पुरुष (शवसा) बल से (पृत्सु) संग्रामों में (अर्यः जनान्) शत्रु लोगों के (अभि तस्यौ) मुकाबले पर जड़ा हो सके (अर्यः) स्वामी, (द्वौः न) सूर्य के समान तेजस्वी और (भूम) पृथिवी के समान बलवान् हो । हे (सहसः सूनो) बलवान् सैन्य के सज्जालक तू ऐसे (वृत्रतुरम्) दुष्ट विघ्नकारी शत्रु जन के नाशक (सहस्तभरम्) सहस्रों धनों के लाने वाले, सहस्रों पुरुषों के भरण पोषण करने में समर्थ (उर्वरासाम्) अन्नादि के उत्पादक, उर्वरा उत्तम भूमियों के भोक्ता (तं) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को (नः दद्धि) हमें दे ।

दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सुत्रासुर्यै देवेभिर्धायि विश्वम् ।

अहिं यद्वृत्रमपो वविवांसं हन्त्रीजीषिन्विष्णुना सचानः ॥ २ ॥

भा०—(न) जिस प्रकार (अपः वविवांसं) जलों को अपने गुप्त रूप से रखने वाले (अहिं) मेघ को (विष्णुना सचानः) व्यापक वायु वा सूर्य से मिलकर (क्रजीषीन्) सरल रेखा में जाने वाला विद्युत् (हन्) व्यापता या आधात करता है । तब (देवेभिः दिवः असुर्य विश्वम् धायि) कामनावान् मनुष्य आकाश के समस्त मेघस्य जल को प्राप्त करते हैं, वा सूर्य के किरण ही आकाश में मेघस्य जल को अपने में धारण करते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यत्) जब (अपः वविवांसम्) आप प्रजाजनों को धेर लेने वाले, (अहिम्) सन्मुख आये, सर्पवत् कुटिल, व अवध्य, बलवान्, (वृत्रम्) समृद्ध शत्रु को तू (विष्णुना) व्यापक, विस्तृत सैन्य बल से (सचानः) समवाय बनाकर (अहन्) मारता है, तब हे (क्रजीषीन्) सरल मार्ग में

प्रजाओं को सञ्चालित करने हारे राजन् ! तब (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (विश्वम् असुर्यम्) समस्त असुरों को नाश करने वाले बल को, और (असुर्यं) असुरों से प्राप्त ऐश्वर्य को (देवेभिः) मनुष्य, (सचा अनुधायि) सदा निरन्तर धारण और पोषण करते हैं ।

तूर्वंज्ञोजीयान्तवस्तुस्तवीयान्कृतव्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।

राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दुर्तुमावत् ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वासाम् पुराम्) शत्रु के नगरियों के (दर्शनम्) तोड़ने फोड़ने में समर्थ अस्त्र बल को (आवत्) प्राप्त करले वह (तूर्वन्) समस्त शत्रु का नाश करता हुआ, (तवसः) स्वयं बलवान् (ओजीयान्) सब में अधिक पराक्रमी, (तवीयान्) सबसे अधिक बल-शाली, (कृत-व्रह्मा) बहुत धन, और अन्न सम्पदा को सम्पादन करके (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (वृद्ध-महाः) वृद्धों का आदर करने हारा हो । वह ही (सोम्यस्य) ऐश्वर्य से प्राप्त होने योग्य (मधुनः) मधुर सुखों का भोक्ता (राजा अभवत्) राजा हो ।

शतैरपदन्पुण्यं इन्द्रावृदशोणये कवये अर्कसातौ ।

वधैः शुण्णस्यागुषस्व मायाः पित्वो नारिरेचीर्तिं चुन प्र ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अत्र) इस राष्ट्र में (अर्क-सातौ) अर्चनीय, पूज्य पुरुषों के सेवा करने के निमित्त और (अर्क-सातौ) सूर्य-वत् तेजस्वी पुरुष का आश्रय, तथा 'अर्क', अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति वा विभाग के लिये (दश-ओणये) दशों को अपने से न्यून करने हारे सर्वश्रेष्ठ, दशावरा परिषत् के स्वामी (कवये) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष के लिये (पण्यः) उत्तम स्तुतिकर्ता, विद्वान् वा व्यवहार चतुर पुरुष (शतैः) सैकड़ों की संख्या में (अप-इन्) दूर २ तक जाया करें । (वधैः) वधकारी शत्रों से भी (शुण्णस्य) बलवान् (पित्वः) सबके

पालक (अशुषः) शत्रु द्वारा कभी शोषण, या कृश न किये जाने वाले, वा प्रजा का रक्त शोषण न करने हारे राजा की (मायाः) बुद्धियों वा शक्तियों के (किंचन) कुछ लवमात्र भी कोई (न अस्तिरेचीत्) कमः नहीं कर सकता ।

मुहो दुहो अप॑ विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पत्तेऽपादि शुष्णः ।

उरु ष सुरथं सारथये कुरिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥५॥१॥

भा०—(यत्) जो राजा (शुष्णः वज्रस्य) बलवान् शशबल के (पत्ते) बढ़ाने पर (दुहः) दोही शत्रु के (महः) बड़े भारी (विश्वायु) समस्त बल को (अप॑ धायि) नीचे गिरा देता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सेनापति या राजा (सूर्यस्य सातौ) सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये (सारथये) अपने सारथी, और (कुत्साय) शस्त्रों और शशबल की रक्षा और वृद्धि के लिये, (उरु सरथं) एकही रथ पर पर्याप्त उद्योग (कः) करे । इति नवमो वर्गः ॥

प्र श्येनो न मंदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।

प्रावृत्तमीं चाप्यं सुसन्तं पूरुणश्चाया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥

भा०—बलवान् राजा (दासस्य) प्रजा के नाशक दुष्ट, (नमुचेर्मथायन्) अपने बुरे स्वभाव को न छोड़ने वाले, अथवा दण्ड से न मुक्त करने योग्य, दुराग्रही, अवश्य दण्डनीय, शत्रु के (शिरः) शिर को (मथायन्) मथता, विनाश करता हुआ, (श्येनः) उत्तम गति या उत्तम आचरणवान्, वा वाज्ञ के समान वेग से आक्रमण करने वाला, सेनापति (अस्मै) इसः राष्ट्र की वृद्धि के लिये (मंदिरम् अंशुम्) तृप्तिकारक अन्न को (प्र) अच्छी प्रकार ग्रहण करे, और (साप्यं) अपने साथ सन्धिपूर्वक समवाय बनाकर रहने वाले, (ससन्तं) शान्त सोते के समान आगे लेटे, (नमीं) आगे झुकने वाले या (नमीं ससन्तं) नम्र होकर रहने वाले

शत्रु की भी (प्र अवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करे । और उसको (राया-संपृणक्) धन से संयुक्त करे, और (इषा स्वस्ति संपृणक्) अच्छी प्रकार सुख से उसकी इच्छा या अभिलाषा, सेना आदि से संयुक्त करे, उसे धन, सैन्य आदि की सहायता भी करे ।

विपिण्डोरहिमायस्य दृढ़हाः पुरो वज्रिज्ज्वरस्ता न दर्देः ।
सुदामन्तद्रेकणो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषेदाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शब्दबल के धारण करने हारे ! तू (अहि-मायस्य) सर्प वा मेघ के समान माया करने वाले, (पिण्डोः) अपना पेट पूरने वाले शत्रु के (दृढः पुरः) इह नगरियों को भी (शवसा) बलपूर्वक (न दर्देः) क्यों न तोड़े ? हे (सुदामन्) उत्तम दानशील तू (ऋजिश्वने) सरल धार्मिक गुणों को बढ़ाने वाले अथवा 'ऋजु' सरल, धर्म मार्ग पर चलने वाले अश्रों और इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय, (दाशुषे) कर आदि देने वाले धार्मिक प्रजाजन को (अप्रमृष्यम् दात्रं तत् रेणः दाः) ऐसा धन दे जिसको कोई बलात् भी न छीन सके ।

स वेतसुं दशमायं दशोऽग्निं तृतुजिभिन्द्रः स्वभिष्ठिसुभ्नः ।
आ तु ग्रं शश्वदिभ्यं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा दृयध्यै ॥८॥

भा०—(मातुः द्योतनाय न दृयध्यै उपसृते) माता के प्रकाशित या प्रफुल्लित करने के लिये जिस प्रकार बालक उसके पास आने का यत्र करता है उसी प्रकार (सः) वह राजा (मातुः द्योतनाय) मातृ समान अपनी राष्ट्र भूमि को चमकाने के लिये और (दृयध्यै) उसे प्राप्त करने लिये (वेतसुं) राज्य को अपने वश करने वाले शासन दण्ड, को (दश-मायम्) दशगुणा वृद्धि देने वाले, दशवराष्ट्रिपत् को, (दशोऽग्निम्) दशों दिशाओं को वश करने में समर्थ सेनापति को (तृतुजिम्) शत्रुओं के नाशकारी (तुग्रम्) बल को अपने अधीन करने वाले सैन्य और

(इयध्यै) गमनागमन के लिये (इमं) और हस्ति को (शश्वत्) सदा (उप सृज) प्रहण करे, अपना कार्य सम्पादन करे ।

स ई स्पृध्यो चनते अप्रतीतो विभुद्वज्ज्वत्रहणं गभस्तौ ।

तिष्ठुद्वरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत् इन्द्रमुष्वम् ॥९॥

भा०—(सः) वह राजा (गभस्तौ) हाथ में (वज्रं विभ्रत्) शस्त्र वा राजदण्ड धारण किये, (अप्रतीतः) शत्रुओं से अज्ञात रहकर वा अन्यों से (अप्रति-इतः) मुकुबले पर भी न जीता जाकर (ई स्पृधः चनते) इन अपने से स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को विनाश करे, वा परस्पर स्पर्धा करनेवाले वादिप्रतिवादियों के धन आंदि का न्यायपूर्वक विभाग करे । (अस्ता इव गर्ते अधि हरी अतिष्ठत) जिस प्रकार शूरवीर धनुर्धर पुरुष रथ पर चढ़कर अपने दोनों अश्वों पर शासन करता है उसी प्रकार राजा (गर्ते अधि) न्यायासन पर विराज कर (हरी अधि तिष्ठत) वादी प्रतिवादी दोनों पक्ष के मनुष्यों पर शासन करें । उस समय (ऋष्म इन्द्रम्) उस महान्, पूज्य, इन्द्रासन पर विराजते राजा को (वचोयुजा) वाणियों से परस्पर पर अभियोग करने वाले दो वकील सत्य निर्णय पर पहुंचावें । इसी प्रकार वह राजा (गर्ते अधि हरी तिष्ठत) रथ पर सवार होकर अश्वों पर वश करे, और वाणी द्वारा अन्यों को कार्य में लगाने में समर्थ वा राजा के आज्ञाकारी दो विद्वान् जन उस महान् (इन्द्रं) पेश्वर्य युक्त राष्ट्र वा राष्ट्रपति को (वहतः) धारण करें, उसका कार्य सम्पादन करें ।

सुनेम् तेऽवस्त्रा नवये इन्द्रं प्र पुरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।

सुस्त यत्पुरः शर्म शारदीर्द्देन्द्रासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) पेश्वर्यवन् ! शत्रुओं को मारने हारे ! (यत्) जो तू (सप्त) सात (शारदीः) हिंसक शत्रु की (पुरः) नगरियों को

(शर्म दर्त्) अपने बल से विनाश करता है, और (पुरुकुत्साय) बहुत से शख्स समूहों को धारण करने वाले सेनापति की (दासीः) शत्रु नाश-कारिणी सेनाओं को (शिक्षन्) उत्तम युद्ध शिक्षा देता और वेतनादि देता हुआ शत्रुओं को (हन्) दण्ड देता है, उस (ते) तेरे (अवसा) रक्षा सामर्थ्य से हम (नव्यः) सदा उत्तम से उत्तम सम्पदाओं को (सनेम) प्राप्त करें। और (पूरवः) मनुष्यगण (यज्ञैः) उत्तम आदर सत्कारों द्वारा (एना) इन नाना सम्पदाओं की (प्र स्तवन्) खूब सुति, प्रशंसा, चर्चा किया करें।

त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्विवस्यनुशने काव्याय ।

परा नववास्त्वमनुदेयं मुहे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (उत्तरे काव्याय) कामना करने वाले विद्वान् या अति पूज्य (पित्रे) पिता के तुल्य ज्ञान-दाता पुरुष के उपकारार्थ, (स्वं नपातम्) कभी नष्ट न होने वाला, अपना धन और (नववास्त्वं) उत्तम से उत्तम नवीन रहने का घर और पहरने का वस्त्र और (अनुदेयं) बाढ़ में भी ढेने योग्य विदाई (पराददाथ) दान दिया कर। इस प्रकार (वृधः विवस्यन्) अपने से बड़ों की सेवा करता हुआ, (त्वं) तू (पूर्व्यः भूः) अपने पूर्व विद्यमान विद्या और वयस में बृद्ध जनों का हितकारी और श्रेष्ठ पुरुष हो।

त्वं धुनिरिन्द्रु धुनिमतीऋूणोरुपः सीरा न स्वर्वन्तीः ।

प्र यत्समुद्रमति शूर पर्वि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥

भा०— (धुनिः धुनिमतीः अपः ऋणोः सीराः न स्वर्वन्तीः) मेघों को कंपाने वाला वायु कम्पनकारी विद्युतों से युक्त मेघस्य जलों को बहती धाराओं के समान बहाता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सेनापते ! (त्वं) तू (धुनिः) शत्रुओं को कंपाने हारा होकर (धुनिमतीः अपः)

सुतिशील आप्त प्रजाओं को (सीराः स्वन्तीः न) बहतो धाराओं के समान (ऋणोः) अपने अनुकूल चला । (यत्) जो हे वीर ! (शूर) शूर तू स्वयं (समुद्रं पर्यि) समुद्रवत् संकट को पार कर, (तुवंशुं) शीघ्र वश आने वाले (यदुम्) यज्ञवान् प्रजाजन को भी (स्वस्ति पारय) सुखपूर्वक पार कर ।

तव हृत्यदिन्दु विश्वमाजौ सूस्तो धुनी चुमुरी या हृत्यस्पृष्ट् ।
दीदयुदित्तुभ्युं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः प्रकथ्य॑कैः१३।१०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (तव हृत्यत् विश्वम्) यह सब तेरा ही सामर्थ्य है कि (आजौ) युद्ध काल में भी जो तेरी (धुनी चुमुरी) शत्रु को कंपा देने और राष्ट्र को भोग करने वाले सामर्थ्य हैं तू उन दोनों को (सूस्तः) सुला देते अर्थात् उनको मन्द कर देते हो । और जो (दभीतिः) नाश करने हारा, होकर (इध्म-भृतिः) लकड़ी से अपना भरण पोषण करने वाला, अग्नि के समान तेज मात्र धारण करने वाला, (पक्थी) परिपाक करने वाला, तेजस्वी पुरुष (अकैः सो-मेभिः) अज्ञों और जलों से (तुभ्यं) तेरा (सुन्वन्) सत्कार करता हुआ (दीदयत्) प्रकाशित करे तू उसको सुखी कर । इति दशमो वर्गः ॥

[२१]

भरदाजो वाईस्पत्य कृषिः ॥ इद्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, १२ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्रिष्टुप् । ८ स्व-राघुहती ॥ द्वादशर्च सूक्तम् ॥

इना उत्त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीरं हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्टुमजरं नवीयो रुयिर्विभृतिरीयते वचस्या ॥ १ ॥

भा०—हे (वीर) विविध उपायों से प्रजा को उपदेश देने हारे एवं सत्कर्मों में लगाने हारे ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (इमाः) ये

(हव्याः) उत्तम स्तुति करने वाली, प्रजाएँ (पुरु-तमस्य) बहुतों में श्रेष्ठ, (कारोः) विद्वान्, कर्ता, विधाता पुरुष के (हव्यं) स्तुति योग्य कर्म की (हवन्ते) स्तुति किया करते हैं । (धियः) उत्तम बुद्धियां और (अजरं) अक्षय (नवीयः) अति उत्तम कर्म नवे से नया ज्ञान, (रथः) ऐश्वर्य, (वचस्या) वचनीय, (विभूतिः) विशेष सामर्थ्य से सब उत्तम वस्तुएँ हे वीर ! स्तुत्य (रथेष्टां त्वा) रथ पर स्थित तुहको (इयते) प्राप्त हों ।

तमु स्तुषु इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।

यस्य दिवुमति सुहा पृथिव्याः पुरुषायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥

भा०—(यस्य) जिस (पुरु-मायस्य) नाना प्रकार के निर्माण सामर्थ्यों, नाना शक्तियों और बुद्धियों से सम्पन्न परमेश्वर का (महित्वम्) महान् सामर्थ्य (दिवम् अति रिरिचे) सूर्य से बढ़ कर है और जो (पृथिव्या अति रिरिचे) पृथिवी से भी बड़ा है । (यः विदानः) जो ज्ञानवान् है, (तम् उ) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (गिर्वाहसं) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य, (यज्ञ-वृद्धम्) उपासना और आदर सत्कारों, दानों आदि से परिपुष्ट, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (स्तुपे) स्तुति कर ।

स इत्तमोऽवयुनं तत्त्वन्वत्सूर्यैण वयुनवच्चकार ।

कदा ते मर्ती अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (इत्) ही (अवयुनं) जिसमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता ऐसे घोर (तमः) अन्धकार को (सूर्यैण) सूर्य के द्वारा (वयुन-वत् चकार) अभिव्यक्त, ज्ञान योग्य कर देता है । हे (स्वधावः) स्वयं धारण शक्ति के स्वामिन् ! हे प्रभो ! (मर्ताः) मरणधर्मा ये जीव (अमृतस्य ते) जरा मरण रहित, अविनाशी तेरे (धाम) तेजोमय जगत् के धारण करने वाले सामर्थ्य को (इयक्षन्तः) प्राप्त होना चाहते हुए (कदा) कभी भी (न मिनन्ति) हिंसा नहीं

करते । प्रत्युत प्रभु परमेश्वर को साक्षात् करने के लिये वे अहिंसा महाब्रत का पालन करते हैं ।

यस्ता चुकार् स कुह॑ स्त्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु^१ विक्षु ।
कस्ते युक्षो मनसे शं वरायु को आर्क इन्द्र कतुमः स होता ॥४॥

भा०—(यः) जो (ता) वे नाना जगत्-सर्जन आदि कर्म (चकार) करता है (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (कुह स्त्विद्) कहा हैं ! वह (कम् जनं आ चरति) किस मनुष्य को प्राप्त होता है ? (कासु विक्षु च चिरति) वह किन प्रजाओं में व्यापता है ? हे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरा (कः यज्ञः) वह कौनसा उपासना का प्रकार है जो (मनसे शम्) चित्त को शान्ति दायक है ? (कः अर्कः) कौनसा अर्चना करने का उपाय है जो (वराय) श्रेष्ठ पद प्राप्त करने के लिये है ? हे प्रभो ! (सः) वह (होता) सब का दाता (कतमः) कौन सबसे श्रेष्ठ है ? उत्तर—(कतमः) वह परम सुखस्वरूप है । वही सब से श्रेष्ठ जगत् का विधाता व्यापक, सर्वपूज्य है ।

इदा हि ते वेविष्टः पुराजाः प्रत्नास॑ आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास॑ उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५।११॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुति किये हुए ! हे (पुरुकृत) बहुत से लोकों को बनाने हारे ! (ये) जो (पुराजाः) पूर्वकाल में उत्पन्न हुए, (प्रत्नासः) अति पुरातन, (मध्यमासः) मध्यकाल में उत्पन्न (उत) और (नूतनासः) नये विद्वान् (इदा हि) इस समय भी (वेविष्टः ते) सर्वव्यापक तेरे (सखायः) मित्र ही हैं ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! (उत) और तू (अवमस्य) अब के अर्थात् अन्तिम और आगे के सबको (बोधि) जानता है । इत्येकादशो वर्गः ॥

तं पृच्छन्तोऽवरासुः पराणि प्रत्ना तं इन्द्रं श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चांमसि वीर ब्रह्मवाहो योद्व विद्ध तात्त्वा महान्तम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् । प्रभो ! (अवरासः) बाद के उत्पन्न जीव गण, (तं) उस परम वेद को (पृच्छन्तः) आदरपूर्वक प्रश्न द्वारा जानने की इच्छा करते हुए, (ते) तेरे ही (प्रत्ना) सनातन से चले आये, (पराणि) उत्तम ३ (श्रुत्या) श्रवणीय गुरुउपदेशादि वा वेद द्वारा जानने योग्य कर्मों, स्वरूपों को (अनु) जानने और करने को लक्ष्य करके (येमुः) यम, नियम, दीक्षा बन्धनादि करते हैं । हे (वीर) विविध विद्याओं के उपदेश करने हारे, विविध लोकों के सञ्चालक ! (ब्रह्मवाहः) ज्ञानरूप धन को धारण करने वाले हम लोग (त्वा यात् एव विद्या) जितना ही तुक्त को जानते हैं (तात् एव) उतना ही (महन्तं) बड़ा महान् पाकर तेरी (अर्चांमसि) अर्चना करते हैं ।

अमि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तवं प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अपु ता नुदस्व ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! हे प्रभो ! (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष का (पाजः) बल (महि जज्ञानम्) बड़े भारी रूप में प्रकट होने वाले (त्वा अमि वितस्थे) तेरे प्रति विविध प्रकार से विरोध में खड़ा हो, तब तू (तत्) उसके (अभि) मुकाबले पर (तिष्ठ) खड़ा होजा । हे (धृष्णो !) शशुओं को पराजय करने हारे ! और तू (तव) अपने (प्रत्नेन) सदा तन (युज्येन) सहायक (सख्या) मित्रवत् (वज्रेण) शशबल से (ता) उन सवकों (अपनुदस्व) दूर कर । (२) अध्यात्म में इन्द्र जीव है । विघ्नकारी, सत्कारों में बाधक काम क्रोधादि 'रक्षस्' हैं । उनका बल वार २ बाधक होकर उपस्थित होता है । वह अपने सनातन सखा 'वज्र', अज्ञान दुःखादि के नाशक प्रभु परमेश्वर की सहायता से उसको दूर करे ।

स तु शुधीन्द्रं नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीरं कारुधायः ।
त्वं ह्माऽपि प्रदिवि पितृणां शशवद् ब्रभूय सुहृत् एष्टौ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वीर) वीर ! विविध लोकों के चलाने हारे प्रभो ! वा शूरवीर राजन् ! हे (कारुधायः) विद्वान् स्तोता जनों तथा शिल्पकर्ता जनों के पालक पोषक प्रभो ! राजन् ! (सः) वह तू (ब्रह्मण्यतः) धनेचकुक और परम ब्रह्म ज्ञान वा ब्रह्मपद की कामना करने वाले (नूतनस्य) नये (सुमुकु) पुरुष के (श्रुधि) चरन को श्रवण कर । (त्वं हि) तू (प्रदिवि) उत्तम कामना के निमित्त सदा (पितृणां) पालक पिताओं का भी (आपि) परम बन्धु है । और तू ही (शशवद्) सदा काल से (सु-हृतः) सुखपूर्वक त्रुलाने और प्रार्थना करने योग्य होकर (इष्टो आ ब्रह्म) यज्ञ, सत्संग में मान-आदरपूर्वक प्राप्त होता है ।

प्रोतये वहाणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।

प्र पृष्ठणं विष्णुमिन्द्रिं पुरान्धि सवितारमोष्ठीः पर्वतांश्च ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे प्रभो ! हे राजन् ! तू (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (वहाणं) रात्रिको, श्रेष्ठ पुरुष और शत्रुवारक जन को, (मित्रम्) दिन को, और सर्व स्नेही ब्राह्मण को, (मरुतः) वायुओं, को, विद्वानों को, वीर पुरुषों को और व्यापारी पुरुषों को, (अद्य) आज, सदा (प्र कृष्व) उत्तम बना । और (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (पृष्ठणं) पृथ्वी को और पोषक वर्ग को, (विष्णुम्) व्यापक वायु वा विद्युत् को, और प्रजा में प्रभावशाली को, (अमिन्द्रिम्) अमिन्द्रितव्य को, अग्रणी, विद्वान् को, (पुरान्विम्) देहपुर वासी पुरुष के धारक तुदि को, स्त्री को और राष्ट्र के धारक शक्तिमान् राजा को, (सवितारम्) सर्वोत्पादक पिता, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को, और (ओषधीः) ओषधियों को और शत्रु तापक तेज धरने वाली सेनाओं को, और (पर्वतान् च)

मेंहों, पर्वतों को और पालन कर्ता, मेववत् उदार तथा पर्वतवत् अचल पुरुषों को भी (प्र कृष्ण) उत्तम रूप से सामर्थ्यवान् और सुखदायक बना । इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो श्रभ्यर्चन्त्यैकः ।

श्रुधी हृवृमा हृवृतो हृवानो न त्वाँश्च अन्यो अमृत त्वदस्ति १०

भा०—हे (पुरुशाक) बहुत सी शक्तियों के स्वामिन् ! हे (प्रय-ज्यो) उत्तम दानशील, सत्संग योग्य, उत्तम पूजनीय प्रभो ! (इमे जरितारः) ये स्तुतिशील विद्वान् जन (अकें :) उत्तम अर्चना योग्य वेद मन्त्रों, स्तुतियों से (त्वा अभि अर्चन्ति) तेरी ही अर्चना करते हैं । (आ हृवृतः) अपने आत्मा को तेरे ग्रति आहुतिवत् अर्पण करने वाले और तुझे आदर पूर्वक बुलाने वालों को भी तू (आहुवानः) अपने ग्रति बुलाता और अपने को उनके तदै देता हुआ उनका वचन (आ श्रुधि) आदरपूर्वक श्रवण कर । हे (अमृत) अमृतस्वरूप ! अविनाशिन् ! (त्वावान्) तेरे जैसा (त्वत् अन्यः न अस्ति) तेरे से भिन्न दूसरा नहीं है ।

न म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभिः सूनो सहस्रो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतुसाप श्रासुर्ये मनु चकुरुपरं दसाय ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (ऋत्-सापः) सत्य वचन के आधार पर दृढ़ता से समवाय बनाने वाले, सत्य पर दृढ़ (अग्निजिह्वाः) अग्नि की ज्वाला के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाली वाणी को बोलने वाले, (आसुः) हैं और (ये) जो (मनुः) मननशील (उपरं) सर्वोपरि विराजमान, मेववत् उदारता से निष्पक्षपात होकर दान देने वाले को (दसाय) अज्ञान वा शब्द का नाश करने के लिये (चक्रुः) नियुक्त करते हैं उन (यजत्रैः) दानशील, सत्संगी और पूजा के योग्य, (विश्वेभिः) समस्त पुरुषों के साथ या उन द्वारा है (सहसः सूनो) बल-

वान् पुत्र, बल, सैन्य के सज्जालक ! तू (विदान्) ज्ञानवान् होकर (मे)
मेरी (वाचम्) वाणी को (उप याहि) प्राप्त कर ।

स नो बोधि पुरपृता सुगेषु दुर्गेषु पथिकुद्विदानः ।

ये अश्रमास उरवो वहिष्टास्तेभिर्न इन्द्राभि वैक्ति वाजम् १२।१२

भा०—(सः) वह तू (विदानः) ज्ञानवान् (पथि-कृत) मार्ग
बनाने हारा, (सुगेषु) सुगम और (दुः-गेषु) विषम : स्थानों में (उत्)
भी (पुरः-एता) आगे चलने वाला नायक होकर (नः बोधि) हमें
उत्तम ज्ञान दे, सन्मार्ग का उपदेश दे । (ये) जो (अश्रमासः) कभी
न थकने वाले, (उरवः) बड़े (वहिष्टः) उत्तम वहन करने वाले अश्र के
समान सुदृढ़, धुरन्धर पुरुष हैं (तेभिः) उन द्वारा हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-
वन् ! तू (नः) हमें (अभि-वाजम्) ऐश्वर्य प्राप्ति और संग्राम आदि
कार्यों की ओर (वक्षि) ले चल । इति द्वादशो वर्गः ॥

[२२]

भरदाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ इन्द्रः—१, ७ भुरिक् पंक्तिः । ३
स्वराट् पंक्तिः । १० पंक्तिः । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ६,
११ निचृतिष्टुर् ॥ एकादशर्च सूक्तम् ॥

य एक इद्व्यश्वर्णिनामिन्द्रं तं गीर्भिरुभ्यर्च आभिः ।

यः पत्यते वृषभो वृष्णयावान्तसुः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥

भा०—(यः) जो (एक इत) एक अद्वितीय ही (चर्वणीनाम्
हव्यः) मनुष्यों के बीच में सबके पुकारने योग्य है (तं इन्द्रं) उस
ऐश्वर्यवान् की (आभिः) इन (गीर्भिः) वेद वाणियों वा उत्तम वचनों
से (अभि अर्चे) प्रतिक्षण साक्षात् अर्चना करुं । (यः) जो (वृषभः)
सर्वश्रेष्ठ, समस्त सुखों का देने वाला, (वृष्णय-वान्) बलवान् पुरुषों के
उचित बलों का स्वामी, है वह स्वयं भी (सत्यः) सत्य व्यवहार वाला,

न्यायशील, (सत्त्वा) बलवान्, (पुरुषाः) बहुत सी प्रज्ञाभों वा वाणियों का ज्ञाता, और (सहस्रान्) बलवान् है ।

तमुँ नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सुप्त विश्रासो अभि वाजयन्तः ।

तत्कद्माभं ततुरिं पर्वतेष्टामद्रोघवाचं मुतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥

भा०—(नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व के पालक, माता पिता और गुरुजन (नवग्वाः) नये से नये अति स्तुत्य, रम्य भूमियों, वाणियों और गतियों वाले, (सप्त) देह में सात प्राणों के समान, (विश्रासः) बुद्धिमान् पुरुष (अभि वाजयन्तः) एक साथ ज्ञान, ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए (नक्षत्राभं) प्राप्त या राष्ट्र में और फैलते हुए जन्म और सेना को नाश करने वाले, (ततुरिं) अति शीघ्र कार्य सम्पादन करने वाले, (पर्वते-ष्टाम) मेघ में विद्यमान, चिद्रुत के समान तेजस्वी, धर्ममेघ दशा में विराजमान, (अद्रोघवाचम्) द्रोह रहित वाणी वाले (शविष्ठम्) अति बलवान् (तप्त) उसको प्राप्त करें, उसके पास जाकर सत्संग लाभ करें ।

तमीमहृ इन्द्रमस्य रायः पुरुचीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।

यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादृयध्यै ॥ ३ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के समान सन्मार्ग पर ले जाने हारे मनुष्यों के स्वामिन् ! (यः) जो (अस्कृधोयुः) कभी न खुटने वाला, (अजरः) अविनाशी, (स्वर्वान्) सुखप्रद ऐश्वर्य है वह तू (मादृयध्यै) सुख प्राप्त करने के लिये (तप्त आभर) उसे प्राप्त करा । (अस्य) उस (पुरुचीरस्य) बहुत से पुत्र, भूत्य, वीर जनों से युक्त (नृवतः) उत्तम नायक वाले, (पुरुक्षोः) बहुत अन्न सम्पदा से पूर्ण, (रायः) धन की हम (ईमहे) याचना करते हैं ।

तत्रो वि वौचो यदि ते पुरा चिंजरितारं आनुशुः सुम्मानिन्द्र ।

कस्ते भ्रागः किं वयो दुध खिद्रुः पुरुहृत पुरुचसोऽसुरम्भः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अज्ञाननाशक ! विद्वन् ! राजन् ! (ते) तेरे (यदि) जिस (सुन्नम्) सुख या उत्तम विचारणीय ज्ञान को (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा वा अध्येता जन (आनशुः) ज्ञान करते था पाते हैं (तत्) उसे (नः) हमें भी तू (वि वोचः) स्पष्ट रूप से उपदेश कर । हे (दुध) शंकु से न हारने वाले ! हे (पुरु-हृत) बहुतों से अपनाये हुए ! हे (पुरु-वसो) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन ! (असुर-त्वः) दुष्ट असुरों के हनन करने वाले (ते) तेरा (भागः) कौन भाग और (किं वयः) क्या बल वा अधिकार है उसे तू पहचान ।

तं पृच्छुन्ती वज्रहस्तं रथेष्टामिन्दुं वेषी वकरी यस्य नू गीः ।
तुविग्रामं तुविकूर्मि रभोदामं गातुमिष्ये नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥१३॥

भा०—(यस्य) जिस मनुष्य की (वेषी) सत्कर्म सहित व भक्ति भाव से कांपती हुई, (वकरी) उत्तम वचन कहने वाली, (गीः) वाणी (वज्र-हस्तं) शब्द हाथ में लिये, (रथेष्टाम्) रथ पर खड़े, (इन्द्रं) शत्रुहन्ता (तं) उस अलौकिक कर्ता, वीर पुरुष के विषय में (पृच्छन्ती) नाना प्रश्न पूछती हुई (गातुम् हैपे) जाना चाहती है, वह (तुविग्राम्) बहुतों को वश करने वाले (तुविकूर्मिम्) बहुत से लोकों के बनाने वाले, (रभोदाम्) बल, शक्ति के दाता, (तुम्रम्) शत्रुओं को गानि युक्त कर देने वाले संकटों के नाशक को (अच्छ नक्षते) भली प्रकर प्राप्त होता है, उसका साक्षात् करता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अथा हृ त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतत्रः पवितेन ।
अच्युता चिद्रीक्षिता स्वोजो रुजो वि हृद्वहा धृष्टा विरप्शिन् ॥६॥

भा०—हे (स्वतवः) स्वयं बलशालिन् ! 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य के बल से युक्त ! हे (स्वोजः) स्वयं अपने ओज, बल, पराक्रम वाले ! वा 'स्व' धन के बल पर या उसके लिये विशेष पराक्रम करने में समर्थ ! हे

(विरप्तिशन्) गुणों में महान् ! परमेश्वर वा राजन् ! (त्वं) तू (अथा ह मायया) इस अद्भुत निर्माणकर्त्रीं शक्ति, प्रकृति वा ज्ञानकर्त्रीं बुद्धि और (मनोजुवः) मन के समान वेग वाले (पर्वतेन) पोरु, पोरु, खण्ड २ में विद्यमान बल से तू (वबृधानं) अपने बढ़ते शत्रु, को विनाश कर। और (धृष्टता) शत्रु का मान भंग करने वाले, (अच्युताचित्) न ढोलने वाले, (वीडिता) वीर्यवान्, बलवान्, (ददा) इदं शत्रु नगरों वा सैन्यों को भी (रुजः) तोड़ डाल। वह प्रभु महान् परमेश्वर हमारे अभेद, इदं वासनामय कुसंस्कार, मोहादि शत्रुओं का नाश करे।

तं वी धिया नव्यस्या शविष्टं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसुयध्यै ।

स नो वक्षदनिमानः सुव्येन्द्रो षिश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥

भा०—(तं) उस (शविष्टं) अति बलशाली, (प्रत्नं) सनातन पुरुष को (नव्यस्या) नरी से नरी, अति रमणीय (धिया) वाणी और कर्म से (वः) आप लोगों के हित (परितंसयध्यै) सब प्रकार से सुशोभित करने के लिये, उसका उत्तम वर्णन करने के लिये (प्रकृत्) पूर्व के विद्वानों के समान ही यत्न करता हूँ। (सः) वह (अनिमानः) अविज्ञेय, (परिमाणरहित, महान्, (इन्दः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सुव्याहा) सुखपूर्वक समस्त जगत् को वहन कर रहा है। वह (विश्वानि) समस्त (दुःगहानि) दुःख से प्राप्त करने योग्य संकटों से भी (नः वः अतिवक्षत्) हमें और आप सबको भी उत्तम सवारी के समान पार पहुँचा दे।

आ जनायु दुद्वणे पार्थीवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।

तपा वृषन्विश्वतः शोचिपु तान्व्रस्त्रिविष्टे शोचयु क्षामृपश्च ॥८॥

बा०—हे (वृषन्) बलवान् ! उत्तम प्रबन्ध करने हारे प्रभो ! विद्वन् ! राजन् ! तू (पार्थीवानि) पृथिवी के और (दिव्यानि) आकाश

के और (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष के सब पदार्थों को (आ दीपयः) सब प्रकार से चमकाता है, तू (ब्रह्मद्विषे) परमेश्वर, वेदज्ञ और अन्नादि के द्वेषी, (दुह्ष्णे) और द्रोही (जनाय) वेदज्ञ मनुष्यों के लिये इन सब पदार्थों को (तप) संतप्त, दुःखदायी कर (तान्) उसको (शोचिषा) अपने तेजस से (विश्वतः शोचय) सब ओर से दग्ध कर। उस ब्रह्म से द्वेष करने वाले के लिये (क्षाम् अः च शोचय) भूमि और जलों को भी प्रतप कर। प्रभु के द्वेषी पुरुष को ये सब भी पदार्थ सुखदायी न होकर कष्टदायी होते हैं।

**भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।
धिष्व वजुं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अर्जुर्य दयसे वि मायाः॥९॥**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (त्वेषसन्दृक्) कान्तियुक्त न्याय प्रकाश से सम्यक् दर्शन, यथार्थ विवेक करने वाला होकर (दिव्यस्य पार्थिवस्य राजा भुवः) दिव्य उत्तम पृथिवी के समस्त जनों और ऐश्वर्य का स्वामी हो। हे (अर्जुर्य) अविनाशिन् ! तू (दक्षिण हस्ते) दायें हाथ में (वज्रं धिष्व) वज्र, बल या धैर्य को धारण कर। तू (विश्वाः) समस्त (मायाः) उत्तम विद्याओं बुद्धियों को (विद्यसे) विविध प्रकार से दे और उनकी रक्षा कर। उसी प्रकार तू अपने शक्ति बल से (मायाः वि दयसे) शत्रु की कपटयुक्त चालों को विविध प्रकार से नाश कर।

**आ सुंयतमिन्द्र एः स्वस्ति शश्वत्यर्थीय वृहतीममृधाम् ।
यथा दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यमा) जिस बुद्धि वा शक्ति से (दासानि) मनुष्यों के नाश करने वाले (वृत्रा) विघ्नकारी कुलों वा धनों को (आर्याणि) उत्तम श्रेष्ठ, सदाचार युक्त कुल, वा 'अर्य'

अर्थात् स्वामी के उपभोग योग्य (करः) बना देता है, और हे (वज्रिन्) शशांक के स्वामिन् ! हे बलशालिन् ! और जिस बृद्धि वा शक्ति से तू (नाहु-यणि) मनुष्यों के कुलों वा धनों को (सु-तुका) उत्तम, सुखपूर्वक बृद्धिशील कर देता है, और (बृत्रा सु-तुकानि) विघ्नकारी जनों का सुख-पूर्वक मारने योग्य करता है, तू (नः) हमारे लिये उस (संयतम् स्वस्तिम्) कल्याणकारिणी, अच्छी प्रकार प्रजा को नियमादि में बांधने वाली, और अच्छी प्रकार यत्करने वाली कर। और (शत्रु-तूर्यम्) शत्रु के नाश-करने के लिये (मृष्ट्राम्) न नाश होने वाली (बृहतीम्) बड़े भारी सेना को भी बना।

स नौ नियुक्तिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गृहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मंद्रयुद्धिक् ११। १४

भा०— हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (वेधः) विधान, धारा वा राजनियमों के बनानेहारे ! विद्वन् ! हे (प्रयज्यो) उत्तम पूज्य ! सत्संग योग्य उत्तम न्यौय वा विद्या अदि के दातः ! राजन् ! (सः) वह तु (विश्ववाराभिः) सबकी रक्षा करने वाली (नियुक्तिः) निरन्तर युद्ध करने वाली, ऐसी सेनाओं और अश्ववत् सदा नियुक्त रहने वाले भूत्यादि सहित तू (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो ! (या) जिनको (न अदेवः) न तो अदानशील (वरते) निवारण कर सके और (न देवः) न विजयेच्छुक शत्रु वा केवल चाहने वाला ही (वरते) प्राप्त कर सके, (आभिः) उनसे तू (मंद्रयुद्धिक्) मेरे प्रति (तूयम्) शीघ्र ही (आ याहि) आ। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२३]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य कृषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८, ९ निचृतिर-
उद्धृत् । ५, ६, १० त्रिष्ठुर् । ७ विराट् त्रिष्ठुर् । २, ४ स्वराट् पंक्तिः ॥
दर्शनं सूक्तम् ॥

सुत इत्वं निमिश्छ इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मध्ववृहरिभ्यां विभ्रद्वज्जू ब्राह्मोरिन्द्र यासि ॥ १ ॥

भा०—हे (मध्ववृ) उत्तम पूजित ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (इन्द्र)
शवुहन्तः ! (यत् वा) जब भी तू (ब्राह्मोः) शत्रु को पीड़न करने
वाली दो बाहुओं के समान दायें बायें की दो विशाल सेनाओं में (वज्रं)
शत्रु को वर्जन करने वाले शस्त्र बल को (विभ्रत) धारण करता हुआ
(युक्ताभ्यां हरिभ्याम्) जुते दो अश्वों से महारथी के समान (युक्ताभ्यां
हरिभ्याम्) अधीन नियुक्त प्रजा के छी पुरुषों सहित (यासि) प्रयाण
करता है तब तू (स्तोमे) स्तुतियोग्य, (उक्थे) उत्तम प्रशंसनीय
वचन के (शस्यमाने) कहे जाते हुए, (ब्रह्मणि) उत्तम, महान् ऐश्वर्य
में तथा (सोमे) सर्वप्रेरक, राजपद पर (सुते) अभिपिक्त होने पर
भी (निमिश्छः) तू उसमें निःसक्त होकर रह । वह सब ऐश्वर्य का
ठाठ तुक्षे गर्वयुक्त और विलासी न बनावे ।

यद्वा द्विवि पायें सुविमिन्द्र वृत्रहत्येऽवासि शूरसातौ ।

यद्वा दक्षस्य विभ्युषो अविभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २ ॥

भा०—(यद् वा) और जब तू (पायें दिवि) सबसे उत्कृष्ट,
दूर तक फैलने वाले, तेज में (वृत्रहत्ये) विघ्नकारियों के नाश करने
और (शूरसातौ) शूरवीर पुरुषों के लाभ कर लेने पर (सु-विम्).
उत्तम ऐश्वर्योत्पादक राष्ट्र को भी (अवासि) प्राप्त कर ले, (यद्वा) और
जब (विभ्युषः) भयभीत (दक्षस्य) व्यवहारकुशल प्रजा को (शर्धतः)
नाश करने वाले (दस्यून्) शत्रु, दुष्ट पुरुषों को भी स्वयं (अविभ्यतः)
भय रहित होकर भी (अरन्धयः) वश कर सके तो भी हे राजन् ! तू
(निमिश्छः सन् राज्यं शाधि) निसंगत को राज्य का शासन, प्रजा का
पालन शत्रु का नाश करता रहा कर ।

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीहुओ जागितारमुती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसुं स्तुवते कीरये चित् ॥३॥

भा०—(प्र-नेनीः) उत्तम उद्देश्य की ओर लेजाने हारा (उग्रः) बलवान् पुरुष (ऊती) रक्षा, उत्तम उपाय और सन्मार्ग से (सुतं) उत्पन्न अभिषेक द्वारा प्राप्त, (सोमं) राष्ट्र को और (जरितारं) उपदेष्टा विद्वान् (पाता) पालन करने हारा पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर राजा (अस्तु) बने । वह (सु-स्वये वीराय) उत्तम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले वीर पुरुषों के लिये (लोकं कर्ता) उत्तम स्थान बनावे (कीरये चित्) उत्तम विद्वान् (स्तुवते) उपदेष्टा पुरुष के लिये भी (वसु) उत्तम गृह, धन आदि का (दाता अस्तु) देने वाला हो ।
गन्तेर्यान्ति सर्वना हरिभ्यां वृभिर्वर्जं पृष्ठिः सोमं दुर्दिग्नीः ।
कर्ता वीरं नयं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥

भा०—वह राजा (हरिभ्यां) अध्यों से रथवान् पुरुष के समान (हरिभ्यां) राष्ट्र में विद्यमान उत्तम स्त्री पुरुषों द्वारा, व उनके हितार्थ अथवा उत्तम दो विद्वानों द्वारा (हयन्ति सर्वना) इतने, नाना शासनोचित कार्यों, ऐश्वर्यों को (गन्ता) प्राप्त होने वाला, (वज्रं वत्रिः) शस्त्र बल को धारण करने वाला, (सोमं पृष्ठिः) अज्ञ और ऐश्वर्य का भोक्ता और पालक (गाः ददिः) उत्तम वापियों और भूमियों का दान करने वाला हो । वह (सर्व-वीरं) समस्त वीर पुरुषों से युक्त (नयं) नायक पुरुष के अधीन और राष्ट्र में वसे मनुष्यों का हितकारी (वीरं) वीर सैन्य वा पुत्र का (कर्ता) उत्पन्न करने वाला हो । वह (स्तोमवाहाः) स्तुति वचनों और स्तुत्य पदाधिकार को धारण करने हारा होकर (गृणतः हवं श्रोता) उपदेष्टा और निवेदक जन के उत्तम वचनों और पुकार का श्रवण करने वाला हो ।

अस्मै वृयं यद्ग्रावान् तद्विष्म इन्द्रायु यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्येन्द्रायु व्रह्म वर्धनं यथासत् ॥५१५॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारी (प्र-दिवः) उत्तम २ कामनाओं को पूर्ण करने के लिये वा सनातन, अनादि काल से (अपः कः) नाना कर्म करता है वह (यत् ववान्) जो भी चाहता है (तत् विविष्मः) हम वह २ प्राप्त करें । (वयं) हम (अस्मै इन्द्राय) इस ऐश्वर्यवन् के लिये (सुते सोमे) ऐश्वर्य, अज्ञ और उत्पन्न पुत्र आदि प्राप्त होने पर अवश्य (स्तुमसि) स्तुति करें । मनुष्य को चाहिये कि (इन्द्राय) उस परमेश्वर के (उक्त्या) स्तुतियां अवश्य (शंसत्) किया करे, (यथा) जिससे कि हमारा (व्रह्म) वृहत् ज्ञान और धन, अज्ञ और जीव आत्मा आदि जो प्राप्त किया है वह (वर्धनम्) स्वयं वृद्धिशील, हमें बढ़ती देने हारा (असत्) हो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

ब्रह्माणि हि चकृपे वर्धनानि तावत् इन्द्र मतिभिर्विष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्राक्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हि) निश्चय से (ब्रह्माणि) धनैश्वर्यों और अज्ञों को मेघ के समान सदा (वर्धनानि) बढ़ने वाला (चकृपे) करता है, उनको निरन्तर बढ़ाता है । (तावत्) इसी कारण हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (मतिभिः) अपनी उद्दियों द्वारा (ते) तेरे सामर्थ्यों को (विविष्मः) प्राप्त करें । हे (सु-तपाः) समस्त उत्पन्न होने वाले जीवों, तथा ऐश्वर्य अज्ञादि के पुत्रवत् पालन तथा उपभोग करने हारे ! (सुते सोमे) अज्ञ ऐश्वर्य वा सौम्य पुत्रादि के उत्पन्न होने पर भी हम (शन्तमानि) अति शान्तदायक, (रान्द्राय) हर्षजनक (वक्षणानि) स्तुति वचन, (यज्ञैः) ईश्वरोपासना, विद्वत्सत्कार और अभिहोत्र, दान आदि उत्तम कर्मों सहित किया किया करें, सुख सौभाग्य-

ऐश्वर्य तथा सन्तान की वृद्धि मनुष्य परमेश्वर की स्तुति, दान, यज्ञ, विद्व-
त्सत्कार किया करे ।

स नौं बोधि पुरोडाग्नं रराणः पित्रा तु सोमं गो ऋजीकमिन्द्र ।
एदं वृहिर्यज्जमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायुत उं लोकम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! धनाद्य पुरुष ! वह तू (रराणः)
अति प्रसन्न होकर एवं (पुरोडासं रराणः) अन्न प्रदान करता हुआ,
(गो-ऋजीकम्) गोरस, दूध आदि संस्कृत, तथा (गो-ऋजीकं) और
इन्द्रियों को कृज्ञ, सरल, सौम्य स्वभाव बनाने वाले तथा (गो-ऋ-
जीकं) वाणी, से संस्कृत, प्रशस्त और भूमि आदि से सुसम्पन्न (सोमम्)
अन्न, ऐश्वर्य और पुत्रादि का (पित्र) स्वयं पान तथा पालन कर । और
तू (यजमानस्य) दान देने वाले, यज्ञशील पुरुष के योग्य (इदं बहिः)
वृद्धि प्रतिष्ठाजनक इस उत्तम आसन पर (सीद) विराज । (त्वा-
यतः) तुझे चाहने वाले प्रियजन के लिये (लोकं) स्थान को (उरुं
कृधि) विशाल कर ।

स मन्दस्या ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अशुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शवृहन्तः ! हे विद्या और कर्म में
कुशल दृष्टः ! (इमे यज्ञासः) ये यज्ञ, दान सत्संग, देवपूजा आदि
सत्कर्म, (त्वा) तुझे (प्र अशुवन्तु) प्राप्त हों । (इमे हवासः) ये
दान और आदान अर्थात् देने लेने योग्य ज्ञान, अन्न, धन, उत्तम वचन
स्तुति आदि पदार्थ (त्वा पुरु-हूतम्) बहुत से स्तुति प्राप्त तुक्षको प्राप्त
होंगे । (इयं धीः) यह उत्तम वृद्धि और कर्मकुशलता तथा राष्ट्र के
धारण पालन पोषण की शक्ति (अवसे) रक्षा, ज्ञान, प्रीति आदि के
लिये (आ) प्राप्त हो । तू (यम्याः) उत्तम रीति से प्रबन्ध कर । (सः)

वह तू हे (उग्र) बलशालिन् ! (अनु जोषम्) प्रेमपूर्वक (मन्दस्त्र)
आनन्द, प्रसन्न रह ।

तं वः सखायुः सं यथा सुतेषु सोमैभिर्भौजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति न्तो भरायु न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥१॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! सभा आदि स्थलों पर एक
समान ख्याति वालो ! आप लोग (वः) अपने (सुतेषु) ऐश्वर्यों और
उत्पादित अब्जों के आधार पर (सोमेभिः) अज्ञ आदि ऐश्वर्यवर्धक पदार्थों
और उत्तम पुरुषों द्वारा (भोजम्) अब्जों द्वारा भोक्ता पुरुष के समान
इस राष्ट्रभोक्ता और पालक (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता, और सम्यक् द्रष्टा
पुरुष को (इम्) जल से (सं पृणत) अच्छी प्रकार अभिषिक्त, और
पूर्ण ऐश्वर्यवान् करो । (यथा) जिससे (तस्मै) उसको (नः भराय)
हमारे पालन पोषण के लिये (कुवित्) बहुत साधन तथा अज्ञ धनादि
सम्पदा (असति) हो । (सु-स्तिम्) उत्तम रीति से अज्ञ, और ऐश्वर्य
को उत्पन्न करने वाले राष्ट्र को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् राजा (अवसे)
रक्षा करने के लिये (न मृधाति) उनका नाश नहीं करे ।

एवेदिन्द्रं सुते अस्तावि सोमै भरद्वाजेषु क्षयुदिन्मध्योनः ।
असुद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रोऽर्यो विश्ववारस्य द्राता १०।१६।२

भा०—(इन्द्र एव हृत) वह शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान्, इस राष्ट्र को
न्यायपूर्वक देखने वाला पुरुष ही (सुते सोमे) उत्पन्न हुए पुत्र के
तुल्य इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में (क्षयत्) निवास करे । और (भरद्वा-
जेषु) ऐश्वर्य, और अज्ञ, ज्ञान आदि को धारण करने वाले मनुष्यों के
निमित्त (मध्योनः) ऐश्वर्यवान् सम्पद लोगों को भी पालन करे ।
(यथा) जिससे (इन्द्रः) वह राजा (जरित्रे) विद्वान् जनों के हित
के लिये (सूरिः) उत्तम शासक (उत्) तथा (विश्व-वारस्य रथः दाता)
सबको स्वीकार करने योग्य, उत्तम धनों का दाता (असत्) हो । इति
पोडशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[२४]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ सुरिक् पंक्तिः । ३,
५, ६ पंक्तिः । ४, ७ निचूत्रित्रिष्टुप् । ८ विष्टुप् । १० विराट् निष्टुप् । ६
त्राह्णी वृहती ॥ दशर्च मूकम् ॥

वृषा मद् इन्द्रे श्लोकं उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।

अर्चर्चयो मधवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्तो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) पैर्शर्ययुक्त राष्ट्र और शत्रुहन्ता सैन्य बल पर (वृषा) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, मेघवत् उदार प्रबन्धक (मदः) अति प्रसन्न, (श्लोकः) पुण्य कीर्तिमान्, (सोमेषु) सौम्य स्वभाव के पुरुषों के बीच में (सचा) समवाय बनाकर रहने वाला (सुतपाः) प्रजा को पुत्र के समान पालन करने और (सुतपाः) उत्तम तपस्वी और शत्रुओं को खूब तपाने हारा, (ऋजीषी) ऋजु, धर्मपूर्वक सरल मार्ग से प्रजा को ले जाने हारा (अर्चयः) अर्चना करने योग्य, पूज्य, (मधवा) धनसम्पन्न (द्युक्षः) तेजस्वी, (राजा) राजा (नृभ्यः) उत्तम मनुष्यों के हित के लिये (गिराम्) उपदेष्टा विद्वानों के (उक्थैः) उत्तम वचनों से उपदेश प्राप्त कर वह (अक्षितोतिः) अक्षय, अनन्त रक्षा सामर्थ्य वाला हो ।

ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उव्यूतिः ।

वसुः शंसो नुरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् २

भा०—(ततुरिः) शत्रुओं को नाश करने वाला, (वीरः) विविध बलों का स्वामी, तेजस्वी, रक्षक, वीर, (विचेताः) विविध ज्ञानों का जानने हारा, विशेष चित्त से युक्त, (नर्यः) नायकों और मनुष्यों में श्रेष्ठ, उनका हितैषी, (गृणतः) उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष के (हवं) ग्रहण करने योग्य उपदेश-वचन को तथा निवेदन करने वाले प्रजाजन की पुकार तथा

आह्वान को (श्रोता) सुनने हारा राजा (उरु-अतिः) बड़ी रक्षा सामर्थ्य वाला हो । वह (वसुः) राष्ट्र को बसाने वाला, (नराशंसः) सब मनुष्यों में उत्तम स्तुति योग्य (कारु-धायाः) शिल्पी तथा विद्वान् जनों का पालक पोषक, (वाजी) बलवान् पुरुष (स्तुतः) प्रशंसित और नायक पद पर प्रस्तुत होकर (विद्ये) संग्रामादि के अवसर पर (वाजम् दाति) ऐश्वर्य और बल को देता है ।

अद्यो न चक्रयोः शूर वृहन्प्र ते मुहा रिरिचे रोदस्योः ।

वृक्षस्य नु ते पुरुहृत वृथा व्यु॑त्यो रुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥

भा०—(चक्रयोः अक्षः न) गाढ़ी के पहियों में निस प्रकार धुरा लगा रहता है वह उसके समस्त भार को सहता और चलता है उसी प्रकार हे (शूर) शूरवीर ! हे शत्रुओं के नाशक ! राजन् ! प्रभो ! (ते) तेरा (वृहन्) बड़ा भारी (अक्षः) तेज और व्यापक बल, (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच में सूर्य के प्रकाश वा परमेश्वरी शक्ति के समान स्व और पर राष्ट्रों तथा शासक और शास्त्र वर्गों में (ते महा) तेरे महान् सामर्थ्य से, (प्र रिरिचे) बहुत अधिक बड़ा है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! हे (पुरुहृत) बहुतों से प्रशंसित ! (वयाः) ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियां और व्यापक सामर्थ्य और शाखा संस्थाएं, तेजस्वी पुरुष गण (वृक्षस्य वयाः नु) वृक्ष की शाखाओं के समान (वि रुहुः) विविध दिशाओं में विविध प्रकारों से उत्पन्न हों, बढ़ें और फलें फूलें । (२) राष्ट्र में राजा का शासन, निरीक्षण आदि चक्रों में अक्ष के समान लगकर उसे धारण करता है और सब शासक जन उसकी शाखावत् हैं ।

शर्चीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामेव सुतयः सुश्चरणीः ।

वृत्सान्तं न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४॥

भा०—हे (पुरुशाक) नाना शक्तियों के स्वामिन् ! (गवाम् इव सुतयः सञ्चरणीः) जिस प्रकार गौओं के चलने के मार्ग अच्छी प्रकार

चलने योग्य होते हैं और (गवाम् इव सुतयः सञ्चरणीः) जिस प्रकार गौओं के दूध की वहती धारें अच्छी प्रकार सुख से खाने योग्य होती हैं उसी प्रकार (ते शचीवतः) तुक्ष शक्तिशाली, वाणी प्रज्ञा तथा शक्ति वाली सेना के स्वामी के (शाकाः) शक्तिशाली पुरुष तथा शक्ति के कार्य भी (संचरणीः) उत्तम रीति से चलने वाले, सदाचारी, और सुखदायक हों। हे (सुदामन्) उत्तम नियमों में बांधने हारे ! (वत्सानां तन्तयः न) बछड़ों को बांधने की रस्सियां जिस प्रकार कुछ ढीली रहकर भी बछड़ों को कष्ट न पहुंचाती हुई उनके दाख के लिये होती हैं उसी प्रकार (वत्सानां) राष्ट्र में वसी प्रजाओं के (तन्तयः) विस्तृत राजनियम तथा (शाकाः) तेरे शक्ति के कार्य भी (अदामानः) स्वतः बन्धनरहित होकर भी (दामन्वन्तः) उत्तम बन्धनों से बद्ध प्रजा को उत्तम रीति से बांधने में समर्थ हों।

अन्यदुद्य कर्वैरमन्यदु श्रोऽस॑च्च सन्मुहुराच्चक्रिन्द्रः ।

मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषायां वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा ! (अद्य) आज (अन्यत् कर्व-रम्) और ही काम (शः अन्यत् कर्वरम्) और कल दूसरा ही काम (सत्-च असत्) व्यक्त और अव्यक्त, प्रकट और अप्रकट रूप से (आचक्षिः) नित्य करनेवाला हो। और वह (अर्थः) सबका स्वामी, (नः) हम प्रजाओं को (मित्रः) मृत्यु भय से रक्षा करने वाला, स्नेहवान्, और (वरुणः च) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखों, कष्टों, विद्वां का वारण करने में समर्थ और (पूषा) सबका पोषक होकर (वशस्य) हमारे कामनायोग्य फल का (पर्येता) प्राप्त कराने वाला (अस्ति) हो और राजा (वशस्य पर्येता अस्ति) वश में आये राष्ट्र को अच्छी प्रकार वश करने में समर्थ हो। (२) परमेश्वर भी व्यक्त, अव्यक्त भिन्न २ कर्म करता रहता है, वही मित्र, वरुण, पूषा है वही सब का स्वामी, सब जगत् में व्यापक है।

और वही काम्य सुखों का दाता है । (३) इन्द्र जीव (सत् च असत् च) अच्छे तुरे नाना कर्म करता है । परमेश्वर ही काम्य-फलों का दाता है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

वित्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।

तं त्वाभिः सुषुतिभिर्बाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६॥

भा०—(पर्वतस्य पृष्ठात् आपः न) पहाड़ के पीठ से जिस प्रकार जलधाराएं काठ आदि किसी पदार्थ को भी नीचे ले आती हैं उसी प्रकार (आपः) आस प्रजाएँ भी (त्वत्) तुक्ष उच्च पुरुष के पास से (उक्थेभिः यज्ञैः) उत्तम, प्रशंसनीय स्तुति-वचनों और यज्ञ-कर्मों तथा संत्सर्गों, दानों द्वारा, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अपने अभिलिखित पदार्थ (अनयन्त) प्राप्त करते हैं । (अश्वाः आजिं न जग्मुः) जिस प्रकार वेगवान् अश्व वा अश्वारोही गण उत्तम स्तुतियों से राजा वा सेनापति का बल बढ़ाते हुए संत्राम में जाते हैं उसी प्रकार हे प्रभो ! हे (गिर्वाहः) वाणियों द्वारा प्राप्त करने योग्य, समस्त स्तुतियों को धारण करनेहारे ! (अश्वाः) विद्याओं में ग्रन्तीण, बड़े मनुष्य भी (त्वाभिः) उस परम पूज्य तुक्षको (सुस्तुतिभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा (वाजयन्तः) अपने ज्ञान का विषय बनाते हुए, तेरा ज्ञान-लाभ करते हुए (आजिं जग्मुः) अपने गन्तव्य, परम लक्ष्य को आप होते हैं ।

न यं जरनित शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।

वृद्धस्य चिद्र्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥

भा०—(यं इन्द्रम्) जिस महान् शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान् महान् आत्मा को (न शरदः) न वर्षगण, (न मासाः) न वर्ष के मास और (न द्यावः) न दिन ही (अब कर्शयन्ति) कृश कर सकते हैं, (अस्य) इस (वृद्धस्य) महान् की (तनूः) व्यापक शक्ति, (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों से और (उक्थैः च) उत्तम वचनों द्वारा (शस्यमाना चित्) वर्णन की जाकर भी (वर्धताम्) अन्नों से देह के समान बराबर बढ़ती ही है ।

उसी प्रकार जिस राजा को वर्ष, मास, दिन आदि वा हिंसक सेनाएं, ज्ञान-वान् पुरुष और तेजस्वी लोग कृदा न करें, न घटावें उसकी व्यापक राष्ट्र-रूप तनु भी उत्तम (स्तोमैः) उपदेष्टा पुरुषों द्वारा (शस्यमाना) उपदेश की जाकर शिष्य की दुद्धि के समान बराबर बढ़े ।

न वीडवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।

अज्ञा इन्द्रस्य गिरयश्चिह्न्या गम्भीरे चिन्द्रवति गाधमस्मै॥८॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् स्वामी (दस्यु-जूताय) दुष्ट, प्रजा के नाशकारी पुरुषों से सेवित (वीडवे) बलवान् पुरुष के हित (न नमते), नहीं झुकता, (न स्थिराय) न स्थिर, दृढ़ पुरुष के आगे झुकता और (न-शर्धते) बल प्रकट करने वाले के आगे ही झुकता है । वह (न स्तवान्) न ऐसे ऐसे वक्तियों की प्रशंसा ही करता है, इस (इन्द्र) वैभवशाली, महान् शत्रुहन्ता पुरुष के (अज्ञाः) शत्रुओं को उखाड़ के फेंकने वाले शत्रुघ्नि बल भी (गिरयः चित्) मेघों के समान लगातार बरसने वाले तथा पर्वत के तुल्य अभेद्य, दृढ़ और (ऋश्वाः) महान् होते हैं । (अस्मै) इसके लिये (गम्भीरे चित्) गहरे से गहरे समुद्र में भी (गाधम् भवति) थाह होती है । (२) परमेश्वर की समस्त लोकों को संचालन करनेवाली महती शक्तियां 'अज्ञ' हैं, वह स्तुत्य होने से 'गिरि' हैं ।

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतषाद्वन्वाजान् ।

स्था उ पु ऊर्ध्वं ऊती अरिष्परयञ्जकोव्युपौ परितक्ष्यायाम् ।९।

भा०—हे (अमत्रिन्) बलशालिन् ! हे (सुतपादन्) प्रजा जन को पुत्र के समान पालन करने वाले ! वा ऐश्वर्य के रक्षक राजन् ! हे (सुतपावन्) उत्पज्ज जगत् के रक्षक और पालन करने हारे प्रभो ! तू (गम्भीरेण) गम्भीर, और (उरुणा) महान् विस्तीर्ण, सामर्थ्य से (नः इषः) हमारी कामनाओं को और (वाजान्) बलों, अन्नों, ज्ञानों को (प्र वन्धि), हमें खूब दे । वा (नः वाजान् प्र इषः) हमारे ऐश्वर्यों को तू चाह । (नः वाजान्)

प्रयन्धि) हमारे बलों को नियम में रख । वा, (नः इषः प्रयन्धि) हमें अन्न, और इष्ट बुद्धि आदि प्रदान कर और (वाजान् प्रयन्धि) बहुत से ऐश्वर्य दे । वा (इषः प्रयन्धि, वाजान् प्रयन्धि) हमारी सेनाओं और बलवान् पुरुषों को उत्तम नियन्त्रण में रख । और तू (नक्तोः) रात्रि के (चि-उष्टौ) प्रभात होने के काल में तथा (परितक्ष्यायाम्) रात्रि काल में वा, अति कष्टमयी दशा में भी, (अरिष्णयन्) स्वयं प्रजाओं का पीड़न न करता हुआ, (ऊतो) अपने रक्षा बल से (ऊर्ध्वः उ सु स्थाः) सब से ऊंचा होकर रह ।

सच्चस्व नायमवसे ऋभीकं इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।

अमा चैनुमररये पाहि रिषो मदैम शुतहिमाः सुवीराः ॥१०।१८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अभीके) संग्राम में (अवसे) रक्षा करने के लिये (नायम्) नायक पुरुष को तथा सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने वाले न्याय को (सच्चस्व) ग्रास कर । और (इतः) इस समीप आये (रिषः) हिंसक शत्रु से (पाहि) रक्षा कर । (च) और (एनम्) इस प्रजाजन की (अमा च अरण्ये च) घर में और जंगल में भी (रिषः) हिंसक, चोर, दस्यु वा व्याघ्रादि से (पाहि) रक्षा कर जिससे हम (सु-वीराः) उत्तम पुत्रादि सहित (शत-हिमाः मदैम) सौ वर्षों तक आनन्द, सुखमय जीवन लाभ करें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[२५]

भरद्वाजो वार्षस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पंक्तिः । ३ भारिक् पात्रिः । २, ७, ८, ९ निचूत्रिष्टुप् । ४, ६ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

या ते ऋतिरव्मा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नास्ति ।

ताभिरुषु वृत्रहत्येऽर्वानं पभिश्च वाजैर्महान् उग्र ॥ १ ॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) तेजस्विन् ! (या ते) जो तेरी (ऊतिः अवमा) रक्षा निकृष्ट,

अति तुच्छ, (परमा) जो रक्षा सर्वोक्तुष्ट, (या) जो रक्षा (मध्यमा) मध्यम कोटि की (अस्ति) है। (ताभिः) उन रक्षाओं से (वृत्र-हल्ये) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुजनों के घात करने योग्य संग्राम में (एभिः वाजैः महान्) इन ऐश्वर्यों और बलों से महान् होकर (ताभिः) उन रक्षा साधनों और सेनाओं से (नः सु अवीः उ) हमारी अवश्य और अच्छी प्रकार रक्षा किया कर।

आभिः स्पृधो मिथ्यतीररिष्ठएयन्त्रमित्रस्य व्यथया मन्युमेन्द्र ।

आभिर्विश्वा आभियुजो विषूचीरार्यायु विशोऽवं तारीदासीः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! सेनापते ! राजन् ! तू (आभिः) इन (अभित्रस्य) शत्रु की (मिथ्यतीः) हिंसा करती हुई (स्पृधः) सेनाओं को (मन्युम्) कोप कर के (व्यथय) पीड़ित कर। स्वयं (अरिष्ठएयन्) अपनी प्रजा का विनाश न करता हुआ (आभिः) इन सेनाओं द्वारा (विशाः) समस्त (विषूचीः) विविध स्थानों पर विद्यमान (अभियुजः) आक्रमण करने वाले की (दासीः) प्रजा का नाश करने वाली सेनाओं को (अव तारीः) विनाश कर और (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुष की (विशाः) समस्त (विषूचीः) विविध प्रकार की (दासीः विशः) भृत्य वा दास के समान सेवा करने वाली प्रजाओं को (अव तारीः) संकट से पार कर।

इन्द्रं जामयं उत ये जामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युद्युजे ।

त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्णयानि कृणुही पराचः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! सेनापते ! राजन् ! (ये) जो लोग (जामयः) बन्धुओं के समान स्नेही वा भार्याओं के समान आज्ञाकारी, (उत) और (ये) जो (अजामयः) सपत्नी वा सौतें या अबन्धु जनों के समान, निःस्नेह हैं और जो (अर्वाचीनासः) अब के, वा हमारे प्रति आने वाले, (वनुषः) अपने धन वेतन

आदि देनेवाले स्वामियों के प्रति (युक्तुञ्चे) योग देते वा उनके विरोध में आकर्मण या घड्यन्त्र करते हैं (त्वम्) त् (एषां) इन के (विश्वुरा) पीड़ा-दायक (शवांसि) बलों को (जहि) विनाश कर और (वृष्ण्यानि) बलशाली सैन्यों को (कृषुहि) सम्पादन कर और (पराचा जहि) पराढ़मुख शत्रुओं को भी नाश कर ।

शूरौ वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।

तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि कन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (तनूरुचा) अपनी देह की कान्ति में चमकने वाले दो पुरुष (तरुषि) एक दूसरे को मारने के निमित्त (कृण्वैते) युद्ध करते और एक दूसरे को मारते हैं उसी प्रकार दो प्रबल राजा भी (तनूरुचा) विस्तृत सेनाओं वा विस्तृत राष्ट्र सम्पदा से शोभा-चान् होकर (तरुषि) संग्राम-काल में (शरीरैः) बहुत से शरीरधारी सैन्यों सहित (कृण्वैते) उद्योग करें । तब (शूरः शूरं वा) एक शूर-वीर पुरुष दूसरे शूरवीर को (वनते) मारता, है, एक दूसरे को सेवता भी है । इसी प्रकार (यत्) जब (तोके) पुत्र, (तनये) पौत्र, (वा गोषु) वा गौओं, और (अप्सु उर्वरासु) पुत्र वा अन्नादि को उत्पन्न करने वाली उपजाऊ प्राप्त स्त्रियों और भूमियों के निमित्त (कन्दमानौ) परस्पर आक्षेप करते हुए, (यत् वि ब्रवैते) परस्पर विवाद करते हैं तब भी तू ही उनके ऊपर न्यायकर्ता के समान विद्यमान रह ।

नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोधं ।
इन्द्रु नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्युभ्यसि तानि ॥५॥१९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शशुहन्तः ! राजन् ! (त्वा) तेरे से अधिक (नहि शूरः) न कोई शूरवीर (न तुरः) न कोई हिंसक, (न धृष्णुः) न कोई शत्रुपराजयकारी, (न योधः) न कोई योद्धा, (मन्यमानः) अभिमानी होकर (युयोध) युद्ध कर सकता है, (एषाम्) इनमें से (त्वा

प्रति नकिः अस्ति) तेरे मुकाबले पर कोई भी नहीं है । तू ही (विश्वा-जातानि) समस्त उत्पन्न वा प्रसिद्ध (तानि) उन २ नाना सैन्यों के (अभि असि) मुकाबले पर समर्थ है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स पत्यत उभयोर्नृमणमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।

वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यच्चस्वन्ता यदि वितन्त्सैते ॥६॥

भा०—(यदि) जो दोनों (वृत्रे) विघ्न उपस्थित होने पर (वा) अथवा (नृवति क्षये वा) मनुष्यों से युक्त भूत्यादि सहित गृह के निमित्त (व्यच्चस्वन्ता) विविध वा एक दूसरे के विपरीत आते हुए, (वितन्त्सैते) विशेष रूप से विवाद करते हैं या एक दूसरे से लड़ते हैं और (यदि) जब (वेधसः) विद्वान् लोग (समिथे) संग्राम में (हवन्ते) निर्णय करने के लिये छुलाते हैं तब जो (उभयोः) दोनों के बीच (नृमणम् अयोः) धन का ठीक २ प्रकार विभाग कर देता है (सः पत्यते) वह दोनों का स्वामी होने योग्य होता है ।

अधि स्मा ते चर्षण्यो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरुता ।

अस्माकासुो ये नृतमासो श्रृंथ इन्द्रं सूरयो दधिरे पुरो नः ॥५॥

भा०—(अधि) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यत्) जब (ते चर्षण्यः) तेरे प्रजाजन (प्रजान् स्म) भय से कांपें तो उनका तू (त्राता भव) रक्षक हो, (उत्) और तू (वरुता भव) उनके दुःखों को दूर करने हारा हो । (ये) जो (अस्माकासः) हमारे (नृत-मासः) श्रेष्ठ नायक और (सूरयः) विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (पुरः) नगरों को (दधिरे) धारण करते हैं या हमारे आगे ज्ञान और बल को धारण करते, साक्षी रूप से रहते हैं उनका भी तू (अर्यः) स्वामी, रक्षक (भव) हो ।

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सुत्रा ते विश्वमनुवृत्तहत्ये ।
अनु त्रमनु सहो यजुत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृष्टहो ॥ ८ ॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील ! हे पूज्य ! संगतियोग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वृत्रहत्ये) बढ़ते, विघ्नकारी शत्रु को नाश करने के कार्य में (ते महे इन्द्रियाय) तेरे बड़े भारी ऐश्वर्य और बल की वृद्धि के लिये, (देवेभिः) विजय कामना करने और कर आदि देने वाले प्रजाजन और ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुष (ते) तेरे निमित्त (विश्वम् अनु दायि) सभी कुछ देते हैं । और वे (नृष्ट्ये) संग्राम में वे (क्षत्रम् अनु दायि) बल प्रदान करते हैं । (ते सहः अनु दायि) तुझे शत्रु पराजयकारी शक्ति प्रदान करते हैं ।

**एवा नः स्पृधः समजा सुमत्स्वन्द्रि रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम् वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नुनम् १२०॥**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले ! तू (एव) इस प्रकार (समत्सु) युद्ध के अवसरों पर (नः) हमारे (स्पृधः) प्रतिस्पर्धा करने वाले शत्रुओं को (सम् अज) अच्छी प्रकार उखाड़ फेंक, और (स्पृधः सम् अज) स्पृहा अर्थात् प्रेम करने वालों को मिला । (अदेवीः मिथतीः) ऐश्वर्य वा कर आदि न देने वाली, तथा परस्पर नाश करने वाली सेनाओं और प्रजाओं को (रारन्धि) वश कर । हम (ते अवसा) तेरे रक्षा सामर्थ्य से (नुनम्) निश्चयपूर्वक (गृणन्तः) तेरी स्तुति करते हुए (भरद्वाजाः) ज्ञान और ऐश्वर्यका धारण करने वाले होकर (वस्तोः) राष्ट्र में बसने का सुख (विद्याम) प्राप्त करें । इति विशो वर्गः ॥

[२६]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २, ४ भुरिक् पंक्तिः । ३ निचृत् पंक्तिः । ५ स्वराद् पंक्तिः । ६ विराट्विष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ८ निचृत्विष्टुप् ॥ अष्टर्च सूक्तम् ॥

शुधी न इन्द्रु द्वयामसि त्वा मुहो वाऽस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (महः वाजस्य सातौ) बड़े भारी अज्ञ, ऐश्वर्य और बल को प्राप्त करने, विभाग करने और प्रयोग करने के निमित्त, (वृत्पाणः) तेरा बल बढ़ाते और अभिपेक करते हुए (त्वा) तुक्षे (ह्यामसि) बुलाते हैं । (यत्) जब (विशः) प्रजाएँ (शूर-सातौ) वीर पुरुषों के विभाग करने योग्य संग्राम के निमित्त संग्राम के उपरान्त या उनको नाना पारितोषिकादि रूप से विशेष द्रव्य विभाग करने के निमित्त (सम् अयन्त) एक स्थान पर एकत्र हों तब तू (पार्ये अहन्) सर्व-पालनीय, अन्तिम या नियत दिन पर (नः) हमें (उग्रं अवः) उत्तम, तेजयुक्त पालन, योग्य अज्ञ वेतन आदि, (दाः) अदान कर ।

त्वां वाजी हृचते वाजिनेयो मुहो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्दु सत्पतिं तरुत्वं त्वां चंष्टे मुष्टिहा गोषु युद्धयन् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वाजिनेयः वाजी) ज्ञान से युक्त माता पिता वा आचार्य का पुत्र, शिक्षित विद्वान् पुरुष (महः वाजस्य सातौ) बड़े भारी ज्ञान को प्राप्त करने और विभाग करने के लिये गुरु को (हृचते) स्वीकार करता है उसी प्रकार (वाजिनेयः) ‘वाजिनी’ अर्थात् बलवती सेना के योग्य (वाजी) बलवान् शूरवीर पुरुष भी (महः) उत्तम, देने योग्य, (गध्यस्य) सबको प्राप्त होने योग्य (वाजस्य) ऐश्वर्य या अज्ञ, वेतनादि के (सातौ) प्राप्त करने के लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वां हृचते) तुक्ष स्वामी को अपनाता है । इसी प्रकार (गोषु) भूमि को विजय करने के निमित्त (युद्धयन्) युद्ध करता हुआ वीर पुरुष (मुष्टिहा) मुट्ठी के समान पांचों का समवाय या संघ बना कर शत्रु को नाश करने में समर्थ वा (मुष्टिहा) ‘मुष्टि’, चोरी आदि उपद्रवों का नाशक पुरुष भी (वृत्रेषु) बढ़ते शत्रु रूप विद्वानों के बीच वा नाना धनों को प्राप्त करने के लिये भी (त्वां सत्पतिं) तुक्षको ही सत्पालक

और (त्वं तस्म) तुश्कको वृक्षवत् आश्रयदाता, रक्षक, वा संकटों से पार पहुंचाने वाला (चष्टे) देखता वा कहता है ।

त्वं कृविं चौदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णे दाशुषे वर्क ।

त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्तिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं अर्कसातौ) अज्ञ, और स्तुत्य, सूर्यवत् तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये (कविम्) दूरदर्शी विद्वान्, को (चोदयः) प्रेरित कर और (त्वं) तू (कुत्साय) राष्ट्र के शस्त्रास्त्र बल को धारण करने और (दाशुषे) कर आदि देने वाले प्रजाजन के पालन के लिये (शुष्णं) शत्रुशोषक बल को (वर्कं) नाना विभागों में विभक्त कर और (शुष्णं वर्कं) प्रजाशोषक दुष्ट जन वा दोषयुक्त व्यवस्था को नाश कर । और (अतिथिग्वाय) अतिथिवत् पूज्य पुरुषों की गौ, गव्य दूध, वीतथा वाणी आदि से सत्कार करने वाले पुरुष के लिये (शंस्यं करिष्यन्) प्रशंसनीय कार्य करना चाहता हुआ (त्वं) तू (अमर्मणः) मर्म स्थल से रहित, अति दृढ़ शत्रु के (शिरः) शिर के समान मुख्य अंग को ही (परा हन्) परास्त कर ।

त्वं रथं प्र भरो योधमुखमात्रो युध्यन्तं वृषभं दशश्युम् ।

त्वं तु ग्रे वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (योधं) युद्ध करने वाले (ऋत्वं) महान् (रथं) रथ तथा रथ सैन्य को (भरः) अच्छी प्रकार से प्राप्त और पालन कर । (युध्यन्तं) युद्ध करते हुए (दशश्युम्) दशो दिशाओं में चमकने वाले तेजस्वी, (वृषभं) शरवर्षी योद्धाजन को (आअवः) आदरपूर्वक तृस, सन्तुष्ट कर । (वेतसवे) ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले राष्ट्र के लिये (सचा) साथ ही समवाय बनाकर (त्वं) तू (तुग्रं), बल वा सैन्य लेकर चढ़ाई करने वाले शत्रु को (अहन्) दण्डित कर । और (गृणन्तं तुजिम्) स्तुति वा उपदेश करते हुए दानशील विद्या के दाता विद्वान् उपदेष्टा को तू (तूतोः) बढ़ा ।

त्वं तदुकथमिन्द्र वृहणा कुः प्र यच्छ्रुता सुहस्त्रा शूर दर्शि ।
अवं गिरेदासं शम्वरं हृन्प्रावु दिवोदासं चित्राभिरुती ॥५॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे (शूर) वीर पुरुष ! (कः) कर । (यत्) जो तू (शता सहस्रा) सैकड़ों हजारों शत्रुसैन्यों को दलन करता है वह (त्वं) तू (वृहणा) वृद्धिशील वा समृद्ध बल से (तत्) वह नाना वा (उक्थं) प्रशंसनीय (गिरेः दासं शम्वरं) मेघ के बीच विद्यमान शान्तिदायक जल को जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत (अव हन्ति) नीचे गिराता है उसी प्रकार (गिरेः) पर्वत के बीच में (दासं) प्रजाजनों का नाश करने वाले (शम्वरं) शान्तिनाशक शत्रुजन को तू (अव हन्) नीचे मार गिरा । अथवा (गिरेः दासं) मेघवत् निष्पक्षपात् गुरु के सेवकवत् (शम्वरं) शान्तिकारक उत्तम शिष्यवत् प्रजाजन को (अव हन्) अवगत कर अर्थात् उसे यथार्थ ज्ञान दे वा उसको दण्डादि द्वारा दोषों से मुक्त कर । इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्द्भीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।

त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्पृष्ठि सुहस्त्रा शच्या सचाहन् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (श्रद्धाभिः) सत्यधारणाओं और (सोमैः) सौम्य स्वभाव के पुरुषों या ऐश्वर्यों के साथ (मन्दसानः) प्रसन्न होता हुआ (दभीतये) शत्रु के नाश करने के लिये (चुमुरिम्) प्रजा को खाजाने वाले दुष्टगण को (सिष्वप्) सुला दे । और (पिठीनसे) ‘पिठी’ हिंसाकारिणी और शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों को क्लेश देने वाली, शक्ति को नाक के समान मुख्य रूप से धारण करने वाले शक्तिशाली, नायक पुरुष को (त्वं) तू (रजिं) सैन्य पंक्ति वा स्वयं उसकी ‘नाक’ वा अग्रणी होकर रहने वाले वा राज्यशक्ति को (दशस्यन्) देता हुआ, (पर्णि सहस्रा) ६० हाज़र शत्रुओं को भी (शच्या) समाय बल से युक्त सेना और स्थिर वृद्धिद्वारा (हन्) विनाश कर ।

अहं चन तत्सुरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।

त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीराण्विवरथेन नहुषा शविष्ट ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अहंचन) मैं भी (तव) तेरे (तत्) उस (ज्यायः) महान्, (सुम्नम्) सुखप्रद (ओजः) पराक्रम का उन (सूरिभिः) विद्वानों के सहित (आनश्याम्) उपभोग करूँ । हे (शविष्ट) अत्यन्त शक्तिशालिन् ! हे (सधवीर) वीरों सहित (यत् नहुषा) जो लोग, (त्रिवरुथेन) शोत, उष्ण, वर्षा तीनों से बचाने वाले, गृह के स्वामी रूप अथवा त्रिविध दुःखों के वारक (त्वया) तुक्ष से (वीरा) वार्यवान् होकर (स्तवन्ते) तेरा गुण गान करते हैं !

वृयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन् प्रेष्टः ।

प्रातर्दिनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो धने वृत्राणां सुनये धनानाम् ॥८॥२२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (महिन) महान् ! पूज्य ! (वयम्) हम लोग (अस्याम्) इस (ते) तेरी (द्युम्नहूतौ) धन के निमित्त आदरपूर्वक पुकार तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति करने के निमित्त (ते-प्रेष्टः) तेरे अति प्रिय (सखायः स्याम) मित्र होकर रहें । (वृत्राणां) बढ़ते और विघ्न करने वाले शत्रुओं के (धने) हनन और (धनानाम् सनये) धनों को प्रजा में यथोचित विभाग के लिये (प्रातर्दिनिः) शत्रुओं को अच्छी प्रकार छिन्न मिन्न करने वाले सैन्य बल का स्वामी पुरुष ही, (श्रेष्ठः) सबसे उत्तम, प्रशंसनीय (क्षत्र-श्रीः अस्तु) बल वीर्य और क्षात्र शक्ति की उत्तम शोभा से युक्त वा बल का आश्रय हो । हति द्वाविंशो वर्गः ॥

[२७]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ १—७ इन्द्रः । ८ अभ्यावतिनश्चायमानस्य दान-स्तुतिरेवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४ निचृतिष्ठुप् । ५, ७, ८ त्रिष्ठुप् । ६ ब्राह्मी उष्णणक् ॥

किमस्य मदे किमस्य पीताविन्दुः किमस्य सुख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शक्तिशाली, शत्रु-हन्ता पुरुष (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य को प्राप्त कर उसके हर्ष वा उसको दमन कर लेने के निमित्त (किं चकार) क्या करे ? (अस्यपीतौ) इसके उपभोग और पालन के निमित्त (किं चकार) क्या करे ? (अस्य सख्ये) इसकी मित्रता की वृद्धि के लिये वह (किं चकार) क्या र उपाय करे ? (वा) और (ये) जो (अस्य) इसके (निषदि) राज्यासन पर विराजने पर (रणाः) आनन्द प्रसन्न होते हैं वे प्रजाजन (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये भी (किं विविद्रे) क्या र लाभ करें और वे क्या र कर्तव्य जानें ? इसका उत्तर अगली ऋचा में है ।

सदस्य मदे सदस्य पीताविन्दुः सदस्य सुख्ये चकार ।

रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य के आनन्द पूर्वक लाभ करने और दमन, शासन करने में (सद् चकार) सत्य, न्यायपूर्वक उत्तम कार्य ही करे । (अस्य पीतौ) इसके उपभोग और पालन करने के निमित्त (सत् उ चकार) ‘सत्’ अर्थात् प्रमाद् रहित होकर यथोचित् उत्तम प्रबन्ध करे । (अस्य सख्ये) उसका मैत्री-भाव बनाये रखने के लिये (सत् चकार) सदा सत्य, न्यायोचित् शुभ र कर्म किया करे । (ये वा अस्य निषदि) और जो इसके सिंहासन पर विराजने में (रणाः) आनन्द प्रसन्न होते हैं (ते) वे भी (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये सभी (सत् सत् उ विविद्रे) उत्तम, उत्तम फल तथा शुभ पुरस्कार आदि लाभ करें ।

न विनु ते महिमनः संमस्य न मधवन्मधवत्त्वस्य विद्वा ।

न राधसो राधसो नूतनस्येन्द्र न किर्ददश इन्द्रियं ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (ते महिमनः) तेरे महान् सामर्थ्य के विषय में हम (नहि नु सं विद्ध) कुछ भी नहीं जानते हैं । और तेरे (मधवत्वस्य न सं विद्ध) तेरे महान् ऐश्वर्य के विषय में भी कुछ नहीं जानते । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते नूतनस्य) तेरे नये से नये (राधसः राधसः) धन ऐश्वर्य और आराधना योग्य उत्तम गुण-राशि को भी (न सं विद्ध) हम नहीं जानते । हे ऐश्वर्यवन् ! (ते इन्द्रियं) तेरा महान् ऐश्वर्यमय स्वरूप और बल भी (नक्तः ददशे) किसी को गोचर नहीं होता ।

एतत्यत्त्वं इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहृतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (ते वर-शिखस्य एतत् त्यत्) उत्तम शिखा वाले तेरा वह प्रसिद्ध सर्वप्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) महान् ऐश्वर्य और बल (अचेति) जाना जाता है (येन) जिससे तू (अवधीः) शत्रुओं का नाश करता है । (यत्) और जो (ते) तेरे (नि-हृतस्य) प्रहार किये गये (वज्रस्य) शख के (शुष्मात्) बल और (स्वनात्) शब्द से भी (परमः शेषः) बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा भी (ददार) भयभीत होता है ।

वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्याचीर्तिने चायमानाय शिक्षान् ।
वृचीवतो यद्वियुपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापयो दर्त् ॥५॥२३॥

भा०—जब (हस्तियूपीयायाम्) वह मनुष्यों को गुणों से मुग्ध करने वाली विद्या के निमित्त (पूर्वे अर्धे) पूर्व के उत्तम काल में (अपरः) दूसरा भी (भियसा दर्त्) भय से भीत हो, इस प्रकार से वह (वृचीवतः) अज्ञाननाशक विद्या वाले शिष्यों को (हन्) ताड़ना करे । तब (वर-शिखस्य) उत्तम, शिखा

धारण करने वाले (वृचीवतः) अविद्या के छेदन करने वाली उत्तम हृच्छा से युक्त विद्यार्थी का (शेषः) शासन करने हारा (इन्द्रः) उत्तम आचार्य (चायमानाय) सत्कार करने वाले (अभ्यावर्त्तिने) समीप रहने वाले अन्तेवासी शिष्य को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (वधीत्) दण्ड भी दे, उसकी यथोचित् ताङ्गना भी करे । (२) इसी प्रकार (हरियू-पीयायाम्) मनुष्यों के स्वामी राजा की पालन करने वाली नीति में लगे (वृचीवतः) प्रजा के उच्छेद करने वाली शक्ति से युक्त दुष्ट पुरुषों को राजा (पूर्व अर्धे) अपने समृद्ध शासन के पूर्व काल में ही (अपरः) उत्तम राजा (भियसा) भयजनक उपाय से (हन्) उनको ताङ्गना करे और (दर्त्) भयभीत करे । (वर-शिखस्य अभ्यावर्त्तिने चायमानाय शिक्षन्) समीप प्राप्त अनुकूल अपने सत्कार करने वाले प्रजाजन के हितार्थ उनको (वर-शिखस्य शेष इव शिक्षन्) उत्तम शिखा या तुर्ए वाले प्रमुख नायक के पुत्रवत् सद्व्यवहार की शिक्षा देता हुआ (इन्द्रः) राजा (वधीत्) दण्डित किया करे । अर्थात् राजा प्रजाजन को पुत्रवत् प्रेम करता हुआ भी हित से ही उनको दण्डित करे । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

त्रिशत्त्वं वर्मिणैः इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।

वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥६॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुत सी प्रजाओं से पुकारे वा प्रशंसा किये गये (इन्द्र) शत्रुहन्तः राजन् ! (यव्या-वत्यां) शत्रुओं को दूर करने में कुशल पुरुषों से बनी सेना के बीच में (साकं) एक साथ ही (त्रिशत् शतं), तीन सहस्र ३००० (वर्मिणः) कवचधारी (वृचीवन्तः) शत्रूच्छेदक शत्रु, वा तलवार को लिये हुए (शरवे) शत्रुओं को नाश करने के लिये (पत्यमानाः) जाते हुए वा (शरवे पत्यमानाः) शर, हिंसक शशादि पर पूर्ण वश करते हुए वीर पुरुष (श्रवस्या) यश, धन, ऐश्वर्यादि की कामना से (पात्रा भिन्दानाः) शत्रु के बचाव के साधनों

को भेदते हुए, (नि-अर्थात्) अपने निश्चित प्रयोजनों को (आयन्) प्राप्त करें ।

यस्य गावावरुषा सूयवस्यु अन्तरु पु चरतो रेरिहाणा ।

स सृज्याय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिस राजा की (गावौ) 'गौ' वाणी और शस्त्रों को चलाने वाली सेना, वाक् शक्ति और शम्बशक्ति दोनों (अरुषा) रोपरहित और देदीप्यमान (सु-यवस्यू) उत्तम रीति से यवस्, चारे आदि चाहने वाली दो गौओं के समान (सु-यवस्यू) सुखदायक विवेक और शत्रूच्छेद चाहती हुई (रेरिहाणा) उत्तम सुखास्वाद कराती हुई, (अन्तः उ) राष्ट्र के मध्य में (चरतः) विचरती हैं (सः) वह (दैव-वाताय) देव, सूर्यवत् तेजस्वी और प्रचण्ड वात के समान शत्रुओं को वृक्षवत् उखाड़ फेंकने वाले बलवान् राजा के राज्यपद को प्राप्त करने और (सृज्याय) आगन्तुक शत्रुओं के विजय करने के लिये (द्वृचीवतः) उच्छेदक शक्ति वाले वीर सैनिकों को (शिक्षन्) युद्ध की शिक्षा वा अन्नवृत्ति देता हुआ (तुर्वशं परादात्) हिंसक शत्रु को पराजित करे ।

द्वयां अङ्गे स्थिनौ विश्रितिं गा वधूमतो मधवा मह्यं सम्राद् ।

अभ्यावर्तीं चायमानो ददाति दुणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥ २४ ॥

भा०—हे (अङ्गे) अभि के समान तेजस्विन् ! (सम्राद्) सर्वों-परि तेजस्वी पुरुष, (अभ्यावर्तीं) शत्रु के प्रति सन्मुख आकर लड़ने वाला (चायमानः) पूजा सत्कार प्राप्त करता हुआ (द्वयान् रथिनः) दोनों प्रकार के रथ वाले, (वधूमतः) या रथ को अच्छी प्रकार उठाने में समर्थ (विश्रितिं गाः) बीस बैलों, वा वेगवान् अश्रों के समान उत्तम कुशल भुरन्धर पुरुषों को (मधवा) ऐश्वर्यवान् राजा (महां ददाति) सुझ प्रजा के हितार्थ प्रदान करे । (पार्थवान्) बड़े भारी राष्ट्र के स्वामी राजाओं की

(इयं दक्षिणा) यह बलवती सेना, या शक्ति (दूनाशा) कभी नाश को प्राप्त नहीं हो । बड़ा राजा प्रजा में शासन भार को उठाने के लिये २० प्रधान पुरुष नियत करे । यह बीस धुरन्धरों की राजसभा 'दक्षिणा' नाम की है । वह बड़ी प्रबल हो । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२८]

भरद्वाजो वर्हस्पत्य कृषिः ॥ १, ३—८ गावः । २, ८ गाव इन्द्रे वा देवता ॥
छन्दः—१, ७ निचृतित्रिष्टुप् । २ स्वराद् त्रिष्टुप् । ५, ६ त्रिष्टुप् । ३, ४
जगती । ८ निचृदत्तुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ गावो अग्मन्तुत भृद्मकृन्त्सीदन्तु गोष्टे रुण्यन्त्वस्मे ।

प्रजावतीः पुरुरुपा हृह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ १ ॥

मा०—(गावः) गौएं तथा गृहस्थ में सुशील वधुएं (अस्मे आ अग्मन्) हमें अच्छी प्रकार से प्राप्त हों, (भद्रम् अक्रन्) वे हमारा कल्याण करें । (गोष्टे) गोशाला में गौएं, (हृह) और इसके समान वधुजन गृह में (सीदन्तु) विराजें और (अस्मे रण्यन्तु) हमें आनन्द प्रसन्न करें और स्वयं भी आनन्द प्रसन्न होकर रहें । वे (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली, (पुरुरुपाः) बहुत उत्तम रूप वाली (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त स्वामी के लिये (पूर्वीः) श्रेष्ठतम्, (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान कान्ति वाली एवं पतियों को चाहने वाली (दुहानाः) कामना पूर्ण करने वाली (स्युः) हों । इसी प्रकार (गावः) वाणियां और भूमियां भी हमें प्राप्त हों, हमें सुख दें (गोष्टे) भूमि पर स्थित राजा के अधीन हमें सुप्रसन्न करें, वे उत्तम प्रजायुक्त बहुत पदार्थों से सम्पन्न नाना सुखैश्वर्य देने वाली हों ।

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षात्युपेहृदाति न स्वं मुषायति ।

भूयोभूयो रुयिमिदस्य वृर्धयुज्ञभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् २

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (यज्वने) यज्ञशील, दान देने वाले और आदर सत्कार करने वाले (पृणते च) राष्ट्र के ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाले प्रजाजन को (शिक्षति) शिष्य वा पुत्रवत् शिक्षा दे और (उप ददाति इत्) प्राप्त कर बहुत धन प्रदान भी करे। और वह (स्वं) प्रजा के अपने धन को (न मुषायति) चोरी से ग्रहण नहीं करता, प्रत्युत (भूयः भूयः) और भी अधिकाधिक (अस्य रथिम् वर्धयन् इत्) उसके धनैश्वर्य को बढ़ाता हुआ ही (देव-युम्) दाता, तेजस्वी राजा को चाहने वाले प्रजाजन को पिता वा गुरु के समान ही (अभिन्ने खिल्ये) अपने से अभिन्न अंश में अथवा शत्रु आदि से न दूटने योग्य भू प्रदेश दुर्गादि के बीच में (नि ददाति) उसको अपने उत्तम धन के समान सुरक्षित रखे।

न ता नैशन्ति न दैभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दैर्धर्षति ।
देवांश्य यामिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सुह ३

भा०—(याभिः) जिन से (गोपतिः) गौवों, वेदवाणियों, विद्याओं वा भूमियों से उनका पालक (देवान्) कामनाशील मनुष्यों को (यजते) सत्कार करता और उनको (ददाति च) ज्ञान वा धन रूप से प्रदान करता है (ताभिः) उनके (सह) साथ (इत्) ही वह (ज्योग् सचते) चिर काल तक भी रहता है, (ताः) वे भूमियां, वाणियां, विद्यायें, (न नशन्ति) कभी नष्ट नहीं होतीं। (तस्करः ता न दभाति) चोर भी उनको नहीं चुराता और (आसाम्) उनको (व्यथिः अमित्रः) कष्टदायी, शत्रु भी (न आदर्घर्षति) बलात्कार से नहीं छीन सकता।

न ता अर्वा रेणुककाटो अशनुते न संस्कृतत्रमुपयन्ति ता अभिः ।
उरुग्रायमभयं तस्य ता अनुगावो मत्स्य विचरन्ति यज्वनः ४

भा०—(ताः गावः) उन वेद-वाणियों को (अर्वा) हिंसक वा अश्व के समान केवल पशु, (रेणुक-काटः) धूल से भरे शुक कूए के समान

नीरस पुरुष भी (न अशनुते) प्राप्त नहीं कर सकता, और जो (संस्कृतव्रम् न उप यन्ति) शुद्ध संस्कृत, ज्ञान की रक्षा करने वाले विद्वान् के समीप नहीं जाते वे भी (ताः अभि न) उनको प्राप्त नहीं करते, परन्तु जो (उरु-गायम्) महान् ज्ञान के उपदेश करने वाले, भय से रहित पुरुष को (उप यन्ति) प्राप्त करते हैं वे लोग (तस्य मर्तस्य यज्वनः) उस सत्संगयोग्य, ज्ञानदाता पुरुष की (ताः) उन वाणियों को (अनु) विनयपूर्वक प्राप्त करते हैं । (तस्य गावः विचरन्ति) उसकी वाणियां गौओं के समान सुख से विविध रूपों में विचरती, प्रकाशित होती हैं ।

गावुो भग्नो गावु इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावुः स जनासु इन्द्रै इच्छामीद्गुदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५॥

भा०—(प्रथमस्य) सर्वश्रेष्ठ (सोमस्य) ऐश्वर्य, अज्ञादि का (भक्षः) सेवन करने वाला वा विद्वान् शिष्य की सेवा योग्य विद्वान् (मे गावः अच्छान्) मुझे गौओं और ज्ञानयुक्त विद्याओंको प्रदान करे । (भग्नः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (मे गावः) मुझे गौएं, ज्ञानवाणियें दे । (इन्द्रः मे गावः अच्छान्) शशुहन्ता राजा मुझे भूमियां प्रदान करे । हे (जनासः) लोगो ! सुनो । (याः इमाः गावः) ये जो गौएं, वेदवाणियां और भूमियां हैं (स इन्द्रः) वही परमैश्वर्य है । मैं (हृदा मनसा) हृदय और मन से उत्तम और उचित जानकर ऐसे ही (इन्द्रं चित्) ऐश्वर्य को ही (इच्छामि) प्राप्त करना चाहता हूँ ।

युं गावो मेदयथा कृशं चिदश्चीरं चित्कणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो वृहद्ग्रो वय उच्यते सुभासु ॥ ६ ॥

भा०—(कृशं चित् मेदयथ) जिस प्रकार दूध कृश पुरुष को मोटा कर देता है उसी प्रकार हे (गावः) वेदवाणियो ! (युं) तुम (कृशं) तपस्वी पुरुष को (मेदयथ) अन्यों के प्रति स्नेहयुक्त कर देते हो हे-

भूमियो ! तुम (कृशं चित्) शत्रु के कर्तन करने में समर्थ राजा को (मेद-यथः) स्नेहवान् बनाती हो । और जिस प्रकार गौवें अपने दूध से (श्रीरं चित्) शोभारहित, कान्तिहीन, दुबले पतले को (सुप्रतीकं) सुन्दर मुख वाला कर देती हैं, उसी प्रकार हे वेदविद्याओ तुम सभी (अश्रीरं) शोभाहीन, कुरुप को भी (सु-प्रतीकम्) सौम्य मुख और उत्तम ज्ञान से युक्त कर देती हो । हे पृथिवियो ! तुम (अश्रीरं) श्रीरहित, राज्यलक्ष्मी से हीन राजा को (सु-प्रतीकं) मुख से शत्रु के प्रति जाने में समर्थ, बल-शाली बना देती हो । हे (भद्रवाचः) कल्याणवाणियो ! जिस प्रकार गौवें (गृहं भद्रं कृष्णन्ति) घर को सुखयुक्त बनाती हैं उसी प्रकार तुम भी (गृहं भद्रं कृष्णथ) घर को और ग्रहण करने योग्य ज्ञान को सुख-दायक, सुगम बना देती हो । (वः) तुम्हारा (वयः) बल, ज्ञान आदि (सभासु) सभास्थलों में (ब्रह्म उच्यते) बहुत बड़ा कहा जाता है ।
प्रजावतीः सुयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत् माघशंसुः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥७॥

भा०—जिस प्रकार (रुद्रस्य हेतिः) रोक रखने वाले गवाले का दण्ड (प्रजावतीः) उत्तम बछड़ों वाली (सु-यवसं रिशन्तीः) उन जौ आदि खाने वाली, (शुद्धा अपः सु-प्र-पाणे पिबन्तीः) शुद्ध जलों को उत्तम घाट पर पीती हुई गौओं को (परि वृक्के) सब ओर से बचाये रखता है । उसी प्रकार (रुद्रस्य हेतिः) दुष्टों को रुलाने वाले राजा का शख बल (प्रजावतीः) प्रजाओं से युक्त (सु-यवसं रिशन्तीः) उत्तम अन्न का भोग करती हुई (शुद्धाः अपः) शुद्ध जलों का (सु-प्र-पाणे) उत्तम पालक के अधीन (पिबन्तीः) उपभोग करती हुई भूमियों की (परि वृज्याः) हे राजन् ! तू अच्छी प्रकार रक्षा कर । हे गौवत् भूमियो ! (वः स्तेनः मा ईशत्) चोर तुम पर शासन न करे (मा अघशंसः) पापी पुरुष तुम पर आधिपत्य न करे । उपदेष्टा पुरुष 'रुद्र' है । उसका दण्ड देना विद्याओं

की रक्षा करता है, विद्याएं भी उत्तम शिष्यों से प्रजावती हैं। वे (सुप्रयाणे) उत्तम ज्ञान, वीर्य, बल ब्रह्मचारी में उत्तम (अपः) कर्म का पालन करती हैं, उन वाणियों पर कोई चौर स्वभाव का पापी पुरुष भी अधिकार न करे ।

उपेदमुपपर्वनमासु गोपूप॑ पृच्यताम् ।

उप॑ ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव॑ वीर्यै ॥ ८ ॥ २५ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (रेतसि ऋषभस्य गोपु उपपर्वनम्) उत्तम वीर्य के निमित्त गौओं का सांड के साथ समर्पक होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) विद्यादातः ! विद्वन् ! (तव वीर्यै) तेरे ज्ञान सामर्थ्य के ऊपर (आसु) इन (गोपु) वेद वाणियों के निमित्त (इदम्) यह (उप-पर्वनम्) उत्तम सम्बन्ध (उप पृच्यताम्) जुड़े । इसी प्रकार बलवान् राजा के बाहु बल पर भूमियों पर राजा का प्रभुत्व स्थिर हो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः



अथ सप्तमोऽध्यायः

[२६]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ अन्दः—१, ३, ५ निचृतिष्ठुप् ।

४ त्रिष्ठुप् । २ मुरिकूप॑क्तिः ६ ब्राह्मी उष्णिक् ॥

इन्द्रं वो नरः सुख्याय॑ सेपुर्महो यन्तः सुमतयै चक्नाः ।

महो हि द्राता वज्रूहस्त्रो अस्ति महासु रणवमव॑से यजाध्वम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (महः यन्तः) बड़े २ पदों वा लक्ष्यों को

ग्रास होते हुए और (सुमतये चकानाः) शुभ मौति, ज्ञान की कामना करते हुए, (वः नरः) आप लोगों में से उत्तम नेता पुरुष (सख्याय) मित्रभाव के लिये (इन्द्रं सेपुः) ऐश्वर्यवान् राजा वा विद्वान् उपदेष्टा को ग्रास करें । (वज्रःहस्तः) शशबल को अपने हाथ में रखने वाला राजा और पापों से वर्जन करने वाले दण्ड को अपने हाथों देने वाला, गुरु, (महः दाता अस्ति) बड़ा भारी दाता है । आप लोग उसी (महाम् रथम्) महान् रमणीय, सत्य और उत्तम उपदेष्टा का (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (यजध्वम्) आदर सक्कार और सत्संग करो ।

आ यस्मिन्हस्ते नर्यां मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्टाः ।

आ रथमयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वनश्वासो वृषणो युजानाः ।२।

भा०—(यस्मिन् हस्ते) जिस प्रबल हाथ के नीचे (नर्याः) मनु-प्यों के हितकारी नायक जन (आ मिमिक्षुः) सब ओर से एकत्र होते हैं और (यस्मिन् हिरण्यये रथे) जिस हितकारी, रमणीय, सबको अच्छा लगने वाले 'रथ' अर्थात् महारथी पुरुष के अधीन (रथेष्टाः) रथ पर विराजने वाले अन्य महारथी (आ मिमिक्षुः) सम्बन्धित रहकर राष्ट्र की वृद्धि करते हैं और जिन (स्थूरयोः) विशाल (गभस्त्योः) बाहुओं में (रथमयः) रासें, बागडोर (आ मिमिक्षुः) मिलकर रहती हैं । और (अध्वन्) जिस मार्ग में (अश्वासः) प्रबल अश्वों के समान (वृषणः) वलवान् पुरुष भी (युजानाः) नियुक्त होकर (आ मिमिक्षुः) मिलकर राष्ट्र की वृद्धि करते हैं वही प्रधान पुरुष सबका (इन्द्रः) स्वामी वा राजा होने योग्य है ।

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वृजी शवसा दक्षिणावान् ।

वसन्तो अत्कं सुरभिं दुशे कं स्वर्णं नृताविष्ठिरो बभूथ ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! (ते पादौ) तेरे दोनों चरणों की, लोग (श्रिये) लक्ष्मी की वृद्धि और आश्रय ग्रास करने के लिये (दुवः आ मिमिक्षुः) सेवा

करते हैं उसको आदरपूर्वक प्रशारते हैं। हे (नृतो) नायक ! तु (धृष्णु) शत्रु को पराजित करने वाला, (वशी) शत्रुबल का स्वामी, (शवसा) शक्ति से (दक्षिणावान्) उत्तम बलवती सेना और दानशक्ति से सम्पन्न होकर और (सुरभिः) उत्तम रीति से कार्य करने में समर्थ कर देने वाले, सुदृढ़, (अर्कं) वश वा कवचों को (वसानः) पहने हुए, (दशे) सब को सन्मार्ग दिखाने के लिये वा सबकी अँखों के लिये (स्वः न) सूर्य के समान प्रकाश देने हारा और (इपिरः) सन्मार्ग में चलने हारा (बभूथ) हो। स सोम आमिश्लतमः सुतो भूयस्मिन्पक्तिः पृच्यते सन्ति धानाः। इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्थाशंसन्तो देववाततमाः ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जिस प्रधान नायक की अधीनता में (सः) वह (सुतः) उत्पन्न हुआ पुत्रवत्, वा अभिषिक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान्, सौम्य, प्रजाजन (आमिश्लतमः) सब प्रकार मिला हुआ, तुल्य परस्पर प्रेम युक्त (भूत्) होजाता है, (यस्मिन् पक्तिः) जिसके अधीन गृह वा क्षेत्र में भोजन अन्न का उत्तम रीति से परिपाक (पत्थते) हो और (धानाः सन्ति) जिसके अधीन रहकर धान की खीलों के सटश उज्ज्वल चरित्र वाली प्रजाएँ ऐश्वर्य को धारण करने में समर्थ हों उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा को (नरः) नायक (ब्रह्मकारा) धन, अन्न और वेद ज्ञान के करने में दक्ष पुरुष (स्तुवन्तः) स्तुति करते और (उक्थाशंसन्तः) उत्तम स्तुत्य वचन कहते हुए (देववाततमा) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा प्रभु के अति समीप पहुँच जाते हैं। अध्यात्म में वही 'इन्द्र' आत्मा है जिसमें सोम, परमानन्दरस, 'पक्ति' तप, परिपाक और 'धाना' ध्यान धारणाएँ हों जिसकी ब्रह्मज्ञानी स्तुति, उपदेश करते हुए उपास्य देव के अति समीपतम, तन्मय होजाते हैं।

न ते अन्तः शवसो धाय्युस्य वि तु वावधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सुरिः पृणाति तृतुजानो युथेवाप्सु सुमीजमान ऊर्ती॥५॥

भा—(अस्य) इस महान् प्रभु के (शवसः) बल और ज्ञान की (अन्तः) कोई सीमा (न धायि) नहीं कही जा सकती । वह (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि दोनों को (वि वावधे तु) विविध प्रकार से बांधे ही रहता है । वह (सूरिः) सबका सञ्चालक, विद्वान् (तुतुजानः) सब विघ्न-बाधाओं को नाश करने वाला, सब प्रकार के सुख देने वाला होकर (सम-इंजमानः) सबसे संगत होकर, सबको उत्तम दान करता हुआ (यूथा इव अप्सु) पशु समूहों को जलों पर गवाले के समान (अप्सु ताः ऊतीः आपृणति) उन आकाश और पृथिवीस्थ समस्त लोकों को रक्षा अन्नादि से खूब तृप्त करता, उनको पूर्ण करता है ।

एवेदिन्द्रः सुहव॑ ऋ॒ष्यो अ॑स्तुती अ॑नूती हि॒रिशिप्रः सत्वा॑ ।
एवा॑ हि॑ जातो अ॑समात्योजाः पुरु॑ च॑ वृत्रा॑ ह॑नति॑ नि॑ दस्य॑न् ॥६।१॥

भा०—(एव इन्द्रः इत्) इसी प्रकार ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा, प्रभु भी (सुहवः) सुख से स्तुति, उपासना और आह्वान करने योग्य, (ऋष्यः) महान् (अस्तु) हो, वह (ऊती) रक्षादि साधनों से या (अनूती) उन साधनों के अभाव में भी (हि॒रिशिप्रः) मनोहारी मुख नाक वाला वा सुन्दर मुकुट वाला और (सत्वा) उत्तम बलशाली हो । उस प्रकार (हि) निश्चय से वह (असमात्योजाः जातः) बल पराक्रम में अनुपम होकर (पुरु च॑ वृत्रा॑) बहुत से विघ्नकारियों और (दस्य॑न्) दुष्ट, प्रजा-त्रासकारी लोगों को (नि॑ हनति॑) सर्वथा नष्ट करे । हृति॑ प्रथमो वर्गः ॥

(३०)

भरद्वाजो वार्षस्पत्य॑ ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ इन्द्रः—१, २, ३ निचृत्विष्टुप् ४
पंक्तिः । ५ ब्राह्मो उष्णिक् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भूय इद्वावृधे वीर्यायूँ पको अजुयों दयते वसूनि ।

प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या शुर्धमिदस्यु प्रति रोदसी उमे॥१॥

भा०—(इन्द्रः पृथिव्या अर्धम् प्रति भवति) सूर्य पृथिवी के आधे के प्रति प्रकाश करता है, (पृथिवी दिवः अर्धम् प्रति) और पृथिवी प्रकाश के आधे ही अंश को ग्रहण करती है परन्तु तो भी (उमे) दोनों मिलकर (रोदसी) आकाश और पृथिवी मिलकर रहते हैं उन दोनों में से (इन्द्रः) सूर्य ही (प्र रिरिचे) अधिक शक्तिशाली है, (उमे रोदसी-प्रति) आकाश और पृथिवी दोनों को व्यापता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) तेजस्वी राजा (दिवः पृथिव्या) आकाश और पृथिवीवत् विजयिनी सेना-वा राजविद्वत्-सभा और पृथिवीवासी प्रजा दोनों से (प्र रिरिचे) बहुत बड़ा है। (उमे रोदसी अस्य अर्धम् प्रति) रुद्र और रुद्रपत्नी, सेनापति और सेना, शासक वर्ग और शास्य प्रजाजन दोनों भी इसके आधे या समृद्ध ऐश्वर्य के बराबर हैं। वह (एकः) अकेला (अजुर्यः) कभी नाश को प्राप्त न होकर (वीर्याय) अपने बल वृद्धि के हित, (भूय इत् वावृद्धे) बहुत ही वृद्धि करे, और वह (वसूनि) नाना ऐश्वर्यों से बसे प्राणियों की (दयते) रक्षा करे ।

अधा॑ मन्ये वृहदसुर्यमस्यु यानि॑ दाधार॒ नकिरा मिनाति॑ ।

दिवेदिवे॑ सूर्यो॑ दर्शतो॑ भूद्वि॑ सज्ञान्युर्विया॑ सुक्रतुर्धार्त् ॥२॥

भा०—(अध) और मैं (अस्य) उसके (असुर्यम्) बल को (वृहत्) बड़ा भारी (मन्ये) जानता हूँ और (यानि) जिन (उर्विया) बड़े २ (सज्ञानि) लोकों को यह (सुक्रतुः) उत्तम कर्त्ता पुरुष (विधात्) बनाता है, और (दाधार) धारण करता है उनको (नकिः) कोई भी नहीं (आ मिनाति) नष्ट कर सकता। इसी कारण वह (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (दिवे दिवे) दिनों दिन (दर्शतः भूत्) दर्शनीय होता है ।

आद्या चिन्तु चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्यसदो न सेदुस्त्वया दृक्हानि सुक्रतो रजांसि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) जिस प्रकार विद्युत (नदीनाम् अपः अरदः) नदियों के जल को मेघ से छिन्न भिन्न करता है, और (यत्) जो (आभ्यः) इनके जाने के लिये (गातुम्) मार्ग या पृथिवी स्थल को (अरदः) विदीर्ण करता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू (नदीनाम्) समृद्धिशालिनी प्रजाओं के (अद्य चित्) नित्य ही, आज के समान, (तत् अपः अरदः) उन उन नाना कर्मों का विलेखन कर। (आभ्यः) उनके हितार्थ (गातुम्) सन्मार्ग, और भूमियों को (अरदः) खोद, सन्मार्ग बना; नदी जलों के लिये, नहरें और अज्ञोत्पत्ति के लिये कृषि द्वारा भूमि का विलेखन कर। (पर्वताः) मेघ, के समान प्रजापालक जन (अद्य-सदः न) अज्ञादि भोग्य पदार्थों के उपभोग के लिये बैठने वाले जनों के समान (अद्य-सदः) राजा के दिये अज्ञ, वृत्ति को प्राप्त कर (नि सेदुः) पदों पर विराजें, इस प्रकार हे (सुक्रतो) शुभ, उत्तम कर्म करने हारे ! (त्वया) तेरे द्वारा (रजांसि) समस्त जन और लोक (द्वानि) कर्तव्यपरायण, दृढ़, बलवान् हों ।

सुत्यमित्तज्ञ त्वावौ श्रन्यो श्रस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयान्तमण्डवासृजो श्रपो अच्छ्रां समुद्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(तत् सत्यम् इत्) यह बात सर्वथा सत्य है, कि (त्वावान् अन्यः न अस्ति) तेरे जैसा दूसरा और नहीं है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य वन् ! तेरे जैसा (न देवः न मर्त्यः ज्यायान्) न देव और मर्त्य ही तुझ से बड़ा है। (परि-शयानम्) सब ओर फैले (अहिं) मेघ को जिस प्रकार विद्युत, सूर्य (अहन्) छिन्न भिन्न करता है, और (अर्णः अव असृजः) जल को नीचे गिराता है और (अपः समुद्रम् अच्छ अवासृजः) जलों को समुद्र या अन्तरिक्ष की ओर बहा देता या मेघ रूप से उठादेता है उसी

प्रकार हे राजन् ! तू भी (परि-शयानम्) शान्त रूप से फैले (अहिं) आगे आये शत्रु को (अहन्) नाश करे । (अर्णः) धन को उत्पन्न करे और (अपः अच्छ समुद्रम्) आत प्रजाओं को समुद्र के समान गंभीर पुरुष के प्रति सौंप दे ।

त्वम् पो वि दुरो विषूचीरिन्द्र द्वृक्लहमसूजः पर्वतस्य ।

राजाभवो जगतश्चर्वणीनां साकं सूर्यै जनयन्द्यामुषासम् ॥५॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! जिस प्रकार सूर्य मेघ के जलों को सब ओर बर्पता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू (अपः) अपनी आप प्रजाओं को (दुरः) शत्रुसंतापक सेनाओं को (विषूचीः वि) विविध दिशाओं में भेज, और (पर्वतस्य) मेघ वा पर्वत के तुल्य शरवर्णी, और अचल शत्रु के (दृढम्) दृढ़ सैन्य को (वि असूजः) विविध प्रकार से नष्ट अष्ट कर । तू (सूर्यम्) सूर्य, (द्याम्) तेज और (उषासम्) प्रभात वेला के समान सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, कान्तिमती स्त्री वा कामनावान् प्रजा और 'उषा' अर्थात् शत्रु को भस्म करने वाली सेना को (जनयन्) प्रकट करता हुआ (जगतः चर्पणीनाम्) जगत् भर के मनुष्यों के बीच में (राजा अभवः) सर्वोत्कृष्ट तेजस्वी राजा होकर रह । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३१]

सुहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचूर्तविष्टुप् । २ स्वराट् पंक्तिः ।

३ पंक्तिः । ४ निचूदतिशकरी । ५ त्रिष्टुप् । पञ्चन्त सूक्तम् ॥

अभूरेको रथिपते रथीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्णीः ।

वि त्रोके अप्सु तनये च सूरेऽवौचन्त चर्पुणयो विवाचः ॥१॥

भा०—हे (रथिपते) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (रथीणाम्) समस्त ऐश्वर्यों का (एकः) अकेला ही स्वामी (अभूः) है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-

वन् ! तू (हस्तयोः) अपने हाथों में (कृष्टीः) कृषिकारिणी समस्त प्रजाओं और शत्रुओं का कर्षण, विनाश करने वाली समस्त सेनाओं को भी (अधिथाः) धारण कर, उनका स्वामी बना रह । (चर्षणयः) ये मनुष्य (अप्सु) अन्तरिक्ष में सूर्य के सदृश (अप्सु) प्रजाजनों में (सूरे) सब के संचालक (तोकेतनये च) पुत्र, पौत्र आदि के सम्बन्ध में (वि वाचः) विविध प्रकार के वचन, विविध बातें, वा स्तुतियां (वि अवोचन्त) विविध प्रकार से कहें, अथवा (चर्षणयः) न्याय, राज्यशासन के द्रष्टा विद्वान् पुरुष (वि-वाचः) विशेष वाणियों के ज्ञानी अमुक के पुत्र, अमुक के पौत्र, तेजस्वी पुरुष के सम्बन्ध में विविध प्रकार से विवाद करके निर्णय करें कि कौन सभापति वा राजा हो । अथवा विद्वान् जन पुत्र पौत्रादि में तथा (सूरे) नाथक तेजस्वी पुरुष में (वि-वाचः अवोचन्त) विविध विद्याओं का उपदेश करें ।

त्वद्वियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्छ्यावयन्ते रजांसि ।
चावाक्षामा पर्वतासु वनानि विश्वं दृक्ष्वं भयते अज्मन्त्रा ते ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (त्वत् भिया) तुल्स से भयभीत होकर, तेरे शासन में (विश्वा पार्थिवानि) समस्त पृथिवी के जन्तु (अच्युता) स्वयं नष्ट न होकर भी (रजांसि चित् च्याव-यन्ते) अन्यलोकों को भी मार्ग पर जाने देते हैं, वे एक दूसरे का नाश नहीं करते । (ते अज्मन्) तेरे बड़े भारी बल के अधीन (चावा क्षामा) सूर्य और पृथिवी के तुल्य समस्त नर नारी, (पर्वतासः) पर्वतों या मेघों के तुल्य बड़े २ प्रजापालक जन और (वनानि) जंगल, वा सेव्य नाना ऐश्वर्य (विश्वं दृढ़ं) सब पदार्थ स्थिर रहकर भी विद्युत् के समान (भयते) भय करता है, तेरा शासन स्वीकार करता है । विद्युत् के प्रहार से जैसे मेघ (पार्थिवानि रजांसि) पृथिवी से लिये जलों को नीचे गिरा देते हैं । सब उसके भय से कांपते हैं ।

त्वं कुत्सैनुभि शुण्णमिन्द्राशुपै युध्य कुर्यवं गविष्टौ ।

दश प्रपित्वे अध् सूर्यस्य मुपायश्चकमविवृ रपांसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्युत् के समान तेजस्विन् ! शत्रुहन्तः ! हे (इन्द्र) भूमि के विदारक ! कृषक ! (त्वं) तू (कुत्सेन) वज्र या हथियार, हल के बल से (अशुपम् शुण्णम्) कभी न सूखने वाले, अपार जल के बल को प्राप्त करके (गविष्टौ) बैलों, तथा भूमि की इष्टि अर्थात् प्राप्ति और उसमें बीज वपन आदि करके (कुर्यवं) कुत्सित जाँ आदि धान्य उत्पन्न करने के दोष को (अभि युद्धय) दूर कर । और उत्तम अन्न प्राप्त कर । इसी प्रकार हे राजन् ! तू शत्रु बल से अपार बल प्राप्त करके (गविष्टौ) भूमि को प्राप्त करने के लिये (कुर्यवं) कुत्सित अन्न खाने वाले अथवा कुत्सित उपायों से प्रजा का नाश करने वाले दुष्ट जन का (अभि युद्धय) बराबर मुक्तावला किया कर । (अध) और (प्रपित्वे) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त होने पर (सूर्यस्य दश रपांसि) सूर्य के दसों हननकारी बलों को (मुषायः) प्राप्त कर और (चक्रम् अविवेः) राष्ट्र में चक्र का सञ्चालन कर अथवा (सूर्यस्य चक्रम्) सूर्य के चक्र या विम्ब या ग्रह चक्र के समान अपने राज चक्र को (मुषायः) उसके अनुकरण में चला वा (मुषायः = पुषायः) पुष्ट कर । (रपांसि अविवेः) हनन साधन सैन्यों को सञ्चालित कर तथा (रपांसि) पापकारी दुष्ट पुरुषों को (दश) नष्ट कर, वा (दश अविवेः) दशों दिक्षाओं से दूर कर ।

त्वं श्रातान्यवृ शम्बरस्यु पुरो जघन्थाप्रतीति दस्योः ।

अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे
भरद्वाजाय गृणते वसृनि ॥ ४ ॥

भा०—हे (शचीवः) शक्तिशालिन् ! हे बुद्धिमन् ! हे (सु-
तक्रे, सुत-क्रे) सुप्रसन्न ! हे उत्तम ऐश्वर्य द्वारा क्रीत ! उत्तम वेतन पर
बढ़ अथवा उत्तम ऐश्वर्यों से अन्यों और अन्यों के श्रमों को अपने लिये

खरीदने में समर्थ (त्वं) तू (शम्बरस्य) जान्ति के नाशक (दस्योः) प्रजा के नाशकारी, दुष्ट एवं शत्रु के (शतानि) सैकड़ों और (अप्रतीनि) अप्रतीत, न मालूम देने वाली, गुप्त स्थानों और (पुरः) नगरियों, बस्तियों को भी (अब जघन्थ) पता लगा और नाश कर । (यत्र) जिस राष्ट्र में तू (सुन्वते) ऐश्वर्य बढ़ाने वा अभिषेक करने वाले (दिवः दासाय) तेजस्वी सूर्यवत् तेरे पास भृत्यवत् सेवक प्रजाजनों को और (गृगते) उपदेश करने वाले (भरद्व-वाजाय) ज्ञानधारक विद्वान् पुरुष को तू (वसूनि अशिक्षः) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे वहां तू सुख से विराज ।

स सत्यसत्वन्महृते रणायु रथुमातिष्ठ तुविनृमण भीमम् ।

याहि प्रपथिन्नवृ सोप॑ मुद्रिक्ष्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः॥५॥३॥

भा०—हे (सत्य-सत्वन्) सत्यपालक बलवान् पुरुषों के स्वामिन् ! हे सत्य अन्तःकरण और बल वाले ! हे (तुविनृमण) बहुत ऐश्वर्यशालिन् ! तू (महते रणाय) बड़े भारी संग्राम के लिये (भीमम्) भयजनक (रथम्) रथ वा रथ सैन्य पर (आ तिष्ठ) बैठ, उस पर शासन कर ! हे (प्र-पथिन्) उत्तम मार्ग चलने हारे वा उत्तम अक्ष यानादि के स्वामिन् ! तू (अवसा) रक्षा, बल तथा ज्ञान सहित (मद्रिक्) मेरे समीप (उप याहि) प्राप्त हो और (चर्षणिभ्यः) विद्वान्, ज्ञानद्रष्टा पुरुषों से (प्र श्रुत च) उत्तम २ वचन सुना कर (चर्षणिभ्यः प्र श्रावय च) मनुष्यों के हितार्थ उत्तम ज्ञानों को सुनाया भी कर । इति तृतीयो वर्गः ॥

[३२]

सुहोत्र ऋषः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । २ स्वराट् पंक्तिः ।

३, ५ त्रिष्टुप् । ४ निचुत्रिष्टुप् । पञ्चर्च सूक्तम् ॥

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै मुहे वीराय त्वसे तुराय ।

विरुद्धिनै वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थावीराय तज्जम् ॥१॥

भा०—मैं (अस्मै) इस (महे) महान्, (तवसे) बलवान् (तुराय) वेग से कार्य करने वाले, अप्रमादी, (वीराय) विविध ज्ञानों के उपदेष्टा, विविध शत्रुओं को कम्पित करने वाले, (विरप्तिने) अति प्रशस्त, विशेष रूप से, और विविध प्रकारों से स्तुति के योग्य, (वंशिणे) शक्तिशाली, (स्वविराय) स्थिर, वृद्ध, कृष्टस्य प्रभु के (अपूर्वा) अपूर्व, सबसे आदि, परम पुरुष के योग्य (पुरुतमानि) अति श्रेष्ठ, बहुत से (शंतमानि) अति शान्तिदायक, (वचांसि) वचनों को मैं (आसा) मुख से (तक्षम्) उच्चारण किया करूँ ।

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयदुजद्विं गृणानः ।

स्वाधीभिर्ऋक्भिर्वावशान उदुस्त्रियाणामसूजन्निदानम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् तथा बलवान् पुरुष (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष द्वारा (कवीनाम्) कान्तदर्शी विद्वानों के (मातरा) माता पिता, उत्पादक राष्ट्र के नर नारी जनों को (अवासयत्) सुखपूर्वक बसावे, अर्थात् भावी मैं उत्तम सन्तानोत्पादक माता पिता बनने वाले बालक बालिकाओं की राजा तेजस्वी गुरु के समीप ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने की व्यवस्था करे । और वह स्वामी वा गुरु (गृणानः) उपदेश करता हुआ (अद्विं रुजत्) अभेद अज्ञान को, मेघ को सूर्यवत् नाश करे । जिस प्रकार (वावशानः) कान्ति से चमकता हुआ सूर्य (सुआधीभिः ऋक्भिः उत्तियाणां निदानम् उत् असृजत्) उत्तम जलधारक ते जोयुक्त किरणों द्वारा कान्तियों का और मेघों द्वारा जलधाराओं का दान करता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष वह (वावशानः) निरन्तर कामना करता या चाहता हुआ, स्नेहवान् होकर (स्वाधीभिः) उत्तम ध्यान और धारणा वाले विद्वानों, (ऋक्भिः) अर्चना योग्य, उपदेष्टा, मन्त्रज्ञ पुरुषों द्वारा (उत्तियागम्) ज्ञान-वाणियों के (निदानम्) निश्चित रूप दान (उद् असृजत्) करे, इसी प्रकार राजा, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष द्वारा

(अदिं) अभेद शत्रु का नाश करता हुआ, शासन करे, विद्वानों के माता पिता रूप सभा, सभापति दोनों की स्थापना करे । उत्तम बुद्धिमान् विद्वान् उरुषों से (उचियाणां निदानम्) वाणियों के निर्णय, तथा भूमियों के सुप्रबन्ध (उत् असृजत्) उत्तम रीति से करे ।

स वह्निभिर्वृक्षभिर्गोषु शश्वन्मितज्जुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।

पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दुल्हा रुरोज कुविभिः कुविः सन् ३

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (ऋक्भिः) पूजा करने योग्य ग्रन्थसनीय, (वह्निभिः) कार्य भार को अपने ऊपर लेने में समर्थ, (मित-ज्ञुभिः) जानुओं को सिकोड़ कर बैठने वाले, सुसभ्य वा, परिमित, जपे हुए जानु या गोड़े बढ़ाने वाले, एक चाल से चलने वाले, (सखिभिः) एक समान नाम वा ख्याति वाले वीरों वा विद्वान् जनों के साथ (सखीयन्) मित्रवत् आचरण करता हुआ, (शश्वत्) सदा (गोषु) भूमियों और वेद-वाणियों को प्राप्त करने के निमित्त, (पुरु-कृत्वा) बहुत से कर्म करने हारा विद्वान् पुरुष (जिगाय) विजय करे और उनके सहाय से ही वह (पुरोहा) शत्रु के पुरों का नाश करने हारा वा आगे आने वाले शत्रु को मारने हारा, (कविः) दूरदर्शी पुरुष स्वयं (कविः सन्) क्रान्तदर्शी होकर (द्वाः पुरः रुरोज) शत्रु की दृढ़ नगरियों को तोड़े । इसी प्रकार विद्वान् पुरुष समवयस्क विद्वान् उपदेष्टाओं से मित्रभाव करके सदा विजय लाभ करे, और स्वयं क्रान्तदर्शी, तत्त्वज्ञानी होकर (पुरः) इन देहबन्धनों का नाश करे ।

स नीव्याभिर्जितारुमच्छ्रु महो वाजेभिर्मुहृद्भिश्च शुष्मैः ।

पुरुवीराभिर्वृषभं क्षितीनामागिर्वणः सुवितायु प्र याहि ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह राजा तू सदा (नीव्याभिः) प्राप्त करने योग्य उद्देश्यों को लक्ष्य में रखने वाली वा 'नीवी' अर्थात् नामावलि या पंक्तियों में सुव्यवस्थित सेनाओं तथा (महज्जिः वाजेभिः) बड़े २ ज्ञानवान्, और

बलवान् पुरुषों तथा (महदिः शुभ्मैः) बड़े २ बलों सहित (जरितारम्) स्तुतिशील तथा, स्वपक्ष को हानि करने वाले शत्रु जन को क्रम से पालन और हनन के लिये (अच्छ) सन्मुख होकर प्राप्त हो । हे (वृपभ) बलवन् ! हे (गिर्वाङ्गः) वाणियों, और आज्ञाओं के देने वाले और स्तुतियों के योग्य ! तू (क्षितीनाम् सुविताय) प्रजाभों के सुख प्राप्त और ऐश्वर्यवृद्धि के लिये (पुरु-वीराभिः) बहुत से वीर पुरुषों से बनी सेनाओं सहित (प्रयाहि) आगे बढ़ ।

स सर्गेण शवसा तुक्तो अत्यैरुप इन्द्रो दक्षिणातस्तुराषाद् ।

इत्था सृजाना अनपावृद्धै दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥५॥४॥

भा०—(इन्द्रः सर्गेण तत्कः) जिस प्रकार विद्युत् वा वायु जल से पूर्ण होकर (दक्षिणतः अत्यैः) दक्षिण से वेग से आने वाले मेघों या वायुओं द्वारा (अपः सृजति) जलों को बरसाता है और वे (सृजानाः दिवे दिवे अनपावृत् अर्थं विविषुः) उत्पन्न होकर दिनों दिन पुनः न लौटने योग्य गन्तव्य सागर को प्राप्त होजाते हैं उसी प्रकार (सः) वह वीर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (तुराषाद्) अपने वेगवती सेना वा वेगयुक्त हिंसक भट्टों से शत्रुओं को विजय करने वाला होकर (सर्गेण) प्रजावत् (शवसा) सैन्य बल से (तत्कः) सुप्रसन्न, हृष्ट पुष्ट होकर (अत्यैः) वेगवान् अश्वगण सहित (अपः) आप प्रजावर्ग को प्राप्त करे । (इत्था) इस प्रकार से वे (सृजानाः) प्राप्त होती हुई प्रजायं (दिवेदिवे) दिनों दिन (अनपावृत्) प्रत्यक्ष रूप से (अप्रमृष्यं अर्थं विविषुः) शत्रु से पराजय न होने वाले शरण योग्य पुरुष को प्राप्त करें । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३३]

शुनहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ इन्द्रः—१, २, ३ निचृत्पंक्तिः । ४ भुरिक्पंक्तिः । ५ स्वराद् पंक्तिः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

य ओजिष्ठ इन्द्रं तं सु नौ दा मदो वृषत्स्वभिष्ठिर्दस्वान् ।
सौवश्वयं यो वृनवृत्स्वश्वो वृत्रा सुमत्सु सासहृदमित्रान् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यः) जो तू (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमी, (मदः) अतिर्हर्ष युक्त, (सु-अभिष्ठः) उत्तम आदर-णीय रूप से प्राप्त, (दास्वान्) उत्तम दानों का दाता है, और (यः) जो तू (सु-अश्वः) उत्तम अश्व सैन्यों का स्वामी है, हे (वृष्ण) बलवन् ! हे उत्तम प्रबन्धकर्त्तः ! वह तू (नः) हमें (तम्) उस नाना ऐश्वर्य हर्ष आदि को प्रदान कर । वह तू (सौवश्वयं) उत्तम अश्व सैन्य के कारण प्राप्त होने योग्य यश को (वनवत्) प्राप्त कर, तू (समत्सु) संग्रामों में (वनवत्) विघ्नों का नाश करे, और धनों को प्राप्त करे, और (अभित्रान् ससहृत्) शत्रुओं का पराजय करे ।

त्वां हीऽन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षण्यः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्बृं पुरीं रथायुस्त्वोत् इत्सनित्रा वाज्मवी ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वि वाचः) विविध विद्यायुक्त वाणियों को जानने वाले, वा विविध भाषाओं को बोलने वाले, नाना देश वासी, (चर्षण्यः) मनुष्य (शूरसातौ) शूर पुरुषों द्वारा सेवन योग्य संग्राम में (अवसे) रक्षा के निमित्त (त्वां हि) तुक्ष को ही (हवन्ते) पुकारते, वा रक्षक रूप से स्वीकार करते हैं । तू (विप्रेभिः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा ही (पणीन्) उत्तम, प्रशंसित, एवं व्यवहार वान् पुरुषों को भी (वि-अशायः) विशेष रूप से सुख की नींद सुला, वे तेरी रक्षा में सुख से निश्चिन्त होकर रात बितावें । (त्वा-उत्ताः) तुक्ष से सुरक्षित रहकर (इत्) ही (अर्काः) अश्व के तुल्य वेग से जाने आने हारा पुरुष भी (वाजम्) अश्व ऐश्वर्यादि का (सनिता) भोग करता है । त्वं तां इन्द्रोभयौ श्रमित्रान्दासा वृत्राग्यायौ च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्शि नृणां नृतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (तान्) उन (उभयान्) दोनों प्रकार के (अमित्रान्) शत्रु और (दासा) सेवकों को (वृत्राणि) धनों और (आर्या) स्वामियों, वैश्यों के योग्य ऐश्वर्यों को भी प्राप्त कर । हे (शूर) हे शूरवीर ! तू विवेक से (सुधितेभिः वना इव) कुठारों से जंगल के वृक्षों के समान (अक्षैः) अपने बलों द्वारा शत्रुओं को (वधीः) विनाश कर और ऐश्वर्यों को प्राप्त कर । हे (नृणां नृतम्) नायकों में से उत्तम नायक तू (अमित्रान्) शत्रुओं को (पृत्सु) संग्रामों में (आ दर्षि) सब ओर से विदीर्ण कर और (दासा अर्थः) सेवक श्रेष्ठ जनों को (आदर्षि) आदर कर ।

स त्वं न इन्द्राकवाभिरुती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्पाता यद्यवयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४॥

भा०—हे शूर ! (यत्) जब (युध्यन्तः) युद्ध करते हुए हम लोग (स्वः साता) सुख प्राप्त करने के लिये (पृत्सु) संग्रामों में (नेमधिता) आधे ऐश्वर्य को धारण करनेवाले होकर (त्वा ह्यामसि) तुक्षे खुलाते हैं, (सः) वह (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अकवाभिः) अनिन्दित वाणियों तथा (ऊती) रक्षा सामर्थ्य से (नः सखा) हमारा मित्र (विश्वायुः) सब मनुष्यों का स्वामी, (अविता) पालक और (वृधे भूः) हमारी वृद्धि करने के लिये समर्थ आश्रय होता है ।

नूनं न इन्द्रापुराय च स्या भवा मृलीक डुत नो अभिष्टौ ।
हृत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्यामु पार्ये गोष्टतमाः ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! दुःखविदारक ! तू (नूनं) निश्चय से (अपराय) दूसरे के लिये भी (मृलीकः) दयार्द्र, सुख कर (स्याः) हो । (उत) और (नः) हमें (अभिष्टौ) प्राप्त होने पर भी (मृडीकः भव) सुखकारी हो । (इत्था) इस प्रकार (गृणन्तः) स्तुति करते हुए

हम (महिनस्य) महान् सामर्थ्यवान् तेरे (दिवि) कान्तियुक्त, कमनीय,
सुन्दर, (पार्ये) सब को पूर्ण करनेवाले और पालक (शर्मन्) सुखमय
शरण में (गोस-तमाः) उत्तम ज्ञानवाणी, गदादि पञ्चाओं और भूमियों
का सुख सेवन करने वाले (स्याम) हों। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३४]

शुनहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् बन्दः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

सं च त्वे ज्ञामुर्गिर् इन्द्रं पूर्वीर्विं च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतयुक्तीर्णां पस्पृध इन्द्रे अध्युकथार्का ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! स्वामिन् ! प्रभो ! (पूर्वीः)
सबसे पूर्व की, उत्तम, (गिरः) वाणियां (त्वे) तुक्ष में ही (संजग्मुः)
संगत, चरितार्थ होती हैं, तुक्ष में ही समन्वित होती हैं, और (विभ्वः
मनीषाः) विशेष समर्थ बृद्धियाँ भी (त्वत् विथन्ति च) तुक्ष से विशेष
रूप से प्रकट होती हैं। (इन्द्रे अधि) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त ही
(ऋथीणां स्तुतयः च) मन्त्रार्थ द्रष्टाओं की स्तुतियां, प्रवचन, (उक्थ-अक्षा)
उत्तम अर्चना योग्य वचन (नूनं) अवश्य (पस्पृधे) एक दूसरे की स्पर्शी
करते, वे सब एक दूसरे से उत्तम जंचते हैं ।

पुरुहृतो यः पुरुहृत ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न मुहे शवसे युजान्तोऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (पुरुहृतः) बहुतों से स्तुति किया गया, (पुरु-
गृतः) बहुतों से उद्यम किया गया, अर्थात् जिसके निमित्त बहुत से उद्यम
करते हैं, (यः) जो (ऋभ्वा) सत्य के बल पर महान् (यज्ञैः) यज्ञों
और ईश्वरपूजा अर्चनादि द्वारा (पुरुप्रशस्तः) बहुतों से अच्छी प्रकार
स्तुति किया जाता है, वह (महे) बड़े (शवसे) बल की वृद्धि के लिये

(अस्माभिः युजानः) हम लोगों से योग द्वारा, उपासित (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, (रथः न) महान् रथ के समान (अनुमाद्यः भूत्) प्रति दिन स्तुति योग्य और हर्ष अनुभव कराने हारा हो ।

न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षत्रदिभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसुं शं तदस्मै॥३॥

भा०—(य) जिसको (धीतयः) नाना कार्यस्तुतियें भी (न हिंसन्ति) कष्ट नहीं देतीं और (न वाणीः) न नाना वाणियां या याचनाएं भी विघ्न करती हैं । और वे (अभि वर्धयन्तीः इत्) इसको बढ़ाती हुई (इन्द्रे नक्षन्ति) ऐश्वर्यवान् प्रभु को ही व्यापत्ति हैं, उसमें ही चरितार्थ होती हैं । (यदि शतं स्तोतार, यतं सहस्रं स्तोतारः) चाहे सौ स्तुतिकर्ता वा सहस्र स्तुतिकर्ता हों तो भी जब वे (गिर्वणसं गृणन्ति) समस्त स्तुतिवाणियों को स्वीकार करने वाले, उस प्रभु की ही स्तुति करते हैं (तत्) तो भी यह सब अर्चनादिक (अस्मै) इस जीव को (शं) शान्तिदायक ही होता है ।

अस्मा एतद्विव्यः चेव मासा मिमिक्त इन्द्रे न्ययामि सोमः ।

जन्मं न धन्वन्त्राभि सं यदापः सुत्रा वावृधुन्नवनानि युज्वैः ॥ ४ ॥

भा०—(दिवि इन्द्रे मासा यथा सोमः मिमिक्ते) आकाश तेजोमय सूर्य में जिस प्रकार 'सोम' अर्थात् चन्द्र एक मास के बाद (मिमिक्ते) उसके साथ मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार (एतत् सोमः) यह उत्पन्न होने वाला जीव, चिद्रान् पुरुष, (अस्मै) अपने सुधार के लिये ही अपने जीव को भी (दिवि इन्द्रे) कामना योग्य ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर में (अर्चा एव) अर्चना द्वारा ही, (सं मिमिक्ते) मिल जाता है, इसी प्रकार यह जीव भी (नि अथामि) नम्र, विनीत हाकर प्राप्त हो । (धन्वन्) अन्तरिक्ष या मरुस्थल में जैसे (आपः सम् अभि ववृधुः) जल किसी को

बढ़ाते या शक्ति युक्त करते हैं उसी प्रकार (आपः) आप प्रजाजन (सत्रा) सदा (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (हवनानि वावृथुः) हवनों को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार हम यज्ञों द्वारा उस प्रभु का यश बढ़ावें ।

अस्मा प्रतन्मह्याङ्गुष्मस्मा इन्द्राय स्तोत्रं सतिभिर्वाचि ।

असुद्यथा महृति वृत्रतूर्ये इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५॥६॥

भा०—(मतिभिः) मननशील विद्वान पुरुषों द्वारा (अस्मै इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के लिये (प्रतत्) यह (महि) महत्व पूर्ण, (आंगूष्म) ग्रहण करने योग्य, (स्तोत्रं) स्तुति वचन (अवाचि) कहा या उपदेश किया जावे (यथा) जिससे (महति) बड़े भारी (वृत्र-तूर्ये) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले संग्राम के अवसर में (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता (विश्वायुः) पूर्णायु, सर्वत्र पहुंचने में समर्थ, समस्त मनुष्यों का स्वामी, (अविता) सबका रक्षक (वृधः च असत्) सबका बढ़ाने हारा हो । इति षष्ठो वर्गः ॥

(३५)

नर ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ इन्द्रः—१ विराट् विष्टुप् । ३ निचृतिविष्टुप् ।

२ पंक्तिः ॥ पचञ्च सूक्तम् ॥

कुदा भुवुत्रथक्षयाणि ब्रह्म कुदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यंदाः ।

कुदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कुदा धियः करस्ति वाजरत्ना॥१॥

भा०—हे राजन् ! तेरे (रथ-क्षयाणि) रथोंमें वा रमण, योग्य साधन, उत्तम प्रासाद आदि स्थानों में निवास करने के कार्य (कुदा भुवन्) कब र हों, और (स्तोत्रे) स्तुतियोग्य कार्य में अथवा स्तुति उपदेश करने वाले विद्वान् जन को (सहस्रपोष्यं ब्रह्म) सहस्रों को पोषण करने वाला धन (दाः) देवे, (राया) और धनैश्वर्य से युक्त (अस्य) इस राष्ट्र के (स्तोमं) स्तुत्य पद वा जन संघ को (कुदा वासयः) कब बसावे

अलंकृत करे, और (कदा) कब २ (वाजरत्नाः) अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि रमणीय पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (धियः) नाना कर्म तू (करसि) करे । इत्यादि सब विवेकपूर्वक समय नियत कर ।

कहिं स्वित्तदिन्दु यन्त्रमिन्नीरैवीरान्नीलयासु जयाजीन् ।

त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्रघुम्नं स्वर्वद्वेष्युस्मे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (कहिं स्वित् तत्) कब ऐसा हो (यत्) कि तू (वीरैः नृभिः) वीर पुरुषों से (वीरान् नीडयासे) वीर को मिलावे और (कहिं स्वित् आजीन् जय) कब संग्रामों को विजय करे । और कब (त्रिधातु) स्वर्ण, रजत और लोह से युक्त (गाः) भूमियों पर (अरथ जयसि) जीत कर अधिकार करे । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मे) हम प्रजाजन के उपकार करने के लिये (गोषु) उत्तम भूमियों में (स्वर्वत् घुम्नं) सुख से युक्त, सुखप्रद धन (धेहि) अन्न उत्पन्न करावे । इत्यादि सब बातों का ठीक २ काल जान ।

कहिं स्वित्तदिन्दु यज्जरित्रे विश्वप्सु व्रह्म कुणवः शविष्ट ।

कुदा धियो न नियुतो युवासे कुदा गोमधा हवनानि गच्छाः ॥३॥

भा०—हे (शविष्ट) उत्तम बलशालिन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (कहिं स्वित्) कब २ (जरित्रे) विद्वान् पुरुषों को (विश्वासु व्रह्म कुणवः) समस्त प्रकार के अन्न, धन आदि प्रदान करे । (कदा) कब २ (धियः) नाना कर्मों, प्रज्ञाओं तथा उनके करने वाले बुद्धिमान् पुरुषों को (नियुतः न) अपने अधीन नियुक्त पुरुषों या अश्वों के समान (युवसे) कार्य में लगावे, और (कदा) कब २ (गोमधाः) भूमियोंके धनस्वरूप (हवनानि) ग्रहण करने योग्य अन्न, रत्न, कर आदि पदार्थों को (गच्छाः) प्राप्त करे । इत्यादि का ठीक ठीक काल नियत कर ।

स गोमधा जरित्रे अश्वश्वन्दुः वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।

पीपिहीवः सुदुधामिन्द्र धेनुं भुरद्वाजेषु सुरुचो रुहच्याः ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह तू (जरित्रे) विद्वान् उपदेष्टा पुरुष के लिये (गो-मवाः) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्य, भूमि, राज्य, धन, (अश्व-चन्द्राः) वेग से जाने वाले अश्व आदि आह्वादकारक (वाज-श्रवसः) बल कारक अन्नों से युक्त (पृक्षः) प्राप्त करने योग्य नाना पदार्थ, (अधि धेहि) अपने अधिकार में रख और प्रदान कर । तू (इपः) नाना अन्नों को (पिपीहि) पान कर, (इषः पिपीहि) आज्ञा वशवतीं सेनाओं का पालन कर । (इषः पिपीहि) कामना योग्य प्रजाओं की वृद्धि कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सु-दुधां धेनुम्) उत्तम रीति से दोहने योग्य गौ के तुल्य इस भूमि और वाणी को और (सु-रुचः) उत्तम कान्तियुक्त तथा रुचिकारक पदार्थों को (भरद्-वाजेषु) ज्ञान, ऐश्वर्य संग्रह करने वाले पुरुषों के अधीन (रुच्याः) उनको अधिक रुचिकर बना ।

तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छुक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुधस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५॥७॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! तू (यत्) जब (दुरः) द्वारों तथा शत्रुवारक सेनाओं को (वि गृणीषे) विविध प्रकार से आज्ञाएं देवे तब (शूरः) शूरवीर होकर (नूनं) निश्चय से (वृजनम्) जाने के मार्ग को (अन्यथा चित्) विपरीत (मा आगृणीषे) कभी मत बतला । (शुक्रः दुधस्य) जल को दोहन करने वाले मेघ के सदृश शुक्र या श्वेतकान्ति के धन या यश का दोहन करने वाले राजा की (धेनोः) विद्युत् के समान, वाणी, वा गौ के तुल्य भूमि से उत्पन्न (ब्रह्मणा) अन्न के तुल्य वृद्धिशील धन से हे (विप्र) विद्वन् ! तू (अङ्गिरसान्) अंगारे के समान तेजस्ती, देह में प्राणों के तुल्य, राष्ट्र में बसे विद्वान् शक्तिशाली पुरुषों को (अरम्) खूब अच्छी प्रकार से (निर् जिन्व) सब प्रकार से तृप्त कर, उनको बढ़ा । इति सप्तमो वर्गः ॥

[३६]

नर ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—? निचृतविष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् :

४, ५ मुरिक् पंक्तिः । स्वराट् पंक्तिः ॥ पञ्चर्च मूर्कम् ॥

सुत्रा मदासुस्तवं विश्वजन्याः सुत्रा रायोऽध्ये पार्थिवासः ।

सुत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्वेषु धारयथा असुर्यम् ॥ १ ॥

भा०—(यत्) जो तू (देवेषु) समस्त तेजस्वी पुरुषों के बीच में किरणों के बीच सूर्य के समान (असुर्यम्) सबके प्राणों के हितकारी बल, अन्नादि को (धारयथाः) धारण करता है, अतः तू (वाजानाम्) ऐश्वर्यों, अन्नों का (सत्रा विभक्ता अभवः) सत्यपूर्वक विभाग करने वाला हो । (तव मदासः = दमासः) तेरे समस्त हर्ष करने वाले कार्य और राष्ट्र दमनकारी उपाय (सत्रा) सदा वा सचमुच (विश्व-जन्याः) समस्त जनों के हितकारी हों । (अध्ये) और जो (पार्थिवासः रायः) पृथिवी के ऊपर प्राप्त होने योग्य धनैश्वर्य हों वे भी (सत्रा) सदा, सचमुच (विश्व-जन्याः) सर्वजन हितकारी हों ।

अनु प्र येजे जनु ओज अस्य सुत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।

स्युम्गृभे दुध्येऽर्वते चू क्रतुं वृज्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥ २ ॥

भा०—(अस्य ओजः) इसके बल पराक्रम को (जनः) मनुष्य लोग (अनु येजे) प्रति दिन आदर से देखें, और (प्र येजे) उत्तम रीति से स्वीकार करें । (अस्य वीर्याय) इसके बल बढ़ाने के लिये (सत्रा अनु दधिरे) सदा सत्य व्यवहारों को धारण करें । (अषि) और (वृत्र-हत्ये) वारण करने योग्य, बढ़ते शत्रु को नाश करने के लिये (स्युम्गृभे) एक दूसरे से सम्बद्ध, दृढ़ सैन्य को वश करने वाले (दुध्ये) शत्रुहिंसक (अर्वते) आगे बढ़ने वाले वीर पुरुष के योग्य (क्रतुं) कर्म को (वृज्जन्ति) किया करें ।

तं सुध्रीचीरुतयो वृष्ण्यानि पौस्त्यानि नियुतः सश्चरिन्द्रम् ।
सुमुद्रं न सिन्धव उकथशुभ्मा उरुव्यचसुं गिरु आ विशन्ति ॥३॥

भा०—(तं) उस (इन्द्रम्) सत्य न्याय और ऐश्वर्य को धारण करने वाले पुरुष को (ऊतयः) रक्षा करने वाले समस्त सैन्यादि साधन, (सध्रीचीः) एक साथ चलने वाली सेनाएं और (वृष्ण्यानि पौस्त्यानि) बलशाली पुरुषों के बने सैन्य और (नियुतः) नियुक्त, लाखों, जन, (सशुः) प्राप्त होते हैं और (उकथ-शुभ्माः गिरः) उत्तम प्रशंसनीय बल से युक्त वा वचन २ में बल धारण करने वाली वाणियां (उरुव्यचसं) उस महान, पराक्रमी पुरुष को (सिन्धवः समुद्रं न) समुद्र को नदियों के समान (आ विशन्ति) प्राप्त होकर उसमें आश्रय लेती हैं ।

स रायस्खामुपं सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्रु वस्वः ।
पर्तिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४॥

भा०—(सः) वह हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (त्वम्) तू (गृणानः) हमें उपदेश करता हुआ और हम से स्तुति प्राप्त करता हुआ, (पुरु-चन्द्रस्य) बहुतों को सुखी करने वाले (वस्वः) धनों और (रायः) देने लेने योग्य ऐश्वर्य की (खाम्) खुदी नहर के समान (उप सृज) बनाकर बहा दे । तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (असमः) अनु-पम, (एकः) अद्वितीय (पतिः) पालक और (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त संसार का राजा (वभूव) हो ।

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुद्यौर्नि भूमाभि रायो श्रुर्यः ।
असो यथा नुः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥५॥

भा०—(यः) जो (यौः न) सूर्य के समान तेजस्वी (दुवोयुः) परिचर्या की कामना करता हुआ, (भूम-रायः अभि) बहुत बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त कर (अर्यः) सबका स्वामी है (सः) वह तू (श्रुत्या)

श्रवण करने योग्य, प्रजाओं के वचनों को (श्रुधि तु) अवश्य श्रवण कर (यथा) जिससे तु (युगे युगे) प्रति वर्ष, (वयसा) दीर्घ आयु (शवसा) और बल, ज्ञान से (चकानः) कान्ति युक्त और (चेकितानः) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारा प्रिय (असः) हो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[३७]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ वन्दः— ?, ४, ५ विराट् त्रिष्ठुप् ।

२, ३ निचृतपंक्तिः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

अर्धायरथं विश्ववारं त उग्रेन्द्रं युक्ताखो हरयो वहन्तु ।

कीरिश्चाद्वि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधुमादस्ते अद्य ॥ १ ॥

भा०—हे (उग्र) उद्गेगजनक बलवन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (युक्ताखः हरयः) नियुक्त मनुष्य अर्थों के समान (ते) तेरे (विश्ववारं) सबों से वरण करने योग्य (रथं) रथवत् रमण करने योग्य राष्ट्र चक्र को (वहन्तु) धारण करें। (सर्वान्) सुख और उत्तम उपदेश ज्ञान से युक्त (कीरिः) विद्वान् पुरुष (त्वा हवते) तुझे उपदेश दें वा विद्वान् जन तुझे स्वीकार करे। (अद्य) आज (ते) तेरे (सधमादः) साथ हर्षित और प्रसन्न होने वाले हम लोग (ऋधीमहि) समृद्ध हों। प्रो द्रोणे हरयुः कर्मांगमन्पुनानासु ऋज्यन्तो अभूवन् ।

इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पर्णीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा॥२॥

भा०—(हरयः) मनुष्य (द्रोणे) राष्ट्र में रहते हुए (कर्म) किसी भी उपयोगी कर्म को (प्र अग्मन्) अच्छी प्रकार करें। वे (पुनानासः) पवित्र, स्वच्छ रहते हुए (ऋज्यन्तः अभूवन्) ऋजु, सरल धर्मानुकूल आचरण करते हुए रहें। (नः) हममें से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, समृद्ध पुरुष (पूर्व्यः) पूर्व, सबसे प्रथम पूजा प्राप्त करने योग्य, या पूर्व विद्यमान वृद्ध जनों द्वारा नियत हो। वह (अस्य) इस राष्ट्र को (पर्णीयात्)

निरन्तर पालन और उसको उपभोग तथा समृद्ध करे । वह (द्युक्षः) आकाश के समान भूमि के राज्य को विस्तृत करनेहारा, व सूर्यवत् चमकने वाला, तेजस्वी पुरुष राजा होकर (सोम्यस्य) सोम, राज्यैश्वर्य पद के योग्य (मदस्य) आनन्द, हर्ष, तृष्णि, सुख उपभोग का (पपीयात्) लाभ करे ।

आ सुस्वाणासः शवस्त्रानमच्छेन्द्रै सुचके रथ्यासुो अश्वाः ।
अभि श्रवु ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्तु वायोरुमृतं वि दस्येत् ॥३॥

भा०—(रथ्यासः अश्वाः) रथ में लगने योग्य अश्वों के समान उत्तम धुरन्धर विद्वान् जन (शवसानम् इन्द्रम्) बलवान्, ऐश्वर्यवान् राजा को (अच्छ आ-स्वाणासः) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हुए, (ऋज्यन्तः) ऋजु, सरल सीधे, धार्मिक मार्ग पर गमन करते हुए (श्रवः अभि वहेयुः) ऐश्वर्य, उत्तम कीर्ति प्राप्त करावें और वह (नू चित्) अति शीघ्र ही (सु-चक्रे) उत्तम चक्र युक्त रथ के समान उत्तम राज्य चक्र में (वायोः) वायु के समान बलवान्, सबके प्राणप्रद (अमृतं) अविनाशी दीर्घायु, पद को प्राप्त कर (नु) दुःखों को (वि दस्येत्) नष्ट करे । अथवा (नूचित् इति निषेधे) वह उस अविनाशी पद का नाश न करे । अध्यात्ममें—आत्मा के 'अश्व' प्राणगण हैं वेह सुचक है । इसको अज्ञ, बल और ज्ञान प्राप्त करावें । जिससे वह आत्मा 'वायुवत्' जीवनप्रद, ज्ञानमय प्रभु के अमृतपद को प्राप्त कर दुःखों का नाश करे ।

वरिष्ठो अस्यु दक्षिणमियुर्तीन्दो मूघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मूघा च धृष्णो दयसे वि सुरीन् ॥ ४ ॥

भा०—(मघोनाम्) धन सम्पद पुरुषों में से । (वरिष्ठः) सबसे उत्तम वरने योग्य, एवं सबसे श्रेष्ठ, दुःखों को दूर करने वाला और (तुविकूर्मितमः) बहुत से उत्तम कर्मों को करने वाला, पुरुष ही

(इन्द्रः) इन्द्र, ऐश्वर्य के राजपद के योग्य होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (दक्षिणाम्) दक्ष, अर्थात् बल से युक्त, बलवती, उस सञ्चालक शक्ति सैन्यादि और बलप्रद अन्न धनादि को भी (इर्यति) प्राप्त होता और चलाता है । हे (वत्रिवः) बलशालिन् ! (यथा) जिससे (अंहः) पाप अपराध आदि को (परि यासि) दूर करता है । हे (धृष्णो) दुष्टों का दमन करने हारे ! तू (यथा) जिस महती शक्ति द्वारा (सूरीन्) उत्तम विद्वानों को (मधा दयसे) दान करने योग्य धनों, अज्ञों को देता और पालता है । (२) इसी प्रकार इन्द्र, ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष ही बहुत से कर्म करके दक्षिणा देता है । जिससे वह पाप को नाश करता और विद्वान् को धन अज्ञादि देकर पालता है ।

इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्विर्धतां वृद्धमहाः ।

इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तृतुजानः ॥५१९॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (स्थविरस्य) स्थिर और बड़े (वाजस्य) अन्न, धन, बल का (दाता) देने वाला हो । वही (इन्द्रः) विद्या आदि का दाता, आचार्य (वृद्ध-महाः) वृद्धों द्वारा भी सत्कार करने योग्य होकर (गीर्भिः) उत्तम उपदेश योग्य वाणियों से (विर्धताम्) राष्ट्र की वृद्धि करे । (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (वृत्रं) बढ़ते शत्रु को (हनिष्ठः) खूब ढण्ड देने वाला (अस्तु) हो । वह (सूरिः) विद्वान् पुरुष (तृतुजानः) दुष्टों का निरन्तर नाश करता, और सज्जनों को दान देता हुआ (सत्वा) बलवान् सात्त्विक पुरुष (ता) उन नाना धनों को पूर्ण करे और दे । इति नवमो वर्गः ॥

(३८)

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ५ निचृत्
त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्त्तु सूक्तम् ॥

अपादित उदु नश्चत्रतमो मृहीं भर्षद्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यासुञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥

भा०—(चित्रन्तमः) अति आश्चर्यजनक कार्य करने हारा, अति पूज्य, सबसे उत्तम ज्ञानदाता, राजा और विद्वान् पुरुष (नः) हमें (इतः) प्राप्त होकर (अपात् उत् उ) सदा पालन करे । वह (मही) पूज्य, बड़ी (द्युमतीम्) तेजोयुक्त (इन्द्रहूतिम्) ऐश्वर्य की देने वाली भूमि और ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वान् द्वारा उपदेश करने योग्य बाणी को भी (अर्पत्) पालन और धारण करे । वह (सु-दानुः) उत्तम दाता होकर (दैव्यस्य जनस्य) मनुष्यों और राजा के हितकारी प्रजाजन के (यासम्) नियन्त्रण करने के ज्ञासन कार्य में (पन्यसीं धीतिं) स्तुति योग्य धारण, सामर्थ्य, स्तुति प्राप्त करे और (रातिं) दानशीलता को भी (वनते) सेवन करे, दान योग्य धन प्रदान करे । परमेश्वर वा अत्मापक्ष में— (अपात्) पाद आदि अवयवों से रहित वह अमुतकर्मा है वह, द्युलोक सहित भूमि को धारण करता है, इत्यादि ।

दूराच्छिदा वसतो अस्य कर्णा घोपादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्वृत्यान्मृद्युः गिन्द्रसियमृच्यमाना ॥ २ ॥

भा०—(दूरात् चित्) दूर देश से (आ) आकर (वसतः) शिष्य रूप से रहने वाले (अस्य) इस उपस्थित शिष्य जन के (कर्णा) दोनों कानों को (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (घोषात्) वेद से (ब्रुवाणः) ज्ञान का उपदेश करता हुआ विद्वान् (तन्यति) अधिक विस्तृत करे, उसको अधिक ज्ञानवान् बनावे । (इथम् देवहूतिः) यह विद्वान् पुरुष का विद्यादान वा देव अर्थात् विद्या की कामना करने वाले शिष्य जन की प्रार्थना (इन्द्रम्) उस विद्यादाता के आचार्य के प्रति (अच्यमाना) स्तुति करती हुई (मद्रयक्) मुक्त शिष्य के प्रति (एनम्)

आवृत्यात्) उस गुरु को आवर्तन करे, मेरे प्रति उसका ध्यान और स्नेह आकर्षण करे ।

तं वौ धिया परमया पुराजासजरुमिन्द्रमभ्यनूष्यकैः ।

ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महांश्च स्तोमो अधिव वर्धदिन्द्रे ३

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों के बीच (परमया) सबसे उत्तम (धिया) बुद्धि और कर्म से युक्त (पुराजाम्) पूर्व उत्पन्न, (अजरम्) हानिरहित, (इन्द्रम्) ज्ञानप्रद गुरु को मैं (अकैः) आदर सत्कार योग्य उपचारों से (अभि अनूषि) साक्षात् स्तुति उपासना करूँ । (अस्मिन्) इसके अधीन रहकर विद्वान् शिष्य जन (ब्रह्म) वेदज्ञान और (गिरः च) उपदेशयोग्य विद्या, वाणियों को (दधिरे) धारण करें । और (इन्द्रे अधिव) उस विद्या-ऐश्वर्य के धारण करने कराने वाले गुरु की अध्यक्षता में (स्तोमः) उपदेश योग्य ज्ञान, वेदमय कोष, (वर्धात्) बड़ा भारी हो जाता है । (२) वह परमेश्वर, परम शक्ति ज्ञान से सम्पन्न, सनातन, अजर, अमर है । उसकी मन्त्रों से स्तुति करूँ । वह महान् बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और वेद वाणियों, स्तुतियों को धारण करता है । वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम् इन्द्रं वर्धाद्व्रह्म गिरं उकथा च मन्म ।

वर्धाहैनमुपस्तो यामन्त्रकोवर्धान्मासाः शुरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा विद्वान् को (यज्ञः) परस्पर का सत्संग, आदर, मान, प्रतिष्ठा, और करादि देना, (वर्धात्) बढ़ाता है, (यं सोमः वर्धात्) जिसको सोम्य विद्वान् शिष्य, पुत्र, ऐश्वर्य, ओषधि अज्ञादि, बढ़ाते हैं, और जिसको (ब्रह्म) बड़ा धन, बड़ा ज्ञान, बड़ा राष्ट्र तथा (गिरः) वाणियां और (मन्म उकथ च) मनन करने योग्य उत्तम २ वचन भी (वर्धात्) बढ़ाते हैं । (अक्तोः यामन्) रात्रि के बीतने या सर्वप्रकाशक सूर्य के आगमन पर (एनम् उपसः) उस सूर्य को उपाओं के समान (उपसः)

शनु को दग्ध करने वा सन्तप, पीड़ित करने वाली सेनाएँ (अक्षोः यामन्) सेजस्वी राजा के प्रयाण के समय में 'अक्तु' अर्थात् स्नेहयुक्त राष्ट्र के शासन काल में (वर्धं अह) निश्चय से बढ़ता है । और (मासः) मास (शरदः) वर्ष और (द्यावः) दिन में वर्ष के अवयव ये (इन्द्रं वर्धान्) उसके ऐश्वर्य को बढ़ावें । गुरु और शिष्य के पक्ष में—सोम शिष्य है, 'यज्ञ' अर्थात् ज्ञान का दान, वेदवाणियां, मननयोग्य वचन को बढ़ाते हैं । और प्रातः सायं, दिन रात, मास, ऋतु, वर्ष आदि विद्यार्थी को बालकवत् बढ़ावें ।

एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।

महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रत्येषु ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(एव) इस प्रकार (सहसे) बल की वृद्धि के लिये (असामि जज्ञानं) पूर्ण होते हुए और (राधसे) आराधना और (श्रुताय च) श्रवण योग्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (वावृधानं) बढ़ते हुए (महाम्) महान् (उग्रम्) उत्तम पुरुष को (आ विवासेम) सब प्रकार परिचर्या करें (नूनम्) निश्चय से हम (अवसे) ज्ञान और रक्षा प्राप्त करने के लिये (वृत्रत्येषु) विघ्नकारी अज्ञान, काम क्रोधादि व्यसनों और शनुओं का नाश करने के कार्यों के निमित्त भी हे (विप्र) विद्वन् ! उस महापुरुष को ही (आ विवासेम) आश्रय रूप से स्वीकार, उसकी सेवा करें । इति दशमो वर्गः ॥

[३६]

भरद्वाजो वाहस्पत्य ऋषिः ॥ इद्रो देवता ॥ ऋन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप् ।

२ त्रिष्टुप् । ४, ५ मुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

मन्द्रस्य कुवेदिव्यस्य वहेविप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।

अपानुस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोत्रं ग्राः ॥ १ ॥

भा०—गुरु शिष्य प्रकरण । हे (देव) विद्या की अभिलापा करने हारे विद्यार्थिन् ! तू (गृणते) उपदेश करने वाले गुरु के (गो-अग्राः इषः) उत्तम वाणियों से युक्त प्रेरणाओं अर्थात् उपदेशों को (युवस्य) प्राप्त कर और उस (मन्द्रस्य) स्तुति योग्य, (कवेः) क्रान्तदर्शीं, (दिव्यस्य) ज्ञान प्रकाश में निष्ठ, (वह्नेः) विद्या को धारण करने वाले, (विम-मन्मनः) विद्वान् मेधावी पुरुष के मनन योग्य ज्ञान को धारण करने वाले, (सत्त्वनस्य) सत्संग योग्य (मध्वः वचनस्य) मधुर वचन का सार (नः अपाः) हमें भी पान करा ।

अथमुशानः पर्यद्विमुद्या ऋतधीतिभित्रृतयुग्युजानः ।

रुजदर्हणं चि चुलस्य सानुं पुरीं वचोभिरुभि योधुदिन्द्रः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (उशानः ऋतयुग् इन्द्रः ऋतधीतिभिः वलस्य-सानु रुजत्, पणीन् अभि योधत्) कान्तिमान्, तेजोयुक्त सूर्य वा विद्युत्, जलधारक किरणों से व्यापक मेघ के उच्च भाग को छिन्न भिन्न करता है, स्तुत्य व्यवहारों को गर्जनाओं सहित करता, है उसी प्रकार (अयम्) यह (उशानः) विद्याओं की कामना करने वाला, (युजानः) विद्याभ्यास में मनोयोग देने वाला विद्यार्थी जन (ऋतयुग्) सत्य ज्ञान के भीतर योग देने वाला हो, और (ऋत-धीतिभिः) ज्ञान को धारण करने के उपायों से (अद्वि परि उसाः) मेघवत् ज्ञानवर्धण करने वाले गुरु के प्रति अपनी इन्द्रिय वृत्तियों को (युजानः) लगाने वाला हो । वह (इन्द्रः) अज्ञान का नाश करने में समर्थ विद्वान्, गुरु (अरुणं) न दूटे हुए (वलस्य) व्यापक (सानु) अज्ञान के प्रबल अंश को (रुजत्) छिन्न भिन्न करे, विद्या के कठिन मर्मों को खोले । वह (वचोभिः) उत्तम वचनों द्वारा (पणीन् प्रति) अपने विद्यार्थियों को लक्ष्य कर उनके प्रति (अभि योधत्) युक्ति प्रतियुक्तियों से आक्षेप-प्रत्याक्षेप करे, वादविवाद द्वारा सिद्धान्तों की शिक्षा दे । अर्थात् गुरु स्वयं वीर के

समान विद्यार्थी के लिये सब कठिन स्थलों को सरल कर दिया करे । तो साथ ही (अयम् उशानः) यह गुरु भी (ऋत्-युग्) सत्य ज्ञान का योग कराने वाला होकर (ऋत्-धीतिभिः) सत्य ज्ञान धारण कराने वाली क्रियाओं से (अद्वि परि उस्माः युजानः) अपने अभीत, निर्भय शिष्य के प्रति किरणोवत् वाणियों को प्रदान करता हुआ रहे ।

अथ द्योतयद्युतो व्युक्तन्दोषा वस्तोः शरद् इन्दुरिन्द्र ।

इमं केतुमदधुर्नू चिद्हां शुचिजन्मन उषस्त्रकार ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, अज्ञान को नाश करने और ज्ञान के देनेहारे ! सूर्यवत् तेजस्विन् गुरो ! (इन्द्रः अन्तून् दोषा वस्तोः शरदः वि अद्योतयत्) जिस प्रकार चन्द्र रातों को सदा सब वर्षों में ही प्रकाशित करता है, उसी प्रकार (अयम्) यह (इन्दुः) चन्द्रवत् आलहादकारी गुरु भी (दोषा वस्तोः) रात दिन (शरदः) छहों शरद आदि ऋतुओं में भी (अयुतः अन्तून्) ज्ञान की दीपि से रहित रात्रिवत् अज्ञात विद्यास्थलों को (वि अद्योतयत्) विशेष रूप से प्रकाशित करा करे । जिस प्रकार उषाएँ (अहां केतुम् अदधुः) दिनों को चमकाने वाले सूर्य को धारण करती हैं उसी प्रकार (उषासः) विद्या की कामना करने वाले जितेन्द्रिय विद्यार्थी जन सूर्यवत् तेजस्वी, (अहां) न ताड़नायोग्य शिष्यों को (केतुम्) ज्ञान देने वाले गुरु को (अदधुः) धारण करें, उसको गुरुवत् स्त्रीकार करें । और जिस प्रकार सूर्य (शुचि-जन्मनः उषसः चकार) शुद्ध पवित्र जन्मवाली उपाओं को उत्पन्न करता है उसी प्रकार वह गुरु भी (उषसः) विद्या के इच्छुक शिष्यों के (शुचि-जन्मनः चकार) शुद्ध पवित्र विद्या माता में शुद्ध पवित्र जन्म ग्रहण करने वाला बना देता है, अर्थात् विद्वान् बना कर उनको ज्ञानमय पवित्र जन्म देता है ।

अथ रोचयद्युरुचो रुचानोऽयं वासयुदव्यृतेन पूर्वीः ।

अयमीयत ऋत्युग्मिभरश्वैः स्वर्विद्वा नाभिना चर्षण्प्राः ॥ ४ ॥

भा०—(रुचानः अरुचः रोचयत्) जिस प्रकार सूर्य स्वयं कान्ति से चमकता हुआ कान्ति से रहित चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार (अयम्) यह विद्वान् उपदेष्टा गुरु, स्वयं (रुचानः) तेजस्वी होकर (अरुचः) विद्या प्रकाश से रहित जनों को (रोचयत्) विद्या प्रकाश से प्रकाशित करे । (अयं) यह (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान प्रजाओं के समान ही नवीन विद्यार्थी जनों को (क्रतेन) सत्योपदेश के निमित्त (वासयत्) अपने अधीन बसावे, रखे । (अयम्) वह (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को ज्ञान से पूर्ण करने हारा विद्वान् (स्वः विदा नाभिना) तेजोमय, उपदेश को प्राप्त करने वाले 'नाभि' अर्थात् सम्बन्ध से (क्रत-युग्मिः) सत्य ज्ञान का योग करा देने वाले (अश्वैः) उत्तम विद्वान् सहायक अध्यापकों द्वारा (इयते) आगे बढ़ता है ।

नू गृणानो गृणते प्रत्न राजनिषः पिन्व वसुदेवाय पुर्वीः ।

अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नृन्चसे रिरीहि ॥५॥११॥

भा०—हे (प्रत राजन्) दीर्घायु ! विद्या प्रकाश से प्रकाशयुक्त ! विद्वन् ! हे राजन् ! तू (नू) अवश्य (गृणते गृणानः) प्रार्थना करने वाले को विद्योपदेश प्रदान करता हुआ (वसुदेवाय) द्रव्य देने में समर्थ जनों को भी (पूर्वीः इपः पिन्व) पूर्व की वेद वाणियों से तृसु किया कर । और तू (क्रत्त्वसे) उत्तम काम के लिये (अपः) उत्तम जल (ओषधीः) नाना ओषधियां, (अविषा) विषों से रहित (वनानि) जल और वन के पदार्थ तथा (गाः अर्वतः) गौ और अश्व आदि पशु (रिरीहि) देना चाहा कर । इत्येकादशो वर्गः ॥

[४०]

भरद्वाजो वाईस्पत्य कृषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्ठुप् । २ त्रिष्ठुप् । ४ भुरिक् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमं सूक्तम् ॥

इन्द्रु पिबु तुभ्यं सुतो मदायाव॑ स्य हरी विमुचा सखाया ।
तुत् प्र गाय गृण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् एवं विद्वन् ! (तुभ्यं सुतः मदाय) जिस प्रकार उत्पन्न पुत्र हर्ष लाभ के लिये होता है उसी प्रकार वह उत्पन्न प्रजाजन, तथा ऐश्वर्य समूह तेरे ही हर्ष, प्रसन्नता एवं सुख के लिये है । तू उसका (पिब) पालन कर और ऐश्वर्य का उपभोग अन्न के समान किया कर । अर्थात् जैसे ओषधि आदि अन्न रस का पान पुष्टि के लिये किया जाता है उसी प्रकार प्रजा की समृद्धि का उपभोग अपनी शक्ति को पुष्ट करने के लिये कर, भोग विलासादि व्यसन तो उसको पुष्ट न करके निर्बल कर देते हैं अतः राजा का व्यसनों द्वारा भोग-विलास करना उचित नहीं है । हे राजन् ! इसी प्रकार (तुभ्यं सुतः मदाय) तेरा राज्याभिषेक हर्ष के लिये हो, और तू प्रजा का (पिब) पालन कर, (अव स्य) तू प्रजा को दुःखों से छुड़ा । (सखाया हरी) मित्रवत् विद्यमान (हरी) स्त्री पुरुषों वा राजा प्रजा के वर्गों को रथ में जुते अशों के समान (वि मुच) विशेष रूप से बन्धनमुक्त, स्वतन्त्र जीवनबृत्ति वाला कर । (उत) और तू (गणे) प्रजागण के ऊपर (आ निषद) आदर पूर्वक धर्मासन पर विराज कर (प्र गाय) उत्तम २ उपदेश किया कर और उत्तम रीति से अज्ञाएं दिया कर । (अथ) और (गृणते यज्ञाय) उपदेश करने वाले सत्संग और आदर करने योग्य पुरुष को (वयः धाः) उत्तम अन्न, और बल प्रदान कर ।

अस्य पिबु यस्य जज्ञान इन्द्रु मदायु क्रत्वे अपिबो विरप्तिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्विरिन्दु समैद्यन्पीतये समस्मै ॥२॥

भा०—हे (विरप्तिन्) महान् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (जज्ञानः) प्रकट या प्रसिद्ध होता हुआ तू (मदाय) हर्षित और तृप्त पूर्ण होने के लिये और (क्रत्वे) अपने कर्म सामर्थ्य को बढ़ाने के

लिये (यस्य अपिचः) जिस ऐश्वर्य का तू उपभोग और पालन करता है (अस्य पिव) बाद में भी तू उसी राष्ट्र के ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करता रह । (अस्यै ते) इस तेरी वृद्धि के लिये ही (नावः) गौएं, वाणियें और भूमियें (नरः) उत्तम नायक, (आपः) राष्ट्र में जल, मेघ, कूप, नदी, तडाग आदि, तथा आस प्रजाजन, (अद्रिः) मेघ, पर्वत तथा शब्दबल सब ! (तम् इन्दुं) उस ऐश्वर्य को (पीतये) पालन और उपभोग करने के लिये ही । (सम् अद्यन्) एकत्र प्राप्त हों ।

समिञ्चे अग्नौ सुत इन्दु सोमु आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ॥
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय मुहे नः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अग्नौ समिञ्चे) अग्नि के खूब प्रदीप हो जाने के समान (अग्नौ) अग्रणी नायक के (सम-इन्द्रे) अति प्रज्वलित, तेजस्वी हो जाने पर (सोमे सुते) राष्ट्र ऐश्वर्य के अभिषेक द्वारा प्राप्त हो जाने पर हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (त्वा) तुक्षको (वहिष्ठाः) अपने ऊपर धारण करने वाले वा राज्य-भार को वहन करने में अत्यन्त कुशल (हरयः) विद्वान् मनुष्य उत्तम अश्वों के समान ही (त्वा/वहन्तु) तुक्षे सन्मार्ग पर ले जावें । मैं प्रजाजन (त्वायता मनसा) तुक्षे चाहने वाले चित्त से (जोहवीमि) निरन्तर पुकारता हूँ । हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले ! तू (नः महे सुविताय) हमारे बड़े भारी उत्तम शासन वा ऐश्वर्य भाव की वृद्धि करने के लिये हमें (आ याहि) प्राप्त हो ।

आ याहि शश्वदुश्ता ययायेन्द्रं मुहा मनसा सोमपेयम् ।

उप ब्रह्माणि शृणुव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे चयो धात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (शश्वत्) निरन्तर (उशता) प्रजा को चाहने वाले (मनसा) चित्त से (आ याहि) प्राप्त हो । तू (महा मनसा) बड़े उदार चित्त ज्ञान से युक्त होकर (सोम-पेयम्)

पुत्र वा शिष्यवत् पालन करने योग्य राष्ट्र-ऐश्वर्य रूप रक्षायोग्य धन को
(यथाथ) प्राप्त कर । (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) उत्तम
वेदोपदेशों को स्वयं शिष्यवत् (उप शृणवः) ध्यानपूर्वक श्रवण कर ।
(अथ) और (यज्ञः) सत्संग, आदर सत्कार तथा प्रजा का कर आदि
देना, और दानवान् प्रजाजन भी (ते तन्वे) तेरे शरीर और विस्तृत राष्ट्र
के लिये (वयः धात्) उत्तम अन्न और बल प्रदान करे, तुझे पुष्ट करे ।

यदिन्द्र दिवि पार्ये यद्युग्मद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।

अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्तस्जोपाः पाहि गिर्वणो मरुद्धिः ५ ॥ १२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (यत्) जब (पार्ये)
पालन करने योग्य (दिवि) तेजस्वी, और सबको रूचने वाले कमनीय,
राज्यपद वा आसन पर और (यत्) जब (क्रधक् वा) उससे पृथक्
भी हो, (यद् वा) अथवा जब तुम (स्वे सदने) अपने आसन वा गृह
में (यत्र वा असि) या जहाँ कहाँ, जिस स्थिति में भी हो (अतः)
वहाँ से ही हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! आप (नियुत्वान्)
लक्षों सेनाओं, नियुक्त भृत्यों तथा अश्व सैन्य के स्वामी होकर (स-जोषाः)
प्रीतिपूर्वक (मरुद्धिः) वायुवत् वलवान् मनुष्यों सहित (अवसे) रक्षा
करने के लिये (नः यज्ञं पाहि) हमारे यज्ञ, राष्ट्र का पालन कर । इति
द्वादशो वर्गः ॥

[४१]

भरद्वाजो बाहैस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ बन्दः—१ विराट् त्रिष्ठुप् । २,
३, ४ त्रिष्ठुप् । ५ सुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

अहैळमान् उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्तु इन्द्रवः सुतासः ।
गात्रो न वज्रिन्तस्वमोक्तो अच्छेन्द्रा गंहि प्रथमो युज्ञियानाम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवन् ! शख्सैन्य के स्वामिन् ! (इन्द्रः सुतासः) ऐश्वर्यवान्, प्रेम दया से आद्व प्रजाजन, उत्पन्न पुत्र के समान होकर (तुभ्यं पवन्ते) तेरी वृद्धि के लिये ही यत्न करते हैं । तू (अहेड़मानः) उन पर क्रोध और अनादर का भाव न करता हुआ (यज्ञं उप याहि) उनके किये आदर सत्कार तथा सत्संग को प्राप्त हो । (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यज्ञियानाम् प्रथमः) सत्कार योग्य पुरुषों में से सबसे प्रथम तू ही (स्वम् ओकः) अपने स्थान को (गावः नः) शासित भूमियों, प्रजाभों के समान ही (अच्छ आगहि) प्राप्त हो । जैसे गौवें स्वभावतः अपनी गोशाला में आ जाती हैं उसी प्रकार तू भी सौभ्य भाव से अपने पद को प्राप्त हो अथवा जैसे मनुष्य अपने स्थान को आता है वैसे (स्वम् ओकः गावः न) भूमियों को अपना ही आश्रय जान, उन्हें प्राप्त हो ।

था ते^१ काकुत्सु^१कुता या वरिष्ठा यथा शश्वत्पिवासि मध्व^१ ऊर्मिम् ।
तया पाहि^२ प्र ते^१ अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे अज्ञाननाशक स्वामिन् ! विद्वन् ! (या ते) जो तेरी (काकुत्) वाणी (सुकृता) उत्तम रीति से सम्पादित सु-अभ्यस्त, सुपरिष्कृत है (या) जो (वरिष्ठा) सबसे श्रेष्ठ, है (यथा) जिससे तू (शश्वत्) सदा (मध्वः ऊर्मिम्) मधुर, ज्ञान के सार भाग का (पिवसि) स्वयं ग्रहण करता, और अन्यों को भी पान करता है, तू (तया पाहि) उससे हमारी रक्षा कर । (ते) तेरे लिये (अध्वर्युः) कभी नाश न करने वाला वीर जन (ते प्र अस्थात्) तेरी वृद्धि के लिये प्रतिष्ठित हो और आगे बढ़े । हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (ते वज्रः) तेरा वज्र, शत्रुसंहारक शख्सबल भी (गव्युः) राज्य भूमि का हितकारी होकर (सं वर्तताम्) उत्तम मार्ग से चले ।

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिंव हरिवः स्थात रुग्र यस्येश्चिवे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! हे (स्थातः) स्थिर रहने वाले ! तू (यस्य ईश्चिवे) जिसका तू स्वामी होता है और (यः ते अन्नम्) जो तेरा भोग्य अन्न है (एषः) वह (द्रप्सः) सबको लुभाने वाला, वा (वृषभः) उत्तम सुखों को वर्णण करने वाला, (सोमः) ऐश्वर्य अथवा (द्रप्सः) हुत गति से जाने वाला, (वृषभः) बलवान् (विश्वरूपः) नाना प्रजाजनों से युक्त, (सोमः) उत्पन्न पुत्रवत् प्रिय, राष्ट्र (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वृष्णे) बलवान् तेरे लिये ही (सम् अकारि) अच्छी प्रकार अन्नवत् संस्कार किया जावे, हे (उग्र) बलशालिन् ! तू (एतं पिंव) उसका पालन और उपभोग कर ।

सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यान्त्यं श्रेयांश्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उपयाहि युज्ञं तेजु विश्वास्तविधीरा पृणस्व ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (असुतात्) न उत्पन्न हुए की अपेक्षा (सुतः सोमः) उत्पन्न हुए पुत्र वा शिष्य के तुल्य यह अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य, अभिषिक्त होकर प्राप्त राज्य की अपेक्षा से (वस्यान्) बहुत अधिक धनैश्वर्य से सम्पन्न है तथा अधिक प्रजाजनों को बसाने हारा है और वह (चिकितुषे) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (रणाय) उत्तम सुख प्राप्त करने और शत्रुनाशक संग्राम करने के लिये भी (श्रेयान्) अति श्रेष्ठ है । हे (तितिर्वः) शत्रु नाश करने हारे बलवन् ! राजन् ! तू (एतं यज्ञं उपयाहि) उस यज्ञ अर्थात् पूज्य पद, सुसंगत राज्य को प्राप्त हो । तेन उससे (विश्वाः) समस्त (तविधीः) बलवती सेनाओं को (आपृणस्व) सब प्रकार से पालन और पूर्ण कर ।

द्व्यामसि त्वेन्द्र याहूर्वाङ्मर्ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मुदयस्वा सुतेषु प्रास्मां अव पृतनासु प्र विजु ५१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! बलवन् ! शत्रुहन्तः ! प्रभो ! (त्वा) तुझे हम (हृयामसि) बुलाते हैं । (सोमः) अन्न जिस प्रकार (तन्वे) शरीर के पोषण के लिये होता है । और (सोमः तन्वे) जिस प्रकार पुत्र या शिष्य वंश परम्परा के विस्तार के लिये होता है, उसी प्रकार यह पुत्रवत् राष्ट्र भी (ते तन्वे अरम्) तेरे विशाल शरीर वा राज्य विस्तार के लिये प्रदीपि (भवाति) हो । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्वाङ् आयाहि) सब के समक्ष आ । अथवा (अर्वाङ्) अश्व सैन्य को प्राप्त करके (आ याहि) सब ओर प्रयाण कर, हे (शतकतो) सैकड़ों कर्म करनेहारे ! तू (अस्मान्) हम सबों को (सुतेषु) पुत्रवत् आहादकारक अभिषेकादि कर्मों के अवसरों वा ऐश्वर्यों के निमित्त सदा आनन्दित कर और (पृतनासु) संग्रामों के अवसरों और (विक्ष) प्रजाओं में भी (अस्मान् प्र अव) हमारी अच्छी प्रकार रक्षा कर । इति ऋयोदशो वर्गः ॥

[४२]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—? स्वराङ्गुष्ठिक् । २
निचृदनुष्ठप् । ३ अनुष्ठप् । ४ मुरिगनुष्ठप् ॥ चतुर्छन्दं सूक्तम् ॥

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।

श्रुद्गुमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे ऐश्वर्यवन् ! हे प्रजाजन ! तू (अस्मै) उस (पिपीषते) पान और उत्तम पालन करने की इच्छा करने वाले, (अंगमाय) विद्या और संग्राम के पार जाने वाले, (अपश्चाद्-दध्वने) पीछे पैर न रखने वाले (जग्मये) आगे बढ़ने हारे, विज्ञानवान् वीर और (विदुषे) विद्वान् पुरुष के लिये (विश्वानि) सब प्रकार के पदार्थ (प्रति भर) ला ।

एमेनं प्रत्येतत्तु सोमेभिः सोमपातमम् ।

अमत्रेभिर्मृजीषिण्मिन्द्रै सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (एन) इस (क्रजीषिणम्) क्रज्जु, सरल, धर्म मार्ग पर प्रजाजन को चलाने में समर्थ, तथा क्रजीष, अर्थात् बल वाले (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता (सोमपातम्) उत्पन्न पुत्रवत् प्रजा तथा ऐश्वर्य के उत्तम पालक पुरुष को, (सुतेभिः) नाना पदों पर अभिपिक्त (इन्दुभिः) ऐश्वर्यवान्, दयाद्रौ हृदय (अमत्रेभिः) सहायकारी (सोमेभिः) सौभ्य गुण युक्त पुरुषों सहित (प्राति एतन) प्राप्त होवो ।

यदौ सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रति भूषथ ।

वेद विश्वस्य मेधिरो धृष्टत्वमिदेष्टते ॥ ३ ॥

भा०—(यदि) यदि आप लोग (सुतेभिः) उत्तम पदों पर अभिपिक्त (इन्दुभिः) दयाद्रौ, तेजस्वी (सोमेभिः) उत्तम शासकों, ऐश्वर्यों वा गुणों सहित उस राजा को (प्राति भूषथ) सुभूषित करे तो वह (मेधिरः) शत्रुओं का नाश करने में समर्थ, बुद्धिमान्, तथा अज्ञादि सम्पन्न पुरुष (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र को (वेद) जाने, और प्राप्त करे । वह (धृष्टत्व) शत्रुओं का पराजय करने हारा (तमःतम् इत्) आपके दिये उस २ ऐश्वर्यादि पदार्थ को (आ ईषते) आदरपूर्वक प्राप्त करे ।

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यों प्रभरा सुतम् ।

कुवित्सैमस्य जेन्यस्य शर्धत्रोऽभिशस्तेखस्परत् । ४ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अध्वर्यों) प्रजाजन की हिंसा न करने वाले प्रजापालक जन ! तू (अस्मे अस्मे) इस इस प्रजाजन के लिये (अन्धसः सुतम्) अज्ञ से उत्पन्न ऐश्वर्य को (प्रभर) अच्छी प्रकार धारण कर और (समस्य) समस्त (जेन्यस्य) विजय करने योग्य (शर्धतः) बलवान् शत्रु के (अभिशस्तः) शस्त्र प्रहार से (कुवित्) बहुत बार, बारबार भी (अव-

स्परत्) हमारी रक्षा कर। अथवा, हे (अध्यर्थों) अहिंसक राजन् ! तू (अस्मे अस्मे सुतम् प्रभर) उस २ नाना प्रजाजन के लिये उन्नम ऐश्वर्य अच्छी प्रकार प्राप्त कर। और (समस्य जेन्यस्म शर्धतः) समस्त विजय करने वाले (अभिशस्तेः) प्रशंसनीय बल को भी (अन्धसः) अन्न की (कुवित्) बहुत प्रकारों से (अवस्परत्) पालना कर। इति चतुर्दशी वर्गः ॥

[४३]

भरद्वाजो वाहस्पत्य कृपिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ चतुर्द्वं सूक्तम् ॥

यस्य त्यच्छ्रुम्बरुं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।
श्रयं स सोमं इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य मदे) जिसके हर्ष में (दिवः दासाय) ज्ञान और तेज के देने वाले प्रजाजन के उपकार के लिये तू (त्यत्) उस (शम्वरम्) मेघ के समान गर्जते शत्रु को (रन्धयः) वश करता है (सः अयम्) वह यह (सुतः) उत्पन्न हुआ (सोमः) बलवारक अन्नादि ओषधि रस के तुल्य ऐश्वर्य (ते) तेरे ही लिये है। तू (पिब) उसे पान वा पालन कर।

यस्य तीव्रसुतं मदं भध्यमन्तं च रक्षसे ।
श्रयं स सोमं इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यस्य) जिसके (तीव्र-सुतम्) तीव्र, वेग से कार्य करने वाले, अप्रमादी पुरुषों से शासित, (मदम्) हर्षदायक (मध्यम् अन्तम्) राष्ट्र के मध्य और सीमाप्रान्त की भी तू (रक्षसे) रक्षा करने में समर्थ है (अयंः सः सोमः) वह यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा प्रजाजन (ते सुतः) तेरे ही पुत्रवत् हैं। तेरे लिये ही वह (सुतः) अन्न वा ओषधि रसवत् तैयार वा अभिषेक किया गया है। तू उसका (पिब)

पुत्रवत् पालन कर वा, ओषधि अज्ञादिवत् उपभोग कर । उससे अपनी रक्षा और पोषण कर ।

यस्यु गा अन्तरश्मन्तो मदे द्वळहा अवासुजः ।

अयं स सोम॑ इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! (यस्य मदे) जिसके आनन्द, हर्ष के लिये (अश्मनः अन्तः) शश बल के भीतर (द्वळः) दृढ़तया सुरक्षित (गाः) भूमियों को तू (अवासुजः) अपने अधीन शासन करता है (अयं) यह (सः) वह (सोमः) ओषधि रसवत् ऐश्वर्य युक्त राज्य है (ते सुतः) तेरे लिये ही मुझे अभिषेक प्राप्त है । तू (पिब) उसका पालन और उपभोग कर ।

यस्य॑ मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिष्वे शवः ।

अयं स सोम॑ इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य) जिसके (अन्धसः) प्राण धारण करने वाले, अज्ञवत् पोषक राष्ट्र के बल पर (मन्दानः) तू अति हृष प्रसन्न होता हुआ, (माघोनं शवः) ऐश्वर्यवान् होने योग्य बल को (दधिष्वे) धारण करता है (अयं सः सोमः) यह वह ऐश्वर्यमय राष्ट्र (ते सुतः) तेरा पुत्रवत् है । तू (पिब) उसका पालन कर । इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[४४]

शयुर्बाह्यस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ अन्दः—१, ३, ४ निचृदनुष्टुप् ।
२, ५ स्वराङुष्णिक् । ६ आसुरी पंक्तिः । ७ भुरिक् पंक्तिः । ८ निचृत्पंक्तिः ।
९, १२, १६ पंक्तिः । १०, ११, १३, २२ विराट् त्रिष्टुप् । १४,
१५, १७, १८, २०, २४ निचृत्प्रिष्टुप् । १६, २१, २३ त्रिष्टुप् ॥
चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यो रथिवो रथिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १ ॥

भा०—हे (रथिवः) धन ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (स्वधा-पते) अज्ञ और धन धारण करने वाले बल के पालक ! (यः सोमः) जो ऐश्वर्य (ते) तेरा (रथिन्तमः) सबसे उत्तम और (द्युम्नैः) नाना प्रकार के धनों से (द्युम्नवत्तमः) अत्यंत समृद्ध है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सुतः) सम्भव (सः ते मदः अस्ति) वह तुझे आनन्द देने वाला हो ।

यः शुग्मस्तुविशम ते शायो द्राभा मतीनाम् ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शम) बहुत से सुखों से पूर्ण प्रभो ! राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शामः) शान्तिदायक, (सोमः) ऐश्वर्य, युक्त राष्ट्र (मतीनाम्) मननशील, बुद्धिमान् पुरुषों को (रायः द्राभा) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है हे (स्वधा-पते) है अज्ञपते ! वह सब राष्ट्रैश्वर्य (ते सुतः) तेरे लिये समृद्ध होकर (मदः अस्ति) तुझे हर्षदायक हो ।

येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वामिरुतिभिः ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिस के बल से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (शवसा) बल से (वृद्धः न) बड़े हुए के समान और जिस ऐश्वर्य से तू (स्वामिः उतिभिः) अपनी रक्षाकारिणी सेनाओं से (तुरः न) शत्रुओं को हिंसक के समान मारने वाला होता है हे (स्वधा-पते) स्वयं अपने ऐश्वर्य को धारण करने वाली शक्ति के पालक ! (सः सोमः) वह तेरा अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य वा राष्ट्रधन (सुतः) तुझे प्राप्त हो और वह (ते मदः अस्ति) तुझे अति हर्षदायक हो ।

त्यमु वो अप्रहरणं गृणीषे शवसुस्पतिम् ।

इन्द्रं विश्वासाहुं नरं मंहिष्टं विश्वचर्षणिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों को (त्यम् उ) उस (अप्रहरणं) अन्याय से किसी को भी दण्डित न करने वाले, (शव-सः पतिम्) समस्त सैन्य-बल और ज्ञान के पालक, (इन्द्रम्) दुष्टों के नाशक, तत्त्वदर्शी, (विश्वसाहम्) सब को पराजय करने वाले, (मंहिष्टः) अति दानशील, (विश्वचर्षणिं) समस्त जगत् के द्रष्टा, और समस्त मनु-प्यों के स्वामी (वरं) नेता, पुरुष, प्रभु को मैं (इन्द्रं गृणीषे) इन्द्र नाम से उपदेश करता हूं । वही सबका स्तुत्य, सर्वैश्वर्यवान् और आश्रय करने योग्य है ।

यं वृथ्यन्तीद्विरः पर्ति तुरस्य राधसः ।

तमिन्नवस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—(यं) जिसके (तुरस्य) शत्रुहिंसक सैन्य-बल और (राधसः) कार्यसाधक भृत्य वर्ग और ऐश्वर्य के (पतिम्) पालक पुरुष को (गिरः) स्तुति वाणियां वा उत्तम वाग्मी पुरुष (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान राजा प्रजा जन, तथा छी और पुरुष वर्ग दोनों (तत् इत् शुष्मं नु) उस ही शत्रुपोषक, बलशाली पुरुष की (सपर्यतः) सेवा करते हैं और (अस्य इत्) उसके ही (नु शु-ष्मं वर्धयन्ति) बल को नित्य बढ़ाया करते हैं । इति षोडशो वर्गः ॥

तद्व उक्थस्य वृह्णेऽन्द्रायोपस्तुर्णीषणि ।

विषो न यस्योतयो वि यद्रोहान्ति सुक्षितः ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य) जिस बलवान् पुरुष के (ऊतयः) रक्षा करने के साधन, शश-अश्व बल आदि उपाय (विषः) स्वयं ज्ञानवान् पुरुषों के समान ज्ञानपूर्वक चलते हैं और (यत्) जो (सक्षितः) एकही स्थान

पर रहकर (वि रोहन्ति) विशेष रूप से वृद्धि पाते हैं । (तत्) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रु नाशक स्वामी के (उक्थस्य) प्रशंसनीय बल के (बर्हणा) बढ़ने से ही (वः उंप-स्तृणीष्विणि) आप लोगों की भी उत्तम वचन योग्य, छत के समान रक्षक या उपस्तरण विछौने के समान सुखदायक हो ।

अविद्वद्वक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।

सूसूचान्तस्तौलाभिधूतरीभिरुरुप्या प्रायुरभवत्सखिभ्यः ॥५॥

भा०—(नवीयान्) सब से अधिक स्तुत्य पुरुष (पपानः) राष्ट्र का पालन करता हुआ (मित्रः) प्रजा को मरण से बचाने वाला और सबका स्नेही होकर (दक्षं अविद्वत्) बल प्राप्त करे और (वस्वः अचैत्) जाना धनों का सञ्चय करे । (वह ससवान्) उत्तम अन्न का स्वामी होकर (स्तौलाभिः धौतरीभिः) बड़ी २, शत्रुओं को कंपा देने वाली सेनाओं द्वारा (उरुप्या) प्रजा वा राष्ट्र की रक्षा करने की इच्छा से (सखिभ्यः) अपने मित्र वर्गों का भी (पायुः अभवत्) पालक हो ।

ऋतस्य पथि वेधा ऋपायि श्रिये मनांसि देवासौ अक्रन् ।

दधात्तो नामं मृहो वचोभिर्विपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥६॥

भा०—(ऋतस्य पथि) सत्य के मार्ग में रह कर (वेधाः) विधान करने में कुशल, विद्वान् न्यायपति (अपायि) राष्ट्र के स्वामी के समान पालन करे । और (देवासः) कामनाशील सभी मनुष्य (श्रिये) अपनी लक्ष्मी को प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये (मनांसि) अपने चित्त (अक्रन्) बनाये रखें । वे सदा उत्तम सम्पदा पाने और बढ़ाने की इच्छा करते रहें । (वेन्यः) कान्तिमान् तेजस्वी, राज्य और शासन बल की कामना करने हारा विजिगीपु पुरुष सूर्य के समान (महः वचोभिः) बड़े, उत्तम वचनों से (नाम दधानः) अपनी ख्याति धारण करता हुआ, (दशये) देखने

योग्य अपने (वपुः) सुन्दर रूप को सूर्यवत् ही (वि आवः) विशेष रूप से प्रगट करे ।

युमत्तम् दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
चर्षीयो वयः कृणुहि शर्चीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविद्धिः ॥१॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (अस्मे) हम में (युमत्तम्) उत्तम सेज, और विद्या प्रकाश से युक्त (दक्षं) बल (धेहि) धारण करा । और (जनानां) मनुष्यों के बीच में (पूर्वीः अरातीः) पूर्व की विद्यमान न देने की तुच्छ, कृपण आदतों को (सेध) दूर कर । और (शर्चीभिः) उत्तम बुद्धियों, शक्तियों तथा वाणियों द्वारा (चर्षीयः वयः) अति उत्तम, बहुत वर्षों तक स्थिर रहने वाला जीवन और बल (कृणुहि) कर, जिससे प्रजाएँ दीर्घायु हों । और (धनस्य) धन के (सातावै) न्यायपूर्वक विभाग करने के निमित्त तू (अस्मान् अविद्धि) हम में प्रवेश कर, हम पर अध्यक्ष होकर रह ।

इन्द्र तु भ्युमिन्मध्यवन्नभूम वृयं दात्रे हरिखो मा वि वेनः ।
नकिरांपिदैदृशे मर्त्यन्ना किमङ्ग रघुचोदनं त्वाहुः ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् ! धन के स्वामिन् ! (इन्द्र) हे शत्रुहन्तः ! (हरिखः) हे मनुष्यों के स्वामिन् ! (वयम्) हम लोग (तुभ्यम् इत्) तेरे ही हितैषी (अभूम्) हों । (तू दात्रे) दानशील पुरुष के लिये (मा वि वेनः) कभी विपरीत कामना मत कर । (मर्त्यन्ना) मनुष्यों में से कोई भी दूसरा (आपि) तुक्ष से अतिरिक्त बन्धु (नकि : दृशे) दिखाई नहीं देता । (किम् अङ्ग) हे स्वामिन् ! और क्या कहें ? (त्वा) तुक्षको सब विद्वान् जन (रघुचोदनं आहुः) अपने वशीभूत, अधीन व्यक्तियों को उत्तम शिक्षा देने वाला बतलाते हैं । इति सप्तदशो वर्णः ॥
मा जस्वने वृषभ नो ररीथां मा ते रेवतः सुख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र ज्ञिःषिधो जनेषु ज्ञासु व्युन्नपृणतः ॥ ११ ॥

भा०—(हे वृषभ) बलवान् पुरुष ! तू (नः) हमें (जस्वने) नाश कर देने वाले दुष्ट पुरुष के हाथ (मा ररीथाः) मत पढ़ने दे । (ते रेवतः) तुझ ऐश्वर्यवान् पुरुष के (सख्ये) मित्रभाव में रहते हुए हम लोग (मा रिखाम) कभी पीड़ित न हों, और न एक दूसरे का विनाश करें । (ननेषु) मनुष्यों में हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (पूर्वोः) पूर्व से चली आई, सनातन (निःषिधः) तुरे मार्ग से निषेध करने वाली मर्यादाओं को (ररीथाः) हमें बार २ बतला । (असुष्वीन्) जो ऐश्वर्य की वृद्धि और सवन, यज्ञ, उपासना, कर आदि दान, और स्नान तथा तेरा अभियेक न करने वाले जन हैं उनको (जहि) दण्डित कर । (अपृणतः) अपने सन्तानों को पालन पोषण न करने वाले तथा अपने वचन व्रत का पालन न करने वालों को (प्र वृह) उखाड़ डाल ।

उद्भ्राणीव स्तुनयन्नियुत्तीन्द्रो राधांस्यश्वानि गव्या ।

त्वमसि प्रदिवः क्रारुधाया मा त्वादामान् आ देभन्मधोनः॥१२॥

भा०—(इन्द्रः अश्राणि इव) जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् मेघों को गर्जता हुआ ऊपर उठाता है इसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (स्तुनयन्) गर्जता हुआ । (अश्वानि गव्यानि राधांसि) अश्वों, गौवों और भूमियों के धनों को (उत् इयर्ति) उच्चत करता है । हे राजन् ! (त्वम्) तू (कारुधायाः) विद्वानों और शिल्पियों का धारण, पोषण करने वाला (प्र-दिवः) सबके द्वारा कामना करने योग्य (असि) है । (अदामानः) अदानशील, बन्धनरहित, उच्छृंखल पुरुष (त्वा) तुझे और तेरे (मधोनः) राज्य में ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (मा दमन्) विनाश न करें ।

अध्वर्यो वीरं प्र महे सुतानामिन्द्राय भरं स ह्यस्य राजा ।

यः पूर्व्यामिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वीर्वृधे गृणतामृषीणाम् ॥१३॥

भा०—हे (अध्वर्यों) प्रजा का नाश करने वाले ! अहिंसक (वीर)

वीर पुरुष ! तू (महे) महान् (इन्द्रिय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (सुतानाम्) ऐश्वर्यों को अथवा उत्पन्न पुत्रों के समान राष्ट्र में उत्पन्न प्रजाओं को (प्रभर) अच्छी प्रकार धारण कर । (सः) वह तू (हि) निश्चय से (अस्व) इस राज्य और समस्त ऐश्वर्य का (राजा) राजा है । (यः) जो तू (पूर्णाभिः) पूर्व की (उत) और (नूतनाभिः) नवी २ (ऋषीणाम्) तत्वदर्शी (गृणताम्) उपदेष्टा पुरुषों की (गीर्भिः) वाणियों से (वृद्धे) अधिक वृद्धि प्राप्त करे ।

अस्य मदे पुरु वर्पासि विद्वानिन्द्रो वृत्रारायप्रती जघान ।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै॥१४॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः वृत्राणि जघान) सूर्य या विद्युत् मेघों को आघात करता है और (मदे) तुसिकारक, जल के आधार पर (पुरु वर्पासि करोति) ओषधि वनस्पतियों के नाना प्रकार के रूपों को उत्पन्न करता है और विद्वान् पुरुष उसी प्रकार (वीराय) विविध सुखों या जलों के दाता (शिप्रिणे) बलवान् के पान के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधुर पदार्थों से युक्त ओषधि समूह को अग्नि में आहुति करता है उसी प्रकार (विद्वान् इन्द्रः) ज्ञानवान् राजा (अस्य मदे) इस राष्ट्र के तुसिकारक हर्षजनक ऐश्वर्य या दमन-शासन के बल पर ही (वृत्राणि) विनाकारी समस्त शत्रुओं को (अप्रति) विना रोक के (जघान) नाश करे । और (पुरु वर्पासि) बहुतसे प्रजा के शरीरों की रक्षा करे । हे प्रजावर्ग तू (अस्मै) इस (शिप्रिणे) शुद्धित्वारी, समुख (वीराय) वीर पुरुष के (पिबध्यै) पान करने के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधु से युक्त ओषधि रस के समान (तम्) वह नाना अज्ञादि युक्त ऐश्वर्य (प्रहोषि) अच्छी प्रकार प्रदान कर ।

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता युजं परावतश्चिदच्छ्रुता वसुर्धीनामविता कारुधार्याः॥१५॥१८

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् और शत्रुहन्ता पुरुष ही (सुतं पाता) उत्पन्न हुए अज्ञ आदि ऐश्वर्य का भोक्ता तथा प्रजाओं का पुत्रवत् पालन-कर्ता (अस्तु) हो । वही (सोमं) उत्तम ऐश्वर्य का भोक्ता हो । वह (मनद-सानः) अति हृष्ट होकर (वज्रेण) शब्दवल से (वृत्रं) मेघ को सूर्यवत् अपने बढ़ते शत्रु को (हन्ता) नाश करने वाला हो । वह (परावतः चित्) दूर देश से भी (यज्ञं) यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों तथा पूज्य सत्संग योग्य पुरुष को (अच्छ गन्ता) प्राप्त होने वाला हो । वह (वसुः) प्रजा के वसाने हारा (काह-धायाः) विद्वानों और शिल्पियों का पोषण करने वाला होकर (धीनाम्) उत्तम ज्ञानों और उत्तम कर्म कौशलों वा धन्धों का भी (अविता) रक्षक हो । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

इदं त्यत्पात्रमिन्दुपानमिन्द्रस्य प्रियम्भूतमपायि ।

मत्सुद्यथा सौमनसाय देवं व्यः स्मद् द्वेषो युयवद्वयंहः ॥१६॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव का (इदं) यह शरीर ही (प्रियम्) प्रिय (इन्द्र-पानं पात्रम्) जीव और जीव को प्राप्त इन्द्रियादि भोगों के उपभोग का साधन है । इससे ही वह साधना करके (अमृतम् अपायि) अनृत मोक्ष रस का भी पान करता है और वह (देवं प्रति सौमनसाय मत्सत्) प्रभु परमेश्वर के प्रति शुभ चित्त रहने के लिये ही चाहता है उसी प्रकार (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य के स्वामी राजा का (इदं त्यत्) यह भी एक अन्तुत उत्तम (इन्द्र-पानम्) ऐश्वर्यपद की रक्षा करने वालों (पात्रं) पालक साधन है जिससे (प्रियम्) प्रीतिकारक (अमृतम्) अमृत तुल्य सुख (अपायि) प्राप्त किया जाता है । वह प्रजाजन (देवं) उस तेजस्वी पुरुष को (सौमनसाय) शुभ चित्त बनाये रखने के लिये (मत्सत्) सदा आनन्दित किया करे । वह राजा भी (अस्मत्) हम प्रजाजन से (द्वेषः) द्वेष भाव को (वियुयवत्) पृथक् करे और वह हम से (अंहः चि) पाप को भी दूर करे ।

एना मन्दानो जुहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मधवन्नमित्रान् ।

आभिषेण आभ्याऽदेदिशानान्परा च इन्द्रं प्र मृणा जुही च ॥१७॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! तू (मन्दानः) अति हर्षयुक्त, उत्साहवान् होकर (एना) पूर्व कहे राष्ट्रपालक बल से (शत्रून् जहि) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुषों को दण्डित कर । हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (जामिम्) अपने सम्बन्धी और (अजामिम्) सम्बन्ध रहित (अमित्रान्) स्नेह न करने वालों को तथा (अभिसेनान्) सेनारहित सामने आने वाले और (आ-देदिशानान्) समुख सेनाओं वा प्रजाओं पर आदेश चलाने वाले शत्रुओं को भी (परा जहि) दण्डित कर, दूर हटा । और हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! उनको (प्र मृण च) अच्छी प्रकार नाश कर और (प्र जहि च) खूब दण्ड दे, मार ।

आ सुष्मा रो मधवन्निन्द्रं पृत्स्वं स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।

आपां तोकस्य जेष इन्द्रं सूरीन्कृषुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥

भा०—हे (मधवन्) धन के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (नः) हमारी (आसु पृत्सु) इन संप्रामों में वा वीरजनों की सेनाओं के बल पर (भस्मभ्यं) हमारे सुख के लिये (महि) बहुत बड़ा (सुगं) सुख जान कर (वरिवः) धनैश्वर्य (कः) पैदा कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अपां) प्राप्त प्रजाओं के (तोकस्य तनयस्य) पुत्र पौत्र के सुख के लिये ही (जेष) विजय कर । और (नः) हमारे (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों को (अर्धं कृषुहि) समृद्धि प्रदान कर ।

आ त्वा हरयो वृष्णो युजाना वृष्णरश्मयोऽत्याः ।

आस्मत्राञ्चो वृष्णो वजुवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (वृष्णः) बलवान् उत्तम प्रबन्धकर्ता (हरयः) मनुष्य (वृष्णरश्मयः) बलवान् शत्रास्वर्षण कुशलरथ आदि

सैन्यों के स्वामी, महारथी, (वृष्णवर्षमयः) प्रबन्ध करने में समर्थ रहिमयों अर्थात् बागदोरों वाले उत्तम प्रबन्धक, नियम, मर्यादाओं से सम्पन्न, (अत्याः) सब से उत्तम, पुरुष अश्वों के समान हड़ (युज्जानः) तेरा सहयोग देने वाले (अस्मत्राञ्चः) हम लोगों में पूजनीय और (वज्रवाहः) खड़ को नित्य धारण करने वाले, (वृषणः) बलवान्, पुरुष भी (वृष्णे) बलकारक (मदाय) त्रृप्ति और हर्ष के लिये (सुयुजः) उत्तम मनोयोग देते हुए (त्वां वहन्तु) तुक्षको अपने ऊपर धारण करें ।

आ ते वृष्णवृष्णो द्रोणमस्थुर्धृतप्रप्तो नोर्मयो मदन्तः ।

इन्द्र प्रतुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृष्णभाय सोमम् २०।१९

भा०—हे (वृषन्) बलवन् ! (धृतप्रप्तः ऊर्मयः न) जल वर्षाने वाले जल तरंगों के समान (मदन्तः) अति हर्षित, उत्साहवान्, (वृषणः) मेघों के समान शास्त्रवर्धी, बलवान् (ते) तेरे बीर जन (द्रोणम्) रथ और राष्ट्र पर (आ अस्थुः) विराजें । और वे (वृषभिः) बलयुक्त सैन्यों से (सुतानां) उत्पन्न किये ऐश्वर्यों में से हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (तुभ्यं) तुक्ष (वृषभाय) सर्वश्रेष्ठ (वृष्णे) सुखों के दाता के लिये (सोमम् प्र भरन्ति) उत्तम ऐश्वर्य ग्रास करावें । इत्येकोनविंशतो वर्गः ॥

वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तिथानाम् ।
वृष्णे तु इन्दुर्वृषभं पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (दिवः वृषा असि) प्रकाश के वर्षाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी है । तू (पृथिव्याः वृषभः) पृथिवी का सर्वश्रेष्ठ पुरुष है । तू (सिन्धूनां वृषा) मेघवत् जलों का सेचन करने हारा है । तू (स्तिथानां वृषभः असि) संघ बना कर रहने वाली सेनाओं और प्रजाओं में सर्वश्रेष्ठ है । हे (वृषभ) सुखों की प्रजा पर मेघवत् वर्षा करने हारे (वृष्णे) बलवान् (वराय) श्रेष्ठ, वरण करने योग्य पुरुष

के पान करने के लिये यह (इन्दुः) ऐश्वर्य युक्त (स्वादुः) आनन्द-
दायक (मधुपेयः रसः) मधुर, शहद आदि के साथ मिलाकर खाने योग्य
रस, वर को मधुपर्क आदि के तुल्य ही आदरार्थ (ते पीपाय) तुझे
प्राप्त हो ।

अ॒यं दे॑वः सहस्रा जायमान् इन्द्रेण युजा परिम॑स्तभायत् ।

अ॒यं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मा॒याः ॥ २२ ॥

भा०—(अयं) यह (देवः) तेजस्ती, पुरुष (सहस्रा) अपने
बल से (जायमानः) प्रकट होकर (इन्द्रेण युजा) ऐश्वर्ययुक्त सहायक
के साथ मिलकर (पणिम्) स्तुल्य व्यवहार और व्यवहार कुशल प्रजावर्ग
को (अस्तभायत्) स्थिर करे, उसे शासन करे । और (अयं) वह
(इन्दुः) स्वयं आर्द्ध-हृदय एवं ऐश्वर्य युक्त चन्द्र के समान आह्नादक
होकर (स्वस्य पितुः) अपने पालक पिता के (आयुधानि) शस्त्रों अस्त्रों
को (अस्तभायत्) स्थिरता से धारण करे । और (अशिवस्य मायाः)
अमङ्गलजनक शत्रु के छल कपटयुक्त चालों को (अमुष्णात्) दूर करे ।

अ॒यम् कृणोदुषसः सुपत्नीरुयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरुन्तः ।

अ॒यं त्रिधातु दि॑वि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (उषसः अकृणोत्) तेजोयुक्त प्रभात
चेलाओं को प्रकट करता है उसी प्रकार (अयम्) यह तेजस्ती पुरुष
(उषसः) शत्रु को दग्ध करने में समर्थ सेनाओं को (सु-पत्नीः) राष्ट्र
की उत्तम पालक रूप से (अकृणोत्) तैयार करे । और वह (उषसः)
कान्ति और कामना से युक्त स्त्रियों को (सु-पत्नीः) उत्तम गृहपत्नी होने
का अधिकार दे । (सूर्ये अन्तः ज्योतिः) सूर्य के भीतर विद्यमान तेज के
समान प्रखर तेज को वह (अदधात्) धारण करे । और (अयं) वह
(त्रितेषु रोचनेषु) तीनों प्रकाशमान अग्नि, विद्युत्, सूर्य उनमें (निगूळं)
ऐस रूप से विद्यमान (त्रिधातु अमृतम्) तीनों तत्वों को धारण करने

बाले अमृत के समान (दिवि) पृथिवी में भी (त्रितेषु) उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों स्थानों पर शोभा देने वाले पुरुषों में (निर्गढं त्रिधातु अमृतं विन्दत्) छिपे तीनों प्रकार के प्रजाजन को धारण करने वाले अमृत-बल को प्राप्त करे ।

श्र्यं द्यावा पृथिवी वि ष्कभायदयं रथं मयुनकसुतरशिमम् ।

श्र्यं गोपु शच्यां पुकमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् २४।२०

भा०—(द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों को जिस प्रकार प्रभु परमेश्वर (वि ष्कभायत्) विविध प्रकार से थाम रहा है उसी प्रकार (अयम्) यह राजा भी (द्यावा पृथिवी) तेजस्वी पुरुषों और भूमि वासी अन्य प्रजाओं को (वि ष्कभायत्) विविध उपायों से वश करे । (सप्तरशिम रथम्) उसी प्रकार सात किरणों वाले सूर्य के समान सात रासों से युक्त रथ, वा सात प्रकृतियों से युक्त सर्व सुखप्रद राज्य को (अयुनक्) वश करे । (सोमः) सर्वोत्पादक प्रभु जैसे (शच्या) वाणी द्वारा (गोपु) वेदवाणियों के भीतर (पकम्) परिपक ज्ञान को (दाधार) धारण करता है और जिस प्रकार वह सर्वग्रेरक (दशयन्त्रम् उत्सम्) दश यन्त्रों से युक्त कूप के समान दशों दिशाओं से नियन्त्रित (उत्सम्) इस जगत् को धारण करता है उसी प्रकार (अयं) यह (सोमः) अभिषेक योग्य राजा (शच्या) अपनी शक्ति वा आज्ञा के बल पर (गोपु अन्तः) भूमियों के बीच (पकम्) पके धान्य को (दाधार) ग्रहण करे, और (दशयन्त्रम् उत्सम् दाधार) दश यन्त्रों से युक्त कूप आदि भी बनवावे । वा राष्ट्र को (दशयन्त्रम् उत्सम्) दश विद्वानों द्वारा नियन्त्रित उत्तम राष्ट्र को धारण करे । अध्यात्म में दश, यन्त्र उत्स, यह देह दश इन्द्रियगण से युक्त है । इसमें इन्द्र आत्मा है । इति विशो वर्गः॥

[४५]

शंयुर्वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ १—१० इन्द्रः । ३१—३३ ब्रुवस्तदा देवता ॥

बन्दः—१, २, ३, ८, १४, २०, २१, २२, २३, २४, २६, २०, ३२
गायत्री । ४, ७, ६, २०, ११, १२, १३, १५, १६, ३७, १८, १६,
२५, २६, २८ निचृदगायत्री । ५, ६, २७ विराह्गायत्री । ३१ आच्यु-
ष्णक् । ३३ अनुष्टुप् ॥ त्रयखिशशुद्धं सूक्तम् ॥

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।

इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (परावतः) दूर देश से भी (तुर्वशं यदुम्) हिंसक मनुष्यों को अथवा हिंसक सैन्यगण और यत्नशील प्रजावर्ग दोनों को, अथवा चारों पुरुषाथों को चाहने वाले यत्नशील प्रजावर्ग को (सुनीती) उत्तम नोति, न्याय से (आ अनयत्) अच्छी प्रकार सत्मार्ग से ले जाता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (युवा) बलवान् पुरुष (नः सखा) हमारा मित्र हो ।

श्विप्रे चिद्रयो दधृदनाशुना चिदवैता ।

इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ २ ॥

भा०—जो राजा (अविप्रे चित्) अविद्वान्, बालक आदि में भी (वयः चित्) उत्तम जीवन और ज्ञान (दधात्) धारण करता, और (अनाशुना अर्वता चित्) वेग से न जाने वाले अश्व सैन्य से भी (हितं धनं जेता) सुखकारी धन को विजय कर लेता है वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा होने योग्य है ।

महीरस्य प्रणीतयः पुर्वीतुत प्रशस्तयः ।

नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस राजा के ईश्वर के समान ही (महीः प्रणी-
तयः) बड़ी उत्तम २ नीतियें और (पूर्वीः) सनातन से चली आई देवो-
पदिष्ट (प्र-शस्तयः) उत्तम शासन विधान हों । (अस्य ऊतयः) उसके
अनेक रक्षा आदि के साधन कभी (न क्षीयन्ते) क्षीण न हों ।

सखायो ब्रह्मवाहसे अर्चत् प्र च गायत ।

स हि नः प्रमतिर्मही ॥ ४ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! आप लोग (ब्रह्म-वाहसे) वेद, ज्ञान को प्राप्त कराने वा धारण करने वाले विद्वान् वा प्रभु और धनैश्वर्य को प्राप्त करने या धारने वाले राजा की (प्र अर्चत) उत्तम रीति से सत्कार पूजा करो, और (प्र गायत च) उसकी उत्तम से उत्तम स्तुति प्रशंसा करो । (सः हि) वह ही (नः) हमारे बीच (मही) उत्तम वाणी और (प्र-मतिः) उत्तम बुद्धि को धारण करता है ।

त्वमेकस्य वृत्रहन्नाविता द्वयोरसि ।

उत्तेदशे यथा वृयम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) मेघ को सूर्यवत् शत्रु को हनन करने हारे राजन् ! (त्वम्) तू (एकस्य) एक का (उत) और (द्वयोः) दोनों का भी (अविता असि) रक्षक हो (उत) और (ईदशे) ऐसे अवसर पर भी रक्षक हो (यथा) जैसे (वयम्) हम तुम्हारे रक्षक होते हैं । इत्येक विशो वर्गः ॥

नयसीद्विद्विषः कृणोष्णुकथशंसिनः ।

नृभिः सुवीरं उच्यसे ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! तू प्रजाजन को (द्विषः अति नयसि) शत्रुओं तथा अन्य संकटों से भी पार अवश्य पहुंचाता है । तू (द्विषः उकथ-शंसिनः कृणोषि) द्वेषयुक्त जनों को भी उत्तम वचन कहने वाला बनाता है । तेरे गुणगण से मुर्ख होकर शत्रु जन भी तेरी स्तुति करें । तू (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (सु-वीरः) उत्तम वीर और चिचिध विद्याओं का उपदेष्टा (उच्यसे) कहा जाता है ।

ब्रह्माण्डं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् ।

गां न दोहसे हुवे ॥ ७ ॥

भा०—(दोहसे गां न) दूध दोहने के लिये जिस प्रकार गौ को प्रेम से बुलाते हैं उसी प्रकार मैं (ब्रह्म-वाहसं) वेद ज्ञान को धारण करने वाले (ऋग्मयं) ऋचाओं के वेत्ता, स्तुतियों के योग्य पात्र, (सखायं) सब के मित्र रूप, (ब्रह्माणं) बड़े वेदज्ञ विद्वान् पुरुष को (दोहसे) ज्ञान-रस प्राप्त करने के लिये (हुवे) आदर से बुलाऊं ।

यस्यु विश्वानि हस्तयोरुचुर्वसूनि नि द्विता ।
वीरस्य पृतनासहः ॥ ८ ॥

भा०—(यस्य) जिस (वीरस्य) विविध विद्या के उपदेष्टा तथा विविध प्रजाओं के आज्ञापक (पृतनासहः) शत्रुओं को पराजय करने वाले वीर के (हस्तयोः) हाथों में (विश्वानि वसूनि) समस्त ऐश्वर्य (नि ऊचुः) बतलाते हैं (तस्य द्विता) उस पुरुष के प्रति माता पिता, और गुरु दोनों प्रकार का भाव विद्यमान रहे ।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ रघु० ॥

वि द्वल्हानि चिददिवो जनानां शर्चीपते ।
वृह माया अनानत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वज्रधर ! हे (शर्चीपते) शक्ति, वाणी के पालक ! हे (अनानत) शत्रुजन के आगे कभी न झुकने हारे ! तू (जनानां) शत्रु लोगों को (द्वानि) दढ़दुर्गों और सैन्यों को तथा (मायाः) छल कपट के व्यवहारों को भी (वि वृह) उन्मूलन कर ।

तमुं त्वा सत्यं सोमपा इन्द्रं वाजानां पते ।
अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (सत्य) सज्जनों में सर्वश्रेष्ठ, सत्यभाषण आदि व्यवहार करने हारे ! हे (सोमपाः) ओषधिरस का पान करनेवाले, ऐश्वर्य,

रात्रि प्रजा को प्रजा वा शिष्यवत् पालन करने वाले ! हे (वाजानां पते) बलों, ज्ञानों, अक्षों और संग्रामों के पालक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रु-हन्तः ! हम लोग (श्रवस्यवः) यश, अक्ष, उपदेश आदि के इच्छुक जन (त्वा तम् उ) उस तुक्ष को ही (अहूमहि) पुकारते हैं, तुक्ष से विनय करते, तेरी स्तुति करते हैं । इति द्वार्विशो वर्गः ॥

तसु त्वा यः पुरासिथ यो वा नुनं हिते धने ।

हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो तू (पुरा) पहले भी (हव्यः आसिथ) स्तुति योग्य रहा, (यः वा) और जो तू (नुनं) अब भी (हिते धने) हितकारी धन, ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर भी (हव्यः) प्रजाओं के स्तुति-योग्य है (सः) वह तू (हवं श्रुधिं) हमारी स्तुति प्रार्थना को सुन ।

धीभिर्वाङ्गिर्वैतो वाजां इन्द्र श्रवाय्यान् ।

त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से (धीभिः) उत्तम कर्मों और बुद्धियों द्वारा (अर्वाङ्गिः) अपने शत्रु-नाशक वीरपुरुषों और अश्वों से (अर्वतः) शत्रु के वीरों, अश्वों तथा (श्रवाय्यान्) अति प्रसिद्ध, (वाजान्) संग्रामों और ऐश्वर्यों को तथा (हितं धनम्) हितकारी धन को (जेष्म) विजय करें ।

आभूरु वीर गिर्वणे मङ्हां इन्द्रु धने हिते ।

भरे वितन्त्साययः ॥ १३ ॥

भा०—हे (वीर) वीर पुरुष ! हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हिते धने) हितकारी, सुख-जनक धन प्राप्त करने के निमित्त (भरे) संग्राम और प्रजाओं के भरण वोषण के कार्य में (वितन्त्साययः) सबका विजय करने हारा है ।

या तं ऊतिर्मित्रहन्मङ्गजवस्तुमासति ।
तया नो हिनुही रथम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (अमित्र-हन्) शत्रुओं को दण्डित करने वाले ! (या) जो (ते) तेरी (मक्षु जवस्तमा ऊतिः) अतिशीघ्र वेग से युक्त, गति, रक्षण, ज्ञान आदि क्रिया (असति) हैं (तया) उससे तू (नः) हमारा (रथम्) रथ के तुल्य सबको सुख देने वाले राष्ट्र को (हिनुहि) प्रेरित कर ।

स रथेन रथीतं मोऽस्माकेनाभियुग्मना ।
जेविं जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (जिष्णो) विजय करने हारे ! तू (रथीतमः) सर्वश्रेष्ठ महारथी होकर (अस्माकेन) हमारे (अभियुग्मना) शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ (रथेन) रथ सैन्य से (हितं धनं जेषि) सुखकर धन को उत्तम रीति से प्राप्त कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

य एक इत्तमु पुहि कृष्णीनां विचर्षणिः ।

पतिर्ज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (यः) जो (एकः इत्) अकेला ही अन्य की विना सहायता के (कृष्णीनां विचर्षणिः) कृषियों को देखने वाले किसान के समान (कृष्णीनां) समस्त प्रजाओं का (विचर्षणिः) विवेष रूप से देखनेवाला और उनको विविध प्रकार से अपनी ओर आकर्षण करने वाला होकर (वृषक्रतुः) बलवती प्रज्ञा और बलयुक्त कर्म वाला, (पतिः) सब का पालक (जज्ञे) प्रकट वा प्रसिद्ध हो (तम् उस्तुहि) तू उसकी ही स्तुति कर ।

यो गृणतासिदासिथापिरुती शिवः सखा ।

स त्वं न इच्छ मृलय ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो त् (गृणताम् इत्) अन्यों का उपदेश करने वाले विद्वानों तथा स्तुतिशील पुरुषों का (आपि: इत्) वास्तव बन्धु (आस्थित) हो और (ऊती) उत्तम रक्षा और ज्ञान से (शिवः) कल्याणकारक (सखा) परम मित्र हो (सः) वह (चं) आप (नः मृडय) हमें सुखी करो ।

चित्त्व वज्ञं गमस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः ।

सासुहीष्टा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥

भा०—हे (वज्रिवः) वज्र अर्थात् शख्स वा शशु के वर्जन करने वाले वलों से युक्त पुरुषों के स्वामिन् ! त् (रक्षो-हत्याय) दुष्ट पुरुषों के नाश करने के लिये (गमस्त्योः) बाहुओं में (वज्रं चित्त्व) शख्सवत् बल वीर्य को धारण कर । और (स्पृधः) स्पृधा करने वाली शत्रुसेनाओं को (अभि सहस्रिष्ठाः) मुकावले पर पराजित कर ।

प्रत्नं रथीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् ।

ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९ ॥

भा०—मैं (रथीणां युजं) धनों और बलों के दाता, (प्रत्नं) पुराने, वृद्ध, (सखायं) मित्र, (कीरि-चोदनम्) विद्यार्थियों और स्तुतिकर्त्ताओं को उपदेश करने वाले (ब्रह्मवाहः-तमम्) सबसे उत्तम वेद विज्ञान वा धन को धारण एवं प्राप्त कराने वाले आप की (हुवे) आदरपूर्वक प्रार्थना करुं ।

स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसृनि पत्यते ।

गिर्वाणस्तम्भो अधिगुः ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(सः हि) वह ही (एकः) अकेला, अद्वितीय, (विश्वा पार्थिवा) समस्त पृथिवी के (वसृनि) ऐश्वर्यों को (पत्यते) प्राप्त होता और उन पर स्वामित्व करता है और वही (गिर्वाणः-तमः) सबसे अधिक

प्रशंसनीय और (अधिगुः) वे रोक जाने वाला, तथा सत्य गति वाला होता है । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

स नौ नियुक्तिरा पृण कामं वाजेभित्तिवभिः ।

गोमद्विगांपते धृषत् ॥ २१ ॥

भा०—हे (गोपते) वाणियों के पालक विद्वन् ! पृथ्वी के पालक राजन् ! इन्द्रियों के पालक जिवेन्द्रिय ! गवादि पशुओं के पालक वैद्य वर्ग ! तुम (धृषत्) प्रगल्भ होकर (नियुक्तिः) अपने अधीन नियुक्त अश्वादि सैन्यों से, (वाजेभिः) बलों, वीर्यों, वेगयुक्त संग्रामों और ज्ञान अज्ञादि से और (अश्विभिः) बलवान् वीरों से (गोमद्विः) वाणी और भूमि के स्वामी विद्वानों और भूमि वालों से (सः) वह तू (नः) हमारे (कामम् आष्टुन) मनोरथ को पूर्ण कर ।

तद्वौ गाय सुते सच्चा पुरुहूताय सत्वने ।

शं यद्वेन न शक्निने ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः सुते) आप लोगों के उत्पन्न इस जगत् में वा अज्ञ, धन, पुत्र, ऐश्वर्यादि के प्राप्त होने पर आप (सच्चा) सब एक साथ मिलकर (तत्) उस (सत्वने) सत्ववान्, बलवान्, शुद्ध अन्तःकरण वाले (पुरुहूताय) बहुतों से प्रशंसित, (गवेन शाक्निने) बड़े बैल के समान शक्तिमान् सर्वव्यापक, ज्ञानी की (गाय) स्तुति करो । (यत्) जो (शं) तुम्हें शान्ति प्रदान करे ।

न धा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।

यत्स्त्रिमुप श्रवद् गिरः ॥ २३ ॥

भा०—(यत् वसुः) जो गुरु के अधीन अन्तेवासी होकर (सीम) सबसे (गिरः उप श्रवत्) वेदवाणियों का श्रवण करे । वह (गोमतः वाजस्य) वाणी युक्त ज्ञान का (दानं न घ नि यमते) शिष्यों में दान देना न रोके । प्रत्युत शिष्यों को ज्ञान दिया करे । इसी प्रकार (यत्

सीम् गिरः उपश्चवत्) जो राजा वा ऐश्वर्यवान् पुरुष सबसे अपने विषय में उत्तम स्तुतियां सुने वह (वसुः) प्रजा का बसाने हारा, (गोमतः वाजस्य दानं न घ नि यमते) उत्तम सत्कार योग्य वाणी से युक्त ऐश्वर्य के दान को कभी न रोके ।

**कुवित्सस्य प्र हि ब्रुजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शर्चीभिरप्पं नो वरत् ॥ २४ ॥**

भा०—(यः) जो (दस्युहा) दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाला ग्रबल राजा (कुवित्सस्य) बहुत से विवेकपूर्वक धन विभाग वा न्याय करने वाले अति विवेकी पुरुष के (गोमन्तं ब्रजं) वाणी से युक्त उत्तम मार्ग को (प्र गमत्) अच्छी प्रकार जाता है वह सत्-मार्गगामी राजा ही (नः) हमें (शर्चीभिः) उत्तम वाणियों, प्रज्ञाओं और शक्तियों से (अप वरत्) हमारे कष्ट दूर करता हुआ हमें अपनावे ।

इमा उ त्वा शतकतोऽभि प्रणोद्गुर्भिरः ।

इन्द्र वृत्सं न मातरः ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—(मातरः वृत्सं न) माताएं जिस प्रकार अपने वृत्स को देख कर हंभारती हैं उसी प्रकार हे (शतकतो) अनन्त प्रज्ञाओं से से सम्पन्न ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः मातरः) उत्तम ज्ञान करने वाले (गिरः) उत्तम उपदेष्टाजन, वा उनकी वाणियां (त्वा उ अभि प्र नोनवुः) तेरी ही स्तुति करती हैं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

दुणाशं सुख्यं तवू गौरसि वीर गव्युते ।

अश्वो अश्वायुते भव ॥ २६ ॥

भा०—हे (वीर) विविध विद्याओं के उपदेष्टः ! विद्वन् ! और हे विविध प्रकारों से शत्रुओं को कंपाने हारे वीर पुरुष ! (तव सख्यं) तेरी मित्रता (दूनाशं) कभी नाश न होने वाली हो । तू (गव्युते गौः असि) गौ, भूमि, उत्तम वाणी को चाहने वाले के लिये गौ, भूमि, वाणियों के

समान ही, पुष्टिकारक अन्नवत् और आह्नाद देने वाला हो । और (अश्वायते अश्वः भव) वेगवान् अश्व आदि के चाहने वाले के लिये तू स्वयं अश्व के समान संकट से पार करने में समर्थ हो ।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तुन्वा महे ।

न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (सः) वह आप (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (तन्वा) शरीर से (अन्धसः मन्दस्व) अन्न के द्वारा अति प्रसन्न रह और अन्यों को भी (तन्वा अन्धसः मन्दस्व) देह के निमित्त अन्न से ही तृप्त कर । (स्तोतारं) उत्तम ज्ञानोपदेश पुरुष को (निदे न करः) निन्दकं पुरुष के अधीन मत कर ।

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।

बृत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) विद्यायुक्त वाणियों से प्रशंसनीय, एवं उनका सेवन करने हारे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (धेनवः गावः बृत्सं न) दूध देने वाली गौएं जिस प्रकार अपने बछड़े को बड़े प्रेम से प्राप्त करती हैं उसी प्रकार (इमाः गिरः) ये उत्तम वाणियें (सुते-सुते) जब २ और जहाँ भी जगत् उत्पन्न होता है वहां वा, प्रत्येक ऐश्वर्य के उत्पन्न होने पर (त्वा उ नक्षन्ते) तुझे ही प्राप्त होती हैं । अर्थात् तब २ तू ही स्तुतियों और विद्याओं का भाजन होता है ।

पुरुतमं पुरुणां स्तोतृणां विवाचि ।

वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (वाजेभिः) ज्ञानों, ऐश्वर्यों और बलों द्वारा (वाजयताम्) बल, ऐश्वर्य और ज्ञानों को प्राप्ति करने के इच्छुक (पुरुणां स्तोतृणां) बहुत से विद्वान् पुरुषों के (विवाचि) विविध प्रकार के वाग्

व्यापार होने के अवसर में (गिरः त्वाः नक्षन्ते) नाना उत्तम वाणियां
तुल्य ही प्राप्त हों ।

श्रस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।

श्रस्मानान्ये मृहे हिनु ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! प्रभो ! विद्वन् ! (अस्मा-
कम्) हमारा (वाहिष्ठः) उत्तम कार्य वहन करने में समर्थ, (स्तोमः)
स्तुति योग्य व्यवहार (अन्तमः) तेरे अति समीपतम होकर (ते भूतु)
तेरी वृद्धि के लिये हो । इसी प्रकार (ते स्तोमः अस्माकम् अन्तमः वा-
हिष्ठः भूतु) तेरा स्तुति योग्य उपदेश, बल आदि द्वारा अति निकटतम
उच्चतिप्रापक हो । तू (अस्मान्) हमें (महे राये हिनु) बड़े भारी
ऐश्वर्य की वृद्धि और प्राप्ति के लिये आगे बढ़ा ।

अधि वृत्तुः प॒णीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्तस्थात् ।

उरुः कच्छो न गङ्गयः ॥ ३१ ॥

भा०—(पणीनां) विद्वान् पुरुषों के बीच में (वृत्तुः) संशयों का
उच्छेदन करने वाला विद्वान् और (पणीनां) व्यवहारज्ञ व्यापारी पुरुषों
के बीच में (वृत्तुः) काट २ कर नये पदार्थ बनाने वाला शिल्पी तथा
शत्रुओं का उच्छेदक वीर पुरुष (गाङ्गयः कक्षः न) वेगवती नदी के तट
के समान (वर्षिष्ठे मूर्धन्) दानशील, सर्वोच्च, महान्, शिरोवत् उच्चत
पद पर (उरुः) महान् होकर (अधि अस्थात्) प्रतिष्ठित हो ।

यस्य त्रायोरिच्च डुवङ्गद्रा रातिः सहस्रिणी ।

सुद्यो दानायु मंहते ॥ ३२ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस की (सहस्रिणी) सहस्रों
ऐश्वर्य युक्त सुखों वाली (भद्रा रातिः) कल्याणमय दान किया (त्रायोः
इव) वायु की शीतल धारा के समान (सुद्यः) अति शीघ्र (दानाय)
दान देने के लिये (मंहते) बढ़ती है (सः ऊरुः गाङ्गयः कक्षः न मूर्धन्

अधि स्थात्) वह दुःख संकरों का काटने वाला महापुरुष नदी के ऊंचे तट के समान सबके शिरपर विराजता है ।

तत्सु नो विश्वे अर्थ आ सदा गृणन्ति कारवः ।

बृं सहस्रदातम् सूरि सहस्रसातम् ॥ ३३ ॥ २६ ॥

भा०—(तत् वः) वह ही हमारा (आर्थः) उत्तम स्वामी होने योग्य है जिस (बृं) शत्रुनाशक, संशय, संकट काटने वाले (सहस्र-दातम्) हजारों के देने वाले और (सहस्र-सातम्) सहस्रों के विभाग करने वाले को (विश्वे कारवः सदा आगृणन्ति) समस्त विद्वान् जन नित्य आदर से स्तुति करते हैं । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[४६]

शंयुर्बाहैस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रः प्रगाथं वा देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्ठप् ।
५,७ स्वराडनुष्ठप् । २ स्वराड्बृहती । ३,४ मुरिग्बृहती । ८,६ विराड्बृहती ।
११ निचृद्बृहती । १३ बृहती । ६ ब्राह्मी गायत्री । १० पांकिः । १२,१४
विराट् पांकिः ॥ चतुर्दशाचं सूक्तम् ॥

त्वामिञ्चि हवामहे स्राता वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पत्ति नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (कारवः) विद्वान् और शिल्पीजन, (वाजस्य साता) धन और बल के प्राप्त करने के लिये (त्वाम् इत् हि हवामहे) तुक्ष को ही आदर से पुकारते एवं तेरा आश्रय ग्रहण करते हैं । (वृत्रेषु) विघ्नकारी शत्रुओं के बीच में भी (सत्पत्ति त्वाम्) सत्पुरुहों के पालक तुक्षको ही पुकारते हैं । और (नरः) नायक पुरुष भी (अर्वतः काष्ठासु) अश्वों को दूर दिशाओं के देशों तक पहुंचाने के लिये सारथि के समान अध्यक्ष तुक्षको ही प्राप्त करें ।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मृहः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्दु सं किं सुत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्रबल को अपने हाथ अर्थात् वश में रखने वाले ! हे (अद्रिवः) मेघ वा पर्वत के समान शस्त्रवर्षी और अचल वीरों के स्वामिन् ! हे (चित्र) आश्चर्यबलयुक्त ! तू (धृष्णुया) प्रगल्भ वाणी से (महः) उत्तम, २ (स्तवानः) हमें उपदेश और आदेश करता हुआ (जिग्युषे) विजयशील, पुरुष के लिये (वाजं) वेगयुक्त अध, और पारितोषिक रूप से ऐश्वर्यादि के समान (नः) हमें भी (गाम्) गौ, भूमि, (रथ्यम्) रथ योग्य अश्व को (सत्रा) सदा, सत्य ज्ञान वा न्याय से (सं किर) अच्छी प्रकार चला और हमें प्रदान कर ।

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।

सहस्रमुष्क तुविनृग्नं सत्पते भवा समत्सु नोवृधे ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (सत्राहा) सब दिनों, वा (सत्राहा) सत्य बल से शत्रुओं का नाश करने में समर्थ, (विचर्षणः) विश्व का विविध प्रकार से द्रष्टा है (वयम्) हम (तम्) उसको (इन्द्रं हूमहे) 'इन्द्र' नाम से पुकारते हैं । और उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् को अपनी रक्षा के लिये पुकारें । हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! हे (तुविनृग्नं) बहुत से धनों के स्वामिन् ! हे (सहस्र-मुष्क) सहस्रों को पुष्ट करने वाले ! और असंख्य वीरों, बलों से युक्त ! तू (समत्सु) संग्रामों के अवसरों पर (नः वृधे भव) हमारी वृद्धि के लिये हो ।

वाधस्ते जनान्वृपमेव मन्युना धृषौ मीढ्हह ऋचीषम ।

अस्माकं वोध्यविता महाधने तनूप्तसु स्त्रैः ॥४॥

भा०—(ऋचीषम) हे सुति-अनुरूप गुण कर्मों और स्वभाव वाले !

राजन् ! वेद मन्त्रों में बतलाये गुणों धर्मों के अनुरूप भगवन् ! (घृष्णौ) धर्षण और (मीढे) वर्षणकाल में (वृषभा इव) जिस प्रकार मेघों को विद्युत् (वाधते) पीड़ित करता है उसी प्रकार तू भी (घृष्णौ) परस्पर संधर्ष, प्रतिस्पर्धा के अवसर तथा । (मीढे) शत्रु पर निरन्तर बाणवर्षा तथा प्रजा पर निरन्तर ऐश्वर्यों की वर्षा तथा भूमियों पर जल सेचनादि के निमित्त (मनुना) क्रोध, और ज्ञानपूर्वक (वृषभा इव जनान्) मेघ तुल्य जरवरी एवं बलवान् साँडों के समान इदं नरपुंगवों को भी (बाधसे) तू पीड़ित वा दण्डित करने में समर्थ है । हे राजन् ! हे प्रभो ! तू (महाधने) बड़े ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त होने वाले संग्राम के अवसर में (तन्मुषु) प्रजाओं के शरीरों, (अप्सु) प्राणों और (सूर्ये) सूर्य में क्रम से आत्मा, जीवन और प्रकाश वा प्रताप के तुल्य होकर (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक और ज्ञानदाता होकर हमें (बोधि) ज्ञानवान् कर, हमें चेता ।
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरुं ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।

येन्मे चित्र वज्रदस्त् रोदसी ओमे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) बल वीर्य को बाहु में धारण करने हारे ! हे (चित्र) आश्र्वयजनक कार्य करने हारे ! हे (सुशिप्र) सुन्दर मुख नासिका एवं उत्तम मुकुट धारण करने हारे ! (येन) जिससे तू (इमे) इन दोनों (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् परस्पर सम्बद्ध राजवर्ग या खी पुरुषों को (आ प्राः) सब ओर से परिपूर्ण कर सके, तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें वही ((ज्येष्ठ) अत्यन्त अधिक, सर्वोच्चम (ओजिष्ठं) अति बलकारी, (पपुरि) नित्य तृप्त और पूर्ण करने वाला, (श्रवः) अज्ञ और ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।

विश्वा सु नो विथुरा विद्वना वस्त्रोऽमित्रान्तसुषहान्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! (देवेषु) विद्वानों और विजय की कामना करने वालों के बीच में (चर्षणी-सहम्) समस्त मनुष्यों को पराजय करने वाले (उग्रं त्वाम्) बलवान् तुश्मको (हूमहे) हम पुकारते हैं । तू (नः) हमें (विशुरा) पीड़ा देने वाले (पिवदना) पीस कर नष्ट कर देने योग्य वा, न समझ में आने वाली, अप्रकट या कृष्ट भाषा बोलने वाले, अपने से भिन्न भाषा-भाषी, (अमित्रान्) शत्रुओं को तू (नः) हमारे लिये (सुसहान् कृषि) सुगमता से विजय करने योग्य कर ।

यदिन्द्रं नाहुषीष्वाँ ओजो नुग्णं च कृषिषु ।

यद्वा पञ्चं क्षितीनां द्युम्नमा भर सुत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नाहुषीषु कृषिषु) मनुष्य प्रजाओं में (यत् ओजः नुग्णं च) जो बल पराक्रम और धनैश्वर्य है और (यत्) जो भी (पञ्च-क्षितीनां द्युम्नं) पांचों प्रकार की राष्ट्रवासिनी प्रजाओं वा भूमियों का तेज और ऐश्वर्य है और (सत्रा) सत्य (विश्वानि पौंस्या) सब प्रकार के पुरुषार्थोंपदोगी बल हैं उन सबको (आ भर) तू स्वयं ग्रास कर और हमें भी ग्रास करा ।

यद्वा तृक्षौ मधवन्दुह्यावा जने यत्पूरौ कञ्च वृष्ण्यम् ।

अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वर्णे ॥ ८ ॥

भा०—(यत् वा कत् च) जो कोई भी (वृष्ण्यम्) बल (तृक्षौ जने) बलवान् मनुष्यों में (द्युह्यौ वा जने) परस्पर द्रोह करने वाले मनुष्यों में वा जो बल (पूरौ वा जने) एक दूसरे का पालन करने वाले पुरुषों में हो, हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् ! (तत्) वह बल तू (अमित्रान् तुर्वर्णे) शत्रुओं को नाश करने के लिये और (नृषाह्ये) मनुष्यों को वश करने के निमित्त और (पृत्सु) संग्रामों के अवसरों पर (अस्मभ्यं) हमें (सं रिरीहि) अच्छी प्रकार दे ।

इन्द्रं त्रिधातुं शरणं त्रिवरुथं स्वस्तिमत् ।

छुर्दीर्यैच्छु मधवङ्गद्यश्च महां च युवयाऽदिद्युमेभ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र ऐश्वर्यवन्) आप (मधवद्यः) ऐश्वर्यवान् धनाख्यों और (महां च) मेरे लिये भी (त्रिधातु) तीन धातु, सुवर्ण, रजत, लोह आदि से युक्त (त्रिवरुथं) तीनों क्रतुओं में वरणीय, तीनों प्रकार के कष्टों के वारक, (स्वस्तिमत्) सुख, मंगलयुक्त (शरणम्) शरण देने वाले, आश्रय योग्य (छुर्दिः) वर (प्रयच्छ) प्रदान कर । (एभ्यः) इन प्रजाजनों के हितार्थ (दिद्युम् यवय) ज्ञान, प्रकाश प्राप्त कराओ और दीप्तियुक्त शशादि दूर करो ।

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघनन्ति धृष्णुया ।

अधं स्मानो मधवन्निन्द्र गिर्वणस्तनुपा अन्तमो भव ॥ १०।२८॥

भा०—हे (गिर्वणः) उत्तम वाणियों के सेवन करने हारे ! (मधवन्) ऐश्वर्यवन् (ये) जो लोग (गव्यता मनसा) भूमि की इच्छा वाले मन से (शत्रुम्) शत्रु को (धृष्णुया) दृढ़ और प्रगल्भ होकर (आदभुः) विनाश करते और (अभि प्रघन्ति) सब प्रकार से दण्डित करते हैं, हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हम लोगों के तू सदा (तनूपाः) शरीरों का रक्षक और (अन्तमः) सदा निकटवर्ती (भव) हो । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अधं स्मा नो वृधे भुवेन्द्रं नायमेवा युधि ।

यदन्तरिक्षे पृतयन्ति प्राणिनो दिद्यवस्तिगमसूर्धानः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवर्धक ! (अध) और तू (नः) हमारे (वृधे) वृद्धि के लिये (भवत्य) सदा यत्त्वान् होकर रह । और (युधि) युद्धकाल में (तत्) जब कि (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष, आकाश में (पर्णिनः) पंखों से जड़े (तिग्म-मूर्धानः)

तीक्ष्ण सिरों से युक्त (दिद्युवः) बाण (पतयन्ति) पड़ रहे हों तब (अब) रक्षा कर । वा तेजस्वी अन्तरिक्ष से (पर्णिनः) अन्तरिक्ष में पक्षियों के समान (दिद्यवः) तीक्ष्ण (तिग्म-मूर्धानः) तीक्ष्ण शिर के टोप पहने, (युधि पतयन्ति) युद्ध में दौड़ रहे हों तब भी (नः नायम् अब) हमारे नायक की रक्षा कर ।

यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितृणाम् ।

अध्य स्मा यच्छु तन्वेऽतने च छुर्दिरुचित्तं यावय द्वेषः ॥ १२ ॥

भा०—(यत्र) जहां (शूरासः) शूरवीर पुरुष (पितृणाम्) अपने पालक माता पिता और गुरुओं के (तन्वः) शरीर के सुख के (प्रिया शर्म) प्रिय गृहादि सुखकारक पदार्थों का (वि तन्वते) विस्तास करते हैं ऐसे राष्ट्र में हे राजन् ! विद्वन् ! (अध स्म) आप भी हमारे (तन्वे तने) शरीर और पुत्र आदि विस्तृत कुल के निमित्त (छुर्दिः यच्छु) उत्तम गृह प्रदान कर । और (अचित्तं द्वेषः यवय) चित्त रहित, निर्दयता युक्त वा अज्ञान से युक्त द्वेष को दूर करो ।

यदिन्दुसर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।

शुभमने अध्यन्ति वृजिने प्रथि श्येनाँ इव श्रवस्युतः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुनाशक ! (यत्र) जब (सर्गे) करने योग्य वा प्रयाण करने योग्य (महाधने) संग्राम में और (असमने) विषम, वा संग्राम से भिन्न अवसर में भी (वृजिने) बल-युक्त सैन्य और (पथि लक्ष्वनि) गमन करने योग्य मार्ग में (श्येनान् इव) वाजों के समान अति वेगवान् (श्रवस्युतः) यश के अभिलाषी (अर्वतः) अवसरों को (चोदयासे) अपनी आज्ञा पर चलाता है, वह तू हमें सदा शरण दे ।

सिन्धूरिव प्रवण आशुया युतो यदि क्लोशमनु ष्वर्णि ।

आ ये वयो न वर्वृत्याभिषि गृभीता ब्राह्मोर्गविं ॥ १४ ॥ २९ ॥

भा०—(प्रवणे सिन्धून् इव) जिस प्रकार नीचे प्रदेश में नदियाँ बहती हैं और जिस प्रकार (स्वनि क्रोशम् अनु वयः न) खटका होनेपर भय पाकर पक्षिगण वेग से भागते हैं (बाह्मोः गृभीताः गवि आभिषि वयः न) बाहुओं में संकुचित हुए पक्षीगण मृत गौ के मांस के निमित्त वेग से झपटते हैं उसी प्रकार (आशुया) वेग से युक्त (स्वनि) नायक की आवाज़ पर (क्रोशम् अनु) कोस पर कोस, वा शत्रु या मित्र के आह्वान के साथ २ (यतः) जाते हुए (सिन्धून्) वेगवान् अश्वरोही वीरों को (गवि) भूमि विजय के निमित्त (बाह्मोः गृभीताः) रासों को हाथ में पकड़े (ये) जो (आ वर्वृतति) पुनः आक्रमण करते हैं तू उनकी भी रक्षा कर । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[४७]

गर्गं ऋषिः ॥ १—५ सौमः । ६—१६, २०, २१—३१ इन्द्रः । २०
लिंगोक्ता देवताः । २२—२५ प्रस्तोकस्य सर्जयस्य दानस्तुतिः । २६—२८
रथः । २६—३१ दुन्दुभिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, २१, २२, २८
निचृतत्रिष्टुप् । ४, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ६, ७, १०, १५, १६, १८,
२०, २६, ३० त्रिष्टुप् । २७ स्वराद् त्रिष्टुप् । २, ६, १२, १३, २६, ३१
भुरिक् पंक्तिः । १४, १७ स्वराद् पंक्तिः । २३ आसुरी पंक्तिः । १६ वृहती ।
२४, २५ विराङ्गायत्री ॥ एकत्रिंशत्रूचं सूक्तम् ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ ड्रुतायं तीव्रः किलायं रसवाँ ड्रुतायम् ।
ड्रुतोन्व॑स्य पंपिवांसुमिन्द्रं न कश्चन संहत आहवेषु ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह पेश्वर्य और ओषधि अज्ञादि का उत्तम रस और विद्वज्जन समूह वा बल (किल) अवश्य (स्वादुः) अज्ञ के समान स्वाद-युक्त, सुखजनक (मधुमान्) मधुर मधु से युक्त ओषधि रसवत् ही मधुर और गुणकारी, (उत अयं तीव्रः) और यह तीव्र रस वाले ओषधि रस के

समान ही वेग से कार्य करने वाला हो, (किल अयं रसवान् उत्) और वह निश्चय से रस अर्थात् बलयुक्त भी हो (उतां नु) और (अस्य-पिपिवांसम् इन्द्रम्) जिस प्रकार ओषधि को पान करने वाले पुरुष को बल की प्रतिस्पद्धा में कोई नहीं जीतता है उसी प्रकार (अस्य) इस ऐश्वर्य वा विद्वान् प्रजामय राष्ट्र के (पिपिवांसम्) पालन करने वाले (इन्द्रं) समृद्ध राजा को भी (आहवेषु) युद्धों में (कश्चन न) कोई भी नहीं (सहते) पराजित कर सके ।

अथं स्वादुरिह मदिष्ठ आसु यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद् ।

पुरुणि यश्चयौत्ना शम्वरस्य वि नवर्तिं नवं च देह्योऽहन् ॥२॥

भा०—(अयं) यह सोम अर्थात् ऐश्वर्य, बल, और विद्वस्समृह देने वाला, (इह) इस राज्य शासन में वा लोक में (मदिष्ठः) अतिहर्ष-दायक और तृसिकारक (आस) होता है (यस्य) जिसके द्वारा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक, (वृत्रहत्ये) मेघ के विनाश करने वाले सूर्य के तुल्य शत्रु के नाश के अवसर में (ममाद्) अति प्रसन्न होता है । (यः) जो (शम्वरस्य) मेघ के समान ही प्रजा के सुखों के विनाशक शत्रु के (नवर्तिं नवं) ११ प्रकार के (च्यौत्ना) बलों और चालों को भी (वि अहन्) विविध उपायों से विनाश करता है ।

अथं मे पीत उदियर्ति चाचमूयं मनीषामुशतीमजीगः ।

अथं पलुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्युत्तु भुवनं कञ्चनारे ॥ ३ ॥

भा०—(अयं) यह ओषधिरस जिस प्रकार (पीतः चाचम् उत् इयर्ति) पान किया जाकर उत्तम वाक्-शक्ति को उत्पन्न करता है, और (अयम्) जिस प्रकार ओषधिरस (उशतीम् मनीषाम् अजीगः) कामना करने योग्य, उत्तम प्रजा या बुद्धि को जागृत करता है उसी प्रकार (अयं) यह विद्वज्ञन वा सौम्य प्रजाजन (पीतः) पालित पोषित होकर

(वाचम् इत् इयर्ति) वेदमय, ज्ञानवाणी का उपदेश करता है। (उश-
तीम्) उत्तम कमनीय (मनीषाम्) बुद्धि, मति को (अजीगः) अन्यों
को प्राप्त कराता और जगाता है। और जिस प्रकार ओषधि रस के बल से
(धीरः) बुद्धिमान् ध्यानी पुरुष (याभ्यः आरे कत् चन भुवनं न) जिनसे
परे कोई भुवन नहीं उन (पद् ऊर्वाः अमिमीत) छहों विशाल चराचर-
लोक-सृष्टियों, प्रकृति की विकृतियों को भी जान लेता है उसी प्रकार
(अयं) यह राजा भी (धीरः) धैर्यवान् होकर उस विद्वज्जन के द्वारा
(पद् ऊर्वाः) उन छः बड़ी, प्रजा संस्थाओं या राजप्रकृतियों को भी
(अमिमीत) अपने अधीन कर लेता है (याभ्यः आरे) जिनसे परे
या जिनसे निकट (कत् चन भुवनं न) कोई भी लोक नहीं है। पद्
ऊर्वाः—प्रकृति के पांच भूत, पांच विकृति और महत्तत्त्व, अथवा पांच
इन्द्रिय, तन्मात्रा और छठा मानस तत्त्व। राजतन्त्र स्वपक्ष की पद् प्रकृ-
तियां स्वामी के अतिरिक्त अमात्यादि, वा पद् गुण, अथवा द्वादश राज-
चक्र में स्वपक्ष परपक्ष के छः छः सुहदादि ।

श्रुयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वृष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
श्रुयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाघारोर्वन्तरिक्षम् ॥ ४ ॥

भा०—व्यापक सोम तत्त्व का वर्णन । (अयं सोमः) यह वह सोम,
सबका उत्पादक, सबका प्रेरक पदार्थ या बल है (यः) जो (पृथिव्याः)
पृथिवी के (वरिमाणं) श्रेष्ठ और बड़पन को (अकृणोत्) बनाता है,
(अयं सः) यह वह पदार्थ है जो (दिवः वर्ष्माणं) सूर्य वा आकाश
वृष्टिकारक सामर्थ्य और (वर्ष्माणं) दृढ़त्व वा समस्त लोकों के बन्धन
वा नियन्त्रण करने वाले सामर्थ्य को (अकृणोत्) उत्पन्न करता है।
(अयं) यह (तिसृषु) तीनों (प्रवत्सु) ऊपर नीचे की भूमियों में
भी (पीयूषं) जल तत्त्व को और (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष
वा जल को भी वायुवत् (दाघार) धारण करता है ।

सोमः— स्वा वै मे पृष्ठा तस्मात्सोमो नाम । श० ३ । ९ ४ । २२ ॥
 श्रीवै सोमः । श० ४ । १ । ३९ ॥ राजा वै सोमः श० १४ । १ । ३ ।
 १२ । सोमो राजा राजपतिः । तै० २ । ५ । ६ । ३ ॥ अयं वै सोमो राजा
 विचक्षणश्चन्द्रमाः । कौ० ४ । ४ ॥ क्षत्रं सोमः । २ । ३८ ॥ अज्ञं सोमः
 कौ० ९ । ६ ॥ उत्तमं वा पृत् हविर्यत् सोमः । श० १२ । ८ । २ । १२ ॥
 प्राणः सोमः श० ७ । ३ । १ । २ ॥ रेतः सोमः । कौ० १३ । ७ ॥ एष वै
 ब्राह्मणानां सभासाहः सखा यत्सोमो । राजा ऐ० १ । १३ ॥ सोमो वै ब्रा-
 ह्मणः । ता० २३ । १६ । ५ ॥ पुमान् वै सोमः द्वी सुरा तै० १ । ३ ।
 ३४ ॥ इन उद्धरणों से सोम शब्द से आत्मा, ऐश्वर्य, राजा, विद्वान्, क्षत्रिय-
 बल, अज्ञ, प्राण, वीर्य, प्रजा, विद्वान्, सभापति, ब्राह्मण और वीर्यवान्
 पुरुष ये सब 'सोम' कहते हैं ।

अथं विद्वित्रदशीकृमणीः शुक्रसद्गनामुषसामनीके ।

अथं मृहान्महृता स्कस्भनेनोद्यामस्तभनाद्वृपभो मुरुत्वान् । ५।३०।

भा०—जिस प्रकार (शुक्रसद्गनाम्) जल वा तेज का आश्रय या
 ओस और प्रकाश रूप फैला देने वाली उषाओं के (अनेकों) प्रमुख
 भाग में (अयम्) यह सूर्य (चित्र-दशीकम् अर्णः विद्वत्) आश्रय से
 देखने योग्य जल वा तेज को प्राप्त करता है उसी प्रकार (अयम्) यह
 तेजस्वी राजा या क्षत्र वर्ग भी (शुक्र-सद्गनाम्) उत्तम गृह बना कर
 रहने वाली (उषसाम्) उसको चाहने वाली प्रजाओं वा शत्रु को भस्म
 करने वाली प्रजाओं के (अनीके) प्रमुख भाग वा दल सैन्य में (चित्र
 दशीकम् अर्णः) अद्भुत दर्शनीय तेज को (विद्वत्) प्राप्त करे और करावे ।
 (अयं) और वह (मरुत्वान्) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषों और प्रजा
 वर्गों का स्वामी, (वृपभः) मेघवत् वा सूर्यवत् ही प्रजा पर सुखों की
 वर्षा करने वाला होकर (महता स्कस्भनेन द्याम्) बड़े भारी थामने वाले
 सूबल सेर्य जिस प्रकार आकाश के चन्द्रादि पिण्डों को धारण करता है

उसी प्रकार (महता स्कम्मनेन) बड़े भारी थामने के बल से (महान्) महान् होकर (दाम् अस्तभात्) चाहने वाली प्रजा वा पृथिवी को अपने बश करे । (२) इसी प्रकार गृहपति कामना योग्य शुद्ध गृह में बसने वाली दाराओं के सहयोग में (अणः) धन प्राप्त करे । बलवान् वीर्य सेचन में समर्थ और दृढ़ प्राणवान् होकर बड़े बल से बलवान् होकर (दाम्) नाना कामना वाली पत्नी को धारण करे । इति त्रिंशो वर्गः ॥

**भृषत्पिंव कुलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यनिदने सर्वं आ वृषस्व रयिस्थानो रयिस्मस्मासु धेहि॥६॥**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शूर) शूरवीर ! (धृषत्) शत्रुओं को धर्षण करने में समर्थ होकर (वसूनाम् समरे) राष्ट्र में बसे प्रजाजन के संगम स्थान तथा (वसूनां समरे) राष्ट्र बसाने वाले अन्य राजाओं के संग्राम में विघ्नकारी वा बढ़ते शत्रु का नाशकारी होकर (कलशे) पात्र में रखें जल के समान (कलशे) राष्ट्र में विद्यमान (सोमम्) सर्व शासकपद तथा ऐश्वर्य को (पिब) पान कर, उपभोग वा पालन कर । सूर्य जिस प्रकार (माध्यनिदने सर्वने) मध्याह्न में ग्रहर ताप वाला होकर जल सोखता है उसी प्रकार तू भी (सर्वने) अभियेक काल वा शासन-कार्य में तीक्ष्ण होकर (आ वृषस्व) सर्वत्र उत्तम प्रबन्ध कर । और (रयिस्थानः) ऐश्वर्य का आश्रय होकर (अस्मासु) हम में भी (रयिस् धेहि) ऐश्वर्य स्थापन कर ।

**इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र णो नय प्रतरं वस्यो अच्छु ।
भवा सुपारो अति पार्यो नो भवा सुनीतिरुत ब्रामनीतिः ॥७॥**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (नः) हमें (पुरः पुता इव) अग्रगामी नायक के समान (प्र पश्य) अच्छी प्रकार देख, हमारे सुख दुःख का अच्छी प्रकार विचार कर । (नः) हमें (वस्यः)

श्रेष्ठ धन (प्रतरं) सब दुःखों से पार करने वाला (अच्छ प्रनय) अच्छी प्रकार हमें दे । तू (सुपारः) उत्तम पूर्ण और पालन करने हारा होकर (अति पारयः भव) सब संकटों से पार करने वाला हो । और तू (नः) हमारे भी (सु-नीतिः) उत्तम सुखकारक नीति वाला और (वाम-नीतिः) सुन्दर नीति वाला (भव) हो ।

उरुं नौ लोकमनु नेषि विद्वान्तस्वर्वृज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।

ऋष्वा त इन्द्र् स्थविरस्य ब्राहू उपस्थेयाम शरुणा वृहन्ता ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (नः) हमें (उरु) बड़े भारी (लोकं) उत्तम लोक, अम्युदय और ज्ञानमय प्रकाश को (अनु नेषि) प्राप्त करा । तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (स्वर्वत्) सुखयुक्त (अभयं) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाश और (स्वस्ति) सुख कल्याण (अनु नेषि) प्राप्त करा । हे राजन् ! हम लोग (ते) तुझ (स्थविरस्य) बृह, अनुभवी की (ऋष्वा) बड़े २ (ब्राहू) बाहुओं को (वृहन्ता) बड़े शरणदायक आश्रयवत् (उपस्थेयाम) प्राप्त करें ।

वरिष्ठे न इन्द्र वृन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।

इष्मा वद्गीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मधवुत्रायो शृर्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अज्ञ के देने हारे ! तू (वरिष्ठे) बहुत बड़े और अति उत्तम (बन्धुरे) प्रेमयुक्त बन्धन में (नः आधाः) हमें रख । और उत्तम प्रबन्धयुक्त राष्ट्र में हमें स्थापित कर । और (वहिष्ठयोः) खूब सुख से बहन करने में समर्थ (अक्षयोः) दो घोड़ों के आश्रय पर जिस प्रकार रथ को सुख से ले जाते हैं उसी प्रकार (वहिष्ठयोः) राज्य कार्य-भार को बहन करने वाले दो उत्तम पुरुषों के आश्रय पर है (शतावन्) सैकड़ों ऐश्वर्यों व सैकड़ों वीरों के स्वामिन् ! शतक्रतो ! शतपते ! (इषां) सेनाओं में से (वर्षिष्ठाम् इषम्), खूब शरवर्षा करने वाली बहुत बड़ी शैना को (आ वक्षि) धारण कर । और (इषं वर्षिं-

प्याम् इषम्) अन्नों के बीच में से बहुत बड़े हुए अन्न सम्पदा को हमें प्रदान कर । हे (मधवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू (अर्थः) स्वामी (नः रायः) हमारे धनों को (मा तारीत्) विनष्ट न कर । इन्द्रं मूळं मह्यं जीवातुमिच्छु चोदय धियमयसो न धाराम् । यत्किङ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधिमा देववन्तम् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सब सुखों के देने हारे ! प्रभो ! तू (मह्यं मृड) मुझे सुखी कर और (महां जीवातुम् इच्छ) मेरे दीर्घ जीवन की इच्छा कर । (मह्यं धियं धारां च) बुद्धि और वाणी दोनों को (अयसः धाराम् न) लोहे के बने शस्त्र की धारा के समान अति तीव्र और तीक्ष्ण बनाकर (चोदय) उनको सन्मार्ग में चला । (अहं) मैं (त्वायुः) तेरी कामना करता हुआ (यत् किं च इदं वदामि) यह जो कुछ भी तेरे समक्ष कहूँ (तत् जुषस्व) उसे तू स्वीकार कर और (मा मुझे (देववन्तं) उत्तम गुणवान् और उत्तम मनुष्यों का स्वामी (कृधि) कर । इत्येकत्रिशो वर्णः ॥

त्रातारुमिन्द्रमवितारुमिन्द्रं हृवैहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।

हृयामि शुक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नौ मधवा ध्रुतिवन्द्रः ॥११॥

भा०—मैं प्रजाजन (त्रातारम्) त्राण करने वाले, पालक (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् को (अवितारम् इन्द्रम्) ज्ञान रक्षादि देने वाले अविद्या आदि दोषों के नाशक, (शूरम्) शत्रुहिंसक, (इन्द्रम्) सेना के स्वामी, (सु-हवं) उत्तम नाम वाले वा उत्तम संग्रामकारी पुरुष को (हवे-हवे) प्रति संग्राम में (हृयामि) उकारता हूँ । और (शक्रं) शक्तिशाली (पुरु-हूतं) बहुतों से आह्वान करने योग्य (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शुभ गुणधारी पुरुष को भी मैं ‘इन्द्र’ नाम से ही कहता हूँ । और (मधवा) उत्तम धनवान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यप्रद पुरुष (नः स्वस्ति धातु) हमें कल्याण, सुख प्रदान करे ।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववृँ अवोभिः सुमृलीको भवतु विश्ववेदाः ।

वाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्य का दाता, दुष्टों का विदारक राजा, सेनापति (सु-त्रामा) प्रजा का सुख से, और उत्तम रीति से पालन करने वाला, (स्व-वान्) अपने नाना बन्धु भृत्यादि से युक्त और 'स्व' अर्थात् नाना धनों का स्वामी (सु-मृडीकः) उत्तम सुखप्रद, कृपालु, (अवोभिः) उत्तम रक्षा साधनों, ज्ञानों और तृसिकारक अज्ञों से (विश्व-वेदाः) समस्त ज्ञानों को जानने और समस्त धनों को प्राप्त करने वाला (भवतु) हो। वह (द्वेषः वाधतां) समस्त द्वेष करने वाले जनुओं को पीड़ित करे और (अभयं कृणोतु) हमें भय से रहित करे। जिससे हम सब (सु-वीर्यस्य पतयः) उत्तम बल वीर्य के पालक, स्वामी हों।

तस्य वयं सुमतौ युज्जियुस्यापि भुद्रे सौमनसे स्याम ।

स सुत्रामा स्ववृँ इन्द्रो श्रस्मे आराच्छिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (तस्य) उस (यज्जियस्य) दान सत्कार, मान पूजा आदि के योग्य, पुरुष के (सु-मतौ) शुभ बुद्धि और (भद्रे) कल्याणकारी (सौमनसे) उत्तम मनन और ज्ञानयुक्त व्यवहार के (अपि स्याम) अधीन रहें। उसकी उत्तम सलाह और सदिचार के अधीन रहें। (सः) वह (सु-त्रामा) सुखपूर्वक प्रजा के रक्षक (स्व-वान्) धन, भृत्य आदि वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे द्वेषः) हमारे से द्वेष करने वालों को (आरात् चित्) दूर से ही (सनुतः) सदा, (युयोतु) हमसे दूर कर दिया करे।

अवृत्वे इन्द्रं प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतौ धवन्ते ।

उरु न राधुः सवैना पुरुरयुपो गा वज्रिन्युवस्ते समिन्दून् ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ऊर्मिः प्रवतः न) जल राशि, या जल स्रोत, वा जल-तरंग जिस प्रकार नीचे प्रदेशों की ओर जाते हैं उसी प्रकार

(गिरः) स्तुतिकर्त्ताओं की वाणियां, और विद्वान् जन, (ब्रह्माणि) समस्त वेद और धनैश्वर्य, (नि-युतः) लक्षों की संख्या में वा (नि-युतः) तेरे अधीन रहकर युद्ध करने वाले, वा अर्धीन नियुक्त अश्वादि जन, (व्वे) तेरे अधीन ही (अव धवन्ते) चलते हैं तुक्षको पति के समान स्वीकार करते हैं । तू भी हे (वत्रिन्) बलवन् ! (पुरुणि सवनानि) बहुत से ऐश्वर्यों को (ऊरु राधः न) बहुत से धन के समान और (अपः) आत प्रजाजनों को (गाः) भूमियों, उत्तम वाणियों और (इन्द्रम्) आ-ह्नादक दयालु पुरुषों को भी (सं युवसे) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है । क इं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मधवा विश्वहावेत् ।
यादाविव प्रहरञ्जन्यमन्यं कुणोति पूर्वमपरं शर्चीभिः ॥१५॥३२॥

भा०—(यत्) जो (मधवा) देने योग्य ऐश्वर्य का स्वामी (उग्रम् इत्) उग्र, बलवान्, समर्थ पुरुष को ही (विश्वहा) सदा (अवेत्) प्राप्त करता है, और जिस प्रकार (पादौ प्रहरन् इव) पैरों को चलाता हुआ पुरुष (पूर्वम् अपरं अन्यम्-अन्यम् कृणोति) पहले पैर का पीछे और दूसरे को आगे करता है उसी प्रकार जो (शर्चीभिः) अपना बुद्धियों, शक्तियों और वाणियों द्वारा (पूर्वम् अपरम् अन्यम्-अन्यम्) पूर्व विद्यमान पदाधिकारी को पद से च्युत और पद पर अनियुक्त, पश्चात् आये नव युवक पुरुष को पद पर नियुक्त करता अथवा सैन्य सज्जालन करते हुए आगे के जनों को पीछे और पीछे वालों को आगे करता रहता है, (कः इं स्तवत्) उसको कौन वर्णन या उपदेश कर सकता है, (कः पृणात्) और उसको कौन प्रसन्न कर सकता है और उसका (कः यजाते) कौन सदा साथ दे सकता है ? यह वह जाने । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

शृग्वेद्वीर उग्रमुं दमायन्नन्यमन्यमतिनेत्रीयमानः ।
गृधमान्नद्विलृभयस्य राजा चोष्कुयते विश्वा इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६॥

भा०—(वीरः) वीर पुरुष (उग्रम् उग्रम्) प्रत्येक उग्र, तेजस्वी

पुरुष को (दमायन्) दमन करता हुआ, और (अन्यम् अन्यम्) भिन्न २, नाना व्यक्तियों को (अति नेनीयमानः) एक दूसरे से बढ़ाता हुआ, (एधमान-द्विट्) अपने से बढ़ते हुए, प्रतिस्पर्धी शत्रु से द्वेष करता हुआ (उभयस्य राजा) शासकर्ग और शास्यर्वर्ग दोनों के बीच चमकता हुआ, दोनों का राजा होकर (विशः) अपने शासन में प्रविष्ट, या वसे हुए (मनुष्यान्) मनुष्यों को वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यप्रद पुरुष (चोक्यते) बुलाता है, अपने अधीन उन पर शासन करता है।

परा पूर्वेषां सुख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरोति ।

अनानुभूतीरवधून्वानः पुर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, अन्यों को वृत्ति आदि धन देकर पालने वाला राजा (पूर्वेषां) अपने से पूर्व विद्यमान बड़े अनुभवी लोगों के (सख्या) सख्य अर्थात् मित्रता के बल से वह (अनानुभूतीः) अपनी अनुभवशून्यताओं वा अज्ञात बातों को (वितर्तुराणः) विविध प्रकार से विनाश करता हुआ अपने अज्ञानों को (परावृणक्ति) दूर करता है। और (अपरेभिः) अन्य नाना पुरुषों के साथ मिल कर भी (अनानुभूतीः) अनुभवरहित सामर्थ्यहीन, असहदय जनों को भी (अव-धून्वानः) दूर करता हुआ (एति) आगे बढ़ता है। इस प्रकार वह सूर्य के समान (पूर्वीः शरदः) अपने पूर्व की आयु के वर्षों को (तर्तरीति) व्यतीत करे।

ऋपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य ऋपं प्रतिचक्षणाय ।

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपं ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः श्रता दश ॥ १८ ॥

भा०—राजा और जीवात्मा का वर्णन। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (रूपं रूपं) प्रत्येक रूप अर्थात् प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति का (प्रति रूपं) प्रतिनिधि (बभूव) हो। (अस्य) इस राजा का (तत्) वह रूप (प्रति-चक्षणाय) प्रत्यक्ष में देखने और कहने के लिये है। (हन्दः)

वह युश्म्यवान् पुरुष (मायाभिः) अपनी नाना बुद्धियों और नाना शक्तियों से (पुरुरूपः ईयते) बहुत प्रकार का जाना जाता है । क्योंकि (अस्य) इसके अधीन (शता दश) हजारों (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) नियुक्त रहते हैं । इसी प्रकार (इन्द्रः) जीवात्मा भी विद्युत् के समान (रूपं-रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक प्राणि के रूप में तदाकार होकर विराजता है । (तत् अस्य रूपं प्रति चक्षणाय) उसका वह रूप सबधो प्रकट नहीं है वह प्रत्येक के लिये गुरु द्वारा कथन करने और अध्यात्म हठि से देखने योग्य है । वह जीवात्मा (मायाभिः) नाना बुद्धियों, संकल्पों से ही (पुरु-रूपः ईयते) नाना रूप का जाना जाता है । (अस्य) इसके शासन में, देह में ही (दश शता हरयः) दस सैकड़ों प्राणगण अधीनों वा भूत्यों के समान (युक्ताः) जुड़ कर ज्ञानतन्तु, तथा शक्तितन्तुओं के रूप में काम करते हैं ।

युजानो हृरितां रथे भूरि त्वेषुह राजति ।

को विश्वाहा॒ द्विपुतः पक्षा॑ आसत उतासी॑नेषु॒ सूरिषु॑ ॥१९॥

भा०—जिस प्रकार (रथे) रथ में (हरिता) वेग से जाने वाले अधीनों को (युजानः) लगाता हुआ रथी विराजता है उसी प्रकार राजा भी (रथे) अपने रमणीय, उत्तम राष्ट्र में (हरिता) कार्य भार उठा सकने में समर्थ संचालकों को (युजानः) नियुक्त करता हुआ (त्वष्टा) तेजस्वी सूर्य के समान चमकता हुआ (इह) इस लोक में (भूरि राजति) बहुत अधिक प्रकाशित होता है । यदि वह इतना तेजस्वी न हो तो (कः) कौन अतेजस्वी पुरुष (विश्वाहा) सब दिनों (द्विपुतः पक्षः) शत्रु को सन्तप्त करने हारा होकर (आसते) विराज सकता है । (उत्) और (आसीनेषु सूरिषु) विद्वानों के विराजते हुए उनके बीच में भी कौन तेजस्वी होकर सिंहासन पर विराज सकता है । (२) इसी प्रकार (त्वष्टा) अति सुकृत, कर्ता जीव (रथे) इस देह में (हरिता) विषयों का ग्रहण

करने वाले इन्द्रियों को (युजानः) जोड़ता हुआ वा योगी आत्मा (हरिता) प्राण अपान दोनों को दो अश्रौं के समान ही योगद्वारा वश करता हुआ (सूरिषु आसीनेषु) देह के प्रेरक प्राणों के विराजते हुए भी (द्विषतः पक्षः विराजते) अप्रीतियुक्त द्वन्द्वों का भी ग्रहण करता रहता है।

ऋग्वद्युति क्षेत्रमाग्नम् देवा उर्वी सृती भूमिरंहृणाभूत् ।

बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सुते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥२०॥३३

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! यह (भूमिः) भूमि (उर्वी सृती) बहुत बड़ी होती हुई (अंहू-रणा) आने वाले प्राणियों से रण अर्थात् परस्पर युद्ध और रमण क्रीड़ा आदि करने योग्य (अभूत्) होती रही है। इस भूमि में हम लोग (अगव्युति क्षेत्रम्) विना मार्ग के क्षेत्र या निवासार्थ भूमि को यदि (आग्नम्) प्राप्त हों तो हे (बृहस्पते) राष्ट्र के स्वामिन् ! तू (गविष्टौ) भूमि के प्राप्त करने पर (प्र चिकित्स) अच्छी प्रकार गुण दोष आदि जान। (हथा) इस प्रकार (सते जरित्रे) उत्तम सज्जन विद्वान् पुरुष के लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (पन्थाम् प्र चिकित्स) मार्ग का भी ज्ञान कर। (२) अध्यात्म में महती प्रकृति तमोमय होने से पापमयी होती है। जीव इस देह रूप ऐसे क्षेत्र में आजाता है जहां उसे जन्म-मरण के बन्धन से छूटने का मार्ग नहीं मिलता। इसलिये विद्वान् जन मार्ग का उपदेश किया करे। इति त्रयखिंशो वर्गः ॥

दिवेदिवे सुदृशीरुन्यमद्दै कृष्णा ऋसेधदपु सद्गुनो जाः ।

अहन्दासा वृषभो वस्त्रयन्तोदव्रजे बुर्चिङ्गं शम्खरं च ॥२१॥

भा०—जिस प्रकार (जाः) उत्पन्न हुआ सूर्य (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः कृष्णाः) एक समान काली रात्रियों को (अप असेधत) दूर करता है और (अन्यम् अर्धं) दूसरे आधे को (असेधत) प्राप्त करता है और जिस प्रकार (वृषभः) वर्षा का मूल कारण सूर्य

(उद्ब्रजे) जल के गमनयोग्य मार्ग आकाश में (वस्त्रयन्ता) रहना चाहते हुए (वर्चिनं शम्वरं च) तेजोमय मेघ और जल दोनों को (अहन्) आधात करता है उसी प्रकार राजा भी (जाः) प्रकट होकर (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सद्वशीः) एक समान (कृष्णाः) धोर प्रजाकर्षण, प्रजा-पीड़नकारिणी शत्रु सेनाओं को (सद्वनः) अपने स्थान से (अप असेधत्) दूर करे और (अन्यम्) दूसरे (अर्धम्) समृद्ध राष्ट्र को (असेधत्) प्राप्त करे । वह (वृषभः) बलवान् होकर (उद्ब्रजे) जल के मार्ग नदी आदि के तटों पर (वर्चिनं) तेजस्वी (शम्वरं) शान्तिनाशक (वस्त्रयन्ता दासा) नाना आच्छादन, तथा वस्त्र एवं निवासादि चाहने वाले (दासा) प्रजानाशक शत्रु छी पुरुषों को (अहन्) दण्डित करे ।

**प्रस्तुोक इन्द्रु राध॑सस्त इन्द्रु दश कोशश्यीर्दशं वाजिनोऽदात् ।
दिवौदासादतिथिग्वस्य राध॑ः शाम्वरं वसु प्रत्यग्भीष्म ॥२२॥**

भा०— हे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (प्रस्तोकः इति तु) तेरी उत्तम स्तुति करने वाला प्रजाजन ही (ते) तुझे (राधसः) धनै-शर्य से पूर्ण (दश कोशशीः) कोशों या खजानों से भरी पूरी दस भूमियों और (दश वाजिनः) बल, वेग, अन्न धनादि से युक्त दशों प्रकार के पदार्थों को भी (अदात्) प्रदान करता है । (दिवः-दासात्) ज्ञानप्रकाश और भूमि को तेरे हाथ सौंप देने वाले दाता ब्राह्मणवर्ग से प्राप्त (अतिथि-ग्वस्य) अतिथिवत् पूज्य होकर समानयोग्य वाणी वा गौ, भूमि को प्राप्त करने वाले तेरे ही (राधः) धनैश्वर्य को हम लोग (शाम्वरं वसु) मेघ से बरसे जल के समान समग्र रूप से (प्रति अग्रभीष्म) हम प्राप्त करें । प्रजा राजा को सब प्रकार का ऐश्वर्य दे । ब्राह्मणवर्ग राजा को अतिथिवत् पूज्य जान कर उसके हाथ भूमि ऐसे ही सौंपता है जैसे सूर्य मेघ को भूमि देता है । तब उस राजा के ऐश्वर्य का प्रजाजन ऐसे ही उपयोग करे जैसे वे मेघ के जल का उपयोग करते हैं ।

दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।

दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥

भा०—मैं (दिवः-दासात्) कामना करने योग्य ज्ञानप्रकाश और भूमि आदि के नाना पदार्थों के देने वाले से (दश अश्वान्) दश अश्व (दश) दश (कोषान्) कोश (दश अधि-भोजना) दस प्रकार के उत्तम २ भोजन और (वस्त्र) पहनने के वस्त्र (दशो हिरण्य-पिण्डान्) दस सुवर्णादि के पिण्ड भी (असानिषम्) प्राप्त करूँ । (२) अध्यात्म में—अश्व इन्द्रियें, दश कोश अज्ञानादि पांच, अन्तःकरणचतुष्ट, और आत्मा इन्द्रियों के दश अर्थ, दशधा गात्र दश पिण्ड ।

दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः ।

श्रुश्वथः प्रायवेऽदात् ॥ २४ ॥

भा०—(अश्वथः) अश्वों, अश्व सैन्यों का स्वामी, राष्ट्र का भोक्ता राजा (अथर्वभ्यः) अहिंसक और राज्य के पालक विद्वान् शासकों के उपयोग के लिये (प्रष्टिमतः) स्वतन्त्र इच्छा से रहित, पूछ कर काम करने के स्वभाव वाले, अधीन (दश रथान्) दस रथों, रथ सैन्यों को और (शतं च गा :) सौ भूमियां या सौ बैल (पाषवे) उत्तम पालक अध्यक्ष के लिये (अदात्) देवे ।

महि राधो विश्वजन्यं दधाना-

न्भरद्वाजान्तसार्ज्यो श्रुभ्ययषु ॥ २५ ॥ ३४ ॥

भा०—(सार्ज्यः) नाना न्याययुक्त राज्य-कार्यों को करने में समर्थ पुरुषों का अधिपति राजा (विश्वजन्यं) सर्वजनहितकारी (महि राधः) बड़े भारी धन को (दधानान्) धारण करने वाले (भरद्वाजान्) ऐश्वर्य अज्ञानादि के द्वारा प्रजा का पालन करने में समर्थ ज्ञानी पुरुषों को (अभि अयष्ट) आदर पूर्वक प्रदान करे । इति चतुर्थिंशो वर्गः ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥२६॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के समान तेजस्विन् ! सेवनीय ऐश्वर्य के पालक ! वा शत्रुहिंसक सैन्य के स्वामिन् ! राजन् ! विद्वन् ! तू (वीडु-अङ्गः) शरीर और रथ्य के सुदृढ़ अंगों वाला, (प्रतरणः) नौकावत् वा रथवत् संकटों से पार उतारने, मार्ग पार कराने वाला (सु-वीरः) उत्तम वीर होकर (अस्मत् सखा भूयाः) हमारा मित्र और हमको अपना मित्र बनाये रखने वाला हो । हे राजन् तू (सन्नद्धः) अच्छी प्रकार तैयार होकर (गोभिः) बाण के फेंकने वाली डोरियों से, (वीडयस्व, वीरयस्व) वीर कर्मकर, शत्रुओं पर बाण फेंक । वा हे राजन् तू (सन्नद्धः) अच्छी प्रकार कस कसाकर, सुसज्जित होकर (गोभिः) उत्तम वाणियों और भूमियों से (वीडयस्व) अपने को अधिक इढ़ कर । हे विद्वन् ! तू (गोभिः वीडयस्व वि-ईरयस्व) विविध विद्याओं का उपदेश कर । तू (आ-स्थाता असि) अध्यक्ष होकर विराज और (ते) तेरे अधीन सैन्य वर्ग (जेत्वानि जयतु) विजय करने योग्य शत्रु सैन्यों को विजय करे । दिवस्पृथिव्याः पर्योजु उद्धृतं वनस्पतिभ्यः पर्योभृतं सहः ।

शुपामोजमानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हृविषा रथैयज ।२७।
भा०—(दिवः) सूर्य वा आकाश से और (पृथिव्याः) पृथिवी से (परि उद्भृतं ओजः) प्राप्त और उत्पन्न हुए तेज, और अच्च तथा (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों से (परि आभृतं) प्राप्त किये (सहः) उत्तम बल को हे राजन् ! तू (यज) एकत्र प्राप्त कर । और (इन्द्रस्य) सूर्य के (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) आच्छादित (अपाम् ओजमाने) जलों के बल रूप (वज्रं) विद्युत रूप तेज और (रथं) उत्तम यानादि को भी (हृविषा) ग्रहण करने के साधनों द्वारा (यज) सुसंगत कर । उसी प्रकार हे राजन् ! तू (हृविषा) अच्च, आदि के बल पर

(इन्द्रस्य वज्रं) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा के शत्रुबल और (रथं) रथ या नाभि को जो (गोभिः परि आवृतम्) भूमियों से घिरा हो जिसके अधीन नाना देश हों उनको (यज) प्राप्त कर । वह राजा का बल कैसा हो—(दिवः परिभृतम्) सूर्य से निकले तेज के समान विद्वान् तेजस्वी पुरुष वर्ग से प्राप्त (ओजः) पराक्रमस्वरूप हो और जो (पृथिव्याः परि उद्भृतं) भूमि से उत्पन्न अज्ञ के समान परिपोषक, प्रजा बल, और (वनस्पतिभ्यः परि आभृतम्) बड़े वृक्षों के समान प्रजा के आश्रयग्रद शत्रु हिंसक सैन्य के पालक नायकों द्वारा एकत्र किया गया (सहः) शत्रु पराजयकारी बल है उसको और (अपाम् ओज्मानम्) आस प्रजा वर्गों के पराक्रम को भी (यज) एकत्र संगत कर ।

इन्द्रस्य वज्रौ मृत्युमनीकं मित्रस्य गभौ वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नौ हव्यदातिं जुषाणो देवं रथं प्रति हृव्या गृभाय ॥२८॥

भा०—इन्द्र का वज्र। हे (देव) विजय के इच्छुक! हे (रथ) रम्यस्वभाव ! वा रथवत् राष्ट्र के प्रजापालन को अपने कन्धों लेकर चलने हारे राजन् ! तू (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य से सम्पन्न राष्ट्र का (वज्रः) बल पराक्रम रूप है ! तू (मृत्युम् अनीकम्) समस्त मनुष्यों का सैन्यवत् प्रमुख, एवं बलशाली है । तू (मित्रस्य गभिः) मित्र राजवर्ग के अध्यक्ष में स्थित उनको भी अपने वश करने वाला है, तू (वरुणस्य नाभिः) श्रेष्ठ, पुरुष वर्ग का 'नाभि' अर्थात् उनके बोच केन्द्र के समान उनके अपने से सम्बद्ध करने वाला है । (सः) वह तू (नः) हमारी (इमां) इस (हव्य-दातिम्) ग्रहण करने योग्य भेट आदि के दान को (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (हव्या) ग्राह पदार्थों को (प्रति गृभाय) ग्रहण कर ।

उपश्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुत्रां विष्ट्रितं जगत् ।
स दुन्दुभे सूजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्वीयो अप सेध शत्रून् ॥ २९ ॥

भा०—हे (दुन्दुभे) द्रन्द युद्ध में सबसे अधिक प्रकाशित वीर ! हे नक्कारे के समान गर्जने हारे ! हे वृक्ष को कुठार के समान शत्रुको छिन्न मिन्न करने वाले ! अथवा हे शत्रुओं को नाश करने हारे ! तू (पृथिवीम्) भूमिवासी (उत याम्) तेजस्विनी वा ऐश्वर्यादि को चाहने वाली वा व्यापार करने में लगी प्रजा को (उप शासय) आशासन और उनको प्राणवत् जीवन वृत्ति प्रदान कर । (ते) तेरे अधीन (पुरुषा) बहुत प्रकार के (जगत्) गतिशील नाना जंगम प्राणीगण (वि स्थिते) विविध प्रकार से स्थित होकर (मनुतां) तेरा मान करे । (सः) वह तू (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक भूमि पर कृषि अज्ञ के उत्पादक समृद्ध प्रजावर्ग (देवैः) विद्वान् पुरुषों से (सजूः) मिलकर उनके सहयोग से (शत्रून्) शत्रुओं को (दूराद् दवीयः) दूर से भी दूर तक (अप-सेध) भगादे ।

आ क्रन्दय बल्मोजौ न आ धा निः शृनिहि दुरिता वाधमानः ।
अप्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीलयस्व ३०

भा०—हे (दुन्दुभे) नक्कारे के समान घौर गर्जन करने हारे ! तू शत्रुओं को (आ क्रन्दय) खूब ललकार और रुला । तू (नः) हममें (बलं ओजः) बल और पराक्रम (आ धाः) धारण करा । और (दुरिता) खुरे व्यसनों को (वाधमानः) दूर करता हुआ तू (निः स्तनिहि) गर्जना कर । (इतः) इस राष्ट्र से तू (दुच्छुनाः) हमें दुःखदायी दुष्ट कुत्तों के स्वभाव वाले, वा हमारे दुःखों को सुख मानने वाले शत्रुजनों को (अप्रोथ) दूर मार भगा । तू (इन्द्रस्य) विद्युत् के (मुष्टिः) मुक्ते के समान शत्रुसंहारक वा समृद्ध राष्ट्र का मुष्टिवत् संगटित बल (असि) है । वह तू सदा (वीडयस्व) पराक्रम किया कर ।

आमूरज प्रत्यावर्तयेमा केतुमहुन्दुभिर्वीवदीति ।
समश्वपर्णश्वरन्ति न्तो नरोऽस्माकमिन्द्र रुथिनो जयन्तु ३१।३५।७

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (अमूः) उन और (इमाः) इन अपनी और पराई सेनाओं को (आ अज) दूर हटा और भेज (प्रति वर्त्तय, आवर्त्तय च) परे लौटा दे और अपनी ओर लौटा ले । पराई सेनाओं को परे करदे और अपनी सेनाओं को वापस लौटा ले । (केतुमत् दुन्दुभिः) ध्वजा से युक्त नक्कारा जिस प्रकार गर्जता है उसी प्रकार तू राजा (चाव-दीति) बराबर अपनी सेनाओं को आज्ञा दे । (नः) हमारे (नरः) नायक जन (अश्व-पर्णाः) अश्वों पर चढ़कर वेग से जाने वाले (सञ्चरन्ति) एक साथ मिलकर गमन करें और (अस्माकं रथिनः) हमारे रथारोही लोग (जयन्तु) विजय प्राप्त करें । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

* इति सप्तमोऽध्यायः *

अष्टमोऽध्यायः

[४८]

शंयुर्बाहिस्पत्य ऋषिः ॥ नृणपाणिकं पृथिम्यूकं ॥ १—१० अग्निः । ११, १२, २०, २१ मरुतः । १३—१५ मरुतो लिंगोक्ता देवता वा । १६—१६ पूषा । २२ पृथिव्यावाभूमी वा देवताः ॥ इन्द्रः—२, ४, ४, १४ वृहती । ३, १६ विराङ्गवृहती । १०, १२, २७ मुरिवृहती । २ आचीं जगती । १५ निचृदत्ति-जगती । ६, २? त्रिष्ठुप् । ७ निचृत्रिष्ठुप् । ८ मुरिक् त्रिष्ठुप् । ६ मुरिग्-नुष्ठुप् । २० स्वराङ्गनुष्ठुप् । २२ अनुष्ठुप् । ११, १६ अव्याक् । १३, १८ निचृदुष्यिक् ॥ द्वाविशत्यृचं सूक्तम् ॥

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।

प्रप्र वृयमृतं जातवैदसं प्रियं मित्रं न शासिषम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् जिज्ञासु पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (यज्ञे यज्ञे) प्रत्येक यज्ञ, परस्पर के सत्संग के अवसर पर (चः) आप लोगों के प्रति

(गिरा गिरा च) प्रत्येक वाणी से (दक्षसे अग्नये) अग्नि के समान सब पापों और पापियों को भस्म कर देने वाले, क्रियाकुशल, दक्ष, व्यवहारज्ञ स्वामी या प्रभु के (अमृतम्) अविनाशी स्वरूप का (प्र-प्र) निरन्तर वर्णन उत्तम पद के लिये प्रस्ताव किया करें। हे जिज्ञासु जनो ! मैं भी उसी (जात-वेदसं) समस्त ज्ञानों के जानने वाले सब ऐश्वर्यों के स्वामी को (प्रियं मित्रं न) प्रिय मित्र के तुल्य ही (प्र-प्र शांसिषम्) अच्छी प्रकार प्रशंसा करूँ ।

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हृव्यदातये ।

भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वध उत ब्राता तनूनाम् ॥ २ ॥

भा०—(सः हिन) वह निश्चय से (अस्मयुः) हमारा प्रिय स्वामी, (तनूनाम्) हमारे शरीरों का (बाजेपु) संग्रामों में (अविता) रक्षक (भुवत्) हो। वह (वृथः भुवत्) हमारा बढ़ाने हारा और (ब्राता) पालक भी (भुवत्) हो। हम उस (ऊर्जः नपातम्) बल के पुत्र, बल-वान् पिता के पुत्र, बल को नष्ट न होने देने वाले नायक को प्रस्तुत करके (हृव्य-दातये) कर आदि ग्राह्य पदार्थों को देने के लिये तैयार रहें और अपना अंश नियम से उसे (दाशेम) देते रहें ।

वृषा हृग्ने अजरो मुहान्विभास्युर्चिषा ।

अजस्त्रेण शोचिषा शोशुच्चुच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान चमकने हारे तेजस्विन् ! तू (हि) क्योंकि (वृषा) सुखों का मेघवत् वर्णन करने हारा और (अचिषा) विद्युतवत् कान्ति से (वि भासि) प्रकाशित होता है तू (अजरः) कभी जीर्ण न होने वाला, अविनाशी, (महान्) महान्, (अजस्त्रेण) निरन्तर, अविनाशी, (शोचिषा) तेज से (शोशुच्चत्) चमकता हुआ हे (शुचे) शुद्ध स्वभाव ! तू (सु-दीतिभिः) उत्तम कान्तियों से हमें भी (सु दीदिहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर ।

मुद्दो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव् क्रत्वोत दुंसना ।

अर्वाचः सीं कुणुह्यग्रवसे रास्व वाजोत वैस्व ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! (महः) बड़े (देवान्) किरणों को सूर्यवत् (यजसि) संगत करते हो, उत और (दुंसना) नाना कर्मों को भी (यक्षि) संगत करते हो, (तत्र क्रत्वा) तेरे कर्म सामर्थ्य और प्रजा बल से (आनुषक्) निरन्तर हम भी (यक्षि) यज्ञ करें, परस्पर मिलकर रहें। तू (सीम्) सब ओर से (अवसे) रक्षा के लिये (अर्वाचः कुणुहि) बड़े देवों, विद्वानों को हमें प्राप्त करा। और (वाजा) नाना ऐश्वर्यों को (रास्व) प्रदान कर (उत उ) और (वैस्व) न्यायपूर्वक विभक्त कर।

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।

सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार (आपः) समुद्र के जल, (अद्रयः) मेघ (वना) सूर्य के किरण और काष्ठ (ऋतस्य गर्भम्) तेज को अपने भीतर धारण करने वाले अग्नि को (पिप्रति) अपने में विद्युत्, तेज, ताप आदि रूप में धारण करते हैं और (यः) जो (नृभिः सहसा मथितः जायते) मनुष्यों से बलपूर्वक मथा जाकर प्रकट होता है वह (पृथिव्याः अधि) पृथिवी के ऊपर और (अधि सानवि) अन्तरिक्ष के ऊपर भी विराजता है उसी प्रकार (यम) जिस (ऋतस्य गर्भम्) सत्य न्याय व्यवहार को अपने में धारण करने वाले पुरुष को (आपः) आसजन, (अद्रयः) मेघवत् वा पर्वत तुल्य उदार, अचल, क्षत्रिय वीर पुरुष और (वना) शत्रुहिंसक सैन्यगण, (पिप्रति) प्रसन्न करते वा पूर्ण करते हैं जिसकी शक्ति को बढ़ाते हैं, और (यः) जो (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (मथितः) परस्पर वाद विवाद द्वारा निर्णय पाकर (सहसा)

अपने शत्रुविजयी बल के कारण (जायते) प्रकट होता है, वह (पृथि-
व्याः अधि सानवि) पृथिवी के उच्च पद पर उदयाचल पर सूर्य के तुल्य
विराजता है । इति प्रथमो वर्गः ॥

आ यः पुर्णो भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि । तिरस्त-
मो ददशु ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरूपो वृषा श्यावा अरुषोवृषा ॥६॥

भाँ०—जिस प्रकार जो अग्नि (भानुना) सूर्यस्य प्रकाश से (उभे
रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों को (आ पुर्णो) सब तरफ व्याप
लेता है, और जो (धूमेन दिवि धावते) धूम से आकाश में ऊपर जाता
है या जो (दिवि) दूर आकाश में (धूमेन धावते) धूमाकार होकर
नीहारिका रूप से गति करता है । और जो (श्यावासु ऊर्म्यासु) काली
रातों में (तमः तिरः) अन्धकार को दूर करके (आ ददशे) सब दूर
तक दिखाई देता है उसी प्रकार (यः) जो नायक, (अरुषः) तेजस्वी,
शत्रुओं के मर्मों पर आधात करने वाला पुरुष (भानुना) अपने तेज से
(रोदसी उभे) अपनी और शत्रु दोनों की सेनाओं वा भूमियों को (आ-
पुर्णो) व्याप लेता है और जो (धूमेन) शत्रु को कंपा देने वाले सामर्थ्य
से (दिवि) भूमि पर (धावते) वेग से आक्रमण करता है । (श्या-
वासु ऊर्म्यासु) श्याम वर्ण की सस्य श्यामला भूमियों में (तमः तिरः)
शत्रु दल को अन्धकारवत् दूर करके (वृषा) सूर्यवत् वा मेघवत् (आ)
विराजता है, वही (अरुषः) तेजस्वी, रोष रहित (वृषा) बलवान्,
राज्य का प्रबन्धक और सुखों की प्रजा पर वृष्टि करने हारा राजा (श्यावाः)
समृद्ध प्रजाओं को (आपुर्णो) सब प्रकार से पूर्ण करता है ।

बृहस्पद्वर्गे अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा । भरद्वाजे समिधानो
यविष्ण्व रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥ ७ ॥

भाँ०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! जिस प्रजाकर अग्नि
(बृहस्पतिः अर्चिभिः) बड़ी ज्वालाओं से और (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध

निर्मल प्रकाश से (समिधानः) प्रकाशमान होता है उसी प्रकार हे (देव) तेजस्विन् ! दानशील विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (बृहद्भिः) बड़े भारी (अचिभिः) अर्चना करने योग्य गुणों और सहायकों से और (शुक्रेण) शुद्ध, निर्मल (शोचिषा) तेज से (भरद्वाजे) बल, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि को धारण करते हुए राष्ट्र वा शिष्यादि में (समिधानः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ विराज। हे (यविष्ठ) अति बल-शालिन् ! हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमन् ! सदाचारिन् ! तू (रेवत्) अज्ञादि सम्पन्न होकर (नः दीदिहि) हमें भी प्रकाशित कर। हे (पावक) अग्निवत् पवित्र करनेहारे ! तू (द्युमत्) ज्ञान प्रकाश से युक्त होकर (नः दीदिहि) हमें भी प्रकाशित कर, हमें भी तेजस्वी और ज्ञानवान् कर। विश्वासां गृहपतिवैशामांसि त्वमेष्टे भानुषीणाम् । शतं पूर्भिर्ये-विष्ट प्रायंहृसः समेद्वारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्नी ! प्रभो ! राजन् ! पुरुष ! (त्वम्) तू (मानुषीणाम् विश्वासां विशाम्) समस्त मानुष प्रजाओं के बीच, (गृहपतिः असि) गृह स्तामी के समान, एवं उनके गृहों, घरों व स्त्री पुत्रादि का भी पालक है। हे (यविष्ठ) अति बलशालिन् ! अति तरुण ! हे अति शत्रुहिंसक ! (ये च ददति) जो तुझे कर आदि देते हैं उनको और (समेद्वारं) तुझे चमकाने और बढ़ाने वाले प्रजावर्ग को भी (पूर्भिः) उत्तम, पालक, नगर प्रकोट आदि साधनों से (शतं हिमाः) सौ २ वर्षों तक, पूर्ण आयु भर उनकी (अंहसः पाहि) पाप और हत्याकारी जन्तु, शत्रु आदि से रक्षा कर। (स्तोतृभ्यः) उपदेश्याओं के हितार्थ उनके (समेद्वारं) बढ़ाने वाले को भी (शतं हिमाः पाहि) सौ बरसों तक पालन कर।

त्वं नश्चित्र ऊत्या वस्त्रो राधांसि चोदय ।

अस्य रायस्त्वमेष्टे रथीरसि विदा ग्राधं तुचे तु नः ॥ ९॥

भा०—हे (वसो) प्रजाओं को भूमि पर बसाने वाले राजन् ! सबको बसाने और सब में बसने वाले प्रभो ! शिष्यादि को अपने अधीन बसाने वाले आचार्य ! गृहपते ! पितः ! (खं) तू (ऊत्या) रक्षा और ज्ञान सामर्थ्य से, वा उसके साथ २ (नः राधांसि) हमें नाना ऐश्वर्य (चोदय) प्रदान कर । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! प्रकाशस्वरूप, सर्वग्रकाशक ! तू (अस्य रायः) इस ऐश्वर्य का (रथीः असि) महारथी के तुल्य स्वामी है । तू (नः तुचे तु) हमारे पुत्रादि के लिये भी (गाधं विदाः) प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और बुद्धि प्राप्त करा और (चोदय) उनको सन्मार्ग में प्रेरित कर ।

पर्षिं तोकं तनयं पूर्तभिष्ट्वमद्वैरप्रयुत्वभिः ।

अग्ने हेत्वांसि दैव्यां युयोधि नोऽदेवानि द्वरांसि च ॥१०॥२॥

भा०—हे (अग्ने) आगे सन्मार्ग पर ले चलने हारे ! नायक ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (अद्वैये) अहिंसक, दम्भादि वृत्तियों से रहित, (अप्रयुत्वभिः) कभी भी पृथक् न होने वाले, सदा के संगी, (पूर्वभिः) पालक पुरुषों द्वारा (तनयं तोकं) पुत्र पौत्रवत् प्रजाजन को (पर्षिः) पालन, और ज्ञान धनादि से पूर्ण कर । और (नः) हमारे (दैव्या) विद्वानों के प्रति उत्पन्न हुए (हेत्वांसि) अनादर और क्रोध आदि के भावों को (च) और (अदेवानि द्वरांसि) हमारे अविद्वानों दुष्टों के योग्य कुटिल कर्मों को भी (युयोधि) हम से दूर कर । इति द्वितीयो वर्गः ॥

आ संखायः सर्वदुर्घाँ धेनुमज्ज्वमुप नव्यसुा वचः ।

सृज्ज्वमनपस्फुराम् ॥११॥

भा०—जिस प्रकार लोग (सर्वदुर्घाम् अनपस्फुराम् धेनुम आ अजन्ति, (आ सृजन्ति) दूध देने वाली, न मारने योग्य गौ को प्राप्त करते हैं और वध बंधन आदि से मुक्त करते हैं हे (संखायः) स्नेही मित्रो !

आप लोग भी उसी प्रकार (सबदुंचाम्) ज्ञानरस, और सुखदायक अज्ञ आदि को दोहन करने वाली, (अनपस्फुराम्) कभी नाश न होने वाली, अविनाशय (धेनुम्) वेद वाणी और भूमि की (नव्यसा) नये और स्तुत्य उपाय, अध्ययनाध्यापन तथा हलाकर्षणादि से (आ अज-ध्वम्) प्राप्त करो और भूमि को जोडो, और उत्तम (वचः आ सृजध्वम्) चचन बोलो । भूमि से (वचः = पचः) परिपक्व अज्ञ पैदा करा ।

या शर्धायु मारुतायु स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।

या मृल्लोक मरुतां तुराणां या सुमनैरेव्यावरी ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (या) जो भूमि गौ के समान ही (स्व-भानवे) धनैश्वर्य के तेज से स्वयं चमकने वाले, सूर्यवत् तेजस्वी (शर्धाय) बलवान् शरीरादि के धारक, शत्रुहिंसक, (मारुताय) मनुष्यों के स्वामी राजा, वा मनुष्यों के बसे राष्ट्र के लिये (अमृत्यु श्रवः) कभी न मरने वाले नित्य, एवं मृत्यु से रहित, क्षुधा रूप मृत्यु के नाशक, यश और अज्ञ को (धुक्षत) प्रदान करती है और (या) जो (मरुतां) मनुष्यों और (तुराणां) क्षिप्रकारी, शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (मृडीके) सुखदायी राजा के अधीन वा सुखकारी कार्य में लगी हो (या) और जो (सुम्नैः) सुखकारी कार्यों से (एव-यावरी) वेगवुक अश्रों, उत्तम उपायों द्वारा प्राप्त होती है उस भूमि को प्राप्त करो । (२) इसी प्रकार वाणी 'स्व' प्रकाश वाले (मारुताय) प्राण के लिये और बल के लिये अमृत ज्ञान प्राप्त करावे जो मनुष्यों के सुख के निमित्त है, जो (सुम्नैः) उत्तम ज्ञानी जनों द्वारा उपायों से प्राप्त होता है उस ज्ञान वाणी को प्राप्त करो । भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता ।

धेनुं च विश्वदौहसुमिष्वै च विश्वभौजस्सम् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! वह पूर्व कही वेदवाणी, चिदुषी स्त्री और पृथ्वी रूप गौ, (भरद्वाजाय) ज्ञान और एश्वर्य को धारण करने वाले

के लिये (द्विता) दोनों ही पदार्थ (अव धुक्षत) प्रेमपूर्वक नम्र होकर देती है, एक तो (विश्वदोहसं धेनुं च) वह समस्त सुख देने वाली वाणी का उपदेश करती है और (विश्वभोजसम् इषं च) समस्त विश्व का पालन करने और सबके भोजन करने योग्य अन्न भी प्रदान करती है । हे विद्वान् पुरुषोः! आप लोग भी उस समस्त सुखों के देने वाली और सुख का पालन करने वाली दोनों प्रकार की (धेनुं) वाणी और गोवत् भूमि का और (इषं च) इष्टतम अन्न और सेनादि का (अव धुक्षत) दोहन करो और ऐश्वर्यादि प्राप्त करो ।

तं वु इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।

आर्यमण्णं न मन्द्रं सूप्रभोजसं विष्णुं न स्तुत्य आदिशे ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (आदिशे) शासन-कार्य करने के लिये (इदं न) विद्युत के समान (सु-क्रतुं) उत्तम कर्मकुशल, (वरुणम्) इन सबको आवरण करने में समर्थ जालिया के तुल्य हिंसक के नाशक (मायिनम्) प्रज्ञावान्, बुद्धिचतुर (अर्यमण्णं न) शत्रुओं को वा मनुष्यों को नियम में बांधने वाले न्यायकारी पुरुष के समान (मन्द्रं) अति स्तुत्य, और (विष्णुं न) व्यापक सामर्थ्य वाले प्रभु के समान (सूप्र-भोजसं) प्राप्त हुए शरणागत का रक्षा करने वाले (तं) उस पुरुष की (स्तुते) मैं स्तुति करता हूँ । ऐसे पुरुष को ही राजपद ग्रहण करने का प्रस्ताव करूँ । परमेश्वर पक्ष में—‘न’ ‘च’ के अर्थ में है ।

त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वायनुर्वाणं पूषणं सं यथा श्रुता ।

सं सुहन्त्रा कारिष्वर्चर्षणिभ्यु आँ आविर्गुव्यहा वसुं करत्
सुवेदा ज्ञो वसुं करत् ॥ १५ ॥

भा०—(सुवेदाः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (तुविष्वणि) बहुत भारी शब्द करने वाला (त्वेषं) अतिरीक्षितयुक्त (शर्धः) शत्रुहिंसक,

बलशाली शशि (मारुतं शर्धः न) वायुओं के प्रबल बल के समान घोर शब्दकारी (कारिष्ट्) बनवाये और वह (अनर्वाणं करत्) अश्वादि से रहित सामान्य प्रजावर्ग को भी राष्ट्र का पोषण (पूषणं) पोषण करने वाला बनावे । (यथा) जिससे, वह (चर्पणिभ्यः) मनुष्यों के हित के लिये (शता) सैकड़ों और (सहस्रा) हज़ारों (वसु) ऐश्वर्यों को (सम् कारिष्ट्) संग्रह करे उनको संस्कृत करे, और (सु-वेदाः) उत्तम वैज्ञानिक पुरुष (नः) हमारे लिये सैकड़ों सहस्रों (गूढा वसु) गूढ गुप्त रूप से विद्यमान ऐश्वर्यों की भी (आविः करत्) प्रकट करे ।

आ मा पूष्नुप द्रव शंसिषुं नु ते अपिकर्णे आघृणे ।
अधा श्र्यो अरातयः ॥ १६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र के पोषण करने हारे ! हे (आ-घृणे) सब दूर तक तेजस्त्विन् ! वा सब प्रकार से दयाशील ! तू (मा आ द्रव) मुझे आदरपूर्वक प्राप्त हो । (उप द्रव) अति समीप आ । (अपि-कर्णे) तेरे कान के समीप (शंसिषम्) तुझे मैं उपदेश करता हूँ । तू (अर्यः) प्रजा का स्वामी होकर (अरातयः) कर न देने वाले उच्छृङ्खलों और अन्यों को धन न देने वाले दुष्टजनों को (अधाः) दण्डित कर । इति तृतीयो वर्गः ॥
मा काकुम्बीरमुद्धृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अहं एवा चुन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू (काकं-बीरम्) काक आदि नाना पक्षियों को भरण पोषण करने वाले (वनस्पतिम्) वट आदि बड़े वृक्ष के तुल्य (काकं-बीरम्) क्षुद्र या छोटे जनों के पालक पुरुष को (मा उद् वृहः) मत उखाड़ और मत काट । (अशस्तीः) अप्रशंसित तथा अयुक्त वचन बोलने वालों को तुरी धासों के समान (वि नीनशः हि) अवश्य विनष्ट करदे । तू (सूरः) प्रजा का शासक, विद्वान् सूर्यवत् तेजस्वी होकर भी (वेः चन ग्रीवाः आदधते) व्याध लोग जिस प्रकार पक्षियों की गरदन

पकड़ लेते हैं और उसको दुःख देते हैं तू (एवा) उस प्रकार (आ चन) हमारी कभी गर्दनें मत पकड़ (उत) और (मा अहः) हमें मत मार । हृतेरिव तेऽवृक्मस्तु सूख्यम् ।

अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥१८॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! (दधन्वतः) धारण करने वाले, (अच्छिद्रस्य) छिद्ररहित (दत्तेः) पात्र के समान (दधन्वतः) प्रजा का भरण पोषण और पालन करते हुए (अच्छिद्रस्य) त्रुटिरहित, प्रजा का व्यर्थ छेदन भेदन न करने वाले और (दधन्वतः) अति धनवान्, अति धनुर्धर और भूमि के स्वामी (दत्तेः) शत्रु सैन्य को विदारण और भयभीत करने वाले की (सख्यम्) मित्रता (अवृक्म अस्तु) भेड़िये के समान छल कपट से युक्त दिल काटनेवाली न हो ।

पुरो हि मत्यैरासि सुमो देवैरुत श्रिया ।

अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नुस्त्वमवा नुनं यथा पुरा ॥ १९ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र के पोषक ! तू (मत्यैः) मनुष्यों सहित (परः) सबका पालक और तृतिकारक (असि) है (उत) और (श्रिया) लक्ष्मी से (देवैः समः असि) विद्वान्, तेजस्वी तथा व्यवहारवान्, धनाङ्ग पुरुषों के समान है । तू (पृतनासु) संग्राम के अवसरों, मनुष्यों वा सेनाओं के बीच में (नः अभि ख्यः) हमें सब प्रकार से देख और (यथा पुरा) पहले के समान ही (नुनं) अवश्य (त्वं नः अव) तू हमारी रक्षा किया कर ।

व्रामी व्रामस्य धूतयुः प्रणीतिरस्तु सूनूता ।

देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेज्ञानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥

भा०—(हे धूतयः) शत्रुओं को कंपाने और भीतरी दोषों को त्यागने द्वारे, (प्र-यज्यवः) उत्तम दान, यज्ञ और सत्संग करने वाले, (मरुतः)

विद्वान् पुरुषो ! (वामस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) दानशील, व्यवहारज्ञ, और तेजस्वी, (वा) और (ईजानस्य) यज्ञशील (मर्त्यस्य). मनुष्य की (सूनृता) उत्तम सत्यवाणी और (प्र-नीतिः) उत्तम नीति (वामी अस्तु) सबको सुन्दर लगाने वाली, प्रिय हो ।

सूद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः । त्वेषं शवो
दधिरे नाम यज्ञियं मुरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥२१॥

भा०—(वाम् परि सूर्यः नः) आकाश में जिस प्रकार सूर्य उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार जो (देवः) तेजस्वी, विजिगीषु राजा (द्यां परि एति) भूमि पर विचरता है, और (यस्य चित् सद्यः चर्कृतिः) जिसका कर्म सामर्थ्य शीघ्र ही फल देता है, वह पुरुष तेजस्वी होता है । उसके अधीन ही (मरुतः) वीर मनुष्य (त्वेषं) अति दीप्तियुक्त (शवः) बल जौर (वृत्रहं नाम) शत्रु हननकारी नाम, ख्याति और (यज्ञियं) यज्ञ, आत्मस्थाग और परस्पर संगठन से उत्पन्न (शवः) बल को भी (दधिरे) धारण करें, क्योंकि (वृत्रहं शवः) विज्ञकारी एवं दढ़ते शत्रु को नाश कर देने वाला बल ही (ज्येष्ठं) सब से बड़ा, श्रेष्ठ होता है ।

स्कृद्ध द्यौरजायत स्कृद्धमिरजायत ।

पृश्न्या दुर्घं स्कृतपयुस्तदन्यो नानु जायते ॥२२॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (द्यौः स्कृत् अजायत) सूर्य जिस प्रकार एक बार ही उत्पन्न होता है, (भूमिः स्कृत् अजायत) और भूमि भी एक ही बार उत्पन्न होती है । (पृश्न्याः दुर्घं पर्यः स्कृत्) भूमि से दोहन करने योग्य अज्ञ तथा अन्तरिक्ष से दोहन करने योग्य वृष्टि का जल भी वर्ष में एक ही बार होता है । (अन्यः) दूसरा जो होता भी है वह (न अनु जायते) उसके समान नहीं पैदा होता । उससे न्यून गुण वाला ही होता है, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष एक ही बार अभिषिक्त हो, भूमि भी उसको एक बार ही वरले । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४६]

ऋजिशा कृषिः ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, १०, ११
त्रिष्टुप् । ५, ६, ८, १३ निचुत्रिष्टुप् । ८, १२ विराट्त्रिष्टुप् । २, १४ स्वराट्
पंक्तिः । ७ ब्राह्मचार्णिक् । १५ आतिजगती । पञ्चदशर्च सूक्तम् ॥

स्तुषे जनं सुवृतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुमन्त्रयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुकृत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१॥

भा०—(सु-वृतं) उत्तम व्रत, धारण करने वाले, उत्तमकर्मा,
(जनं) उत्पन्न बालक, शिष्य वा प्रजाजन को (नव्यसीभिः गीर्भिः)
नवी से नवी, अति उत्तम विद्याओं वा वाणियों से (सुमन्त्रयन्ता मित्राव-
रुणा) सुख प्रदान करते हुए स्वेहयुक्त और कुपथ से वारण करने वाले मित्र,
वरुण, अध्यापक और उपदेशक एवं मित्र और वरुण, ब्राह्मण और क्षत्रिय
जन, दोनों की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ । (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ,
संकटों का वारण करने वाला, (मित्रः) स्नेही वा प्रजा को मरण से
बचाने वाला, (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानी पुरुष, तीनों ही (सु-कृत्रासः)
उत्तम, वीर्य, क्षात्रबल और धन से युक्त है । (ते) वे (आ गमन्तु)
आवें, (ते इह) वे यहां हमारे प्रार्थना वचन (श्रुवन्तु) श्रवण करें ।
विशोविंश ईड्यमध्वरेष्वद्वक्तुमर्तिं युवत्योः ।

द्विवः शिशुं सहसः सूनुमार्ग्ने यज्ञस्य केतुमरुषं यज्ञध्यै ॥ २ ॥

भा०—(विशः विशः) प्रत्येक प्रजा में (ईड्यम्) स्तुति योग्य,
(अध्वरेषु) हिंसारहित, अविनाश योग्य, स्थायी कार्य-व्यवहारों में,
(अद्वसन्कृतम्) बुद्धि में मोहित न होने वाला, कर्म करने पर गर्व रहित,
(युवत्योः) युवा युवति दोनों के बीच (द्विवः) अति कमनीय, तेजस्विनी,
एक पुत्र की कामना करने वाली स्त्री और (सहसः) बलवान् पुरुष दोनों
के (सूनुम्) पुत्र (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (अरतिम्)

विषय में न रमने वाले, जितेन्द्रिय, (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञ के परस्पर संगति, लेन देन के व्यवहार के ज्ञापक, प्रमुख चिह्न रूप और (अरुपं) रोप रहित, सौम्य पुरुष को (यजद्धै) आदर सत्कार करने के लिये उसकी स्तुति कहूँ ।

अरुपस्य दुहितरा विरुपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३॥

भा०—(अरुपस्य) जिस प्रकार अति प्रदीप सूर्य के (दुहितरा) पुत्र पुनियों के समान (विरुपे) एक दूसरे से भिन्न रूप के होकर भी उनमें से (अन्या) एक (स्तृभिः पिपिशे) नक्षत्रों से सुशोभित होती है, और (अन्या सूरः) दूसरे को सूर्य प्रकाशित करता है, वे दोनों जिस प्रकार (मिथः-तुरा) परस्पर मिलने को त्वरावान् होते हुए (पावके) अति पवित्र रूप होकर (वि-चरन्ती) विविध रूप में गति करते हुए रहते हैं उसी प्रकार (अरुपस्य) तेजस्वी, सूर्यवत् ज्ञानवान् आचार्य के (दुहितरा) ज्ञान का अच्छी प्रकार दोहन करने वाले, शिष्य शिष्या, (वि-रुपे) भिन्न २ कान्तियों वाले, श्री पुरुष हों, उनमें से (अन्या) एक (स्तृभिः) नाना आच्छादक वस्त्रों से (पिपिशे) सजे (अन्या सूरः) अन्य स्वयं सूर्यवत् तेजस्वी कान्तिमान् हों । वे दोनों (पावके) अति पवित्र आचारवान् होकर (मिथः-तुरा) एक दूसरे से मिलने के लिये अति त्वरावान् अति उत्सुक (वि-चरन्ती) विविध ब्रतादि का आचरण करते हुए हों । वे दोनों (ऋच्यमाने) स्तुति योग्य होते हुए (श्रुतं मन्म) श्रवण किये गये, मनन योग्य ज्ञान को (नक्षतः) सदा प्राप्त हों । अथवा—(पावके (मिथस्तुरा विचरन्ती) पावक, पापशोधक अग्नि को साक्ष्य में परस्पर उत्सुक होकर विविध ब्रत, प्रतिज्ञादि करते हुए, (श्रुतं मन्म) वेदोपदिष्ट ज्ञान कर्म का आचरण करें ।

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कुविमियक्षासि प्रयज्यो ॥४॥

भा०—(मनीषा वायुम्) जिस प्रकार बुद्धि या मति, चित्त की वृत्ति ज्ञान या चेतनायुक्त आत्मा को प्राप्त होती है उसी प्रकार (बृहती मनीषा) बड़ी, बुद्धिमती, मन की प्रबल इच्छा वाली स्त्री (बृहद्-रयिं) बड़े ऐश्वर्य युक्त, (विश्व-वारं) सब प्रकार से वरण करने योग्य (रथ-प्राम्) रथ से आने वाले (वायुम्) वायुवत् बलवान् और प्राणवत् प्रिय पुरुष को (अच्छ) उत्तम रीति से (प्र इयक्षति) प्राप्त हो । हे (प्र-यज्यो) उत्तम सम्बन्ध में बंधने हारे पुरुष ! तू (कविः) विद्वान् और (द्युतद्यामा) चमचमाते रथ वाला, (नियुतः) तेरे साथ सब प्रकार से मिलने वाली स्त्री का (पत्यमानः) पति होना चाहता हुआ तू (कविम्) विदुषी, बुद्धिमती स्त्री को (प्र इयक्षसि) अच्छी प्रकार प्राप्त कर । (२) योगी पक्ष में—(बृहस्ती मनीषा) बड़ा भारी ज्ञान, उस (बृहद्रयिं विश्ववारं रथ-प्राम्) महान् ऐश्वर्यवान् सर्व वरणीय ब्रह्माण्ड में व्यापक प्रभु को प्राप्त है । हे (प्र-यज्यो) उत्तम ईश्वरोपासक ! तू विद्वान् होकर (द्युतद्यामा) यम नियमों द्वारा तेजस्वी होकर (नियुतः पत्यमानः) इन्द्रियों का स्वामी, जितेन्द्रिय होकर तू (कविम्) उत्त क्रान्तप्रज्ञ प्रभु की ही (प्र यक्षसि) अच्छी प्रकार उपासना किया कर ।

स मे वपुश्छुदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषु यध्यै वृत्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥४॥

भा०—(यत् रथः) जो रमणीय, सुखजनक व्यवहार (विरुक्मान्) विविध रूचियों से समृद्ध, (मनसा युजानः) चित्त से जुड़ने वाला है (येन) जिससे (नरा) स्त्री और पुरुष दोनों (न-असत्या) कभी परस्पर असत्याचरण न करते हुए वा नासिका अर्थात् मुख्य स्थान पर विराजते हुए, (तनयाय त्मने च) पुत्र लाभ और अपने जीवन या

आत्मा के हितार्थ (वर्त्तिः यथः) जीवन-मार्ग व्यतीत करते हैं वह (विरुद्धमान् रथः) विशेष कान्तिमान् रथ के समान आश्रम (मे वपुः च्छद्रयत्) मेरे शरीर को आश्रय, बल देता हुआ उसकी रक्षा करे । इति पञ्चमो वर्णः ॥

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वत्मण्यानि ।

सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्य-वाता वृषभा) पर्जन्य अर्थात् मेघ को लाने वाले और वर्षा करने वाले दो प्रकार के सूर्य वायु या मेघ और वायु दोनों (पृथिव्याः) पृथिवी के लिये (अप्यानि पुरीषाणि जिन्वतः) समुद्र के जलों को लाते हैं उसी प्रकार हे (वृषभा) वीर्य सेचन में समर्थ, नर-श्रेष्ठ, बलवान् स्त्री पुरुषो ! और (पर्जन्य-वाता) मेघ वायु के समान सुखवर्धक और प्राणवत् प्रिय ! आप दोनों (पृथिव्याः) पृथिवी के ऊपर उत्पन्न (अप्यानि) जलों से उत्पन्न (पुरीषाणि) नाना ऐश्वर्यों को (जिन्वत्म्) प्राप्त करो । हे (कवयः) विद्वान् लोगो ! (यस्य सत्य-श्रुतः) सत्योपदेश का श्रवण करने वाले जिस विद्वान् की (गीर्भिः) वाणियों से (जगतः) जंगम संसार का और (स्थातः) स्थावर संसार का भी ज्ञान होता है आप लोग उसके (आ) अधीन ही (जगत्) इस जंगम संसार को (कृणुध्वम्) करो ।

पावीरवी कृन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।

ग्नाभिरच्छुद्रं शरुणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्मं यंसत् ॥ ७ ॥

भा०—(पावीरवी) आचारादि को पवित्र करने वाली, (कृन्या) कान्तिमती, कृन्या (चित्रायुः) आश्रव्यजनक आगमन, वा जीवन वाली, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त, (वीरपत्नी) वीर पुरुष की स्त्री, (ग्नाभिः) वेद वाणियों से (धियं धात्) यज्ञ आदि कर्म करे । वह (सजोषा) समान प्रीतियुक्त होकर (गृणते) मुक्ते स्तुति करने वाले को (दुराधर्षं) दृढ़ (शरणं) गृह और (शर्म) सुख (यंसत्) प्रदान करे ।

प्रथस्पृथः परिपति वचस्या कामेन कृतो अभ्यानक्रम् ।

स नौ रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥८॥

भा०—(पूषा) सबका पोषण करने वाला पोषक, सहायक जन, (कामेन कृतः) अपनी कामना से प्रेरित होकर (वचस्या) उत्तम वचन युक्त वाणी से (पथः-पथः) प्रत्येक मार्ग में (परिपति अर्कम् अभ्यानद्) पालक स्वामी से प्राप्त होने वाले अज्ञ वा आदर योग्य पद को प्राप्त करे । (सः) वह (नः) हमें (चन्द्राग्राः) आह्वादजनक वचनों और स्वर्णादि पदार्थों सहित (शुरुधः = आशुरुधः, शुग्-रुधः) अति शीघ्र हृदय को पापादि प्रवृत्तियों को रोकने वाली वा शोकादि की नाशक वाणियों का (रासत्) उपदेश करे, और वह (धियं-धियं) प्रत्येक कार्य और प्रत्येक ज्ञान को (प्र सीषधाति) अच्छी प्रकार करे ।

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगमस्तुमृभवम् ।

होता यज्ञद्यज्ञतं प्रस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहृवं विभावा ॥९॥

भा०—(होता) दानशील (अग्निः) तेजस्वी विद्वान् (वि-भा-वा) विशेष कान्तिमान्, होकर भी (प्रथम-भाजं) प्रथम, पूज्यों का सेवन करने वाले, (यशसं) यशस्वी, (वयोधां) बल, ज्ञान, दीर्घायु के धारण करने कराने वाले, (सुपाणि) उत्तम हाथ वाले, उत्तम व्यवहारवान् (देवम्) दानशील, ज्ञानदाता, (सु-गमस्तिम्) सूर्यवत् उत्तम बाहु वाले और उत्तम किरणवान्, सुप्रकाशक, (ऋभ्वम्) अति तेजस्वी, सत्य ज्ञान से युक्त (यजतं) सत्संग योग्य, (त्वष्टारं) संशयादि के छेत्ता, सूर्यवत् प्रकाशक (पस्यानां) गृहों, वा प्रजाओं के बीच (सु-हवं) सुगृहीत नामधेय गुरुजन का (यक्षत्) सत्कार करे और उत्तम भेंट अज्ञ आदि प्रदान करे । स्नातक गृह में प्रवेश कर लेने या स्वयं जगत् में उत्तम पदस्थ होकर भी गुरुजन व प्रभु का सदा आदर और उसकी उपासना, करता रहे ।

भुवनस्य पितरं गीर्भिरुभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमङ्गौ ।

बृहन्तमूष्वमजरं सुषुम्नमूर्धग्नुवेम कविनेषितासः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्य (आभिः गीर्भिः) इन नाना वाणियों से (भुवन-स्य पितरं) समस्त संसार के पालक (रुद्रं) रोगों, दुःखों को दूर करने वाले, प्रभु परमेश्वर को (दिवा) दिन के समय और उसी (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले प्रभु को (अक्तौ) रात्रि के समय भी (वर्धय) सदा बढ़ा, सदा उसकी स्तुति कर। और हम (कविना) विद्वान् पुरुष द्वारा (इषितासः) ऐरित होकर (बृहन्तम्) महान् (ऋष्वम्) दर्शनीय (अजरम्) अविनाशी, (सु-सुम्नम्) उत्तम सुखमय प्रभु को ही (ऋधक् हुवेम) सत्य स्वरूप में स्तुति किया करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।

अचित्रं चिद्विजिन्वथा वृधन्ते इत्थानक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११॥

भा०—(अङ्गिरस्वत् मरुतः चित् अचित्रं जिन्वन्ति) दीसि युक्त किरणों के समान वायुगण जिस प्रकार नाना ओषधि आदि से रहित क्षेत्र को जल बरसा कर तृप्त करते हैं उसी प्रकार हे (युवानः कवयः) युवा विद्वान् पुरुषो ! हे (नरः) नेता जनो ! आप लोग भी (अङ्गिरस्वत्) अद्वियों, किरणों या प्राणों के तुल्य (नक्षन्तः) स्थान २ पर जाते हुए (अचित्रं हि जिन्वथ) साधारण जन को ज्ञान से तृप्त करो और (वृधन्तः) बढ़ते, बढ़ाते हुए, (यज्ञियासः) उत्तम आदर सत्कार के योग्य होकर (गृणतः) उपदेश करने वाले पुरुष की (वरस्यां) उत्तम वाणी को (गन्त) ग्रहण करो ।

प्र वीराय प्र तुवसे तुरायाजा युथेव पशुरक्षिरस्तम् ।

स पिस्तुशति तुन्व श्रुतस्य स्तुभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥ १२ ॥

भा०—(पशुरक्षिः अस्तम् यूथा इव) पशुओं की रक्षा करने वाला,

पशुपालक जिस प्रकार अपने पशुओं के रेबड़ों को अपने घर को हांक ले जाता है उसी प्रकार तू (वीराय) वीर, विविध विद्या के दाता, (तवसे) बलवान्, (तुराय) शत्रु हिंसक पुरुष के लिये (प्र अजं) स्तुतियें प्रकट कर, वा (युथा प्र अज) जन समूहों को उत्तम मार्ग में चल । (नाकं स्तुभिः न) अन्तरिक्ष जिस प्रकार नक्षत्रों से मण्डित होता है उसी प्रकार (सः विषः) वह विद्वान् भी (श्रुतस्य) श्रवण करने योग्य (तन्वि स्तुभिः) शरीर पर उत्तम आच्छादक वस्त्रों से सुशोभित होकर (श्रुतस्य वचनस्य) श्रवण योग्य, उत्तम वचन का (पिस्पृशति) निरन्तर श्रवण किया करे ।

यो रजांसि विमुमे पार्थिवानि त्रिश्चुद्रिष्णुर्मनवे वाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपद्यमाने राया मदेम तन्वाऽतनां च ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (वाधिताय मनवे) कर्म बन्धनों से पीड़ित मनुष्य के मनन, ज्ञान वाले, चेतना से युक्त जीव-गण के उपकार के लिये (त्रिः चित् पार्थिवानि रजांसि) तीनों पार्थिव आदि लोक (वि ममे) विरचता है, हे प्रभो ! (तस्य ते) उस तेरे (उपद्य माने) दिये गये (शर्मन्) सुख, शरण में हम (तना) विस्तृत (राया) ऐश्वर्य और (तन्वा) शरीर से (मदेम) सुखी हों ।

तन्नोऽहिर्वृद्ध्यो श्रुद्धिरकैस्तत्पर्यंतस्तस्विता चनों धात् ।
तदोषधीभिरुभि रातिषाचो भगः पुरन्धर्जिन्वतु प्र याये ॥ १४ ॥

भा०—(बुद्ध्यः अहिः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ और (पर्वतः) पालन पूर्ण करने वाला मेघ, वा पर्वत (सविता) और सूर्य (नः) हमें (तत् तत् तत्) नाना प्रकार का (चनः) अग्न (अङ्गिः) जलों और (अकेः) सूर्य किरणों सहित (धात्) प्रदान करे । (तत्) वह

(राति॒साचः) दानशील पुरुष (भगः) ऐश्वर्यवान्, और (पुरन्धिः) जगत् को एक पुर के समान धारण करने वाला प्रभु वा (ओषधीभिः) ओषधियों द्वारा (चनः) अज्ञ को (अभि जिन्वत्) खूब वृद्धि करें और (राये प्रजिन्व) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये अज्ञ को खूब बढ़ावें ।

नू नौ रुयि रुथ्यै चर्षणिप्रां पुरुवीरै मृह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयै दाताजरं येन जनान्त्स्पृष्ठो अदैवीरुभि च क्रमाम्
विश आदैवीरुभ्य॑शनवाम् ॥ १५ ॥ ७ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (नः) हमें (रथ्य) रथ आंदि के योग्य (चर्षणिप्राम्) मनुष्यों को पूर्ण करने वाले (पूरुवीरं) बहुत से वीर पुरुषों से युक्त, (महः ऋतस्य) बड़े धनैश्वर्य के (गोपाम्) रक्षक (अजरं) अविनाशी (क्षयं) गृह, दुर्ग (नः) हमें (दात) प्रदान करो, (येन) जिससे हम (स्पृष्ठः जनान्) स्पर्धा करने वाले मनुष्यों को और (अदैवीः) देव अर्थात् शुभ गुणों और उत्तम मनुष्यों से रहित दुष्ट प्रजाओं को (अभि क्रमाम्) पराजित करें और (अदैवीः) सब प्रकार से उत्तम गुणों से युक्त शुभ प्रजाओं को (अभि अश्वाम्) प्राप्त करें । इति सप्तमो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[५०]

ऋजिष्ठा ऋषिः ॥ विष्णे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७ विष्णुष्टु । ३, ५, ६,
१०, ११, १२ निचृतिविष्टु । ४, ८, १३ विराट्विष्टु । २ स्वराट् पंक्तिः ।
६ पंक्तिः । १४ मुरिक् पंक्तिः । १५ निचृत्पंक्तिः ॥ पञ्चदशर्च मृकम् ॥

हुवे वौ देवीमर्दिति नमोभिर्मूलीकाय वरुणं मित्रसुग्रिम् ।
अभिक्षुदामर्यमर्णे सुशेवं त्रातृन्देवान्तस्यितारं भर्ण च ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो मैं (वः) आप लोगों के (मृडीकाय) सुख के लिये (अदितिम्) अदीन, अपराधीन, स्वतन्त्र, अखण्डित चरित्र वाली ब्रह्मचारिणी (देवीम्) तेजस्विनी स्त्री को (नमोभिः) आदर सत्कारों सहित (हुवे) अपने यहां बुलाऊं, निमन्त्रित करुं । इसी प्रकार (वरुणं) दुःखों, कष्टों को वारण करने वाले (मित्रम्) स्नेहवान्, सुहृद्, (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी, ज्ञानी, (अभिक्ष-दाम्, अभि-क्षदाम् = अभिक्षदाम्) कुपात्र में भिक्षा न देने वाले वा शत्रुओं को उनके मुकाबले पर मारने वाले, (अर्यमणं) शत्रुओं को नियम में बांधने वाले, न्यायकारी, (सु-शेवं) उत्तम सुखदाता, (सवितारं) सूर्यवत् तेजस्वी और उत्पादक पिता, माता, गुरु, और (भगं) सेवने योग्य ऐश्वर्यवान् पुरुष और (त्रातृन् देवान्) पालक वीरजन और व्यवहार कुशल पुरुष को भी मैं (नमोभिः हुवे) आदर युक्त वचनों और सत्कारों से बुलाऊं ।

सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितृननाग्रास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।

द्विजन्मानो य ऋत्सापः सूत्याः स्वर्वन्तो यजुता अग्निजिह्वाः ॥२॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (सु-महः) उत्तम तेज युक्त (दक्ष-पितृन्) दाहक सामर्थ्य, ताप से युक्त (सु-ज्योतिषः) उत्तम कान्तियुक्त (देवान्) किरणों को प्राप्त है उसी प्रकार है (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! तू भी (सु-ज्योतिषः) उत्तम ज्ञान प्रकाश से युक्त, (दक्ष-पितृन्) चतुर माता पिता और गुरुजनों (देवान्) ज्ञान, धन, अज्ञ, वस्त्रादि के दाता (स-महः) उत्तम उन पूजनीय पुरुषों को तू (अना-गास्त्वे) अपराध और पाप से मुक्त होने के लिये (वीहि) प्राप्त हो (वे) जो (द्वि-जन्मानः) माता पिता और गुरु द्वारा जो जन्म प्राप्त होकर द्विज, हो, (ऋत्-सापः) सत्य वचन और ज्ञान से सम्बन्ध बनाने वाले, सत्यवादी (सत्याः) सत्य कर्मा, (यजुताः) सत्संग योग्य, दानी, और (अग्नि-जिह्वाः) अग्नि के समान वाणी द्वारा यथार्थ बात को प्रका-

शित करने वाले और (स्वर्वन्तः) सुख और उत्तम उपदेशमय ज्ञान को धारण करने वाले हैं ।

उत चाँचापृथिवी ज्ञन्त्रमुख वृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।

महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे ज्ञयाय धिषणे अनेहः ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (चाँचा पृथिवी) सूर्य पृथिवी या आकाश और पृथिवी के समान प्रजा और राजा तथा माता पिता जनो ! आप दोनों (उरु क्षत्रम् करथः) बहुत बड़ा बल उत्पन्न करो । हे (रोदसी) एक दूसरे का सन्मार्ग वा धर्म मर्यादा में रोकने वा बांधने वाले स्त्री पुरुषो ! हे (सु-सुम्ने) सुख से रहने वालो ! आप दोनों (वृहत् शरणं) बड़ा गृह (करथः) बनाओ । हे (धिषणे) धारण पोषण करने वाले जनो ! आप दोनों (नः) हमारे लिये (यथा महः वरिवः करथः) जिस प्रकार बड़ा भारी धन और सेवादि करते हैं उसी प्रकार (नः क्षयाय) हमारे रहने के लिये (अनेहः) पाप हत्यादि से रहित गृह, राज्य प्रबन्धादि करो । आ नों रुद्रस्य सूनवो नमन्ताम् द्या हुतासो वसुवोऽधृष्टाः ।

यदीमर्भे महृति वा हितासो ब्राधे सुरुतो अह्नाम देवान् ॥ ४ ॥

भा०—(यत ईम्) जो कोई (अर्ये महृति वा) छोटे वा बड़े कार्य वा पद पर (हितासः) नियुक्त हैं ऐसे (रुद्रस्य सूनवः) दुष्टों को हलाने वाले सेनापति के अधीन चलने वाले, उसके पुत्रवत् आज्ञापालक (वसवः) राष्ट्र में बसे और अन्यों को वसाने वाले, (अधृष्टाः) अप्रगल्भ, विनीत हैं, वे (अद्य) आज (नः आ नमन्ताम्) हमें विनष्टपूर्वक प्राप्त हों । हम उन (देवान्) विद्वान् वा विजयेच्छुक (मरुतः) मनुष्यों को (ब्राधे) संग्राम, वा पीड़ा हुःखादि के अवसर पर (अह्नाम) बुलाया करें । वे हमें उस कष्ट से पार करें ।

सिम्यक् येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा श्रभ्यर्द्युयज्वा ।

श्रुत्वा हर्च मरुतो यद्य याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (पूषा मरुत्सु देवी रोदसी मिम्यक्ष सिषक्ति च) सूर्य वायुओं के आश्रय पर ही आकाश और पृथिवी दोनों को वृष्टि आदि से सीचता है, उसी प्रकार (येषु) जिन विद्वानों और वीर पुरुषों का आश्रय लेकर (अभ्यर्धन्यज्वा) अपना उत्तम समृद्ध भाग देने वाला, (पूषा) प्रजा-पालक राजा (रोदसी देवी) रुद्र, दुष्टों के रुलाने वाले राजा वा सेनापति को विजयशील और सर्व सुखदात्री, सेना और प्रजा दोनों (मिम्यक्ष) ऐश्वर्य का सेवन करता, और (सिषक्ति) दोनों को परस्पर मिलाये रखता है, और (यत् ह) जो (मरुतः) वीर विद्वान् पुरुष (प्रविक्ते) अच्छी प्रकार से निर्णय किये गये, विवेचित (अध्वनि) मार्ग में (रेजन्ते) गमन करते हैं हे मनुष्यो ! (भूमौ) इस भूमि पर आप उनका (हवं श्रुत्वा) उपदेश श्रवण करके ही (याथ) सन्मार्ग पर चलो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

अभि त्यं वीरं गिर्वैणसमुच्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्त्त्वेन ।

अवदिद्धवसुप॑ च स्तवान्तो रासुद्वाजाँ उप॑ मुहो गृणानः ॥ ६ ॥

भा०—हे (जरितः) उपदेश करने वाले विद्वन् ! जो (गृणानः) उपदेश करता हुआ (महः वाजान् उप रासत्) बड़े २ उत्तम ज्ञानों का उपदेश करता और (स्तवानः) स्तुति का उपदेश किया जाता हुआ (त्यम्) उस ग्राह्य ज्ञान का (उप श्रवत् च) गुरु के समीप श्रवण भी करता है (त्यं वीरम्) उस वीर, विविध विद्या के उपदेष्टा, (गिर्वणसं) वाणियों के प्रदाता, (इन्द्रं) ऐश्वर्ययुक्त ज्ञानद्रष्टा आचार्य को (नवेन ब्रह्मणा) नये, नव उत्पन्न अक्ष और धन से प्रथम विद्वान् उपदेष्टा गुरु की अर्चना करनी चाहिये । वे विद्वान् ज्ञान का उपदेश किया करें ।

ओमानंमापो मानुषीरमृक्खं धात् त्रोकायु तनयायु शं योः ।

युयं हि ष्ठा भिषजों सातृतंसा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनिंत्रीः ॥

भा०—हे (आपः) आप जनो ! आप लोग (ओमानं) रक्षा आदि-

करने वाले, पुरुष को और (मानुषीः) मनुष्य प्रजा और (अमृतं) अशुद्ध जन को भी जलवत् स्वच्छ करके (धात) धारण पोषण करो । और (तोकाय तनयाय) छोटी उमर वाले पुत्र के लिये मातावत् (शं) शान्ति प्रदान और दुःख दूर करो । (यूं) आप लोग (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः) स्थावर और जंगम दोनों की (जनित्रीः) पैदा करने वाली (मातृतमाः) उत्तम माताओं के समान (मिषजः स्थ) सब रांगों को दूर करने वाले होओ । जल जिस प्रकार स्थावर और वृक्षादि जंगम जीवों को उत्पन्न करते और सर्व रोग हरते, शान्ति देते, पीड़ा हरते अशुद्ध को स्वच्छ करते अन्न को बढ़ाते और उत्तम माता के समान हैं । उसी प्रकार आप जन वैद्यवर, और माताएँ छियें भी, रक्षक को बचावें, अशुद्ध को शुद्ध करें, पुत्रों को शान्ति दें, उत्तम सन्तान और अन्य वनस्पति आदि को उत्पन्न करें । ज्ञानवान् प्रभाता होने से विद्वान् 'मातृतम' हैं । स्थावर जंगम सबका ज्ञान प्रकट करने वा विज्ञानपूर्वक उत्पन्न करने से दोनों के 'जनित्री' हैं ।

आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजुतो जंगम्यात् ।
यो दत्रिवाँ उषसु न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥८॥

भा०—(देवः) ज्ञान और धन का देने वाला, (सविता) पिता-चत् उत्पादक सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रायमाणः) प्रजा की रक्षा करने वाला, (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण आदि धन को अपने हाथ में रखने वाला, (यजतः) पूज्य पुरुष (नः आजगम्यात्) हमें प्राप्त हो । (यः) जो (दत्रिवान्) दान योग्य धन का स्वामी, सूर्य के समान (उषसः प्रतीकं न) प्रभात बेला के समान प्रतीति कर बचन तथा (वार्याणि) उत्तम धन और ज्ञान भी (दाशुषे) आत्मसमर्पक प्रजाजन को (वि उर्णुते) प्रकट करता है ।

उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे वृत्याः ।
स्यामुहं ते सद्गिमिद्रातौ तवं स्यामुग्नेऽवसा सुवीरः ॥ १ ॥

भा०—हे (सहसः: सूनो) शत्रु को पराजय करने में समर्थ, सैन्य बल
के संचालक ! बलवान् पिता के शिष्य वा पुत्र ! (त्वं) तू (अद्य)
आज (अस्मिन् अध्वरे) इस हिंसारहित प्रजापालनादि कार्य में (देवान्)
उत्तम गुणों वा पुरुषों को (नः आवृत्याः) हमें प्राप्त करा । (उत)
और मैं (सवम्) सदा, वा (सदम्) प्राप्त करने योग्य अंश को प्राप्त करके
(ते रातौ स्याम्) तेरी दी वृत्ति के अधीन रहूँ और (तव अवसा) तेरी
रक्षा और अज्ञादि से हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (सुवीरः स्याम्) उत्तम वीर,
और उत्तम सन्तानयुक्त होऊँ ।

उत त्या मे हृमा जग्म्यात्तं नास्त्या धीभिर्युवमङ्गा विप्रा ।

अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्षुं तूर्वतं नरा दुरितादुभीके ॥ १० ॥ १ ॥

भा०—(उत) और (अङ्ग) हे (नासत्या) असत्याचरण करने
वाले, सत्य मार्ग पर सबको लेजाने हारे (विप्रा) विद्वान् ल्ली पुरुषो !
(त्या युवम्) वे आप दोनों (मे) मेरे (हृम्) ग्राह्य पदार्थ, वचन
अज्ञादि को (जग्म्यात्तम्) प्राप्त करो । (अत्रिं न) सूर्य चन्द्र दोनों
जिस प्रकार (अत्रिं) इस लोक में रहने वाले जनों को (महः तमसः:
मोचयतः) बड़े अन्धकार से मुक्त करते हैं उसी प्रकार आप दोनों (अत्रिं)
इस लोक या स्थान में विद्यमान मनको (महः तमसः) बड़े अज्ञान रूप
अन्धकार से और (दुरितात्) दुष्ट अधर्माचरण से भी (अमुमुक्षम्)
सदा छुड़ाते रहो । हे (नरा) उत्तम नर नारियो ! उत्तम मार्ग में ले
जाने हारे आप दोनों (अभीके) सदा समीप रह कर (तूर्वतम्) दुष्ट
जन वा दुर्गुणों का नाश करो । इति नवमो वर्णः ॥

ते नो रायो द्युमतो वाज्वतो द्रातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।

द्युशस्यन्तो द्विव्याः पार्थिवासू गोजाता अप्यां मूलतां च देवाः ॥ ११ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हे दानशील पुरुषो ! (ते)
वे आप लोग (नः) हमें (द्युमतः) दीप्तियुक्त, (वाजवतः) बलयुक्त,
(नृवतः) उत्तम भृत्यादि वाले, (पुरुषोः) बहुत से अन्नादि से सम्पन्न
(रायः) धन ऐश्वर्य के (दातारः भूत) देने वाले होवो । आप
लोग (पर्थिवासः) पृथिवी के स्वामी, (गो जाताः) वाणी के प्रसिद्ध,
विद्वान्, (अन्याः) जलादि विद्या के ज्ञाता वा भूमि, अन्तरिक्ष और जलों
की विद्या में निष्ठात होकर (दशस्यन्तः) ज्ञान प्रदान करते हुए (नः)
हम सबको (मृडत) सुखी करो ।

ते नौं रुद्रः सरस्वतीं सुजोषा मीढ्हुष्मन्तो विष्णुं मृङ्गन्तु वायुः ।
ऋभुक्ता वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पित्यतामिषं नः ॥१२॥

भा०—(रुद्रः) दुष्ट पुरुषों को ढण्ड देने वाला, राजा और उपदेश
देने वाला विद्वान् और रोगों को दूर करने वाला वैद्य, (सरस्वती) उत्तम
विज्ञानवती वेदवाणी और विदुषी छो, (सजोषाः) प्रीतियुक्त मित्रजन,
(विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष, (वायुः) वायुवत् बलवान् और ज्ञानी
पुरुष (ऋभुक्ताः) विद्वान्, (दैव्यः) विद्वानों से नियुक्त (विधाता),
विधानकर्ता, (पर्जन्य-वाता) मेघ और वायु के समान, विजयशील और
बलवान् पुरुष ये सभी (मीढ्हुष्मन्तः) उत्तम सेचन करने वाले, प्रजा को
बढ़ाने वाले गुणों से युक्त होकर (नः) हमें (मृङ्गन्तु) सुखी करें ।
और (नः इषं) हमारे अन्न की वृद्धि करें । (२) (रुद्रः) अग्नि,
(सरस्वती) नदी, (विष्णुः) सूर्य, (वायुः) वायु, (ऋभुक्ताः)
महान् (वाजः) बलवान् (दैव्यः विधाता) देव, किरणों का, प्रकाशों का
कर्ता सूर्य और (पर्जन्यवाता) मेघ और प्रबल बात सब हमारे राष्ट्र में
अन्न उत्पन्न करें ।

उत स्य देवः संविता भगौ नोऽपां नपादवतु दानुं परिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सुजोषा द्यौदेवोभिः पृथिवीं संमद्वैः ॥१३॥

भा०—(उत) और (सः देवः) वह तेजस्वी (सविता) सूर्य और सूर्यवत् तेजस्वी और (भगः) पैश्चर्यवान् पुरुष और (अपां नपात्) जलों के बीच विद्यमान, उनमें से ही उत्पन्न, न गिरने वाला अग्नि, विद्युत्, (प्रिः) सबको पूर्ण और पालन करने वाला, (त्वष्टा) तेजस्वी, (देवेभिः) दिव्य गुणों उत्तम पुरुषों और (जनिभिः) जन्मयुक्त प्राणियों सहित, (छौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (देवेभिः) किरणवत् तेजस्वी पुरुषों सहित, (समुद्रैः पृथिवी) समुद्रों सहित पृथिवी, ये सब (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः दानु) हमारे देने योग्य पदार्थ की (अवतु) रक्षा करें।

उत नोऽहिर्वृद्ध्यः शृणोत्वज् एकपात्पृथिवी समुद्रः ।

विश्वेदेवां ऋतुतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु १४

भा०—(उत) और (बुध्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न हुआ मेघ, और (बुध्यः) आश्रय करने और प्रजाजन को सुप्रबन्ध में बांधने वाला (अहिः) अहिंसनीय, बलवान् पुरुष, (अजः एक-पात्) न कभी उत्पन्न होने वाला और एकमात्र अद्वितीय होकर समस्त जगत् में व्यापक, एक मात्र स्वयं समस्त जगत् का चरणवत् आश्रय रूप परमेश्वर और (अजः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और राज्य कार्यों को सञ्चालन करने वाला (एक-पात्) एकमात्र चरणवत् राष्ट्र का आश्रय, प्रधान पुरुष, राजा, (पृथिवी) यह मातृ भूमि और (समुद्रः) समुद्र, अथवा पृथिवी के समान विशाल और समुद्र के समान गम्भीर और (ऋत-वृधः) सत्य, अन्न, तेज, यज्ञ और धनादि से बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाले, (स्तुताः) स्तुति योग्य, (कविशस्ताः) विद्वान् पुरुषों द्वारा स्तुति या शिक्षाप्राप्त, (मन्त्राः) मननशील, उत्तम मन्त्र को देने वाले, विद्वान् वा वेद के मन्त्र और उत्तम विचार सभी (हुवानाः) हम से बुलाये गये या

आदरपूर्वक हमें बुलाने हारे (विश्वेदेवाः) सभी उत्तम मनुष्य (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें, हमें ज्ञान दें, अज्ञादि से तुस और सन्तुष्ट करें।

एवा नपातो मम् तस्य धीभिरभरद्वाजा श्रभ्यर्चन्त्यकैः ।

आहुतासो वसुवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥५॥१०॥

भा०—(एव) इस प्रकार जो (नपाताः) प्रजाओं को धर्म से न गिरने देने और स्वयं भी धर्म-मार्ग से न गिरने वाले, (भरद्वाजाः) ज्ञान और बल को धारण करने वाले, (धीभिः) उत्तम द्विद्यों और कर्मों से और (अकैः) अज्ञों द्वारा (अभि अर्चन्ति) आदर सत्कार करते हैं और (हुतासः) आदरपूर्वक आमन्त्रित, (अष्टटाः) विनीत, (यजत्राः) दान शील, (विश्वे वसवः) सब राष्ट्रवासी जन और (प्राः) उत्तम खियां भी वे (स्तुतासः भूत) प्रशंसित हों। वे (प्राः अस्यर्चन्ति) खियों और उत्तम ज्ञानप्रद वाणियों का आदर किया करें। इति दशमो वर्गः ॥

[५१]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ७, १०, ११, १२ निचृत्विष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । ४, ६, ६ स्वराट्पंक्तिः । १३, १४, १५ निचृद्विष्णक् । १६ निचृदन्तुष्टुप् ॥ पोदशर्च सूक्तम् ॥

उदु त्यच्चकुर्महि मित्रयोराँ पति प्रियं वरुणयोरदंधम् ।

ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (मित्रयोः वरुणयोः महि चक्षुः ऋतस्य दर्श- तम्, अनीकं, दिवः रुक्मन्, उदिता वि अद्यौत्) मित्र, दिव, वरुण रात्रि इन दोनों में वह बड़ा, नेत्रवत् सूर्य प्रकाश दिखाने वाले सुख के समान और आकाश के स्वर्ण के समान, उदय काल में विशेष रूप से चमकता है उसी प्रकार (मित्रयोः) एक दूसरे को सदा प्रेम करने वाले (वरु-

णथोः) एक दूसरे का परस्पर वरण करने वाले, उत्तम वर वधू, दोनों की (त्यत्) वह (महि) बड़ी, (प्रियं चक्षुः) प्रिय, एक दूसरे को तृप्त और प्रसन्न करने वाली आंख (अदब्धम्) एक दूसरे से अहिंसित, अर्थात् अपीडित होकर विना बाधा के (एति) एक दूसरे को प्राप्त हो । वे दोनों सदा परस्पर प्रेम, आदर, उत्सुकता और निःसंकोच भाव से देखा करें । वह (दर्शतम्) देखने योग्य वा (अत्य दर्शतम्) सत्य ज्ञान को दिखाने वाली, (शुचि) पवित्र, निर्मल, निष्पाप, (अनीकम्) मुखवत् दर्शनीय, सैन्यवत् एक दूसरे का विजय करने वाली, चक्षु भी, (दिवः रुक्मः न) मानो कामनायुक्त कामिनी का स्वर्णमय आभूषण हो, ऐसे (दिवः) कामना करने वाली रुक्मी के (उदिता) उद्गमन काल में (रुक्मः) रुचि अर्थात् अभिलाषाओं का ज्ञापक होकर (वि अद्यौत्) विविध भावों, विशेष सौहादाँ को प्रकट करे । अथवा—वह चक्षु, दर्शनीय शुद्ध पवित्र, मुख को आभूषणवत् प्रकाशित करे, इसी प्रकार परस्पर मित्र, और परस्पर के वरण करने वाले, अध्यापक शिष्य और राजा और प्रजावाहारों के आंखों में स्नेह आदि सदा विद्यमान हो, वह विवेकपूर्ण, सत्यज्ञान और न्याय के पवित्र सुन्दर मुख को उज्ज्वल करे । इसी प्रकार सत्यासत्य को दिखाने वाले नेत्र के तुल्य वेदज्ञ पुरुष भी सब रुक्मी पुरुषों को प्रिय, अहिंसित, पवित्र, भूमि का भूषणवत्, सूर्यवत् तेजस्वी हो ।

वेदु यस्तीर्णि विद्यथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
 ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यञ्चाभि चष्टे सूरौ श्रूर्य एवान् ॥ २ ॥

भा०—पूर्व सूचित विद्वान् रूप आंख का सूर्यवत् वर्णन । (यः) जो (त्रीणि विद्यानि) जानते और प्राप्त करने योग्य ज्ञान, कर्म और उपासना को (वेद) जानता है, और जो (विप्रः) विद्वान् मेधावी, (सनुतः) सदा (देवानां) विद्वानों वा सूर्य चन्द्रादि लोकों के (जन्म) प्रकट होने

का तत्व (च) भी (वेद) जानता है वह (सूरः) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्वान् (अर्यः) स्वामी के समान, (मन्त्रेषु) मनुष्यों के बीच, उनके हितार्थ, (ऋजु) सरल, धर्म मार्ग को और (वृजिना च) वर्जन करने योग्य अशोभन पाप कर्मों को भी (पश्यन्) विवेक पूर्वक देखता हुआ समस्त (एवान्) प्राप्तव्य पदार्थों और जाने योग्य मार्गों को भी (अभि चष्टे) प्रकाशित करता है, देखता और अन्यों को उपदेश करता है इसी से वह (चष्टे इति चक्षुः) 'चक्षु' कहाता है ।

**स्तुष उ वो मृह ऋतस्य गोपानदीर्ति मित्रं वरुणं सुजातान् ।
श्रीर्यमणं भगुमदव्यधर्तीनच्छ्रु वोचे सधन्यः पावकान् ॥ ३ ॥**

भा०—(स-धन्यः) धन धान्य से सम्पन्न, एवं धन द्वारा सत्कार करने योग्य उत्तम जनों के सहित विद्यमान मैं, हे विद्वान् उत्तम पुरुषो ! (वः) आप लोगों में से (ऋतस्य गोपान्) वेद, सत्य ज्ञान, न्याय, तेज, धन, और बल के रक्षा करने वाले (अदितिः) सूर्य, पृथ्वी के समान तेजस्वी माता पिता, पुत्रादि, (मित्रं) स्नेही, (वरुणं) संकटों के वारक, श्रेष्ठ, (अर्यमणं) न्यायकारी, शत्रुओं को नियम में रखने वाले, (भगं) ये श्वर्यवान्, (सु-जातान्) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध, उत्तम सत्थ, (अदव्यध-धीतीन्) जिनका अध्ययन, पठन पाठन नष्ट, विनिष्ट न हो, ऐसे पूर्ण शिक्षित (पावकान्) अग्निवत् अन्यों को पवित्र करने वाले, इन सब (महः ऋतस्य गोपान्) वडे श्रेष्ठ सत्य ज्ञान, और तेज के रक्षक, जनों को मैं (स्तुषे) उत्तम स्तुति और (अच्छ वोचे) उनके प्रति सदा उत्तम वचन कहूँ ।

**रिशादसः सत्पत्तीरदव्यान्महो राज्ञः सुवसुनस्य द्रातृन् ।
यूनः सुक्ष्मत्रान्क्षयतो दिवो नृनांदित्यान्याम्यदीर्तिं दुर्वोयु ॥४॥**

भा०—(रिशादसः) जो हिंसकों का नाश करने वाले, (सत्पत्तीन्) सज्जनों के पालक, (अदव्यान्) स्वयं अन्यों से पीड़ित न होने और

अन्यों को पीड़ा न देने वाले, (महः) बड़े (राज्ञः) राजावत् स्वामी, (सु-वसनस्य) उत्तम वश, वा आश्रय के (दातृन्) देने वाले, (यूनः) युवा, तरुण, (सु-क्षत्रात्) उत्तम बल, धन से युक्त, (क्षियतः) ऐश्वर्य-वान्, एवं राष्ट्र में बसने वाले, (दिवः) ज्ञान, प्रकाशक (आदिस्थान्) आदित्य ब्रह्मचारी, सूर्यवत् तेजस्वी (नन्) नायक और (दुर्वोयु) परिचर्या या सेवा की कामना करने वाले पुरुषों को और (अदिति) अखण्डित, एवं अदीन, उदात्त स्वभाव के माता व पिता को (यामि) मैं प्राप्त होऊं और विनय से उनसे याचना करूं ।

द्यौ॑पितृः पृथिवि॒ मातृरधुगम्ने॑ भ्रातर्वसवो॑ मृलता॑ नः ।

विश्वं आदित्या अदिते॑ सुजोषा॑ श्रुस्मभ्यु॑ शर्म॑ बहुलं वि॑ यन्त ५।११

भा०—हे (पितः धौः) आकाश वा सूर्य के समान विशाल तेज-स्त्रिन् ! पालक पितः ! हे (मातः पृथिवि) माता पृथिवी ! हे (अध्रुक्) द्वौह रहित (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (आतः) भाई ! हे (वसवः) बसे हुए प्रजाजनो ! आप लोग (नः) हमें (मृडत) सदा सुखी करो । हे (आदित्यः) आदित्यसम तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! (अदिते) हे मातः ! हे पितः ! वा हे अखण्ड शक्ते । आप (विश्वे) सब लोग (सजोषाः) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर (अस्मभ्यम्) हमें बहुत (शर्म) सुख (यन्त) प्रदान करो । इत्येकादशो वर्गः ॥

मा चो॑ वृकाय॑ वृक्यै॑ समस्मा॑ अघायुते॑ रीरधता॑ यजत्राः ।

युं॑ हि॑ ष्टा॑ रुथ्यो॑ नस्तनूनां॑ यु॑ दक्षस्य॑ वच्सो॑ वभूव ॥६॥

भा०—हे (यजत्राः) दानशील और सत्संग योग्य पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (वृक्ये) चोरों के करने योग्य व्यवहार के निमित्त (समस्यै) सब प्रकार के (अघायते) हम पर पापाचरण करने की इच्छा करने वाले, (वृकाय) हिंसक, वृक या भेड़िये के समान चोर

डाकू स्वभाव के मनुष्य के लाभ के लिये (नः) हमें (मा रीरधत) हमें नष्ट मत करो । हमें उसके हितार्थ दण्डित मत करो और हमें उसके अधीन भी मत करो । (हि) क्योंकि आप लोग ((नः तनूनां) हमारे शरीरों के भी (रथः) रथ के नेता, सारथिवत् सन्मार्ग में प्रयोग करने और लेजाने वाले (स्थ) हो, और (यूयं) तुम लोग सदा (दक्षस्य वचसः) उत्तम वचन के नेता वा प्रवर्तक भी (बभूव) हो ।

मा व एनो ऋन्यकृतं भुजेम् मा तत्कर्म वसवो यच्याध्वे ।

विश्वस्य हि चायथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में वसने वाले, विद्वान् पुरुषो ! आप लोग अपने में से भी (अन्यकृतं) किसी अन्य के किये (एनः) पाप या अपराध को हम सब (मा भुजेम) न भोगें । (यत्) जिसे आप लोग (चयाध्वे) नाश करो, या रोको वह कर्म भी हम (मा कर्म) न करें । हे (विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (विश्वस्य हि क्षयथ) सब कार्यों के स्वामी हो । मनुष्य प्रायः स्वयं अपने आप भी (रिपुः) शत्रु होकर कभी २ (तन्वं) अपने शरीर का (रीरिषीष्ट) विनाश कर लेता है । इसलिये सावधान रहो कि कहीं हमीं में ऐसा न हो कि एक के किये से और दुःख पावें, और जो काम स्वयं बाद नष्ट करना पड़े, उसको कर बैठे । चयति समुच्चये हिंसायां च । क्षि निवासे ऐश्वर्ये च ॥

नम् इदुग्रं नम् आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।

नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं खिदेनो नमसा विवासे ॥८॥

भा०—(नमः इत्) ‘नमस्’ अर्थात् दुष्टों और सज्जनों का नमाने का उपाय बड़ा ही (उग्रं) बलशाली होना उचित है । मैं उसी (नमः) विनय के साधन, दण्ड बल, या नमस्कार योग्य परब्रह्म का (आ विवासे) सेवन करूँ । (नमः) वही सबको वश करने वाला बल, सर्वनमस्य

परब्रह्म ही (पृथिवीम् उत आम् दाधार) पृथिवी और सूर्य दोनों को धारण कर रहा है । (देवेभ्यः नमः) विद्वानों, व्यवहारकर्ता, विजेताओं और द्यूतादि खेलने वाले लोग सबके लिये (नमः) उनको नमाने या वश करने वाला यह वज्र और विनय आदर का व्यवहार ही है । (नमः) वह विनयशाली दण्ड या आदर ही (एषां) इन सब पर (ईशे) प्रभुत्व करता है । इनके (कृतं चित् एनः) किये हुए पाप को भी मैं (नमसा) विनय से वा दण्ड से ही (आ विवासे) दूर करने में समर्थ होऊं ।

ऋतस्य वो रुथ्यः पूतदक्षानुतस्य पस्त्यसद्ग्रो अदव्यान् ।

ताँ आ नमोभिरुचक्षसो नृनिवश्वान्व आ नमे मुहो यज्ञत्राः॥१॥

भा०—हे (यज्ञत्राः) न्याय, ज्ञान, और ऐश्वर्य को देने वालो ! हे सत्संग और पूजा के योग्य पुरुषो ! (रथः) रथ को उत्तम मार्ग में ले जाने में उत्तम सारथि के समान गृहस्थ वा राष्ट्र का उत्तम नेता मैं (ऋतस्य) सत्य व्यवहार ज्ञान और न्याय के द्वारा (दूतदक्षान्) पवित्र कर्म करने वाले और (ऋतस्य) न्याय के ग्रहों में विराजने वाले (अदव्यान्) अधर्म से लोभ, अन्यायाचरण आदि से अपीडित, (उरुचक्षसः) वडे दूरदर्शी (विश्वान् वः नन्) समस्त उन आप (महः) वडे पूज्य लोगों को (नमोभिः) उत्तम विनय युक्त व्यवहारों से (आ नमे) नमता और नमाता हूँ ।

ते हि श्रेष्ठवर्चसुस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।

सुक्ष्मत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मुराजसत्याः १०।१२

भा०—(वरुणः) श्रेष्ठ, सबको पापों से निवारण करने वाला, (मित्रः) सबका स्नेही, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष, जो (ऋत-धीतयः) सत्य कर्म करने और सत्य शास्त्रों को पढ़ने

वाले और (वक्तमराजसत्याः) वचन में सदा सत्य से चमकने वाले, सदा सत्यभाषी और (सुक्ष्मत्रासः) उत्तम बलशाली हैं (ते हि) वे ही निश्चय से (श्रेष्ठ-वर्चसः) सर्वोत्तम तेज से युक्त होते हैं । (ते उ) वे ही (नरः) लोग (नः) हमारे (विश्वानि दुर्स्तिनि) सब तुरे आचरणों को (तिरः नयन्ति) दूर करते हैं । इति द्वादशो वर्गः ॥

ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन्पूषा भग्नो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्मीणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ११

भा०—(इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी ऐश्वर्यवान्, (पृथिवी) भूमि के समान सर्वाधार, (क्षाम) भूमि के समान ही क्षमावान्, (पूषा) सर्व-पोषक (भगः) ऐश्वर्यवान्, सर्व कल्याणकारी, (अदितिः) माता, पिता चा पुत्र अधवा अदीन शक्ति, (पञ्च जनाः) पांचों जन, (सु-शर्मणः) उत्तम गृह वा उत्तम सुख, शरण देने वाले, (सु-भवसः) उत्तम रक्षा करने वाले (सु-नीथाः) उत्तम वाणी बोलने और उत्तम मार्ग से स्वयं जाने और अन्यों को ले जाने वाले (भवन्तु) हों । और वे (नः) हमारे (सु-त्रात्रासः) उत्तम रीति से रक्षा करने वाले और (सु-गोपाः) उत्तम रक्षक और भूमि पशुओं और इन्द्रियों के उत्तम भूमिपति पशुपाल, जितेन्द्रिय (भवन्तु) हों ।

न् स्वानै दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमृतिं याति होता ।

आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्द्वानां जन्म वसुयुर्वैवन्द ॥ १२ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान्, प्रकाश के देने और लेने की कामना वाले गुरु शिष्य जनो ! जो (भारत-वाजः) ज्ञान को धारण करने हारा और (होता) ज्ञान को अन्यों को दान करने वाला विद्वान् (सुमृतिम् याति) उत्तम मतिमान् शिष्य को प्राप्त करता है वह (नु) मानो शीघ्र ही (दिव्यं सद्यानं) उत्तम प्रकाश योग्य गृह के समान (दिव्यं) ज्ञान धारण करने योग्य विद्या के सत्यात्र, को (नंशि) प्राप्त कर लेता है ।

वह (यजमानः) ज्ञान का दान करने वाला, (आसानेभिः) समीप बैठे हुए (मियेधैः) सत्संग करने वाले, विद्यार्थियों से सत्संग करता हुआ, (वसुयुः) अधीन बसने वाले वसु, ब्रह्मचारियों का प्रिय इच्छुक, स्वामी होकर (देवानां) विद्याभिलाषी जनों के (जन्म) विद्या जन्म का (ववन्द) उपदेश करता है । (२) शिष्य पक्ष में—जो (भारद्वाजः) ज्ञान धारण करने वाला, तत्संग्रहीता, (होता) अपने को गुरु के अधीन सौंपने और विद्या को ग्रहण करने वाला, जिज्ञासु (सुर्मति याति) उत्तम मतिमान, सुज्ञानी गुरु को जाता और उससे विद्या की याचना करता है वह नु शीघ्र ही, मानो (दिव्यं) दिव्य, उत्तम, (सज्ञानं) गृह या भवन के समान विशाल शरण को (नंशि) प्राप्त करता है । वह (यजमानः) उनका आदर सत्कार, पूजा आदि करता हुआ (आसानेभिः मियेधैः) विराजने वाले सत्संगी, जनों द्वारा (वसुयुः) वसु होने की कामना युक्त होकर (देवानां जन्म) विद्वानों के बीच (जन्म) उपनयन द्वारा नवीन जन्म (नंशि) प्राप्त करे और (ववन्द) गुरुओं को नमस्कार किया करे ।

अपु त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।

दुविष्टुमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! आप (त्यं) उस (रिपुम्) पाप-वान्, शत्रु, (स्तेनम्) चौर, (दुराध्यम्) दुःख से वश में आने वाले (वृजिनं) मार्गवत् (दविष्टम्) दूर से दूर को भी, पैर रखकर जाने योग्य वा वर्जनीय शत्रु को (सुगं कृधि) सुगम कर । हे (सत्पते) सज्जनों के प्रतिपालक ! तू (अस्य) इस प्रजाजन से उसे (अप कृधि) दूर कर ।

ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।

जुही न्युत्रिणं पृणि वृक्तो हि षः ॥ १४ ॥

भा०—हे (सोम) उत्पादक पितावत् सर्वप्रेरक ! अभिषेक योग्य

प्रजेश्वर ! (नः) हमारे बीच में (ग्रावाणः) उत्तम शास्त्र के उपदेश और शशुओं को कुचलने वाले वीर पुरुष लोग (हि) भी (सखित्व-नाय) मित्रता के निमित्त (कं) कर्त्ता पुरुष को (वावश्चुः) सदा चाहते हैं । हे राजन् ! विद्वन् ! तू (पणिन्) व्यवहारवान् , (अन्तिम) मूल खा जाने वाले पुरुष को (नि जहि) अच्छी प्रकार दण्डित कर (हि) क्योंकि (सः वृकः हि) वह अवश्य वृक, अर्थात् चौर, वा भेड़िये के स्वभाव वाला, प्रजा को विविध प्रकार से काटने और दुःख देने वाला है ।

युयं हि ष्ठा सुदानवृ इन्द्रज्येष्ठा श्रुभिद्यवः ।

कर्त्ता नो अध्वश्चा सुगं गोपा श्रमा ॥ १५ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) सुखपूर्वक ऐश्वर्यादि के दान करने वाले ! (युयं) आप लोग (हि) निश्चय से (सु-दानवः) उत्तम, सुख, देने वाले, (अभि) सब प्रकार से तेजस्वी, और (इन्द्र-ज्येष्ठः) सुर्यवत् तेजस्वी पुरुष को अपने में सब से बड़ा मानने वाले (स्य) होकर रहो । (नः) हमारे (अध्वन्) मार्ग को (सुगं) सुख से गमन करने योग्य (आ कर्त्) करो । हे (गोपाः) भूमि और प्रजा के रक्षक जनो ! आप लोग (अमा) हमारे गृह को भी (सुगं कर्त्) सुखदायक बनाओ । अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।

येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ १६ ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (स्वस्तिगाम्) सुख से चलने योग्य और कल्याण-मय उद्देश्य को जाने वाले वा कल्याणकारी सुखदायक भूमि वाले (अनेहसम्) पापों, दुःखों और कष्टों से रहित (पन्थाम्) मार्ग को (अपि अग्नम्) प्राप्त हों, (येन) जिससे जाता हुआ मनुष्य (विश्वाः द्विषः) समस्त शशु सेनाओं को (परि वृणक्ति) दूर करने में समर्थ होता है और (वसु विन्दते) ऐश्वर्य का लाभ करता है । (२) अध्यात्म में परम गम्य

होने से प्रभु 'पन्था' है, वह सुख कल्याण मार्ग से गमन करने योग्य पाप-रहित है। हम उसको (अपि अग्नमहि) अप्यय अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हों, जिससे भक्त जन सब द्वेष वृत्तियों को त्यागता और (वसु) सबमें बसे परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[५२]

ऋजिष्वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, १५, १६ निचृत्वि-
ष्टुप् । २, ३, ६, १३, १७ त्रिष्टुप् । ५ भुरिक्पंक्तिः । ७, ८, ११
गायत्री । ६, १०, १२ निचृद्गायत्री । १४ विराङ्गजगती ॥

न तदिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिरुभिः ।
उद्भजन्तु तं सुभ्वः । पर्वतासु नि हीयतामतियाजस्य युष्टा ॥१॥

भा०—(अतियाजस्य) अत्यन्त दान का (यष्टा) देने वाला, उत्तम सत्संग और मान, पूजा, ईश्वरार्चना करने वाला पुरुष (तत्) वह (न दिवा नि हीयताम्) न सूर्यवत् तेजस्वी पद से गिर सकता है, (न पृथिव्या निहीयताम्) और न वह पृथिवी से त्यागा जा सकता है, अर्थात् समस्त दुनियां भी उसका साथ देती है। (अनु मन्ये) मैं तो बराबर इस बात को स्वीकार करता हूँ कि वह (न यज्ञेन नि हीयताम्) न कभी यज्ञ से ही रहित होता है, (उत न) और न (शमीभिः नि हीयताम्) वह उत्तम सुखदायक कर्मों से ही रहित होता है, (तम्) उसके प्रति तो (सुभ्वः) उत्तम ३ भूमियां, तद्वत् उत्तम भूमियों के त्वामी लोग और (पर्वतासः) मेघवत् उदार और पर्वतवत् उत्पन्न जन भी विनम्र होजावें। अथवा—उसको (न उद्भजन्तु) कभी विनाश न करें।

अति वा यो मरुते मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपौषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२॥

भा०—(यः वा) और जो हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (नः) हमारे (क्रियमाणं) किये जाते हुए (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान, धन, अज्ञ आदि को (अति मन्यते) अतिक्रमण करे, (वा) अथवा (यः) जो उसकी (निनित्सात्) निन्दा करे (तस्मै) उसके लिये (तपूषि) समस्त तप, और तापदायक अस्त्रादि (वृजिनानि) वर्जन करने वाले, बाधक रूप से (सन्तु) हों। (तं) उस (ब्रह्म-द्विषम्) ज्ञान, प्रभु, धन, अज्ञ आदि के द्वेषी पुरुष को (चौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, वा व्यवहार, वा धनादि कामना, और (अभि शोचतु) सब ओर से शोक, दुःखी, उत्थित, करे।

किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमुड्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि नियमानान्ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग) हे (सोम) ऐश्वर्य के चाहने वाले ! राजन् ! (त्वा) तुझे (ब्रह्मणः) धन, वेद वाणी का रक्षक और ब्रह्म राष्ट्र आदि का (गोपाम्) रक्षक (किम् आहुः) क्यों कहते हैं ? (अङ्ग) हे राजन् ! (त्वा) तुझे (नः) हमारा (अभिशस्तिपाम्) निन्दा से बचाने वाला (किम्) क्यों (आहुः) कहते हैं ? (अङ्ग) हे राजन् ! प्रभो ! (नः) हमें (नियमानान्) निन्दा का विषय बनाते हुए दुष्ट जनों का (किम् पश्यसि) क्या देखता है ? तू (ब्रह्म-द्विषे) वेद, धन और अस्त्रादि से द्वेष करने वाले को नाश करने के लिये (तपूषिम् हेतिम्) संतापदायक अस्त्र (अस्य) फेंक।

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु सा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु सा पवैतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरैः देवहृतौ ॥ ४ ॥

भा०—(माम्) मुझको (जायमानाः) नित्य उत्तम गुणों वा प्रकाशों से प्रकट होने वाली प्रभात वेलाएं और शत्रु के दर्प को दध करने

वाली सेनाएँ, और मुझे चाहने वाली प्रजाएँ (अवन्तु) मेरी रक्षा करें । (पिन्वमाना:) साँचने वाली (सिन्धवः) वेगवती नदियें और बढ़ते समुद्र तथा, तृप्त होते हुए प्राणगण, और वेग से जाने वाले अश्व आदि (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें । (ध्रुवासः पर्वतासः) स्थिर रहने वाले पर्वत (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें । (देव-हूतौ) शुभ गुणों की प्राप्ति और विद्वानों की अर्चना तथा प्रभु की उपासना-काल में (पितरः) पालक जन गुरु माता पिता आदि सम्बन्धी तथा ऋतु गण, और ओषधि आदि पदार्थ सभी (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें और मुझे प्राप्त हों ।

विश्वदानीं सुमनसः स्याम् पश्येऽम् नु सूर्यैमुच्चरन्तम् ।
तथा करुद्धसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥१४॥

भा०—(विश्व-दानीम्) सदा ही हम सब लोग (सु-मनसः) शुभ चित्त वाले (स्याम्) रहा करें । हम लोग (सूर्यम् नु) सूर्य को ही (उत्तरन्तम्) ऊपर आते हुए देखें, जिस प्रकार वह (देवान् ओहानः अवसा आगमिष्ठः) समस्त किरणों को धारण करता हुआ अपने तेजसहित आने वालों में सब से उत्तम है (तथा) उसी प्रकार (देवान् ओहानः) शुभ गुणों को धारण करने वाला और विद्वान् जनों वा विद्या की कामना करने वाले शिष्यों का पालन करता हुआ प्रधान पुरुष भी (अवसा) अपने रक्षा और ज्ञानसामर्थ्य से (आगमिष्ठः) आने वालों में सर्वश्रेष्ठ हो, और वह (वसूनां) वसे प्रजाजनों वा शिष्यों के बीच (वसु-पतिः) सब प्रजाजनों और वसु, ब्रह्मचारियों का स्वामी होकर (तथा करत्) सूर्य के समान ही तेजस्वी, ज्ञानी होकर राजा और आचार्य तेज और ज्ञान का प्रदान करें ।

इन्द्रो नेदिष्टुमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
प्रजन्यो नु ओषधीभिर्मयो भुरुंगिनः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा और विद्या वा ज्ञान का देने वाला आचार्य और शत्रुहन्ता राजा वह (अवसा) अपने ज्ञान और रक्षा सामर्थ्य से (नेदिष्टम्) अति समीप (आगमिष्ठः) आने वाला हो, हमारे सदा अति समीप, निकटतम होकर रहे । वह (सिन्धुभिः) जलधाराओं से (पिन्वमाना) खूब भर कर बढ़ी हुई, (सरस्वती) नदी के समान वेग से प्रवाहित होने वाले वचनों से उत्तम ज्ञान की धारावत् हमें नित्य सेचन या वृद्धि करने हारा हो । (ओषधीभिः), ओषधियों वनस्पतियों सहित (पर्जन्यः) ऐसों को देने वाले मेघ के समान ज्ञान और रक्षा का देने वाला और शत्रुओं का विजेता होकर (नः) हमें (मयोभृः) सुख का देने हारा हो । वह (अस्मिः) अस्मि के समान तेजस्वी, अग्रणी और ज्ञानवान् होकर भी (सु-शंसः) उत्तम उपदेश करने वाला, और (पिता इव) पालक पिता के समान (सु-इवः) सुख से, विना संकोच पुकारने योग्य और उत्तम आदर सत्कार करने योग्य हो ।

विश्वे देवासु आ गत शृणुता मे इमं हवम् ।

एदं बृहिर्निर्णीदित ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् लोगो ! (आ गत) आप लोग आओ । (मे) मेरे (इमं) इस (हवं) गुरु से ग्रहण करने योग्य अधीत ज्ञान को (शृणुत) श्रवण करो और आप लोग (इदं बृहिः) इस उत्तम पद, वृद्धि योग्य आसन पर (आ नि सीदत) आकर विराजो । यो वो देवा धृतस्तुना हृव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उपर्गच्छथा ।

भा०—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (धृतस्तुना हृव्येन) धृत से युक्त अज्ञ से जैसे विद्वानों की स्निग्ध भोजनादि से सेवा आदर आदि किया जाता है उसी प्रकार हे (देवाः) विद्या की कामना करने वाले विद्यार्थी जनो ! (यः) जो (धृतस्तुना) स्नेह से द्रवीभूत, वा स्नेह से हृदय से निकलने वाले, (हृव्येन) ग्राह ज्ञान से (वः) आप लोगों

को अलंकृत करता है (तम्) उस विद्वान् गुरु को (विश्वे) आप सब लोग (उप गच्छथ) प्राप्त होओ और उसी की उपासना वा सेवा करो ।

उप॑ नः सूनवो गिरः शृणवन्त्वमृतस्य ये । सुमृद्धीका भवन्तु नः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) पुत्र पौत्रादि होंवे (अमृतस्य) कभी नाश न होने वाले परमेश्वर के नित्य ज्ञानमय वेद की (गिरः) वाणियों का (उप शृणवन्तु) गुरु के समीप जाकर श्रवण करें और वे (नः) हमें (सुमृद्धीकाः भवन्तु) उत्तम सुख देने वाले हों ।

विश्वे देवा ऋृतावृद्धं ऋृतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पथः ॥१०॥५

भा०—(विश्वे देवा :) समस्त विद्या की कामना करने वाले मनुष्य (ऋतावृद्धः) सत्य ज्ञान की वृद्धि करने वाले हों । और वे (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के अनुसार अथवा ऋत, सत्य ज्ञान के स्वामी विद्वान् पुरुषों द्वारा (हवन-श्रुतः) दान करने और स्वयं ग्रहण करने योग्य ज्ञान का श्रवण करने वाले होकर (युज्यम्) परस्पर योग एवं सावधान, एकाग्रचित्त वा चित्तवृत्तिनिरोध शक्ति के बढ़ाने वाले, मधुर ज्ञान रस का (जुषन्ताम्) सेवन करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

स्तोत्रमिन्द्रो मूरुद्गणस्त्वष्टुमान्मित्रो अर्थमा ।

इमा हृव्या जुषन्त नः ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष और (मरुद-गणः) मनुष्यजन और (मित्रः) सब का स्नेही, (अर्थमा) न्यायकारी पुरुष (नः) हमारे (स्तोत्रम्) उत्तम उपदेश और (इमा हृव्यानि) इन ग्राह्य वचनों तथा प्रेमपूर्वक प्रस्तुत किये पदार्थों को भी (जुषन्त) प्रेम से स्वीकार करें । इमं नौ आगे अध्वरं होतव्ययुनशो यज ।

इच्छिकित्वान् दैव्यं जनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (होतः) ज्ञान के देने वाले ! (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् आचार्य ! प्रभो ! आप (चिकित्वान्) ज्ञानवान् हो । आप (नः) हमारे बीच में से (अध्वरं) न हिंसा करने योग्य, अपीड़नीय, वा अविनाशी, अध्ययनादि ज्ञान यज्ञ को (वयुनशः) उनके ज्ञान शक्ति के अनुसार (यज) कर और हमें भी ज्ञान प्रदान कर । और तू (दैव्यं) देव, अर्थात् ज्ञान के इच्छुक (जनम्) जन, शिष्य को भी (यज) अपने संगति में रख । इसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्, प्रतापिन् ! राजन् ! आप (अध्वरं चिकित्वान्) अहिसनीय, स्थायी, प्रजापालन रूप यज्ञ को जानते हुए (वयुनशः) प्रजाजन को उनके ज्ञान और कर्म सामर्थ्य के अनुसार (दैव्यं जनम्) देव अर्थात् राजा के उचित सेवक जन रूप में (यज) ग्रास करो और उनको पद पर लागाओ ।

विश्वे देवाः शृणुतेमैं हृचं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठु ।

ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्वर्हिषि मादयध्वम् ।१३।

भा०—(विश्वे देवाः) हे सब विद्वान् वा विद्या के अभिलाषी पुरुषो ! (ये) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षवत् बीच की भूमि, (ये च द्यविस्थ) और जो सूर्यवत् प्रकाशमान ज्ञानमार्ग में विद्यमान हो (ये अग्निजिह्वाः) और जो अग्नि की जिह्वा अर्थात् ज्वाला के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करनेवाली वाणी वाले (उत वा) और (यजत्रा) जो ज्ञान देने और सत्संग करने योग्य हैं ये सभी (मे) मेरे (इमं) इस (हृचं) देने योग्य, गुह से ग्रहण करने योग्य ज्ञान को (शृणुत) श्रवण करें । और (अस्मिन्) इस (वर्हिषि) वृद्धि युक्त, उच्च आसन पर (मादयध्वम्) स्वयं प्रसन्न हों अन्यों को भी हर्षित करें ।

विश्वे देवा मम शृणुवन्तु यज्ञिया उभे रोदसी श्रपां नपाच्च मन्म ।
मावो वचांसि परिचद्याणि वोचं सुमनेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४॥

भा०—हे (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! हे (यज्ञियाः)

सत्संग, दान पूजादि के योग्य जनो ! हे (उमे रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् परस्पर के उपकारक स्त्री पुरुषो ! वा राजप्रजावर्गीय जनो ! और (अपां नपात् च) आपां का नाश न करने वाला जन (मम) मेरे (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान का आप लोग (शृण्वन्तु) श्रवण करे । मैं (वः) आप लोगों के प्रति (परि-चक्ष्याणि) निन्दा योग्य वा प्रतिवाद करने योग्य (वचांसि) वचन (मा वोचम्) कभी न कहूँ । प्रत्युत (परि-चक्ष्याणि) सब प्रकार से सर्वत्र कहने योग्य वचन ही कहूँ । हम लोग (वः सुमेषु) आप लोगों के सुखों में (इत्) ही (अन्तमाः) अति निकटवर्ती होकर (मदेम) सदा हर्ष लाभ करें ।

ये के च ज्ञा महिनो अहिमाया द्विवो जङ्गिरे अपां सुधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिष्ये विश्वमायुः क्षप तुच्चा वरिवस्यन्तु देवाः । १५।

भा०—(ये के च) और जो कोई (महिनः) गुणों में महान्, (ज्ञा) इस भूमि पर (दिवः) सूर्य के प्रकाश से तथा (अपां सधस्थे अहिमायाः) जलों के एकत्र विद्यमान रहने के स्थान अन्तरिक्ष में विद्यमान मेघ के समान आचरण करने वाले, उदार, निष्पक्षपात् होकर ज्ञानों, सुखों की वर्षा करने वाले वा (अपां सधस्थे) आप विद्यज्ञानों के साथ सभा आदि स्थानों में (दिवः) ज्ञान के प्रकाश से (अहिमायाः) अन्यों को पराजित करने वाली, सर्वातिशायी बुद्धि वाले (जङ्गिरे) प्रकट हों । (ते देवाः) वे ज्ञानादि देने में कुशल ज्ञानी पुरुष (क्षपः उसाः) रात दिन, (हघ्ये) इष्ट सुख लाभ के लिये (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आयुः) समस्त आयु (वरिवस्यन्तु) दें, और जन समाज की सेवा किया करें ।

अग्नीपर्जन्याववत् धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।

इलामन्यो जुनयद्भैमन्यः प्रजावतीरिषु आ धत्तमस्मे ॥ १६ ॥

भा०—(अग्नीपर्जन्या) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाश युक्त और

प्रतापी और मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने वाला, वा शत्रुओं को विजय और प्रजा को तृप्ति, प्रसन्न करने वाला, ये दोनों प्रकार के पुरुष (सु-हवा) उत्तम दान योग्य ज्ञान और धन से युक्त वा प्रजाओं द्वारा सुखपूर्वक बुलाने, निसंकोच कहने सुनने योग्य होकर (मे धियं अवतम्) मेरी त्रुद्धि और सदाचार की रक्षा करें । और (अस्मिन् हवे) इस दान-प्रतिशान के यज्ञ में (नः सु-स्तुतिम् अवताम्) हमारी उत्तम स्तुति का श्रवण करें । उन दोनों से (अन्यः) एक (इलाम् जनयत्) मेघ के समान भूमि को बीज वपन योग्य बनाकर अन्न उत्पन्न करता है, उसी प्रकार (अन्यः) एक तो (इलाम् जनयत्) शिष्य के प्रति उपदेशयोग्य वाणी को ही प्रकट करे और (अन्यः गर्भम् जनयत्) सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जलों को गमित करता वा पृथिवी पर जाठर रूप में अन्न को पचाकर, वीर्य बना कर प्रथम पुरुष में, फिर स्त्रीयोनि में गर्भ को उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अन्यः) दूसरा विद्वान् जन (गर्भम्) विद्यार्थीं को माता के समान विद्या के गर्भ में ग्रहण करके पुनः शिष्य को पुत्रवत् वेदविद्या में उत्पन्न करे । जिस प्रकार सूर्य और मेघ दोनों (प्रजावतीः इषः धत्तम्) प्रजा से युक्त अन्न सम्पदा को देते और पुष्ट करते हैं उसी प्रकार गुरु, आचार्य, भी (प्रजावतीः इषः) उत्तम सन्ततियुक्त कामनाओं को धारण करें अग्नि मेघ वत् अग्रणी, सेना नायक और राजा दोनों प्रजा से युक्त सेनाओं को धारण करें ।

स्तीर्णे वृहिंषि समिधाने श्रग्नौ सुक्लेन्त महा नमस्ता विवासे ।

अस्मिन्बो श्रद्ध विदथे यजत्रा विश्वे देवा हृविषि मादयध्वम् १७। १६

भा०—(वृहिंषि स्तीर्णे) यज्ञ में, 'यज्ञवेदिपर आसन कुशा आदि आस्तरण योग्य पदार्थ के बिछ जाने पर और (अग्नौ समिधाने) अग्नि के प्रदीप होते हुए जिस प्रकार (महा-सूक्लेन) वेद के बड़े सूक्त से और

(महा नमसा) बड़े नमस्कार, आदर वा अन्नादि पदार्थ से (आविवासे) यज्ञ कर्म करता है उसी प्रकार (वर्हिषि) बड़े मान बृद्धि युक्त, (स्तीर्णे) विश्वे आसन पर (अश्वी समिधाने) अग्निवत् तेजस्वी राजा वा ज्ञान-प्रकाश से युक्त विद्वान् के विराजने पर मैं (महा-नमसा) बड़े शक्ति, आदर से (सूक्तेन) उत्तम वचनों से उसकी (आ विवासे) सेवा शुश्रूषा करूं । है (यजत्राः) यज्ञशील, ज्ञानदाता, एवं सत्संगयोग्य पूज्य पुरुषो ! (अश्व) आज (नः) हमारे (अस्मिन् विद्ये) उस यज्ञ में (विश्वेदेवाः) आप सब विद्वान् जन (हविषि) अन्नादि से (मादयध्वम्) स्वयं भी तृप्त और हर्षित होवो और (नः मादयध्वम्) हमें भी तृप्त प्रसन्न करो । इति पोडशो वर्गः ॥

[५३]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य वृष्टिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः १, ३, ४, ६, ७, १० गायत्री । २, ५, ६ निचृद्ग्रायत्रा । ८ निचृद्ग्रुष्टप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

वृथमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (वाज-सातये रथं न) वेग से देशान्तर जाने के लिये वेग युक्त रथ को जोड़ते हैं उसी प्रकार है (पथस्पते) मार्ग के स्वामिन् ! हे (पूषन्) सर्वपोषक प्रभो ! (वाज-सातये धिये) ज्ञान के देने वाली वाणी, बुद्धि और ऐश्वर्य के देने वाले कर्म के लिये (रथं) रमणीय, वा वेग से ले जाने वाले (त्वा) तुल्ष को (वथम् उ) हम (अयुज्महि) योगाभ्यास द्वारा, समाहित चित्त से ध्यान करें । इसी प्रकार हे राजन् ! तुल्षको ऐश्वर्य प्राप्तवर्थ रथवत् ही नियुक्त करें ।

अभि न्तो नयौ वसुं वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥२॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! तू (नः) हमें (नयौ) मनुष्यों का हितकारी, (वीर) वीर (प्रयतदक्षिणम्) उत्तमसंपत्-बलवीर्य से युक्त, (वामं)

सेवा करने योग्य (गृहपतिं) गृह स्वामी और (नर्यं) मनुष्यों के हित, (वीरं) विविध कष्टों को दूर करने वाले, (प्रयत्-दक्षिणं) खूब दान दक्षिणा देने योग्य, (वासं) सुन्दर, सुखकर, (गृहपतिम्) गृह के पालक (वसु) धन को भी (नः) हमें (अभि नय) प्राप्त करा ।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय ।
परेश्चिद्विग्रहा मनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (आ धृणे) सर्वत्र प्रकाशित ! हे तेजस्विन् ! हे (पूषन्) निर्वलों के पश्चपोषक ! तू (अदित्सन्तं चित्) न देना चाहने वाले पुरुष को (दानाय) देने के लिये (चोदय) प्रेरित कर । (पणः चित्) व्यवहारकुशल, वणिग्जन, वा चूतादि व्यवहार करने वाले वा स्तुतिशील जन के भी (मनः) मन को (वि ग्रह) विशेष रूप से मृदु कर । वह भी कंजूस न होकर दयाशील कोमल हृदय रहे ।

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि ।
साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥

भा०—हे चिद्रन् ! तू (वाज-सातये) ज्ञान, ऐश्वर्य और बल को प्राप्त करने के लिये (पथः) उत्तम मार्गों को (वि चिनुहि) खोज । (मृधः) हिंसाकारियों को (वि जहि) विविध प्रकार से दण्डित कर । हे (उग्र) बलवन् ! (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां और कर्म (साधन्ताम्) उत्तम कर्म और कलों को सिद्ध करें ।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे ।
अथेऽमृसमध्यं रन्धय ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (कवे) कान्तदर्शिन् ! मेधाविन् ! दूरदर्शिन् ! आप (पणीनाम्) चूतादि व्यवहार करने वाले दुष्ट जनों के (हृदया) हृदयों को (आरया) आरा से जैसे काष्ठों को चीरा जाता है वा पैनी चोब से जैसे पशुओं को उद्धिन करके ठीक रास्ते से चलाया जाता है उसी प्रकार

(आरया) सब प्रकार की शिक्षा और 'आर्ति' अर्थात् पीड़ा, दण्डादि की व्यवस्था द्वारा (परि तृन्धि) परिपीड़ित कर (अथ) और इस प्रकार (ईम्) उनको (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (रन्धय) वश कर और दण्डित कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

वि पूषन्नारया तुद पुणेरिच्छु हृदि प्रियम् ।
अथेऽस्मभ्यै रन्धय ॥ ६ ॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलों के पक्ष को पोषण करने हारे ! प्रजा-पोषक राजन् ! तू (पणे) व्यवहार में लगे दुष्ट जनों को (आरया) दण्ड व्यवस्था से, पशुओं को चोब से जैसे वैसे ही (वि तुद) विविध प्रकार से व्यथित किया कर और (हृदि) हृदय में (प्रियम्) उनका प्रिय हित (इच्छ) चाहा कर। (अथ ईम् अस्मभ्यम् रन्धय) और उनको हमारे हितार्थ वश कर।

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे ।
अथेऽस्मभ्यै रन्धय ॥ ७ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् ! तू (पणीनां) व्यवहारवान् प्रजा के लोगों के (किकिरा) व्यवस्था पत्रों की छोटी बातों को भी (आ रिख) अवश्य लिख। (अथ) और (हृदया) उनके हृदयों को (ईम्) सब प्रकार से (अस्मभ्यम्) हमारे ही हितार्थ (रन्धय) वश कर।

यां पूषन्नव्युचोदनीमातुं विभृष्याघृणे ।

तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलों का पक्ष पोषण करने हारे ! हे (आ-घृणे) सब प्रकार तेजस्विन् ! समस्त ज्ञानों के प्रकाशक विद्वन् ! तू (यां) जिस (ब्रह्म-चोदनीम्) ब्रह्म विद्या और धन की ओर प्रेरित करने वाली (आराम्) चोब या आरा शस्त्री के तुल्य सद्-असद् विवेक करने वाली त्रुद्धि या वाणी को ((विभृष्य)) धारण करता है (तया) उससे (समस्य

हृदयम्) सबके दिलों को (आ रिख) अंकित कर और (किकिरा कृष्ण) अपने उत्तम विचारों को सर्वत्र विस्तारित कर ।

या ते अष्टा गोओपशाद्युणे पशुसाधनी ।
तस्यास्ते सुमनमीमहे ॥ ९ ॥

भा०—हे (आ-धृणे) वेजस्विन् ! सूर्यवत् प्रतापिन् ! (पशु-साधनी) पशुओं को वश करने वाली, (अष्टा गो-ओपशा) बैलों के सदा समीप रहकर चाढ़ुक जैसे उनको सन्मार्ग में चलाती है उसी प्रकार हे राजन् ! (ते) तेरी (या) जो (अष्टा) व्यापक शक्ति (गो-ओपशा) भूमि पर प्रशान्त रूप से विद्यमान रहकर (पशु-साधनी) पशु तुल्य मूर्ख जनों को भी अपने वश करने वाली, है (तस्याः) उसके (सुमन्) सुखकारी परिणाम को हम (ते) तुझ से (ईमहे) प्राप्त करें ।

तुत नौ गोषार्णि धियं मश्वसां वाजुसामुत ।
नृवत्कुण्डुहि वीतये ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (पूषन्) पशुपत्ल के तुल्य प्रजापोषक राजन् ! (उत) और तू (गो-सणिम्) गौ देने वाली, (अश्व-साम्) अश्व देने वाली, और (वाज-साम्) अज्ञ, बल, ज्ञान ऐश्वर्य देने वाली, (उत) और नृवत् उत्तम नाथकों से युक्त (धियं) त्रुद्धि वा कर्म को (नः वीतये) हमारे सुखोपभोग और हमें ज्ञान प्रकाशित करने के लिये (कृषुहि) कर । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५४]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ८,
गायत्री । ३, १० निचृद्गायत्री । ५ विराङ्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति ।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजा के पोषक ! (यः) जो विद्वान् (इदम्

एव) यह ऐसा ही है इस प्रकार यथार्थ रूप से (ब्रवत्) उपदेश करता है और जो (अज्ञासा) तत्व ज्ञान-प्रकाश से (अनु शासति) अनु-शासन अर्थात् सत्योपदेश करता है, तू उस (विद्वा) विद्वान् द्वारा हमें (सं नय) उत्तम मार्ग पर ले चल ।

समु पूज्णा गमेभिः यो गृहाँ अभिशासति ।
इम एवति च ब्रवत् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (गृहान्) गृहस्य स्त्री पुरुषों को (अभिशासति) साक्षात् उपदेश करता है और (ब्रवत् च) बतलाता है कि (इसे एव इति) ये ही ठीक २ पदार्थ इस २ प्रकार से ग्रहण करने योग्य हैं ऐसे (पूज्णा) पोषक पालक के साथ (सं गमेभिः) हम सत्संग किया करें ।

पूज्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते ।

नो अस्य व्यथते पुविः ॥ ३ ॥

भा०—(पूज्णः) पोषण करने वाले राजा का (चक्रम्) राजतन्त्र (न रिष्यति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता । (कोशः न अवपद्यते) उसका खङ्गाना भी कमती नहीं होता है और (अस्य पुविः न व्यथते) उसका बल वीर्य और शस्त्र बल भी पीड़ित नहीं होता ।

यो अस्मै हविषाविधूतं पूषापि मृष्यते ।

प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो व्यक्ति (अस्मै) इस प्रजाजन का (हविषा) लेने देने योग्य कर अन्नादि से (अविधत्) पीड़ित करता है और स्वयं (प्रथमः) मुख्य होकर (वसु विन्दते) धन लेता है, (तं पूषा-अपि) उसको प्रजापोषक राजा भी (न मृष्यते) कभी सहन नहीं करता ।

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्तत्ववृतः ।

पूषा वाजै सनोतु नः ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—(पृष्ठा) राज्य वा प्रजा का पोषक राजा, (गा॒ः) गौवों को गोपाल के समान (नः गा॒ः अन्वेतु) हमारी भूमियों के अनुकूल होकर चले । वह (अर्वतः न रक्षतु) अश्वों को सारथिवत् हमारी रक्षा करे । वह (पृष्ठा नः वाजं सनोतु) सर्वपोषक अन्नवत् हमें ऐश्वर्य को न्यायपूर्वक विभक्त करे । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

पूषुन्ननु प्र गा इहि यज्ञमानस्य सुन्वतः ।

अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजापोषक ! (सुन्वतः यज्ञमानस्य) तेरा अभियेक करने और तुझे कर आदि देने वाले प्रजाजन के (गा॒ः अनु॑) भूमियों वा वाणियों का (अनु इहि) गौ के पीछे २ गोपालवत् अनु॑ गमन कर अर्थात् भूमि में बसने वाली प्रजा के बहुमत के पीछे चल, उनकी रेख देख रख । (उत्) और (स्तुवताम् अस्माकं) उत्तम उपदेश करने वाले हम लोगों की (गा॒ः अनु इहि) वाणियों का अनुसरण कर । जैसे पशु-पाल दण्ड लेकर पशु को आगे बन्धन आदि से रहित करके भी, दण्ड के बल से सन्मार्ग पर ले जाता है उसी प्रकार राजा प्रजा के पीछे चलता हुआ भी दण्ड बल से उसका अनुशासन करे ।

माकिन्नेशुन्माकीं रिपुन्माकीं सं शारि॒ केवटे ।

अथारिष्टाभिरा गंहि॒ ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रजाजन (माकि॒ः नेशत्) कभी किसी प्रकार अन्य न हो, (माकीं रिपत्) किसी अन्य द्वारा पीड़ित भी न हो । वह (केवटे) कूप या गढ़े के समान, अवनत दशा में भी (माकीं सं शारि॒) कभी शीर्ण न हो । (अथ) और (अरिष्टाभिः) अहिंसित प्रजाओं सहित त्, सुखी गौओं से गोपाल के समान, (आ गहि॒) हमें प्राप्त हो ।

शुरावन्तं पूषणं वृयमिर्युमनैष्टवेदसम् ।

ईशानं राय॒ ईमहे॒ ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम (ईर्यम्) प्रजा को सन्मार्ग में चलाने वाले और स्वयं भी बड़ों द्वारा सन्मार्ग में प्रेरित, (अनष्ट-वेदसम्) ज्ञान और धन से सम्पन्न, (ईशानं) राष्ट्र पर प्रभुत्व करने में समर्थ, (शृण्वन्तं) प्रजा के न्याय कथन को सुनने वाले (पूषणं) सर्वपोषक राजा से (रायः) नाना ऐश्वर्यों की (ईमहे) याचना करते हैं ।

पूषन्तव॑ ब्र॒ते व॒यं न रि॒ष्येम् कदा॑ च॒न ।

स्त्रोतारस्त इ॒ह स्म॑सि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषण करने वाले पालक ! (तव ब्रते) तेरे काम में लगे हुए (वयं) हम (कदा चन न रिष्येम्) कभी भी पीड़ित न हों । हम (ते स्त्रोतारः) तेरे गुणों वा विद्या आदि का कथन करते हुए (इह) इस राष्ट्र में (स्मसि) रहें ।

परि॑ पूषा पुरस्ताद्वस्तं दधातु॑ दक्षिणम् ।

पुनर्नौ॑ नुष्टमाजंतु ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—(पूषा) प्रजा को पोषण करने वाला राजा, (परस्तात्) दूर तक भी (दक्षिणं) बलयुक्त वा दानशील (हस्तं) हाथ (परि- दधातु) धारण करे । जिससे (नः) हमारा (नष्टम्) खोया हुआ धन भी (आ अजतु) हमें प्राप्त हो । इति विंशो वर्गः ॥

[५५]

भरदाजो वाहस्पत्य कृषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६ गायत्री ।

३, ४ विराङ् गायत्री ॥ पद्जः स्वरः ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

एहि॑ वां विमुचो नपादाघृणे॑ सं संचावहै ।

रथीर्मृतस्य॑ नो भव ॥ १ ॥

भा—हे (आ घृणे) तेजस्विन् ! तू (आ इहि) हमें प्राप्त हो । हे (नपात्) कभी कुमार्ग में न जाने वाले ! तू (वाम्) हम दोनों को

(विमुचः) विशेष रूप से दुःखों से मुक्त कर । हम (सं सचावहै) दोनों राजा प्रजा और स्त्री पुरुष परस्पर अच्छी प्रकार सम्बद्ध होकर रहें । तू (नः) हमारे (कृतस्य) सत्य व्यवहार, धन, यज्ञादि का (रथीः) रथवान् के समान सञ्चालक (भव) हो ।

रथीतमं कपर्दिन्मीशानं राधसो मुहः ।
रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥

भा०—(रथीतमम्) श्रेष्ठ रथ के स्वामी, (कपर्दिनम्) मानसूचक शिखा धारण करने वाले, प्रमुख, (महः राधसः) वडे भारी ऐश्वर्य के स्वामी, (सखायम्) मित्र से हम लोग (रायः) नाना धन (ईमहे) याचना करें ।

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व ।
धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥

भा०—हे (अजाश्व) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, अश्व सैन्य के स्वामिन् ! वा (अजाश्व) वैग से चलने वाले अर्थों के स्वामिन् ! तू (रायः) ऐश्वर्यों को (धारा असि) धारण करने वाली वाणी के समान आज्ञापक है, हे (आ-घृणे) तेजस्विन् ! तू (वसोः) बसने वाले प्रजाजन का (राशिः असि) राशि अर्थात् जन-संघ का प्रतिनिधि है । वा ऐश्वर्य का महान् राशि, परमैश्वर्यवान् है और तू (धीवतः धीवतः) प्रत्येक दुद्धिमान् और कर्मकुशल पुरुष का (सखा) मित्र है ।

पूषणं न्व जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् ।
स्वसुयों जार उच्यते ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानवान्, (अजाश्वम्) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले, अश्व सैन्य के स्वामी, (पूषणं) प्रजा के पोषक राजा को (नु उप स्तोषाम) अवश्य परस्पर समीप बैठकर विचार पूर्वक प्रस्तुत करें । ऐसे व्यक्ति को राजा बनावें (यः) जो (स्वसुः =

सु-असुः, स्व-सुः) उत्तम प्राणवान्, सुखजनक प्राणवत् प्रिय, वा सुख से शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ, स्व = धनैश्वर्य को उत्पन्न करने में समर्थ होकर भी (जारः) उत्तम, उपदेष्टा, विद्वान् (उच्चते) कहा जावे। अथवा (यः) जो (स्वसुः) स्वयं शरण में आई प्रजा का, उषा को जीर्ण करने वाले सूर्य के समान सन्मार्ग में आदेष्टा कहा जाता है।

मातुदिंधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः ।

आतेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥

भा०—जो (स्वसुः जारः) रात्रि वा उषा को नष्ट करने वाले सूर्य के समान भगिनी के तुल्य प्रजा को (जारः) सन्मार्ग में चलाने वाला, और (इन्द्रस्य सखा) अग्नि या विद्युत् के मित्र वायु के समान (मम सखा) मेरा मित्र (आता) एवं पतिवत् वा (स्वसुः आता इव) वहिन के भाई के समान, उसका भरण पोषण करने वाला है, उसको मैं (मातुः) ज्ञान देने वाली विद्या वा सबकी माता के समान, वा मापी जाने योग्य भूमि को (दिषुषुम्) धारण करने में समर्थ (अब्रवम्) कहता हूं, वह (नः शृणोतु) हमारा वचन अवण करे।

आजासः पूषणं रथे निश्तुम्भास्ते जनश्रियम् ।

देवं वहन्तु विभ्रतः ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—(ते) वे (अजासः) शत्रु को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने वाले वीर पुरुष (नि-श्रम्भाः) नित्य, स्थिर सम्बद्ध होकर (रथे अजासः) रथ में लगे वेग से जाने वाले अश्रों के समान (जन श्रियं विभ्रतः) प्रजाजन की समृद्धि धारण पोषण करते हुए (जन-श्रियं) जनों के बीच शोभावान् (देवं) तेजस्वी राजा को (आ वहन्तु) धारण करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[५६]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री । २, ३
निचृद्गायत्री । ६ स्वराङ्गीणक् ॥

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् ।
न तेन देव आदिशे ॥ १ ॥

भा०—(य:) जो विद्वान् (एनं पूषणम्) उस प्रजा के पोषक राजा
वा प्रभु को (करम्भात्) स्वयं कर्म फल का भोक्ता होकर इस रूप से
(आ दिदेशति) उस प्रभु की स्तुति करता है (तेन) उसे (देवः) कर्म
फल देने वाले प्रभु से (आदिशे न) कार्य-फल की याचना करने की
आवश्यकता नहीं । वह प्रभु विना मांगे ही स्वयं कर्म करने पर फल देता
ही है । (करम्भः) करोतेरम्भच् ॥ ७० ॥

उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघनते ॥ २ ॥

भा०—(उत) और (घ) निश्चय से (सः) वह (रथीतमः)
उत्तम रथ का स्वामी, (सख्या युजा) मित्र सहायक से (सत्-पति) सज्जनों
का प्रतिपालक है । वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता ऐश्वर्यवान् होकर (वृत्राणि)
मेघों को सूर्य के समान विष्णों और विघ्नकारियों को (जिघनते) विनाश
करता है । अध्यात्म में—आत्मा ही रथीतम है । वह (युजा) सहयोगी,
सहकारी प्रभु के कारण सत्-पति, उत्तम स्वामी का सेवक हो विष्णों का
नाश करता है ।

उतादः पंरुषे गविः सूरश्चकं हिरण्ययथम् ।
न्यैरयद्रथीतमः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (रथीतमः सूरः गवि चकं नि एरयत्) उत्तम
महारथि भूमि पर या प्रबल अश्व या वैल के बलपर, अपने रथ चक्र

को अच्छी प्रकार चला देता है वा (सूरः परुषे) शूरवीर पुरुष, कठोर भाषण करने वाले शत्रु पर (हिरण्ययम् चक्रं नि ऐरथत्) चमकते, दीप्तियुक्त हिंसा साधन, शत्रु को चलाता है, वा जैसे (सूरः) सूर्य (परुषे) पर्वत्युक्त या तर्पक मेघ और (गवि) भूमि पर (हिरण्ययम्) तेजो-मय 'चक्र' वा विम्ब को प्रेरित करता है उसी प्रकार (रथीतमः) उत्तम रथों का स्वामी, (सूरः) शूरवीर आज्ञापक पुरुष (परुषे) कठोर शत्रु पर वा कठोर संग्राम काल में वा ([अ] प-रुषे) रोषरहित प्रजा के हितार्थ (गवि) इस भूमि पर (हिरण्यं) हित और रमणीय (अदः) उस दूर स्थित (चक्रम्) राज्य चक्र, वा सैन्य चक्र को (नि ऐरथत्) अच्छी प्रकार संचालित करे ।

यद्युद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दद्य मन्तुमः ।

तत्सु नो मन्म साधय ॥ ४ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (दद्य) दर्शनीय ! हे दुःखों के नाश करने हारे ! हे (मन्तुमः) ज्ञानवन् ! (यत्) जो (अद्य) आज (त्वा) तुझे (ब्रवाम) उपदेश करें (नः) हमारे लिये (तत्) उस (मन्म) ज्ञान का (सु साधय) अच्छी प्रकार साधन कर ।

इमं च नो ग्रवेष्ण सातये सीषधो ग्रणम् ।

आरात्पूर्णनसि श्रुतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजापोषक ! तू (आरात्) दूर वा समीप (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है । तू (इमं) इस (गो-एषणम्) पशु, भूमि, उत्तम वाणी आदि के इच्छुक (जनं) जन समूह को (सातये) नाना ऐश्वर्यादि विभक्त करने के लिये (सीषधः) प्राप्त कर ।

आ ते स्वस्तिमीमह आरे आघासुपावसुम् ।

आद्या च सुर्वतातये श्वश्व सुर्वतातये ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! (अद्य च श्वः च) आज भी और कल भी,

(सर्व-तातये) सबके कल्याणकारी, (सर्व-तातये) सर्वहित यज्ञादि कार्य में (ते) तेरी (आरे-अधाम्) पाणादि से रहित (उप-वसुम्) धनप्रद (स्वस्तिम्) कल्याणकारिणी, सुखप्रद नीति को (इमहे) याचना करते हैं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[५७]

मरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्र-पूषणौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराङ्गायत्री ।
२, ३ निचृद्गायत्री । ४, ५ गायत्री ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

इन्द्रा नु पूषणा ब्रुयं सुख्याय स्वस्तये ।
हुवेम् वाजसातये ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रा पूषणा नु) ऐश्वर्ययुक्त और सब निर्बलों के पोषक, दोनों प्रकार के पुरुषों को (सख्याय) मित्र भाव के लिये (स्वस्तये) सुख प्राप्ति के लिये और (वाज-सातये) बलैश्वर्य, अज्ञादि प्राप्त करने के लिये (वयं हुवेम) हम प्राप्त करें, उनको आदर पूर्वक बुलावें । (इरां द्वणाति 'इन्द्र') अज्ञोत्पादक कृषक जन 'इन्द्र' है और भागधुक्, पृथिवी-पति पूषा है । अज्ञादि के लिये दोनों आवश्यक हैं ।

सोम्प्रन्य उपासदुत्पातवे चम्बोः सुतम् ।
करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥

भा०—दोनों का पृथक् २ विवरण करते हैं । पूर्वोक्त इन्द्र और पूरा दोनों में से (चम्बोः) राष्ट्र का भोग करने वाले राजा और प्रजाधर्म दोनों में से (अन्यः) एक तो (पातवे) अपने पालन के लिये (सुतम्) अभिषिक्त (सोमम्) ऐश्वर्यवान्, सर्वप्रेरक राजा को (उप सदत्) प्राप्त होता है । और (अन्यः) दूसरा राजा (करम्भम्) कर ग्रहण कर उससे ही भरण करने योग्य अज्ञवत् राष्ट्र को (इच्छति) प्राप्त करना चाहता है । (२) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान्, व्यापारी वर्ग (पातवे) आगे के लिये राष्ट्र का

उत्पन्न ऐश्वर्य प्राप्त करे और (अन्यः) दूसरा (पूषा) पृथिवीस्थ शेष प्रजावर्ग भूमि से अन्न उत्पन्न करना चाहता है । एक धन कमावे, और एक अन्न, वे दोनों ही इन्द्र और पूषा हैं । व्यापारी वर्ग 'इन्द्र' है, कृषक वर्ग 'पूषा' है ।

अजा अन्यस्य वहयो हरी अन्यस्य समृता ।

ताभ्यां वृत्राणि जिघते ॥ ३ ॥

भा०—उन दोनों मे से, (अन्यस्य) एक प्रजावर्ग के (अजाः वद्यः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ, अग्निवत् तेजस्वी, राज्य-भार को धारण करने वाले, (समृता) वेतनादि द्वारा अच्छी प्रकार पोषित किये जाय । और (अन्यस्य) दूसरे, राजपक्ष के, (अजा) वेगवान् (हरी) अश्व वा स्त्री पुरुष (समृता) एकत्र वेतनबद्धवत् खूब हृष्ट पुष्ट होने उचित हैं । (ताभ्याम्) उन दोनों से, (वृत्राणि) विघ्नकारी हृष्ट पुरुषों और राज्य पर आने वाले संकटों को (जिघते) नाश करता है । अधिदेव में—इन्द्र सूर्य, पूषा वायु है ।

यदिन्द्रो अनयदितो महीरुपो वृषन्तमः ।

तवं पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृषन्तमः) खूब वर्षा करने वाला सूर्य (महीः अपः) बहुत जलों को सर्वत्र फैला देता है (पूषा सचा अभवत्) पोषक वायु सहायक होता है । उसी प्रकार (यत्) जब (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वा शत्रुहन्ता राजवर्ग, (वृषन्तमः) खूब बलवान्, भूमिसेचक होकर (रितः) सब ओर जाने वाली गाड़ियों, वा (महीः) बड़ी अन्न सम्पद देने वाली भूमि भूमियों को (अनयत्) प्राप्त करावे । (तत्र) वहां (सचा) सहायक रूप से (पूषा अभवत्) पोषक कृषक वर्ग होता है ।

तां पूष्णः सुमतिं वृयं वृक्षस्य प्र वृयामिव ।
इन्द्रस्य चारभामहे ॥ ५ ॥

भा०—(पूष्णः) सर्वपोषक, और (इन्द्रस्य च) ऐश्वर्यवान् शत्रु-हन्ता तथा, अज्ञाननाशक उत्तम ज्ञानदायक जन की (तां) उस (सुम-तिम्) शुभ मति को (वृक्षस्य) वृक्ष की (वृयाम् इव) शाखा के समान अपने आश्रय और उच्चाति के लिये (प्र आ रभामहे) प्राप्त करें । इसी प्रकार (पूष्णः) सर्वपोषक पृथ्वी और (इन्द्रस्य) विद्युत्, मेघ, सूर्य आदि सम्बन्धी (सु-मतिं) उत्तम ज्ञान को भी हम प्राप्त करें ।

उत्पूषणे युवामहे अभीश्चारिव सारथिः ।
मह्या इन्द्रै स्वस्तये ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—(सारथिः अभीश्चारिव) सारथि जिस प्रकार घोड़े की लगाम की रस्सियों को अलग २ रखता और उनको अपने वश करता है इसी प्रकार हम लोग भी (पूषणम्) प्रजा के पोषक, पृथ्वी, तथा उस पर कृषि आदि करने वाले प्रजावर्ग तथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त वैश्य वर्ग, इन दोनों को (मह्यै) भूमि या राष्ट्र की उच्चाति और (स्वस्तये) सब के कल्याण के लिये (उत्तर्युवामहे) उद्योगपूर्वक पृथक् २ रखते और उनको वश करें, उनकी उत्तम रूप से व्यवस्था करें । इसी प्रकार पूषा पृथ्वी और इन्द्र सूर्य या विद्युत् आदि पदार्थों का उत्तम रीति से उपयोग करें । इति त्रयोर्विंशो वर्गः ॥

[५८]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ अन्दः—१ त्रिष्टुप् । ३-४ विराट्
त्रिष्टुप् । २ विराढ् जगती ॥ चतुर्वैचं सूक्तम् ॥

शुक्रं ते अन्यद्यजुतं ते अन्यद्विपुरुषे अहंनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भुद्रा ते पूषान्निह रातिरस्तु ॥ १ ॥

भा०—हे (स्वधावः) अपने तेज को धारण करने वाले पुरुष ! हे (पूषन्) धारण किये वीर्य को पोषण करने वाली ! भूमिवत् व्यक्ति हि ! आप दोनों (वि- सु-रूपे) विशेष सुन्दर रूपवान्, भिन्न २ उत्तम रुचि वाले, (अहनी) दिन रात्रिवत् एक दूसरे को पीड़ा न देने वाले, दीर्घायु होते । हे (स्वधावः) अपने आत्मांश को धारण करनेवाले पुरुष ! (ते शुक्र) तेरा विशुद्ध वीर्य, (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है और हे (पूषन्) गर्भ में वीर्य को पोषण करने हारी भूमिस्वरूप ! (ते) तेरा वीर्य रजः रूप (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है । पुरुष तू (द्यौः इव असि) सूर्य के समान है और आप दोनों (यजतम्) आदर पूर्वक मिलकर रहो । हे हि ! तू भी (द्यौः इव असि) भूमि के समान कामना वाली, वीर्य को सुरक्षित रखने वाली है । हे पुरुष ! हे हि ! तुम दोनों पृथक् (विश्वाः मायाः) समस्त निर्माणकारिणी, सृष्टि उत्पादक शक्तियों को (अवसि) सुरक्षित रखते हो । (ते) तुम्हारी (राति) दान आदान, (भद्रा अस्तु) भद्र, सुखप्रद और कल्याणकारक (इह) इस लोक में हो । उसी प्रकार प्रजा राजा आदि भी मिलकर रहें ।
श्रुजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियज्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अग्नौ पूषा शिथिरामुद्रर्वृजत्सञ्चाणो भुवना देव ईयते ॥ २ ॥

भा०—(पूषा) गृहस्थ का पोषण करने वाला पुरुष (अज-अश्वः) भेड़ बकरियों और अश्वों का स्वामी (पशु-पाः) पशुओं की पालना करने वाला, (वाज-पस्त्यः) गृह में भज्ञ और ऐश्वर्य का सञ्चय करने वाला, (धियं-जिन्वः) ज्ञान और उत्तम कर्म द्वारा परमेश्वर और अपने बन्धुजनों को प्रसन्न करने हारा होकर (विश्वे भुवने) इस समस्त संसार के बीच (अर्पितः) स्थिर होकर रहे । वह (पूषा) गृहस्थ का पालक पोषक (शिथिराम्) काम करने में शिथिल, अल्पशक्ति वाली, (अष्टाम्) भोग योग्य छी को (उद् वरीवृजत्) उत्तम रीति से प्राप्त करे, उस से

उद्घाह करे । वह (देवः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (सं-चक्षाणः) अच्छी प्रकार देखता, कामना करता हुआ वा उत्तम वचन कहता हुआ (भुवनह ईयते) समस्त पदार्थों को प्राप्त हो ।

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययैरन्तरिक्षे चरन्ति ।

ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषक ! पालक गृहपते ! (नावः हिरण्ययीः अन्तः समुद्रे अन्तरिक्षे चरन्ति) जिस प्रकार नौकाएं और स्वर्णादि से भूषित, वा लोह आदि से बनी, समुद्र और आकाश दोनों स्थानों पर चलती हैं उसी प्रकार (याः) जो (ते) तेरी (हिरण्ययीः) हितकारी और रमण्योग्य, सुखप्रद, (नावः) हृदय को प्रेरणा करने वाली वाणियां (समुद्रे) अति हर्षयुक्त (अन्तरिक्षे अन्तः) अन्तःकरण के बीच (चरन्ति) प्रवेश करती हैं (ताभिः) उन वाणियों से ही हे (कृत) कर्तः ! तू (श्रवः इच्छमानः) अन्न और यश की कामना करता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य की (दूत्यां) दूतवत् प्रतिनिधि होने की किया को (यासि) प्राप्त होता है अर्थात् सूर्य की कान्ति को प्राप्त करता है । अपनी प्रेरिका आज्ञा से ही पालक स्वामी, यशस्वी और सूर्यवत् तेजस्वी हो जाता है ।

पूषा सुवन्धुर्दिव आ पृथिव्या इङ्गस्पतिर्मध्यवा दुस्मवर्चाः ।

यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसुं स्वश्वम् ॥ ४ ॥ २४ ॥

भा०—(यं) जिसको (कामेन कृतम्) कामना युक्त (तवसं) बलवान् (सु-अञ्चम्) सुभूषित, सुन्दर ढंग करके (देवासः) विद्वान् लोग (सूर्यायै) सूर्य की दीसि के समान उज्ज्वल, कमनीय स्त्री के लिये (अददुः) पति रूप से प्रदान करें । (पूषा) गृहस्थ का पोषक, गृहपति, (दिवः) कामना, करने वा उसे चाहने वाली और (पृथिव्याः) उसकी

पृथिवीवत् आश्रय रूप स्त्री का (सुवन्धुः) पूज्य बन्धुवत् प्रिय हो । वह (इडः पतिः) भूमि के पालक के समान अपनी 'इडा' अर्थात् चाहने योग्य प्रिय पत्नी का पालक और अज्ञ का स्वामी तथा (मघवा) धनादि सम्पन्न और (दस्म-वर्चाः) विष्णों के नाशकारी तेज से सम्पन्न हो । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[५६]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ वन्दः—१, ३, ४, ५ निचृद्दू
बृहती । २ विराङ्गवृहती । ६, ७, ८ भुरिग्नुष्टुप् । १० अनुष्टुप् ।
८ उष्णिक् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्यां^३ यानि चक्रथुः ।

हृतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राश्नी जीवथो युवम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राश्नी) इन्द्र, सूर्य, वायु वा विद्युत् के समान बल-वान् पुरुष और हे अग्नि के समान दीसि, उत्तेजना उत्पन्न करने वाली खि ! आप दोनों (सुतेषु) उत्पन्न होने वाले पुत्रों के निमित्त (यानि वीर्या) जिन २ वीर्यों, बलयुक्त कार्यों को (चक्रथुः) करें मैं (वां) आप दोनों को उन आवश्यक कर्तव्यों का (प्र वोच) उपदेश करता हूँ । देखो, (देव-शत्रवः) 'देव' अर्थात् प्रकाश, जल, पृथिवी आदि पदार्थों और शुभ गुणों के शत्रु, उनका सदुपयोग न करके दुरुपयोग करने वाले (वां पितरः) आप दोनों के पालक माता पिता, पितामह, चाचा आदि वृद्धजन (हतासः) अवश्य पीड़ित होते और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और (युवम्) तुम दोनों (जीवथः) अभी भी उनके बाद जीवित होकर दीर्घं जीवन का भोग करो । विद्युत्-अग्निपक्ष में 'देव'

अर्थात् किरणों के शत्रुभूत या उनसे नष्ट होने वाले उसी प्रकार

(३)—'कृतः' इति सायणाभिमतः पाठः ।

उत्तम गुणों के शत्रु, हिंसक जन्तु भी नाश को प्राप्त हों रोग आदि जन्तु (पितरः) जो अन्य जन्तुओं का नाश करते हैं वे भी (वां वीर्यैः हतासः) आप दोनों के बलों से विनष्ट हो जावें। 'पितरः' पीयतिहैंसाकर्मा। तस्यैतद्गूपम् इति सायणः ।

**ब्रह्मित्था महिमा वामिन्द्राश्ची पनिष्ठु आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं युमाविहैमातरा ॥ २ ॥**

भा०—हे (इन्द्राभी) पूर्वोक्त सूर्य और अग्नि के तुल्य पति पत्नी, (वाम) आप दोनों का (पनिष्ठः) अति सुख (महिमा) महान् सामर्थ्य वह (इत्था वट्) इस प्रकार का अति सत्य है। क्योंकि (वां) आप दोनों का (जनिता) उत्पादक, मा बाप वा आचार्या गुरुजन (समानः) एक समान पद के, समान रूप से मान पाने योग्य हैं। (युवं) आप दोनों वस्तुतः (भ्रातरौ) भाई बहन के समान, एक दूसरे के पोषक पालक होवो। (युवं) तुम दोनों एकवर्ग में निवास करने वाले, (यमौ) ब्रह्मचर्याश्रम में संयम से रहने वाले युगल, होकर रहो, और (इह-इह-भ्रातरौ) इस गृहस्थाश्रम में रह २ कर एक दूसरे की कामना करने वाले एवं अगले सन्तानों के माता-पिता होवो ॥ माता या छी की अग्नि रूपता देखो, छान्दोग्य में पञ्चाग्नि प्रकरण, योषा वै अग्निः। तस्यां देवाः वीर्यं जुह्वति । अथवा सामवेद मन्त्र-ब्राह्मण में—अग्निं क्रच्यादमकृणवन् गुहानाः श्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः । तेनाज्यमकृणवन् त्रैश्त्रङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तदधातु ॥ मन्त्र ब्रा० १ । १ । ३ ॥ दोनों छी पुरुष समान पद के माता पिता वा समधियों वा आचार्य से उत्पन्न होते हैं, 'यम' अर्थात् ब्रह्मचर्य काल में वे दोनों भाई भाई वा भाई-बहिन के समान होते हैं, परन्तु लोक में—गृहस्थ में होकर वे घर २ में, (इह इह) जगह २ मां बाप बन जाते हैं।

श्रोकिवांसा सुते सच्चाँ अश्वा ससी इचादने ।

इन्द्रान्वःश्ची अवस्थेह वज्रिणा वृयं देवा हृचामहे ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रा) पूर्वोक्त दोनों वर वधू, परिपत्नी, (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान्, मेघ विद्युत् के तुल्य परस्पर स्त्रेह धारण करने वाले, और (अग्नी) दोनों अग्नियों के तुल्य तेजस्वी, (ओकिवांसा) परस्पर मिल कर रहने वाले, परस्पर समवेत, अर्थात् एक दूसरे में नित्य सम्बन्ध बना कर रहने वाले, (सुते) पुत्र के निमित्त (सचा) एक साथ संगत हुए, (आदने) ऐश्वर्य भोग वा भोजन के निमित्त (अश्वा सप्ती हृव) वेगवान् दो अश्वों के समान सदा एक साथ रहने वाले, (अवसा) परस्पर की रक्षा, अङ्ग-तृप्ति, ऐश्वर्य आदि के द्वारा (ह्रह) हस गृहाश्रम में विराजें, और (वयम्) हम सब उन दोनों (वज्रिणा) बलवान् वीर्यवान्, (देवा) दानशील, तेजस्वी एवं एक दूसरे की कामना करते हुए दोनों को (हवामहे) हस गृहस्थाश्रम में आदरपूर्वक बुलाते हैं ॥

य इन्द्रास्त्री सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।

जोषवाकं वदतः पञ्चहोपिणा न देवा भुसथश्चन ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रास्त्री) ऐश्वर्यवान् और अग्नि के समान तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (तेषु) उन उत्पन्न करने योग्य पुत्रों के निमित्त (ऋत-वृधा वां) धन, वीर्य, ज्ञान की वृद्धि करने वाले आप दोनों को (यः) जो विद्वान् पुरुष (स्तवत्) उपदेश करे, आप दोनों (जोषवाकं वदतः) परस्पर प्रीतियुक्त वचन बोलने वाले उसके प्रति (पञ्चहोपिणा) उत्तम कमाये धन के देने और उत्तम वचन कहने वाले होओ । आप दोनों (देवा) परस्पर प्रीतियुक्त, दानशील होकर उसके प्रति (नभसथः चन) कभी व्यर्थवाद वा उपहास आदि न किया करो ।

इन्द्रास्त्री को श्रस्य वां देवौ मर्त्यश्चिकेतति ।

विष्वृतो अश्वान्युयुजान ईयत् एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (इन्द्रास्त्री) इन्द्र, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी और हे (देवी) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों के बीच, (कः मर्त्यः)

कौन मनुष्य (चिकेतति) जानता है जो (एकः) अकेला ही, (समाने रथे) एक समान रमणयोग्य गृहस्थ या देहरूप रथ में (वि-पूचः) विविध दिशाओं में जाने वाले (अश्वान्) अश्वों के समान नाना विषयों को भोगने वाले इन्द्रियों को (युयुजानः) योग वा कर्मकौशल से एकाग्र करता हुआ (ईयते) जीवन मार्ग पर गमन करता है ? उत्तर— (कः) कर्ता, प्रजापति, गृहस्थ पुरुष । विज्ञान पक्ष में—कौन पुरुष विद्युत् और अग्नि इन दोनों के रहस्य-विज्ञान को जानता है ? जो जानता है वह (समाने रथे विश्वाचः अश्वान् युयुजे) एक ही समान रथ में नाना प्रकार, के, नाना शक्ति वाले, नाना आकार-प्रकार के 'अश्व' अर्थात् वेगयुक्त ऐंजिन, यन्त्रादि लगा कर वेग से गमन करता है । इति पञ्चविंशी वर्गः ॥

इन्द्राभ्नी श्रुपादियं पूर्वागात्पुद्रतीभ्यः ।

हित्वी शिरो जिह्वया वावदुचर्चिंशत्पदां न्यकमीत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्राभ्नी) इन्द्र, विद्युत् और अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (इयम्) यह स्त्री (अपात्) अपने सत्य वचन से न गिरने हारी, (पद्रतीभ्यः) उत्तम आचरण वाली अन्य सखियों से भी (पूर्वा) प्रथम, सबसे मुख्य होकर (आ अगात्) सबके सन्मुख आवे । वह (शिरः हित्वी) शिर को बांधकर, उत्तम रीति से बेणी आदि बनाकर (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) व्यक्त भाव प्रकट करे और (चरत्) तदनुसार आचरण करे और (त्रिशत् पदा) तीसों पदों पदों या स्थानों में (नि अक्रमीत्) निकल कर जावे । भोजनान्तरशतपदीवत् त्रिशत्पदेत्युपलक्षणम् ॥ विद्युत्-पक्ष में—(इयं) यह विद्युत् वेगवती होने से गाढ़ी के चरणों वाली, गमनशील, पशुओं से जुती गाड़ियों की अपेक्षा पूर्व पहुंच सकती है । (शिरः हित्वा) अग्र भाग जोड़ देने से यन्त्र द्वारा बोलती है, सर्किंट में चलती है, तीसों स्थानों में व्याप जाती है ।

इन्द्रांशी आ हि तन्वते नरो धन्वानि ब्राह्मोः ।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्कु गविष्टिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राशी) विद्युत्-अश्वित् तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (अ-
स्मिन् महाधने) इस संग्राम में भी (गविष्टिषु) भूमियों को विजय-
करने के अवसरों में (नः मा परा वर्कम्) हम अन्य नगरवासियों को
छोड़कर मत भागना । क्योंकि उस समय तो (नरः) मनुष्य लोग
(ब्राह्मोः) बाहुओं में (धन्वानि) धनुषों को लेकर (आ तन्वते)
युद्ध किया करते हैं । यृहस्थ में प्रवेश करने वाले स्त्री-पुरुषों को नागरिकों
के कर्तव्य का उपदेश है कि संग्राम के अवसर पर नगर को संकट में
छोड़कर न भाग जावें, प्रथ्युत वे भी वीरों के समान शस्त्राख हाथ में लेकर
युद्ध करें ।

इन्द्रांशी तपन्ति माधा अर्यो अरातयः ।
अपु द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्राशी) सूर्य अश्वित् तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (अर्यः)
आगे आने वाली (अधाः) पापयुक्त हिंसक (अरातयः) शत्रु सेनाएँ
(मा तपन्ति) मुझे सत्ताप देती हैं । आप लोग (द्वेषांसि) द्वेष करने वालों को
(अप आ कृतं) दूर करो और (सूर्यात् अधि) सूर्य के प्रकाशमय जीवन
से उनको (युयुतम्) वियुक्त करो ।

इन्द्रांशी युवोरपि वसुं दिव्यानि पार्थिवा ।

आ न इह प्र यच्छ्रुतं इर्थि विश्वायुपोषसम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्राशी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (युवोः)
तुम दोनों के (दिव्यानि) उत्तम, सूर्यादि से उत्पन्न, और (पार्थिवानि)
पृथिवी से उत्पन्न, सुभिक्ष, अज, जल, रक्त, भूमि आदि (वसु) नाना-
द्रव्य हों । आप दोनों (नः) हमें (इह) इस राष्ट्र में (विश्वायु-पोष-

सम्) समस्त मनुष्यों को वा जीवन भर पोषण करने में समर्थ (रयिम्) ऐश्वर्य को (प्रयच्छतम्) प्रदान करो ।

इन्द्राभ्यु उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।

विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (उक्थ-वाहसा) उत्तम वचन को धारण करने वाले ! (स्तोमेभिः) सुतियोग्य वचनों और वेदमन्त्र के सूक्तों से (हवनश्रुता) दानयोग्य ज्ञान को श्रवण करने हारे ! (इन्द्राभ्यु) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों (अस्य सोमस्य पीतये) इस उत्पन्न हुए पुत्रादि सन्तान के पालने के लिये (विश्वाभिः गीर्भिः) सब प्रकार की विद्याओं से ज्ञानवान् होकर (आ गतम्) आओ । बाद में गृहाश्रम धारण करो । इति पठ्विंशो वर्गः ॥

[६०]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्रिष्ठुप् ।

२ विराट्त्रिष्ठुप् । ४, ६, ७ विराड्गायत्री । ५, ६, ११ निचृद्गायत्री । ८,

१०, १२ गायत्री । १३ स्वराद् पंक्तिः १४ निचृदनुष्ठुप् । १५ विराडनुष्ठुप् ॥

पञ्चदशर्च सूक्तम् ॥

श्वथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो श्रुत्वा सहुरी सपुर्यात् ।

इरुज्यन्ता वसुव्यस्य भूरेः सहस्तमाः सहसा वाजयन्ता ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान् (अभ्यु) अभिवत् तेजस्वी (सहुरी) सहनशील (सहः-तमा) अति बलशाली, (सहसा) बल से (वाजयन्ता) ऐश्वर्य वा संग्राम करने वाले, (भूरेः वसव्यस्य) बहुत द्रव्य के (इरुज्यन्ता) स्वामियों की (सपर्यात्) सेवा करे । वह (वृत्रम् श्वथत्) विष्णों को नाश करता, (वाजं सनोति) ऐश्वर्य का भोग करता और औरों को भी देता है । (२) (यः इन्द्र-अभ्यु सहुरी

क्षथत्) जो वायु, विद्युत् और सूर्य और अग्नि दोनों को अपने वश कर लेता है वह (वृत्रम् उत वाजं सनोति) धन और अज्ञ का भोग करता है । वह (सहुरी सपर्यात्) इन दोनों बलशाली तत्वों को अपने कार्य में लगाता है । वह (वसव्यस्य भूरे: इरज्यन्त) भारी ऐश्वर्य वा स्वामी बन जाता है वह (वृत्रम् उत वाजं सनोति) बहुत धन और अज्ञादि ऐश्वर्य को भोगता है ।

ता योधिष्ठमभि गा इन्द्रं नूनमपः स्वरुषसौ अग्न ऊळहाः ।
दिशः स्वरुषसौ इन्द्रं चित्रा श्रुपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! हे (अग्ने) तेज-
त्विन् ! विद्वन् ! अग्रणी नाथक ! अथवा पूर्वोक्त स्त्रीपुरुषो ! आप दोनों !
(ता:) उन (गा: अभि) भूमियों को लक्ष्य करके (योधिष्ठम्) शत्रुओं
से युद्ध करो । और (नूनम्) अवश्य (अपः) आप प्रजाओं और
(स्वः) सुख कारक, वा उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली (उषसः)
कमनीय, कान्तियुक्त, प्रिय, प्रभातवेलाओं के समान सुन्दर (ऊढः)
विवाहित परिणयों को लक्ष्यकर उनकी मान रक्षा के लिये (अभि योधि-
ष्ठम्) शत्रु वा दुष्ट जनों को प्रहार करो । हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन् !
तू (दिशः) दिशाओं (स्वः) सुखमय प्रकाश और (उषसः) उषाओं
के समान सुप्रसन्न प्रजाजनों को और (चित्रा:) अद्भुत एवं पूज्य (अपः)
जलवत् शीतल, एवं आप जनों को और (गा:) भूमियों, इन्द्रिय गणों को
(युवसे) मिला, और हे (अग्ने) अग्रणी नाथक ! तू भी उसी प्रकार
(नियुत्वान्) उत्तम अश्रों का स्वामी होकर (दिशः) आदेश मानने
वाली (स्वः) प्रेरणा योग्य (उषसः) शत्रु को दग्ध करने वाली (चित्रा:)
अद्भुत बलशाली, (अपः) जल धारावत् प्रवाह से जाने वाली, (गा:)
शक्तिशाली चलाने वाली सेनाओं को (युवसे) प्राप्त कर ।

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्रं युतं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरक्वेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वृत्रहणा) विद्युत् और सूर्य के समान मेघवत् शत्रु पर आधात करने वाले (इन्द्र अग्ने) विद्युत् के समान तेजस्विन् ! राजन् अग्नि के तुल्य सत्यप्रकाशक विद्वन् ! सभ्यजन ! आप दोनों (वृत्रहभिः) दुष्टों का नाश करने वाले (नमोभिः) शशाखों, उपायों से और (शुष्मैः) बलों सहित (अर्वाक् आ यातम्) हमारे पास आओ । और हे (इन्द्र अग्ने) दुष्ट नाशक ! पापियों को सन्ताप देने हारे जनो ! (युवं) आप दोनों (अक्वेभिः) अनिन्दनीय अनेकों (उत्तमेभिः) उत्तम २ (राधोभिः) धनों से (भवतम्) सम्पन्न होओ ।

ता हुवे ययौरिदं पुणे विश्वं पुरा कृतम् ।

इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥

भा०—(ययोः) जिन दोनों के बल पर (इदं विश्वम्) यह समस्त विश्व (पुरा कृतम्) पहले बना और अब भी (प्रे) नियमपूर्वक व्यवहार करता, और चलता है, मैं (ता) उन दोनों (इन्द्राग्नी) विद्युत् अग्नि वा चायु और अग्नि तत्त्वों का (हुवे) उपदेश करूँ । वे दोनों (न मर्धतः) इस विश्व को नाश नहीं करते । हसी प्रकार राष्ट्र में जिनके बल पर संसार का व्यवहार चलता है, जो राष्ट्र को नष्ट नहीं होने देते वे तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् पुरुष ‘इन्द्र’ और ‘अग्नि’ हैं ।

उत्रा विधनिना मृधं इन्द्राग्नी हृवामहे ।

ता नो मृलात ईद्वशे ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हम लोग (उत्रा) अति तेजस्वी, (वि-धनिना) विशेष २ रूप से आधात करने वाले (इन्द्राग्नी) चायु विद्युत् दोनों को (हृवामहे) प्राप्त करें, उनको अपने बश करें (ता) वे दोनों (नः) हमें

(ईदशे) इस प्रकार के व्यवहार में (नः) हमें (मृडातः) सुखी करते हैं । इसी प्रकार शत्रुओं को दण्ड देने वाले, तेजस्वी सेनापति और सैन्य को हम (मृधः) संग्रामों को विजय करने के लिये प्राप्त करें (ता नः मृडत) वे हम पर देया करें । कृपा बनाये रखें । मृडतिरुपदेयाकर्मा ॥ इति सप्तविंशो वर्गः ॥

हुतो वृत्राण्यायां हुतो दासानि सत्पती ।

हुतो विश्वा अपु द्विषः ॥ ६ ॥

भा०—आप दोनों (आर्या) श्रेष्ठस्वभाव होकर (वृत्राणि हतः) विघ्नों और विघ्नकारियों को दण्डित करें । इसी प्रकार आप दोनों (सत्पती) सज्जनों के पालक और उत्तम पति-पत्नी होकर (दासानि) भूत्य जनों तथा प्रजा के उपक्षय करने वाले कार्यों और करने वालों को भी (हतः) दण्डित करो । और आप दोनों (विश्वा द्विषः) सब द्वेष के भावों और द्वेष करने वालों को भी (अप हतः) दण्डित कर दूर करो ।

इन्द्रांश्च युवासिमेऽभि स्तोमा अनूषत ।

पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्रांश्च) विद्युत् अभि के समान तेजस्वी खी पुरुषो ! सेनापति सैन्य जनो ! हे (शम्भुवा) शान्ति देने हारो ! (युवाम्) आप दोनों की (हमे) ये (स्तोमाः) सुर्ति युक्त वचन वा स्तोता जन (अभि-अनूषत) साक्षात् प्रशंसा करते हैं वा विद्वान् जन उपदेश करते हैं । आप दोनों (सुतम् पिबतम्) उत्पन्न अन्नादि ओषधि, प्राप्त ऐश्वर्य का पालन वा, उपभोग करो ।

या व्रां सन्ति पुरुस्पृहौ नियुतो द्राशुर्वे नरा ।

इन्द्रांश्च ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (नरा) नायक जनो ! हे (इन्द्रांश्च) ऐश्वर्यवन् और

अग्रणी पुरुषो ! (या:) जो (वां) आप दोनों की (पुरुस्पृहः) बहुतों से अभिलाषा करने योग्य (नि-युतः) अधीन नियुक्त सेनाएं वा लक्षों सम्पदाएं वा उत्तम इच्छाएं (सन्ति) हैं (ताभिः) उनसे आप दोनों (दाशुषे) दानशील, करप्रद प्रजाजन के हितार्थ (आगतम्) आइये ।

ताभिरा गच्छतं नुरोपेदं सवनं सुतम् ।

इन्द्रांश्ची सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम ची पुरुषो ! हे (इन्द्रांश्ची) ऐश्वर्यवान् और अद्विसम तेजस्वी जनो ! आप (ताभिः) इन सम्पदाओं, शुभ कामनाओं से (आ गच्छतम्) आइये । (इदं सवनं) यह यज्ञ (उपसुतम्) अच्छी प्रकार किया गया है । आप (सोमपीतये) ओषधिरस वत् ऐश्वर्य, सुख के उपभोग के लिये प्राप्त हूँजिये ।

तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वज्ञत् ।

कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥ २८ ॥

भा०—जिस प्रकार अभि (अर्चिषा) अपनी ज्वाला से (विश्वा वना) सब बनों या काष्ठों में (परि स्वजत्) लग जाता है और उनको (जिह्वया) अपनी ज्वाला से (कृष्णा) काला कोयला (करोति) बना देता है और जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् जल (अर्चिषा) अपनी दीप्ति से (विश्ववना परिष्वज्ञत्) समस्त किरणों और समस्त मेघस्य जलों को व्यापता है और (जिह्वया कृष्णा करोति) अपनी ग्रहणकारिणी आकर्षक शक्ति से आकर्षण करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष अपने (अर्चिषा) अर्चना वा आदर सत्कार योग्य उत्तम कर्म से (विश्वा वना) समस्त विभाग योग्य द्रव्यों को (परि स्वजत्) प्राप्त कर लेता है और (जिह्वया) वाणी द्वारा (कृष्णा) नाना आकर्षण (करोति) उत्पन्न करता है, हे विद्वन् ! तू (तम् ईंडिष्व) उसको चाह, उसकी स्तुति और आदर कर । इत्यथाविंशो वर्गः ॥

य इद्ध आविवासति सुमनमिन्द्रस्य मर्त्यैः ।

द्युम्नाय सुतरा श्रूपः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा वा स्वामी के (द्युम्नाय) तेजोवृद्धि के लिये (सुतराः अपः) सुखप्रद जल और (सुमनम्) सुखकारी अग्न (इद्धे) उसके अति तेजस्वी होने पर (आविवासति) आदरपूर्वक देता है और उसकी सेवा करता है वह स्वयं भी (सुमनम्) सुख और (सुतराः अपः) सुखजनक जलों को प्राप्त करता है । (२) (यः) जो मनुष्य (इन्द्रस्य) विद्युत् के (सुमनम्) सुखकारी ऐश्वर्य को (इद्धे) उसके अति ग्रदीप तेज के बल पर (आविष्कार करना चाहता है वह (द्युम्नाय) ऐश्वर्य या अति तेज के लिये भी (सु-तराः अपः) खूब वेग से जाने वाले जलों को प्राप्त करे और उससे विद्युत् प्राप्त करे । (३) जो शिष्य (इन्द्रस्य) ज्ञानप्रद युरु की सेवा करता है (द्युम्नाय) यश के लिये सुख से पार तराने वाले कर्मां वा ज्ञान को प्राप्त करता है ।

ता त्रो वाज्वतीरिप॑ आशून्पृतुमर्वैतः ।

इन्द्रमुग्नि॒ च वोढ्हवे ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्राभी) ऐश्वर्ययुक्त, तेजस्वी और ज्ञानयुक्त स्त्री पुरुषो ! आप लोग (वः वाजवतीः इपः) हमारे बलयुक्त अज्ञों, ऐश्वर्ययुक्त कामनाओं तथा संग्रामकारी सेनाओं को आप दोनों (पिष्टतम्) पालो और (आशूर अर्वतः) शीघ्रगामी अश्वों और शत्रुहिंसक वीरों को भी (पिष्टतम्) पालन करो और (इन्द्रम् अग्निं च) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ज्ञानयुक्त और अग्नितत्व युक्त तुझे प्राप्त होने वाले स्त्री पुरुष इन दोनों को (वोढ्हवे) विवाह करने के निमित्त (पिष्टतम्) पालन करो । अर्थात् पुरुष जब तक पर्याप्त धन न कमावे और स्त्री जब तक ऋतुसे न हो तब तक

उनके माता पिता पाले और बाद में उनके विवाह करें। (३) विज्ञानपक्ष में—
विद्युत् और अग्नि दोनों का रथ वहने के लिये प्रयोग करो क्योंकि ये
दोनों वेगवान् प्रेरणा और वेग से जाने वाले बलों को धारते हैं।

उभा वामिन्द्राश्ची आहुवध्या उभा राधसः सुह माद्यध्यै ।

उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम्॥१३॥

भा०—(इन्द्राश्ची) हे विद्युत् अग्निवत्, तेजस्वी प्रकाशवान् धनी,
ज्ञानी स्त्री पुरुषो ! (उभा) दोनों आप (इषां) अज्ञों और (रयीणाम्
दातारा) धनों को देने वाले हो । (वाम् उभा) आप दोनों को मैं (वाज-
स्य सातये) बल, अज्ञ और ऐश्वर्य के विभाग के लिये (हुवे) आदर-
पूर्वक बुलाता हूँ और (उभा) दोनों आदरपूर्वक और (सह) एक
साथ मिलकर (राधसः) धन का (माद्यध्यै) आनन्द-लाभ करने के
लिये (वाम् उभा हुवे) आप दोनों की प्रार्थना करता हूँ ।

आ तो गव्यैभिरश्ववैर्वसुव्यैरुपं गच्छतम् ।

सखायौ देवौ सुख्याय शम्भुवैन्द्राश्ची ता हृवामहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्राश्ची) सूर्य, विद्युत् या मेघ, विद्युत् के समान परस्पर
वर्त्तने वाले स्त्री पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (गव्येभिः) गौ, पशु,
से प्राप्त दुःख आदि पदार्थों, वाणी के ज्ञानों और भूमि से प्राप्त अज्ञों
सहित और (अश्वव्यैः) अश्व योग्य रथों और (वसव्यैः) धनों से प्राप्त
होने योग्य सुखों एवं वसे हुए जनों के हितकारी साधनों सहित (उप
गच्छतम्) प्राप्त होओ । आप दोनों (सखायौ) समान ख्याति वा नाम,
ग्रसिद्धि वाले, परस्पर मित्र, (देवौ) दीसियुक्त, सुखप्रद, और (सख्याय)
मित्रता की वृद्धि के लिये (शम्भुवा) शान्ति देने वाले हो । (ता)
उन आप दोनों को हम लोग (हृवामहे) आदरपूर्वक बुलावें । उसी
प्रकार हमारे पास विद्युत् और अग्नि भूमि या किरणों के योग्य दीप-
कादि, वेगवान् साधनों, रथादि और गृहादि योग्य यन्त्रों सहित प्राप्त हों ।

इन्द्राश्ची शुणुतं हृवं यज्ञमानस्य सुन्वतः ।

चीतं हृव्यान्या गतं पिवतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्राश्ची) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! आप दोनों (सु-
न्वतः यज्ञमानस्य) नाना पदार्थों को उत्पन्न करने वाले दानशील पुरुष
के (हृवं) वचन को (शृणुतं) श्रवण करो । (हृव्यानि चीतं) उत्तम
अन्नों का भोजन करो । (सोम्यं मधु) बलदायक, ओषधिरस से युक्त
मधुर पदार्थ का (पिवतं) पान करो । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[६१]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सरस्वती देवता ॥ छन्दः—१, १३ निचृद्जगती ।

२ जगती । ३ विराङ्गजगती । ४, ६, ११, १२ निचृद्गायत्री । ५, ६, १०

विराङ्गगायत्री । ७, ८ गायत्री । १४ पंक्तिः ॥ चतुर्दशर्च सूक्तम् ॥

इयमददाद्रभुस्मृणच्युतं दिवोदासं वध्यश्वाय दाशुषे ।

या शश्वन्तमाचखादावसं पुर्णिता तै दात्राणि तविषा सरस्वति १

भा०—हे (इयम्) यह सरस्वती, वेगयुक्त जल, वाणी, नदी जिस
प्रकार (वध्यश्वाय) अक्ष अर्थात् वेग से जाने वाले प्रवाह को रोकने या
उसको और अधिक बढ़ाने वाले पुरुष को (क्रण-च्युतं) जल से प्राप्त होने
वाला, (दिवः दासम्) तेज या विद्युत का देने वाला (रभसम्) वेग
(अददात्) प्रदान करता है । और (यः) जो नदी (शश्वन्तम्) निर-
न्तर चलने वाली और (पर्णि) व्यवहार योग्य, उत्तम (अवसं) गति
को (आचखाद) स्थिर रखती है और उसके (ता तविषा दात्राणि) वे २
नाना प्रकार के बलयुक्त दान हैं उसी प्रकार यह सरस्वती, वाणी वा ज्ञान-
मय प्रभु ! (वध्यश्वाय) अपने इन्द्रिय रूप अक्षों को बांधकर संयम से
रहने वाले और (दाशुषे) अपने आपको उसके अर्पण करने वाले भक्त
को वा ज्ञानदाता विद्वान् को, (क्रण-च्युतं) क्रण से सुक्त करने

और (दिवोदासं) ज्ञान प्रकाश हैने वाले (रभसं) कार्य साधक बल और ज्ञान (अददात्) प्रदान करती है और (या) जो (शश्वन्तम्) अनादि काल से विद्यमान, नित्य, (अवसम्) ज्ञान, रक्षा बल, और (पणिम्) व्यवहार साधक, वा स्तुत्य ज्ञान वा ज्ञानवान् पुरुष को (आचखाद्) स्थिर कर देती है। हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान वाली वाणि ! (ते) तेरे (तविषा) बड़े (ता दात्राणि) वे, वे, अनेक दान हैं। स्त्रोपक्ष में—योपा वै सरस्वती वृपा पूषा ॥ शत० २ । ५।। ११ ॥ (इयम्) यह स्त्री (दाशुपे) अन्न, वस्त्र वीर्य सर्वत्व देने वाले (वध्र्य-शाय) इन्द्रिय बल को बढ़ाने वाले, वीर्यवान् पुरुष के लिये (रभसम्) दृढ़ (ऋण-च्युतम्) पितृकृत्त से मुक्त कर देने वाले (दिवः-दासं) प्रस-अतादायक पुत्र प्रदान करती है। (अवसं) रक्षक (पणि) स्तुत्य पति को (शश्वन्तम्) पुत्रादि द्वारा सदा के लिये (आचखाद्) स्थिर कर देती है, स्त्री के वे नाना बड़े महत्वयुक्त (दात्रा) सुखमय प्रदान है।

इयं शुभ्येभिर्विसुखा इवारुजत्सानुं गिरीणां तविषेभिर्मुर्मिभिः ।
पारावत्तद्नीमवंसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥२॥

भा०—जैसे नदी (विसखाः-इव) कमल के मूल उखाड़ने वाले के समान (उर्मिभिः तविषेभिः) बलवान् तरंगों से (गिरीणां सानु अरु-जत्) पर्वतों वाले चट्ठानों को तोड़ डालती है और जिस प्रकार विद्युत् (शुभ्येभिः) बलयुक्त प्रहारों से (गिरीणां सानु) मेघों या पर्वतों के शिखरों को अनायास तोड़ फोड़ डालती है, उसी प्रकार (इयं) यह वाणी (शुभ्येभिः) बलयुक्त (तविषेभिः) बड़े २ (ऊर्मिभिः) तरंगों से युक्त उल्लासों से (गिरीणां) स्तुति वा वाणियों के प्रयोक्ता विद्वान् पुरुषों के (सानु) प्राप्तव्य ज्ञान को (अरुजत्) तोड़ देती है। उसे (पारावत्तनी) परब्रह्मस्वरूप ‘अवत’ अर्थात् प्राप्तव्य पद तक पहुंचने वाली, वहां तक का ज्ञान देने वाली (सरस्वतीम्) प्रशस्त ज्ञानयुक्त वेद वाणी

को (सुवृक्तिभिः) उत्तम मलनाशक, पापशोधक (धीतिभिः) अध्ययनादि कर्मों से (आ विवासेम) अच्छी प्रकार सेवन करें, उसका निरन्तर अभ्यास करें ।

सरस्वति देवनिदो नि वर्हय प्रजां विश्वस्य वृस्यस्य मायिनः ।
उत् क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्त्रवो वाजिनीवति ॥३॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति देवि ! वाणि ! तू (देवनिदः) विद्वानों और देव, परमेश्वर की निन्दा करने वालों, और निंदा के भावों को भी (नि वर्हय) दूर कर । (वृस्यस्य) संशय आदि करने वाले (विश्वस्य) सब (मायिनः) प्रजावान् पुरुष की (प्रजां) प्रजा, शिष्य आदि को (अविन्दः) प्राप्त कर (उत्) और (क्षितिभ्यः) भूमि पर निवास करने वाले मनुष्यों के हितार्थ (अवनीः) नदीवत् सुरक्षित भूमियों को (अविन्दः) प्राप्त करा । हे (वाजिनीवति) ज्ञानयुक्त विद्याओं से समृद्ध वाणि ! तू (पृथ्यः) इन लोगों के लिये (विषम) मलशोधक जल के समान विविध दारों का अन्त कर देने वाले ज्ञान को (अस्त्रवः) प्रवाहित कर । (२) नदी लोगों को बसने के लिये नाना स्थान देती और जल प्रदान करती है ।

प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।

धीनाम् वित्त्यवतु ॥ ४ ॥

भा०—(सरस्वति देवी) उत्तम जल-प्रवाह से युक्त नदी जिस प्रकार (वाजेभिः) नाना अन्नों से (वाजिनीवती) अन्न से सम्पन्न भूमि वाली होकर (धीनाम् अविनी) नाना कौशल कर्मों को चलाने वाली होती है और प्रजा को पालती है उसी प्रकार (देवी) विदुषी (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवती रही हो । वह (वाजेभिः) ज्ञानों और बलों से (वाजिनीवती) विद्या सम्पन्न होकर (धीनाम्) उत्तम बुद्धियों और कर्मों की (अविनी) प्रकाश करने वाली होकर (नः प्र अवतु) हमें प्राप्त हो ।

यस्त्वा॑ देवि सरस्वत्युपवृते धने॒ हिते॑ ।
इन्द्रं॑ न वृत्रतूर्यै॑ ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देवि) ज्ञानदात्रि ! (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न महाभागे ! (वृत्र-तूर्यै इन्द्रं न) मेघ को छिन्न भिन्न करने के कार्य में 'इन्द्र' अर्थात् विद्युत के समान (यः) जो पुरुष (त्वा) तुल्य को (हिते धने) हितकारी धन को प्राप्त करने के निमित्त (उप वृते) उपदेश करता है तू ऐसे पुरुष को (धीनाम् अवित्री प्र अवतु) बुद्धियों को पालन करती हुई प्राप्त हो । अवत्वित्यस्य पूर्वतोऽपकर्णः ॥ इति त्रिशो वर्गः ॥

त्वं॑ देवि सरस्वत्यवा॑ वाजेपु॑ वाजिनि॑ ।
रदा॑ पुपेव॑ नः॑ सुनिम्॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (देवि) कमनीय स्वभावयुक्त, प्रिय (सरस्वति) विदुषि ! हे (वाजिनि) उत्तम, ज्ञानवति, अन्नदात्रि ! बलवति ! तू (वाजेपु) बलयुक्त संग्राम आदि ज्ञानयुक्त अध्ययनादि कालों में भी (नः सनिम्) हमें देने योग्य हमारी वृत्ति तथा विवेचक बुद्धि को (पृष्ठा) भूमि या पोषक पति के समान ही (अव) पालन कर (रद) दे । खी भृत्यादि को पतिवत् ही पालन करे ।

उत स्या॑ नः॑ सरस्वती॑ घोरा॑ हिरण्यवर्तनिः॑ ।
वृत्रधनी॑ वाष्टि॑ सुपृतिम्॑ ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (नः) हमारी (सरस्वती) वेद वाणी, (घोरा) दुष्टों को भय देने वाली, (हिरण्य-वर्तनिः) हित और प्रिय मार्ग का उपदेश देने वाली (वृत्र-धनी) अज्ञान रूप विघ्न को नाश करने वाली, (सु-स्तुतिम् दृष्टि) सदा उत्तम उपदेश करना चाहती है । इसी प्रकार (नः) हमारे बीच वह विदुषी खी, (घोरा) दयाशील, सुवर्ण रथ पर चढ़ने हारी, वा उत्तम हितकारक सदाचार मार्ग पर चलने हारी, (वृत्रधनी) दुष्टों का नाशक होकर उत्तम प्रशंसा की कामना करे ।

यस्या॑ अनन्तो अहु॑तस्त्वेषश्चिष्णुरर्णवः ।

अमश्चरति॒ रोहवत् ॥ ८ ॥

भा०—(यस्या॑) जिस वाणी का (अनन्तः॑) अनन्त (अमः॑) व्यापक ज्ञान (अहूतः॑) कुटिलतारहित, सरल, (त्वेषः॑) दीसियुक्त, (चरिष्णुः॑) फैलने वाला, (अर्णवः॑) सत्य से युक्त, समुद्र के समान महान्, (रोहवत्॑) शब्द करता हुआ उपदेश रूप में (चरति॑) गुरु से शिष्य के पास जाता है वह वेदवाणी सबको अभ्यास करने योग्य है । (२) इसी प्रकार (यस्या॑ अमः॑) जिसका साथी पुरुष अनन्त बलशाली, (त्वेषः॑) तेजस्वी, (चरिष्णुः॑) विचारशील, समुद्रवत् गम्भीर, गर्जना वा उपदेश करता हुआ विचरता है । (३) इसी प्रकार नदी का (अमः॑) गमन स्थान समुद्र है, वह गर्जता है ।

सा नो विश्वा॑ अति॒ द्विषः॑ स्वसृ॒रन्या॑ ऋतावरी॑ ।

अतन्नहेव॑ सूर्यः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(अहा इव सूर्यः॑) सूर्य जिस प्रकार दिनों के पार पहुंच जाता है, इसी प्रकार (सा॑) वह, (ऋतावरी॑) सत्य ज्ञान से श्रेष्ठ, वाणी, (अन्या॑) अन्य (स्वसृ॑) स्वयं आ जाने वाले (नः॑) हमारे विद्विषः॑) शत्रु, द्वेष या अप्रीति युक्त भावों से (अति अतन्॑) हमें पार करें । इसी प्रकार विदुषी खी, सत्य और श्रेययुक्त, न्यायनिष्ठ होकर अन्य सब बहिनों को भी पार कर सब शत्रुओं से हमें पार करे ।

उत नः॑ प्रिया॑ प्रियासु॑ सप्तस्वसा॑ सुजुष्टा॑ ।

सरस्वती॑ स्तोम्या॑ भूत् ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—(उत॑) और (सरस्वती॑) उत्तम अन्तरिक्ष में विचरने वाली एवं उत्तम ज्ञान से पूर्ण वाणी (सप्तस्वसा॑) ५ प्राण, मन और ब्रह्म इन ७ मुखों में स्थित वा ७ प्राणों से युक्त, (सु-जुष्टा॑) सुखपूर्वक सेवित, (प्रियासु॑) सब प्रिय वृत्तियों में भी (नः॑ प्रिया॑) हमें अति प्रिय होने से

(स्तोम्या भूत) स्तुति योग्य है। वेदवाणी, गायत्री आदि सात छन्दों से 'सप्तस्वसा' है। वही अति प्रिय होकर (स्तोम्या) भगवस्तुति के योग्य है। इत्येकविंशतो वर्गः ॥

आप्पुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् ।

सरस्वती तिंदस्पातु ॥ ११ ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्यारूप सरस्वती तो (पार्थिवानि) पृथिवी में विदित समस्त पदार्थों, (रजः) कण २ परमाणु २ समस्त लोकों और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में भी (आपप्रुषी) सर्वत्र व्याप्त है। वह ज्ञानमयी प्रभु की शक्ति हमें (निदः) निन्दा करने वाले से (पातु) बचावे ।

त्रिपृथस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वृद्धयन्ती ।

वाजेवाजे हृद्या भूत् ॥ १२ ॥

भा०—जो वाणी (त्रि-सधस्था) नाभि, उरस् और कण्ठ तीनों में एक साथ ही विराजती है। जो (सप्त-धातुः) रक्त, मेदस्, मांस, अस्थि, वसा, मज्जा और शुक सातों से धारण करने योग्य होकर (जाता) उत्पन्न हुए (पञ्च) पांचों ज्ञानेन्द्रियों को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई, (वाजे वाजे) प्रत्येक ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के कार्य में (हृद्या भूत) स्तुति करने योग्य है। वेदमयी वाणी सात छन्दों से धारण करने योग्य होने से सप्त धातु और ब्राह्मणादि और निषाद इन पांचों को बढ़ाती है। प्रत्येक अवसर में ईश्वरस्तुति के योग्य है। देवी, स्त्री, सातों धातुओं को धारण करने वाली, पिता, स्वसुर, भाई, देवर, और पुत्र पांचों का मान बढ़ाती हुई प्रत्येक यज्ञ में संगिनी रूप से स्वीकार्य है।

प्रया महिम्ना महिनासु चेकिते द्युमनेभिरन्या श्रूपसामपस्तमा ।
रथ्य इव वृहती त्रिभवने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥

भा०—(या) जो वाणी, (महिम्ना) अपने महान् सामर्थ्य वा ज्ञान से (महिना) पूज्य है जो (अप्सु) इन सबमें (वृन्देभिः)

यशों वा ज्ञानमय प्रकाशों से (अन्याः) अन्य प्रजाओं को भी (चेकिते) ज्ञानयुक्त करती है । और (अपसाम्) कर्म करने वाले निष्ठ विद्वानों के बीच में भी (अपस्तमा) सबसे उत्तम कर्मोपदेश करने वाली है, जो (रथः) रथ, वा महान् आकाशवत् (वृहती) बहुत बड़ी, वेद वाणी (विभवने) विभु, व्यापक परव्रह की स्तुति करने के लिये (कृता) प्रकट की जाती है, जो (चिकितुषा) विद्वान् पुरुष द्वारा (उपस्तुत्या) उपासना काल में भी परमेश्वर की स्तुति के योग्य होती है वह (सरस्वती) वाणी, वा वेदवाणी सदा पूज्य है ।

सरस्वत्यभिनो नेपि वस्यो मार्य स्फरीः पर्यसा न आ धक् ।
जुपस्व नः सुख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राग्यरणानि गन्म ॥१४॥
इ२ ॥८ ॥५ ॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न वेदवाणि ! हे प्रभो ! तु (नः) हमें (वस्यः) अति समृद्ध ऐश्वर्य को (अभिनेपि) ग्रास करा । (मा अप स्फरीः) हमें विनाश मत कर । (पर्यसा) पुष्टि कारक ज्ञान से (नः) हमें (मा आधक्) थोड़ा भी दग्ध, संतप्त न होने दे । (वेश्या) प्रवेश होने योग्य (सुख्या) मित्रभाव से (नः जुपस्व) हमें प्रेम पूर्वक स्वीकार कर । (त्वत्) तुक्ष से रहित होकर हम (अरणानि) अरमणीय, दुःखदायी (क्षेत्राणि) क्षेत्र या देहों में (मा गन्म) न जावें, तिर्यग् देहों में न भटकें । इसी प्रकार सरस्वती स्त्री हमें उत्तम धन प्राप्त करावे, हमें नष्ट न करे, न उजाड़े । जल अनादि के कारण हमें न सतावे । अपने हृदय में प्रवेश होने योग्य मित्र भाव से हमें प्रेम से अपनावे । इति द्वात्रिशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

इति प्रतिविष्टविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुद्धोपशोभित-श्रीपण्डित-
जयदेवशार्मविरचिते ऋग्वेदालोकभाष्ये चतुर्थोऽष्टकः समाप्तः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चमोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

(षष्ठे मण्डले पष्ठोऽनुवाकः)

[६२]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पंक्तिः ।
३ विराट् त्रिष्ठुप् । ४, ६, ७, ८, १० निचृतत्रिष्ठुप् । ५, ९, ११ त्रिष्ठुप् ॥
एकादशर्च सूक्तम् ॥

स्तुषे नरा द्विवो श्रस्य प्रसन्तुश्विना हुवे जरमाणो अकैः ।
या सूच्य उच्चा व्युषि ज्ञो अन्तान्युग्रूषतः पर्युरु वरांसि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (उस्त्रा) किरणों और वायुओं से मुक्त,
(अश्विना) वेगवान् किरणादि से युक्त सूर्य और उषा (ज्ञः अन्तान्
उरु वरांसि) पृथिवी के समीप के नाना पदार्थों को (परि युयूषतः) पृथक् २
दर्शाते हैं उसी प्रकार (अश्विना) अश्व आदि वेगवान् साधनों से सम्पन्न
(दिवः नरा) ज्ञानप्रकाश वा उत्तम कामना और व्यवहार के प्रवर्तक,
(अस्य) इस जगत् के बीच (प्र-सन्ता) उत्तम सामर्थ्यवान्, मान-
युक्त होकर रहें । (या) जो (सूच्यः) शीघ्र ही (उस्त्रा) तेजस्वी होकर
(व्युषि) विशेष कामना या इच्छा होने पर (अन्तान्) समीपस्थ सत्य
पदार्थों को और (उरु वरांसि) बहुत से दुःखवारक, श्रेष्ठ पदार्थों को
(ज्ञः परि युयूषतः) पृथिवी से पृथक् कर लेते, प्राप्त करते और उनका
विवेक करते हैं । ऐसे विवेचक, स्त्री पुरुषों को (अकैः जरमाणः) उत्तम
अर्चना अर्थात् सत्कारोचित साधनों से (हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूँ ।

ता युक्तमा शुचिभिश्चकस्त्राणा रथस्य भानुं रुचु रजोभिः ।

पुरु वरांस्यमित्ता मिमांनापो धन्वान्यति याथो अञ्जान् ॥ २ ॥

भा०—(रथस्य रजोभिः भानुम्) रथ के धूलिकणों से सूर्य को सुशोभित करते हुए, रथ से जाते हुए जिनको लोग सूर्य उषा के समान जानते हैं (ता) वे आप दोनों (शुचिभिः) शुद्ध पवित्र आचरणों से, (यज्ञम् आ चक्रमाणा) परस्पर सत्संग, दान, मान, सक्तार आदि व्यवहार करते हुए (रथस्य) अपने रमणीय व्यवहार के (रजोभिः) तेजों से (भानुम्) अपने तेज को (रुचुः) अति रुचिकारक बनाओ और आप दोनों इस जगत् में (अमिता) अनेक (पुरु) बहुविध (वरांसि) श्रेष्ठ रथादि पदार्थों का (मिमाना) निर्माण करते हुए (अञ्जान्) अपने वेग से जाने वाले अश्व, यानादि की (अपः धन्व अतियाथः) समुद्रों और मैदानों के पार पहुंचाने में समर्थ होवो ।

ता हृ त्यद्विर्यदरध्मुद्ग्रेत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।

मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दीशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—(त्यत् वर्तिः) वह मार्ग (यत् अरधम्) जो मनुष्यों के वश का न हो, जिस पर चला न जासके, ऐसा ऊंचा, नीचा, विषम, आकाश जलादि का मार्ग है और जो (दाशुषः मर्त्यस्य) राष्ट्र में कर आदि देने वाले प्रजाजन को (व्यथिः) नाना प्रकार से व्यथा, दुःख देता है, उसको (परि शयध्यै) सुख से पार करने के लिये (उग्रा) बलवान् (ता) वे दोनों (अश्विना) वेगवान् रथ, अश्व यन्त्रादि के जानने वा बनाना जानने वाले, विद्युत् अग्निवत् शिल्प कुशल खी पुरुष, (शश्वत्) सदा ही (अश्वैः) वेग से जाने वाले यन्त्रों और (मनोजवेभिः) मन के समान वेगवान् वा विज्ञानपूर्वक अपने संकल्पानुसार न्यूनाधिक वेग रखने योग्य (द्विषिरैः) इच्छानुकूल चलने वाले रथादि साधनों से

(इत्था वियः ऊहथुः) इस २ प्रकार नाना कर्म किया करें, लोगों को उन रथ, अश्व, यन्त्रादि से (परि ऊहथुः) पार या दूर देश तक पहुंचा दिया करें ।

ता नव्यसुो जरमाणस्य मन्मोप भूपतो युयुजानस्सी ।

शुभं पृक्षमिपुमूर्जं वहन्ता होता यन्त्रत्वनो अध्यग्युवाना ॥ ४ ॥

भा०—(युयुजान-स्सी) वेग से जाने वाले रथादि यन्त्रों में जोड़ने वाले वायु, विद्युत् जिस प्रकार (नव्यसः जरमाणस्य मन्म उपभूपतः) स्तुत्य उपदेष्टा के ज्ञान को भूपित करते हैं उसी प्रकार (युयुजान-स्सी) वेगवान् अश्वादि को अपने रथ में जोड़ने वाले स्त्री पुरुष वा (युयुजान-स्सी) अपने सातों प्राणों से युक्त मन को योग द्वारा एकाग्र करने वाले (ता) वे दोनों स्त्री पुरुष (नव्यसः जरमाणस्य) स्तुत्य ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (मन्म उपभूपतः) मनन करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करावें । वे दोनों (शुभं) उत्तम कान्ति (पृक्षम्) परस्पर के सम्पर्क, और (इपम्) अन्न (ऊर्ज) बल को (वहन्ता) धारण करते हुए हों । उन (युवाना) युवा युवति बलवान् दोनों को (प्रत्नः) वृद्ध (होता) ज्ञानदाता विद्वान्, बड़ा धनप्रद पुरुष (यन्त्रत्) ज्ञान प्रदान करे । वा उनको धन की सहायता देकर विज्ञान की उन्नति करे ।

ता ब्रुल्गु दुस्ता पुरुशाकंतमा प्रत्ना नव्यसुा वच्चसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्टा वभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार वायु और विद्युत दोनों (ब्रल्गु) सुखजनक, (दस्ता) दुःखों के नाशक, (पुरु-शाक-तमा) नाना शक्तिमान्, (नव्यसा वच्चसा) अतिस्तुत्य, वचन योग्य और (शंसते स्तुवते शंभविष्टा वभूवतुः) विद्वान् उपदेष्टा को अति शान्तिदायक होते और (चित्र-राती) नाना अद्वित ऐश्वर्य देने वाले होते हैं उसी प्रकार (या) जो स्त्री पुरुष (शंसते)

उत्तम आशंसा करने वाले और (स्तुवते) ज्ञान के उपदेष्टा विद्वान् को (शम्-भविष्टा) शान्तिदायक (वभूवतुः) हों, और (गृणते) विद्या के दाता गुरु को (चित्र-राती) नाना प्रकार के उत्तम धनादि देने वाले होते हैं (ता) उन (वल्ग्) सुमधुर वचन बोलने वाले, (दस्ता) दुःखनाशक, (पुरुषाक-तमा) बहुत सी शक्तियों से सम्पन्न (प्रत्ना) श्रेष्ठ हैं उनका (नव्यसा) अति स्तुतियोग्य (वचसा) वचन से (विवासे) आदर करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

ता भुज्युं विभिरुद्धयः संमुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथु रजोभिः ।
अरेणुभियोंजनेभिर्भुजन्ता पत्रिभिरण्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे दोनों यन्त्रस्य विद्युत् और पवन (तुग्रस्य सूनुम्) लेन देन करने वाले के पुत्र, व्यापारी को और (तुग्रस्य सूनुम्) शत्रु का नाश करने वाले, बलवान् सैन्य के प्रेरक, वा सञ्चालक (भुज्युं) भोक्ता, वा पालक सेनानायक को (समुद्रात् अद्धयः) आकाश से और जलों से (विभिः) पक्षियों के समान आकाश में जाने वाले यन्त्रों द्वारा (रजोभिः) उत्तम मार्गों से और (अरेणुभिः योजनेभिः) रजोरेणु से रहित, योजनों तक (अर्णसः उपस्थात्) जल के समीप (पत्रिभिः) वेग से जाने वाले साधनों से वे (भुजन्ता) पालन करने वाले (निरुहथुः) उठा ले जाने में समर्थ होते हैं। खी पुरुष पक्ष में—(ता) वे दोनों खी पुरुष (अद्धयः) मूलं, कारणीभूत उत्पादक वीर्यांशों से (विभिः, रजोभिः) कान्ति शुक्र, शुक्रांशों और रजों से (समुद्रात्) परस्पर को मिलकर हर्ष देने वाले संग से (तुग्रस्य) पालक पति के (भुज्युं) वंश के पालक (सूनुं) पुत्र को (निरुहथुः) अच्छी प्रकार उत्पन्न करें अर्थात् खी पुरुष दोनों मिलकर भी शुक्रों और रजों से आनन्द पूर्वक संग से पुत्र उत्पन्न करें। वह पुत्र 'तुग्र्' अर्थात् वीर्यदाता और पालक पतिकारी ही होता है, वही वंश का पालक होता है। और पुत्र

उत्पन्न हो जाने पर वे दोनों स्त्री पुरुष (अरेणुभिः) पापरहित, निर्दोष (योजनेभिः) परस्पर के समागमों से (भुजन्ता) एक दूसरे को पालन करते हुए और नाना ऐश्वर्यों, सुखों का भोग करते हुए भी (पतत्रिभिः) वेग से जाने वाले रथों, नौकाओं वा पक्षादि युक्त यन्त्रों से जैसे (अर्णसः उपस्थात्) समुद्र या जल के पार जाते हैं उसी प्रकार वे दोनों (पतत्रिभिः) गिरने से बचाने वाले धर्म-साधनों से वा सन्तानों से (अर्णसः उपस्थात्) पितृकरण रूप सागर से (भुज्युं) वा पालक माता पिता को (निरञ्जहशुः) पार कर देते हैं । सन्तान उत्पन्न करके वे दोनों मिलकर पति-पत्नी माता पिता के क्रण से मुक्त हो जाते हैं ।

वि जयुषा रथ्या यातुमद्वि श्रुतं हवं वृषणा वधिमत्याः ।

दशस्यन्ता शयवें पिष्यथुर्गामिति च्यवाना सुमर्ति भुरण्यू ॥७॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (जयुषा रथ्या) विजय-शील रथ पर सवार, रथी-सारथी के समान (अद्वि वि यातम्) मार्ग में आये बाधक पर्वतादि दुर्गम मार्ग को भी पार करो । (वृषणा) आप दोनों बलवान्, परस्पर सुखों का वर्षण करते हुए भी (वधिमत्याः) कुल की वृद्धि करने वाली और सुसंयत इन्द्रियों से युक्त भूमि रूप स्त्री के (हवं) वचन को (वधिमत्या हवं) नाना वृद्धि युक्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी भूमि विषयक उत्तम ज्ञान का (श्रुतं) श्रवण करो । (दशस्यन्ता) एक दूसरे का बल बढ़ाते हुए और प्रेमपूर्वक धन, वीर्य आदि देते हुए, (शयवे) शयु अर्थात् शिशु को उत्पन्न करने के लिये (गाम्) योग्य भूमि रूप स्त्री को भूमिवत् (पिष्यथुः) उत्तम अधिक गुण, शक्तियुक्त करो । (इति) इस प्रकार (सुमर्ति च्यवाना) उत्तम ज्ञान और वृद्धि को आप होते हुए (सुरण्यू) सन्तानों का पालन पोषण करने वाले होते । ‘शयवे’—शयुः शिशुश्च समानधातुजावेत्तौ समानार्थकौ ॥

यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेद्गो देवानामुत मर्त्यंत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरुधं दधात ॥ ८ ॥

भा०—हे (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाले राजन्, सेनानायक,
एवं उसके प्रजागण वा सैन्यगण ! (यत्) जो (देवानाम्) तेजस्वी
पुरुषों (उत्) और (मर्त्यंत्रा) सामान्य मनुष्यों, विद्वानों और 'मर्त्य'
अर्थात् शत्रु-मारक वीर भट्टों में (प्रदिवः) उत्तम तेजस्वी और उत्तम
व्यवहार (भूमा) और बहुत बड़ा (हेडः) क्रोधवान् अनादत पुरुष
(अस्ति) है हे (आदित्यः) तेजस्वी पुरुषो ! हे (वसवः) राष्ट्र में
बसे प्रजाजनो ! और हे (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने और सबके दुःखों
को दूर करने हारे जनो ! उस (रक्षो युजे) विज्ञकारी पुरुषों के
सहयोगी, पुरुष को दण्डित करने के लिये आप लोग (अघं तपुः)
हिंसा रहित स्वयं नष्ट न होने और शत्रु को नाश करने वाला शत्रुसंता-
पक उपाय शस्त्रादि, (दधात) धारण करो । और (रक्षोयुजे अघं तपुः दधात)
रक्षकों के सहयोगी, पुरुष की वृद्धि के लिये (अघं तपुः दधात)
शत्रुनाशक शस्त्र धारण करो ।

य इं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।

गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचसु आनवाय ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (इं) सब प्रकार से (राजानौ) सूर्य चन्द्र-
वत् प्रकाशित होने वाले उत्तम खी पुरुषों को (रजसः) समस्त लोकों
के हितार्थ, उनमें (क्रतुथा) समय पर (विदधत्) विशेष रूप से
आदरपूर्वक धारण करता है उस जगत् को वे दोनों भी (वरुणः मित्रः)
दुष्टों के वारक और स्नेही बनकर (चिकेतत्) जानें । और (आनवाय)
अति नवीन, या मनुष्यों के (द्रोघाय चित्) द्रोह के लिये और
(वचसे) निन्दा वचन के लिये जिस प्रकार राजा दण्ड देता है उसी

प्रकार (गम्भीराय रक्षसे) बड़े भारी दुष्ट पुरुष को विनाश के लिये भी (हेतिम् अस्य) शस्त्र का प्रहार करो ।

अन्तरैश्चकैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।

सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा वृक्तम् ॥१०॥

भा०—हे (अधिनौ) उत्तम स्त्री पुरुषो ! सभा वा सभापति ! प्रजावर्ग और राजन् ! आप दोनों (द्युमता) उत्तम तेज से युक्त (नृवता) उत्तम नायक से युक्त (रथेन) रथ के समान रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ से और (अन्तरैः चक्रैः) भीतरी साधनों से (तनयाय) उत्तम सन्तान-लाभ के लिये (वर्तिः यातम्) रथ से जैसे मार्ग चला जाता है उसी प्रकार गृहस्थोचित रति द्वारा (वर्तिः यातम्) गृहस्थोचित व्यवहार वा गृहाश्रम को प्राप्त होओ । जिस प्रकार (त्यजसा वनुष्यतां शीर्षा वृक्तन्ति तथा) कोध से जिस प्रकार हिंसकोंके शिर काट देते हैं उसी प्रकार आप दोनों (सनुत्येन त्यजसा) चिरस्थायी पुत्र और धन के बल से (मर्त्यस्य) मरणशील मनुष्य को (वनुष्यताम्) विनष्ट कर देने वालों के (शीर्षा) प्रमुख कारकों को (वृक्तम्) विनष्ट करो । हिंसक मृत्यु आदि अर्थात् चिरस्थायी सन्तान व प्रजा से आप दोनों भी अपने को नष्ट कर देने वाले कारणों को दूर करो, सन्तान द्वारा मरणधर्मा मनुष्य भी स्थिर, अमर होकर रहे । प्रजातिरमृतम् । शत० ॥

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुक्तिर्यातमवृवाभिर्वाक् ।

द्वल्हस्य चिद्गोमतो वि वृजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ११२.

भा०—हे (चित्रराती) अहुत दान देने वाले, अति विस्मयजनक परस्पर ग्रेम करने वाले राजा, प्रजा, सैन्य सेनापति वा 'पति-पत्नी जनो ! (परमाभिः मध्यमाभिः उत अवमाभिः नियुक्तिः) उत्कृष्ट, मध्यम, और निकृष्ट इन सब प्रकार की अश-सेनाओं से जिस प्रकार राजा आदि जाते

हैं उसी प्रकार आप दोनों भी इन तीनों प्रकार के (नियुक्तः) नियुक्त प्रजावर्गों सहित (आ यातम्) आदरपूर्वक आओ । और (ददस्य) दढ़ (गोमतः) गवादि पशु, उत्तम भूमि आदि वाले (व्रजस्य) प्राप्त करने योग्य गृहाश्रम के (दुरः) द्वारों को (वि वर्त्तम्) खोलो और (गृणते) उपदेश करने वाले विद्वान् के भी (गोमतः व्रजस्य) वेद वाणी से युक्त व्रज अर्थात् आश्रय के द्वार को भी (वि वर्त्तम्) विशेष रूप से खोलो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६३]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ स्वराद्बृहती । २, ४, ६, ७ पंक्तिः । ३, १० भुरिक् पंक्तिः । ८ स्वराद् पंक्तिः । ११ आसुरी पंक्तिः ॥ ५, ६ निच्छ्रितिष्टुप् ॥ एकादशर्च सूक्तम् ॥

कृत्या वृल्गू पुरुहूताय दूतो न स्तोमोऽविद्वन्मस्वान् ।
आ यो अर्वाङ्नासंत्या वृवर्त्तं प्रेष्टा त्यस्थो अस्य मन्मन् ॥ १ ॥

भा०—हे खी पुरुषो ! (दूतः न) दूत या संदेश-हर जिस प्रकार (पुरुहूता वृल्गू नमस्वान् सत् अविदत्) बहुतों में प्रशंसित, बलशाली राजा सेनापति दोनों को नमस्कारवान् होकर आदर से भेंट करता है उसी प्रकार (स्तोमः) स्तुतियुक्त विद्वान् । (नमस्वान्) दण्डपूर्वक शासन करने योग्य ज्ञान से सम्पन्न होकर (त्या) उन (वृल्गू) सुन्दर वाणी बोलने वाले, (पूरुहूता) बहुतों से प्रशंसित आप दोनों को आज (क अविदत्) किस स्थान पर मिले ? हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले जनो ! (यः) जो आप लोगों को (अर्वाङ्) विनययुक्त होकर वा (अर्वाङ् = अर्-वाङ्) उत्तम वचनयुक्त होकर (आ वर्त्त) तुम दोनों से आदरपूर्वक व्यवहार करे । तुम दोनों भी (अस्य मन्मन्) उसके मान आदर करने और उसके ज्ञान में (प्रेष्टा हि अस्थः) अति प्रिय होकर रहो ।

अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिवाथो अन्धः ।
परि हृत्यद्वर्तिर्याथो इषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (मे अस्मै) इस मुश्ज जन के उपकार के लिये आप दोनों (मे हवनाय) मेरे आद्वान या मेरे क्रिये सत्कार को स्वीकार करने के लिये (गृणाना) उत्तम वचन कहते हुए (यथा) जब भी (अरं गन्तम्) अच्छी प्रकार आद्ये तो (अन्धः पिबाथः) अन्ध का अवश्य भोजन करिये और आप दोनों (त्यद् वर्तिः परियाथः) उस उत्तम मार्ग में सदा गमन करें (यत् परः न) जिससे जाने से न दूसरा शत्रुजन और (न अन्तरः) न अपना अन्तरंग, समीपवर्ती जन भी (तुतुर्यात्) अपने पर प्रहार करें । अथवा (वर्तिः परियाथः) आप लोग ऐसे व्यवहार करें वा ऐसे गृह में जावें या रहा करें जिससे अपना, पराया भी हानि न पहुंचा सके ।

अकारिवामन्धसो वरीमन्नस्तारिवर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुवेवन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आज्ञन् ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों के प्रति (वरीमन्) उत्तम, वरण करने योग्य, अवसर में (अन्धसः) अन्धों का (अकारि) सत्कार किया जाय । और (सुप्र-अयनतमम्) सुख से, उत्तम रीति से स्थिति करने योग्य (वर्हिः) मान-वर्धक आसन (अस्तारि) विछाया जावे । (युव-युवः) तुम दोनों को चाहने वाला पुरुष (वां) आप दोनों को (उत्तान-हस्तः) अपने हाथों को ऊपर उठाकर (ववन्द) आप लोगों की स्तुति और अभिवादन करे और (अद्रयः) मेघ के तुल्य उदार जन (वां नक्षन्तः) आप दोनों को प्राप्त होकर (आज्ञन्) स्नेह-पूर्वक चाहें वा आप दोनों का जलादि से अभियेक, प्रोक्षण, अर्घ्य सत्कार आदि करें ।

ऊर्ध्वो वासुमिरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरौति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले, वा नासिका-
वत् प्रमुख स्थान पर विराजमान, प्रमुख खी पुरुषो ! (यः) जो (होता)
ज्ञान वा धन का देने वाला, (गूर्तमनाः) उद्यमयुक्त चित्त वाला, मुख
से ज्ञान का उपदेश करने वाला, (उराणः) अति दानशील वा बहुत बड़े
कर्म करने वाला, (ऊर्ध्वः) तुम दोनों के ऊपर अध्यक्षवत् रहकर (प्र
अयुक्त) आप लोगों को सत्कर्म में लगाता है और (अभिः) अभिं, वा
सूर्यवत् ज्ञानप्रकाशक, तेजस्वी, होकर (अध्वरेषु) उत्तम हिंसारहित
उपकार के सत्कार्यों में (वाम् ऊर्ध्वः अस्थात्) आप दोनों के ऊपर स्थित
होता है तब उसके (हवीमनि) ज्ञासन में रहकर (वाम्) तुम दोनों
को (जूर्णिनी घृताची) वेग से गुज़रती रात्रि के समान (जूर्णिनी घृताची)
बृद्ध पुरुष की ज्ञेह से युक्त (रातिः) ज्ञान आदि की दान-सम्पदा, (प्र
युति) अच्छी प्रकार उज्ज्वल रूप में प्राप्त होती है ।

अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथै तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतु जनिमन्यश्चियानाम् ॥५॥३॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्य की उम्री, उषा वा प्रभातवेला, जिस
प्रकार सूर्य के (रथं) रमणीय या वेगयुक्त (शत-ऊतिम्) सैकड़ों दीसि-
युक्त विश्व पर (श्रिये) शोभा वृद्धि के लिये विराजती है उसी प्रकार
(सूर्यस्य) उत्तम विद्वान् तेजस्वी पिता की (दुहिता) दूर देश में जाकर
विवाह करने वाली कन्या (शत-ऊतिम्) सैकड़ों दीसियों अन्न शस्त्र रक्षा
साधनों तथा (शत-ऊतिम्) सैकड़ों उत्तम भोगों से युक्त (रथं)
सुन्दर रमण योग्य, सुखप्रद आश्रय पर शोभा वृद्धि के लिये रथवत् ही
(अधि तस्यै) विराजे । इसी प्रकार वह कन्या (शत-ऊतिम्) सैकड़ों

रक्षा साधनों से सम्पन्न (रथं) रमण करने योग्य पुरुष को (श्रिये अधि तस्यौ) प्राप्त कर उसके आश्रय या सेवा करने के निमित्त, निर्भय होकर रहे । हे (पुरु-भुजा) बहुत से भोग और प्रजापालनादि कुशल तुम दोनों ! (अत्र) इस लोक वा आश्रम में ही आप दोनों (माया-भिः) नाना बुद्धियों से सम्पन्न होकर (मायिना भूतम्) उत्तम बुद्धि-मान् हो जाओ ! आप दोनों (नरा) उत्तम नायक, (यज्ञियानां) यज्ञयोग्य, सत्कारपात्र पुरुषों के बीच में (जनिमन्) इस वरीन जन्म ग्रहण के अवसर पर (नृत् भूतम्) अति हर्ष युक्त, सदा आनन्द, सुप्रसन्न रहो । इति नृतीयो वर्णः ॥

युवं श्रीभिर्दर्शताभिरुभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सुर्यायाः ।

प्र वां वयो वपुषेऽनु पञ्चक्षुद्वार्णी सुषुता धिष्णया वाम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सेनापति और सभापति, राजा, दोनों ही (सुर्यायाः) सूर्य की कान्ति से चमकने और अज्ञों और वाणियों को उत्पन्न करने वाली, भूतधात्री पृथ्वी की (शुभे) शोभा के लिये, (आभिः, दर्शताभिः श्रीभिः पुष्टिम् वहतः) इन नाना देखने योग्य लक्ष्मी या कान्ति सहित समृद्धि को (ऊहथुः) वहन करते हैं इसी प्रकार हे वर वधू जनो ! (युवं) आप दोनों (आभिः दर्शताभिः श्रीभिः) इन भिन्न २ दर्शन करने योग्य नाना लक्ष्मी, सम्पदाओं द्वारा (शुभे) अपनी शोभा और शुभ संकल्प के निमित्त (पुष्टिम् ऊहथुः) गवादि सम्पदा और धन समृद्धि प्राप्त कर उसे अपने घर ले जाओ तो (वां) तुम दोनों के (वयः) अश्वों के समान वेगवान् इन्द्रियगण, दीसियां, वा रक्षक गण, (वां वपुषे) तुम दोनों की सुरूपता, शरीर की पुष्टि और रक्षा के लिये (अनु-पसन्) पीछे २ चलें, और हैं (धिष्णया) गृहस्थ धारण करने में समर्थ दृढ़ वर वधू जनो ! (वाम्) आप दोनों को (सु-स्तुता वाणी नक्षत्र्) उत्तम प्रशंसित वाणी प्राप्त हो । अर्थात् सम्पन्न होने पर श्री पुरुषों की

इन्द्रिये विजित हों जिससे शरीर भोग विलासों से नष्ट न हो । लोग आचार की प्रशंसा करें, वे सम्पन्न हों, उनके रक्षक लोग भी उनके आज्ञाकारी हों ।

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्टा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।

प्र वां रथो मनोजवा असर्जिः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिकावत् प्रसुख स्थान पर स्थित वा कभी असत्य व्यवहार न करने वाले खी पुरुषो ! (वां) आप दोनों के (प्रयः) उत्तम गमन करने के साधन रथ को (वयः) वेग से जाने वाले वा कान्तिमान् (अश्वासः) अश्ववत् आशु गति से जाने वाले अस्ति आदि तत्व (वहिष्टाः) स्थान से स्थानान्तर पहुंचा देने में समर्थ होकर (अभि वहन्तु) आगे ले चलें । इसी प्रकार (वयः) तेजस्वी पुरुष (वहिष्टाः) उत्तम कार्य वा ज्ञान के धारक होकर (वाम् प्रयः वहन्तु) तुम दोनों को उत्तम ज्ञान, प्रीतिकारक वचन प्राप्त करावें । (वां रथः) आप लोगों का रथ (मनः-जवाः) मन के समान तीव्र वेग से वा मन के संकल्पानु-सार, इच्छानुकूल मृदु, मध्य, तीव्र वेग से जाने वाला (प्र असर्जिः) बहुत अच्छा बनाया जावे । और वह (पूर्वीः) पूर्ण (इषः) चाहने योग्य (पृक्षः) सम्पर्क करने योग्य (इषिधिः) नाना इच्छाओं को प्रकट कराने वाला, रुचिकारक अन्न भी (अनु असर्जिः) अनुकूल ही तैयार हो । पुरुष हि वाँ पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इर्यै पिन्वत्मसक्राम् ।

स्तुतश्च वां माध्वी सुषुप्तिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार मेघ और विद्युत्, दोनों का जन्म मात्र पर बहुत बड़ा उपकार होता है, वे प्राणि-जगत् को (इयं धेनुं पिन्वतः) अन्न और सूमि के समान सेचन करते हैं समस्त ओषधियों के रसादि भी उनके किये वृष्टि के अनुसार ही वृद्धि को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हे

(पुरुषुजा) बहुत सी प्रजाओं और इन्द्रियों को आत्मा व मन के तुल्य पालन और उपभोग करने वाले राजा अमात्य वा तद्रत् सहयोगी स्थी पुरुषो ! (वां) तुम दोनों का (देष्यम्) दान योग्य धन भी (पुरुषि) बहुत प्रकार का हो और आप दोनों (नः) हमारी (धेनुं न) गौ या भूमि को मेघ विद्युत् के समान, ही (असक्राम् इष्म्) हमसे अन्य के पास न जाने वाली, निज् ही (इषं) अन्न आदि सम्पदा को (पिन्वतम्) सेचन, वृद्धि करो । और (ये) जो (स्तुतः) उत्तम उपदेष्टा, विद्वान् और (सुस्तुतिः च) उत्तम स्तुति, और (ये रसाः च) जो रस, नाना बल हैं वे भी हे (माध्वी) मधुर अन्नादि के भोक्ता जनो ! (वाम् रातिम् अनुगमन्) आप दोनों के दिये धन का अनुगमन करे । अर्थात् आपका दिया दान ही सबको अधिक सुख दिया करे ।

उत् मै ऋजै पुरयस्य रच्ची सुमील्हे शतं पेणुके च पुका ।

शांडो दाँच्चिरणिनः स्मद्विष्टीन्दशं वृशासो अभिषाच्च ऋष्वान् ॥९॥

भा०—(पुरयस्य) अग्रणी वा पुर अर्थात् नगर के नियन्ता नगराध्यक्ष (मे) मुक्त पुरुष के अधीन मेरे (क्रज्ञे) धर्मयुक्त, सरल नीति से युक्त सर्वप्रिय (सुमीढे) धन धान्य से समृद्ध, मेघादि से सुसेचित, (पेणुके च) उत्तम प्रजा पालक, राष्ट्र में (रच्ची) सदा कर्म करने में कुशल प्रजा वेगवती नदी के समान सुखप्रद हो, और (शतं पक्षा) नाना पके अन्न, खेत आदि हों । और (शांडः) प्रजा को शान्तिदायक, और शत्रुओं का अन्त करने में समर्थ वीर पुरुष, (हिरणिनः) सुवर्ण आदि का स्वामी (स्मद्विष्टीन्) उत्तम, शुभ दर्शन, वा ज्ञान वाले (क्रष्वान्) वडे २ (दश) दस (अभि-साचः) सहयोगी पेसे पुरुषों को (दात्) स्थापित करे जो (वक्षासः) उसके अधीन होकर कार्य करें उत्तम राष्ट्र में राजा दश विद्वान् पुरुषों की दशावसा राज्यपरिषत् बनाकर

उत्तम राज्य का पालन करे । (शांडः) शं ददाति इति शांडः । स्यति अन्तं
करोति वा शत्रूणां । स्यतेरडजौणादिकः ॥ दात्-धात् । वर्णविकारः ।
सं वां श्रुता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्थां गिरे दात् ।
भुरद्वाजाय वीरं नू गिरे दाम्भता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१०॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य का व्यवहार न करने वाले, एवं
प्रमुख स्थान पर स्थित जनो ! (वां) तुम दोनों के (अश्वानां) अश्व
सैन्यों के (गिरे) उपदेशा, वा शिक्षक के लिये (पुरु-पन्थाः) बहुतों को
नाना प्रकार के जीवनोपाय रूप मार्ग देने में समर्थ, बहुतों को वृत्ति देने
वाला राजा (श्रुता सहस्रा) सैकड़ों और हज़ारों तक (दात्) दे । अथवा
हे (नासत्या) सदा सत्य ज्ञान व्यवहार करने वाले राजा प्रजा वर्गों
(पुरुपन्थाः) बहुत से मार्गों से सम्पन्न देश वा देश का राजा (State)
(गिरे) विद्वान् ज्ञानवक्ता पुरुष के अधीन शिक्षा पाने के लिये (अश्वानां
श्रुता सहस्रा दात्) अश्व-सवारों के सैकड़ों हज़ारों वा सैकड़ों विद्या के
इच्छुक जन भी देवे । और हे (वीर) वीर पुरुष ! तू (भरद्वाजाय)
ज्ञान और बल को धारण करने वाले (गिरे) उपदेशा, ज्ञानक विद्वान्
के सेवार्थ उसके अधीन (दात्) सैकड़ों सहस्रों अश्व सैन्य रक्षे जिससे
हे (पुरुदंससा) बहुत से उत्तम कर्म करने वाले राज प्रजावर्गों !
(रक्षांसि) विद्वकारी दुष्ट पुरुष सदा (हताः स्युः) दण्डित हों ।

आ वां सुम्ने चरिमन्त्सुरिभिः स्याम् ॥ ११ ॥ ४ ॥

भा०—सत्य व्यवहार निपुण राजा प्रजावर्गो ! वा सभा सेनाध्यक्षो !
या गृहस्थ र्षी पुरुषो ! मैं (वां) आप दोनों के (चरिमन् सुम्ने) अति
विशाल सुखप्रद शासन में (सूरिभिः) विद्वानों के सहित (स्याम्) रहूं ।
इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६४]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्ठुप् ।

३ त्रिष्ठुप् । ४ निचृत्विष्ठुप् । ५ पांक्षिः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

उदु श्रिय उषस्मा रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।

कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यं भूदु वस्त्री दक्षिणा मुघोनी ॥१॥

भा०—(उपसः) प्रभात वेलाएँ जिस प्रकार (रोचमानः) प्रकाशमान होकर (श्रिये उत् अस्थुः) शोभा वृद्धि के लिये ऊपर उठती हैं और जिस प्रकार (रुशन्तः अपां ऊर्मयः न) स्वच्छ वर्ण की जलों की तरंगे उठा करती हैं उसी प्रकार (उपसः) कमनीय, कान्तिवाली, विदुषी (रोचमानः) रुचिर दीसि वाली, सुखभाव खियें स्वच्छ विमल आचार वाली, शुक्ल कर्मी, होकर (श्रिये) घर की शोभा के लिये (उत् अस्थुः) उन्नति को प्राप्त करें, उत्तम स्थिति को प्राप्त करें, मान पावें । (मधोनी) उत्तम ऐश्वर्यवती (दक्षिणा) कर्मकुशल छी, (वस्त्री अभूत् उड) गृह में बसने वाली, माता बनने योग्य हो । वह ही (विश्वा सुपथा) समस्त उत्तम धर्म मार्गों को भी (सुगा कृणोति) सुगम कर देती है ।

भद्रा दद्वक्त उर्विया विभास्युत्ते शोचिभूनव्वो द्यामपप्तन् ।

आविर्वक्तः कृणुषे शुभममानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २ ॥

भा०—हे (उपः देवि) प्रभात वेला वा उपा के समान कान्तिमति देवि ! पति की कामना करने हारी विदुषि ! तू (भद्रा) कल्याणकारिणी सोम्य वंश वा स्वभाव वाली (दद्वशे) दीखा कर, वेश और आकार प्रकार से उत्तम, स्वरूप दिखाई दे । (उर्विया) बहुत महत्वयुक्त, उत्तम गुणों से प्रकाशित हो, और बहुत से गुणों को प्रकाशित कर (ते) तेरी (शोचः) शुद्ध (भानवः) कान्तियोवत् कामनाएँ (द्याम्) तेरी कामना करने वाले तेजस्वी पुरुष को (उत् अपत्तन्) उत्तम रीति से प्राप्त हों । तू (शुभमाना) सुशोभित होकर (वक्षः) अपना स्वरूप और उत्तम वचन एवं गृहस्थ के बहुत सामर्थ्य को (आविः कृणुषे) प्रकट कर । हे (देवि)

विदुषि ! तू (महोभिः) बड़े उत्तम २ गुणों से (रोचमाना) सबको प्रिय लगती हुई विराज । ॥३॥

वहन्ति सीमरुणाखो रुशन्तो गावः सुभगासुर्विया प्रथानाम् ।
अपेन्ते शूरो अस्तैव शत्रुन् वाधते तमो अजिरो नवोन्नहा ॥३॥

भा०—(गावः) अथ जिस प्रकार (उर्विया प्रथानां भूमिम् प्राप्य रथं वहन्ति) विस्तृत भूमि को प्राप्त होकर रथादि को ढो ले जाते हैं और जिस प्रकार (गावः प्रथानाम् उर्वियाम् वहन्ति) किरण फैलती हुई उषा को धारण करते हैं उसी प्रकार (अरुणासः) तेजस्वी, (रुशन्तः) दुष्टों के वा दुष्ट भावों के नाश करने वाले, (गावः) ज्ञानवान् पुरुष, (उर्विया प्रथानाम्) पृथ्वी के समान विशाल, (सुभगाम्) सौभाग्यवती द्यी को (वहन्ति) उद्वाहपूर्वक अहण करें । (शूरः अस्ता इव शत्रुन् अप-राजते) शूरवीर, अथ-कुशल धनुर्धारी के समान वह द्यी तथा उसके साथ विवाह करने वाला पुरुष, अन्तःशत्रु काम, क्रोधादि तथा बाहरी शत्रुओं को भी दूर करे । (तमः बाधते) जिस प्रकार उषा वा सूर्य प्रकट होकर अन्धकार को दूर करते हैं उसी प्रकार वे दोनों भी (तमः) दुःखदायी अज्ञान, शोक आदि अन्ध-कार को नाश करें । वह पुरुष (अजिरः नवोदा) वेग से जाने वाला अथ जिस प्रकार रथ का बोझ ढोने में समर्थ होता है उसी प्रकार (अजिरः) जरा वा वृद्धावस्था और शरीर की दुर्बलता से रहित पुरुष ही (नवोदा) नयी वधु का विवाह करने वा गृहस्थ भार को उठाने में समर्थ हो ।

सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते श्रिपस्तरासि स्वभानो ।
त्सा न आ वह पृथुयामन्त्रृष्वे रुयिं दिवो दुहितरिष्यध्यै ॥ ४ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार (दिवः दुहिता) प्रकाश वा प्रकाशवान् सूर्य से उत्पन्न होने, वा प्रकाशों के देने, वा जगत् को पूर्ण करने से 'दिवः दुहिता' है । वह पर्वतों या मेघों पर भी पड़ती, (स्वभानुः) स्वतः कान्तिमती

होकर समस्त प्राणिवर्ग को जीवन देती है उसी प्रकार हे (दिवः दुहितः) । समस्त कामनाओं को पूर्ण करने हारी, खि ! (ते) तेरे लिये (पर्वतेषु) पर्वतों में वा पर्वत मेघवत् पालन करने वाले सम्बन्धि जनों के बीच (सुपथा) उत्तम २ सदाचार और धार्मिक मार्ग (सुगा) सुख से गमन करने योग्य हों । उनके बीच दुराचार के कुमारों पर तू कभी पैर न रख । (अवाते अपः तरसि) प्रचण्ड बात से रहित शान्त अवसर में जिस प्रकार महासुद्र का जल पार कियाजाता है उसी प्रकार हे (स्व-भानो) स्वयं अपनी कान्ति से चमकने हारी हे (दिवः दुहितः) उत्तम संकल्पों के उत्पन्न करने हारी खि ! तू भी (अवाते) विघ्नादि नाशक कारणों से रहित वा अहिंसक पुरुष अधीन रहकर (अपः) अपने नाना कर्मों को अन्तरिक्ष वा जलमार्ग के समान (तरसि) पार कर । (ता) वह तू (पृथु-यामन्) बड़े भारी (ऋषे) महान धर्म में रहकर (नः) हमें (इष्पथध्यै) आदर सत्कार करती हुई (नः आवह) हमें प्राप्त कर ।

सा वह योक्त्वभिरुतातोषो वरं वहसि जोषमनु ।

त्वं दिवो दुहितर्या हृदेवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) कमनीय कान्ति वाली, सुकुमारि ! तू (या ह) जो निश्चय से (देवी) पति की कामना करती हुई (अवाता) किसी को प्राप्त न होकर, अनन्यपूर्वा होकर (जोषम् अनु) अपने प्रेम के अनुसार (वरं) अपने वरण करने योग्य वर पुरुष के साथ (आवहसि), विवाह करती है, और (या ह) जो तू (देवी) शुभ गुणों से युक्त होकर (पूर्वहूतौ) द्यथम वार के दान और प्रथमवार के स्वीकार करने के अवसर में (मंहना) अति पूज्य एवं आदरणीय और (दर्शता) दर्शनीय (भूः) होती है । (त्वं) तू हे (दिवः दुहितः) सूर्य की कन्या या पति की कामना पूर्ण करने हारी विदुषि ! (सा) वह तू (उक्तभिः आ वह) सेवन समर्थ दृढ़ अंगों से, बैलों से शकटवत् गृहस्थ भार को धारण कर ।

उत्ते वयश्चिद्वसुतेरप्सन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सुते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्यीय ॥६॥५॥

भा०—(व्युष्टौ) विशेष रूप से प्रकाश का आवरण हट जाने पर,
प्रभात काल में (चित्) जिस प्रकार (वयः) पक्षी गण (वसतेः) अपने
घोंसले से (उत् अपप्तन्) उड़कर देशान्तर जीविका के लिये चले जाते
हैं उसी प्रकार (नरः च) पुरुष लोग भी (व्युष्टौ) प्रातःकाल होजाने
पर (ये पितु-भाजः) जो अज्ञ खा चुकते हैं वे भोजनानन्तर (वसतेः) निवास
स्थान से (उत् अपप्तन्) बाहर वृत्ति कमाने के लिये जाया करें । हे
(देवि उषः) देवि ! विदुषि ! उषावत् कान्तिमति ! एवं पति को हृदय
से चाहने वाली ! तू (दाशुषे) अपने अज्ञ वस्त्र देने वाले (अमा) साथ
के सहचर (सते) प्राप्त, सच्चरित्र (मर्त्यीय) पुरुष के लिये (भूरिवामम्
वहसि) बहुत उत्तम २ ऐश्वर्य, सुख आदि प्राप्त करा । इति पञ्चमो वर्गः ॥५॥

[६५]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ मुरिक् पंक्तिः । ५ विराट्
पंक्तिः । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६ निचृत्रिष्टुप् ॥ षडूचं सूक्तम् ॥
एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसाश्चिद्कून् ॥ १ ॥

भा०—उषा के दृष्टान्त से स्थिरों के कर्तव्यों का वर्णन । (पृष्ठा)
यह (दिवःओजाः) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न हुई उषा जिस प्रकार
(उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (मानुषीः क्षितीः) मननशील, मनुष्य प्रजाओं
को जगाती है और (राम्यासु) रात्रियों के उत्तर भाग में वह जिस
प्रकार (रुशता भानुना) चमकते प्रकाश से (अज्ञायि) सबको जान
पड़ती है, वह (तमसः अक्तून्) अन्धकार से रात्रियों को (तिरः)
पृथक् करती अथवा (तमसः) अन्धकार से ‘अक्तु’ अर्थात् प्रकाशयुक्त-

दिनों को वा तमोमय रात्रि कालों को, (तिरः) प्राप्त करा देती है, (चित्) उसी प्रकार (एषा) यह (नः) हमारी (दुहिता) पुत्री (दिवः दुहिताः) कामना, सदव्यवहारों, उत्तम इच्छाओं और भावनाओं को पूर्ण करने वाली और दूर देश में विवाहित होने योग्य कन्या (दिवः-जाः) जो तेजोमय ज्ञानी पुरुष से शिक्षा, विनायादि से गुणों में प्रसिद्ध होकर, (मानुषीः क्षितीः) मनुष्य प्रजाओं को जगावे और (या) जो (रुशता भानुना) चमकते ज्ञान प्रकाश और सदाचार की कान्ति से (राम्यासु) रमण करने योग्य स्त्रियों में से सर्वश्रेष्ठ (अज्ञायि) प्रसिद्धि प्राप्त कर, जानी जावे, वा (राम्यासु) रमण अर्थात् पति को सुख देने की क्रियाओं में (अज्ञायि) कुशलता प्राप्त करे । और (स्या) वह (अक्षून्) पूज्य माता पिता, सास ससुर, भाई आदि पूज्य पुरुषों को (तमसः) शोकादि खेदजनक कारणों से (तिरः) पृथक् करे ।

वि तद्युररुण्युग्मिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषस्तश्चन्द्ररथा ।

अग्रं यज्ञस्य वृहुतो नयन्त्रीर्विं ता बाधन्ते तस्म ऊर्मीयाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः) प्रभात वेलायें (चन्द्र-रथाः) आह्वादजनक, रमणीय रूप वाली, या मानो प्रातःकाल तक दीखने वाले चन्द्र पर रथवत् चढ़कर आने वाली होकर (अरुण-युग्मिः) प्रातः-कालिक अरुण वर्ण से युक्त अश्वों अर्थात् किरणों सहित (तत् वि ययुः) उस परम क्रान्तिमार्ग पर गति करते हैं उसी प्रकार (उषसः) कमनीय कन्याएँ, (चन्द्र-रथाः) आह्वादजनक, उत्तम रमणीय व्यवहारों वाली वा उत्तम रथों पर विराजमान होकर (अरुण-युग्मिः) रक्त वर्ण के (अश्वैः) किरणों से (चित्रं) अद्भुत (वि भान्ति) विशेष रूप से चमकें (तत्) उस परम गृह-आश्रम को (ययुः) प्राप्त हों । वे (यज्ञस्य) परस्पर संगति, मुख्य पद या श्रेष्ठ प्रबोधन्ति रूप अंश को प्राप्त

कराती हुईं, (ताः) वे सब मिलकर (ऊर्यायाः) रात्रि के (तमः) अन्धकार के समान दुःख को (वि बाधन्ते) विविध प्रकार से दूर करें ।

श्रवो वाजुमिष्मूर्जं वहन्तीर्नि दाशुषं उषसो मत्याय ।

मधोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधुते रत्नमृद्य ॥ ३ ॥

भा०—हे (उषसः) प्रभात वेलाओं के सदृश रमणीय कान्ति से युक्त, उदयकालिक अनुराग वाली शुभ कन्याओ ! आप लोग (दाशुषे मत्याय) अन्न, वस्त्र, आभूषण आदि देने वाले पुरुष के लिये (श्रवः) यश, ज्ञान, (वाजम्) बल वीर्य, (इषम्) उत्तम अन्न, उत्तम इच्छा और (ऊर्जम्) बल पराक्रम (वहन्तीः) प्राप्त कराती हुईं, अर्थात् इन पदार्थों को प्राप्त करने में सहायक होती हुईं स्वयं (मधोनी) उत्तम धन सम्पद होकर (पत्यमानाः) पति की कामना करती हुईं (वीरवत् अवः) उत्तम सन्तानयुक्त कामना, अलिंगनार्दि (पत्यमानाः) प्राप्त करती हुईं (विधते) विशेष पोषक पति के लिये (अद्य) भाज (रत्नम् निधात्), उत्तम, रमणीय, धनवत् पुत्र को धारण किया करो ।

इदा हि वो विधुते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुषं उषासः ।

इदा विप्राय जरते यदुकथा नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४॥

भा०—हे (उषासः) प्रभात के समान कान्ति युक्त खियो ! (वः) आप होगों में से (विधते) विशेषरूप से धारण पोषण करने वाले के लिये (इदा हि) इसी अवसर में (रत्नम्) रम्य सुख (अस्ति) है । (वीराय दाशुषे) वीर, दानशील पुरुष को भी (इदा) इस समय (रत्नम् अस्ति) रमण योग्य सुख प्राप्त होता है । आप लोग (पुराचित्) पहले के समान ही (मावते) मेरे सदृश (जरते विप्राय) उपदेष्टा विद्वान् पुरुष के लिये (यद् उक्था) जो उत्तम वचन हों वे भी (इदा) इस अवसर में ही (नि वहथ स्म) प्रकट करो । अर्थात् गृहस्थ

का सुख, पुत्रादि लाभ, पालक पोषक वीर्यवान् ज्ञानशील पुरुष को भी इसी चढ़ते यौवन काल में ही प्राप्त होता है, इसलिये स्थिरें अपने सदृश वरों को उत्तम वचनों से इसी काल में वर लिया करें और वरणकाल में विद्वान् आचार्यवत् ही अर्ध पाद्यादि का उपचार किया करें।

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।

व्युक्तेण विभिदुवृह्णणा च सृत्या नृणामभवदेवहृतिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अद्रिसानो) पर्वत के शिखर के समान दृढ़ आधार-शिला पर आरुद (उषः) कमनीय कन्ये ! (इदा हि) इसी नव यौवन काल में ही (अंगिरसः) विद्वान् तेजस्वी लोग (ते) तेरे उपदेश के लिये, (गवाम् गोत्रा गृणन्ति) नाना वाणियों के समूह उपदेश करें। और (अर्केण) सूर्यवत् प्रकाशमान, अर्चनायोग्य (ब्रह्मणा च) वेद के द्वारा वे (सत्या) सत्य सत्य रहस्यों को (वि विभिदुः) विशेष रूप से खोल द कर कहें। इस प्रकार ही (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (देव-हृतिः अभवत्) उत्तम गुणों की प्राप्ति वा 'देव' अर्थात् कामना योग्य वर की प्राप्ति हो।

उच्छ्वा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधुते मधोनि ।

सुवीरं रथिं गृणते रिरीद्युरुग्यायमधिं धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न उषावत् कमनीय ! विदुषि खि ! (प्रत्नवत्) पुराने आचार के समान ही तू भी (नः) हमारे प्रति (दिवः उच्छ्वा) ज्ञान प्रकाश और सद् व्यवहारों को प्रकट कर। हे (मधोनि) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त विदुषि ! (विधते) विशेष पालक पोषक स्वामी के लिये (भरद्वाजवत्) ज्ञानवान् वा ऐश्वर्यवान् विद्वान् के समान ही आदर सत्कार कर। (गृणते) उत्तम उपदेश देने वाले विद्वान् पति के लिये तू (सुवीरं रथिम्) उत्तम पुत्र भृत्यादि से

युक्त धन को (स्त्रीहि) प्रदान कर । (नः) हम में (उरु-गायम् श्रवः) बहुत से अपत्यादि से युक्त उत्तम धन, यश और बहुतों से स्तुति योग्य ऐश्वर्य (अधि धेहि) धारण करे । इति पष्ठो वर्गः ॥

[६६]

११ भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ अन्दः—१,६,११ निचृत-
त्रिष्टुप् । २, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृतपंक्तिः । ६, ७, १० भुरिक-
पंक्तिः । ८ स्वराट् पंक्तिः । एकादशर्च सूक्तम् ॥

बुपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्त्येष्वन्यदोहसे पीपाय सूक्तच्छुकं दुदुहे पृश्निरुधः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं का (वपुः समानं, धेनु, पत्यमानम्) रूप, एक समान, सबको प्राण से तृप्त करने वाला और सदा गति युक्त होता है वह (चिकितुषे), विद्वान् पुरुष के लिये (नाम) कार्यसाधक होता है, उनका एक स्वरूप (मर्त्येषु) मरणधर्मा प्राणियों में (दोहसे) जीवन प्रदान करने के लिये (पीपाय) उनको प्राण से तृप्त करता है और दूसरा रूप यह कि (ऊधः पृश्निः) रात्रि काल में अन्तरिक्ष, एक बार ही (शुक्र दुदुहे) जल को प्रदान करता है । अर्थात् दूसरा गुण वायु का यह है कि वह अपने में जल को भी धारण करता है । वह स्थूल यदायों का वाष्प रूप है । इसी प्रकार समस्त (वपुः तु) शरीर (चिकितुषे) रोग दूर करने वाले वैद्य की इष्टि में, (समानं चित् अस्ति) एक समान ही है । सब शरीर के घटक तत्व एक समान हैं, उनके रोगो-त्पत्ति और स्वस्थता के कारण सर्वत्र एक समान हैं । उन सबका (नाम समानं) नाम भी एक समान हो । (पृश्निः) सूर्य के समान तेजस्वी, विज्ञान के प्रश्नों को सरल करने वाला विद्वान् पुरुष (धेनु) वत्स को तृप्त करने वाले (ऊधः) गाय के थन के समान (धेनु) सबके तृप्त

करने वाले वाङ्मयरूप (पत्यमानम् ऊधः) प्राप्त होते हुए उत्तम ज्ञान को धारण कराने वाले, (शुक्रं) शुद्ध कान्तियुक्त शास्त्र वेद को (संकृत् दुदुहे) एक ही वार ब्रह्मचर्य काल में दोहन करे, प्राप्त करे । वह उसको (अन्यत्) नाना रूप में (मर्त्तेषु) मनुष्यों के बीच (दोहसे) उसका ज्ञान प्रदान करने के लिये (पीपाय) उसी को बढ़ावे ।

ये ऋग्नयो न शोशुच्निधाना द्विर्यन्तिर्मरुतो वावृधन्ते ।

अरेणवो हिरण्ययासं एषां साकं नृमणैः पौस्येभिश्च भूवन् ॥२॥

भा०—(मरुतः) वायु के समान बलवान् पुरुष (इधानाः अग्नयः न) प्रदीप्त होते हुए अभियों को समान (शोशुचन्) अपने को प्रज्ञव-लित, तथा शुद्ध आचारवान् बनावें । वे (द्विः त्रिः ववृधन्ते) दुगना तिगुना वृद्धि को प्राप्त हों । (एषां) इन लोगों के सम्बन्धी जन भी (अरेणवः) अहिंसक, निर्दोष और (हिरण्ययासः) स्वर्ण आदि से ऐश्वर्यवान् और (नृमणैः) धनों और (पौस्यैः च साकं) बलों से सम्पन्न (भूवन्) हो जाय ।

रुद्रस्य ये स्रीङ्गहुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।

विदे हि साता मुहो मुही पा सेत्पृश्चिः सुभ्वेऽगर्भमाधात् ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (रुद्रस्य) वायु के समान बलवान्, (भीढ़हुषः) वीर्य सेचन में समर्थ पूर्ण युवा पुरुष के (पुत्राः) पुत्र होते हैं (यान् च) और जिनको (नु) शीघ्र ही (भरध्यै) भरण पोषण के लिये (विदे) ग्रास करती है वे ही (महः) गुणों से महान् होते हैं । और (सा माता) वह माता (मही) बड़ी पूज्य होती है । (सा इत्) वह माता ही (पृश्चिः) अन्तरिक्ष, पृथ्वी के समान दूध पिलाकर पालने पोषने में समर्थ माता (सुभ्वे) उत्तम वीर्यवान् पुरुष की वंश वृद्धि के लिये (गर्भम् आधात्) गर्भ धारण करती और इसी प्रकार (पृश्चिः) वृष्टिकारक

सूर्यवत् वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष भी (शुभे) उत्तम भूमि के समान
उत्तम सन्तानोत्पादक खी के शरीर में (गर्भम् आ अधात्) गर्भ धारण करावे ।
न य ई॒षन्ते जु॒नुषोऽया न्व॑न्तः सन्तोऽव॒द्यानि॑ पुनानाः ।
निर्यद्वृहे॒ शुच्योऽनु॑ जोषु॒मनु॑ श्रिया॒ तु॑न्व॒मुक्तमाणाः ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् सज्जन (जनुपः) जन्म लेने वाले, जन्म-
ओं की (न ई॒षन्ते) हिंसा नहीं करते, ऐसे (सन्तः) सत जन (अन्तः)
अपने अन्तःकरण के भीतर बैठे (अव॒द्यानि) निन्द्य विचारों को (पुनानाः)
दूर करके पवित्र होते हुए, और अन्यों को भी पवित्र करते हुए (शुच्यः)
शुद्ध पवित्र होकर (जोषम्) प्रेम-रस का (अनु॑ निर्दुर्हे॑) सबके अनु-
कूल रूपसे भरपूर प्रदान करते हैं जिस प्रकार (श्रिया) विद्युत-कान्ति॑
से युक्त होकर वायु गण (तन्वं) विस्तृत भूमि सेचन करते हैं उसी
प्रकार वे (अनु॑) बाद में (श्रिया) शोभा से अपने (तन्वम्) शरीर,
यशः-शरीर को (उक्षमाणाः) सेचन करते, बढ़ाते हैं । (तन्वम् उक्ष-
माणाः) देह कान्ति के लिये देह को जैसे सेचते, स्नान करते हैं, ऐसे ही
वे (श्रिया) शोभा, सौभाग्य वा ऐश्वर्यों से (तन्वम्) अपने सन्तति॑
का भी सेचन, उत्पादन और वृद्धि करते हैं ।

मङ्गू॑ न येषु॑ दोहसे॑ चिद्या॑ आ नाम॑ धृष्णु॑ मारुतं॑ दधानाः ।
न ये स्तौना॑ श्रुयासो॑ मङ्गा॑ नू॑ चिंत्सु॑दानुरव॑ यासदुग्रान् ॥५॥७॥

भा०—(येषु॑) जिन मनुष्यों में राजा (मङ्गु॑) शीघ्र ही (दोहसे॑
न) ऐश्वर्य प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता और जो (अयाः) मनुष्य॑
(धृष्णु॑) शत्रु को पराजित करने वाले (मारुतं॑) वायुवत् अनन्त बल वा
मनुष्यों का सामूहिक बल को (दधानाः) धारण करते हैं । और (ये) जो
(अयासः) प्रजाजन (स्तौना॑ न) चोर भी नहीं हैं उन (उग्रान्)
बलवान् पुरुषों को (चित्) भी (सुदानुः) उत्तम दानशील पुरुष

(महा) अपने महान् सामर्थ्य से (तु) शीघ्र ही (अव यासत्) अपने अधीन रखकर एकत्र, संहत करे । इति सप्तमो वर्गः ॥

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त् रोदसी सुमेके ।

अधस्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (उग्राः) बलवान् वायुगण (शवसा) बल, या जल से (उभे रोदसी सुमेके = सुमेघे युजन्त) उत्तम मेघयुक्त आकाश और पृथिवी दोनों को मिलाये रखते हैं उसी प्रकार (ते) वे (उग्राः) बलवान् पुरुष (इत्) ही (शवसा) अपने शरीर-बल और ज्ञान-बल से (धृष्णु-सेनाः) शत्रु को पराजय कर देने वाली सेनाओं को बनाकर (रोदसी उभे) सूर्य और पृथिवी दोनों के तुल्य राजवर्ग और प्रजावर्ग (सुमेके) उत्तम रूपवान् एक दूसरे को बढ़ाने वाले दोनों को (युजन्त) संयुक्त बनायें रखें, दोनों को परस्पर प्रेम भाव से मिलाये रखें । (अध स्म) और (अमवत्सु तेषु) बलवान्, गृहवान् और सहायवान् उन पुरुषों में ही (रोदसी) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों की (स्वशोचिः) अपनी कान्ति, अर्थात् शुद्ध पवित्र ज्योति (रोकः न तस्थौ न) उनके उत्तम रूचि के समान ही विराजती है ।

अनेनो वौ मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमज्जत्यरथीः ।

अनवृसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पृथ्या याति साधन् ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! जिस प्रकार वायु-बल से जाने वाला यान (अनश्चः चित्) विना अश्च के होता है और (यम्) जिसको (अरथीः) विना रथि वा सारथी के एक ही आदमी (अजति) चला सकता है, (अतवसः अनभीषुः) जिसमें न कोई गति देने वाला, और न कोई लगाम हो, तो भी (रजस्तूः) जल और पृथ्वी दोनों लोकों में चले, वह भूमि और पृथ्वीपर बेरोक चले । उसी प्रकार हे (मरुतः)

विद्वान् लोगो ! (वः यामः) तुम्हारा जीवन का सत्-मार्ग (अनेनाः) निष्पाप (अस्तु) हो । और वह (अनश्चः अरथीः) अश्व और रथ आदि नाना साधनों से रहित भी (यम् अजति) जिसको चला सके वा जिस तक पहुंच सके । वह (अनवसः) सच्चित्रिता का मार्ग जिसपर अज्ञादि भोग्य पदार्थों से रहित, (अनभीशुः) अंगुलि, बाहु आदि विशेष बल शक्ति से रहित (रजस्तुः) रजो गुण को दूर करने वाला पुरुष भी (पथ्या साधन्) पथ्य, हिताचरण करता हुआ (वि याति) विशेष रूप से चलता है । निष्पाप धर्म के मार्ग पर अमीर गरीब सब कोई समान रूप से चल सकता है ।

नास्य वृत्ता न तरुता न्वास्ति मरुतो यमवथ् वाजसातौ ।
लोके वा गोषु तनये यमुष्मु स ब्रजं दर्ता पाये अध्य द्योः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् वीर और प्रजा के जीवन देने वाले पुरुषो ! आप लोग (वाज-सातौ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और संग्राम के कार्य में (यम् अवथ) जिसकी रक्षा करते हो, (अस्य वर्ता न) उसको निवारण करने वाला कोई नहीं होता और (अस्य तरुता न नु अस्ति) उसको मारने वाला भी कोई नहीं होता । हे वीर पुरुषो ! (यम्) जिसको आप लोग (लोके) पुत्र (तनये) पौत्र, (वा गोषु) और भूमि, गवादि पशुओं के निमित्त (अवथ) रक्षा करते हो, (सः) वह (ब्रजं) गो-समूह को (दर्ता = धर्ता) धरने में समर्थ होता तथा वह (द्योः पाये) भूमि के पालन पूरण करने में वा विजिगीषु पुरुष के साथ संग्राम में भी (ब्रजं दर्ता) सैन्य दल तथा शत्रु के मार्ग, नगर आदि का नाश करने में समर्थ होता है ।

प्र चित्रमुक्ते गृणते तुराय मारुताय स्वतंवसे भरच्चवम् ।
ये सहाँसि सहस्रा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मुखेभ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (गृणते) उपदेश देने वाले और (तुराय) शत्रु का नाश करने और (स्वतवसे) अपने धन को बल के तुल्य धारण करने वाले विद्वान् , क्षत्रिय और वैश्य तीनों प्रकार के (मारुताय) मनुष्य वर्ग के लिये (चित्रम् अर्कम्) उचित, अद्भुत, नाना प्रकार का, सञ्चययोग्य ज्ञान, अर्चना करने योग्य आदर सकार, शास्त्रादि बल, तथा नाना अन्न (प्र भरध्वम्) अच्छी प्रकार धारण करो । हे (अने) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! जिन के (मखेभ्यः) संग्रामों और यज्ञों के भयसे (पृथिवी) समस्त संसार (रेजते) कांपता है और (ये) जो (सहसा) बल और उत्साह से (सहांसि) नाना शत्रु सैन्यों को भी (सहन्ते) पराजित करते हैं । उनके लिये भी (चित्रम् अर्कं प्र भरध्वम्) नाना संचय योग्य अन्न प्रदान करो । अर्थात् शत्रु विजय करने में सहायक सेनाओं का भोजन भी राज्य दे ।

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युक्त्पुच्यव॑सो जुह्वोऽनाश्वेः ।

अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भाज॒ज्जन्मानो मूरुतो अधृष्टाः ॥ १० ॥

भा०—(अध्वरस्य इव दिद्युक्त्) जिस प्रकार यज्ञ का प्रकाश हो और (अने : जुह्वः न) जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाएं प्रकाश युक्त हों उसी प्रकार (मरुतः) वायु के समान बलवान् मनुष्य भी (त्विषी-मन्तः) कान्ति से युक्त (तुषु-च्यवसः) तोक्षण-वेगयुक्त गति वा (अर्चत्रयः) परस्पर का मान सकार करने वाले, वा माता पिता गुरु वा और परमेश्वर के उपकारक (धुनयः न) शत्रुजनों और वृक्षों को वायुओं के समान कंपाने वाले, (वीरः) वीर, शूर, (भाजत्-जन्मानः) तेजस्वी शरीर वाले, (अधृष्टाः) विनीत और अपराजित होकर रहें ।

तं वृथन्तं मारुतं भ्राज॒द्वृष्टं रुद्रस्य॑ सूरुं हृवसा विवासे ।

दिवः शर्धीय॑ शुचयो मनीषा गिरयो नाप॑ उग्रा अ॒स्पृथन् ॥ ११ ॥

भा०—मैं प्रजाजन (वृथन्त) राष्ट्र को बढ़ाने वाले, (रुद्रस्य

सुनुम्) दुष्टों को रुलाने वाले, सेनापति और उपदेशा आचार्य के पुत्रवत् प्रिय तथा उसके अभिषेका, (तं) उस (मारुतं) बलवान् मनुष्य गण को मैं (हवसा) अज्ञादि से (आविवासे) संकार करूँ । वे (दिवः) तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध, पवित्र, ईमानदार, (मनीषाः) मनस्ती, (गिरयः न) मेधों के समान और (आपः न) जल धाराओं के समान (शर्धाय) जल वर्षण और बल के लिये (अस्पृधन्) एक दूसरे से बढ़ने के लिये उद्योग करें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६७]

भरद्वाजो वाहैस्पत्य कृषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ स्वराट् पंक्तिः ।
२, १० सुरिक पंक्तिः । ३, ७, ८, ११ निचृतिष्ठप् । ४, ५ विष्ठुर् ।
६ विराट् विष्ठप् ॥ एकादशर्च सूक्तम् ॥

विश्वेषां वः सूतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रुश्मेव यमतुर्यमिष्टां द्वा जन्मां असमा बाहुभिः स्वैः ॥१॥

भा०—हे मनुष्यो ! (विश्वेषां वः सूताम्) आप समस्त सज्जन पुरुषों के बीच (ज्येष्ठतमा) सबसे अधिक श्रेष्ठ (मित्रा-वरुणौ) मित्रवत् स्नेही और दुःखों के वारण करने वाले वे दोनों हैं जो (द्वा) दोनों मिलकर (असमा) अन्यों के समान न रहकर, वा परस्पर भी आयु, और रूप, बल में समान न रहकर भी (वावृधध्यै) शाष्ट्र और कुल की वृद्धि करने के लिये (यमिष्टो) संयमशील होकर (गीर्भिः) अपने उपदेश वाणियों से (जनान् सं यमतुः) लोगों को नियम में रखते हैं । और जो (बाहुभिः) बाहुबलों से जनों को अपने वश करते हैं और जो दोनों (स्वैः) अपने धनों के बल से मनुष्यों को काबू करते हैं अर्थात् उत्तम ब्राह्मण, उत्तम क्षत्रिय, और उत्तम वैश्य तीनों ही वर्ण के स्त्री पुरुष सर्व श्रेष्ठ जानने योग्य हैं ।

इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोर्प्रिया नमसा बुद्धिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं बुद्धिर्द्वां वरुद्ध्यं सुदान् ॥ २ ॥

भा०— हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण, हे परस्पर स्नेह करने वाले और एक दूसरे का वरण करने वाले वर वधु ! (इयं मनीषा) यह मेरे मन की उत्तम कामना (प्रिया वा) आप दोनों प्रिय जनों को (यत्) मेरी ओर से (नमसा) विनयपूर्वक अज्ञादि सत्कार के साथ (प्रस्तृणीते) प्राप्त होती है । इसी प्रकार (अच्छ बहिः प्रस्तृणीते) उत्तम आसन भी आप लोगों के लिये बिछाया जाता है । आप दोनों (सुदान्) उत्तम दानशील होकर (नः) हमें (वरुद्ध्यं) शीत, आतप, वर्षा आदि को वारण करने वाला (छर्दिः अधृष्टं) ददृ गृह (यन्तं) दो ।

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप्रिया नमसा हृयमाना ।
सं यावप्नःस्थो ऋपसेव जनाऽच्छधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥ ३ ॥

भा०— हे (मित्रावरुणा) स्नेह और परस्पर वरण करने वाले श्रेष्ठ स्त्री पुरुषों ! (चित्) जिस प्रकार (अमः स्यः) कर्माध्यक्ष पुरुष (अवसा) कर्म द्वारा (श्रुधीयतः जनान्) अज्ञ, वृत्ति के चाहने वाले मनुष्यों को (यतते) काम कराता है उसी प्रकार (यौ) जो आप दोनों (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (श्रुधीयतः) अज्ञ के इच्छुक (जनान्) जन्तुओं को (सं यतथः) एक साथ कार्य कराओ । (नमसा) आदर सत्कारपूर्वक (हृयमाना) आमन्त्रित होकर (प्रिया) एक दूसरे के प्रिय होकर (सुशस्ति) उत्तम कीर्ति तथा उपदेशादि को (उप आ यातम्) प्राप्त होवो ।

अश्वा न या ब्राजिना पुतवन्धू श्रुता यदगर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मतीय रिपवे नि दीधः ॥ ४ ॥

भा०— (या) जो आप दोनों (अश्वान्) रथ में लगे दो अश्वों के

समान, (वाजिना) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य में समान हैं जो आप दोनों (पृत-बन्धु) पवित्र सम्बन्धों से बंधे और शुद्ध चित्त युक्त, सम्बन्धियों वाले, (कृता) सत्य, ज्ञान आचरण करने वाले हों (यत्) जिन आप दोनों को (अदितिः) माता के समान भूमि, वा भूमि के समान माता (भरध्यै) पालन पोषणार्थ (गर्भ) गर्भ रूप में धारण करती है। और (या) जो आप दोनों (मत्ताय, रिपवे) सामान्य मनुष्य तथा रिपु, अर्थात् पापयुक्त शत्रु के दमन के लिये (घोरा) भयंकर हो, वे आप दोनों (महान्ता) गुणों में महान् (जायमाना) उत्पन्न, एवं प्रसिद्ध होकर (महि प्र नि दीधः) बहुत बल और ज्ञान एवं बड़े उपास्य ब्रह्म का प्रणिधान, पुनः २ अभ्यास, मनन और प्राप्ति करो ।

विश्वे यद्वौ संहना मन्दिमानाः क्षत्रं देवास्तो अदधुः सजोषाः ।
परि यन्द्वयो रोदसी चिदुर्वीं सन्ति स्पशो अदव्धास्तो अमूरा: ॥५॥१॥

भा०—(यत्) जो आप दोनों (रोदसी चित्) भूमि आकाश, वा सूर्य और पृथिवी के समान प्रकाश, जल, अङ्ग, आश्रय आदि देने वाले माता पिता के समान (ऊर्वी) विश्वाल (परि भूथः) शक्तिमान् होकर रहते हो, उन (वाम्) आप दोनों के (मंहना) बड़े भारी सामर्थ्य से (मन्दमानाः) अति प्रसन्न होकर (विश्वे देवासः) सब मनुष्य, (सजोषाः) समान रूप से प्रीति से युक्त होकर (वां क्षत्रं अदधुः) प्राण अपान के बल को इन्द्रिय गण के तुल्य, आप दोनों के बल को धारण करते हैं और आपके (स्पशः) यथार्थ वात को देखने वाले, दूत, विद्वान् आदि जन भी (अदव्धासः) कभी नाश या पीड़ित न होने वाले (अमूराः) प्रलोभनादि से मोह में न पड़ने वाले (सन्ति) हों। इति नवमो वर्गः ॥

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु यून्दुहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
हुळ्हो नक्षत्रं तुत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिन्नायोः ॥ ६ ॥

भा०—(ता हि) वे आप दोनों (अनु दून् हि) सब दिनों (क्षत्रं धारयेथे) बल को धारण करें । और आप दोनों (द्योः उपमात् इव) सूर्य के तेज और ताप के समान सामर्थ्य से स्वयं दढ़ होकर (सानुम्) भोग योग्य ऐश्वर्य व उन्नत शिखर भाग को (दंहेथे) बृद्धि करो । (विश्वदेवः नक्षत्रः सन् यथा दढ़ आयोः धासिना द्याम् आतान्) सब किरणों का स्वामी सूर्य जिस प्रकार आकाश में एकत्र होकर दढ़ है और वह जीवन वा जन समूह के धारक पोषक सामर्थ्य से प्रकाश को सर्वत्र फैला देता है उसी प्रकार (दढ़) सुदृढ़, बलवान् (नक्षत्रः) व्यापक सामर्थ्यवान्, वा कभी (नक्षत्रः) क्षीण न होने वाला (विश्व-देवः) सब मनुष्यों का स्वामी, (आयोः धासिना) सब मनुष्यों के; वा जीवन के धारण करने वाले सामर्थ्य, बल, अज्ञादि से (भूमिम् आ अतान्) भूमि को सब प्रकार से वश करे और पालन करे ।

ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सङ्ग सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७॥

भा०—हे मित्रवत् स्नेही और एक दूसरे से प्रेमपूर्वक वरण करने वाले स्त्री पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों जिस प्रकार (जठरं पृणध्यै) पेट को छृस करने के लिये (विग्रं) विशेष रूप से गले में नीचे उतारने योग्य खूब चबाया खाय अज्ञ प्राप्त करते हो, उसी प्रकार (जठरं पृणध्यै) पेट भर खिलाने के लिये (विघ्रम्) विद्वान् पुरुष को (धैथे) आदर पूर्वक भरण पोषण करो, विद्वान् को अज्ञादि दो । (यत्) क्योंकि (स-भृतयः) एक समान भरण पोषण या वेतन प्राप्त करने वाले भृत्यादि लोग (सङ्ग) एक ही आश्रय गृह को (आपृणन्ति) सब प्रकार से पूर्ण कर उसे भरते हैं और एक गृह की सेवा करते हैं, परन्तु (अवाताः युवतयः) अविवाहित, पति को न प्राप्त हुई युवति श्रियें (न मृष्यन्ते) एक दूसरे को सहन नहीं करतीं, इसलिये हे (विश्व-जिन्वा) समस्त विश्व को अज्ञादि से तृप्त करने

वालो ! (यत्) जो (पथः सद्ग विभरन्ते) नदियों के समान अच जलादि पुष्टिकारक पदार्थों से गृह को भरपूर करें उनको ही तुम दोनों (धैथे) पालन पोषण करो ।

ता जिह्वया सद्मेदं सुमेधा आ यद्वां सुत्यो अरुतिश्रुतेभूत् ।
तद्वां महित्वं धृतान्नावस्तु युवं दाशुपे वि चयिष्टमंहः ॥ ८ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो पुरुष (इदं सदम्) आप दोनों के इस विद्वानों के बैठने योग्य गृह को प्राप्त होकर (जिह्वया) वाणी से तुम्हें प्राप्त हो, वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् हो । वह आप दोनों को (आ) प्राप्त हो, वह (कृते) सत्य ज्ञान और धर्मानुकूल व्यवहार वा धन के सम्बन्ध में (सत्यः) सच्चा (वास् अरतिः) आप दोनों का स्वामी (भूत्) हो, (वां तत् महित्वम्) आप लोगों का यह बड़ा भारी गुण हो । हे (धृतान्नौ) धृत युक्त अच का भोजन करने वाले सत्युरुषो ! (ता युवं) वे आप दोनों (दाशुपे अंहः) दान देने वाले के पाप को (वि चयिष्टम्) दूर करो । विद्वान् स्त्री पुरुष अपने को शिव्यादि जन (दाशुपे) ज्ञान दाता के पाप को (वि चयिष्टं) स्वयं संग्रह न करें । वे धृतयुक्त अच का भोजन करें, रूखा न खाया करें । अस्माकं यानन्यवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ॥ तै० उप० ॥

प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्त्रिया धाम् युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवासु ओहस्त्रा न मर्ता आयशसांचो अप्यो न पुत्राः ॥ ९ ॥

भा०—हे (मित्रा-वरुण) स्नेहवान् एवं वरण करने योग्य माता पिता के समान पूज्य पुरुषो ! (यत्) जो लोग (प्रिया) प्रिय (धामा) आप दोनों के धारण करने योग्य कर्मों और पदों को प्राप्त करने के लिये (स्पूर्धन्) स्पूर्धा करते हैं और (युव-धिता) आप लोगों के किये

कर्मों का (न प्रसिनन्ति) विनाश नहीं करते । और (वे देवासः) जो विद्वान् (मर्त्ताः) मरणधर्मा, मनुष्य (ओहसा) अपने कर्म सामर्थ्य से (अयज्ञ-साचः) यज्ञ, परस्पर सत्संग को प्राप्त न होकर भी (नः स्पूर्यन्) आप दोनों के कर्मों में विघ्न नहीं करते वे भी (अप्यः न पुत्राः) आप दोनों के कर्म निष्ठ एवं प्राप्त दाराओंमें उत्पत्ति पुत्रों के समान ही प्रिय होते हैं ।
वि यद्वाचं क्रीस्तास्तो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद्वां ब्रवाम सूत्यान्युक्था नकिंद्वेभिर्यतयो महित्वां ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो (कीस्तासः) विद्वान् लोग (वाचं) वेदवाणी को (वि भरन्ते) विविध प्रकार से धारण करते हैं (यत् केचित्) जो कोई विद्वान् लोग (निविदः शंसन्ति) विशेष विद्यायुक्त वाणियों का अन्यों को उपदेश करते हैं वे (मनानाः) मननशील हम लोग (सत्यानि उक्था) सत्य २ वचनों का (आत्) बाद में (वां ब्रवाम) है खी पुरुषो ! आप दोनों को उपदेश करें । (देवेभिः) विद्वान् उत्तम पुरुषों के साथ आप दोनों (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से अवश्य यत्न करते रहो ।

श्रवोरित्था वां छुर्दिषो श्रुभिष्ठौ युवोर्मित्रारुणावस्कृधोयु ।
अनु यद्गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णु यद्रेणे वृषणं युनजन् ११।१०॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणौ) स्नेह युक्त और श्रेष्ठ विद्वान् खी पुरुषो ! (यत् अनु) जिन आप दोनों के पीछे २ (गावः) वाणियें और उत्तम पशुजन किरणोवत् (अनु स्फुरान्) चलते हैं और (यत्) जो आप दोनों (क्रजिप्यं) सत्य धर्म के पालक, (धृष्णु) शत्रुको पराजय करने में समर्थ (वृषणं) बलवान्, पुरुष को (रणे) संग्राम में (युनजन्) नियुक्त करते हैं । उन (अवोः वां) रक्षा करने वाले आप दोनों के (इत्था) इस प्रकार (छुर्दिषः अभिष्ठौ) गृह को प्राप्त करने में (अस्कृधोयुः) महत्वा-

कांशी पुरुष (युवोः) आप दोनों के अधीन रहे और विद्या का अभ्यास किया करे । इति दशमो वर्गः ॥

[६८]

भरद्वाजो बाह्यस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणो देवते ॥ छन्दः—१.४, ११ त्रिष्टुप् ।
६ निचृतित्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ७, ८ स्त्रराट्पंक्तिः । ५ पंक्तिः । ६,,
१० निचृउजगती ॥ दशवृं सूक्तम् ॥

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सूजोषा मनुष्वद्वृक्तवृहिषो यज्ञध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे श्रुद्य मुहे सुम्नाय मुह आववर्तते ॥ १ ॥
भा०—हे (इन्द्रावरुणौ) ऐश्वर्ययुक्त, सौभाग्यवान् ! हे 'वरुण'
एक दूसरे का वरण करने और एक दूसरे के दुःखों का वारण करने वाले
युगल पुरुषो ! (यः यज्ञः) जो आप दोनों का परस्पर का दान प्रति-
दान, सत्संग (अद्य) आज (महे इषे) बड़े उत्तम, इच्छापूर्ति और
(महे) बड़े उत्तम (सुम्नाय) सुख प्राप्ति के लिये (आ ववर्तते)
हो वह (वां यज्ञः) आप दोनों का यज्ञ (श्रुष्टी) शीघ्र ही (सूजोषाः)
समान प्रीतियुक्त, (उद्यतः) उत्तम रीति से सुनियंत्रित, और (मनुष्वते)
मननशील पुरुषों से युक्त, और (वृक्तवृहिषः) तृणों के समान संशयों
वा बन्धनों को काटने वाले विद्वान् पुरुष के (यज्ञध्यै) दान, सत्संग
करने के लिये (आववर्तते) नित्य ही हो ।

ता हि श्रेष्ठां देवताता तुजा शूराणां शविष्टा ता हि भूतम् ।

मधोनां मंहिष्टा तुविशुष्मं ऋतेन वृत्तुरा सवैसेना ॥ २ ॥

भा०—(ता) वे इन्द्र और वरुण, ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक और
श्रेष्ठ, शत्रुवारक दोनों प्रकार के प्रमुख पुरुष (हि) निश्चय से, (देवताता)
उत्तम विद्वान्, व्यवहारवान् मनुष्यों के बीच में (श्रेष्ठा) सबसे उत्तम,
(शूराणां तुजा) शूर वीर पुरुषों के पालक और शत्रु के वीरों के नाशक

हों । (ता॑) वे दोनों (हि॒) निश्चयपूर्वक (शविष्ठा॑ भूतम्॒) सब से अधिक बलशाली होते॑ं । वे दोनों (मधोनां॑ मंहिष्ठां॒) उत्तम धनसम्पन्न पुरुषों के बीच अति दानशील, पूजनीय, और (तुवि॑-शुप्मा॒) बहुत से बलों से सम्पन्न, और (क्रतेन॑) सत्य ज्ञान, न्यायव्यवहार और धन-बल से (वृत्र-तुरा॑) मेघवत् बढ़ते शत्रु और विद्वानों का नाश करने वाले और (सर्वसेना॑) सब सेनाओं के स्वामी (भूतम्॒) हों । आधिदैविक में इन्द्र और वरुण, सूर्य मेघ, वा विद्युत् और जल ।

ता॑ गृणीहि॒ नमस्येभिः॒ शूपै॒ सु॒मनेभिरिन्द्रावरुणा॑ चक्राना॑ ।

वज्रेण्यान्यः॑ शवसा॑ हन्ति॒ वृत्रं॑ सिपक्ष्युन्यो॑ वृजनेषु॑ विप्रः॑ ॥३॥

भा०—हे विद्वन् ! तू॑ ((इन्द्रा॑ वरुणा॑) ऐश्वर्यवान्, शत्रु-हन्ता॑ और प्रसुख रूप से वरण करने योग्य, सर्वथ्रेष्ठ, सैन्य और सेनापति, (सुम्नेभिः॑) सुखकारी (शूपै॒) बलों से (चक्राना॑) अति तेजस्वी और प्रजा की शुभ कामना करने वाले (ता॑) उन दोनों की (नमस्येभिः॑) आदर करने योग्य वचनों से (गृणीहि॒) स्तुति कर उन दोनों मे से (अन्यः॑) एक तो (वज्रेण) अपने बाहुबल से और (शवसा॑) सैन्यबल से (वृत्रं॑ हन्ति॑) बढ़ते शत्रु को दण्डित करे और (अन्यः॑) दूसरा (वृजनेषु॑) सैन्यबलों के बीच में (सिपक्षि॑) समवाय उत्पन्न करे ।

ग्राश्च॑ यन्नरश्च॑ वावृधन्तु॑ विश्वे॑ देवासो॑ नुरां॑ स्वगूर्ता॑ः॑ ।

प्रेभ्य॑ इन्द्रावरुणा॑ महित्वा॑ द्यौश्च॑ पृथिवि॑ भूतमुर्वी॑ ॥४॥

भा०—(ग्राः॑) ख्रिये॑ और (नरः॑ च) पुरुष (नरां॑) मनु-ष्यों के बीच में भी (विश्वे॑ देवासः॑) विद्वान्, व्यवहारकुशल खी पुरुष सभी (स्वगूर्ता॑ः॑) स्वयं उद्यमी होकर ही (वावृधन्तु॑) बढ़ा करते हैं । हे (इन्द्रा॑ वरुणा॑) ऐश्वर्यवान् और थ्रेष्ठ पुरुषो ! आप दोनों भी (महि-

त्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (पृथ्यः) इन उद्यमी प्रजाजनों के लिये (द्यौः पृथिवि च) सूर्य और भूमि के समान प्रकाश और अन्न खूब देने वाले (प्रभूतम्) होओ ।

स इत्सुदानुः स्ववौँ ऋतावेन्द्रा यो वौँ वरुण दाशातित्मन् ।
इषा स द्विष्टतेरहास्वान्वंसद्ग्रिं रयिवतश्च जनान् ॥५॥१॥

भा०—इन्द्र वरुण की व्याख्या । हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त ! हे वरण करने योग्य दोनों जनो ! (वां) आप दोनों में से (यः) जो (दमन् दाशति) अपने बलपर दान करता है, (सः इत् सुदानुः) वही उत्तम दाता है । वही (स्वान्) आत्मवान्, व सच्चा धनवान्, वही (ऋतावा) बलवान् तेजस्ती धनाद्य है । (सः) वह (दास्वान्) दान-शील पुरुष ही (इषा द्विष्टः तरेत्) अपनी इच्छामात्र या प्रेरणा, आज्ञा और सैन्य बल और अन्नसम्पदा से अपने शत्रुओं को पार करता है, जो (रयिं सत्) नाना ऐश्वर्य को विभक्त करता और (जनान् च रयिवतः करोति) सब लोगों को धन सम्पन्न करता है ।

यं युवं द्वाश्वध्वराय देवा तुर्यं धृत्थो वसुमन्तं पुरुक्तुम् ।
ऋस्मे स इन्द्रावरुणावर्णं ष्यात्प्र यो भूनक्ति वनुषामशस्तीः॥६॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान् और ज्ञानादिगुणों में श्रेष्ठ पुरुषो ! (यूयं) आप दोनों (दाशु-ध्वराय) दानरूप से दूसरे को कष्ट न देने वाले यज्ञ को सम्पादन करने के लिये (यम्) जिस प्रकार के (वसुमन्तं) धन सम्पन्न और (पुरुक्तुम्) बहुत प्रकार के धान्यों से सम्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य वा ऐश्वर्यवान् पुरुष को (धत्थः) धारण करते और औरों को प्रदान करते हैं (यः) जो ऐश्वर्य (वनुषाम् अशस्तीः) याचक लोगों की दुःखदायी दशाओं को (प्रभनक्ति) दूर करता और जो पुरुष (वनुषां अशस्तीः प्रभनक्ति) हिंसक दुष्ट पुरुषों के अप्र-

शास्त्, निन्दित कर्मों को तोड़ता है (सः) वह (अस्मे) हमारे हितार्थ (अपि स्यात्) होवे ।

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सुरिभ्य इन्द्रावरुणा रुयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु सुहान्प्र सुद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्ता और प्रमुख रूप से वरण करने योग्य ! सैन्य-सेनापति जनो ! (येषां) जिनका (शुष्मः) बल (पृतनासु) संग्रामों और मनुष्यों वा सेनाओं के बीच में (साहान्) सर्वविजयी, हो । जो (सद्यः) बहुत शीघ्र ही (ततुरिः) शत्रुनाशक होकर (द्युम्ना) धन और बल से (तिरते) शत्रुओं को नाश करता है, और जिनका (रुयिः) धन वा बल (नः) हमारे (सूरिभ्यः) विद्वानों का (सुत्रात्रः) उत्तम रीति से रक्षा करने वाला और (देवगोपाः) सब मनुष्यों का रक्षक (स्यात्) हो वही हमारा (सुत्रात्रः) उत्तम रक्षक होने योग्य है ।

नू न॑ इन्द्रावरुणा गृणाना पृद्गङ्कं रुयिः सौश्रवसाय॑ देवा ।

इत्था गृणन्तौ महिनस्य शध्योऽपो न नावा दुरितां तरेम ॥८॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्तः ! हे शत्रुवारक सेनापति एवं सैन्यवर्ग ! आप दोनों (देवा) विजयशील होकर (गृणाना) मा आप के तुल्य उत्तम २ आज्ञाएं और उपदेश करते हुए, (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्ति लाभ करने के लिये (रुयिः पृद्गङ्कम्) ऐश्वर्यं प्राप्त करो । (हृथा) इस प्रकार सत्य २ (महिनस्य शर्धः) महान् पुरुष, प्रभु के बल की हम लोग (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (नावा अपः न) नाव से जलों के समान (नावा) उत्तम स्तुति और तेरी प्रेरणा से हम लोग (दुरिता) सब पापों और कष्टों से (तरेम) पार होजायें ।

प्र सुम्राजे वृहुते मन्मु नु प्रियमर्चे देवाय वरुणाय सुप्रथः ।

अ॒यं य उर्वी महिना महिनृतः क्रत्वा वि भात्यजरो न शोचिष्ठा ९

भा०—(यः) जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से, (उर्वीं) विशाल भूमि और आकाश दोनों को (शोचिषा न) दीसि से सूर्य के समान राजा और प्रजा वर्ग को (विभाति) प्रकाशित करता है वह (महिव्रतः) बड़े २ कर्म करने वाला, (सप्रथः) उत्तम ख्याति से युक्त (अजराः) सदा युवा, जरारहित, अविनाशी (क्रत्वा) उत्तम द्वुद्धि और कर्म-सामर्थ्य से सम्पन्न है उस (बृहते सप्ताङ्गे) बड़े सप्ताट्, (देवाय) दानशील (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ परम पुरुष की (प्रियम् मन्म) प्रिय, उत्तम मननयोग्य ज्ञान और स्तुति का (प्र अर्च) सेवन कर ।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमै पिबतुं मर्यै धृतव्रता ।

युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसर्मुपयाति पीतये ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणौ) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ मान्य रुदि पुरुष ! आप लोग (धृत व्रता) व्रतों को धारण करने वाले (सुत-पा) अजा जनों को, राष्ट्र को पुत्रवत् पालन करने वाले, आप दोनों (हमं सुतं) इस पुत्रवत् उत्पन्न प्रजा जनको (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा, प्रिय सौम्य स्वभाव के (मद्यम्) आनन्द वा हर्ष के जनक, अज्जवत् तृसि-दायक सुखजनक को (पिबतम्) पालन करो । (युवोः) आप दोनों का (रथः) रथ और रमणीय ध्यवहार (देव-वीतौ) विद्याभिलाषी जन तथा उत्तम विद्वानों की रक्षा और कान्ति के लिये, (स्व-सरम् अध्वरम् प्रति) दिन के समान सुप्रकाशित, स्वयं उत्तम वेग से जाने वाले, हिंसा रहित, राज्यपालन, अध्ययनाध्यापन कार्य के प्रति (प्रीतये) प्रजाजन के पालन के लिये (उप याति) प्राप्त हो ।

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृष्णा वृषेथाम् ।

इदं व्रामन्धुः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्नार्हीषि मादये-थाम् ॥ ११ ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त और हे श्रेष्ठ और दुःखों के

वारण करने और उत्तम पद पर वरण करने योग्य स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मधुमत्-तमस्य) अति मधुर (वृष्णः) बलकारक (सोमस्य) अन्न, जल और ऐश्वर्य के उपभोग से (वृषेथाम्) खूब बलवान् बनो । हे (वृष्णा) बलवान् स्त्री पुरुषो ! (इदं) यह (वाम्) आप दोनों का (अन्धः) उत्तम अन्न (अस्मे) हमारे लिये भी (परि-सिक्तम्) सब प्रकार से सिंच कर पात्रादि में रक्ता हो और आप दोनों (अस्मिन् ब्रह्मिः) इस वृद्धिशोल राष्ट्रगृह और उत्तम आसन पर (आसद्य) विराज-कर (मादयेथाम्) अति हर्ष लाभ करो, सुखी होओ । इति द्वादशो वर्गः ॥

[६६]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राविष्णु देवते ॥ छन्दः— १, ३, ६, ७ निचु-
त्विष्टुप् । २, ४, ८ विष्टुप् । ५ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ अष्टर्च सूक्तम् ॥

सं ब्रां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णु अपसस्परे अस्य ।

जुपेथां युज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पृथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णु) इन्द्र ऐश्वर्ययुक्त ! हे 'विष्णु' अर्थात् व्यापक रूप से विद्यमान, वा प्रवेश करने योग्य, वा विविध सुखों को देने वाले वा विविध मार्गों से जाने वाले ! आप दोनों सूर्य, विद्युत्वत् राजा और प्रजाजनो ! वा स्त्री पुरुषो ! मैं विद्वान् पुरुष (अस्य अपसः पारे) इस कर्म के पार (वां) आप दोनों को (कर्मणा) उत्तम कर्म सामर्थ्य से (सं हिनोमि) अच्छी प्रकार पहुंचाता हूँ और (इषा सं) अन्नादि सम्पत्ति, उत्तम अभिलाषा, प्रेरक आज्ञा, तथा सेनादि से भी (वां सं हि-नोमि) आप दोनों को बढ़ाता हूँ । आप दोनों (नः) हम सब लोगों को (अरिष्टः) हिंसादि उपद्रवों से रहित (पृथिभिः) मार्गों और गमन शील साधनों से (अस्य अपसः पारे पारयन्ता) इस महान् कर्म के पार पहुंचाते हुए (यज्ञं) हमारे इस सत्संग, को (जुषेथाम्) प्रेम

से स्वीकार करो और (नः द्रविणं च धत्तम्) हमारे धनादि को भी धारण करो, एवं हमें धनादि प्रदान करो ।

या विश्वासां जनितारा मत्तीनामिन्द्राविष्णुं कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अङ्कैः २

भा०—हे (इन्द्राविष्णु) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य से युक्त, राजा और प्रजावत् सूर्य विद्युत्वत् वर्तमान स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सोमधाना) अन्न, ऐश्वर्य को धारण करने वाले (कलशा) दो कलसों के समान अक्षयनिधि वा बलर्वार्य को धारण करने वाले होकर भी (विश्वासा) समस्त (मतीनां) उत्तम मनन योग्य दुदियों, ज्ञान की वाणियों को (जनितारा) प्रकट करने वाले होओ । (अङ्कैः) अर्चना, स्तुति वा आदर सत्कार करने योग्य वेदमन्त्रों और सूर्यवत् तेजस्ती, विद्वान् पुरुषों से (गीयमानासः) गाये गये (स्तोमासः) स्तुति वचन, और वेद के सूक्त, तथा (शस्यमानाः) उपदेश की गई (गिरः) वाणियां (वां प्र अवन्तु) आप दोनों की अच्छी प्रकार प्राप्त हों ।

इन्द्राविष्णु मदपती मदानामा सोमं यातुं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्चन्त्वकुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥३॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णु) ऐश्वर्यवन् शब्दहन्तः और व्यापक सामर्थ्यवन् ! सभा, सभापते, सेना, सेनापते ! वा राजन् ! प्रभो ! आप दोनों (दविणः दधान ।) नाना धनों को धारण करते हुए (सोमं आयातम्) ऐश्वर्य वा सोम्य स्वभाव प्रजाजन को पुत्र वा शिष्यवत् प्राप्त होओ, आप दोनों (मदानां मदपती) सब प्रकार के सुखों को प्राप्त कर उनको पालन करने वाले होओ । (मतीनां) मननशील विद्वान् पुरुषों के (शस्यमानासः) उपदेश किये गये (स्तोमासः) स्तुतियोग्य उपदेश, (उक्थैः) उत्तम वचनों, वा प्रशंसनीय (अक्तुभिः) चमका देने वाले

गुणों से सब दिनों (वां सं सं अञ्जन्तु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्रकाशित, सुभूषित करें ।

आ वामश्वासो अभिमातुषाहृ इन्द्राविष्णु सधुमादो वहन्तु ।

जुपेथ्यां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णु) ऐश्वर्यवन् ! राजन्, हे विष्णो ! प्रजा में व्यापक संघशक्ति के स्वामिन् ! (ताम्) आप दोनों को (अभिमात्-सहः) अभिमानी शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ, (अश्वासः) घुड़सवार चीर पुरुष (सधुमादः) एक साथ प्रसन्न होकर (वहन्तु) धारण करें । आप दोनों (मतीनां) मननशील विद्वानों के (विश्वा) समस्त (हवना) ग्रहण करने योग्य वचनों और पदार्थों का (जुपेथाम्) प्रेम से सेवन करो और (मे) मेरे तथा उन विद्वानों के (ब्रह्माणि) वेदोक्त मन्त्रों और (गिरः) वाणियों को (उप शृणुतम्) शिष्यवत् ध्यानपूर्वक अवण करो ।

इन्द्राविष्णु तत्पन्नयार्य वां सोमस्य मदे उरु चक्रमाथे ।

अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णु) ऐश्वर्यवन् ! हे व्यापक सामर्थ्यवन् राजन्, विद्वन् ! (वां) आप दोनों का (तत्) वह (पनयार्य) अति प्रशंसनीय कार्य है कि आप दोनों (सोमस्य मदे) अन्न के समान ही ऐश्वर्य से युक्त राष्ट्र के द्वारा तृप्ति और हर्षलाभ करने पर, (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल अन्तरिक्ष को सूर्य वायु के समान स्वभूमियों के बीच के प्रदेश में भी (उरु चक्रमाथे) बहुत वेग से जाते हो, और पराक्रम करते हो, उसको (वरीयः अकृणुतम्) विस्तृत, और अति उत्तम बनाओ और (नः) हम प्रजाओं को (जीवसे) दीर्घ और सुख युक्त जीवन के लिये (रजांसि अकृणुतम् अप्रथतम्) नाना ऐश्वर्यों की उत्पत्ति और वृद्धि करो ।

इन्द्राविष्णु हृविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।

घृतासुती द्रविणं धत्तमुस्मे समुद्रः स्थः कुलशः सोमधानः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णु) ऐश्वर्ययुक्त और व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुषो ! आप दोनों (हविषा) 'हवि' अर्थात् प्रजाजन से ग्रहण करने थोग्य कर, और अन्न से (वावृधाना) बढ़ते हुए और अन्यों को बढ़ाते हुए (रात-हव्या) उत्तम अन्नों को सूर्य वा मेघवत् प्रदान करते हुए, (नमसा) विनय और शक्ति से (अग्राद्वाना) सबसे प्रमुख होकर भोग्य सम्पत्ति को सब में न्यायपूर्वक विभाग करते हुए, (धृतासुती) सूर्य मेघवत् जल के समान तेज और अन्न आदि को उत्पन्न करते हुए, (अस्मे द्रविणं धत्तम्) हमें ऐश्वर्य प्रदान करो । आप दोनों तो (सोम-धानः) ऐश्वर्य या खजाने को अपने में रखने वाले (कलशः समुद्रः) सुद्रा से अंकित बन्द हुए कलशों के समान पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त एवं हर्षयुक्त, समुद्रवत् रत्नादि के आकर (स्थः) होओ ।

इन्द्राविष्णु पिवतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्या जटरै पूणेथाम् ।
आ वामन्धांसि मदिरागयं मन्त्रप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्रा विष्णु) शत्रुनाशक ! ऐश्वर्ययुक्त तथा विविध विद्याओं के प्रदान करने वाले बलवान् और ज्ञानवान् पुरुषो ! आप दोनों (अस्य मध्वः) उस मध्य, अर्थात् मधुर अन्न वा जल, (सोमस्य) ओषधिरसवत् उत्पन्न वनस्पति और ऐश्वर्य का भी (पिवतं) पान, भोजन एवं उपभोग करो । इस प्रकार ही (जटरं) अपने उदर को (पूणेथाम्) पूर्ण करो । (वाम्) आप दोनों को (मदिराणि अन्धांसि) हर्षजनक नाना प्रकार के जीवनप्रद अन्न (अग्मन्) प्राप्त हों, आप दोनों (मे हवं उप शृणुतम्) मेरे उत्तम उपदेश का श्रवण करो और (मे ब्रह्माणि उपशृणुतम्) मेरे उपदेश किये वेद मन्त्रों का उत्तम ज्ञान श्रवण करो ।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतुरश्चनैनोः ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सुहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥१३॥

भा०—हे विष्णो ! वायु के समान व्यापक बलशालिन् ! (इन्द्रः

च) विद्युतवत् शत्रु का नाश करने हारे आप दोनों (यत्) जब (अप सृथेथाम्) बढ़ने का उद्योग करते हो तब (सहस्र) अपरिमित ज्ञान, अपरिमित बल और अपरिमित ऐश्वर्य इनको (त्रेधा ऐरयेथां) तीनों प्रकारों से प्रेरित करो, तीनों को प्रकट करो । इस प्रकार (उभा जिभ्युः) आप दोनों ही विजय को प्राप्त करो, (न पराजयेथे) कभी पराजित भत होओ । (कतरः चन एनोः) इनमें से कोई एक भी (न पराजिग्ये) पराजय को पाप्त न होवे । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७०]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ यावापृथिवी देवते ॥ छन्दः—१, ५ निचृउज-
गती । २, ३, ६ जगती ॥ षड्वचं सुकम् ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वा पृथ्वी मधुदुधे सुपेशसा ।

यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कमिते श्रज्ञे भूरिरेतसा ॥१॥

भा०—भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा, माता पिता, वर वधू, वा द्वी पुरुषों का कर्त्तव्य । जिस प्रकार (यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (घृतवती) जल और तेज से युक्त हो तो (भुवनानाम् अभिश्रिया) सब उत्पन्न प्राणियों और लोकों को आश्रय देने वाले, (मधु-दुधे) जल और अज्ञ को प्रदान करनेवाले, (सु-पेशसा) उत्तम रूपयुक्त, (वरुणस्य धर्मणा विष्कमिते) सर्वश्रेष्ठ प्रभु, परमेश्वर या वायु के धारण सामर्थ्य से थमे हुए (भूरिरेतसा) बहुत जल, उत्पादक बल, तेज से युक्त होते हैं उसी प्रकार माता पिता और वर वधू दोनों ही (घृतवती) तेज, अज्ञ और हृदयों में प्रवाहित स्नेह से युक्त हों । वे दोनों (भुवनानाम् अभिश्रिया) उत्पन्न होने वाले प्रजाओं, पुत्रादि के सब प्रकार से आश्रय योग्य और (उर्वा) बहुत विशाल हृदय, (पृथ्वी) भूमिवत् आश्रयदाता (मधु-दुधे) मधुर वचन और अज्ञ को देने वाले (सु-पेशसा),

उत्तम रूपवान् हों । वे दोनों (वरुणस्य) वरण करने वाले, वा वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के (धर्मणा) धर्म से (वि-स्कभिते) विविध प्रकार से एक दूसरे का आश्रय होकर (अजरे) युवा युवति, जरा चस्था से रहित (भूरिरेतसा) बहुत वीर्यवान् होकर रहें ।

असंश्वन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।

राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतुं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (रोदसी) सूर्य और भूमि (असंश्वन्ती) पृथक् २ रह कर भी (भूरि-धारे) बहुत सी जलधाराओं से युक्त (पयस्वती) जल और अज्ञ से सम्पन्न, होकर (घृतं दुहाते) तेज और अज्ञ प्रदान करते हैं, वे (मनुर्हितं रेतः सिञ्चतम्) मनुष्यों के हितकारी तेज और जल प्रदान भी करते हैं उसी प्रकार माता पिता दोनों (असंश्वन्ती) पृथक् गोत्रों के होते हुए, (भूरि-धारे) बहुत सी उत्तम वाणियों और स्तन्यधाराओं से युक्त वा बहुत से पदार्थों को धारण करने वाले, (पयस्वती) अज्ञ और दूध से युक्त, (शुचिव्रते) शुद्ध पवित्र कर्म और व्रत का पालन करने वाले (सुकृते) उत्तम पुण्य कर्म वाले, होकर (घृतं दुहाते) प्रख्यवणशील स्नेह, दुग्ध और अज्ञ को प्रदान करें । वे दोनों (अस्य भुवनस्य) हस्तसंसार के बीच (राजन्ती, गुणों से प्रकाशित होकर (रोदसी) सूर्य भूमिवत् एक दूसरे की मर्यादा का पालन करते हुए (यत् मनुः हितम्) जो मननशील मनुष्य के उत्पन्न करने के लिये पूर्व आश्रम में धारण किया (रेतः) वीर्य हो, उसकी वे दोनों (अस्मे) हमारे प्रजावृद्धि के लिये (सिञ्चतम्) गृहाश्रमकाल में निषिक्त कर धारण करें और उत्तम सन्तान उत्पन्न करें ।

यो वामूजवे क्रमशाय रोदसी मतोऽदाशं धिषणे स साधति ।

प्र प्रजाभिर्जयते धर्मणुस्परि युवोः सिन्का विषुरुपाणि सब्रता ३

भा०—हे (विषणु) एक दूसरे को धारण करने वाले, बुद्धिमान्, (रोदसी) सूर्य भूमि के समान तंजस्वी और दृढ़ स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों में से (यः मत्तः) जो मनुष्य (ऋजवे क्रमणाय) धर्म मार्ग पर चलने के लिये (ददाश) अपने को समर्पित करता है (सः साधति) वही वस्तुतः सन्मार्ग पर जाता और वही उद्देश्य साधता है । वही (युवोः) आप दोनों के बीच (धर्मणः परि) धर्मानुसार (प्रजाभिः प्र जायते) उत्तम प्रजा और सन्तानों द्वारा उत्पन्न होता है । (युवोः) आप दोनों के (सिक्ता) बायों से उत्पन्नसन्तान (विषु-रूपाणि) नाना प्रकार के (सबता) समान शुभचारण युक्त उत्पन्न होते हैं ।

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृच्छा घृतावृधा ।

उर्वीं पृथ्वी होतृकूर्ये पुरोहिते ते इद्विग्रा ईळते सुमनमिष्ठये ॥४॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि जिस प्रकार (घृतेन अभीवृते) जल और प्रकाश से युक्त उनसे शोभा धारण करते, उनकी ही बृद्धि करते, उसी प्रकार स्त्री पुरुष (द्यावापृथिवी) एक दूसरे की कामना करने वाले, एक दूसरे को चाहने वाले और एक दूसरे का आश्रय होकर धारण करने वाले, (घृतेन अभीवृते) स्नेह से सबके समक्ष एक दूसरे द्वारा वरण किये जावें । वे दोनों (घृत-श्रिया) जल से शोभित मेघविद्युत के जमान, तेज से शोभित सूर्य विद्युत के तुल्य, स्नेह और ज्ञान से शोभा युक्त हों, वे दोनों (घृत-पृच्छा) स्नेहपूर्वक एक दूसरे से सम्बद्ध हों, (घृता-वृधा) स्नेह से स्वयं बढ़ने और एक दूसरे को बढ़ाने वाले हों, दोनों हो वे (उर्वीं) बड़े आदरणीय हों (पृथ्वी), विस्तृत भूमि के समान परस्पर आश्रय रूप (होतृकूर्ये) दोनों ही ज्ञानादि के देने वाले विद्वानों का यज्ञों में वरण करने वाले वा, एक दूसरे को आप ही देने और स्वीकार करने वाले, दाता प्रतिगृहीता रूप से वरण करने वाले, (पुरोहिते) दोनों एक दूसरे के कायों के ऊपर विद्वान् पुरोहित के

समान साक्षी, एवं हित को सदा अपने आगे रखने वाले, वा गृहस्थ में प्रविष्ट होने के पूर्व सबके समक्ष परस्पर प्रेम ग्रन्थि से बद्ध हों। (विप्राः) विद्वान् पुरुष (इष्टये) इष्ट एवं परस्पर की सत्संगति लाभ के लिए, (ते इत्) उन दोनों को ही (सुम्नम् ईडते) सुखपूर्वक चाहा करते हैं। मधुं नो यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुधे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्विविणं च देवता महि श्रवो वाजसुस्मे सुवीर्यम् ॥५॥

भा०—(यावापृथिवी) सूर्य और भूमि दोनों जिस प्रकार (मधु-मिमिक्षतः) अन्न और जल सब पर वर्षते हैं उसी प्रकार स्त्री-पुरुष, वर-वधु दोनों माता पिता होकर (नः) हमें (मधु मिमिक्षताम्) अन्न प्रचुर मात्रा में दें। वे दोनों (मधु-श्रुता) मधुर पदार्थों के देने वाले, (मधु-दुधे) मधुर पदार्थों को दोहन करने वाले, (मधु-ब्रते) मधुर फलों-त्पादक कर्म करने वाले, हों। वे दोनों (अस्मे) हमें (महि) बड़ा (सु-वीर्यम्) उत्तम बलप्रद (वाजं श्रवः) बल, अन्न और ज्ञान और (द्रविणं यज्ञम् च दधाने) धनैश्वर्य और सत्संग को धारण करने वाले होकर (मधु मिमिक्षताम्) मधुर अन्न प्रदान करें।

ऊर्ज्जं नो यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदं-संसा । सुंरुणे रोदसी विश्वशम्भुवा सुर्विं वाजं रुयिसुस्मे समिन्वताम् ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—(यौः च पृथिवी च) सूर्य और पृथिवी जिस प्रकार (वः) हमें (ऊर्जं) अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार (विश्व-विदा) सब प्रकार के ज्ञानों को जानने और सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाले (सुदं-संसा) उत्तम कर्म करने वाले, सदाचारी, (पिता माता) पिता और माता (नः ऊर्जं पिन्वताम्) हमें उत्तम बलकारक अन्न प्रदान करें। वे दोनों (विश्वशम्भुवा) समस्त जनों को शान्ति देने वाले, (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् (सर्विं) उत्तम दान योग्य (वा) ऐश्वर्य को (सं-

रराणे) अच्छी प्रकार देते हुएं, (अस्मे) हमें (रयि सम् इन्वताम्) बल,
वीर्य और धन प्रदान करें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७१]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २, ३ निचृ-
जगती । ४ त्रिष्ठुप् । ५, ६ निचृत्रिष्ठुप् । षड्चं सूक्तम् ॥

उद्य प्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्तु सवनाय सुक्रतुः ।
घृतनं पाणी अभि प्रुष्णुते मुखो युवा सुदृशो रजसो विधर्मणि ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (देवः सविता) प्रकाशमान सूर्य हिरण्यया
बाहू) सबके हित और रमणीय 'बाहू' अर्थात् अन्धकार को वांधने वाले
किरणों को (इत् अयंस्तु) ऊपर थामता है और (सु-दक्षः) खूब दाह-
कारी होकर (विधर्मणि) अन्तरिक्ष में विद्यमान (रजसः अभि घृतेन
प्रुष्णुते) समस्त भुवनों को तेज से संतप्त करता वा जल से सेचनभी
करता है उसी प्रकार (स्यः देवः) वह दानशील व्यवहारज्ञ, युद्धनिपुण
राजा (सविता) शासक, (सुक्रतुः) उत्तम कर्म और बुद्धि से
सम्पन्न होकर (सवनाय) ऐश्वर्य की वृद्धि और शासन कार्य के सम्पादन
के लिये (हिरण्यया बाहू) हित और सबको अच्छे लगाने वाले, सुवर्ण से
अलंकृत बाहुओं को तथा हिरण्य अर्थात् लोहे के बने, वा कान्तिमान् तेजस्वी
शास्त्राद्वारा से युक्त, बाहुवत् शत्रु के पीड़क बलवान् सैन्यों को भी (उत्
अयंस्तु) उत्तम रीति से उठाता, उनको नियन्त्रण में रखने में समर्थ
होता है, वही (मखः) यज्ञ के समान पूज्य, उपकारक (युवा) बल-
वान्, (सु-दक्षः) उत्तम कार्यकुशल, होकर (विधर्मणि) विविध प्रजाओं
के धारण करने के कार्य में (रजसः अभि) लोक समूह के प्रति (घृतेन)
तेज से (पाणी) अपने हाथों को (प्रुष्णुते) प्रतप्त करता है, जिनसे
वह दुष्टों का दमन कर प्रजा का शासन करने में समर्थ हो । (प्रुष्णुते)
प्रुष प्रुष दाहे । भवा० ॥

देवस्य वृयं सवितुः सर्वीमनि श्रेष्ठे स्याम् वसुनश्च दावने ।

यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसुवे चासि भूमनः २

भा०—हे प्रभो ! (यः) जो तू (विश्वस्य) समस्त (द्विपदः) दोपाये मनुष्यों और (यः चतुष्पदः) जो चौपायों तथा (भूमनः) बहुत प्रकार के भी (निवेशने) बसने और (प्रसुवे) पैदा होने, समृद्ध होने और शासन में (च) भी समर्थ है उस तुक्ष (सवितुः) सर्वोत्पादक, सर्वशासक (देवस्य) सर्वप्रद, तेजस्वी प्रभु के (बलिष्ठे) अति प्रशंसनीय, (सर्वीमनि) शासन और (वसुनः) दावने) ऐश्वर्य के दान पर हम (स्याम) सुखपूर्वक रहें ।

अद्वधेभिः सवितः पायुभिष्वं शिवेभिरुद्य परि पाहि नो गयम् ।

हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यस्ते रक्षा माकिर्णो अघशंस ईशता ॥३॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक, सत्कर्मों और शुभमार्गों में चलाने हरे प्रभो ! स्वामिन् ! (अद्वधेभिः) कभी नाश न होने वाले रक्षासाधनों से और (शिवेभिः) कल्याणकारी, सुखजनक उपायों से (अद्य) आज (नः गयम्) हमारे गृह और प्राणमय जीवन को (त्वं) तू (परि पाहि) सब प्रकार से पालन कर । तू (हिरण्यजिह्वः) सर्व हितकारी और सब को भली लगाने वाली ओर सुवर्णवत् कान्तियुक्त, सत्यप्रकाशक वाणी को बोलने वाला (नव्यसे) नये से नये सर्वश्रेष्ठ, अति रमणीय, (सुविताय) सुखपूर्वक गमनयोग्य-सदाचार पालन तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (नः रक्ष) हमारी रक्षा कर और (नः) हम पर (अघ-शंसः) पापी, दुष्ट, पापमार्ग का उपदेश करने वाला पुरुष (माकिः ईशत) कभी प्रभुता न करे ।

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।

अयोहनुर्यज्ञतो मन्द्रजिह्व आ दाशुवे सुवति भूरि वामम् ॥४॥

भा०—(सविता देवः प्रतिदोषम् उत् अस्थात्) जिस प्रकार प्रकाशमानं सूर्यं प्रतिरात्रि की समाप्ति पर उदय होता है, उसी प्रकार (स्यः देवः) वह तेजस्वी दानशील, (सविता) उत्तम शासक, (दमूनाः) मन इन्द्रियों पर दमन करने वाला, (हिरण्य-पाणिः) सुवर्णादि धन को अपने हाथ में, अपने वंश में रखने वाला होकर (प्रति-दोषम्) प्रति दिन, वा प्रत्येक दोष वा दुष्टों के प्रत्येक अपराध पर (अस्थात्) उठ खड़ा हो, वह (अयोहनुः) लोहे के बने अखों शास्त्रों से शत्रु का हनन करने वाला सेना का स्वामी, (यजतः) पूज्य एवं सत्संगयोग्य वृत्तिदाता, (मन्त्र-जिह्वः) सबको प्रसन्न करने वाली वाणी को बोलने वाला होकर (दाशुणे) आत्मसमर्पक भूत्य वा करप्रद प्रजाजन के उपकार के लिये (भूरि-वामम् आसुवति) बहुत सा उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करे ।

उदू अर्याँ उपवक्त्रेव वाहू हिरण्यां सविता सुप्रतीका ।

दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पुत्रुत्कच्छिदभ्वम् ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (सविता सुप्रतीका उत् अयान् पतयत् अभ्वम् अरीरमत् दिवः पृथिव्या रोहांसि अरुहत्) सूर्यं सुन्दर प्रतीति-कर तेजों को लेकर उदय होता, आता हुआ महान् जगत् को प्रसन्न करता, भूमि और आकाश के उड़त भागों पर चढ़ता है, उसी प्रकार जो (सविता) शासक, राजा, (उपवक्ता इव) उपदेश पुरुष के समान (हिरण्या) हित, रमणीय (सुप्रतीका) उत्तम मार्ग को बतलाने वाले (वाहू) शत्रुओं के नाशक वाहुओं को (उत् अयान् उ) सदा उद्यत रखें, वह (दिवः) तेज के (रोहांसि) उद्यत पदों को और (पृथिव्याः रोहांसि) पृथिवी के उत्तम भागों, पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्यों को भी (अरुहत्) प्राप्त करे, (अभ्वम्) महान् राष्ट्र को भी (कृत् चित्) कभी (पतयत्) प्राप्त करे और व (अरीरमत्) सुख से स्वयं रमण कर राष्ट्र का पति, स्वामी पालक हो । (२) सर्वोत्पादक प्रभु सुखजनक उत्तम-

बाहुऐं हमारे प्रति उपदेश्यवत् उठावे, कर्भा (अभ्वं पतयत्) हमारे असामर्थ्य को दूर कर हमें सुखी करे ।

वामसुद्य सवित्वामसुश्वो द्विवेदिवे वामस्समभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेत्या धिया वामभाजः स्याम ॥१५॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक ! सर्वप्रेरक प्रभो ! (अद्य) आज तू (असम्भ्यं) हमारे लिये (वामम्) उत्तम सुख (सावीः) प्रदान कर । (श्वः उ) और कल भी हमारे लिये (वामम्) उत्तम सुखभ्यं (सावीः) प्रदान कर । और तू (द्विवेदिवे असम्भ्यम् वामम् सावीः) प्रति दिन हमें उत्तम २ सुख ऐश्वर्य प्रदान किया कर । हे (देव) दानशील ! दिव्य पुरुष ! (वर्यं) हम लोग (अद्य धिया) इस प्रकार की उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (वामस्य) प्रशंसनीय और (भूरेत्या) बहुत से (क्षयस्य) गृह और ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा के (वामभाजः स्याम) सुखपूर्वक उपभोग करने वाले हों । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[७२]

भरदाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रासोमौ देवते ॥ चन्दः—१ निचृतिर्णिष्ठप् ।
२, ४, ५ विराटीत्रिष्ठप् । ३ निचृतिर्णिष्ठप् ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

इन्द्रासोमा महि तद्रां माहित्वं युवं महानि प्रथमानि चकथुः ।
युवं सूर्यै विविदधुर्युवं स्वर्विंश्वा तमास्यहतं चिदश्च ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) सूर्य और चन्द्र के समान ऐश्वर्य और वीर्य से युक्त और प्रजाओं का उत्पन्न करने में समर्थ उत्तम स्त्री पुरुषो ! वा उत्तम आचार्य वा शिष्य जनो ! (वां तत् महित्वं) तुम दोनों का वह बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है कि (युवं) तुम दोनों (महानि) पूज्य, आदर योग्य (प्रथमानि) श्रेष्ठ २ कार्य (चकथुः) किया करो । (युवं) तुम दोनों (सूर्यै) सर्व प्रकाशक सूर्य को, सूर्यवत् तेजस्त्री पुरुष को तथा

सर्वोत्पादक सर्वं प्रकाशक प्रभु परमेश्वर को, (विविद्युः) अपना आदर्श रूप से जानो, और उसीको सदा प्राप्त करो । (युवं) तुम दोनों सदा सुखप्रद, प्रकाशस्वरूप प्रभु को प्राप्त करो । (विश्वा तमांसि अहतम्) सब प्रकार के अविद्याजनित मोह, शोकादि अन्धकारों को नाश करो और (निदः च अहतम्) निन्दकों और निन्दनीय व्यवहारों को भी नाश करो ।

इन्द्रासोमा वासयथ उषासु मुत्सुर्यै नयथो ज्योतिपा सुह ।

उप द्यां स्कम्भयुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त एवं प्रजा को शासन करने वाले जनो ! तेजस्वी और वीर्यवान् पुरुषो ! आप लोग (उपासं वासयथः) उत्तम कामना युक्त प्रजा को सुखपूर्वक बसाओ, एवं उत्तम कामना युक्त, प्रभात वेलावत् कमनीय रूपयुक्त युवा युवति को गृहाश्रम में बसाने का उद्योग करो । (सूर्यं) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (ज्योतिपा सह) उसके तेज सहित (उत् नयथः) उत्तम पद प्राप्त कराओ । (स्कम्भनेन) आश्रय देने वाले स्तम्भ से जिस प्रकार गृह की छत को थामा जाता है उसी प्रकार (स्कम्भनेन) आश्रयप्रद सामर्थ्य से (द्यां) परस्पर की कामना करने वाले दूसरे अंग को (स्कम्भयुः) अपने ऊपर थामो । (पृथिवीं मातरम्) पृथिवी के समान माता को (वि अप्रथतम्) विशेष रूप से विस्थात, विस्तृत करो । अर्थात् राष्ट्र के दृद्धि के साथ २ मातृ जाति का अधिक मान करो । (२) आचार्य और शिष्य दोनों (उपासम्) विद्येच्छुक ब्रह्मचारी को अन्तेवासी रूप में बसावें, सूर्यवत् कान्तियुक्त करें, ज्ञानमय वेद का धारण करें और विस्तृत वेदमयी माता का विस्तार करें ।

इन्द्रासोमावहिमृपः परिष्ठां हृथो वृत्रमनु द्यां द्यौरममन्य ।

प्राणांस्यैरयतं नदीनामा संमुद्राणे पप्रथुः पुरुषाणि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रा सोमौ) आचार्य और शिष्य ! प्रभु, प्रजावत् विद्यमान स्त्री पुरुषो ! वा विद्युत् पवन के समान परस्पर सहायक जनो ! (अपः परि-स्थाम् अहिम् वृत्रम् हथः) जिस प्रकार विद्युत् और वायु जलों को धारण करने वाले व्यापक मेघ को आधात करते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (अपः परि-स्थाम्) उत्तम कर्मों वा ज्ञानों के ऊपर स्थित (वृत्रम् अहिम्) आवरणकारी, आच्छादक अज्ञान को (हथः) विनाश करो । (वां) आप दोनों में से (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (अनु अमन्यत) उत्तम कार्य की अनुमति दिया करे । आप दोनों (नदीनाम्) नदियों के (अर्णासि) जलों को विद्युत् और पवन के समान, (नदीनाम्) समृद्धि युक्त प्रजाजनों के (अर्णासि) नाना ऐश्वर्यों वा ज्ञानों को (प्र ऐश्वर्यतम्) अच्छी प्रकार प्रदान करो । (पुरुणि) बहुत से (समुद्राणि) समुद्रवत् विस्तृत कामना योग्य उत्तम कर्मों, विशाल अन्तःकरणों वा मनोरथों को (आ प्रथुः) विस्तृत करो ।

इन्द्रासोमा पुकम्‌मास्वन्तर्निं गवामिद्धथुर्वक्षणांसु ।
जृग्मथुरन्तपिनद्धमासु रुशचित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र-सोमा) सूर्य चन्द्रवत् वा, वायु विद्युतवत् युगल जनो ! जिस प्रकार (आमासु अन्तः पक्म् निदधथुः) सूर्य वायु वा सूर्य चन्द्र कच्ची ओपधि में परिपक्व रस प्रदान करते हैं और जिस प्रकार (गवां वक्षणासु जलं नि दधथुः) भूमियों के बीच बहती नदियों में वायु और मेघ जल प्रदान करते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (आमासु) सह धर्मचारिणी दाराओं में (पक्म् वीर्यं नि दधथुः) परिपक्व वीर्य का आधान करो और (गवास्) गमन योग्य धर्मदाराओं के (वक्षणासु अन्तः) कोखों में ही विद्यमान गर्भ, शिशु आदि को (नि दधथुः) पालन करो । (आसु) उनके बीच में सब उत्तम व्यवहार (अनपि-नद्धम्) बन्धन रहित, स्पष्ट रूप से (जग्मथुः) ग्रहण करो । और (चित्रासु

जगतीपु अन्तः) अहुत सृष्टियों के बीच (रूपत्) सुरूप, तेजोयुक्त पदार्थ को (जगृभथुः) ग्रहण कराओ ।

इन्द्रासोमा युवसुड्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।

युवं शुष्मं नर्यं चर्पणिभ्युः सं विव्यथुः पृतनापाहमुग्रा ॥५॥१६॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त सूर्यवत् तेजस्विन् ! एवं सोम्य गुणयुक्त चन्द्रवत् सुन्दर युगल स्त्री पुरुष जनो ! (युवम्) आप दोनों (तरुत्रम्) पार उतारने वाले (अपत्य-साचं) पुत्रादि सन्तान युक्त, (श्रुत्यं) ग्रवण करने योग्य धन को (रराथे) प्रदान करो । आप दोनों (उग्रा) बलवान् होकर (चर्पणिभ्युः) मनुष्यों के हितार्थं (नर्यं) नायकोचित् (शृतनापाहम्) सैन्यों, वा संग्रामों को भी जीतने वाले (शुष्मं) बल वा बलवान् पुत्र को (सं विव्यथुः) सन्तान रूप से उत्पन्न करो । इति पोडशो वर्णः ॥

[७३]

भरद्वाजो वाईस्पत्य ऋषिः ॥ वृहस्पतिर्देवता ॥ अन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् ॥ युवं सूक्तम् ॥

यो अद्विभित्यरथमुजा ऋतावा वृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विवर्हृज्मा प्राघर्मसत्पिता नु आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१॥

भा०—(य:) जो (अद्विभित्) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान, (अद्विभित्) शशयुक्त सैन्यों को भी भेदने में समर्थं (प्रथमजाः) प्रथम मुख्य रूप से प्रकट होने वाला, (ऋतावा) न्याय, सत्यमार्ग, और ऐश्वर्य, तेज को सेवन करने वाला, (हविष्मान्) अज्ञों का स्वामी, (अङ्गिरसः) जलते अङ्गों के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुषों का स्वामी है, (वृहस्पतिः) वही 'वृहस्पति' अर्थात् बड़े भारी राष्ट्र का पालक, स्वामी होने योग्य है । वह (द्विवर्हृज्मा) शाश्वत बल और बुद्धिबल दोनों

से भूमि या राष्ट्र की वृद्धि करने वाला (प्राघर्मसत्) उत्तम तेज को धारण करने वाला (नः पिता) हमारा वास्तविक पिता के समान पालक होकर (रोदसी) सूर्य पृथिवी, राजा प्रजा वर्ग दोनों को (आ रोरवीति) सब प्रकार से आज्ञा करे ।

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं वृहस्पतिर्देवहूतौ चुकारे ।

धन्नवृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥२॥

भा०—(यः) जो (वृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का स्वामी राजा और वेदवाणी का स्वामी विद्वान्, (देवहूतौ) विद्वानों को एकत्र निमन्त्रित करने योग्य यज्ञ और विजयच्छु पुरुषों की आहुति योग्य संग्राम के अवसर में (ईवते जनाय) शरणागत मनुष्य की रक्षा के लिए (उ) भी (लोकं) आश्रय (चकार) करता है और जो (वृत्राणि) विज्ञकारी शत्रुओं को (धन्) विनाश करता हुआ, (अमित्रान्) स्नेह न करने वाले (शत्रून्) शत्रुओं को (पृत्सु) संग्रामों में (साहन्) पराजय करता और (जयन्) जीतता (पुरः वि दर्दरीति) शत्रु के गढ़ों को विविध प्रकार से तोड़ता फोड़ता है ।

वृहस्पतिः समजयुद्धसूनि महो ब्रजान् गोमतो देव एषः ।

अपः सिषान्तस्व उप्रतीतो वृहस्पतिर्दन्त्यमित्रमुकैः ॥३॥१७॥

भा०—(वृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का स्वामी, (देवः) तेजस्वी दान-शील राजा, (महः वसूनि) बहुत से ऐश्वर्यों और बसने योग्य जनपदों को (सम् अजयत्) समवाय बना कर विजय करे । और (एषः) वह (महः), बड़े २ (गोमतः) भूमियों से युक्त (ब्रजान्) मार्गों को भी मेघों को सूर्यवत् विजय करे । वह (वृहस्पतिः) बड़े ऐश्वर्य और बल सैन्यादि का पालक होकर (अप्रतीतः) अन्यों से मुकाबला न किया जाकर, (अपः सिषासन्) मेघवत् जलों की वर्षा करता हुआ और

(स्वः) राष्ट्र में सुख सम्पदादुं विभक्त करता हुआ, (अमित्रम्) शत्रु जन को (अकैः) शास्त्रों द्वारा (हनित) दण्ड दे । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७४]

भरदाजो वाहस्पत्य ऋषिः ॥ सोमारुद्रौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४ त्रिष्टुप् ।
३ निचृत्तिष्टुप् ॥ चतुर्थचं सूक्तम् ॥

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं प्रवासिष्ठयोऽरमशनुवन्तु ।

दमैदमे सुप्त रत्ना दधाना शं नौ भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) सोमवत् शान्तिदायक चन्द्रवत् आह्लादक, और रुद्र अर्थात् रोगों को दूर करने वाले वैद्य के समान देश से दुष्टों को दूर भगाने वाले राजन् ! आप दोनों (असुर्यं धारयेथाम्) विद्युत् और मेघ के स्वरूप जल वा पवन के समान प्राणयुक्त बल को धारण कराओ । (वाम्) आप दोनों के (द्विष्टयः) दिये दान हमें (अरम् अशनुवन्तु) खूब प्राप्त हों । आप दोनों (दमे दमे) प्रत्येक घर में (सप्त रत्ना दधाना) सातों प्रकार के रत्नों को धारण कराते हुए (नः द्विपदे) हमारे दो पाये और चौपायों को (शं शं भूतम्) अति शान्तिदायक होओ ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गथमाविवेशं ।

आरे वाधेथां निर्मीतिं पराचैरुस्मे भुद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥२॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) सोम अर्थात् ओषधिवर्ग वा जल के समान शान्तिदायक और 'रुद्र' अर्थात् रोगहारक अग्नि के समान पीड़ा को दूर करने वाले वैद्य के तुल्य कीर्तिनाशक ! (या अमीवा) जो रोग दायक पीड़ा (नः गथम्) हमारे गृह और प्राणयुक्त देह में (आविवेश) प्रविष्ट हो (विषूची) विविध प्रकार के अन्धों से युक्त उस

को (वि-वृहतम्) सर्वथा उखाड़ फेंको और (निर्वर्तिं) अति कष्टदायी विपत्ति को (पराचैः बाधेथाम्) दूर से ही हरो और (अस्मै) हमें (भद्रा सौश्रवसानि सन्तु) सुखदायी श्रेष्ठ र अन्न समृद्धियें प्राप्त हों । सोमारुद्रा युवसेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् । अव स्यतं मुञ्चत्वा अस्ति तनूषु वद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) जल और अग्नितत्वों के तुल्य शान्तिदायक और रोगहारक विद्वान् पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (अस्मे तनूषु) हमारे शरीरों के निमित्त (एतानि) ये नाना प्रकार के (विश्वा) समस्त (भेषजानि) रोग दूर करने के औषधों को (धत्तम्) धारण करो । (नः तनूषु) हमारे शरीरों में (यत्) जो (कृतं) किया हुआ (एनः) पाप (वद्धं अस्ति) बंधा है उसको (अव स्यतम्) दूर करो और (अस्मत्) हमसे (अव मुञ्चत्वम्) छुड़ाओ ।

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नौ मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना ४।१८।

भा०—(सोमारुद्रौ) जल अग्निवृत् शान्तिदायक और पीड़ानाशक जन (तिग्म-आयुधौ) तीक्ष्ण प्रहारसाधनों से युक्त, (तिग्म-हेती) तीक्ष्ण शस्त्रों वाले, (सु-शेवौ) उत्तम सुखदायक पुरुष (नः सुमनस्यम्) हमें अच्छी प्रकार सुखी करें । वे दोनों (सु-मनस्यमाना) शुभ चिन्त वाले होते हुए (नः) हमें (वरुणस्य पाशात्) वरुण अर्थात् उदान के समान प्रबल रोग के पाश से (नः मुञ्चत्वम्) हमें छुड़ावें और (नः गोपायतम्) हमारी रक्षा करें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७५]

पायुर्मारुद्राज ऋषिः ॥ देवताः—१ वर्म । १ धनुः । ३ ज्या । ४ आर्णी । ५ शुष्ठिः । ६ सारथिः । ६ रशमयः । ७ अश्वाः । ८ रथः । रथगोपाः । १०

लिङ्गोक्ताः । ११, १२, १५, १६ इष्वः । १३ प्रतोदः । १४ हस्तधनः । १७-
१८ लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामारिषः (१७ युद्धभूमिर्वैक्षणस्पतिरादितिश्च । १९ कव-
चसोमवरुणाः । १९ देवाः । ब्रह्म च) ॥ छन्दः—१, ३, निचृत्विष्टुप् ॥ २,
४, ५, ७, ८, ९, ११, १४, १८ विष्टुप् । ६ जगती । १० विराङ् जगती ।
१२, १६ विराङ्नुष्टुप् । १५ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १३ स्वराङ्ग-
ध्यिक् । १७ पांक्तिः ॥ एकोनविंशत्यृच् सुक्रम् ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्गर्मी याति सुमदासुपस्थे ।

अनाविद्यया तुन्वा जय त्वं स त्वा वर्मीणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

भा०—(यत्) जो शूरवीर (वर्मी) कवच धारण करके (सम-
दाम् उपस्थे) संग्रामों में (याति) जाता है वह (जीमूतस्य इव)
मेघ के समान (प्रतीकं) प्रतीत होने लगता है । वह मेघ के
समान इयाम एवं शत्रु पर शक्तास्त्र की वर्षा करने में समर्थ होता है । हे
शूरवीर पुरुष तू (अनाविद्यया तन्वा) विना धायल हुए शरीर से (जय)
विजय कर । (वर्मणः सः महिमा) कवच का यही बड़ा गुण है कि शरीर
पर एक भी धाव न लग सके । वही कवच का विशेष महत्व (त्वा पिपर्तु)
तेरा पालन करे, तुझे संग्रामों में क्षत-विक्षत न होने दे । विशेष विवरण
देखो यजुर्वेद (अ० २९ । म० २८-५७)

धन्वन्ता गा धन्वन्ताञ्जि जयेम् धन्वन्ता तीव्राः सुमदौ जयेम ।

धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वन्ता सर्वीः प्रदिशो जयेम ॥२॥

भा०—जो (धनुः) धनुष् (शत्रोः) शत्रु के (अपकामं) मन
चाहे फल का नाश (कृणोति) करता है । ऐसे (धन्वन्ता) धनुष के बल
से हम लोग (गा: जयेम) गौओं और भूमियों का विजय करें । उसी
(धन्वन्ता आजिं जयेम) धनुष से हम संग्राम का विजय करें । उसी
(धन्वन्ता तीव्राः समदः जयेम) धनुष से हम ही वेग से आने वाली
हर्ष या मद से युक्त शत्रु सेनाओं और कठिन संग्रामों को भी जीतें ।

(धन्वना) धनुष के बल से हम (सर्वाः दिशः जयेम) समस्त दिशाओं का विजय करें । इस प्रकार दिग्-विजयी हों ।

बृद्ध्यन्तीवेदा गर्नीगन्ति कर्णे प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योपेव शिङ्के वितताधि धन्वक्ष्या हुयं समने पारयन्ती ॥३॥

भा०—(योषा-इव) जिस प्रकार स्त्री (प्रियं सखायं परि-सस्वजाना) प्रिय मित्र को आलिङ्गन करती हुई और (वश्यन्ती इव) कुछ कहना सा चाहती हुई मानो (कर्णम् आ गर्नीगन्ति) कान के समीप आती है उसी प्रकार (अधि धन्वन्) धनुष पर (वितता) लगी, तभी (ज्या) यह ढोरी भी प्रिय मित्रवत् सदा सहायक धनुर्दण्ड के साथ लगकर मानो वीर पुरुष के कान में कुछ कहना सा चाहती हुई विचकर कान तक पहुंचती है और (समने पारयन्ती) संग्राम में शत्रुसंकट से पार करती हुई (शिङ्के) मधुर रत्न करती है ।

ते आचरन्ती समनेव योषा स्रातेव पुत्रं विभृतासुपस्थे ।
अप शत्रूनिविध्यतां संविदाने आत्नीं हृमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥

भा०—(समना-इव योषा) समान मन, वा एक चित्त हुई स्त्री जिस प्रकार अपने पति को और (माता इव पुत्रं) माता जिस प्रकार अपने पुत्र को (आचरन्ती) अपना प्रेम व्यवहार करती हुई (संविदाने) परस्पर ऐकमत्य होकर (उपस्थे विभृताम्) अपने समीप, गोद में धारण करती है उसी प्रकार (ते) वे (हमे) ये दोनों (आत्नीं) धनुष की कोटियां भी (सं-विदाने) एक साथ ढोरी से मिल कर (अमित्रान्-विष्फुरन्ती) शत्रुओं का नाश करती हुई (शत्रून् अप विध्यताम्) शत्रुओं को मार भगावें । एक ही पुरुष की प्रियस्त्री और प्रियमाता दोनों सह-भति कर उसका प्रियाचरण करतीं उस को प्रेमालिंगन करती हैं उसी प्रकार शूरवीर के धनुष की कोटियों के तुल्य (आत्नीं) शत्रुनाशक दायें वायें की दो सेनाएं उसकी रक्षा करें, शत्रु का नाश करें ।

बृहीनां पिता ब्रहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावृगत्य।
इपुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्वो जयति प्रसूतः ५।१९

भा०—जिस प्रकार (बृहीनां पिता) एक पुरुष बहुत सी कन्याओं का पिता हो और (अस्य वहुः पुत्रः) उसके बहुत से पुत्र होवें, वे सब (समना अवगत्य चिश्चा कृणोति) एक स्थान पर मिलकर चीं चां करें ठीक उसी प्रकार (इपुधिः) वाणों को अपने भीतर धारण करने वाला तरकस (बृहीनां पिता) बहुत से वाणों का पालक होने से उनका पिता है और (अस्य) इसके भीतर से निकलने वाला वाणसंघ (वहुः पुत्रः) बहुत संख्या में पुत्र के तुल्य है । वह (समना अवगत्य) संग्राम में आकर (चिश्चा कृणोति) 'चींचाँ' ऐसी ध्वनि करते हैं । वह तरकस (पृष्ठे निनद्वः) वीर पुरुष के पीठ पीछे बंधकर भागते शत्रु के पीठ पर लगे सञ्चद्व वीर के समान (प्रसूतः) मानों वाणों को अपने में से पैदा सा करता हुआ (सर्वाः संकाः) समस्त संग्राम में स्थित, संघ बनाकर खड़ी (पृतनाः) नर सेनाओं को (जयति) विजय करता है । उसी प्रकार (इपुधिः) वाणों को धारण करने वाला वीर भी (नि-नद्वः) कवच बांधे शत्रु के पीछे लग कर वाणों को निरन्तर फेंकता हुआ शत्रु सेनाओं को विजय करता है । इत्येकोनविशो वर्गः ॥

रथे तिष्ठन्नयति ब्राजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
श्रभीशूनां महिमानं पनायत् मनः पश्चादनु यच्छन्ति रुशमयः ॥६॥

भा०—(सु-सारथिः) रथ का चलाने वाला उत्तम सारथि (रथे तिष्ठन्) रथ पर बैठा हुआ, (यत्र-यत्र कामयते) जहां जहां भी चाहता है वहां २ (ब्राजिनः) वेगवान् अश्वों को (पुरः नयति) अपने आगे आगे लेजाता है । (मनः) मन जिस प्रकार इन्द्रियों को अपने वश रखता है उसी प्रकार (रुशमयः) रासें भी घोड़ों को (पश्चात् अनु यच्छन्ति) पीछे से नियम में बांधे रहती हैं । हे विद्वानो ! आप

लोग (अभीशूनां महिमानं पनायतं) रासों के ही महान् सामर्थ्य का वर्णन करो कि सारथि यथेष्ट रथ चलाता और अश्वों को वश करता है । अध्यात्म में 'मन' रासें हैं ।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।

बुद्धिं तु सासधि विद्धि मनःप्रग्रहमेव च ॥

इन्द्रियाणि हथानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।

बुद्धीन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

आत्मा रथका स्वामी, शरीर रथ, बुद्धि कोचरान् मन रासें, इन्द्रिय धोड़े और विषय देश हैं । बुद्धि, इन्द्रिय, मन सब मिलकर 'भोक्ता' है ऐसा विद्वान् वर्णन करते हैं ।

तीव्रान्धोपान्कुरवते वृषपाण्योऽश्वा रथेभिः सुह वाजयन्तः ।

शत्रुकामन्तः प्रपदैरुमित्रान् क्षिणन्ति शत्रुरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥

भा०—(रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों के साथ वेग से जाते हुए (अश्वाः) अश्व (वृषपाण्यः) शक्ट में लगे बैलों के समान अधिक से अधिक भार वहन करने में समर्थ (अश्वाः) धोड़े और (रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों और रथ सवारों सहित युद्ध करने वाले (वृष-पाण्यः) बलवान् शशवर्षी धनुष को हाथ में लिये, वा बलवान् पुरुषों वा मेववत् वर्षी वीरों को अपने हाथ में लिये, उनको अपने वश किये (अश्वाः) बलवान् अश्व-सवार सेनानायक जन (तीव्रान् धोषान् कृष्णते) तीव्र धोष, गर्जना करते हैं । वे (प्रपदैः) आगे के कदमों से (अमित्रान् अव-क्रामन्तः) शत्रुओं को रोंदते हुए स्वयं (अनप-व्ययन्तः) दूर न जाते हुए भी स्थिर रह कर, या स्वयं अपना नाश न होने देते हुए (शत्रून् क्षिणन्ति) शत्रुओं का नाश करते हैं ।

रथवाहनं हृविरस्य नाम् यत्रायुधं निहितमस्य वर्मि ।

तत्रा रथसुप् शग्मं सदेम विश्वाहा वृयं सुमनुस्यमानाः ॥ ८ ॥

भा०—(यत्र) जिस में (अस्य) इस शूरवीर के (रथवाहनं) रथ को संचालित करने वाले यन्त्रादि उपकरण (हविः) अज्ञ और (नाम) शत्रुको नमाने वाले (आयुधं) अस्त्रादि और (अस्य) इस शूरवीर का (वर्म) कवच भी (निहितम्) रखे हों (तत्र) उस रथवत् राष्ट्र में हम (सुमनस्यमानाः) शुभ चित्त वाले होकर रहें और (विश्वाहा) सब दिनों (शम्म) सुखकारी (रथम्) रथ को (सदेम) प्राप्त हों, रथ पर सवारी करें।

**स्वादुपंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्चितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुवला अमृधाः सुतोवीरा उरवी व्रातसुहाः ॥ ९ ॥**

भा०—(स्वादु-संसदः) उत्तम सुखजनक अज्ञ ऐश्वर्यादि भोग करने के लिये न्यायासन आदि उत्तम पदों पर विराजने वाले, (वयः-धाः) दीर्घायु, ज्ञान व बल को धारण करने वाले (कृच्छ्रेश्चितः) संकटों में प्रजाओं द्वारा आश्रय लेने योग्य, (शक्तिवन्तः) शक्तिमान्, (गभीराः) गंभीर स्वभाव के, (चित्र-सेनः) अद्भुत सेनाओं के स्वामी (इषु-बलाः) धनुषवाण के बल, सैन्य से युक्त, (अमृधाः) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य, प्रजा की हिंसा न करने वाले, (सतः-वीराः) सत्त्व, बल से सम्पन्न, (व्रात-सहाः) शत्रु सैन्यदलों को पराजित करने वाले, (उरवः) बहुत, संख्या में अधिक (पितरः) हमारे पालक, पिता के तुल्य आरदणीय हों। वा जो हमारे पालक हों वे उक्त २ विशेषणों वाले हों।

**ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे न्तो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पृष्ठा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिन्तो अघशंस ईशत १०।२०**

भा०—ह (पितरः) पालन करने वाले, पिता माता के समान आदर करने योग्य (सोम्यासः) 'सोम' अर्थात् चन्द्रमा, सोम ओषधि के गुणों के योग्य, वा सोम अर्थात् पुत्र, वा शिव्यों के प्रति हितकारी (ब्राह्मणासः) ब्रह्म, वेद के चानने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (रक्ष)

हमारी रक्षा करो और (ऋत्-वृद्धः) सत्य, न्याय, ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए (ईशत्) हम पर शासन करो । (वावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों (नः) हमें (दुरितात् पातु) पाप, दुष्टाचरण से बचावें और (अघशंसः) पाप की शिक्षा देने वाला, चोर पुरुष (नः माकिः ईशत्) हम पर प्रभुत्व न करे । इति विशो वर्गः ॥

सुपुर्णे वस्ते मृगे अस्या दन्तो गोभिः सञ्जद्वा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्युमिष्वः शर्म यंसन् ॥१

भा०—इषवः देवताः । यह 'इपु' अर्थात् वाण (मृगः) सिंह के समान वेग से आकर्षण करने वाला, वा अति शुद्ध, चमचमाता हो । वह (सुपर्ण) उत्तम वेग से जाने योग्य पंखों को (वस्ते) धारण करता है । (अस्याः दन्तः) इस वाण का, काटने का साधन दांत के समान तीक्ष्ण फला हो वह (सं-नद्वा) खूब ढड़ता से बंधा हो, और (गोभिः प्र-सूता पतति) धनुष की डोरियों से प्रेरित होकर दूर जाता है । (यत्र) जिस संग्राम में (नरः सं द्रवन्ति च वि द्रवन्ति च) मनुष्य मिलकर वेग से दौड़ते और विविध दिशाओं में भागते हैं (तत्र) उस युद्ध काल में भी (अस्मभ्यम्) हमें वे (इषवः) वाण गण (शर्म यंसन्) शरण प्रदान करते हैं । भूमिपक्ष में—यह भूमिः (गोभिः सञ्जद्वा) गाँ आदि पशुओं, से अच्छी प्रकार ज्यास, वा सूर्य की किरणों से सुट्ट होकर भी (प्र-सूता) उत्तम २ अंगों को उत्पन्न करने हारी होकर (पतति) ऐश्वर्य-समृद्धि से युक्त होती है । (मृगः) सिंह के समान पराक्रमी, (दन्तः) दन्त के समान शत्रु का छेदन भेदन करने में समर्थ बलवान् पुरुष (अस्याः) इसके (सुपर्ण) सुख से पालने वाले वा इस को पूर्ण समृद्ध करने वाले शास्त्र-बल और वैश्य जन को (वस्ते) अपने नीचे बसाये, उसे अपनी सेवा में रखते । और (यत्र) जिस भूमि में लोग एकत्र होते वा विविध दिशाओं में जाते हैं उसी पृथिवी पर (इषवः)

वाण वा इच्छानुकूल प्राप्त काम्य पदार्थ में हमें (शर्म यंसन्) सुख प्रदान करें ।

ऋजीते परि वृद्धिः नोऽश्मा भवतु नस्तनुः ।

सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऋजीते) सरल, सूवे, सत्य न्याय मार्ग में चलने हारे विद्वन् ! सीधे जाने वाले वाण के समान तू (नः) हमें (परि-वृद्धि) रक्षा कर । (नः) हमारा शरीर (अश्मा) पत्थर या शिला के समान कठोर (भवतु) हो । (सोमः) विद्वान्, उत्तम शांस्ता (नः अधि) हमारे ऊपर रह कर (ब्रवीतु) यासन करे । (अदितिः) अखण्डशासन और यह अदीन प्रजा वा भूमिमाता (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख प्रदान करे ।

आ जड्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उपै जिघते ।

अश्वाजनि प्रचेत्सोऽश्वान्त्सुमत्सु चोदय ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्वाजनि) अश्वों को चलाने वाली, कक्षा के समान आज्ञादात्रि विदुषि ! राजसमे ! तू (अश्वान्) अश्वों के समान (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानवान्, विद्वान् पुरुषों को (समत्सु) संग्रामों और उत्तम आनन्द युक्त अवसरों पर (चोदय) सन्मार्ग में चला । जो विद्वान् लोग (एषां) इन दुष्ट शत्रु लोगों के (सानु) अवयवों पर (आ जड्घन्ति) प्रहार करते और (जघनात्) नीच जनों, मारने वाले वा मारने योग्य शत्रु जनों को (उपै जिघते) मारने में समर्थ होते हैं उनको (समत्सु चोदय) संग्रामों में ठीक प्रकार से चला । जिस प्रकार कक्षा से अश्व को चलाते हैं उसी प्रकार उत्तम जनों को सन्मार्ग से चलाने वाली विदुषी स्त्री ऐसे वीरों को तैयार करे जो शत्रुओं के अंगों पर और अन्य हिंसक जनों को भी मारने में समर्थ हो ।

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिवाधमानः ।

हस्तधनो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमांसु परि पातु विश्वतः ॥४॥

भा०—(अहिः इव भोगैः बाहुम् परि एति) सांप जिस प्रकार अपने अंगों से बाहु के इर्द गिर्द लिपट जाता है उसी प्रकार (हस्त-धनः) हाथ में लगा दस्तबन्द भी (भोगैः) पालक अवयवों से (बाहुं परि एति) बाहु के इर्द गिर्द रहता है और (ज्यायाः) ढोरी के (हेतिं) आधात को (परिबाधमानः) बचाता है । उसी प्रकार (पुमान्) चीर पुरुष (हस्त-धनः) अपने सबे हाथ से शत्रुओं को मारने में कुशल वीर (अहिः इव) मेघ के समान (भोगैः) प्रजा को पालन करने में समर्थ शशादि उपायों सहित (बाहुम् परि एति) शत्रु को बाधने वाले सैन्य को प्राप्त होता और (ज्यायाः) प्राणों का नाश करने वाली शत्रु की सेना के (हेतिं) शशबल को (परिबाधमानः) दूर से ही नाश करता हुआ (विश्वा वयुनानि) सब प्रकार के ज्ञानों को जानता हुआ (विश्वतः) सब प्रकार से (पुमांसं परि पातु) सहयोगी पुरुष की रक्षा करे ।

आलाक्षा या रुदीशीर्यथो यस्य अयो मुखम् ।

इदं पर्जन्यरेतसु इष्वै देव्यै बृहन्मः ॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार 'इपु' अर्थात् वाण की डण्डी (आल-अक्ता) विष से बुक्ती, (रुदीशीर्णी) सूग के समान अग्रमुख वाली, (अथो) और (यस्या मुखम्) जिसके मुख में (अयः) लोहे का फल लगा रहता है वह (पर्जन्यरेतसे) मेघ के जल से सिंचकर वृद्धि पाती है उसको ही हम (बृहत् नमः) बड़ा शत्रु नमाने का साधन बनाते हैं उसी प्रकार (या) जो छी (आलाक्षा = आरक्षा वा आरा-अक्ता) इष्वत् अनुराग से युक्त (रुदीशीर्णी) हरिण के समान शिर, मुख नयनों से युक्त, (अथो यस्य मुखम् अयः) और जिसका मुख सुवर्ण अलंकार से सुभूषित हो, ऐसी (पर्जन्यरेतसे) तृष्णि, सुख देने वाले प्रिय पुरुष के वीर्य के धारण करने वाली (इष्वै) मनोकामना

युक्त (दैव्य) उत्तम विद्युषी स्त्री को प्राप्त करने अर्थात् गृहस्थ बसाने के लिये हम (वृहत् नमः) बहुत आदर, अन्नादि से ग्रहण करें । सेनापक्ष में—जो सेना (अलाक्ता—आरा-अक्ता) आरा अर्थात् शस्त्रों से सुशोभित (रुद्धीष्णी) हितकारी सिंहवत् पराक्रमी नेताओं को अपने प्रमुख शिरोमणि पद पर नियुक्त करने वाली है (यस्थाः) जिसका (मुखम् अयः) मुख लोह के समान तीक्ष्ण और कठिन है, उस (इव्वै दैव्यै) प्रेरणा करने थोरा, युद्ध करने में कुशल (पर्जन्य-रेतसे) शत्रु को जीतने वाले वीर पुरुषों के पराक्रम वाली सेना का हम (वृहत् नमः) सदा आदर करें । इत्येकविंशो वर्गः ॥

अवसृष्टा परा पतु शरवद्ये व्रह्मसंशिते ।

गच्छामित्रान्प्र पद्यस्तु मामीषां कं च्चनोच्छ्रिष्पः ॥ १६ ॥

भा०—हे (शरवद्ये) वाण दूर लक फेंकने में कुशल सेने ! वाण जिस प्रकार (अव-सृष्टा परा पतति) छूट कर दूर पड़ता है और शत्रुओं को पहुंचकर उनका नाश करता है उसी प्रकार हे सेने ! तू भी (अव-सृष्टा) शत्रु पर पड़कर (परा पत) दूर २ तक जा और हे (व्रह्म-संशिते) 'ब्रह्म', वेदज्ञ सेनानायक वा 'ब्रह्म' अर्थात् धनैश्वर्य की प्राप्ति के लिये अति तीक्ष्ण त् (अमित्रान् गच्छ) शत्रुओं को लक्ष्य करके जा, (तान् प्रपद्यस्त्) उनतक पहुंच और (अमीषां) उनमें से (कं चन मा उत् शिषः) किसी को भी मत बचा रहने दे ।

यत्र ब्राणः सुम्पत्तन्ति कुमारा विशिखा इव ।

तत्रा नो ब्रह्मण्णसपतिरादितिः शर्म यच्छ्रुतु विश्वाहा शर्म यच्छ्रुतु १७

भा०—जिस गृह में (वि-शिखाः) विना शिखा के, चूड़ा कर्म करने के उपरान्त मुंडित (कुमाराः सं पतन्ति) बालक आते हैं वहां जिस प्रकार (ब्रह्मणः पतिः) वेद का पालक विद्वान् और (अदितिः) माता पिता सदा ही (शर्म यच्छ्रुत्ति) सुख प्रदान करते हैं उसी प्रकार (यत्र) जिस रण में (कुमाराः) भुरी मार मारने वाले (वि-शिखाः) विना शिखा वा

विविध चोटियों था विशेष तीक्ष्ण शिखा वाले, पैने, (बाणः सम्पत्ति) बाण एक साथ बहुत से आ गिरते हैं (तत्र) वहाँ (ब्रह्मणः पतिः) धनैश्वर्य, वेद और बड़े राष्ट्र का पालक (अदितिः) अखण्ड चरित्र और राज्य का स्वामी होकर (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख शान्ति दे । (विश्वाहा शर्म यच्छतु) वह सदा ही हमें शान्ति दे ।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे वीर योद्ध ! हे नायक ! (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मस्थलों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) ढकता हूँ । (राजा सोमः) राजा, तेजस्ती, 'सोम' ऐश्वर्यवान् पुरुष (त्वा) तुझे (अमृतेन) अज्ञादि से (अनु वस्ताम्) और भी सुरक्षित करें । (वरुणः) सर्वध्रेषु, प्रधान (ते) तेरे लिये (उरोः वरीयः कृणोतु) बहुत २ धन प्रदान करे । (जयन्तं त्वा अनु) विजय करते हुए तेरे पीछे २ (देवाः) अन्य सब उत्तम मनुष्य (मदन्तु) हर्षित हों ।

यो नः स्वो अर्णो यश्च निष्ठ्यो जिधांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ १९ ॥ ६॥६॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारा (स्वः) अपना (अरणः) विना रण वा संग्राम के ही, विना युद्ध के ही है, जिससे कोई हमारा क्षगड़ा भी नहीं, या जो (अरणः) हमें अच्छा या प्रिय नहीं लगता, (यः च) और जो (निन्स्यः) छिपा या दूर रह कर भी (नः) हमें (जिधांसति) मारना चाहता है (तं) उस शब्द पुरुष को (सर्वे) समस्त (देवाः) युद्धकुशल विजयेच्छु पुरुष (धूर्वन्तु) विनाश करें । (मम) मेरा (अन्तरं) समीप, अति निकटम (वर्म) कवच (ब्रह्म) बहुत बड़ा, महान् चेतन ही है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ सत्तमं मण्डलम्

[१]

चौसिंह ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ घन्दः—१—१८ एकमृशाक्तरपादैखिपदा विरा-
द्गायत्री । १९—२५ त्रिष्ठुप् ॥ पंचविशत्यृचं मूकम् ॥

अग्निं नरो दीधितिभिरुरग्नोर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरे-द्वारे गृहपतिमथर्युम् ॥ १ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (दीधितिभिः) अंगुलियों से और (हस्त-
च्युती) हाथों से बुमा २ कर (अरण्योः) दो अरणि काढ़ों में ऐसे
(अग्नि जनयन्त) अग्नि को उत्पन्न करें जो (प्रशस्तम्) सब से उत्तम
(दूरे-द्वारे) दूरसे दीखने योग्य और (अथर्युम्) जो पीड़ा कष्ट भी न
दे । उसी प्रकार (नरः) नायक लोग (हस्त-च्युती) हनन साधन,
शब्दाद्यों के सञ्चालन द्वारा शब्दों का नाश करके (अरण्योः) उत्तरा-
रणि, और अधरा-रणिवत् पूर्वपक्षी उत्तर पक्ष के दोनों दुलों में से
(दीधितिभिः) कर्मों को धारण करने में समर्थ सहायताहित वा उसके
गुणों, प्रकाशक स्तुतियों से (प्रशस्तम्) गृह के स्वामीवत् राष्ट्र पालक
(अग्नि) अग्रणी नायक और तेजस्वी पुरुष को (जनयन्त) प्रकट करें ।
अर्थात् गार्हपत्याग्नि को अरणियों से मथकर जिस प्रकार स्थापन करे उसी
प्रकार राज्यशासनार्थ परस्पर वादविवाद के अनन्तर गुणवान् तेजस्वी
पुरुष को नायक पद पर स्थापित करें ।

तमग्निमस्ते वसेवो न्यृरावन्त्सुप्रतिचक्षुमवस्ते कुतंश्चित् ।
दक्षाययो यो दम् आसु नित्यः ॥ २ ॥

भा०—(वसवः अग्निम् अस्ते कुतंश्चित् नि क्रष्णवन्) जिस प्रकार

नये वसने वाले गृहाश्रम में प्रविष्ट जन कहाँ से भी अग्नि को लेकर स्थापित करते हैं वह (दक्षायः नित्यः दमे आस) सब कर्म करने हारा, पूजनीय होकर गृह में नित्य रूप से रहता है उसी प्रकार (यः) जो (नित्यः) सदा स्थिर, (दक्षायः) चतुर विद्वान्, पूजनीय, होकर (दमे आस) प्रजाओं के दमन करने में लगा रहे (तम्) ऐसे (सु-प्रति-चक्षम्) प्रत्येक कार्य, प्रत्येक बल-विद्या को उत्तम रीति से देखने वाले (कुतश्चित्) कहाँ से, भी किसी भी कुल से उत्पन्न बुरूप को (अग्निम्) अग्रणी ज्ञानी, नायक रूप से (वसवः) राष्ट्र में वसी समस्त प्रजाएं (अवसे) राष्ट्र की रक्षा के लिये (नि-ऋण्वन्) नियुक्त करें ।
प्रेद्वा अग्ने दीदिहि पुरो नोऽज्ञाया सूर्यां यविष्ठ ।

त्वां शश्वन्तु उप यन्तु वाजाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! अग्रणी नायक ! तू (प्र-इदः) अच्छी प्रकार प्रकाशित, अग्नि के समान दीसिमान्, युद्धक्रीडा और व्यवहार में कुशल होकर (नः पुरः) हमारे आगे (सूर्या) उत्तम क्रियाओं और वाणी से, (दीदिहि) चमक और हे (यविष्ठ) अति बलवन् ! युवक ! (त्वां) तुक्ष को (शश्वन्तः) नित्य, अनेक (वाजाः) जानने और प्राप्त करने योग्य पदार्थ, ज्ञान, ऐश्वर्यादि (उप-यन्ति) प्राप्त होते हैं ।
प्र ते श्रुग्रयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त चुमन्तः ।
यत्रा नरः खुमास्ते सुजाताः ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निभ्यः अग्नयः) पूर्व विद्यमान कारण रूप अग्नियों से उत्पन्न होकर जिस प्रकार अन्य कार्य रूप अग्नियें भी (चु-मन्तः) तेजो-युक्त होकर (शोशुचन्त) खूब चमकती हैं उसी प्रकार (अग्निभ्यः) अपने अग्रणी विद्वानों से (वरं) श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके (चुमन्तः) तेजस्वी, ज्ञानप्रकाश से युक्त होकर (अग्नयः) विद्वान् जन (निः शोशुचन्त) खूब

चमकें, तेजस्वी बनें और उस उत्तम पद को प्राप्त हों, (यत्र) जहाँ
(सु-जाताः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध, सुविख्यात (नरः) प्रधान, अग्रगण्य पुरुष
(सम् आसते) एकत्र होकर विराजते हैं ।

दा नो अग्ने धिया रथि सुवीरं स्वपृत्यं संहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥ ५ ॥ २३ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (धिया) कर्म द्वारा (प्रशस्तं) उत्तम
(सु-वीरं) सुख से बहुतों को सञ्चालित करने में समर्थ (स्व-पत्यं)
अपना ऐसा वेगयुक्त (रथि) बल उत्पन्न करता है (यं यावा) पैरों से
जाने वाला वा (यातुमावान्) यानसाधनों अश्वादि का स्वामी भी पार
नहीं करता अर्थात् विद्युत् से उत्पन्न यन्त्रवेग का पैदल वा सवारी भी
मुकाबला नहीं कर सकती, इसी प्रकार है (अग्ने) अग्रणी नायक ! तू (धिया)
उत्तम बुद्धि और कर्मकौशल से (नः) इमें (सुवीरं) उत्तम वीरों से समृद्ध
(स्वपृत्यं = सु-अपत्यं) उत्तम सन्तान से युक्त (प्रशस्तं रथिम्) प्रशंसनीय
ऐश्वर्य (दाः) प्रदान कर (यं) जिसका (यावा) आक्रमणकारी और
(यातुमा वान्) प्रयाण या पीड़ा देने में मेरे समान बल-सामर्थ्य वाला
अन्य पुरुष वा सामान्य जन (न तरति) पार न कर सके, वैसा ऐश्वर्य
न पासके, उसकी तुलना भी न कर सके । इति त्रियोविंशो वर्गः ॥
उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमर्मातिर्वसुयुः ॥ ६ ॥

भा०—(हविष्मती घृताची दोषा वस्तोः सुदक्षं) घृत, चरु आदि
हविष्याच से युक्त, घृत से पूर्ण आहुति जिस प्रकार दिन रात्रि, साथं
ग्रातः उत्तम दाह करने वाले अग्नि को प्राप्त होती है और (युवतिः
दोषा वस्तोः) युवति ची जिस प्रकार दिन रात्रि काल में निवासार्थ
उत्तम कुशल पुरुष के पास (हविष्मती) उत्तम अश्व का भोजन कर
(घृताची) घृत आदि खिंगध पदार्थ अंग में लगाकर (उप एति) प्रिय

पुरुष को प्राप्त होती है और जिस प्रकार (वसू-युः) वसु, २४ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक युवा पुरुष को चाहने वाली (अरमति) पूर्व रति को न प्राप्त हुई, ब्रह्मचारिणी (स्वा) स्वयं (उप एति) प्राप्त होती है उसी प्रकार (यम्) जिस (सु-दक्षं) उत्तम कर्मकुशल, अग्नि के समान ग्रतापी पुरुष को (हविष्मती) ग्राह्य अत्र ऐश्वर्यादि से युक्त (घृताची) तेज, अज्ञादि से पूर्ण भूमि या प्रजा (उपएति) प्राप्त होती है, (वसू-युः) अपने वसाने वाले प्रभु और नाना धनों की कामना करती हुई (अरमतिः) अन्य कहीं विश्राम सुख न पाकर (स्वा) उसकी निजी सम्पत्ति सी बन कर (एनम्) उसको ही (उप एति) प्राप्त होती है ।

विश्राम अग्नेऽपि द्वारातीर्येभिस्तपौभिरदद्वृत्तं जरुथम् ।

प्र निस्त्वरं चातयुस्वामीवाम् ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (तपोभिः) अपने तीक्ष्ण तापों से (जरु-थम्) जीर्ण, सूखे धास या काढ को जला देती है उसी प्रकार हे (अन्ने) अग्नणी, अग्निवत् तेजस्त्विन् नायक ! तू भी (येभिः) जिन (तपोभिः) संतापदायक शस्त्रास्त्रादि साधनों से (जरुथं) परुषभाषी शत्रु को (अदहः) दग्ध करो । उनसे ही (अरातीः) अन्य शत्रुओं को भी (अप दह) भस्म कर और शत्रु को (अमीवाम्) कष्टदायक रोग के समान (निस्त्वरं) निः शब्द, मूर्क, कुछ, न कहने लायक, मृतवत् करके (चातयस्त्र) पीड़ित कर और उसे नष्ट कर ।

आ यस्ते अग्न इधुते अनीकं वसिंष्टु शुक्र दीदिवः पावक ।

उतो न एभिः स्त्रुवथैरिह स्याः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा विद्युत् अपने चमकाने वाले पुरुष को ही प्राप्त होता है उसको उत्तम प्रकाश आदि कार्य भी देता है उसी प्रकार हे (अन्ने) अग्नणी नायक ! विद्वन् ! हे (वासिष्ठ) वसने वालों में सबसे श्रेष्ठ ! हे (शुक्र) कान्तिमन् शुक्र ! हे (दीदिवः) तेजस्त्विन् !

हे (पावक) अग्निवत् पंक्तिपावन ! अन्यों के दोषों के शोधक ! (यः) जो (ते) तेरे (अनीकं) तेजोवत् सैन्य बल को (आ इघते) अति दीप्त करता है, उसे उत्तेजित वा बलवान् बनाता है उस प्रजावर्ग (उत) और (नः) उनके समान हमें भी (एुभिः स्तवयैः) इन स्तुति योग्य वचनों, कर्मांसहित (इह स्याः) यहां प्राप्त हो ।

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्त्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।

उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥ ९ ॥

भा०—(उत) और हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रतापवन् ! सेनापते ! (ये) जो (मर्त्ताः) मनुष्य (नरः) नेता रूप से (पुरुत्रा) बहुत से पदों पर (पित्र्यासः) माता पिता के पद के योग्य, उन सदृश प्रजा के पालक होकर (ते अनीकं) तेरे सैन्य को (भेजिरे) बनाते हैं (एुभिः) उनके साथ ही तू (नः) हमें (सुमनाः) शुभ चित्तवान् होकर (इह स्याः) इस राष्ट्र में रह ।

इमे नरौ वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मा याः ।

ये मे धियं पुनयन्त प्रशस्ताम् ॥ १० ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन् (ये) जो (मे) मुझ राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (प्रशस्तां) अति उत्तम (धियं) बुद्धि को (पुनयन्त) उपदेश करते हैं (इमे) ये (नरः) उत्तम लोग (शूराः) शूरवीर होकर (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं को मारने के निमत्त संग्रामों में (विश्वाः) समस्त (अदेवीः) अशुभ (मायाः) शत्रुकृत छलादि वज्रनाओं को (अभि सन्तु) पराजित कर दूर करें । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

मा शूने अग्ने नि पदाम नृणां माशेषस्त्रोऽवीरत्ना परि त्वा ।

प्रजावतीषु दुर्योग्यं सु दुर्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणीनायक ! तेजस्त्विन् ! राजन् ! हे (दुर्य)

गृहों के स्वामिन् ! हम (अशेषसः) विना पुत्र सन्तानादि के होकर (शूने) सुखयुक्त, सत्पन्न, वा शून्य गृह में भी (मा नि सदाम) कभी न बैठें । और (नृणां) मनुष्यों के बीच में हम (त्वा परि) तेरे अधीन रहते हुए (अवीरता) वीरता से रहित होकर भी (मा नि सदाम) उच्च प्रतिष्ठा को प्राप्त न करें । और (प्रजावतीषु दुर्यासु) प्रजाओं से युक्त गृह में वसी स्त्रियों के बीच रहते हुए भी हम (अशेषसः अवीरता) मा निषदाम) पुत्रादि से रहित और वीर्य शौर्यादि से रहित होकर घरों में न बैठे रहें, प्रत्युत हम पुत्रवान्, वीर, और प्रजावान् हों ।

यमुश्वी नित्यमुपुयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपृत्यं क्षयं नः ।

स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् यज्ञम्) जिस यज्ञ को (अश्वी) इन्द्रियरूप अर्थों का स्वामी, जितेन्द्रिय पुरुष (नित्यम् उप याति) नित्य प्राप्त करता है, और (यम् प्रजावन्तं) जिसको प्रजा से युक्त (क्षयं) बसे हुए (स्वपृत्यं) अपने अधिपतित्व में विद्यमान देश के (अश्वी) अश्व सैन्य का स्वामी राजा प्राप्त होता है, और जो यज्ञ और निवास योग्य गृह (स्व-जन्मना) अपने से जन्म लाभ करने वाले (शेषसा) पुत्र और धन से (वावृधानम्) बढ़ते हुए को भी प्राप्त होता है उसी (प्रजावन्तं) पुत्रादि से समृद्ध (स्वपृत्यं = सु-अपत्यं) उत्तम पुत्र युक्त और (स्व-जन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं) अपने वीर्य से उत्पन्न और सपुत्र से बढ़ते हुए यज्ञस्वरूप (क्षयं) गृह को (नः) हमें भी प्राप्त करा ।

प्राहि नो अग्ने रुक्षस्त्रो अञ्जुष्टात्पाहि धुर्तेररुषो अघायोः ।

त्वा युजा पृतनायूँश्चभि ष्याम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्णीनायक, अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! आप (अञ्जुष्टात्) धर्म का सेवन न करने वाले तथा अग्नीति युक्त

(रक्षसः) अतिकोर्धी, अतिहिंसक, (आघायोः) पापाचारी, पापमय जीवन व्यतीत करने वाले, सदा अन्यों पर पाप, छल हत्यादि का प्रयोग करने वाले दुर्जन से भी (नः पाहि) हमारी रक्षा करो । मैं (त्वा युजा) तुझ सहायक से (पृतनायून) सेना वा संप्राम के इच्छुक शत्रुओं को भी (अभि स्याम्) पराजित करने में समर्थ होऊँ ।

सेदुग्निर् श्रीं रत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीलुपाणिः ।
सुहस्त्रपाथा शृक्षरा सुमोत्ते ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अन्यान् अशीन् अति) अन्य सब अग्नियों से बढ़ कर (अग्निः) यज्ञाग्नि (वाजी) अज्ञादि आहुति युक्त, और (सहस्रपाथः) अनेक विध अज्ञों वाला अनेक किरणों से जल पीकर और (अक्षरा समेति) मेघ के उद्दकों सहित प्राप्त होता है उसी प्रकार (यत्र) जहां (अग्निः) विद्वान् तेजस्वी नायक (अन्यान् अशीन् अति) अन्य तेजस्वी पुरुषों को अति क्रमण करके स्वयं (वाजी) बलवान् (तनयः) प्रजाजनों का पुत्रवत् प्रेमपात्र और (वीलु-पाणिः) वीर्यवान् हाथों वाला या वीर्यवान् सैन्य जनकों अपने हाथ में वश करता हुआ हो, वहां (सः इत् अग्निः) वही सब्बा 'अग्निः' है । वह ही (सहस्रपाथः) सहस्रों जनों का पालक वा अज्ञों और पालनसाधनों से समृद्ध होकर (अक्षरा) न नाश होने वाली नदियों के समान सदाबहार प्रजाओं को (सम् एति) प्राप्त होता है ।

सेदुग्नियो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् ।

सुज्ञातासुः परि चरन्ति वीराः ॥ १५ ॥ २५ ॥

भा०—(यः) जो (वनुष्यतः) याचना, अर्थात् शरण, अज्ञ, आजीविकादि चाहने वालों को (निपाति) रक्षा करता है और (समेद्धारम्) अपने को प्रदीप, प्रज्वलित, बलवान् करने वाले को (अंहसः) पाप से (उरुष्यात्) रक्षा करे । अथवा—(यः) जो (समेद्धारम्)

अपने को प्रदीप करने वाले पुरुष को (वनुष्यतः) हिंसक पुरुष से और (उरुष्यात् अंहसः) महान् पापाचार से भी (नि पाति) बचा लेता है और जिसको (सु-जातासः) उत्तम कर्मों में जन्म लेने वाले (वीरः) वीर, विद्योपासक द्विज, शिष्य, (परिचरन्ति) सेवा करते हैं (सः इत् अभिः) वह गुरु भी अग्निवत् तेजस्वी है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥
आर्थं सो आग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशान्तः समिदिन्धे हृविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार इस अभिं को (ईशानः यम् सम्हन्धे) सब जगत् का स्वामी परमेश्वर सूर्य विद्युत् से खूब प्रज्वलित करता है और (यम् होता अध्वरेषु परि एति) जिस प्रकार अभिं को आहुतिदाता अध्वर अर्थात् हिंसारहित यज्ञादिकर्मों में प्राप्त होता है उसी प्रकार (यम्) जिस प्रतापी पुरुष को (हृविष्मान्) नाना अज्ञादि का स्वामी (ईशानः) राष्ट्र का बड़ा स्वामी (सम्हन्धे इत्) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करता है और (यम्) जिसका (अध्वरेषु) प्रजापालन अध्ययनाध्यापनादि हिंसारहित, प्रजाशिष्यादिपालन कार्यों में (होता) कर आदि देने और विद्यादि ग्रहण करने वाला प्रजा वा शिष्यादि जन (परि एति) परिचर्या करता है (सः) वह ही (अथम्) वह (अभिः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान्, प्रकाशक पुरुष (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों में (आहुतः) आदर पूर्वक स्वीकार करने योग्य है।

त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानासु आ जुहुयाम् नित्या ।
ऊभा कृहवन्तो वहत् मियेधे ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अभिं के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार हम लोग (मियेधे) पवित्र यज्ञ में (आहवनानि) आहुति करने योग्य अज्ञादि (आ जुहुयाम्) आहुति करते हैं, उसी प्रकार (ईशानासः) ऐश्वर्ययुक्त होकर भी हे विद्वन् ! हम लोग (त्वे) तेरे अधीन (नित्या आहवनानि)

नित्य, सदा आदरपूर्वक देने योग्य उत्तम वचन, वा अज्ञ वस्त्रादि भी (आ जुहुयाम) आदरपूर्वक दिया करें और (मियेधे) पवित्र यज्ञादि के अवसर पर भी (वहतू) कार्य या गृहस्थाश्रम के भार को धारण करने वाले विवाहित वर वधू या यजमान पुरोहित (उभा) दोनों को भी (आ कृष्णवन्तः) सन्मुख करते हुए (त्वे आ जुहुयाम) अग्निवत् तुक्ष में दान आदि दें।

**इमो अग्ने वीततमानि हृव्याजस्तो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रतिं न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥ १८ ॥**

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! प्रतापयुक्त ! विद्वन्, ज्ञानवन् ! जिस प्रकार अग्नि (देवतातिम् हृव्या वहति) अज्ञ को प्राप्त कर उसमें हृव्य चरु आदि ग्रहण करता है उसी प्रकार तू भी (इमा) ये (वीत-तमानि) उत्तम कामना योग्य (हृव्या) अज्ञादि ग्राहा पदार्थों को (वक्षि) धारण कर और (वीततमानि हृव्या) खूब ज्ञानप्रकाशक, कामना योग्य, सुन्दर, ग्राह्य ज्ञानों का (वक्षि) धारण कर, दूसरों तक पहुंचा और उपदेश कर। तू (अज्ञसः) अहिंसित, अपीडित होकर (देवतातिम् अच्छ) शुभ गुणों को प्राप्त कर और (नः) हमें (सुरभीणि) उत्तम शक्तिप्रद अज्ञ (ईम्) सब प्रकार से (प्रति व्यन्तु) प्रति दिन प्राप्त हों।

मा नो अग्ने वीरते परा दा दुर्वासुसेऽमरतये मा नो अस्यै ।

मा नः जुधे मारुत्संऋतावो मा नो दमे मा वन् आजुहृथीः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निनी नायक ! हे विद्वन् ! हे प्रभो ! (नः) हमें (अवीरते) वीरों से रहित सैन्य में, वा देश में, (मा परा दा:) मत छोड़ । (दुर्वासुसे) बुरे, मैले कुचैले वस्त्र पहनने के लिये वा मलिन वस्त्र धारण करने वाले के लाभ के लिये और (अस्यै अमरतये) इस मूढ़ता या मति रहित मूर्ख पुरुष के सुख के लिये (नः मा परा दा:) हमें

मत त्याग अर्थात् तू हमें मैला कुचैला और मूढ़ मत रहने दे और न
मैले कुचैले और मूर्ख के पल्ले डाल। हे विद्वन् ! (क्षुधे नः मा प-
रा दाः) भूख से पीड़ित होने के लिये या भूखे के आगे भी हमें मत डाल
हे (क्रतावः) सत्य, न्यायशालि ! ऐश्वर्यवन् ! तू हमें (रक्षसे मा-
परा दाः) दुष्ट राक्षस पुरुष के सुख के लिये भी मत त्याग। (नः)
हमें (दमे मा आ जुहूर्थाः) घर में भी पीड़ित न होने दे और (नः
वने मा आ जुहूर्थाः) हमें वन में भी मत त्याग।

नू मे ब्रह्मारयग्नु उच्छ्वशाधि त्वं देव मृघवद्ध्वः सुपूदः ।
रातौ स्यामोभयासु श्रा तै यूयं पात स्वस्तिभिः सदानः २०।२६

भा०—हे (देव) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले ! (अमे)
अग्निवत् तत्व को प्रकाशित करने हारे विद्वन् ! (त्वं) तू (मे) मेरे
हित के लिये (ब्रह्माणि) उत्तम रजा ज्ञानमय वेदमन्त्रों का (उत्
शाशाधि) उत्तम रीति से शासन कर। हे विद्वन् ! तू (मधवद्भ्यः)
ऐश्वर्यवन् पुरुषों के हितार्थ भी (ब्रह्माणि उत् शाशाधि) ज्ञानमय वेद
मन्त्रों का उपदेश कर और (सु-सूदः) दुःखों को दूर कर। हम (उभ-
मासः) विद्वान् और अविद्वान् दोनों जन (ते रातौ आ स्याम) तेरे दान
में समर्थ हों। हे विद्वान् जनो ! (यूयम्) आप सब लोग (नः) हमें
सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणजनक साधनों से (पात) रक्षा करो।
इति पठविंशो वर्गः ॥

त्वमग्ने सुहवो रगवसन्दकसुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सच्चा तनैये नित्य आ धृष्ट मा वीरो असमन्नयो वि दासीत् २१

भा०—जिस प्रकार (सहसः सूनुः अग्निः रणवसन्दक् सुदीती दीप्यते)
बलपूर्वक उत्पन्न किया अग्नि, विद्युत्, उत्तम कान्ति से चमकता और
रम्य रूप से दीखता और रम्य पदार्थों को दिखाता है। वह (मा अधङ्)
हमें भस्म न करे और (मा वि दासीत्) किसी प्रकार पीड़ा न पहुंचावे

उसी प्रकार है (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष ! (त्वं) तू (सुन्हवः) उत्तम दानशील, और उत्तम गुणों और पदार्थों का ग्रहण और भोजन करने हारा वा शुभ नामा तथा (रण्व-संदक्) रमणीय, रूप से दीखने और उत्तम सुखजनक उपायों वा रम्य आत्मतत्व को ठीक प्रकार से सम्बक्-दृष्टि से देखने हारा हो । हे (सहसः सूनो) बलवान् वीर्यवान् पुरुष के पुत्र ! एवं उत्तम बल सैन्यादि के संचालक ! तू (सुदीती) उत्तम दीपि से (दिदीहि) चमक और सदको प्रिय लंग । (सचा) सम्बन्ध से (त्वे तनये) तेरे सदश पुत्र रहने पर तू अपने पितृजनों को (मा आ धड्) दग्ध न कर, अपने दुराचरणों और कुलक्षणों से माता पिता को न सता । इसी प्रकार (वीरः नर्यः) हमारा पुत्र वीर और मनुष्यों का हितकारी होकर (मा वि दासीत्) विनष्ट न हो ।

मा नो अग्ने दुर्भूतये सच्चैपु देवेद्वेष्वग्निषु प्र वोचः ।

मा ते अस्मान्दुर्मृतयो भृमाच्चिद्वस्य सूनो सहसो नशन्त ॥२२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् ! तू (सचा) हमारा सह-योगी होकर (देवेद्वेषु अग्निषु) उत्तम विद्वान् पुरुषों वा उत्तम गुणों से प्रदीप हुए अग्निवत् तेजस्वी पुरुषों के होते हुए भी (नः) हमें (दुर्भूतये) दुःख वा कष्ट से अपना भरण पोषण करने के लिये, वा दुःख से भरण पोषण करने वाले कृत्वामी की सेवा के लिये (मा प्र वोचः) कभी मत कह । हे (सहसः सूनो) बलवान् के पुत्र ! बल के सञ्चालक ! (देवस्य) तेजस्वी वा आखेट, चूत, रति आदि क्रीड़ाशील (ते दुर्मृतयः) तेरी दुष्ट बुद्धि या, दुर्विचार (भृमात् चित्) भ्रम से, भूल कर भी (अस्मान् मा नशन्त) हमें प्राप्त न हों अर्थात् राजा के दुर्व्यसन प्रजा में न आवें और न उनको कष्टदायक हों । भूल कर भी राजा अपने व्यसनों से प्रजा को पीड़ित न करे । प्रजा के कन्धे चढ़कर अपने दुर्व्यसनों की पूर्ति न करे ।

स मतौ अग्ने स्वनीक रेवानमत्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवर्णे दधाति यं सुरिर्थीं पृच्छमान् पति ॥ २३ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (अमर्थे) न मरने वाले, अविनाशी आत्मा वा परमेश्वर में (हव्यम्) अग्नि में हव्य के समान देने योग्य चित्त की (आजुहोति) आहुति देता है हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम बल-शालिन् ! स्वप्रकाश अग्ने ! (सः मर्त्तः) वह मनुष्य (रेवान्) रथि अर्थात् भौतिक देहांत का उत्तम स्वामी होकर रहता है । (यं) जिस परमेश्वर को (सूरि:) विद्वान् ज्ञानी और (अर्थी) अभ्यर्थना करने वाला, अर्थर्थी, वा ज्ञानार्थी कामनायुक्त पुरुष (पृच्छमानः) विद्वानों से ब्रह्म विषयक शक्तियों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों का देने हारा पुरुष (वसु-वर्णे) उत्तम ऐश्वर्य, समस्त जीवगणों को (दधाति) न्यायानुसार प्रदान करता है । उसी प्रकार हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम सैन्य के स्वामिन् ! राजन् ! जो तुझे विशेष जानकर कर आदि देता है वह राष्ट्रवासी जन धनसम्पन्न हो जाता है । (सः) और वह अर्थी, धनार्थी और न्यायार्थी उसके पास धर्म वा व्यवहार विषयक प्रश्न करता हुआ आता है, वह देवस्वरूप राजा उसके धनादि का न्यायपूर्वक विभाग करे ।

सुहो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान्तर्थि सुरिभ्यु आ वृद्धा वृहन्तम् ।
येन वृयं सहसावृन्मदेमाविक्षितासु आयुषा सुवीराः ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (नः) हमारे (सुवितस्य) सुख-दायक कल्याणहित का (विद्वान्) जानने हारा, (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों के लाभ के लिये (वृहन्तं रथिम्) बहुत बड़ा ऐश्वर्य (आ वह) प्राप्त कर और धारण कर । हे (सहसावन्) बल से राष्ट्र पर प्रभुत्व करने हारे ! (येन) जिस ऐश्वर्य से (वयम्) हम (अविक्षितासः) विना क्षीण हुए (मदेम) प्रसन्न हों और (आयुषा) दीर्घ जीवन से युक्त और (सु-वीराः) उत्तम वीर और उत्तम पुत्रों वाले हों ।

नू से ग्रहारण्यग्न उच्छ्वशाधि त्वं देव मूर्घवद्धयः सुपूर्दः ।
रातौ स्यामोभयासु आ ते युर्यं पात् स्वस्तिभिः सदा नः ॥२७।१

भा०—व्याख्या देखो (मं० ७ । सू० १ । मन्त्र २०) इति सप्त-
विंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

→○←

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

चसिष्ठ ऋषिः ॥ आप्रं देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराट्विष्टुप् । २, ४ विष्टुप् ।
३, ६, ७, ८, १०, ११ निचृतिविष्टुप् । ५ पंक्तिः ॥ एकदशर्च सूक्तम् ॥
जुषस्वं नः सुमिधमग्ने श्रद्ध शोचा वृहद्यजतं धूमसूरेवन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रशिमभिस्ततनुः सूर्यस्य ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! अग्नी पुरुष ! तू (नः)
हमारे (समिधम्) काष्ठ को अग्नि के समान अच्छी प्रकार मिलकर
तेजस्वी होने के साधन को (जुषस्व) प्राप्त कर, तेजस्वी बन । (अद्य)
आज (वृहत्) बड़े भारी (यजतं) संगति या परस्पर के सम्मिलित
सम्मेलन को (शोच) उज्ज्वल, सुशोभित कर । और धूम के समान
(धूमम्) शत्रु को कंपित करने वाले सामर्थ्य को (क्रष्णन्) प्रदान
करता हुआ, (स्तूपैः) रशिमयों से सूर्य के समाव प्रतापी होकर (स्तूपैः)
स्तुत्य गुणों से (दिव्यं सानु) कान्तियुक्त ऐश्वर्य वा उत्तम पद को (उप-
स्पृश) प्राप्त कर । और (रशिमभिः) रशिमयों से (सूर्यस्थ) सूर्य के
समान तेज को (सं ततनः) विस्तारित कर ।

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यज्ञतस्य यज्ञैः ।
ये सुकर्तवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हृव्या ॥२॥

भा०—(ये) जो (सु-क्रतवः) उत्तम कर्म करने वाले (शुचयः) शुद्ध आत्मार-चरित्रवान् (धियं-धाः) उत्तम कार्यों और उत्तम बुद्धि को धारण करने वाले, (देवाः) विद्वान् पुरुष (उभयानि) शरीर और आत्मा दोनों को पुष्ट करने वाले, (हव्या) ग्राह्य पदार्थ, अज्ञों और ज्ञानों का (स्वदन्ति) आत्माद लेते हैं (एषाम्) उनकी और (यज्ञैः) उत्तम यज्ञों दोनों, आदर सत्कारों से (यजतस्य) सत्कार करने योग्य (नराशंसस्य) मनुष्यों से स्तुति योग्य पुरुष के (महि-मानम्) बड़े भारी सामर्थ्य की हम (उप स्तोषाम्) स्तुति करें, उनके गुणों का सर्वत्र वर्णन और उपदेश किया करें।

ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दुतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्नि मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥३॥

भा०—हम लोग (नः) आप लोगों में से (ईडेन्यम्) स्तुति योग्य, (असुरं) मेघ के समान जीवन-प्राण के देने वाले, बलवान्, (सुदक्षं) उत्तम कर्मकुशल, अभिवृत् तेजस्वी, (रोदसी अन्तः) भूमि और आकाश दोनों के बीच (दूतम्) सूर्यवत् प्रतापी, (सत्य-वाचम्) सत्य वाणी के बोलने वाले, (मनुष्वत्) मननशील विद्वान् के समान (अग्निं) अग्रणी ज्ञानी, (मनुना) मननशील पुरुषों द्वारा वा ज्ञान से (समिद्धं) अच्छी प्रकार अग्नि के समान ही प्रज्वलित वा प्रसिद्ध पुरुष को (अध्वराय) हिंसा से रहित, प्रजापालन, अध्ययनाध्यापनादि उत्तम कार्य के लिये, अग्नि के तुल्य ही (सदम-दृत) सदा ही (सं महेम) अच्छी प्रकार आदर सत्कार करें।

स्पूर्यवो भरमाणा अभिष्ठु प्र वृञ्जते नमसा बृहिरग्नौ ।
आजुह्वाना धृतपृष्ठं पृष्ठद्वद्धर्वयवो हृविषा मर्जयध्वम् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (अध्वर्यवः) यज्ञ करने वाले विद्वान्, (धृत-

पृष्ठं आ-जुह्वानाः) धृत से सिंचे, एवं तेजोयुक्त अग्नि में आहुति करते हुए (अभिज्ञु) आगे गोडे किये, पालथी मार कर बैठते और (नमसा) अन्नादि से युक्त (वर्हिः अश्वो प्र वृजते) चह को अग्नि में त्यागते हैं उसी प्रकार (सपर्यवः) सेवा-परिचर्या करने वाले, (वर्हिः) वृद्धिशील प्रजा को (भरमाणाः) मरण पोषण करते हुए, (अभिज्ञु) अपने अभिमुख गोडे किये, सम्यतापूर्वक आसन पर विराज कर, (अग्नौ) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर, (नमसा) वज्र, वा बल वीर्य के द्वारा (प्र वृजते) उत्तम रीति से ध्यानपूर्वक धनादि का विभाग करते हैं । और आप (धृत-पृष्ठं) तेजस्वी पुरुष को (आजुह्वानाः) आदर पूर्वक अपना अध्यक्ष स्वीकार करते हुए (पृष्ठद्-वन्) सेचनकारी मेघों के समान (हविषा) ग्राह ज्ञान से अपने को (मर्जयध्वम्) शुद्धाचारवान् बनाओ ।

स्वाध्योऽविदुरो देवयन्तोऽशिश्रयु रथयुद्धेवताता ।

पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुद्धो न समनेष्वञ्जन् ॥५॥१॥

भा०—(पूर्वी मातरा) पूर्व विद्यमान माता और पिता (शिशुं न) दोनों जिस प्रकार बालक को (रिहाणे) नाना भोज्य पदार्थ का आस्वादन कराते हुए उसको (समड़न्कः) अच्छी प्रकार अभ्यङ्ग-मर्दनादि से चमकाते हैं और (समनेषु) संग्रामों में जिस प्रकार (अग्रुवः) आगे २ बढ़ने वाली सेनाएँ (सम् अंजन्) अपने नायक के गुणों को चमकातीं, उसको प्रसिद्ध करती हैं उसी प्रकार (देवयन्तः) विद्वानों को चाहने वाले (स्वाध्यः) उत्तम ध्यान और चिन्ता करने वाले, (देवताता) विद्वानों के करने योग्य उत्तम कार्य में (रथयुः) वीर रथी के समान (दुरः अशिश्रयुः) उत्तम द्वारों का आश्रय लेते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

उत योषणे दिव्ये मुहीं न उषासुनक्ता सुदुर्घेव धेनुः ।

बृहिंषदा पुरहृते सघोन्ती आ युक्तियं सुविताय श्रेयताम् ॥ ६ ॥

भा०—(सुदुधा-इव धेनुः) उत्तम दूध देने वाली गौ और वाणी के समान कल्याणकारक (दिव्ये योग्ये) उत्तम गुणयुक्त युवा युवतीजन (उषासानका न) दिन रात्रि के समान (बहिं-सदा) उत्तम आसन पर विराजने वाले (पुरु-हृते) बहुतों से प्रशंसित, (मधोनी) ऐश्वर्यवान् और (यज्ञिये) दान, सत्संग योग्य होकर (सुविताय) कल्याण और उत्तम सन्तान को प्राप्त करने के लिये (श्रवेताम्) परस्पर का आश्रय लें।
 विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारु मन्ये वां ज्ञातवेदसा यज्ञधै ।
 ऊर्ध्वं नौ अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्रा) विविध विद्यायुक्त, विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (मानुषेषु यज्ञेषु) मनुष्यों के यज्ञों में (कारु) उत्तम कर्मशील, (ज्ञातवेदसा) ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त आप दोनों को (यज्ञधै) प्रतिष्ठा करने योग्य (मन्ये) मानता हूँ । आप लोग (नः) हमारे बीच यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों के बीच और (हवेषु) ग्रहण योग्य आश्रमों में से भी अपने (अध्वरं) हिंसारहित एवं अविनाशी यज्ञ भी (ऊर्ध्वं कृतम्) सबसे श्रेष्ठ करो । और (ता) उन नाना प्रकार के (वार्याणि) वरण योग्य धनों को (वनथ) प्राप्त करो ।

आ भारती भारतीभिः सुजोषा इळा देवैर्मनुष्यभिरुग्मिः ।
 सरस्वती सारस्वतेभिरुर्वाङ्कृति स्त्रो देवीर्विहरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥

भा०—(भारती) सब शास्त्रों को अपने में धारण करने वाली, सर्वपालक, विद्या माता के समान वेद वाणी (भारतीभिः) विदुषी स्त्रियों के साथ और (इळा) स्तुति योग्य वाणी (मनुष्यैः देवैः) साधारण मनुष्यों और विशेष विद्वानों के साथ और (सरस्वती) विज्ञान युक्त वाणी (सारस्वतेभिः) विज्ञान युक्त वाणी के विद्वानों से (सजोषाः) समान ग्रीतियुक्त हों । (तिस्तः देवीः) तीनों प्रकार की विदुषी स्त्रियां (इदं

बर्हिः सदन्तु) इस वृद्धियुक्त राष्ट्र में वाक्, मन, प्राण शक्तियों के समान देह में (अर्वाक् सदन्तु) सबके समक्ष आदर प्राप्त करें ।

तत्रस्तुरीपुमध्ये पोषयित्नु देवत्वष्टुर्विं रुराणः स्यस्व ।

यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥

भा०—हे (देव) कामनायुक ! पुत्र की इच्छा करने और वीर्य-दान देने में समर्थ ! हे (व्यष्टः) तेजस्विन् ! हे प्रजा उत्पन्न करने हारे ! त् (राणः) पत्नी के साथ रमण करता हुआ (नः) हमारे उपकार के लिये (तत्र) उस (तुरीयम्) विनाश से बचानेवाले (पोषयित्नु) चरीर को पुष्ट करने वाले वीर्य को (वि स्यस्व) त्याग कर (यत्) जिससे (कर्मण्यः) कर्म करने में कुशल (सु-दक्षः) उत्तम चतुर, (युक्त-ग्रावा) विद्वानों का उपासक (देवकामः) विद्वानों का प्रिय, (वीरः) पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है । इसी प्रकार (व्यष्टा) राज्य का कर्त्ता राजा सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, वह हिंसकों से बचाने वाले राष्ट्रपोषक सैन्यबल को जोड़कर (राणः) रमण करता हुआ, गर्जन सहित शत्रु पर अस्त्र छोड़े । जिस से कर्मकुशल वीर पुरुष (युक्त-ग्रावा) क्षात्रबल और शस्त्रादि से युक्त होकर अपने दाता स्वामी का प्रिय होसके ।

वनस्पतेऽव॑ सृजोप॑ देवान्तर्ग्रीहिंचिः शमिता सृदयाति ।

सेदु होता॒ सृत्यतरो॒ यजाति॒ यथा॒ देवान्तां॒ जनिमान्ति॒ वेद॑ ॥ १० ॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के समान (वनस्पते) महावृक्ष, वटादि के समान आश्रित, शरण धनादि के याचकों के पालक ! राजन ! एवं शत्रुओं के हिंसक सैन्य जनों के पति सेनापते ! (देवान्) सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार तू भी (देवान्) उत्तम गुणों को, ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुषों को और अग्नि, जल, पृथिवी आदि दिव्य तत्वों को तथा विद्या धनादि की कामना करने वाले शिष्यादि

जनों को भी (उप अव सृज) अपने समीप और अपने अधीन रख, उनको सन्मार्ग में चला, तथा उपभोग कर । (शमिता हविः सूदयाति) पाचक जिस प्रकार अज्ञ को पकाता और रसयुक्त करता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्नि ही ऐसा है जो हमें (शमिता) शान्ति, सुख-कल्याण का करने वाला होकर (हविः) ग्राह्य अज्ञादि पदार्थ, को (सूदयाति) पकाता है, वही (हविः) देह में मुख के मार्ग से ग्रहण किये अज्ञ को रस बना कर देह के अंग २ में (सूदयाति) प्रवाहित करता है । इसी प्रकार (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (शमिता) प्रजा वा राष्ट्र में शान्तिकारक होकर (हविः सूदयाति) अज्ञ, कर आदि को ग्रहण कर विभक्त करे । (सः इत् होता) वही, 'होता' देने और लेने में समर्थ (सत्य-तरः) सत्य, न्याय के बल से स्वयं सर्व श्रेष्ठ, एवं अन्यों को अज्ञान, दुःखों से पार करने वाला, होकर (यजाति) ज्ञान, न्याय और धनका यथोचित रूप से प्रदान करे, (यथा) क्योंकि वही (देवानां) देव, उत्तम गुणों, विद्वानों और विद्या के इच्छुक शिष्य, आदि के भी (जनमानि) यथार्थ रूपों, तथा जन्मों आदि को (वेद) जानता है ।

आ याह्यं ग्रे समिधानो अर्वाङ्गिन्द्रेण देवैः सूरथं तुरेभिः । बुर्द्धिं
आस्तु मदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा असृता मादयन्ताम् ॥११॥२॥

भा०—(समिधानः अग्निः यथा इन्द्रेण देवैः तुरेभिः अर्वाङ् आ याति) अच्छी प्रकार दीसियुत अग्नि वा सूर्य-प्रकाश जिस प्रकार विद्युत्, मेघ और जलादि देने वाले वायुगण तथा दीसियुक्त प्रकाशों, रोगनाशक और अतिवेगयुक्त गुणों सहित (स-रथं) समान रंगरूप में हमें प्राप्त होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! नायक ! तू भी (समिधानः) अच्छी प्रकार तेजस्वी होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्यं युक्त राष्ट्र और (तुरेभिः) शत्रु बल के नाशक और आशु कार्य करने वाले कीरों, (देवैः) उत्तम विद्वानों सहित (अर्वाङ् आयाहि) हमें विनष्ट-

युक्त होकर वा (अर्वाङ्) अध्यांदि से युक्त होकर आ, प्राप्त हो । (वर्हिः न) कुशा के आसन पर विद्वान् के समान (वर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन के ऊपर (आस्ताम्) विराजे । वह (स्वाहा) उत्तम वचन, सत्य किशा और शुभ से (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रों की माता के समान, (अदितिः) अखण्ड शासन और अदीन स्वभाव वाली हो । और (देवाः) देव, विद्वान् गण (अमृताः) राज्यों में दीर्घायु, सृत्युभय से रहित होकर (मादयन्ताम्) स्वयं सुखी हों और अन्यों को भी सुखी करें । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ अन्दः—१, ६, १० विराट् त्रिष्ठुप् । ४, ६, ७, ८ निचृतिष्ठुप् । ५ त्रिष्ठुप् । २ स्वराट् पंक्तिः । ३ मुरिक् पंक्तिः ॥

दर्शनं सूक्तम् ॥

आर्णि वो देवम् ग्रिभिः सुजोपा यजिष्ठं दूतमध्वरे कुरुध्वम् ।
यो मत्येषु निधुविर्झुतात्रा तपुर्मूर्धा धृतात्रः पावृकः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मत्येषु) मरणधर्मा प्राणियों, मनुष्यों के बीच (निश्रुतिः) नित्य, ध्रुव, स्थायीरूप से वर्तमान (अत्तावा) सत्य, न्याय प्रकाश और धनैश्वर्यादि का स्वयं भोक्ता, और अन्यों को उचित रूप में देने वाला, (तपुः-मूर्धा) सूर्य अग्नि, वा विद्युत के समान दुष्टों को सन्ताप देने के सामर्थ्य में सर्वोक्तुष्ट (धृतात्रः) अग्नि जिस प्रकार धृत को अन्नवत् ग्रहण करता, उसी प्रकार जो धृत से युक्त अन्न का भोजन करता है । और (पावकः) प्रजा के आचार व्यवहारों को पवित्र करता है एवं (स-जोपाः) समान भावसे सब के प्रति प्रीतियुक्त हो (वः) आप लोगों के बीच में उस (देवम्) तेजस्वी, व्यवहारज्ञ, दानशील, ज्ञानप्रकाशक (यजिष्ठं) अतिपूज्य, सत्संग

योग्य, (अभिप्र) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष को (अध्वरे) यज्ञ में अभिन्न तुल्य ही हिंसारहित, प्रजापालना अध्ययनाध्यापन, विद्याग्रहण आदि कार्यों में (दूतम्) सेवा के योग्य, (कृषुध्वम्) बनाओ। ऐसे ही विद्वान् को राजा लोग भी दूतवत् प्रमुख वक्ता रूप से नियत करें।

प्रोथुदश्वो न यवसेऽविष्यन्त्यदा मुहः सुंवरंणाद्वयस्थात् ।

आदस्य वातो अनु वाति शोचिरधं स्म ते ब्रजनं कृष्णमस्ति २

भा०—(अविष्यन्) तृप्ति चाहता हुआ (अशः) अश (यवसे) घास चारे के लिये (न) जिस प्रकार (प्रोथत्) हृष्पध्वनि करता, हिनहिनाता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (अविष्यन्) प्रजा की रक्षा करना चाहता हुआ (यवसे) शत्रु को छिन्न भिन्न करने के कार्य के लिए (प्रोथत्) उत्तम गर्जना करता हुआ (यदा) जब (मंहः संवरणात्) बड़े भारी रक्षास्थान, प्रकोट से (वि अस्यात्) विशेष रूप से अस्थान करे (आत्) अनन्तर (अस्य शोचिः अनु) उसके तेज के साथ साथ अभिन्न की उवाला के पीछे २ (वातः) वायुवत् प्रबल वृक्षों को उखाड़ देने वाले आंधी के समान प्रबल सैन्य समूह (अनु-वाति) जाता है (अथ) तब हे राजन् ! सेनापते ! (ते ब्रजनं) तेरा गमन करना (कृष्णम् अस्ति) बढ़ा चिन्ताकर्पक एवं शत्रुओं के मूल का टट्ठेने वाला होता है। अश, अभिन्न और राजा इन तीनों पक्षों में इलेष-विवरण पूर्वक सरल व्याख्या देखो यजुर्वेद, आलोक भाष्य (अ० १६।६२)। अध्यात्म में—व्यापक होने से परमेश्वर वा आत्मा, 'अश' है। दृश्य जगत् उसका हिरण्यमय संवरण है, वह जब उसके दूर होने पर प्रकट होता है, उसके तेज के साथ साथ यह वात, वायु, प्राण भी चलता है उसकी (ब्रजनं) प्राप्ति ही (कृष्णम्) आकर्षक, अति आनन्दप्रद और सब दुःख बन्धनों को काटने में समर्थ है।

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽप्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।

अच्छ्रु द्यामरुषो धूम पर्ति सं द्रुतो अग्र ईयस्ते हि देवान् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (नवजातस्य अजराः इधाना उत् चरन्ति) नये उत्पन्न अग्नि से गतिशील जलते लपट ऊपर उठते हैं (याम् धूमः अच्छ एति) आकाश की ओर धूम उठता है, (दूतः सन् देवान् ईयसे) अति सन्तापदायक तस्त होकर किरणों को प्रकट करता है इसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! राजन् ! विद्वन् ! (यस्य नवजातस्य) जिस नये, विद्वान् या पदाधिकारी रूप से बने (वृणः) सुखों के वर्षक, बलवान्, प्रबन्धक (ते) तेरे (इधानाः) तेजस्वी (अजराः) शत्रु कण्ठकों को उखाड़ देने वाले पुरुष (उत्-चरन्ति) उत्तम पद पर नियुक्त होकर राष्ट्र में विचरते हैं वह तू (धूमः) शत्रुओं को कंपा देने वाला, रोपरहित, तेजस्वी होकर (याम् अच्छ एति) सूर्यवत् तेजस्वी उच्च पद को प्राप्त होता है। वह ही हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (दूतः) शत्रुओं को सन्तापदायी होकर ही (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (सम् ईयसे) अच्छी तरह से प्राप्त हो ।

वि यस्य ते पृथिव्यां पाञ्जो अश्रेत्तुपु यदव्वा सुमवृक्तु जम्भैः ।
सेनेव सुष्ठा प्रसितिष्ठ पति यवं न दस्म जुह्वा विवक्ति ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (पाजः तुषु वि अश्रेत्) शीघ्र ही पृथिवी में विविध दिशाओं में फैल जाता है, जैसे जाठराग्नि (जम्भैः अज्ञा सम् अवृक्तु) दाता द्वारा अज्ञों को अग्नण कर समस्त शरीर में फैला देता है, जैसे अग्नि की (प्रसितिः) ज्वाला या विद्युत् की (प्रसितिः) उत्तम जकड़ या आकर्षण (सेना इव) सेना के समान फैलता है और जैसे वह (जुह्वा) ज्वाला से चमकता वा यवादिकों को भस्म करता है । उसी प्रकार हे राजन् ! सेनापते ! (यस्य ते) जिस तेरा (पाजः) बल (तृषु) अतिशीघ्र (पृथिव्याम् वि अश्रेत्) इस पृथिवी पर विविध प्रकार से विराजता है, (यत्) जो (जम्भैः) अज्ञों को दांतों के समान हिंसाकारी शास्त्रों अखों के बल से अज्ञवत् भोग्य देशों को (सम् अवृक्तु)

पुथक् २ विभक्त करता है । (ते प्रसितः) तेरा उत्तम प्रबन्ध, व्यवस्था (सेना इव सृष्टा) सेना के समान ही उत्तम व्यवस्थित होकर (एति) प्राप्त होता है । वह तू (जुहा) अपनी वाणी से (यत्वं) यव को मुख के समान खाद्य या विनाशय शत्रु का है (दस्म) शत्रुनाशक ! (विवेक्षि) नाश करता है ।

तमिद्वोषा तमुषसि यविष्टमग्निमत्यं न मर्जयन्तु नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ५।३॥

भा०—(नरः) मनुष्य (अत्यं न) अश्रु को जिस प्रकार (मर्जयन्तः) खरखरे से नित्य सायं प्रातः साफ़ करते और उसको स्वच्छ कर रखते हैं उसी प्रकार (निशिशानाः नरः) खूब तीक्ष्ण करने वाले मनुष्य (तम्) उस (यविष्टम्) युवा के समान अति बलशाली (अतिथिम्) व्यापक (अग्निम्) अग्नि वा विद्युत् को (दोषा उपसि) रात्रि-काल और प्रातः-काल में (मर्जयन्तः इत्) सदा स्वच्छ रखते, और धर्षण द्वारा प्रकट करें । (आहुतस्य) एकत्र एक स्थान पर सब ओर से सुरक्षित (वृष्णः) बलवान्, (अस्य) इसके (शोचिः) कान्ति को (योनौ) गृह में (दीदाय) मनुष्यवत् प्रकाशित कर । इसी प्रकार (नरः) उत्तम पुरुष (दोषा उपसि) रात दिन, प्रातः सायं (यविष्टं अतिथिं तम् अग्निम्) युवा, बलवान् अतिथिवत् पूज्य, सर्वोपरि विराजमान उस अग्रणीनायक को (निशिशानाः) निरन्तर तीक्ष्ण, एवं कर्म व्यवहार चतुरं करते हुए उसे (मर्जयन्तः) सदा शुद्ध, स्वच्छ आचारवान् बनाये रखते । (आहुतस्य अस्य वृष्णः) आदरपूर्वक स्वीकर किये इस बलवान् पुरुष का (शोचिः) तेज (योनौ) उसके उपयुक्त पद पर ही (दीदाय) प्रकाश करे । इति तृ० व० ॥

सुसन्दर्के स्वनीकुं प्रतीकुं वि यदुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न तै तन्युतुर्रेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥६॥

भा०—हे (स्वनीक) सुन्दर मुख वाले ! सुमुख ! विद्वन् ! हे

उत्तम सैन्य वाले ! सेनापते ! राजन् ! (यत्) जो तू (रुद्मः) कान्ति-
मान्, सूर्य के समान (उपाके) सबके समीप (रोचसे) सबको हचि-
कर प्रतीत होता है, सबके मन भाता है (ते प्रतीकं) तेरा प्रतीति
करने वाला, ज्ञान और बल उत्तम हो और तेरी (सु-सन्दर्भ) उत्तम शुभ
दृष्टि हो । (ते शुणः) तेरा बल, (दिवः न तन्यतुः न) आकाश सूर्य
या सेध विद्युत् के समान (एति) प्राप्त होता है । और तू (सूरः न चित्रः)
सूर्य के समान आश्चर्यकारक होकर (भानुम् प्रति चक्षि) अपने तेज
को प्रकट करे ।

यथा वृः स्वाहाग्रये दाशेऽम् परीळाभिर्वृतवृद्धिश्च हृव्यैः ।
तेभिर्नौ अश्वे अमितैर्महोभिः श्रुतं पूर्भिरायसीभिर्निं पाहि ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (इडाभिः धृतवृद्धिः हृव्यैः च अग्नये स्वाहा)
अज्ञों, और धृतयुक्त आहुति योग्य पदार्थों से अग्नि के लिये आहुति
दी जाती है, उसी प्रकार है मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के बीच में
(अग्नये) अग्नि के समान ज्ञान प्रकाशक और अग्नि वद पर स्थित
होकर सन्मार्ग पर ले जाने वाले पुरुष के लिये हम लोग (इडाभिः)
उत्तम वाणियों से और (धृतवृद्धिः) धृत से युक्त हव्यों अर्थात् भोजन
करने योग्य अज्ञों से (परि दाशेम) उसका सत्कार करें । हे (अग्ने)
अग्नणी ! विद्वन् ! तू (तेभिः) उन ३, नाना (अमितैः) अपरिमित
(महोभिः) तेजों से और (शतम्) सैकड़ों (आयसीभिः पूर्भिः)
लोह की बनी दड़ नगरियों से (नि पाहि) अच्छी प्रकार राष्ट्रकी रक्षा कर ।
या वा ते सन्ति दाशुपे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुहुष्याः ।
ताभिर्नैः सूनो सहस्रो नि पाहि स्मत्सुरीङ्गिरुज्ञातवेदः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे राजन् ! (वा) और (या) जो (ते
दाशुपे) तुल्य विद्या और न्याय के दाता की (अधृष्टा) निरादर करने के

अयोग्य, आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य, विनययुक्त (गिरः) वाणियाँ वा तेरी जो वाणियाँ (दाशुषे) करादि देने वाले, तुङ्ग पर अपने को त्यागने वाले प्रजाजन के हित के लिये हैं (वा) अथवा (याभिः) जिनसे (नृवतीः) उत्तम नायकों वाली सेनाओं और प्रजाओं को (उरूप्याः) रक्षा करता है, हे (सहसः सूनो) बलशाली सैन्य के चालक ! हे (जात-वेदः) ज्ञानवन् विद्वन् वा ऐश्वर्यवन् ! तू (ताभिः) उनसे (नः) हमारे (जरितून्) उपदेश करने वाले (सूरीन्) विद्वानों को (नि पाहि) अच्छी प्रकार पालन कर ।

**निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुकरुः पावकः ॥९॥**

भा०—(यत्) जो (पूता इव स्वधितिः) शुद्ध स्वच्छ शब्द की धार के समान (शुचिः) कान्तियुक्त, (निर्गात्) अपने गृह से निकले, और (स्वया कृपा) अपनी कृपा, वा सामर्थ्य और (तन्वा) देह से (रोचमानः) अभिवत् तेज से चमकता है, (यः) जो (मात्रोः) माता पिता के बीच (उशेन्यः) कामना करने योग्य पुत्र के समान (आ जनिष्ट) स्नेहपूर्वक अरणियों के बीच अभिके समान ही प्रकट होता है, वह (सुकरुः) उत्तम कर्मों को करता हुआ (पावकः) अभिवत् पवित्र करने वाला होकर (देवयज्याम्) विद्वानों के आदर तथा सत्संग के लिये यत्नशील रहे ।

**एता नो आग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु युयं पात स्वस्तिभिः सदानः १०।४**

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (नः) हमारे (एता) इन नाना (सौभगानि) सुखजनक, उत्तम ऐश्वर्योंको (दिदीहि) प्रकाशित कर । हम लोग (अपि) अवश्य (सुचेतसं) उत्तम चित्त वाली

(कतुम्) शुद्धि को (वतेम्) प्राप्त करें । (स्तोत्रभ्यः) स्तुतिशील और (गृणते) उपदेश-कुशल पुरुष के लिये (विश्वा च) सब प्रकार के सौ-भाग्य (सन्तु) हों और हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी कर्मों से (नः) हमारी (सदा पात) सदा रक्षा करो ।

[४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आग्निदेवता ॥ अन्दः—१, ३, ४, ७ भुरिक् पांकिः । ६ स्वराट् पांकिः । ८, ९ पांकिः । २, ५ निचृत्विष्टुप् । १० विराट् विष्टुप् ॥
दशर्च सूक्तम् ॥

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हृव्यं मार्तं चाम्रये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जन्म्यन्तर्विश्वानि विद्वाना जिगाति ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों में से (यः) जो (शुक्राय) शुद्ध (भानवे) ज्ञान प्रकाश प्राप्त करने के लिये और (अम्रये) ज्ञान-वान् परमेश्वर की उपासना करने और अग्नि में आहुति देने के लिये (सु-पूत) शुद्ध पवित्र (हृव्यं) आहुति देने योग्य अनादि पदार्थ और (मतिं) उत्तम शुद्धि को (जिगाति) प्राप्त करता है, और (यः) जो (दैव्यानि) विद्वानों और (मानुषा) साधारण मनुष्यों के (विश्वानि) समस्त (जन्मपि) जन्मों को भी (अन्तः) अपने भीतर (जिगाति) प्राप्त कर लेता है । उस विद्वान् के लिये आप भी (हृव्यं) उत्तम पदार्थ (प्र भरध्वम्) प्राप्त कराओ । स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्टो अजनिष्ठ मातुः ।

सं यं वना युवते शुचिं दन्मूरि चिदन्ना समिदंति सुद्यः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (मातुः अजनिष्ठ) माता से बालक के समान ज्ञानदाता गुरु से उत्पन्न होता है । (सः) वह (यतः) यम नियम का पालक, (यविष्टः) उत्तम युवा, और (तरुणः) तरुण (गृत्सः) विद्वान् (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी (अस्तु) हो । वह (शुचिदन्) शुद्ध-

विमल दन्तों वाला, स्वच्छ मुख हो और (वना) सूर्यवत् किरणों को (युवते) प्राप्त करता है और वह (समित् चित्) काष्ठों को अग्नि के समान (सद्यः) शीघ्र ही (भूरि चित् अज्ञा) नाना प्रकार के अन्धों, वा भोग्य ऐश्वर्यों का (अत्ति) भोग करता है ।

अस्य देवस्य सुसद्यनीके यं मर्त्सुसः श्येतं जगृभ्रे ।

नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोक्तमित्रायवै शुशोच ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) विद्वान् पुरुष को (संसदि) सभा वा (अन्नीके) सैन्य में (यं) जिस नायक को (मर्त्सुसः) मनुष्य (श्येतं) शुद्ध चरित्र जान कर (जगृभ्रे) स्वीकार करते हैं (यः) जो (पौरुषेयीम् गृभम्) पुरुषों के व्यवहार योग्य पदार्थों के लेने देने की विधि का (नि उवोच) नियमित रीति से उपदेश करता है और जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (आयवे) राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (दुरोक्तम्) शत्रुओं से दुःख से सेवने योग्य राष्ट्र वा सैन्य बल को (शुशोच) चमका देता है वही सेनानायक वा राजा होने योग्य है ।

श्रयं कृविरकविषु प्रचेता मर्त्सुग्निरमृतो नि धायि ।

स मा नो अत्र जुहुरः सहस्रः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (अग्निः) अग्नि के समान अज्ञान अन्धकार के बीच भी ज्ञान का प्रकाश करने हारा, (कविः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी, (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान, उत्कृष्ट चित्त वाला, (अमृतः) दीर्घायु, (अक- विषु) अविद्वानों के बीच (नि धायि) स्थापित हो । (सः) वह (नः) हमें (अत्र) इस लोक में (मा जुहुरः) विनाश न करे, हमसे कुटिल वर्ताव न करे । हे अग्ने, तेजस्विन ! (ते) तेरे अधीन हम लोग (सदा) सदा (सु-मनसः) शुभ चित्त वाले होकर (स्याम) रहें ।

आ यो योनि देवकृतं सुसादु क्रत्वा ह्यग्निरमृतां अतरीत् ।

तमोषधीश्च वृनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं विभर्ति ॥५॥६॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (देवकृतं योनिमाससाद्) विद्वानों द्वारा स्थापन योग्य स्थान कुण्ड आदि में स्थापित होता, (क्रत्वा अमृतान् अतारीत्) कर्म वा यज्ञद्वारा जीवों को संकट से पार करता और (ओषधीः वनिनः भूमिः च विभर्ति) इसको ओषधियाँ और बन के वृक्ष अरणि आदि, और भूमि आदि धारण करते हैं उसी प्रकार (यः) जो विद्वान् तेजस्वी पुरुष (देवकृतं) विद्याभिलाषी विद्यार्थियों के लिये बनाये (योनि) गृह पाठशालादि को (आ ससाद्) प्राप्त होता है, (च) और जिस प्रकार समस्त विश्व के धारक अग्नि को (ओषधयः वनिनः भूमिः च) ओषधियें अपने रस में, और बन के वृक्ष काष्ठादि, आग के रूप में और भूमि अपने गर्भ में ज्वालामुखी आदि से प्रकट होने वाली अग्नि को धारण करते हैं: उसी प्रकार (विश्व-धायसं) समस्त ज्ञान के पालन करने वाले (तम्) उसको (वनिनः) वनस्थ, वानप्रस्थी विद्वान् जन (ओषधीः च भूमिः च गर्भः) गर्भ को ओषधियाँ और उत्पादक भूमि के माता के समान (विभर्ति) धारण करते और पालते पोषते हैं । वह भी उन सबको पालन पोषण करे इसी प्रकार जो वीर तेजस्वी पुरुष (देवकृतं योनिम् आससाद्) विद्वानों से दिये पद को प्राप्त करता, (क्रत्वा अमृतान् अतारीत्) अपने कर्म सामर्थ्य से जीवित मनुष्यों को संकट से पार करता, उस (विश्व-धायसं) समस्त राष्ट्र के धारक पोषक, उनको दूध धिलाने वाली माता की तरह पालक पोषक राजा को (ओषधीः) बल वीर्यं धारण करने वाली सेनाएँ और (वनिनः) तेजस्वी, धनी, और शब्दधर लोग और (भूमिः च) और भूमि राष्ट्र, ये सब पुष्ट करते और वह भी उनको (विभर्ति) पालन पोषण करता है । इति पञ्चमो वर्गः ॥

ईशे ह्य॑मिरमृतस्य भूरेरीशेऽरायः सुवीर्यस्य दातोः ।

मा त्वा वृयं सहसावन्नवीरा माप्सेचः परि षदाम् मादुवः ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निः अमृतस्य ईशे) अग्नि, विद्युत्, वा सूर्य जिस प्रकार

अमृत, जल, अन्न वा जीवन का प्रभु है, वह उसको उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अभिः) ज्ञानी पुरुष (हि) निश्चय से (भूरेः अमृतस्य) बड़े भागी मोक्षमय अमृत को (ईशे) प्राप्त करे और वह (भूरेः रायः) बहुत धन, ऐश्वर्य और (सु-वीर्यस्य) बहुत उत्तम बल (भूरेः दातोः) बहुत अधिक दान को भी (ईशे) करने में समर्थ हो । हे (सहसावन्) बहुत बलयुक्त (वयम्) हम लोग (अवीराः) पुत्र सन्तानादि से रहित, बल युक्त प्राणों से रहित और वीरता से रहित होकर (त्वा मा परि सदाम) तेरे इर्द गिर्द न बैठे रहें । और हम (अप्सवः) केवल दर्शनीय रूप ही बनकर (मा परि सदाम) न बैठे रहें । और (मा अद्ववः) और हम सेवा परिचर्या से रहित, निकम्मे होकर भी न रहें । अर्थात् हम तेरे अधीन वीर रूपवान्, कर्मण्य और उत्तम सेवक होकर रहें ।

पुरिषद्युं ह्यरणस्य रेकणो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।

न शेषोऽग्ने अन्यजातमुस्त्यचेतानस्य मा पुथो विदुक्षः ॥ ७ ॥१०

भा०—(अरणस्य) ऋण से रहित, पुरुष का (रेकणः) धन (परि-सदाम) पर्याप्त होता है, इसलिये हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! हम लोग (नित्यस्य) नित्य, स्थायी (अरणस्य) ऋण और रण, संग्राम, लड़ाई, झगड़े आदि से मुक्त (रायः) धनैश्वर्य के भी (पतयः) स्वामी (स्याम) हों । क्योंकि ऋण लिया और लड़ाई झगड़े में पड़ा हुआ धन स्थायी नहीं होता । वह पराया होने से हाथ से निकल जाता है । इसी प्रकार (अरणस्य) जिसके उत्पन्न करने में रमण अर्थात् स्वयं वीर्याधान नहीं किया एसे पुरुष का (रेकणः) अन्य के वीर्य सेचन से उत्पन्न सन्तान भी (परि-सद्यं) त्याज्य ही होता है । क्यों ? क्योंकि (अन्य-जातम् शेषः) दूसरे से प्राप्त किया धन और पुत्र दोनों ही (न अस्ति) नहीं के बराबर है । इसलिये हे विद्वन् ! पराये का धन और पराये का पुत्र तो (अचेतानस्य) ना समझ आदि का होता है । अविद्वान्, अप्रयत्नशील पुरुष दूसरे के धन और

पुत्र को अपना समझ बैठते हैं। वस्तुतः हे विद्वन् ! तू (पथः मा वि दुक्षः) सन्मार्गाँ को दूषित मत कर। अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने और परिग्रहम से धनोपार्जन करने आदि के शास्त्रीय उपायों पर दोषारोपण मत कर। अथवा (अचेतानस्य) अनजान, नाबालिंग के (पथः) प्राप्त करने योग्य धनादि को (मा वि दुक्षः) दूषित मत कर, उस पर भी अपना हक आदि जमाने कीटेडी चाल न कर। अथवा (परिपद्यं रेक्षः अन्यजातं च शेषः न अस्ति) परिपद अर्थात् जन सभा का रूपया और दूसरे से उत्पन्न पुत्र दोनों ही नहीं के समान हैं। वे अपने नहीं होते। हम (अरणस्य नित्यस्व रेक्षः पतयः स्याम) जगड़े, विवाद से रहित स्थायी धन के स्वामी हों। (अचेतानस्य पथः मा वि दुक्षः) अनजान मूर्ख के मार्गों को पाखण्डादि से दूषित मत करो (स्वाठ दयाठ) ॥

नहि ग्रभायारणः सुशेषोऽन्योदये मनसा मन्तवा ॐ
॥४॥

अधा चिदोक्तः पुनरित्स पृत्या नौ वाज्यभीषण्लेव कर्त्तः ॥ ८ ॥

भा०—(अरणः) जो सुन्दर, उत्तम रूप, एवं गुण स्वभाव वाला
 न हो वा जो क्रृष्ण दूर न कर सके ऐसा (सुन्शेवः) उत्तम सुखदायक
 (अन्वोदयः) दूसरे के पेट से उत्पन्न हुआ सन्तान (मनसा उ ग्रभाय
 मन्तवै नहि) मन से भी अपनालेने की नहीं सोचनी चाहिये । परक्षेत्र
 में उत्पन्न पुत्र चाहै कितना ही सुखद हो तो भी उससे पितृकृष्ण नहीं उत्तरता
 इसलिये उसको चित्त से कभी अपना न मानना चाहिये । (अध चित्)
 और (सः पुत्रः) वह पुत्र ही (ओकः इत् एति) गृह को प्राप्त करता
 है, जिसको पुत्र बनाया जाता है वह तो गृहादि सम्पत्ति का स्वामी होता
 है इसलिये पराये को पुत्र बना लेने पर पराया ही घर का स्वामी होजाता
 है । यह अनर्थ है, इसलिये (नः) हमें (नव्यः) स्तुति योग्य, उत्तम,
 (वाजी) बलवान् (अभिषाद्) शत्रुओं को पराजय करने वाला पुत्र
 (एतु) प्राप्त हो ।

त्वमर्गे वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्वव्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥१॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन् ! राजन् ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् परंतप ! (त्वं) न् (नः) हमें (वनुष्यतः) हिंसाकारी और (अवद्यात्) निन्दनीय कर्मों, पुरुषों और जन्मुओं से (नि पाहि) निरन्तर रक्षा कर । ((ध्वस्मन्वत्) दोषों से रहित (पाथः) पथ और (ध्वस्मन्-वत् पाथः) शत्रुओं का नाश करने के सामर्थ्य वाला, राष्ट्र-पालक बल (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो । (स्पृहयाय्यः रयिः) सब से चाहने योग्य धन भी (सहस्री) सहस्रों की संख्या में, अपरिमित (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो ।

एता नो अग्ने सौभग्या दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १० ६

भा०—व्याख्या देखो सू० ३ मन्त्र १० ॥ इति षष्ठो वर्गः ॥

[५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ८, ९ निचृत्विष्टुप् । ५, ७ स्वराट् पंक्तिः । ६ पंक्तिः ॥ नवर्च सूक्तम् ॥

प्रायर्थे तु वसे भरध्वं गिरैँ दिवो अरतर्थे पृथिव्याः ।

यो विश्वेषामृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्धिः ॥१॥

भा०—(यः) जो (विश्वेषाम्) समस्त (अमृतानाम्) नाश न होने वाले अग्नि, आकाश आदि नित्य पदार्थों और जीवात्माओं के (उपस्थे) समीप में (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों से उपासित, सब में विद्यमान है और जो (जागृवद्धिः) अविद्या की नींद त्याग कर जागने वाले ज्ञानी पुरुषों से उपासित होता और (ववृधे) सबको बढ़ाता, और स्वयं भी

सबसे महान् है। उस (दिवः पृथिव्याः अरतये) सूर्य और पृथिवी में
व्यापक, उनके भी स्वामी, (तवसे) अनन्त बलशाली, (अग्नये) अग्नि
के समान प्रकाशस्तररूप प्रभु की उपासना के लिये (गिरं प्र भरध्वम्)
वाणी का प्रयोग करो, उसकी स्तुति प्रार्थना किया करो ।

पृष्ठे दिवि धाय्युग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ॥
स मानुषीरुभि विश्वो विभाति वैश्वानुरो वावृद्धानो वरेण ॥ २ ॥

भा०—जो (अग्निः) अग्निवत् स्वयं प्रकाश, महान् आत्मा, (दिवि
पृथिव्यां) तेजस्वी पदार्थ सूर्य आदि, और पृथिवी आदि प्रकाश रहित पदार्थों
में भी (धायि) अग्निवत् उनको धारण करता है, जो (सिन्धूनां नेता)
बहने वाले प्रवाहों, वेग से गति करने वाले सूर्यादि का भी संचालक है
जो, (स्तियानाम् वृषभः) अप् अर्थात् प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच
विद्यमान और अनन्त बलशाली, उनको नियम, व्यवहार में वांधने वाला
है, (सः) वह (अग्निः) सबका अग्र नायक, सर्वोत्तम संचालक ही
(वैश्वानरः) सबको ठीक २ मार्ग में चलाने वाला होने से 'वैश्वानर' कहाता
है। वही प्रभु (मानुषीः विश्वः) समस्त मनुष्य प्रजाओं को भी (अभि विभाति)
प्रकाशित करता और उनमें स्वयं भी प्रकाशित होता है। वह समस्त मनु
ष्यों में विद्यमान होने से भी 'वैश्वानर' है। वह (वरेण) सर्वश्रेष्ठ स्वभाव से
ही (वृद्धानः) सदा सबको बढ़ाने हारा है। स्वयं भी सबसे महान् है।
त्वद्दिया विश्वा आयुष्मसिक्षीरसमुना जहर्तीर्भेजनानि ।

वैश्वानर पुरवे शोशुचानः पुरो यदेश्वे दुरयुजदीदिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों के हृदयों में विराजमान,
सबके हित् ! हे (अग्ने) सबके पूर्व विद्यमान ! अग्निवत् स्वयं-
प्रकाश, सर्वप्रकाशक (यत्) जो (पुरवे) मनुष्यमात्र के लिये (शोशु-
चानः) प्रकाशक ज्ञानरूप में प्रकाश करता हुआ, (पुरः दरयन्) ज्ञान

वज्र से देह रूप आत्मा के पुरों अर्थात् देह-बन्धनों को काटता हुआ
 (अदीदेः) ज्ञान को प्रकाशित करता है (त्वद् भिया) तेरे ही भय
 से (असिक्षीः) रात्रि के समान अन्धकारमय दशाओं को प्राप्त (विशः)
 जीव प्रजाएँ भी (असमना) एक समान चित्त न होकर (भोजनानि
 जहतीः) नाना भोग्य पदार्थों को त्याग कर (आयन्) तेरी शरण
 आती हैं । वीर राजा के पक्ष में—वीर राजा तेजस्वी होकर (पुरः दरथन्
 अदीदेः) शत्रु के किलों, नगरों को तोड़ता हुआ प्रताप से चमकता है उस
 में भय से शत्रु सेनाएँ भोजनों तक त्याग कर (असमनाः) संग्राम छोड़
 कर (असिक्षीः आयन्) अन्धकारमय गुफाओं का आश्रय लेती है ।

तव॑ त्रिधातु॑ पृथिवी॑ उत॑ द्यौ॒श्वानर॑ ब्र॒तम॑ग्ने॒ सचन्त॑ ।

त्वं॑ भासा॑ रोदसी॑ आ॑ तत॑न्थाज॑स्तेण॑ शोचिषा॑ शोशुचानः॑ ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक ! हे (वैश्वानर) समस्त संसार के
 चलाने हारे, (त्रिधातु) तीनों गुणों को धारण करने वाली, परम सूक्ष्मतत्व
 प्रकृति और (पृथिवी उत द्यौः) पृथिवी अर्थात् प्रकाशसहित समस्त
 पदार्थ भी (तव ब्रतम्) तेरी ही कर्म-व्यवस्था को (सचन्ते) धारण
 करते हैं । वे तेरे ही सर्वोपरि शक्ति के आश्रय पर उसमें नित्य सम्बद्ध
 हैं । हे प्रभो ! (त्वं) तू (भासा) अपनी दीसि से (रोदसी) भूमि
 और आकाश, सर्वत्र (आ ततन्थ) व्याप रहा है । तू (अजस्तेण) अविनाशी,
 निरन्तर स्थिर रहने वाले (शोचिषा) प्रकाश, तेज से सूर्यवत्
 (शोशुचानः) प्रकाशमान रहता है ।

त्वाम॑ग्ने॑ हुरितो॑ वावशाना॑ गिरः॑ सचन्ते॑ धुन॑यो॑ घृताचीः॑ ।

पाति॑ कृष्णनां॑ रुथर्य॑ रथीणां॑ वैश्वानरमुषसां॑ केतुमहोम्॑ ॥५॥३॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (वाव-
 शानाः) चाहती हुई (हरितः) दिशावासी प्रजाएँ, (गिरः) वेद

वाणियों और (धृताचीः धूनयः) सुसुद्र को जलयुक्त नदियों के समान (कृष्टीनां पतिम्) समस्त प्रजाओं, मनुष्यों के पालक, (रथ्यम्) रथयोग्य अश्व वा सारथिवत् (रथीणां) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले (उपसाम्) प्रभात वेलाओं और (अह्नाम्) दिनों के (केतुम्) प्रकट करने वाले सूर्य के समान (उपसां केतुम्) पापों, दुर्भावों को भस्म करने एवं कामना करने वालों के ज्ञापक (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के सञ्चालक सर्व हितू (त्वाम्) तुक्ष परमेश्वर को (सचन्ते) प्राप्त होते हैं । इति सप्तमो वर्गः ॥

त्वे असुर्यै वस्वो न्यूरवन्कतुं हि ते मित्रमहो जुषन्ते ।

त्वं दस्युरोक्सो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्यैय ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) स्नेह करने वालों से शून्य और उनका स्वयं भी आदर करने वाले ! प्रभो ! (वसवः) वसने वाले जीवगण (त्वे) तेरे ही में (असुर्य) मेघ में विद्यमान परम उदार सामर्थ्य को (नि क्रष्णवन्) सब प्रकार से साधते हैं, वे (ते हि) निश्चय से तो तेरे (कतुं जुषन्त) कर्म और ज्ञान को (जुषन्त) प्रेमपूर्वक सेवन करते हैं । (त्वं) तू हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (आर्याय) सज्जन, श्रेष्ठ, एवं कर्मण्य और स्वामी होने थोग्य पुरुष के लिये (उरु) बहुत भारी (ज्योतिः जनयन्) ज्ञानप्रकाश करता हुआ (ओक्सः) उसके समवाय या निवासस्थान, देह से (दस्यून्) दुष्टों, दुष्टभावों और जनों को भी (आ अजः) दूर करता है ।

स जायमानः परमे द्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सूद्यः ।

त्वं भुवना जुनयन्नभि क्रन्धपत्याय जातवेदो दशस्यन् ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह तू हे परमेश्वर ! (परमे) सबसे उत्कृष्ट, (ज्योमन्) विशेष रक्षा करने वाले पद पर (जायमानः) सर्व रक्षक रूप से प्रकट होता हुआ (वायुः न) प्राण के तुल्य या जीवनाधार वायु के

समान (पाथः) समस्त विश्व का पालन करता है और (सदः) संकट में तुरन्त, विना विलम्ब के (परि पासि) सब प्रकार से बचा लेता है । हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न भुवनों, प्राणियों और समस्त पदार्थों के जानने हारे प्रभो ! तू (भुवना) समस्त लोकों को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ और (अपत्याय) पुत्र के समान समस्त जीव संसार को (अभिकृत्) ज्ञान का मेघ वा विद्युत्वत् निष्पक्षपात रूप से गर्जनवर्पणादिवत् उपदेश करता हुआ और उनके (दशस्यान्) सुख सामग्री, दीर्घायु, भोग्य और भोग शक्ति प्रदान करता हुआ (परि पासि) सबको पालन करता है ।

तामर्गे श्रुस्मे इष्मेरयस्तु वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।

यथा राधः पिन्वसि विश्ववारं पृथु श्रवो दाशुषे मत्याय ॥८॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (द्युमतीम् इष्म् ईरयति) आकाश से आने वाली विद्युत् सूर्य के तेज से युक्त वृष्टि को प्रेरित करती है इसी प्रकार हे (अग्ने) तेजःस्वरूप ! हे (जातवेदः) मतिमन् ! दुष्टों को संतप्त करने हारे प्रभो ! आप (अस्मे) हमारे भले के लिये (ताम्) उस (द्युमतीम्) कामना योग्य (इष्म्) अज्ञ-समृद्धि को (ईरयस्तु) प्रदान कर । हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों के भीतर बसने वाले ! तू (यथा) जिस भी प्रकार से (राधः पिन्वसि) धन की वृष्टि करता है हे (विश्ववार) सब के वरने योग्य और सब संकटों को दूर करने हारे आप (दाशुषे मत्याय) दानशील मनुष्य को (पृथु श्रवः) बहुत बड़ा यश, अज्ञ और ज्ञान (पिन्वसि) प्रदान करता है ।

तं नो अग्ने सुघवङ्ग्यः पुरुञ्जुर्यिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।

वैश्वानर महिं नः शर्मं यच्छ्रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सुजोषाः ९।८॥

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ! ज्ञानवन् ! आप (नः) हममें से

(मववदभ्यः) उत्तम पूजनीय पापादिरहित, सात्त्विक ऐश्वर्य वाले पुरुष को
 (तं) उस नाना प्रकार के (पुरुष्कृम्) बहुत प्रकार के अल्पों से सम्पन्न
 (रथिम्) ऐश्वर्य और (श्रुत्यं वाजं) श्रवण करने योग्य ज्ञान (युवस्त्र)
 प्रदान कर, हे (वैश्वानर) सर्व मनुष्यों के हित करने वाले प्रभो ! आप
 (रुद्रेभिः) पृथिवी अग्नि भादि हृष्टयों और (वसुभिः) प्राणों सहित
 (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः) हमें (महि) बड़ी (शर्म
 यच्छ) शान्ति और शुखमय शरण (यच्छ) प्रदान कर। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ अन्दः—१, ४, ५ निचृतिर्थिष्ठप् । ६ विराट्
 विष्ठप् । २ निचृतपंक्तिः । ३, ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

प्र सुप्राज्ञो असुरस्य प्रशस्ति पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
 इन्द्रस्येव प्र तुवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्तिम् ॥१॥

भा०—(असुरस्य) बलवान्, मेघ के समान उदार (सन्नाजः)
 सर्वत्र समान भाव से, और अच्छी प्रकार चमकने वाले, अति तेजस्वी,
 (कृष्टीनाम्) मनुष्यों के बीच, उनके लिये (अनु-माद्यस्य) उसके हर्ष
 में अन्यों को भी हर्षित होने योग्य (तवसः) बलवान् (पुंसः) पुरुष
 की (इन्द्रस्य इव) सूर्य, विद्युत्, वायु के समान ही (प्रशस्ति)
 उत्तम प्रशंसा और (कृतानि) उनके समान उसके कर्तव्य कर्मों को
 (वन्दे) वर्णन करता हूँ। और (दारु) शत्रु-सैन्यों, दुःखों और
 शत्रु-नगरों के विदारण करने वाले, तथा दुष्टों के भयढ़ाता की (वन्दमानः)
 स्तुति करता हुआ मैं (विवक्तिम्) उनके विशेष २ गुणों और कर्तव्यों का
 भी वर्णन करता हूँ। यहां यह भी स्पष्ट है कि, सन्नाट्, बलवान्,
 उत्तम पुरुष का वर्णन भी वेद में 'हन्द्र' के समान ही किया गया है।
 कविं केतुं धासि भानुमद्रैहिन्वन्ति राज्यं रोद्यस्योः ।
 पुरुन्दरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेवृतानि पूर्व्या मुहानि ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (रोदस्योः) सूर्य पृथिवी के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों के बीच में (कविम्) अति बुद्धिमान्, (केतुम्) ज्ञानवान्, अन्यों को सन्मार्ग बतलाने वाले, (धासिम्) अन्नवत् पालक पोषक, (भानुम्) दीसियुक्त, तेजस्वी (राज्यम्) राजा के पद के योग्य और (शं) प्रजाओं को शान्तिदायक और कल्याणकारक पुरुष को (हिन्चन्ति) प्राप्त होते और उसको बढ़ाते हैं । (अद्रेः) मेघ के समान, उदार वा प्रबल शशास्त्र बल से सम्पन्न, (पुरन्दरस्य) शत्रु के नगरों को तोड़ने वाले, (अम्भेः) अग्नि के समान तेजस्वी, पुरुष के (पूर्वं) पूर्व के जनों से किये, वा उपदेश किये, श्रेष्ठ २ (महानि) बड़े २ आदर योग्य (व्रतानि) कर्तव्य कर्मों का (आ विवासे) वर्णन करता हूँ ।

न्यकृतून्ग्रथिनौ मृध्रवाचः पूर्णिरश्रद्धाँ अवृद्धाँ अयज्ञान् ।

प्रप्र तान्दस्यूरग्निर्विवायु पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥३॥

भा०—(पूर्वः) सब से मुख्य, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (अक्रतून्) कर्महीन और प्रजाहीन, मूर्ख, (ग्रथिनः) कुटलाचारी, वा अज्ञान में बंधे (मृध्रवाचः) दूसरों के पीड़ा देने वाली, असत्य वाणी बोलने वाले, (पणीन्) व्यवहारी, और (अश्रद्धान्) सत्य बचन, कर्मादि को धारण न करने वाले, (अश्रद्धान्) दूसरों को न बढ़ाने देने वाले, (अयज्ञान्) यज्ञ, सत्संग, अग्निहोत्र, दान, उपासनादि से रहित, और (तान्) उन २ नाना (अपरान्) अन्य २ (अयज्यून्) अन्यों का सत्कार न करने वाले लोगों को (प्र विवाय, निचकार) दूर करे और पराजित करे ।

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।

तमीशान्तं वस्त्रो अस्ति गृणीषेऽनानं दमर्यन्तं पृतन्यून् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अपाचीने) नीचे के या दूर के (तमसि)

अन्धकार में (मदन्ती) सुखी व मत्त रहने वाली प्रजाओं को अपनी (शर्चीभिः) शक्तियों, वाणियों और किरणों से सूर्य के समान (नृतमः) पुरुषोत्तम (प्राचीः चकार) आगे और उत्तम पद की ओर अग्रसर करता है (तम्) उस (वस्वः ईशानम्) वसे समस्त संसार और ऐश्वर्य के स्वामी, (पृतन्यून्) सेनाओं को चाहने वाले, उनके स्वामियों को भी (दमयन्तम्) दमन करते हुए (अनानतं) अति विनयी, (अग्निम्) अग्रणी सेनानायक पुरुष के (गृणीपे) गुण वर्णन करता है। (२) इसी प्रकार परमेश्वर अपनी वेद वाणियों से नीचे कोटि के तमोगुण में वर्तमान प्रजाओं को भी उन्नत करता है, वह सब का ईशान, स्वामी है, उसकी मैं स्तुति करूँ।

यो देहोऽनेनमयद्वधुस्नैयोऽर्थपत्नीरुपसंश्चकार ।

स निरुद्ध्या नहुयो युहो अग्निर्विशश्चके बलिहृतः सहोभिः ॥५॥

भा०—(यः) जो (देहः) कर आदि द्वारा बढ़ाने योग्य, वेह में आत्मा के समान राष्ट्र में बसने वाला, (वधस्नैः) वध, दण्डादि से राष्ट्र को शुद्ध, स्वच्छ, निष्कण्टक करने वाले राजभूत्यों, न्यायाधीश आदि शासकों द्वारा (अनमयत्) दुष्टों को दबाता और (वधस्नैः अनमयत्) वधकारी शख्तों द्वारा शत्रु-कण्टकों को मार्ग से साफ करने वाले सैन्यों से शत्रु को नमाता है और जो सुरम्य व्यवस्था द्वारा (अर्थपत्नीः) स्वामी की पत्नियों को (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान सुभूषित, (चकार) करता है, अर्थात् जिसके शासन में विवाहित स्त्रियों का सौभाग्य स्थिर रहता है, (सः) वह (यहः) महान् (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष भी स्वयं (नहुपः) सत्य नियम में बद्ध होकर (विशः निरुद्ध्य) प्रजाओं को नियमों में नियन्त्रित करके (सहोभिः) शत्रु-परायकारी बलों से शत्रुओं को भी (बलिहृतः चक्रे) कर देने वाला बनाता है।

यस्य शर्मनुप विश्वे जनासु एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानुरो वरुमा रोदस्योराग्निः संसाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य शर्मन्) जिसके सुखप्रद गृहवत् शरण में रहकर (विश्वे जनासः) समस्त मनुष्य, (सुमति भिक्षमाणाः) उत्तम मति, ज्ञान की याचना करते हुए (एवैः) ज्ञानों और शुभ गुणों सहित (उप तस्थुः) विराजते हैं । वह (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच में सूर्य के समीन (पित्रोः) माता और पिता दोनों के (उपस्थम्) समीप, दोनों के तुल्य आदरणीय (वरम्) श्रेष्ठ पद को (आ संसाद) प्राप्त करता है । आ देवो ददे बुध्न्याऽवसूनि वैश्वानुर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरुदा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७॥१॥

भा०—(सूर्यस्य उदिता वैश्वानरः) जिस प्रकार सूर्य के उदयकाल में अग्नि ही (बुध्न्या वसूनि आ ददे) अन्तरिक्ष में छाये अन्धकारों को अस लेता है (दिवः पृथिव्याः आ ददे) आकाश और पृथिवी के अन्धकारों को भी हर लेता है उसी प्रकार (देवः) दानशील, (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितैषी पुरुष (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के समान अपने अभ्युदयकाल में (बुध्न्या वसूनि) भृत्यादि को कार्यों में बांधने वाले ऐश्वर्यों को (आ ददे) प्राप्त करे । और वह (अवरात् समुद्रात्) उरे के, समीपवर्ती समुद्र से और (परस्मात्) दूरस्थ समुद्र तट से, भी (दिवः, पृथिव्याः) व्यवहार, व्यापार से, तथा (पृथिव्याः) पृथिवी से भी धन और अज्ञ, रत्नादि नाना पदार्थ (आ, आ, आ ददे) पुनः पुनः प्राप्त करे । इति नवमो वर्गः ॥

[७]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ विष्टुप् । ४, ५, ६ निचृतिं-
ष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ७ स्वराट् पंक्तिः । सप्तर्च सूक्तम् ॥

प्र वौ देवं चित्सहस्रान्मन्मिमश्चं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा॑ नो दुतो अध्वरस्य विद्वान्तमन्ना॑ देवेषु विविदे मितद्वुः ॥१॥

भा०—(वाजिनं अश्वं नमोभिः) जिस प्रकार वेगवान् अश्व को विनम्र करने के लिये कशादि (चावक) साधनों से प्रेरित किया जाता है और जिस प्रकार उसको (नमोभिः) अज्ञों से बढ़ाते, पुष्ट करते हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के बीच (देवं चित्) सूर्यवत् तेजस्वी, अग्नि के समान प्रतापी, ज्ञानप्रकाशक, (सहस्रान्म्) बलवान् (अश्वम्) राष्ट्र के भोक्ता, (वाजिनं) ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् पुरुषोंका भी (नमोभिः प्र हिषे) उत्तम आदर सत्कारों से प्रेरित, प्रार्थित करें और शशादि से उसे बढ़ावें । हे विद्वन् ! राजन ! तू (त्वना) स्वयं अपने सामर्थ्य से (मितद्वुः) परिमित भय वाला, (देवेषु) विद्वान् श्रेष्ठ पुरुषों के बीच (विविदे) विदित हो, प्रसिद्धि और परिचय प्राप्त कर और तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारे (अध्वरस्य) यज्ञ, अविनाशय कर्तव्य का (दूतः) अग्निवत् प्रकाशक (भव) हो ।

आ याह्यग्ने पृथग्नाऽनु स्वा मन्द्रो देवानां सुख्यं जुपाणः ।

आ सानु शुष्मैर्नद्यन्पृथिव्या जम्भेभिर्वैशुशध्वनानि ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (देवानां सख्यं) विद्वान्, तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक किरणवत् विद्वानों के (सख्यं) भिन्न भाव को (जुपाणः) प्राप्त करता हुआ (मन्द्रः) सबको हर्ष देता हुआ (स्वाः) अपनी (पथ्याः) धर्म मार्ग पर चलने वाली प्रजाओं को (अनु आयाहि) अनुकूल रूप से प्राप्त कर, हमें प्राप्त हो और सिंह वा मेघवत् (पृथिव्याः सानु) पृथिवी के उच्चतम उन्नत प्रदेश को भी (शुभ्मैः) अपने बलों से (नदयन) गुंजित वा समृद्ध करता हुआ (जम्भेभिः) अपने शत्रु-नाशक उपायों से (विश्वम्) समस्त राष्ट्र और (वतानि) ऐश्वर्यों को भी (उज्ज-धक्) काढ़ों को अग्निवत् चाहे और उपभोग करे ।

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि ब्रह्मः प्रीणीते अग्निर्ग्निलितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (प्राचीनः यज्ञः) प्राङ्मुख यज्ञ (सुधितम् ब्रह्मः) अच्छी प्रकार बिछे कुशासनादि चाहता उसी प्रकार (प्राचीनः) उत्तम पद पर प्राप्त (यज्ञः) सत्संग और आदर योग्य (अग्निः), अग्रणी तेजस्वी पुरुष आदर सत्कार प्राप्त कर (ब्रह्मः अग्निः च) हविद्रव्य को अग्नि के समान (होता) स्वयं ग्रहण करके (प्रीणीते) तृप्त होता है । हे (यविष्ठ) बलशालिन्, अति तरुण ! तू (यतः) जिनसे (जज्ञिषे) उत्पन्न होता है वे (मातरा) माता पिता (विश्व-वारे) सब सुखों के देने वाले, सब प्रकार से वरण योग्य, परम पूज्य होते हैं, उन दोनों को तू (आ हुवानः) आदरपूर्वक स्तुति करता हुआ (सुशेवः) उनको सुख देने वाला हो ।
सूद्यो अङ्ग्वरे रथिरं जनन्त मानुषास्त्रो विचेतस्ते य एषाम् ।
विशामधायि विश्यतिर्दुरोणे गिरिस्तन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो (एषाम्) इन प्रजावर्गों में से (विचेतसः) विविध और विशेष ज्ञान वाले (मानुषासः) मनुष्य हैं वे (सद्यः) शीघ्र (अध्वरे) यज्ञ में अग्नि के समान तेजस्वी एवं (रथिरं) रथ-सैन्य के संचालन का स्वामी (जनन्त) बनावें । (दुरोणे अग्निः) दुःख से चढ़ने योग्य अन्तरिक्ष में, दूर जिस प्रकार सूर्य है उसी प्रकार वह भी (दुरोणे) गृह में (अग्निः) गार्हपत्य अग्नि को स्थापन किया जाता है (विशां विश्यतिः) प्रजाओं का स्वामी, (विशां दुरोणे) प्रजा के गृहस्थवत् राष्ट्र में (मन्द्रा) सबको अनन्दप्रद हो । (मधुवचाः) मधुरभाषी (ऋतावा) सत्य न्याय का सेवन करने वाला पुरुष (अधायि) राजा पद पर स्थापित हो ।

असादि वृतो वाहिराजगन्वान्गिर्वृह्मा लृपदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वाकुधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (नृसदने अग्निः विधर्ता) मनुष्यों के रहने के स्थान में अग्नि स्थापित होकर विविध सुखों को धारण करता है उसी प्रकार (वह्निः) पत्नी से विवाह करने वाला, (वृतः) पत्नी द्वारा स्वयं वृत (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नृ-सदने) नर नारी दोनों के रहने योग्य गृह में (वह्ना) प्रजा की वृद्धि करने हारा होकर (आ जगन्वान्) आदर पूर्वक आकर (असादि) विराजे । और जो स्वयं (द्यौः) सूर्य के समान है और (पृथिवी) गृहस्थ का आश्रय होने से पृथिवी के तुल्य है इसी प्रकार ची भी कामना योग्य होने से 'द्यौ' और सन्तान की उत्पादक भूमि के होने से पृथिवी के तुल्य है इसी प्रकार दोनों ही पद (यं वावृधाते) जिसको बढ़ाते हैं, (यं) जिसको (होता) ज्ञानोपदेष्टा पुरुष भी (विश्वारं) संघसे वरण करने योग्य जानकर (यजति) प्राप्त होता और ज्ञान प्रदान करता है । इसी प्रकार 'वृत' अर्थात् वरण किया राजा भी राज्य-भार को अपने कन्धों पर उठाने से 'वह्नि' है । वह बड़ा होने से 'वह्ना', अग्रणी नायक होने से 'अग्नि' है, वह राज्य भार को विशेष रूप से धारण करने वाला हो । (यं) जिसको (द्यौः पृथिवी च) ज्ञानी अज्ञानी वा शासक और शास्य दोनों वर्ग बढ़ावें, और ज्ञान और अधिकार को दाता जन प्राप्त होते और जिसको शक्ति और अधिकार देते हैं ।

एते द्युम्नेभिर्विश्वमतिरन्तं मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।

प्र ये विशास्तिरन्तु श्रोपमाणा आ ये मे श्रस्य दीर्घयवृत्तस्य । ६१

भा०—(ये) जो (नर्याः) मनुष्यों के हितकारी लोग (वारं), वरणीय, श्रेष्ठ (मन्त्रम्) विचार, राष्ट्रचालक मन्त्रणा को (अतक्षन्) प्रकट करते हैं (एते) वे (द्युम्नेभिः) ऐश्वर्यों से (विश्वम्) सब विश्व को (आ अतिरन्त) सब प्रकार से बढ़ाते हैं और (ये) जो (श्रोपमाणाः) स्वयं ज्ञान का श्रवण करते हुए, (विशः) सब प्रजाओं को (प्रतिरन्त) बढ़ाते हैं और (ये) जो (मे) सुहे (अस्य कृतस्य) इस, सत्यः

विज्ञान और न्याय को (आदीधयन्) प्रकाशित करते हैं । वे ही (वि-
श्वम् आतिरन्त) सब को पालन करते हैं । और वे ही सबको दुःखों से
पार करते हैं ।

नूत्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहस्रो वसूनाम् ।
इपं स्तोतृभ्यो मधवद्वद्य आनडयूर्यं पात स्वस्तिभिः सदानः ७।१०

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष
के पुत्र ! एवं बलशाली सैन्य के स्वामिन् ! हम (वसिष्ठाः) उत्तम वसु
होकर (वसूनाम् ईशानम्) गुरु के अधीन वास करके ब्रह्मचर्य का पालन
और विद्याभ्यास करने वाले, वा राष्ट्र में बसाने वाले प्रजाजनों के (ईशानं)
स्वामी (त्वाम्) तुक्ष से (ईमहे) हम यह प्रार्थना करते हैं कि (स्तोतृभ्यः)
विद्वान् उपदेष्टा, स्तुतिशील और (मधवद्वद्यः) उत्तम धन सम्पत्तों
के लिये (ह्यपं आनट्) उनके इच्छानुरूप ज्ञान और धन प्रदान कर
और हे उत्तम विद्वानों और आद्य पुरुषो ! (यूर्यं) आप लोग (स्वस्तिभिः)
कल्याणकारी साधनों से (सदानः पात) हमारी सदा रक्षा करें ।
वसन्ति आचार्याधीनं ब्रह्मचर्यमिति वसवः तेषु उत्तमाः वसिष्ठाः । वसन्ति
गृहेषु इति वसवः पितरः । तेषु उत्तमा वसिष्ठाः । इति दशमो वर्गः ॥

[८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ७ स्वराद् पंक्तिः । ५ निचृतिष्ठप्
२, ३, ४, ६ त्रिष्ठप् ॥

इन्धे राजा समयों नमोभिर्यस्य प्रतीकुमाहुतं घृतेन ।

नरो हृदयेभिरीळते सुवाधु आग्निरग्रं उषसामशोचि ॥ १ ॥

भा०—(अग्निः) जिस प्रकार सूर्य (उषसाम् अग्ने) प्रभात वेलाओं
के पूर्व भाग में (आं अशोचि) प्रदीप होता है उसी प्रकार (अग्निः) यह

आहवनीय अग्नि भी (उपसाम् अग्रे अशोचि) प्रभात वेलाओं के पूर्व के अंश में ही प्रदीप्त होना उचित है । (यस्य प्रतीकं धृतेन आहुतम्) जिसका प्रज्वलित स्वरूप तेज से व्याप्त, सूर्य विश्व के समान (धृतेन आहुतम्) धृत से आहुत होकर चमकता है (सबाधः नरः) बाधा अर्थात् पीड़ा रोगादि से व्यथित लोग उसको (हव्येभिः) नाना प्रकार के अग्नि में जलने योग्य ओषधि अज्ञों से (ईडते) तृप्त करते हैं, रोगपीडित होकर जन रोगनाश के लिये नाना ओषधियों की आहुति करते हैं (सः राजा अर्यः) वह अग्नि प्रदीप्त होकर स्वामी के समान (नमोभिः सम् इन्धे) उत्तम अज्ञों से खूब प्रदीप्त हो । इसी प्रकार (उपसाम् अग्रे) कामना युक्त धन रक्षादि, चाहने वाली प्रजाओं और शत्रु दाहक सेनाओं के बीच में अग्र, मुख्य पद पर (अग्निः) अग्रणी नाथक (आ अशोचि) खूब प्रदीप्त हो, वह अपने को सदा स्वच्छ, निष्पाप और तुच्छि, अर्थात् अर्थ, कामादि से भी छुत्स्व होकर रहे । (यस्य) जिसकी (प्रतीका) प्रतीति कराने वाला सैन्य (धृतेन) तेज से (आहुतम्) युक्त है । और जिसकी (सबाधः नरः हव्येभिः ईडते) दुष्टों से पीडित होकर प्रजा के लोग उसको देने योग्य नाना भेटों, करों, वा दण्डों से उसको प्रसन्न करते हैं । वह (अर्यः) सबका स्वामी, (नमोभिः) अज्ञों से वैश्य के समान और आदर सल्कारों से ज्ञानी पुरुष के समान (राजा) तेजस्वी राजा (नमोभिः) शत्रु नमाने के उपाय रूप शक्त्वा बलों से (समिन्धे) खूब प्रदीप्त होता है ।

अयम् एष सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यहो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोपधीभिर्वचने ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः कृष्ण-पविः ओषधीभिः ववक्षे) आग काले मार्ग वाला है उसे ओषधियां धारण करती हैं । उसी प्रकार (मनुष्यः) मननशील मनुष्य, भी (यहः) महान् पूज्य (अग्निः)

अग्नि के समान तेजस्वी है जो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (कृष्ण-पविः) इयाम धारावाले वा शत्रु को काटने वाले शत्राघ्न से युक्त है । उसे (ओषधीभिः) तीक्ष्ण शत्रुबल को दग्ध करने वाले सैन्यगण (वक्षे) धारण करते हैं । वह (ससृजानः) अग्नि के समान उत्पन्न होकर, (ससृजानः) स्वयं कार्य करता हुआ (भाः वि अकः) नाना प्रकार से या विशेष रूप से कान्तियें, तेज प्रकट करता है (अयम् उ स्यः) वह ही यह (होता) महान् राज्य को स्वीकार करने और सहस्रों को वृत्ति देने वाला और (मन्दः) सब को सुखी करने वाला होकर (सु-महान् अवेदि) खूब बड़ा जाना जाता है ।

कथा नो अग्ने वि वसः सुवृक्षिं कामु स्वधामैश्चवः शस्यमानः ।
कुदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥३॥

भा०— हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! अग्रणी, मुख्यपद को प्राप्त राजन् ! तू (कथा) किस रीति नीति से (नः वि वसः) हमें विविध प्रकार से रक्षा करते हो ? और (कामु सुवृक्षिम्) किस उत्तम संविभाग की (स्वधाम्) ऐश्वर्य एवं स्वराष्ट्र को धारण करने वाली नीति को आप (शस्यमानः) स्तुति योग्य होकर (ऋणवः) प्राप्त होते हो । हे (सुदत्र) उत्तम दानशील ! हम लोग (दुस्तरस्य रायः) अपार ऐश्वर्य के (पतयः) स्वामी और (वन्ताराः) सेवन करने वाले (कदा) कब (भवेम) हों और (दुःस्तरस्य) बल विद्या में अपार (साधोः) सज्जन पुरुष के हम भी (वन्तारः कदा भवेम) सेवक कब हों ।

प्रप्रायमुग्निमैरुतस्य शृणु वि यत्सूर्यो न रोचते वृहद्भ्राः ।
आभियः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥

भा०—(यत्) जो (भाः) दीप्तिमान् होकर (सूर्यः न रोचते) सूर्य के समान प्रकाशित होता, (वृहत्) महान्, होकर (अयम्)

वह (भरतस्य) मनुष्यमात्र का (अस्मिः) अग्नि के समान मार्गदर्शक प्रकाशक रूप से (प्र-प्र शृण्वे) उच्च पद पर विख्यात होकर सुना जाता और उनके सुख दुःख निवेदनादि सुनता है । (यः) जो (पृतनासु) मनुष्यों में (पूरम्) पालक जनों को (अभि तस्यै) प्राप्त कर ऊपर अध्यक्ष रूप से विराजता है और वह (द्युतानः) दीप्तियुक्त होकर (दैव्यः) देव, विद्वानों में प्रशंसित (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य और सबको अतिक्रमण कर सर्वोपरि विराजने वाला होकर (शुशोच) चमकता है ।

**असुन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने गृणिवपे गृणानः स्वयं वर्धस्व तुव्यं सुजात ॥५॥**

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! रांजन् ! (त्वे) तेरे निमित्त (भूरि) बहुत से (आहवनानि) सत्कार पूर्वक नियन्त्रण (असन् इत्) हों । तू (विश्वेभिः अनीकैः) सब सैन्यों से युक्त और (सुमनाः) उत्तम चित्त वाला (सुवः) हो । हे (सुजात) उत्तम गुणों से प्रख्यात ! तू (स्तुतः-चित्) प्रशंसित और (गृणानः) उत्तम उपदेश करता हुआ भी (शृणिवपे) अन्यों के वचनों का श्रवण किया कर और (स्वयं) अपने आप (तन्वं वर्धस्व) शरीरवत् अपने राष्ट्र और विस्तृत ज्ञानकी चृद्धि किया कर ।

**इदं वचः शतसाः संसहस्रमुद्घये जनिषीष्ट द्विवर्हाः ।०
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमद्मीवचातनं रक्षोहा ॥ ६ ॥**

भा०—हे विद्वन् ! (द्वि-वर्हाः) विद्या और नियम, ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ने वाला पुरुष (अप्नये) अग्रगण्य पुरुष की उज्ज्ञति के लिये (शतसाः) सैकड़ों ज्ञानों को देने वाला होकर (सं-सहस्रम्) सहस्रों, अपरिमित ऐश्वर्यों और ज्ञानों के देने वाला (इदं वचः) इस

ग्रकार का वचन (उत् जनिपीष) उत्पन्न करे, कहे (यत्) जो (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (आपये) आप्तजन, बन्धु वर्ग के लिये (शं भवाति) शान्तिदायक हो और जो (द्युमत्) शुभ कामनायुक्त, (अमीव-चातन्) रोगादिनाशक और (रक्षः-हा) दुष्ट पुरुषों का नाशकारी हो ।

न् त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहस्रो वसूनाम् ।
इवं स्तोतृभ्यो मुघवद्ध्य आनन्द्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।१।१

भा०—व्याख्या देखो (सू० ७।म० ७) । इत्येकादशो वर्गः ॥

[६]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ४, ५ निच्छत्रिष्टुप् ।,
२, ३ मुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः ॥ पठृचं सूक्तम् ॥

अबोधि ज्ञार उपसामुपस्थाद्वोता मन्द्रः कृवित्तमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृतसु ॥ १ ॥

भा०—(ज्ञारः) रात्रि को जीर्ण कर देने वाला सूर्य जिस प्रकार (उपसाम् उपस्थात्) प्रभात वेलाओं के बीच में प्रकट होकर (अबोधि) सबको प्रबुद्ध करता, (उभयस्य जन्तोः) दोपाये, चौपाये दोनों को (केतुम्) प्रकाश वा चेतना देता है, उसी प्रकार (उपसाम् उपस्थात्) हृदय से चाहने वाले शिव्यों वा प्रजाओं के बीच (ज्ञारः) उत्तम हृदय से चाहने वाले शिव्यों वा प्रजाओं के बीच (ज्ञारः) उत्तम उपदेश करने हारा पुरुष (अबोधि) अन्यों को ज्ञान से बोधित करे । वह (होता) उत्तम ज्ञान का देने वाला (मन्द्रः) उत्तम हर्षजनक, (कवित्तमः) श्रेष्ठ विद्वान्, (पावकः) शोधक अभियोग के समान सबको पवित्र करने वाला होता है । वह (उभयस्य जन्तोः) ज्ञानी अज्ञानी दोनों प्रकार के, वा पशु व मनुष्य, दोनों वा इहलोक वा परलोक को जाने वाले दोनों प्रकार के (जन्तोः) प्राणियों को (केतुम्) ज्ञान का

प्रकाश (दधाति) प्रदान करता है । वह (देवेषु) विद्वानों और ज्ञान की कामना करने वालों और (सुकृत्सु) उच्च आचारवान् सुकर्मा पुरुषों में (हव्या) अहण करने योग्य अन्न, वचनादि तथा (द्रविण) धन भी (दधाति) प्रदान करे ।

स सुकृत्यो वि दुरः पणीनां पुन्नानो श्वर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमौ दद्वशे राम्याणाम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (राम्याणां तमः दमूनाः तिरः दद्वशे) रात्रियों के अन्धकार को दूर करके अग्नि वा सूर्य दिखाई देता है उसी प्रकार (यः) जो (दमूनाः) दान में अपना चित्त देने वाला, जितेन्द्रिय, मन को जीतने वाला, (होता) दाता, (मन्द्रः) सब को प्रसन्न करने वाला पुरुष (नः) हमारे (पुरुभोजसं) बहुतों को पालने वाले, और बहुत से ऐश्वर्यों को भोगने वाले (अर्कं) पूज्य पुरुष को (वि पुनानः) विशेष रूप से पवित्र रूप से अभिप्रिक्त वा स्थापित करता हुआ (पणीनां) व्यवहार करने वाले प्रजागणों के (पुरः) नाना द्वारों या व्यवहार के मार्गों को (वि पुनानः) न्यायमर्यादा से स्वच्छ, निष्कण्टक करता हुआ (राम्याणाम्) रमण करने योग्य (विशां तमः तिरः दद्वशे) प्रजाओं के अज्ञान, अधर्म वा पाप को दूर करके स्वयं अग्नि या सूर्यवत् तेजस्वी रूप से दीखता है (सः सुकृतः) वही पुरुष शुभ कर्म और उत्तम बुद्धिवाला है ।

अमूरः कुविरादितिर्विवस्वान्तसुसुंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भाः प्रस्वः आ विवेश ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (चित्र-भानुः) अनुत कान्तिवाला सूर्य (उषसाम् अग्रे भाति) प्रभात वेलाओं के अग्रभाग में चमकता है और जिस प्रकार विद्युत् (अपाम्) जलों के (गर्भाः) बीच मर्मित होकर

(प्रस्वः) उत्तम रीति से ओषधियों को उत्पन्न करने वाली भूमियों और ओषधियों में भी (आविवेश) प्रविष्ट हो जाता है उसी प्रकार (अमूरः) कभी नाश न होने वाला, पूर्व (अमूरः) अमूर, मोह अज्ञान से रहित, (कविः) कान्तदर्शी, (अदितिः) अदीन, उत्साही, (विवस्वान्) सूर्यवत् नाना किरणों के सदृश वसुओं, प्रजाओं का स्वामी, (सु-संसत्) उत्तम राजसभा का स्वामी, (मित्रः) प्रजा को मारने या विनाश होने से बचाने वाला, सबका स्नेही, न्यायशील, (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य, सबको अतिकर्मणकर सर्वोपरि विराजमान, (शिवः) सब का कल्याणकारी हो । वह (नः) हमारे बीच में (उपसाम्) शत्रु और पापों को भस्म करने वाले सैन्यों के आगे सेनानायकवत् प्रकाशित हो और वह (अपां) आप्त प्रजाओं को (गर्भः) अपने वश में लेने हारा होकर (प्रस्वः) उत्तम धनवान् होकर (प्रस्वः = प्रसुवः) प्रभूत ऐश्वर्यवान्, प्रजाओं के भीतर प्रजापति गृहपति के, समान ही (आविवेश) प्रविष्ट होता है ।

ईङ्गेन्यो वो मनुषो युगेषु समन्नगा शुचज्जातवेदाः ।

सुसन्दृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्ता॥४॥

भा०—हे मनुष्यो ! जो (युगेषु) वर्षों में (समन्नगः) संग्रामों में जाने वाला, (जातवेदाः) धनाद्व, और विद्यावान्, (वः) आप सब (मनुषः) मनुष्यों को (अशुचत्) शुद्ध पवित्र करता है वह (ईडेन्यः) स्तुति योग्य है । और (यः) जो (भानुना) तेज से सूर्य के समान (सु-सन्दृशा) उत्तम सम्यक् दर्शन, यथार्थ ज्ञान प्रकाश से (वि भाति) स्वयं प्रकाशित होता है (गावः) किरणें जिस प्रकार (समिधानं) चमकते सूर्य का बोध कराती हैं उसी प्रकार (गावः) वेद-वाणियां भी (समिधानं प्रति) अच्छी प्रकार सम्यक् ज्ञान से प्रकाशमान पुरुष को (प्रति बुधन्त) प्रत्येक पदार्थ का प्रत्यक्ष बोध कराती हैं ।

अग्ने याहि दूत्यं^१ मा रिषयो देवाँ अच्छ्रु ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं सुरुतो अश्विनापो यक्षि देवान् त्तुधेयायु विश्वान् ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्, प्रतापशालिन् ! तू (दूत्यं याहि) अग्नि के समान ही शत्रु संतापन के सामर्थ्य को प्राप्त हो, तो भी (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (मा रिषयः) दण्डित मत कर और शुभ गुणों का नाश मत कर । (ब्रह्म-कृता गणेन) धन, अन्न और ज्ञान को उत्पन्न करने वाले 'गण' अर्थात् नाना साधनों से (सरस्वतीम्) वेद वाणी को, (मरुतः) प्रजाओं के व्यापारी पुरुषों को और (अश्विना) प्रजा के उत्तम स्त्री पुरुषों, अश्वरोही, रथी सारथी जनों और (अपः) आप्त पुरुषों के साथ (अच्छ यक्षि) भली प्रकार सत्संग कर । (रत्नधेयाय) रमणीय गुणों और पदार्थों को धारण करने के लिये (विश्वान् देवान्) समस्त प्रकार के विद्वान् पुरुषों का (यक्षि) सत्संग कर ।

त्वाम्गने संमिथानो वसिष्ठो जरुर्थं हृन्यक्षि राये पुरन्धिम् ।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व युर्यं पात स्वस्तिभिः सदानः ॥६॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्निवत् तेजस्विन् ! (वसिष्ठः) ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु के अधीन उत्तम वसु ब्रह्मचारी (त्वा जरुर्थं) उक्त विद्या और वयस् में बृद्ध एवं उत्तन ज्ञान के उपदेश पुरुष को (हन्) प्राप्त हो । वह विद्वान् होकर (राये) धन को प्राप्त करने के लिये (पुरन्धिम्) बहुत से धनों को धारने वाले आद्य पुरुष को (यक्षि) प्राप्त करे । हे (जातवेदः) विद्वन् ! हे धनवन् ! तू (पुर-नीथाः) बहुत सी वाणियों और बहुत से मार्गों व उपायों से सम्पन्न होकर (जरस्व) अन्यों को विद्या का उपदेश कर और स्वयं बड़ा हो । हे विद्वान् पुरुषो ! (युर्यं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा शुभ कल्याणकारी साधनों से प्राप्तन करो । इति द्वादशो वर्गः ॥

[१०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अरिनदेवता ॥ वन्दः—१, २, ३ निचृतिङ्गुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् ॥
पञ्चर्चं सक्तम् ॥

उषो न जारः पृथु पाजो अश्वेद्विद्युत्दीयुच्छोशुचानः ।

वृषा हरिः शुचिरा भाति भ्रासा धियो हिन्वान उशतीर्जीगः । १।

भा०—जिस प्रकार (जारः) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य (पृथु-
पजः आश्रेद्) महान् तेज धारण करता है, (शोशुचानः दविद्युतत्) खूब
तेजस्वी होकर चमकता है उसी प्रकार (जारः) विद्या का उपदेशा,
(उषः न) उपा वा प्रभात काल के समान (पृथु-पाजः) वड़े भारी बल
और अज्ञ को (अश्रेत्) प्राप्त करे । वह (शोशुचानः) स्वयं तेजस्वी
होकर अन्यों को भी शुद्ध करता हुआ (दविद्युतत्) स्वयं प्रकाशित हो, सब
को प्रकाशित करे । वह (शुचिः) शुद्धचित्त, धर्मात्मा, (वृषा) वलवान्
सब पर सुखों की वर्षा करने हारा, उत्तम प्रबन्धक (हरिः) पुरुष
(आ भाति) सब प्रकार से प्रकाशित हो । वह (धियः) कर्त्तव्यों, ज्ञानों
और बुद्धियों को (हिन्वानः) उपदेश करता हुआ (उशतीः) विद्या
धनादि की अभिलापा करने वाली प्रजाओं को (अजीगः) प्रबुद्ध करे ।

स्वर्णं वस्तोरुपसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।

शुग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवदृतो देवयावा वनिष्टः ॥ २ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (वस्तोः
स्वः न) दिन के समय कान्ति युक्त किरणों के बीच सूर्य के समान
(उपसाम्) कामना युक्त प्रजाओं और शत्रुओं को दंध करने वाली
सेनाओं के बीच (अरोचि) सबको अच्छा लगता है । (यज्ञं तन्वानाः
उशिजः न) यज्ञ करने वाले धनादि के इच्छुक ऋचियों के समान (उशिजः)
विद्या धनादि की कामना करने वाले पुरुष भी (यज्ञं तन्वानाः) सत्संग

करते हुए (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करें और वह (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (देवः) ज्ञानदाता, सर्व अज्ञात तत्वों का प्रकाशित करने वाला, (विद्वान्) विद्वान् (देव-यावा) ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर वा अन्यों को शुभ गुण प्राप्त कराने वाला, (वनिष्ठः) ज्ञान पेश्वर्यादि का उदारता से विभाग करता हुआ (जन्मानि) नाना उत्तम जन्मों, रूपों वा उत्तम जन्म अहण करने हारे शिष्य जनों को (आ विद्रवत्) आदर पूर्वक विशेष रूप से प्राप्त करे ।

अच्छ्रु गिरे मृतयो देवयन्तीरुभिन्यन्ति द्रविण्यं भिक्षमाणाः ।
सुसुन्दरशं सुप्रतीकं स्ववचं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (द्रविणं भिक्षमाणाः मानुषाणाम् अरतिं यन्ति) द्रविण, धन के याचक लोग मनुष्यों के स्वामी को प्राप्त होते हैं । और जिस प्रकार (गिरः) उत्तम वाणियां, (मतयः) उत्तम बुद्धियां (देव-यन्तीः) प्रभु की कामना करती हुई (भिक्षमाणः) धन, यज्ञादि की प्रार्थना करती हुई प्रभु को लक्ष्य कर जाती हैं उसी प्रकार (गिरः) उत्तम सुतिशील (मतयः) मननशील कन्याएं भी (देवयन्तीः) देव, दानशील, कामना योग्य पति की कामना करती हुई (द्रविणं भिक्षमाणः) धन, यज्ञ, एवं पुत्रादि की याचना करती हुई (सुसुन्दरशं) उत्तम, समान रूप से सुन्दर दीखने वाले, (सुप्रतीकम्) सुमुख, (स्ववचम्) उत्तम गीति से पूजा करने योग्य (हव्य-वाहम्) ग्राहा और देय, पेश्वर्य, अच्छव्यादि प्राप्त करने वाले (अरतिम्) स्वामी को (मानुषाणाम्) मनुष्यों के बीच में (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को एवं (अग्निम्) यज्ञाग्नि को भी (यन्ति) प्राप्त करती हैं । उसी प्रकार (गिरः मतयः देवयन्त) उत्तम वक्ता, मतिमान्, विद्वान् की कामना युक्त शिष्यादि, वा प्रजाएं (सुसंदरशम्) उत्तम ज्ञान, न्याय आदि के द्रष्टा, पूज्य (प्रज्ञिम्) अग्र नेता, पुरुष को आचार्य, वा राजा रूप से प्राप्त होते हैं ।

इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सुजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वृहा वृहन्तम् ।
आदित्येभिरदिति विश्वजन्यां वृहस्पतिमृकविभिर्विश्ववारम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! आप (सजोषा :) प्रेम युक्त होकर (वसुभिः) जल पृथिवी आदि पदार्थों द्वारा हमें (इन्द्रं) ऐश्वर्ययुक्त, एवं भूमि पर्वतादि के विदारण में समर्थ विद्युत, मेघ आदि को (आ वह) प्राप्त करा । (आदित्येभिः) सूर्य के द्वारा उत्पन्न मास आदि कालावयवों से (विश्वजन्यां) समस्त जनों के हितकारी (अदिति) अखण्ड काल के ज्ञान को और (ऋक्भिः) ऋचाओं से (विश्ववारम्) सबके बरने योग्य (वृहस्पतिम्) बड़े व्रह्मण्ड के पालक प्रभु को (नः आवह) हमें प्राप्त करा । उन २ द्वारा उन २ पदार्थों का अच्छी प्रकार ज्ञान और उनका उपयोग कर । इसी प्रकार हे राजन् ! (वसुभिः इन्द्रं) व्रह्मचारियों सहित आचार्य (रुद्रेभिः रुद्रं) रोगनाशक ओषधियों सहित 'रुद्र' अर्थात् वैद्य को, (आदित्येभिः अदिति) आदान प्रतिदानकारी व्यवहारज्ञों से इस सर्व सेनोपयोगी भूमि को, और (ऋक्भिः) अर्चना योग्य पुरुषों सहित सर्वदुःखवारक, बड़ों के भी पालक प्रभु वा राजा को हम प्राप्त करें ।

मन्द्रं होतारं मुशिजो यविष्टुमूर्गिन विश ईङ्गते अध्वरेषु ।
स हि क्षपाचां अभवद्र्योणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥५॥३॥

भा०—(उक्तिः) रक्षा, द्रव्यादि की कामना करने वाले (विशः) प्रजागण (अध्वरेषु) हिंसारहित, प्रजापालनादि कार्यों में (अभिः) यज्ञों में अभिं के तुल्य तेजस्वी, (मन्द्रम्) सब को हर्ष देने वाले, (होतारम्) सबको आदर से बुलाने और भृति, वेतनादि देने वाले, (अग्निम्) ज्ञानी अग्रनायक पुरुष को (ईङ्गते) सदा चाहते हैं । (सः हि) वह निश्चय से (रयीणाम्) ऐश्वर्यों की रक्षा के लिये (अतन्द्रः) अप्रमादी, (दूतः) दुष्टों का संतापक और (देवान् यजथाय)

विद्वानों का आंदर सत्कार सत्संगादि करने के लिये सदा तत्पर एवं (क्षपावान्) रात्रियों के स्वामी चन्द्र के समान अहादकारक और (क्षपावान्) शत्रुओं को नाश करने वाली सेनाओं का स्वामी (अभवत्) हो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[११]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ आग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट् पंक्तिः । २, ४ मुरिक्यंक्तिः ।
३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्विष्टुप् ॥ पञ्चर्च सूक्तम्

सहाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वद्मृता मादयन्ते ।

आ विश्वेभिः सुरथं याहि द्वैवैन्यैर्गने होता॑ प्रथमः सौदेह ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! तू (अध्वरस्य) सब प्रकार के व्यवहार का (प्र-केतः) बतलाने वाला और (महान् असि) गुणों में महान् है। (त्वद् ऋते) तेरे विना (अमृताः) जीवित जीव (न मादयन्ते) प्रसन्न नहीं हो सकते, तेरे विना सुख का जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। तू (विश्वेभिः देवैः) समस्त उत्तम मनुष्यों सहित (सरथं आयाहि) अपने रथों, सुखों, सहित आ, (होता) तू सब के सुखों का दाता (प्रथमः) सबसे मुख्य होकर (इह सद) यहाँ विराज।

त्वामीळते अजिरं दूत्याय हृविष्मन्तः सदुमिन्मानुपासः ।

यस्य द्वैवरासदौ वृहिंगने दहन्यस्मै सुदिना॑ भवन्ति ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (हृविष्मन्तः मानुपासः) अज्ञादि साधनों वाले मनुष्य (सदम् इत्) स्थिरता से विराजने वाले (अजिरम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले (त्वाम्) तुक्षको (दूत्याय) उत्तम दूत कर्म और शत्रु संतापन के कार्य के लिए (ईडते) प्रार्थना करते और चाहते हैं। (यस्य) जिसका (वर्हिः) बड़ा राष्ट्र (देवैः आ सदः) विद्वान् पुरुषों द्वारा शासित होता है, (अस्मै) उसके ही (अहानि).

सब दिन (सुदिना भवन्ति) उत्तम होते हैं । या जिस विद्वान् का वृद्धिकारक ज्ञान विद्या के इच्छुक विद्वानों द्वारा प्राप्त होता है वे उस दिन सुखदायक होते हैं । ॥ ३ ॥

त्रिश्चिदक्तोः प्रचिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दृशुषे मर्त्याय ।

मनुष्वदेम इह यक्षि देवान्मवान् नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् प्रकाशक ! (त्वे अन्तः) तेरे शासन में (दाशुषे मर्त्याय) वृत्ति आदि देने वाले मनुष्य के (वसूनि) ऐश्वर्यों को विद्वान् लोग (अक्तोः) दिन वा रात्रि में भी (त्रिः) तीन बार (प्रचिकितुः) अच्छी प्रकार चेत लेवें । तू मनुष्वत् मनुष्यों के समान विचारवान् होकर ही (देवान् यक्षि) शुभ गुणों और उत्तम पुरुषों से संगत हो । (नः) हमारा (दूतः) दूत, शत्रुसंतापक होकर (अभिशस्ति-पावा) दुरपवाद वा शत्रु-प्रहार से बचाने वाला वा हम प्रशंसितों का रक्षक (भव) हो ।

आग्निरीशे वृहूतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हृविषः कृतस्य ।

क्रतुं ह्यस्य वसेवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः) जिस प्रकार (वृहतः अध्वरस्य ईशे) बड़े भारी यज्ञ को कराने में समर्थ है उसी प्रकार (अग्निः) अग्नीनायक, तेजस्वी पुरुष (वृहतः अध्वरस्य) बड़े भारी हिंसारहित यज्ञ का (ईशे) प्रभु है । (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष ही (कृतस्य) स्वच्छ किये (विश्वस्य) सब प्रकार के (हृविषः) अज्ञ वा धन का (ईशे) स्वामी है । (अस्य) इसके उपदेश किये (क्रतुम्) काम और इसके ज्ञान को (हि) निश्चय से (वसेवः) ब्रह्मचारी लोग (जुषन्त) सेवन करते हैं (अथ) और देवाः) विद्वान् लोग भी (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों को धारण करने वाले इसको (दधिरे) धारण करें ।

आग्ने वह हविर्याय देवानिन्द्रज्येष्टास इह मादयन्ताम् ।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु घेहि युं पात स्वस्तिभिः सदानः ॥५॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (अद्याय) खाने के लिये (हविः आ वह) उत्तम अज्ञ प्राप्त करा । अथवा (हविः-अद्याय) उत्तम अज्ञादि भोजन कराने के लिये (देवान् आ वह) उत्तम विद्वान् पुरुषों को प्राप्त कर । (इह) इस राष्ट्र में (इन्द्रज्येष्टासः) राजा को अपना मुख्य मानने वाले प्रजाजन (मादयन्ताम्) यहां प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करें । हे विद्वन् , राजन् , (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को (दिवि) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और (देवेषु) विद्वान् , पुरुषों के आश्रय पर (घेहि) स्थापित कर । हे विद्वान् पुरुषो ! (युं) तुम सब लोग (नः) हमें (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभिः पात) सुख कल्याणकर साधनों से पालन करो । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१२]

चसिष्ठ ऋषिः ॥ आग्नेदेवता ॥ छन्दः—१ विराद् त्रिष्ठुप् । २ त्रिष्ठुप् । पंक्तिः ॥
तृतीय सूक्तम् ॥

अग्नं सुहा नमस्ता यविष्टुं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वीं स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥

भा०—(स्वे दुरोणे) अपने गृह, अग्नि कुण्ड में (समिद्धः) प्रदीप अग्नि के समान (यः) जो पुरुष वा प्रभु (स्वे दुरोणे) अपने गृह वा परम पद में (सम-इदः सम् दीदाय) सर्वत्र समान रूप से प्रकाशित हो रहा है उस (यविष्टुं) अति बलवान् वा परमाणु २ को विद्युत् के समान छिन्न भिन्न करने में समर्थ, (महा) बड़े भारी उर्वा (रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथिवी के बीच (चित्रभानुम्) अद्भुत

कान्तिमान्, सूर्यवत् स्वयं प्रकाशित हो अन्यों को भी प्रकाशित करने वाले, (विश्वतः प्रत्यञ्चम्) सर्वत्र प्रत्येक पदार्थ में व्यापक (सु-आहुतम्) उत्तम रीति से स्वीकृत एवं आदरपूर्वक वर्णन करने योग्य, सुप्रकाशित प्रभु को (अग्नम्) प्राप्त हों ।

स मुहा विश्वा दुरितानि साहानुभिः पृथ्वे दसु आ जातवेदाः ।
स नौ रक्षिष्वदुरितादव्यादस्मान्गृणत उत नौ मधोनः ॥ २ ॥

भा०—(दमे) गृह में (अभिः) प्रज्वलित अभिके समान (दमे) समस्त संसार को दमन करने में सर्वत्र प्रकाश करने हारा (जातवेदाः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (स्तवे) स्तुति करने पर (महा) अपने महान् सामर्थ्य से (सः) वह (विश्वा दुरितानि) सब प्रकारों के दुष्टाचारों और दुःखों को (साहान्) पराजित करने हारा है । (सः) वह (नः) हम (गृणतः) स्तुति करने वालों को (अव्याद् दुरितान्) निन्दनीय पापाचार से (रक्षिष्वत्) बचावे और (उत्) वह (नः मधोनः) थन सम्पन्न हुए हमें भी निन्दा पापाचार से बचावे ।

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मृतिभिर्विसिष्टाः ।
त्वे वसुं सुषण्नानि सन्तु युयं पात् स्वस्तिभिः सदा नः ३।१५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वप्रकाश प्रभो ! (वं वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, सबसे चाहने, वरने योग्य और सब दुःखों के वारण करने और सबको जीवन, आत्मधनादि का न्यायपूर्वक विभाग करने से तू 'वरुण' है । (उत मित्रः) और तू ही सबको स्नेह करने और सब जीवों को मृत्यु से बचाने वाला होने से 'मित्र' है । (वसिष्टाः) उत्तम वसु, विद्याओं में निवास करने, रमने वाले विद्वान् (मृतिभिः) अपनी मननशील बुद्धियों और वाणियों से (त्वां वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते हैं, तेरी स्तुति कर तेरा गुण सर्वत्र फैलाते हैं । (त्वे) तेरे में ही

समस्त (वसु) ऐश्वर्य (सु-सननानि) उत्तमरीति से देने योग्य (सन्तु) हों । हे विद्वानो ! (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (स्वस्तिभिः पात) सुख कल्याणजनक उपायों से रक्षा करो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरौ देवता ॥ अन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः । ३ भुरिक् पंक्तिः ॥

प्रायर्थे विश्वशुचे धियन्धे उसुरध्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।

भरे हृविन वृहिंषि प्रीणानो वैश्वानुराय यतये मतीनाम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (विश्वशुचे) सब जगत् को प्रकाशित और पवित्र करने वाले और (विश्वशुचे) सब के प्रति शुद्ध अन्तःकरण वाले, (धियन्धे) उत्तम बुद्धि, ज्ञान और कर्म को धारण करने, कराने वाले, (असुरध्ने) दुष्टों का नाश, तिरस्कार करने वाले (मतीनां यतये) ज्ञान बुद्धियों के देने वाले एवं मननशील पुरुषों के बीच संयम से रहकर ईश्वर प्राप्ति और जगत् के सुधार का यत्न करने वाले, (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों के हितकारी, सर्वनायक रूप (अभ्ये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (वृहिंषि अभ्ये) यज्ञ में अग्नि के लिये (हविः न) हवि के समान (मन्म धीतिम् भरे) मननयोग्य, उत्तम संकल्प और स्तुति प्रस्तुत करता हूँ ।

त्वम् शोचिष्ठा शोशुचान् आ रोदसी अपृणा जायमानः ।

त्वं देवाँ श्रुभिश्चस्तेरमुद्भ्रो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! प्रकाशस्वरूप ! ज्ञानवन् ! जिस प्रकार अग्नि या सूर्य (जायमानः) प्रकट होता हुआ (शोचिष्ठा शोशुचानः रोदसी अपृणात्) स्वयं प्रदीप्त होकर आकाश, पृथिवी दोनों को तेज से पूर्ण कर देता है उसी प्रकार तू भी (जायमानः)

प्रकट होकर (शोशुचानः) शुद्ध पवित्र होकर (शोचिया) अपने तेज से (रोदसी) स्त्री पुरुषों को (अवृणा:) पूर्ण कर । (त्वं) तू (देवान्) उत्तम मनुष्यों को हे (जातव्रेदः) विद्यावन् ! (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (अभि-शस्त्रेः) अभिमुख प्रशंसा करने वाले दम्भी और सन्मुख शस्त्रादि के प्रयोक्ता धातक से, मिथ्याभियोगी पुरुष से (अमुद्धः) छुड़ा ।

जातो यद्यग्ने भुवना व्यर्ख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा ।

वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द ग्रातुं युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१६
भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! अग्निवत् तेजस्विन् ! संन्यासिन् !

जिस प्रकार अग्नि (जातः भुवना वि-अख्यः) उत्पन्न होकर नाना उत्पन्न पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तू भी (जातः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होकर (भुवना) नाना ज्ञानों को (वि-अख्यः) विशेष रूप से उपदेश कर । तू (परिज्मा) सब ओर अमण करने वाला होकर (गोपा: पशून् न) गौओं का पालक जिस प्रकार पशुओं को दण्ड के बल से सीधे रास्ते चलाता है उसी प्रकार पशु सदश अज्ञानी जनों का (गोपा:) रक्षक होकर (इर्यः) उनको सन्मार्ग में चलाने वाला है । (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों के हितैषिन् ! सब के बीच सत्य ज्ञानका, प्रकाश करने हारे ! तू (ब्रह्मणे) प्रभु परमेश्वर को प्राप्त काने के लिये (गातुम्) सन्मार्ग (विन्द) प्राप्त कर, उसी का उपदेश कर । हे विद्वान् लोगो ! (युयं) आप लोग भी (स्वस्तिभिः) उत्तम, उपायों से (नः पात) हमारी रक्षा करो । राज्य में राजा और विश्व में परमेश्वर भी त्याग वृत्ति से सब के रक्षक और सत्यथ में चलाने से सबके द्रष्टा, पालक, हैं । राजा (ब्रह्मणे) धनैश्वर्य की प्राप्ति के मार्ग को सदा जाने, जनावे । राजा के चमकते पीले केसरिये वस्त्र और संन्यासी के गोहण वस्त्र अग्नि के अनुकरण में होते हैं । इति पोडशो वर्गः ॥

[१४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ वन्दः—१ निचृद्वृहती । २ निचृत्रिष्टुप् । ३
विराट् विष्टुप् ॥

सुमिधा ज्ञातवैदसे देवाय देवहृतिभिः ।

हृविर्भिः शुकशोचिषे नमस्त्विनो वृयं दाशेमाग्नये ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नये देवहृतिभिः समिधा हृविर्भिः सह वर्य नमस्त्विनः सन्तः दाशेम) अग्नि में परमेश्वर की स्तुतियों, काष्ठों, और चरुओं सहित अज्ञयुक्त वा नमस्कार श्रद्धा विनयादि से युक्त होकर चरु आदि त्यागते हैं उसी प्रकार (वयम्) हम लोग (ज्ञातवैदसे) ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामी, और उत्पन्न विद्या-ब्रह्मस्नातकों, वा निष्ठ पुरुषों में विद्यमान, (देवाय) पूज्य, ज्ञानप्रद, जीवनप्रद (शुकशोचिषे) शुद्ध, तेज, एवं वीर्य की तेजोमयी कान्ति से युक्त, (अग्नये) अग्निवत् तेजस्ती पुरुष के आदर सत्कार के लिये (नमस्त्विनः) उत्तम अज्ञ वाले और अति विनय आदि साधनों से युक्त होकर (देव-हृतिभिः) विद्वान् और इष देव के प्रति आदर पूर्वक कहने योग्य वाणियों से और (हृविर्भिः) उत्तम अन्नों सहित (वर्य दाशेम) उसकी हम सेवा शुश्रूपा करें ।

वृयं ते अग्ने सुमिधा विधेम वृयं दाशेम सुषुप्तुती यजत्र ।

वृयं धृतेनाध्वरस्य होतर्वृयं देव हृविषा भद्रशोचे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्त्विन् ! जिस प्रकार हम लोग (समिधा सुस्तुती, धृतेन, हृविषा दाशेम) अग्नि की परिचर्या, काष्ठ उत्तम मन्त्रस्तुति, वी, और हवि, अज्ञमय पुरोडाश आदि द्वारा करते हैं उसी प्रकार (वयम्) हम हे विद्वान् ! (ते) तेरी सेवा (समिधा) अच्छी प्रकार गुणों के प्रकाशन, प्रोत्साहन से (विधेम) करें, हे (यजत्र) ज्ञान के देने हारे ! हे सत्संगयोग्य ! हम (ते सुस्तुती दाशेम) तेरी उत्तम

स्तुति द्वारा सत्कार करें । हे (अध्वरस्य होतः) यज्ञ के होता के समान अहिंसामय व्यवहार का उपदेश देने, अहिंसा ब्रत को स्वोकार करने हारे ! हे (देव) विद्वन् ! तेजस्त्विन् ! हे (भद्र-शोचे) कल्याण, सुखमय मार्ग के प्रकाशक ! (वयम्) हम (घृतेन हविपा विधेम) धी और हविष्य, सात्त्विक अज्ञ से तेरा आदर सत्कार करें ।

आ नो देवेभिरुप देवहृतिमन्त्रे याहि वषट्कृतिं जुषाणः ।

तुभ्यै देवाय दाशतः स्याम युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१७

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! ज्ञानप्रकाशक ! तू (नः) हमारे (वषट्-कृतिं = अवसत्कृतिं जुषाणः) आदर सत्कार को प्रेम पूर्वक स्वीकार करता हुआ (देवेभिः) अपने उत्तम गुणों और विद्वानों सहित, किरणों सहित सूर्य के समान (नः) हमारे (देव-हृतिम्) विद्वानों की आम-नित सभा को (आ उप याहि) प्राप्त हो । (देवाय तुभ्यम्) तुम विद्वान् के उपकारार्थ हम (दाशतः) सदा आदर सहित देने और सेवा करने वाले (स्याम) हों । हे विद्वान् त्यागी पुरुषो !, (युयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप सब सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा कीजिये । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ३, ७, १०, १२, १४ विराङ्-गायत्री । २, ४, ५, ६, ८, १३ गायत्री । = निचृद्गायत्री । ११, १५ आच्युष्णिक् ॥ पञ्चदशर्च सूक्तम् ॥

उपस्याय मीळहुप आस्ये जुहुता हृविः ।

यो नो नेदिष्टमाप्यम् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारे (नेदिष्टम्) अति समीप (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य, बन्धुत्व, सौहार्द आदि प्राप्त करता उस

(उप-सद्याय) उपासना करने योग्य (मीढुपे) सुख और शान्ति के वर्षक विद्वान् पुरुष के (आंस्ये) मुख में (हविः) अन्न का (जुहुत) त्याग करो । उसका अज्ञानि ग्राहा और दान योग्य पदार्थों से सत्कार करो ।

यः पञ्च चर्षणीरभि निष्पुसाद् दमेदमे ।

कुविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (युवा) युवा, बलवान् (गृहपतिः) गृह का पालक, गृहस्थ और गृह के समान राष्ट्र का पालक राजा (कविः) कान्त-दर्शी विद्वान् (दमे-दमे) गृह गृह में एवं हन्दियों के और मन के विषयों से दमन करने तथा, राष्ट्र में दुष्टों को दमन करने के कार्य में (पञ्च-चर्षणीः) पांचों प्रकार के प्रजाओं तथा (पञ्च चर्षणीः) पांचों विषयों के द्वाषा पांचों हन्दियों पर (अभि नि-सप्तसाद्) अध्यक्षरूप से विराजता है वही उपास्य एवं शरण और सत्संग योग्य है ।

स जो वेदो अमात्यमृशी रक्षातु विश्वतः ।

उतास्मान्प्रात्वंहसः ॥ ३ ॥

भा०—(सः अग्निः) वह अग्नी, विद्वान् पुरुष (नः) हमारी और (अमात्यं) हमारे साथी मित्र वा पुत्र की और (नः वेदम्) हमारे धन की भी (विश्वतः) सब प्रकार से रक्षा करें । (उत) और वह (अस्मान्) हमें (अंहसः) पापाचरण से भी (पातु) रक्षा करे ।

नवं नु स्तोममृग्ये दिवः श्येनाय जीजनम् ।

वस्वः कुविद्वनाति नः ॥ ४ ॥

भा०—जो (नः) हमें (कुवित्) बहुत अधिक (वस्वः) धन की मात्रा (वनाति) प्रदान करता है उस (दिवः) शुभ कामना और विजय की पूर्ति के लिये (श्येनाय) श्येन, वाज के समान वेग से और उत्तम गति से जाने वाले (अग्नये) तेजस्वी, पुरुष के लिये (नवं स्तोमं) उत्तम स्तुतिवचन (जीजनम्) कहूँ ।

स्पार्हा यस्य श्रियो द्वशे रुदिर्वीरवतो यथा ।

अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(यज्ञस्य अग्रे शोचतः अग्ने: यथा श्रियः द्वशे स्पार्हाः) यज्ञ के अग्र भाग, में जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि की कान्तियाँ देखने के लिये हृदयहारिणी होती हैं उसी प्रकार (यज्ञस्य) ज्ञान, धन आदि के दान-प्रतिदान और छोटे बड़ों के सत्संगादि योग्य व्यवहार के (अग्रे) प्रथम साक्षी रूप में (शोचतः) तेजस्वी, व्यवहार को सदा स्वच्छ, निश्चल बनाये रखने वाले (वीरवतः) वीरों, विद्वानों के स्वामी (यस्य) जिसकी (स्पार्हाः श्रियः) स्पृहा करने योग्य उत्तम सम्पदायें (द्वशे) देखने योग्य हैं उसी प्रकार उसका (रयिः) ऐश्वर्य और बल भी देखने योग्य हो । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

सेमां वेतु वषद्कृतिमुग्निर्जुषत नो गिरः ।

यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (यजिष्ठः) अतिपूज्य एवं दानशील, (हव्यवाहनः) ग्राद्य, स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त कराने वाला (सः) वह (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष (इमाम्) इस (नः) हमारे किये (वषद्कृतिम्) सत्कार को (वेतु) प्राप्त करे आर इसी प्रकार हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (नः) हमारी चाणियों और सत्कार को (जुपत) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो ।

नि त्वा नव्य विशपते द्युमन्ते देव धीमहि ।

सुवीरमग्न आहुत ॥ ७ ॥

भा०—हे (विशपते) प्रजाओं के पालक ! हे (देव) दानशील ! प्रकाशक तेजस्विन् ! हे (आ-हुत) आदरपूर्वक निमन्त्रित ! हे (अग्ने) अग्नणी, अग्र, सुख्य पद के योग्य ! हे (नक्ष्य) प्राप्त होने योग्य, शरण्य !

विद्वन् ! हम (त्वा) तुक्षको (व्युत्तां) दीप्तियुक्त, तेजस्वी, उत्तम कामनावान्, (सुवीरम्) उत्तम वीर्यवान् जानकर (धीमहि) तुक्षे धारण करते और ध्यान करते हैं ।

क्षप॑ उच्चश्च॑ दीदिहि स्वग्नयस्त्वया॒ वृथम् ।
सुवीरस्त्वमस्मयुः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (क्षपः उत्तः च) दिन और रात्रि को भी (दीदिहि) स्वयं प्रकाशित हो और उनको भी सूर्य, दीपकवत् प्रकाशित कर । (त्वया) तेरे से ही (वयम्) हम लोग (सु-अग्नयः) उत्तम अग्नियुक्त, उत्तम नेता वाले हों । और (त्वम्) तू (सु-वीरः) उत्तम वीर पुरुषों का स्वामी तथा (अस्मयुः) हम लोगों को प्रिय हो ।

उप॑ त्वा सातये॒ नरो॒ विप्रासो॒ यन्ति॒ धीतिभिः॑ ।
उपाक्षरा॒ सहृद्धिणी॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (विशः नरः) विद्वान्, बुद्धि-मान् मनुष्य (धीतिभिः) अंगुलियों से जैसे (अक्षरा उप यन्ति) अक्षरों को लिखते हैं और (धीतिभिः) अध्ययनादि कियाओं द्वारा (अक्षरा) अविनाशिनी (सहस्रिणी) सहस्रों वेद मन्त्रों से युक्त वेदवाणी को (उप यन्ति) प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे (धीतिभिः) उत्तम कामों और धारण पालन की शक्तियों से वा (धीतिभिः) विनय से बद्ध अंगुलियों से (सातये) तेरा सम्यक् भजन और अपने अभीष्ट लाभ के लिये (त्वा उप यन्ति) तुक्षे प्राप्त होते हैं ।

शृशी॑ रक्षांसि॒ सेधति॒ शुकर्णोच्चिरमर्त्यः॑ ।

शुचिः॑ पावक॑ ईङ्घ्यः॑ ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी (शुक्र-शोचिः) शुद्ध तेज वाला, (शुचिः) धर्मात्मा, स्वच्छाचारवाला, (पावकः) स्वयं पवित्र, अन्यों को पवित्र करने वाला पुरुष (ईङ्घ्यः) स्तुति और आदर करने

योग्य है। वह (अमर्त्यः) अन्य साधारण मनुष्यों से भिन्न, उनसे अधिक होकर ही (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को (सेधति) वश करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो ।
भगश्च दातु वार्यम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! हे बलशाली सैन्य के सञ्चालक ! (सः) वह तू (ईशानः) सबका स्वामी है। तू (नः) हमें (राधांसि) नाना प्रकर के धनैश्चर्य (आ भर) प्राप्त करा। (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमें (वार्यम् दातु) उत्तम धन प्रदान करे। अथवा (दातु वार्य आ भर) देने योग्य धन प्राप्त करावे।

त्वमश्च वीरबृद्धशो देवश्च सविता भगः ।
दितिश्च दाति वार्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (अमे) तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू और (देवः सविता च) प्रकाशमान सूर्यवत् उत्तम दानशील, सर्वोत्पादक (भगः) ऐश्वर्यवान्, (दितिः च) दुःखों, कष्टों को नाश करने वाली नीति और हल आदि से कर्पित भूमि ये सब (वार्यम् दाति) उत्तम धन प्रदान करे।

अमे रक्षा शो अंहसुः प्रति ष्म देव रीषतः ।

तपिष्ठैरजरो दह ॥ १३ ॥

भा०—हे (अमे) तेजस्विन् ! राजन् ! तू (नः) हमें (अंहसः रक्ष) पाप और पापी पुरुष से बचा। हे (देव) तेजस्विन् ! अभयदातः ! तू (रीषतः) हिंसकों को स्वयं (अजराः) उखाड़ने में समर्थ एवं जरारहित, बलवान् होकर (तपिष्ठः) अति सन्तापदायक उपायों से (प्रति दह ष्म) एक २ करके दग्ध कर, समूल नाश कर।

अधा॑ मृही न आयुस्यना॒ धृष्णो॑ नृपीतये ।

पूर्वैवा शुतभुजिः ॥ १४ ॥

भा०—(अध) और हे राजन् और राजि ! जिस प्रकार (नृपीतये) मनुष्यों के पालन करने के लिये तू (अनाधृष्टः) शत्रुओं से कभी पराजित नहीं होता उसी प्रकार हे रानी ! तू भी (अनाधृष्टा उ नृपीतये) मनुष्यों में नारियों की रक्षा करने के लिये कभी पराजित न हो । और (आयसी पृः) लोह की बनी प्रकोट के समान (शत-भुजिः) सैकड़ों की पालक, पालिका, (भव) हो ।

त्वं नः प्राह्मंहस्तो दोषावस्तरघायतः ।

दिवा नक्तमदाभ्य ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (दोषावस्तः) रात्रि और दिन (नः) हमें (अंहसः पाहि) पाप से बचा । हे अहिसंनीय ! तू (नः) हमें (अघायतः) हम पर पापाचार करना चाहने वाले पुरुष से (दिवा नक्तम्) दिन और रात (पाहि) बचाया कर । इति विंशो वर्गः ॥

[१६]

वीसिष्ठ ऋषिः ॥ अविनरेवता ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप् । ५ निचृद्रुष्टुप् ।
७ अनुष्टुप् ॥ ११ भुरिगनुष्टुप् । २ भुरिग्वृहती । ३ निचृद्रूहती । ४, ६,
१० वृहती । ६, ८, १२ निचृतपंक्तिः ॥

एना चो अ॒र्थि नम॑स्तोर्जो नपा॒तुमा हु॑वे ।

प्रियं चेतिष्ठमर्ति॑ स्वध्वरं विश्वस्य दूतम॑मृतम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रजाजनो ! (वः) आप लोगों के (ऊर्जः नपातम्) बल से उत्पन्न, एवं अज्ञ, बल, वीर्य, पराक्रम का नाश न होने देने वाले, ब्रह्मचारी (अभिम्) अभिम् के समान तेजस्वी, (प्रियम्) प्रिय, (चेतिष्ठम्) ज्ञान के उपदेष्टा, (अरतिम्) सुखदायक, विषयों में सशक्त (स्वध्वरम्) उत्तम हिंसा रहित कर्त्तव्यों के पालक, (विश्वस्य) सबके (दूतम्) शुभ सन्देश-हर (अमृतम्) अविनाशी दीर्घजीवी,

पुरुष को (एना मनसा) इस प्रकार के अन्न आदि सत्कार, विनय, आदर, ज्ञानि, अधिकार से (आ हुवे) आमन्त्रित करता हूँ ।

स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।

सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (अरुषा) तेज से युक्त अश्वों के समान (विश्व-भोजसा) समस्त विश्व के पालक, जल और अग्नि तत्त्व को (योजते) रथ में संयुक्त करता है (सः स्वाहुतः) वह उत्तम रीति से आदत (दुद्रवत्) अति वेग से जाने में समर्थ होता है । इसी प्रकार वह (सु-ब्रह्मा) उत्तम देवों का ज्ञाता विद्वान् और उत्तम धन-सम्पन्न राजा, (यज्ञः) पूजनीय, (सु-शमी) सुकर्मा और उत्तम, शम का साधक (वसूनां जनानां) वसी प्रजाओं में से (देवं) सुख देने वाले (राधः) ऐश्वर्य को भी (दुद्रवत्) प्राप्त होता है । (२) इसी प्रकार जो 'विश्व' नाम जीवात्मा के पालक अश्ववत् नियुक्त प्राण अपान दोनों को (योजते) योग द्वारा वश करता है वह (सु-आहुतः) उत्तम दोनों के (योजते) योग द्वारा वश करता है वह (सु-आहुतः) उत्तम ज्ञानी, यथा, सुकर्मा, होकर वसु, जीवों के आराध्य परम देव को प्राप्त होता है ।

उद्दस्य शोचिरस्थादाजुह्नानस्य मीढुहुषः ।

उद्धुमासो अरुषासो दिविस्पृशः समिन्धते नरः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (आजुह्नानस्य मीढुषः) आहुति दिये गये, वी से सींचे गये (अस्य) इस अग्नि की (शोचिः) ज्वाला (उत् अस्थात्) ऊपर को उठती है और (अरुषासः धूमासः दिवि सृष्टाः उत् अस्थुः) चमकते आकाश को ढूने वाले धूम गण ऊपर उठते हैं उस (अस्मिम्) अग्नि को (नरः समिन्धते) उत्तम पुरुष प्रज्वलित करते हैं इसी प्रकार (आ-जुह्नानस्य) अपनी किरणों से जल को ग्रहण करने वाले (मीढुषः) वृष्टि करने वाले (अस्य) इस सूर्य का (शोचिः) प्रकाश (उत् अस्थात्)

सब से ऊपर विद्यमान रहता है । और उसके (दिविस्पृशः) आकाश भर में व्यापक (अरुपासः) अति देवीप्यमान (धूमासः) धूम के समान ज्वाला पटल (उत्) ऊपर उठते हैं उस (अग्निम्) तेजस्वी, अग्निमय सूर्य के (नरः) प्रकाश लाने वाले किरण (सम् इन्धते) प्रदीप करते हैं उसी प्रकार (आ-जुह्वानस्य) सबको वेतन देने और सब से कर आदि देने वाले (मीदुषः) वीर्यवान्, दानशील पुरुष का (शत्रिः उत् अस्थात्) अवित्र तेज सर्वोपरि विराजता है । उसके (अरुपासः) दोपरहित, तेजस्वी, (दिविस्पृशः) व्यवहार, तेज, युद्ध, कांक्षादि में चतुर (धूमासः) शत्रु को कंपा देने वाले वीर पुरुष (उत्) सर्वोपरि विराजते हैं और ऐसे ही (नरः) नायकगण (अग्निम्) अग्रणी नायक को (सम् इन्धते) खूब चमकाते और प्रदीप करते हैं ।

तं त्वा दूतं कृणमहे युशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।

विश्वा सूनो सहसो मर्त्तभोजना रास्त्र तद्यत्त्वेमहे ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि या विद्युत्, सर्व व्यापक होने से 'शयस्तम' वा 'यशस्तम' है अति संताप जनक होने से 'दूत' है, बल-उत्पादक होने से और बलपूर्वक रगड़ से उत्पन्न होने से 'सहसः-सूनु' है वह मनुष्यों का (मर्त्त-भोजना) भोजन पकाता नाना भोग्य पदार्थ प्रस्तुत करता है वह (वीतये) प्रकाश के लिये (देवान् आ वहति) किरणों को धारण करता है । उसी प्रकार हे राजन् ! (तं) उस (त्वा) तुक्ष (यशस्तमं) वीर्यवान् और कीर्तिमान् पुरुष को ही हम (दूतं) समस्त दुष्टों को दण्ड द्वारा पीड़ित करने और सबको शुभ सन्देशा, आदेशादि देने वाला प्रमुख रूप से (कृणमहे) बनाते हैं तू (वीतये) राष्ट्र की रक्षा के लिये (देवान्) उत्तम व्यवहारज्ञ, विजयेच्छुक, तेजस्वी, दानशील पुरुषों को (आवह) धारण कर । हे (सहसः सूनो) बल, विजली, सैन्य के संचालक तू ही (विश्वा) समस्त (मर्त्तभोजना) मनुष्यों के नाना भोग योग्य

वृत्ति ऐश्वर्यादि पदार्थ (रास्व) प्रदान कर (यत्) जो २ हम (त्वा
(हमहे) तुङ्ग से माँगे । अर्थात् राजा प्रजा की सभी उपयुक्त मार्गों
को स्वीकार कर देवे ।

त्वमेष्टे गृहपतिस्तं होता नो अध्वरे ।

त्वं पोता विश्वारु प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥ ५ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार गार्हपत्य रूप से गृहपति एवं रोग
नाशक होने से भी गृह का पालक, (अध्वरे होता) यज्ञ में हवि
गृहण करने से 'होता,' वायु जलादि को पवित्र करने से 'पोता,' है उसी
प्रकार हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (त्वम्) तू (गृहपतिः) गृहपति,
गृहस्थ और हे राजन् ! तू राष्ट्र को भी गृहवत् पालन करने वाला (अध्वरे)
अहिंसक, प्रजापालक पद पर स्थित होकर (होता) सबको सब प्रकार
के सुख, अज्ञ, वेतनादि देने वाला, और करादि लेने वाला है । (त्वं पोता)
न्याय व्यवहार और उत्तम व्यवस्था से राज्य शासन और धर्म-न्यवहार
को शोधने वाला है । हे (विश्वारु) समस्त संकटों को धारण करने
हरे ! तू (प्रचेताः) सबसे उत्तमवित्त और ज्ञान वाला होकर (वार्यम्)
श्रेष्ठ धन का (यक्षि) प्रदान करता और प्राप्त करता है । अथवा
(वार्यम्) शत्रु आदि का कष्ट निवारण करने वाले सैन्यादि को (यक्षि)
संगत कराता और (वेषि च) पालता भी है ।

कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा आसि ।

आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥६॥२१॥

भा०—हे (सुक्रतो) शुभ कर्म और शुभ बुद्धि वाले पुरुष ! (हि)
जिससे (त्वं रत्नधा आसि) तू रमण करने योग्य, उत्तम धन्धों को
धारण करता है, इस से तू (यजमानाय) परोपकारार्थ दान, यज्ञादि
करने वाले पुरुष के लिये (रत्नं कृधि) उत्तम धन उत्पन्न कर । और

(नः) हमारे (विश्वम् कृत्विं) समस्तं कर्तुं अनुकूलं यज्ञं करने और संगति करने वाले को (कर्ते) यज्ञ, धर्म व्यवहार और धनोपार्जन के कार्य में (आ शिरीहि) सब प्रकार से तीक्ष्ण अर्थात् उत्साहित कर और उसको भी उत्साहित कर (यः) जो (सु-शंसः) उत्तम प्रशंसा योग्य होकर (दक्षते) बढ़ता है, कुशल होकर कार्य करता है । इत्येकत्रिशो वर्गः ॥

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सुरयः ।

यन्तारो ये मधवान्तो जनानामुर्वान्दयन्तु गोनाम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (स्वाहुत) उत्तम रीति से आमन्त्रित होने योग्य (अग्ने) तेजस्त्विन् ! विद्वन् ! (ये) जो (मधवानः) अधिक धनैश्वर्यवान्, (यन्ता) नियम व्यवस्था करने में कुशल पुरुष (जनान् गोनाम्) मनुष्यों के पशुओं, भूमियों और इन्द्रियों के (ऊर्वान्) पालकों की (दयन्त) रक्षा करते हैं ऐसे (सुरयः प्रियासः सन्तु) विद्वान् जन तेरे अधीन तेरे अति प्रिय होकर रहें ।

येषामिन्द्रा धृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।

तांखायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छ्रुत्तुः शर्म दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥

भा०—(येषां) जिन पुरुषों के (दुरोणे) घर में (इला) पूज्य देवी, आदर सत्कार और शुभ कामना का पात्र होकर (धृतहस्ता) पूज्यों का आदर सत्कार करने के निमित्त जलपात्र हाथ में लिये (प्राता) पूर्ण पात्र होकर (अपि निषीदति) विराजती है, हे (सहस्य) बलवन् ! तू (तान् त्रायस्व) उनकी रक्षा कर और (द्रहः) द्रोही और (निदः) निन्दकों को (आ अपि यच्छ) निग्रह कर और तू (दीर्घश्रुत्) दीर्घ काल तक ज्ञान श्रवण करने हारा होकर (नः) हमें (शर्म यच्छ) सुख प्रदान करे ।

स मन्द्रया च जिह्वया वहिःसा विदुष्टः ।

अग्ने रुद्य मधवद्धये नु आ वह हव्यदाति च सूदय ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (सः) वह तू (वहिः) राज्य कार्य-भार को उठाने वाला, धुरन्धर पुरुष (मन्द्रया जिह्वया) सब को हर्ष देने वाली वाणी और (आसा) हर्षप्रद मुख से तू (विदुःतरः) सबसे उत्तम विद्वान् होकर (नः मधवद्धयः) हमारे धनाव्य पुरुषों को (रथिम् आ वह) ऐश्वर्य और बल प्राप्त करा और (हव्य-दाति च) अज्ञ के विनाश या त्रुटि को (सूदय) दूर कर अर्थात् हमारे यहां ग्राह अज्ञ धनादि का टोटा कभी न हो ।

ये राधांसि ददत्यशव्या मृधा कामेनु श्रवसो मुहः ।

ताँ अंहसः पिपृहि पर्तुभिष्ठवं शतं पुर्भिर्यविष्ठय ॥ १० ॥

भा०—हे (यविष्ठय) अतियुवा, बलशालिन् ! (ये) जो (महः) बड़े (श्रवसः) अज्ञ, यश, और ज्ञान की (कामेन) अभिलाषा से (राधांसि) नाना धन, (अशव्या) अश्वों के नाना सैन्य और (मृधा) नाना प्रकार के पूजा सत्कार (ददति) प्रदान करते हैं तू (तान्) उनको (पर्तुभिः) पालक और पूरक जनों से और (शतं पुर्भिः) सैकड़ों नगरियों या प्रकोटों आदि उपायों से (पिपृहि) पालन और पूर्ण कर ।

देवो वी द्रविणोदाः पूर्णा विवष्ट्यासिचम् ।

उद्धा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वौ देव ओहते ॥ ११ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (देवः) सब सुखों का दाता ही (वः) आप लोगों को (द्रविणोदाः) सब प्रकार के ऐश्वर्य देता है । वह (पूर्णचम्) पूर्ण (आसिचम्) आहुति (विवष्टि) चाहता है । (वा) अथवा (उप पृणध्वम्) उसकी उपासना करो (आत इत्) अनन्तर वही (देवः) दाता प्रभु ((वः) आप लोगों के (ओहते) कर्मों का विवेचना करता और नाना कर्मफल प्रदान करता है ।

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसुं वहिं देवा अकृणवत् ।
दधाति रत्नं विधते सुंवीर्यम् अग्निर्जनाय दाशुर्वे ॥ १२ ॥ २२ ॥

भा०—(देवः) विद्वान् लोग (होतारं) विद्या के ग्रहण करने और शिष्यों व जनों के प्रदान करने वाले (अध्वरस्य) अहिंसामय यज्ञ के (प्र-चेतसम्) उत्तम ज्ञाता, पुरुष को (वहिंम् अकृणत्) अग्नि के समान कार्य का बोझ उठाने वाला, आश्रय बनावें । वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (विधते) विशेष कर्म करने वाले को (रत्नं) उत्तम सुखकारी फल (दधाति) प्रदान करता और वही (दाशुर्वे) दानशील पुरुष को (सुंवीर्यम् दधाति) उत्तम वीर्य, बल प्रदान करता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१७]

वैसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ आच्युष्मिक् । २

साम्नी विष्णुप् । ५ साम्नी पंक्तिः । सप्तर्च सूक्तम् ॥

अग्ने भव सुप्रमिधा समिद्ध उत बहिंसर्विया वि स्तृणीताम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! आप (सु-समिधा) उत्तम काष्ठ से जैसे अग्नि चमकता है उसी प्रकार उत्तम तेज, और सत्कर्म, विद्या प्रकाश से (समिद्धः भव) चमका कर । (उत) और (उर्विथा बहिः) जिस प्रकार यज्ञ में बहुत कुशा बिछती है वा जैसे सूर्य वा यज्ञाग्नि प्रचुर जल पृथ्वी पर बरसाता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी (उर्विया) बहुत (बहिः) वृद्धिशील ज्ञान और प्रजाजन को (विस्तृणीताम्) विस्तृत करे ।

उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तेजस्विन् ! राजन् ! (उत) और (द्वारः) वेग से जाने वाली, शत्रु का वारण करने वाली सेनाएं (उशतीः) तुझे निर-

न्तर चाहती हुई देवियों के समान (वि श्रयन्ताम्) विशेष रूप से अपने स्वामी का आश्रय लें । (उत्त) और (उद्गतः देवान्) तुक्षे चाहते विद्वान् पुरुषों को भी तू (इह) इस स्थान में (आ वह) प्राप्त करा आदर पूर्वक बुला ।

अग्ने वीहि हृविषा यक्षिं देवान्तस्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (हृविषा) उत्तम अन्न आदि पदार्थ से (वीहि) विद्वानों की रक्षा कर और (देवान् यक्षिं) विद्वानों का आदर सत्कार कर । हे (जातवेदः) उत्तम ज्ञान वाले ! तू (सु-अध्वरा कृणुहि) उत्तम हिंसारहित, एवं नष्ट न होने वाले श्रेष्ठ कर्म कर ।

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षदेवाँ अमृतान्प्रयत्न ॥ ४ ॥

भा०—(जातवेदाः) ऐश्वर्य और ज्ञान वाला पुरुष (सु-अध्वरा करति) उत्तम यज्ञ करे । वह (देवान् यक्षत्) विद्वानों का सत्संग और सत्कार करे वह (अमृतान् प्रयत्न) मरण रहित, जीवित पुरुषों को अज्ञों से पालन करे ।

वंस्त्र विश्वा वायाणि प्रचेतः सुत्या भवन्त्वाशिषो नो श्रद्धा ॥५॥

भा०—हे (प्रचेतः) उत्तम ज्ञान और उत्तम चित वाले पुरुष ! तू (विश्वा वायाणि) सब प्रकार के वरण करने योग्य धन, ज्ञान आदि पदार्थ (नः वंस्त्र) हमें प्रदान कर । और (अद्य) आज, (नः आशिषः) हमारी सब अभिलाषाएँ (सत्याः भवन्तु) सत्य, उत्तम फलदायक हों । त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् (ते) वे (देवासः) विद्वान् लोग (ऊर्जः) बल पराक्रम का नाश न होने देने वाले (हव्यवाहं) उत्तम वचनों, गुणों और पदार्थों के धारक (त्वाम् उ) तुक्ष को ही (दधिरे) पुष्ट करते हैं, सर्वत्व तुक्ष ही प्रदान करते हैं ।

ते तें देवाय दाशतः स्याम सुहो न्ते रत्ना ।

वि दधं इयानः ॥ ७ ॥ २३ ॥ १ ॥

भा०—जो तू (नः इयानः) हमें प्राप्त होकर (महः रत्ना) बड़े, उत्तम २ पदार्थ (विदधे) बनाता, और उत्तम २ कर्मों का विधान, अनुशासन करता है (ते देवाय) तुल्य विद्वान्, के लिये हम सदा (दाशतः स्याम) सब कुछ देने वाले हों । इति वयोविंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—२१ इन्द्रः । २२—२५ सुदासः पैजवनस्य दानस्तु-
तिदेवता ॥ इन्द्रः—१, १७, २१ पंक्तिः । २, ४, १२, २२ मुरिक् पंक्तिः ।
८, १३, १४ स्वराद् पंक्तिः । ३, ७ विराद् त्रिष्ठुप् । ५, ६, ११, १६,
१६, २० निचृत्विष्ठुप् । ६, १०, १५, १८, २३, २४, २५ त्रिष्ठुप् ॥
पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

त्वे हु यत्पितरश्चिन्न इन्द्रु विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुधास्त्वे हाश्वास्त्वं वसु देवयुते वनिष्ठः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (नः पितरः चित्) हमारे पिता, माता, अन्य मान्य बन्धुजन (चित्) और (जरितारः) ज्ञानो-पदेष्ठा गुरुजन भी (त्वेह) तुल्य पर ही आश्रय पाकर (विश्वा वामा) सब उत्तम २ फलों की (असन्वन्) याचना करते और पाते हैं, तू ही (वनिष्ठः) सब से श्रेष्ठ देने हारा है । (त्वे गावः) तेरे ही अधीन गौणं (सु-दुधाः) उत्तम दूध देने हारी, (त्वे हि अश्वाः) तेरे ही अधीन अश्व हैं । (त्वं वसु देवयते) विद्वानों और शुभ गुणों के इच्छुक को तू ही ऐश्वर्य देता है ।

राजेष्व हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरुभि विदुष्कुविः सन् ।
प्रिशा गिरो मघवुन्नगोभिरश्वैस्त्वायुतः शिशीहि राये अस्मान् ॥२॥

भा०—हे विद्वन् ! (जनिभिः) उत्पन्न प्रजाओं सहित तू (राजा इव) राजा के समान (क्षेपि) निवास कर और तू (विदुः) विद्वान् (कविः) क्रान्तदर्शी, उत्तम काव्यनिर्माण में चतुर एवं उपदेष्टा होकर (अभि अव क्षेपि) सर्वत्र सबको अनुशासन कर । और हे (मधवन्) उत्तम पूज्य विद्याधन के धनी ! तू (कविः सन्) विद्वान् कवि होकर (पिशा) उत्तम रूप से (गिरः शिशीहि) उत्तम वाणियों को प्रकट कर । और (त्वायतः अस्मान्) तेरी सदा शुभ कामना करते हुए हमें तू (गोभिः) गौओं, भूमियों और (अथैः) अश्रों से (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने, बसाने और उसकी रक्षा करने के लिये (शिशीहि) सम्पन्न, एवं उत्साहित और तीक्ष्ण कर ।

इमा उ त्वा पस्पृधानासो अञ्च मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुपस्थुः ।
श्रुवाची ते पृथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्दु शर्मन् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः गिरः) ये वाणियां (देवयन्तीः) विद्वानों को चाहती हुई उनके योग्य (मन्द्राः) हर्ष देने वाली (पस्पृधानासः) एक दूसरे से बढ़ कर (त्वा उ) तुल को ही (उप स्थुः) प्राप्त हों । (ते) तेरी (अर्वाची) नवीन (पृथ्या) सन्मार्ग पर चलने वाली सत्-नीति (राये एतु) हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हमें प्राप्त हो । हम लोग (ते सुमतौ) तेरी उत्तम सम्मति और (शर्मन्) तेरी शरण में (स्याम) सुख से रहें ।

धेनुं न त्वा सुयवसे दुदुक्षुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमति गुन्त्वच्छु ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (सुयवसे धेनुं न दुदुक्षन्) उत्तम अन्न, चारे आदि के ऊपर गौ का पालक गौ को खूब दुहने की इच्छा करता है इसी प्रकार हे राजन् ! (वसिष्ठः) राज्य में बसने वाला उत्तम प्रजाजन (सूय-

वसे) उत्तमं अन्नं सम्पदा के निमित्त (त्वा) तुक्ष को गौंके समान (दुदुक्षन्) दोहने, अर्थात् तुक्ष से बहुतसा ऐश्वर्य लेने वा तुक्षे समृद्धि से पूर्ण करना चाहता हुआ (ब्रह्माणि) नाना बल, धन, अन्न और ज्ञान (उप ससुजे) उत्पन्न करता, प्राप्त करता है। अर्थात् स्वामी राजा से ऐश्वर्य प्राप्त करने और राजा को समृद्ध करने के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैद्य और शूद्र सभी वर्ग क्रम से नाना प्रकार के ज्ञानों, धनों, बलों और अन्नों को उत्पन्न करें। हे स्वामिन् ! (विश्वः) समस्त जन (त्वाम् इत्) तुक्ष को ही (मे गोपतिम्) मेरा 'गोपति', भूमिपति (आह) कहे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नः) हमारे (सुमति) उत्तम सम्मति को (अच्छ गन्तु) अच्छी प्रकार प्राप्त करे।

अर्णांसि चित्प्रथाना सुदासु इन्द्रो ग्राधान्यकुण्ठोत्सुपारा ।

शर्धन्तं शिष्युमुच्यस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकुण्डोदर्शस्तीः ५।२४

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक राजा (सुदासे) उत्तम करप्रद प्रजाजन के लिये वा उत्तम देने लेने के व्यवहार के लिये (प्रथाना अर्णांसि) दूर तक फैले जलों को भी सेतु, नौकादि द्वारा (ग्राधानि) परिमित एवं (सुपारा) सुख से पार जाने योग्य (अकृणोत्) करे। वह (नव्यः) सुति योग्य राजा (सिन्धूनां) नदियों के समान प्रवाह से चलने वाली, एवं उत्तम प्रबन्ध से बंधी प्रजाओं में से (शर्धन्तं) बलात्कार करते हुए (शिष्युम्) कर्म करने वाले को (उच्यस्य) आज्ञा वचन कहने वाले के आगे (शापं) शाप अर्थात् आक्रोश या दुर्वचन कहने योग्य, निन्दनीय करे। और (अशास्तीः) निन्दित लोगों को (अकृणोत्) दण्ड दे। अर्थात् जो 'शिष्यु' कर्मकर है वह यदि 'उच्य' अर्थात् अपने ऊपर आज्ञा देने वाले के समक्ष (शर्धन्तं) बल दिखावे, आज्ञा का पालन न करके उल्लंघन करे तो वह 'शाप' अर्थात् कठोर वचनों का पात्र हो, वह डाँटा जाय, और दण्ड भी पावे, इसी

प्रकार प्रजाथों में (अशस्तीः) निन्दित लोगों को भी राजा दण्ड दे । अन्न (अकृणोत्) करे । कृड् हिंसायाम् इत्यस्य रूपम् ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥ पुरोऽन्ना इतुर्वर्शो यद्गुरासीद्राये मत्स्याखो निशिता अपीव । श्रुष्टिञ्चकुर्भृगचो दुह्यवश्य सखा सखायमतरुद्विपूचोः ॥ ६ ॥

भा०—(यक्षः) दान देने और आदर सत्कार करने वाला (तुर्वशः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों का अभिलाषी, वा अन्य को अतिशीघ्र अपने वश करने में समर्थ पुरुष (पुरोऽन्नः इत् आसीत्) द्रव्य के पहले या आगे कर देने वाला हो । जो चाहता है कि मैं आदर से दान करूँ या कर्मकर लोगों को अपने वश कर शीघ्र काम करालूँ उसे चाहिये वह पहले समक्ष द्रव्य देना ठहरा दे, तब (राये मत्स्यासः) जिस प्रकार मत्स्य अन्नादि लेने के लिये जल में वेग से दौड़ते हैं उसी प्रकार (राये) धनैश्वर्य प्राप्त करने के लिये (मत्स्यासः) अति प्रसन्न चित्त होकर लोग (अतीव निशिताः) बहुत ही तेज हो जायेंगे । और (भृगवः) वैद वाणी को धारण करने वाले विद्वान्, भूमिधारक भूमिपति क्षत्रिय और गवादिपालक वैश्य तथा (दुह्यवः च) परस्पर के द्वोही या विरोधी स्पर्धालु लोग भी (श्रुष्टिं चकुः) शीघ्र कार्य करने लगेंगे । (विसूचोः) आगे रखे धन के कारण विरुद्ध अर्थात् एक दूसरे को विपरीत जनों में से (सखा) मित्र भी (सखायम् अतरत्) अपने मित्र को पार कर जाता है मित्र भी मित्र से बढ़ जाना चाहता है । इस प्रकार की स्पर्धा से राजा के काम बहुत शीघ्र हो जा सकते हैं ।

आ पुक्थासो भलानसो भनुन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽन्यतसधुमा आर्यस्य ग्रव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नृन् ७

भा०—(पक्थासः) परिपक्व ज्ञान और परिपक्व उमर वाले दुद्ध जन (भलानसः) उत्तम नासिका वाले सौम्य, सुमुख जन वा (भल-अनसः) उत्तम रथों, शकटों पर स्थित (भलिनासः) सुन्दर नाक वाले

या जो तप में बहुत निष्ठ या (अलिनासः अलीनाः) लीन अर्थात् कार्य व्यग्र, या आसक्त न हों, (विषाणिनः) सींग के समान हाथ में सदा शब्द रखने वाले, वीर, (शिवासः) सब के मंगलकारी लोग (अभनन्त) जब २ उत्तम उपदेश, संदेशादि कहा करें। (यः) जो (सधमाः) एक समान स्थान या पद पर मान पाकर (आर्यस्य) उत्तम पुरुष के (गव्या) भूमि विषय का राज्य कार्यों को (अनयत्) चलाने में समर्थ है वह सेनापति होकर (तृत्सुभ्यः) हिंसक पुरुषों के विनाश के लिये (युधा) युद्ध के हेतु (नन् अजगन्) उत्तम नायकों को प्राप्त करे।
दुराध्योऽश्रद्धिर्ति स्वेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्वे परूषणीम् ।
सुद्वाचिव्यक्पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कुविरशयुच्चायमानः ॥ ८ ॥

भा०—(दुराध्यः) दुष्ट बुद्धि वाले, दुष्ट आचार वाले (अचेतसः) विना चित्त के और अज्ञानी (अदितिम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष वा उसकी अखण्ड, (परूषणीम्) पालन करने वाली अति दीसियुक्त तेजस्विनी नीति को (स्वेवयन्तः) उल्लंघन करते हुए (वि जगृभ्वे) विग्रह विरोध किया करते हैं। (मद्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (चायमानः) ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष (पृथिवीं पत्यमानः) पृथिवी का स्वामी होता हुआ (अविव्यक्) पृथिवी पर अपना अधिकार प्राप्त करता है। और (पशुः) पशु के समान मूर्ख राजा (चायमानः) वृद्धियुक्त होकर भी (पत्यमानः) गिराया जाकर (पृथिवीम् अशयत्) भूमि पर पशु के समान सोता है, मारा जाता है।

ईयुरर्थं न न्युर्थं परूषणीमाशुश्चनेदभिपित्वं जमाम ।
सुदासु इन्द्रः सुतुकां श्रमित्रानरन्थयुन्मानुषे वधिवाचः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जब (सुदासः) उत्तम भूत्य वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् राजा (मानुषे) बहुत मनुष्यों से करने योग्य संग्रामों में (वधि-

वाचः) हिंसायुक्, परुष भाषण करने वाले (सु-तुकान्) खूब हिंसक (अभिन्नान्) शत्रुओं को (अरन्धयत्) दण्डित करता और वश करता है और इसी प्रकार वह राजा (मानुषे) मनुष्यों से वसे इस राष्ट्र में (वधि-वाचः) निर्बल वाणियों वाले, वा वृद्धिकारक उत्तम विद्वानों और (सु-तुकान्) उत्तम बालक, व पुत्रों वाले प्रजाजनों को (अरन्धयत्) वश करता है । तब वह (आशुः) शीघ्रकारी होकर (अभिपित्वं) अपने प्राप्त होने योग्य लक्ष्य वा अभिमत ऐश्वर्य को (जगाम) प्राप्त करता है । तब ही सब लोग भी (अर्थं न) अपने इष्ट धन के समान (न्यर्थं) निश्चित लक्ष्य को और (पर्वणीम्) पालक नीति और दीसियुक्त तीक्ष्णदण्ड नीति को (ईशुः) प्राप्त होते हैं ।

ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतम् भिस्त्रं चितासः ।

पृश्निगावः पृश्निनिप्रेपितासः श्रुष्टिं चक्रन्तियुतो रन्तयश्च १०।२५॥

भा०—(अगोपाः गावः न) रक्षक से रहित, विना ग्वाले की गौंदुं जिस प्रकार (यवसात्) सुस, अजादि के हेतु ही (ईशुः) स्वामी के गृह में आ जाती हैं उसी प्रकार (चितासः) चेतना युक्त जीवगण भी (यथा-कृतम्) अपने किये कर्म के अनुसार ही (मित्रम् अभि ईशुः) अपने स्नेह करने वाले, वा जीवन से बचाने वाले प्रभु को प्राप्त होते हैं । जिस प्रकार (पृश्निं-गावः) 'पृश्नि' अर्थात् सूर्य से उत्पन्न नाना वर्ण की किरणें (पृश्निनिप्रेपितासः) पृथ्वी पर या अन्तरिक्ष से प्रेरित होकर (श्रुष्टिं चक्रुः) वर्षा द्वारा अज्ञ उत्पन्न करती हैं और जिस प्रकार (पृश्निं-गावः) नाना वर्ण के बैल (पृश्निनिप्रेपितासः) विद्वान् पुरुषों द्वारा खेत में चलाये गये (श्रुष्टिं चक्रुः) अज्ञ को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (पृश्निं-गावः) भूमि रूप गौवें, (पृश्निनिप्रेपितासः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों से प्रेरित या शासित होकर (श्रुष्टिं चक्रुः) अज्ञ सम्पत्ति को उत्पन्न करती हैं इसी प्रकार

(नियुतः) लक्षों नियुक्त सेनादि, अश्वारोही, पुरुष तथा (रन्तयः) रमण करने वाले सुप्रसन्न प्रजाजन भी (श्रुष्टिं चक्रुः) सम्पदा को उत्पन्न करते वा वायुवत् (श्रुष्टिं चक्रुः) शीघ्र कार्य सम्पादन करते हैं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनानाज्ञा न्यस्तः ।

दुस्मोन् सद्वाच्चि शिशातिः वर्हिः शूरः सर्गमकुण्डोदिन्द्र॑ एषाम् ११

भा०—(न्यस्तः) निश्चितरूप से स्थापित (यः) जो (राजा) तेजस्वी राजा, (वैकर्णयोः) विविध कानों वाले दोनों पक्षों के बीच (एकं च विंशतिं च) एक और वीस अर्थात् इक्कीस, (जनान्) विद्वान् मनुष्यों को (श्रवस्या) श्रवण योग्य राज्य-कार्यों को सुनने के लिये अपना सभासद् बनाता है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रु (एषाम्) इन इक्कीसों का (सर्गम्) एक सर्ग अर्थात् समिति या संघ (अकृणोत्) बना लेता है । वह (सद्गन्) अपने भवन में विराजता हुआ भी (दस्मः) शत्रु नाश करने में समर्थ (शूरः) शूरवीर पुरुष (वर्हिः) कुश तृण के समान बढ़ते शत्रु को (नि शिशातिः) नाश करता है ।

राजा २० सभासदों की अमात्यसभा बनावे आप उनमें इक्कीसवां हो । उनके दो पक्ष (वैकर्ण) हों उन इक्कीसों का एक 'सर्ग' (body) या एक रचना (Constitution) हो ।

अधे श्रुतं कृवर्षं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्यु नि वृणुग्वज्रवाहुः ।

वृणाना अत्र सुख्याय सुख्यं त्वायन्त्रो ये अमदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥

भा०—(अत्र) इस राष्ट्र या लोक में हे राजन् ! (ये) जो (त्वायन्तः) तेरी चाहना करते हुए, (त्वा सख्यं) तुझ मित्र को (सख्याय) अपना मित्र बनाने के लिये (वृणानाः) चुनते हुए (त्वा अनु अमदन्) तेरी ही प्रसन्नता में प्रसन्न होते हैं (अधे) तू भी (वज्र-वाहुः) 'वज्र' अर्थात् शब्दात्मक बल और वीर्य को बाहुओं में धारण

करता हुआ (अप्सु) आस प्रजाओं के वीच में (श्रुतं) प्रसिद्ध,
बहु-श्रुत, (कवपं) उपदेष्टा, विद्वान् (वृद्धम्) विद्या वयोवृद्ध पुरुष
को (अनु वृणक्) अपने अनुकूल करता, उसके हृदय को प्रसन्न करता
और (द्रुत्युम् निवृणक्) द्रोह करने वाले को दूर करता है ।

वि सृद्यो विश्वा दंहितान्येपामिन्द्रः पुरः सहसा सृत दर्दः ।

व्यानवस्य तृत्सवे गर्य भागजेष्म पूर्ण विदथे मृध्रवाचम् ॥१३॥

भा०—जब भी (सदः) शीघ्र ही (विश्वा) सब (दंहि-
तानि) अपने सैन्य दृढ़ हों । (इन्द्रः) आत्मा जिस प्रकार (सहसा)
अपने प्राण बल से (एपां) इन जीव शरीरों के (सप्त पुरः वि दर्दः)
सात इन्द्रिय, ज्ञानपूरक छिद्रों को भेदता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान्
राजा भी (एपां) इन शत्रु जनों को (सप्त पुरः) सातों प्रकार के दुर्गों
को (वि दर्दः) विविध प्रकार से भेदे, नष्ट करे । आत्मा जिस प्रकार
'अनु' अर्थात् प्राणी जीव के योग्य इस देह के (गथम्) प्राण का
(वि भाक्) देह भर में विभक्त करता है उसी प्रकार राजा (आनवस्य)
अनु अर्थात् मनुष्यों के रहने योग्य राष्ट्र के (गर्य) प्रजाजन को
(वि भाक्) विभक्त करे और (तृत्सवे) हिंसक पुरुष को राष्ट्र से
हटाने के लिये हम लोग (मृध्र-वाचः) हिंसक, दुःखदायी वाणी बोलने
वाले (पूर्ण) मनुष्य समूह को (जेष्म) जय करें ।

नि गव्यवोऽनवो द्रुत्याचश्च पृष्ठिः शता सुपुषुः पद् सुहस्ता ।

पृष्ठिर्विर्विरासो अधि पद् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्यो कृतानि ॥१४॥

भा०—(गव्यवः) गौ आदि पशु और भूमियों की चाहना करने
वाले (अनवः) मनुष्य युद्धार्थी लोग भी जो (पृष्ठिः शता, अधि पृष्ठिः
पद्) साठ सौ अर्थात् ६ सहस्र और ७ सहस्रों पर ६६ अधिक संख्या
में (दुवोयु) सेवकों के स्वामी के सुख के लिये (नि सुपुषुः) बड़े

सुख से सोते हैं, इसी प्रकार (दुद्दावाचः पद् सहस्रा अधि षष्ठिः पद्) द्रोह करने वाले विरोधी लोग भी ६०६६ संख्या में (दुवोयु) स्वामी के सुख के लिये (अधि सुपुषुः) भूमि पर पढ़े सोते हैं । अर्थात् मारे जाते हैं, (विश्वा इत्) ये सब (इन्द्रस्य कृतानि वीर्या) ऐश्वर्ययुक्त, शशुहन्ता राजा के ही करने योग्य कार्य हैं । अर्थात् दोनों ओर से ६।६ सहस्रों की सेनाओं का खड़े होना, छावनी में पढ़े रहना; लड़ना, मारे जाना आदि कार्य राजाओं के निमित्त ही होते हैं ।

इन्द्रैण्यैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकल्विनिमाना जुहुर्विश्वानि भोजना सुदासे १५।२६

भा०—(पुते) ये (तृत्सवः) हिंसाकारी, सैन्य में भर्ती हुए सिपाही लोग (वेविषाणा) शत्रु सैन्य में फैलते हुए (सृष्टा: आपः न) वर्षा से उत्पन्न जलों के समान (नीचीः अधवन्त) नीचे की भूमियों में वेग से जाते हैं, वा (नीचीः) नीच गुण की दुष्ट सेनाओं को (अधुवन्त) कंपाते, भयभीत करते हैं । और (दुर्मित्रासः) दुष्ट मित्र, (मिमानाः) हिंसा करते हुए भी (प्रकल्वित) उक्त संख्या जानने वाले (सुदासे) या उत्तम ज्ञानवान्, उत्तम दानशील राजा के हितार्थ (भोजना जहुः) अपने भोजनवत् समस्त भोग्य सुखों को भी त्यागते हैं । इति पद्विंशो वर्गः ॥.

अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं पसा शर्धन्तं तुनुदे अभि ज्ञाम् ।
इन्द्रौ मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तुनि पत्थमानः ॥१६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वीरस्य अर्धम्) वीरों, और विद्वान् पुरुषों के बढ़ाने वाले (शृतपाम्) परिपक्ष, दुग्धादि उत्तम पदार्थों के पीने वाले पुरुष को (ज्ञाम् अभि) भूमि को प्राप्त करने के लिये (तुनुदे) प्रेरित करता है और (अनिन्द्रं शर्धन्तम्) इन्द्र के

विरोधी बल को बढ़ाते हुए पुरुष को भी (परा नुनुदे) दूर करने में समर्थ होता है। वह ऐश्वर्यवान् (मन्युम्यः) मन्यु करने वालों का नाशक होकर ही (मन्युम्) क्रोध (मिमाय) करता है वा क्रोधयुक्त पुरुष का नाश करने में समर्थ होता है वह (पत्यमानः) स्वयं राष्ट्र की प्रजा का पति, पालक, स्वामी होकर (वर्तनिं) व्यवहार योग्य न्यायमार्ग तथा (पथः) सन्मार्गों को (भेजे) सेवन करे।

आध्रेण चित्तदेकं चकार सिंहौं चित्पेत्वेना जघान ।

अब छक्कीर्वेश्यावृश्चुदिन्द्रः प्रायच्छुदिश्वा भोजना सुदासे ॥१७॥

भा०—वह 'इन्द्र' पद पर स्थित राजा, (आध्रेण चित्) सब प्रकार से रक्षित सैन्य बल (तत् उ) उस समस्त राष्ट्र को (एक चकार) एक द्वितीय साम्राज्य बना लेता है। (पेत्वेन) अश्व सैन्य या पालक बल के सामर्थ्य से (सिंहं चित्) सिंह के समान शत्रु को भी (आजघान) आघात करे। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वेश्या) भीतर हुर्गादि में भी प्रवेश करने वाली सूची व्यूहादि के आकार की तीक्ष्ण सेना से (खक्कीः) मालाओं के समान लम्बी और राष्ट्र को बेरने वाली शत्रु सेनाओं (आवृश्वत्) बनों को परशु के समान काट गिरवे। और (सुदासे) उत्तम, शुभ कल्याण दान देने वाले, प्रजा वर्ग को (विश्वा भोजना) सब प्रकार के रक्षा के साधन और भोग्य ऐश्वर्य भी (प्रायच्छत्) ग्रदान करे।

शश्वन्तो हि शत्रवो रारुधुष्टे भेदस्य चिच्छुर्धतो विन्दु रन्धिम् ।

मर्त्ता पनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जाहि वज्रमिन्द्र १८

भा०—हे राजन्! (ते) तेरे (शशन्तः शत्रवः) सदा के शत्रु लोग (शर्धतः) बलवान् (भेदस्य) भेद नीति में कुशल (ते) तेरे अधीन (रारुधुः) वश हों। और तेरे ही द्वारा वे (रन्धिविन्द) विनाश को प्राप्त हों और (यः) जो (स्तुवतः) प्रार्थना स्तुति आदि करते हुए

(मर्तान्) मनुष्यों अथवा (मर्तान् स्तुवतः) मनुष्यों के प्रति उत्तम उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुषों के प्रति (एनः कृणोति) पाप, अपराध करता है, (तस्मिन्) उस दुष्ट पुरुष पर भी है (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (वत्रं जहि) शत्रु या दण्ड का प्रयोग कर ।

आवृदिन्द्रै युमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सुर्वताता मुपायत् ।

अजासौश्च शिग्रवो यक्षवश्च वर्लिं शीर्षाणि जम्बुरश्च्यानि ॥१९॥

भा०—(यमुना) प्रजाओं को नियन्त्रण करने वाली नीति, और नियन्त्रण करने वाले जन और (तृत्सवः च) शत्रुओं के नाश करने में कुशल वीर सैनिक लोग, और जो (अत्र) इस राष्ट्र में (सर्वताता) सर्वाहितकारी कार्य में (भेदं) परस्पर के 'भेद' अर्थात् फूट को (प्र मुपायत्) नष्ट करते, एकता, संगठन, और परस्पर प्रेम को बढ़ाते हैं और (अजासः) शत्रुओं को उखाड़ फेकने वाले, और (शिग्रवः) अन्यों को न पता चलने वाले संकेत शब्द बोलने वाले या अस्पष्ट, भाषा लोलने वाले, विदेशी और (यक्षवः च) राजा से संगति, या सन्धि करके रहने वाले ये सभी लोग (इन्द्रं आवत्) ऐश्वर्यवान् राजा की रक्षा करें और वे (वर्लिं जम्बुः) अर्थात् कर लावें, इसके अतिरिक्त वे (शीर्षाणि) शिरःस्थानीय, प्रमुख २ (अश्च्यानि) अश्वों के बड़े बड़े २ सैन्यों को भी (जम्बुः) धारण करें । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

न त इन्द्रं सुमतयो न रायः सुञ्चके पूर्वी उपस्तो न नूत्नाः ।

देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव तमना वृहृतः शम्वरं भेत् २०।२७

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरी वा तेरे (सुमतयः) शुभ बुद्धियां और उत्तम बुद्धिमान् पुरुष (सञ्चके न) गिने और वर्णन नहीं किये जा सकते । इसी प्रकार है राजन् (ते रायः न सञ्चके) तेरे ऐश्वर्य भी वर्णन, नहीं किये जा सकते । वे वर्णनातीत और गणनातीत हैं ।

(पूर्वाः उपसः न नूत्नाः) जिस प्रकार नई प्रभात बेलाएं पूर्व की प्रभात बेलाओं के समान ही होती हैं उसी प्रकार (उपसः) तुझे चाहने वाली प्रजाएँ भी (पूर्वाः न नूत्नाः) पूर्व प्रजाओं के समान ही नयी भी तुझे चाहें । तू (मान्यमानं) मान्य पुरुषों के सत्कार करने वाले (देवकं) विद्वान् जनों को (जघन्थ) प्राप्त हो और (मान्यमानं) अभिमान करने वाले (देवकं) क्षुद्र व्यवहारी, और क्षुद्र कामुक एवं जूआखोर लोगों को (जघन्थ) दण्डित कर । और (त्मना) अपने ही सामर्थ्य से (बृहतः) बड़े से बड़े के (शम्वरम्) मेघ के समान सूर्यवत् शान्तिनाशक आवरण को (भेत्) छिन्न भिज्ञ कर । इसि सप्तविंशो वर्गः ॥

प्र ये गृहादमसदुस्त्वाया पराशुरः शतयातुर्वसिष्ठः ।

न ते भोजस्थं सुख्यं मृपन्ताधा सुरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् २१

भा०—(ये) जो लोग (त्वाया) तेरी कामना वा नीति से (गृहात्) गृह से निकल कर भी (अममदुः) बराबर प्रसन्न रहते हैं और (पराशः) दुष्टों का नाशक (शत-यातुः) सैकड़ों वीरों को साथ लेकर चलने वाला वा सैकड़ों दुष्टों को दण्डित करने वाला (वसिष्ठः) सर्वथ्रेष्ठ जन, अर्थात् प्रभुख प्रजाजन ये सब और (ये) जो (ते भोजस्य) तुझ पालक राष्ट्र भोक्ता के (सख्यं) मित्र भाव को (न मृष्टन्त) नहीं भूलते या सहन नहीं करते और उन (सूरिभ्यः) विद्वानों के तू (सुदिना) शुभ दिन (वि उच्छान्) प्रकट कर जिससे वे और अधिक हर्षित हों। द्वे नमृद्देववृतः श्रते गोद्धा रथा बृधूमन्ता सुदासः ।

अहं त्वं स्य दानं होते च सदा पर्यामि रेभन् ॥ २२ ॥

भा०—हे (अम्भे) अग्रणी, अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! (होता इच्छा संशय) दानशील पुरुष जिस प्रकार सभाभवन को प्राप्त होता है उसी प्रकार मैं भी (अर्हन्) सत्कार को प्राप्त होकर (रेभन्) उपदेश, करता हुआ (पैजवनस्य) स्पर्धा करने योग्य वेग, गति, आचार व्यवहार वाले अनु-

करणीय चरित्रान् पुरुष के पुत्र (सुदासः) उत्तम दानशील पुरुष के (दानं) दिये सात्त्विक दान (सद्ग पर्येमि) अपने प्रतिष्ठित गृह के समान ही प्राप्त करुँ । इसी प्रकार (नप्तुः) प्रजाओं का उत्तम प्रबन्ध करने वाले (द्रेव-वतः) विद्वानों, वीरों और व्यवहारवान् पुरुषों के (सुदासः) उत्तम दानशीलराजा के (द्वे शते) दो सौ (गोः) भूमि के (वधू-मन्ता) 'वधू' अर्थात् राज्य के भार को वहन करने वाली विशेष शक्ति से युक्त, (द्वा रथा) दो रथ, रथवान् नायक जनों को भी मैं प्रजाजन प्राप्त करुँ । अध्यात्म में—सर्वातिशायी, सर्वप्रद प्रभु पैजवन सुदास है । सर्व प्रबन्धक एवं बन्धु होने से नसा है । प्रति वर्ष दो अयन, जीवन में २०० हैं । यह शरीर और लिङ्ग शरीर दो (चित्) वधू युक्त रथ हैं । प्रभु के सब दिये दानों को मैं स्तुतिपूर्वक ग्रहण करता हूँ ।

चृत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।

ऋजूसो मा पृथिविष्टाः सुदासं स्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति २३

भा०—(पैजवनस्य) उत्तम आचरण, क्षमावान् प्रभु के (स्मद्दिष्टयः) उत्तम दर्शन वाले, (कृशनिनः) धनादि सम्पत्ति (दानाः) दानशील (कृज्ञासः) सरल धार्मिक व्यवहारवान्, (पृथिविष्टाः) पृथिवी पर विद्यमान (चत्वारः) चार (सुदासः) उत्तम सुख देने वाले हैं । वे (मा तोकं) पुत्रवत् पालनीय मुझ को (निरेके) शङ्कारहित सन्मार्ग में (वहन्ति) यज्ञ में चार कृतिजॉं और मार्ग में, रथ में नियुक्त चार अश्वों के समान लेजावें और वे (मा) मुझ को (तोकाय) उत्तम सन्तान और (श्रवसे) उत्तम यज्ञ प्राप्त करने के लिये (वहन्ति) सन्मार्ग पर चलावें । ये चार प्रभु के चार वेद और राजा के राज्य में चार वेदज्ञ विद्वान् हों । यस्य श्रवो रोदसी श्रुन्तरुर्वीं श्रीष्टौं श्रीष्टौं विबुभाजा विभक्ता । सुसेदिन्डुं न स्तुवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादुभिके ॥२४॥

भा०—(यस्य श्रवः) जिस पुरुष का ज्ञान, यश वा ऐश्वर्य (उर्वी रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथ्वी के बीच तेज को सूर्य के समान (शीर्णे-शीर्णे) प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति के लिये (वि बभाज) विभक्त किया जाता है। जिसको (खवतः सप्त) वेग से चलने वाले सातों, देह में प्राणों के समान रात्र के सातों विभाग, या सर्पणशील वेगवान् अश्वादि सैन्य (इन्द्रं न) अपने आत्मा वा राजा के समान (गृणन्ति) बतलाते हैं वह (युधि-आमधिम् अथवा युध्या-मधिं = मदिम्) युद्ध में पीड़ादायक वा युद्ध के मद् वाले शत्रु को (अभीके) संग्राम में (नि अशिशात्) खूब शासन करे, उसको पराजित करे।

इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासुं न पितरं सुदासः।

अविष्टुना पैजवनस्य केतं दूणाशं चत्रमजरं दुवोयु ॥२५॥२८॥

भा०—हे (नरः) नायक (मरुतः) बलवान्, वायुवत् सर्वग्रिय मनुष्यो ! (दिवः दासम्) ज्ञान-प्रकाश, सत्य व्यवहार के उपदेश देने वाले पुरुष को (पितरम्) पिता के समान (अनुसंश्रत) जानकर उसका अनुकरण और सेवा, आज्ञा पालन आदि करो। (सु-दासः) शुभ ज्ञान और उत्तम द्रव्य के देने वाले (पैजवनस्य) उत्तम आचारवान् पुरुष के (केतम्) गृह और ज्ञान को (अविष्टन) प्राप्त करो, उसकी रक्षा करो। (दुवोयु) उत्तम शुश्रूषा के अभिलाषी स्वामी वा गुरुजन के (दूनाशं) अविनाशी, (अजरं) चित्य, स्थायी, (क्षत्रं) बलवीर्य को प्राप्त करो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[१६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । ३, ६ निचृतिष्टुप् । ७, ६, १० विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृतपंक्तिः । ४ पंक्तिः । ८, ११ मुरिक् पंक्तिः ॥

एकादशर्च सूक्तम् ॥

यस्तु गमशृङ्खो वृषभो न भीम एकः कृष्णश्च्यावयति प्रविश्वाः ।
यः शश्वत् अदाशुपो गयस्य प्रयन्तासि सुखितराय वेदः ॥१॥

भा०—(यः) जो राजा (तिम्म-शङ्खः वृषभः न) तीक्ष्ण सींगों वाले वडे सांड के समान वा तीक्ष्ण विद्युत् रूप हननसाधन से युक्त, वर्षणशील मेघ के समान (भीमः) भयंकर, (तिम्म-शंगः) तीक्ष्ण शस्त्र-बल से युक्त राजा (एकः) अकेलो ही (विश्वा: कृष्णः) समस्त मनुष्यों को (प्रच्यावयति) उत्तम रीति से चलाने में समर्थ होता है । और (यः) जो (शश्वतः) बहुत से (अदाशुपः) कर आदि न देने वाले शत्रु का, और (गयस्य) अपत्यवत् अपने प्रजाजन का भी (प्रयन्ता) अच्छा शासक है और वह तू (सुखितराय) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष को (वेदः प्रयन्ता असि) ज्ञान और धन को देने वाला है । अथवा— वेद (सुखितराय) ज्ञान के प्रति उत्तम मार्ग में चलाने वाले आचार्य के निमित्त (गयस्य अदाशुपः प्रयन्तासि) अपने पुत्र को समर्पित न करने वाले को दण्ड देने हारा हो ।

त्वं ह त्यदिन्दु कुत्समावः शुश्रूपमाणस्तन्वा समर्थे ।

दासं यच्छुष्णं कुर्यावं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं ह) तू निश्चय ही (त्यत् कुत्सम्) उस शत्रु को काट गिराने वाले शस्त्र बल को (आवः) प्राप्त कर । (शुश्रूपमाणः) उत्तम ज्ञान और प्रजा की प्रार्थना को ध्यानपूर्वक सुनता हुआ (तन्वा) विस्तृत राष्ट्रबल वा सैन्य बल से (अस्मै आर्जुनेयाय) इस पृथ्वी के ऊपर रहने वाले प्रजाजन के उपकार के लिये (दासं) प्रजा के नाशक, (शुष्णं) प्रजा को शोषण करने वाले (कुर्यावम्) निन्दित अन्न खाने वाले वा कुत्सित उपायों से मारने योग्य पुरुष को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (अरन्धयः) दण्डित और विनाश कर ।

त्वं धृष्णो धृष्णा वीतहृष्णं प्रावो विश्वामिरुतिभिः सुदासम् ।

ग्र पौरुकुत्सि त्रृसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पुरुम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रु को पराजय करने हारे ! राजन् ! (त्वं) तू (धृष्टा) प्रगल्भ शत्रुविजयी शत्रु बल से और (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त प्रकार के रक्षा साधनों से (वीत-हत्यम्) अज्ञादि पदार्थों के रक्षक (सु-दासम्) उत्तम दानशील, वा उत्तम भृत्य दर्ग के स्वामी की (प्र आवः) रक्षा कर । तू (पौरु-कुत्सिम्) बहुत से शत्रुओं के धारण करने वाले सैन्य के नायक (त्रसदस्युम्) दुष्ट पुरुषों को भयभीत करने वाले, वीर (पूरुम्) पुरुष को (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं के नाश करने के अवसरों और (क्षेत्र-सातौ) रणक्षेत्र को प्राप्त करने और क्षेत्र अर्थात् भूमियों के न्यायोचित विभाग के लिये भी (प्र अवः) प्रधान, सुख्य पद पर स्थापित करो । त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।

त्वं नि दस्यु चुमुर्दि धुनिं चास्वापयो दुभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) उत्तम वेग से जाने वाले अश्रों के स्वामिन् ! वा हरि अर्थात् मनुष्यों, के स्वामिन् ! हे (नृमणः) उत्तम अधि नायकों में अपना मन, चित्त देने हारे ! वा मनुष्यों के मनों, चित्तों के स्वामिन् ! (त्वं) तू (देव-वीतौ) शुभगुणों, वीरों, विद्वानों को प्राप्त करने वाले कार्य, उनकी रक्षा, के लिये तथा देव, विजिगीषु जनों के आने और चमकने, विद्वाँ, के स्थान युद्ध के बीच, (भूरिणि) बहुत से (वृत्राणि) बाधक शत्रुओं को (हंसि) विनाश कर । और (त्वं) तू (चुमुरिम्) प्रजा का अज्ञ, धन सर्वस्व चुराने वाले, और (धुनिम्) प्रजा को भय से कंपाने वाले को (दुभीतये) शत्रु नाश करने के सद् उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये ही, (सु-हन्तु) अच्छी प्रकार दण्ड दे और (निः स्वापः) सदा के लिये सुला दे, अर्थात् उनको समूल नाश कर ।

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवर्ति च सूद्यः ।
निवेशने शततुमाविवेपीरहन् च वृत्रं नमुचिसुताहन् ॥५॥२९॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शशांच-बल को हाथों में धोरण करने वाले, वीर्यवन् ! बलवन् ! (तव) तेरे (तानि) वे नाना प्रकार के (च्यौलनानि) प्रजावर्गों, वा सैन्यों के संचालित करने और शत्रु को पदच्युत करने वाले सामर्थ्य हों (यत) कि तू (सद्यः) शीघ्र ही (नव नवतिं पुरः) ११ (निन्यानवे) शत्रु-नगरों को भी (अहन्) नाश करने में समर्थ हो और स्वयं (निवेशने) अपने आप बसने के लिये (शत-तमाम्) सौर्वों नगरी को (आविवेषीः) व्यापकर, अधिकार करके रह ॥ (वृत्रं) बढ़ते हुए विष्टकारी (नमुचिम्) अपनी दुष्टता को न छोड़ने वाले: वा अपराध करने पर विना दण्ड के न छोड़ने योग्य, कैद करने योग्य शत्रु को भी अवश्य (अहन्) दण्ड देने में समर्थ हो । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

सना ता तै इन्द्र भोजनानि रातहृव्याय दाशुषे सुदासे ।

वृष्णो ते हरी वृष्णा युनजिम व्यन्तु व्रह्माणि पुरुशाकु वाजम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (सना) सदा से चले आये (ता) वे २ अपूर्व (भोजनानि) नाना भोग्य ऐश्वर्य हैं वे (रात-हृव्याय) समस्त ग्राह ऐश्वर्यों को प्रदान करने और रक्षा करने वाले (दाशुषे) दानशील, (सु-दासे) उत्तम भूत्यवत् आज्ञापालक एवं उत्तम कर देने वाले प्रजाजन के हित के लिये हो । और (दाशुषे सु-दासे) सर्वप्रद, सुखदाता (वृष्णो) सुखों की वर्षा करने वाले, मेघवत् उदार, पुरुष के रथ में (वृष्णा) विद्या और कर्म कौशल से बलवान् पुरुषों को (युनजिम) युक्त करता हूं जोड़ता हूं, जिससे कि हे (पुरुशाक) बहुत शक्तिशालिन् ! (ते व्रह्माणि) तेरे नाना वेदज्ञ कुल (वाजं व्यन्तु) अन्न का भोजन करें अथवा इसी प्रकार (ते व्रह्माणि वाजं व्यन्तु) व्रह्मण्य कुल तेरे लिये ज्ञान को (व्यन्तु) प्रदीप्त करें, वा (व्रह्माणि) वेद मन्त्र (वाजं) तेरे ज्ञान को प्रकाशित करें और तेरे (व्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यप्रद धन, ज्ञान-वान् पुरुष को प्रधान बनावें ।

मा ते अस्यां सहसावन्परिप्रावधाय भूम हरिवः परादै ।

त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरुथैस्तवं प्रियासः सुरिषु स्याम ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन् ! (ते) तेरी (अस्याम्) इस (परिष्ठौ) सब ओर से प्राप्त प्रजा में हम लोग (अधाय) पाप या हत्यादि अपराध के लिये (परादै मा भूम) त्याग देने योग्य न हों । तू (नः) हमें (अवृकेभिः) चोर, डाकू, भेड़िये के स्त्रभाव से रहित (वरुथैः) शत्रुवारक सैन्यों द्वारा (नः) हमें (त्रायस्व) रक्षा कर । हम (सुरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच (तव प्रियासः) तेरे प्रिय (स्याम) होकर रहें ।

प्रियासु इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।

नि तुर्वशं नि याद्वं शिरीश्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! हम (नरः) नायक (सखायः) तेरे ही मित्र होकर (अभिष्टौ) अभीष्ट वस्तु प्राप्त करने के लिये (ते प्रियासः इत्) तेरे प्रिय होकर ही (मदेम) आनन्दित रहें । (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होकर उनके आदर सत्कार के लिये (तुर्वशं) निकट रहने वाले और (याद्वं) मनुष्यों को (निशीशीहि) तीक्ष्ण कर । वे अतिथि के सत्कार के लिये समीप के पड़ोसी भी सदा सहयोगी होवें ।

सुद्यश्चिच्छु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशासु उकथा ।

ये ते हवेभिर्विं पुणीरदाशन्नस्मान्वृणीष्वं युज्यायु तस्मै ॥ ९ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन और पूज्य ज्ञान के स्वामिन् ! (ते) तेरी अभिमत नीति में (सद्यः चित्तु) बहुत शीघ्र ही (नरः) उत्तम पुरुष (उक्थ-शासः) उत्तम वेद वचनों का अनुशासन और अध्ययन करने वाले (उकथा) उत्तम मन्त्रों का (शंसन्ति) उपदेश करते हैं, और (ये) जो (हवेभिः) आदर सत्कारों सहित, (ते पणीन्)

तुझे उत्तम व्यवहारवान् और स्तुत्य पुरुष (अदाशन्) प्रदान करते हैं । (तस्मै) उस (युज्याय) सहयोग के योग्य है विद्वान् पुरुष ! तू (अस्मान्) हमें ही (वृणीव्व) योग्य कार्यकर्त्ता जानकर वरण कर । अर्थात् हम ही राजा के योग्य कार्यों में अपने को समर्पित करें ।

एते स्तोमा नुरां नृतम् तुभ्यमस्मद्यज्ञो ददतो मृधानि ।

तेपामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् १०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एते अस्मद्यज्ञः) हमें प्राप्त (नरां स्तोमाः) उत्तम पुरुषों के वचन समूह वा स्तुत्यजन समूह (हे नृतम्) नरश्रेष्ठ ! (मधानि ददतः) नाना ऐश्वर्य देते रहते हैं । तू (तेपाम्) उनके (वृत्र-हत्ये) शत्रुनाशक संग्राम में (शिवः भूः) कल्याणकारी हो । तू (नृणाम्) सब मनुष्यों का (सखा शूरः च) भिन्न और शूरवीर (भूः) हो (अविता च) और रक्षक भी (भूः) हो ।

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्त्रन्वा वावृधस्व । उप ज्ञा वाजानिमिह्युप स्तीन्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११३०२॥

भा०—हे (इन्द्र शूर) ऐश्वर्यवन् ! हे शूरवीर ! तू (स्तवमानः) अपने सैन्यों के उत्साह की प्रशंसा करता हुआ (ब्रह्म जूतः) बड़े धनों और बड़े राष्ट्र से युक्त होकर (तन्वा) अपने शरीरवत् प्रिय विस्तृत राष्ट्र से (वावृधस्व) बढ़, वृद्धि को प्राप्त हो । (नः) हमें (वाजान्) बहुत से ऐश्वर्य (उप मिमीहि) प्राप्त करा और (ऊतीन्) संघ बने शत्रुओं को (उप मिमीहि) उखाड़ फेंक । हे वीर पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः सदा पात) हमारी सदा छुभ, सुखदायक उपायों से रक्षा किया करो । इति त्रिंशो तर्गः ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

[२०]

वक्षिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट् पंक्तिः । ७ मुरिक् पंक्तिः ।
२, ४, १० निचृत्विष्टुप् । ३, ५ विराट् विष्टुप् । ६, ८ विष्टुप् ॥
दशर्च सूक्तम् ॥

उग्रो जङ्गे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरर्पो नयो यत्करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृपदन्तमवोभिस्त्राता नु इन्द्र एनसो मुहश्चित् ॥१॥

भा०—(यः) जो (उग्रः) तेजस्वी पुरुष (स्वधावान्) अन्न, आदि से सम्पन्न वा आत्मा को धारण पोषण करने के उपायों का स्वामी, होकर (वीर्याय) बल सम्पादन करने के लिये (जङ्गे) समर्थ होता है वह (चक्किः) कर्म करने में कुशल, (अपः करिष्यन्) सूर्य जिस प्रकार वृष्टि जलों को उत्पन्न करना चाहता हुआ तपता है उसी प्रकार (अपः करिष्यन्) उत्तम कार्य करना चाहता हुआ (नृ-सदनं जग्मिः) नायक के विराजने योग्य, या उत्तम पुरुषों के सभा भवन आदि को प्राप्त होकर (युवा) बलवान् पुरुष (महः चित् एनसः) बड़े भारी पापाचरण से (नः) हमें (अवोभिः) नाना ज्ञानों और रक्षा साधनों द्वारा (नाता) बचाने हारा हो ।

हन्ता वृत्रमिन्दुः शूशुवानः प्रावीन्न वीरो जटितारमुती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुवे भूत् ॥२॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा (शूशुवानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (वृत्रं हन्ता) मेघ के समान विस्फारक दुष्ट का अवश्य नाश करे । वह (वीरः) वीर (ऊती) रक्षा से (जटितारम्) स्तुति, प्रार्थना करने वाले को (प्र अवीत् नु) शीघ्र ही रक्षा करे । (अह-वा उ) और (सुदासे) उत्तम दानशील पुरुष के हित के लिये (लोकं)

दर्शनीय, उत्तम उपकार वा उत्तम जन्म का (कर्ता) करने वाला हो और (दादुषे) अपने आप को देने वाले पुरुष के पालनार्थ (मुहुः) बार २ (वसु दाता भूत) नाना ऐश्वर्यों को देने वाला हो ।

युध्मो अनुर्वा खंजुकृत्समद्वा शूरः सत्रापाढ् जनुपेमषांल्हः ।

व्यासु इन्द्रः पृतनाः स्वोज्ञा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥३॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (युध्मः) उत्तम योद्धा, (अनुर्वा) अहिंसक वा जिसके समान दूसरा कोई सवार न हो, (खंजुकृत्) संग्राम करने में कुशल, (समद्वा) मद् अर्थात् उत्तेजना वा हर्ष से युक्त पुरुषों को प्राप्त करने वाला, (सत्रापाढ्) बहुत से यज्ञों, का कर्ता वा सत्य व्यवहार से विजय करने वाला, (ईम् जनुषा अपादः) और सब प्रकार से, स्वभाव से किसी से पराजित न होने वाला हो । वह (सु-ओजाः) उत्तम बल-पराक्रमशील होकर (आसे) स्वयं मुखवत् प्रमुख स्थान पर विराजकर (पृतनाः वि जघान) सब मनुष्यों को प्राप्त करे (अध) और (पृतनाः) शत्रु सेनाओं तथा (विश्वम् शत्रूयन्तं) शत्रुता का व्यवहार करने वाले सब का (वि जघान) विविध उपायों से नाश करे ।

उभे चिंदिन्दु रोदसी महित्वा पंप्राथु तविषीभिस्तुविष्मः ।

नि वजूमिन्द्रो हरिवान्मिमिक्षुन्त्समन्धस्त्रा मदैपु वा उचोच ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! राजन् ! आप (तुविष्मः) बहुत बलवान् होकर (तविषीभिः) बलशालिनी, सेनाओं से (उभे रोदसी चित्) आकाश और पृथिवी दोनों के समान अति विस्तृत राजवर्ग ग्रजावर्ग, शासक और शास्य देश दोनों को (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (पंप्राथ) विस्तृत कर । (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता राजा (हरिवान्) मनुष्यों का स्वामी होकर (वज्रम्) अपने शस्त्राख बल को (अन्धसा) अन्न सम्पदा से (नि मिमिक्षन्) खूब पुष्ट करता

हुआ (मदेषु) तथा युद्ध के अवसरों में (वा) भी (सम उवोच)
अच्छी प्रकार समवाय बनावे ।

वृषा जजान् वृषणं रणाय तस्मु चिन्नारी नयै ससूव ।

प्रयः सेनानीरधु नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥५।७॥

भा०—(यः) जो (सेनानीः) सेना का नायक (गवेषणः)
भूमि राज्य का अभिलाषी, (सत्वा) बलवान् (नृभ्यः इनः अस्ति)
मनुष्यों का स्वामी राजा है (सः धृष्णुः) वह शत्रुओं को पराजय करने
वाला होता है । (तम वृषणम्) उस बलवान् पुरुष को (रणाय)
रणादि शूरवीरता के कार्य के लिये (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ बल-
वान् पुरुष ही (जजान) उत्पन्न करता है और (चित्) उसी प्रकार
(नयै) मनुष्यों से श्रेष्ठ उस पुरुष को (नारी) उत्तम खी ही (सुसूव)
कोख से जनती है । खी पुरुष ऐसे ही नररत्न को सदा उत्पन्न करें जो
सेनानायक बलवान् शत्रुपराजयकारी, संग्रामविजयी हों । इति प्रथमो वर्गः ॥
नू चित्स भ्रेष्टते जनो नरेष्टन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स ग्राय ऋतुपा ऋतुजाः ॥ ६ ॥

भा०—जो मनुष्य (अस्य) इस स्वामी के (घोरं मनः) घोर,
अति आद्व, दयाशील, मन, अन्तःकरण को (आविवासात्) सेवता है,
उसके अभिप्रायानुसार कार्य करता है (सः जनः) वह मनुष्य कभी
(न भ्रेष्टते) व्युत नहीं होता, (न रेष्टत) कभी नष्ट नहीं होता और
(यः) जो (यज्ञः) यज्ञ, उपासना पूजादि उपायों से (इन्द्रे) पर-
मैश्वर्यवान् प्रभु में (दुवांसि दधते) प्रार्थनादि करते हैं (सः) वह
(ऋतुपाः) सत्य वतों का पालक और (ऋतुजाः) सत्य में निष्ठ होकर
(राये क्षयत्) ऐस्वर्य प्राप्ति के लिये निरन्तर अच्छी प्रकार रहता है ।
यदिन्द्रे पूर्वो अपराय शिक्षन्युज्जयायान्कर्नीयसो देष्णम् ।
अमृत इत्पर्यासीत दुरमा चित्रं चित्रं भरा र्यिनः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (यत्) जो (पूर्वः) पूर्व विद्यमान जीवन, और ज्ञान के अनुभवी, (अपराय) दूसरे के लिये (देण्म् शिक्षन्) देने योग्य ज्ञान वा धन देता वा (कनीयसः) छोटों से (ज्यायान्) बड़ा होकर भी (अयत्) प्राप्त करता है वा (अमृतः) अमृत, दीर्घायु, ज्ञानी, मुमुक्षु होकर (दूरम् इत् पर्यासीत) दूर ही रहता है, हे (मित्र) पूज्य ! तू (नः) हमें वह (चित्यं रथः) आश्र्वर्यजनक अनुत संग्रह योग्य (रयिम् आभर) ऐश्वर्य, ज्ञान प्रदान कर ।

यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाशदसान्निरेके आद्रिवः सखा ते ।
वृयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम् वरुथे अग्नितो नृपतौ ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे (अद्रिवः) मेघ तुल्य शनुओं पर शश्वर्पण करने हारे वीर पुरुषों के स्वामिन् ! (यः) जो (ते) तेरा (प्रियः जनः) प्रिय, प्रजाजन (ददाशद) कर आदि देवे, वह (निरेके) निःशंक व्यवहार में (ते सखा) तेरा मित्र, होकर (असत्) रहे । (वयम्) हम लोग (ते) तेरी (अस्यां) इस (सुमतौ) शुभ मति में (चनिष्ठाः) अज्ञादि ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों और (अप्नतः) न हिंसा करने वाले तुल्य पालक के (नृ-पीते) उत्तम नायकों द्वारा पालन करने वाले (वरुथे) सैन्य या शासन में हम घर के समान हुए (स्याम) सुख से रहें ।

एष स्तुमो अचिक्रद्गृष्णा त उत स्तुमुम्भवन्नकपिष्ट ।

रायस्कामो जरितारै त आगुन्त्वमङ्ग शक् वस्तु आ शको नः ९

भा०—हे प्रजाजन ! (पृष्ठः) यः (स्तोमः) स्तुत्य, प्रशंसायोग्य (वृषा) बलवान् राजा (ते अचिक्रदत्) तुम्हे आदर से बुलावे (उत्) और हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् ! विना किसी प्रकार का कष पाये (अकपिष्ट) सब सामर्थ्य प्राप्त करे । (ते रायः कामः) तेरे लिये ऐश्वर्य की कामना

करने वाला पुरुष (जरितारं) सत्य ज्ञान के उपदेष्टा रूप तुङ्ग को
(आगन्) प्राप्त हो और (अंग शक) है शक्तिशालिन् ! तू (नः वस्वः)
हमारे धन पर (आ शकः) सब प्रकार से शक्ति या अधिकार प्राप्त कर ।
अर्थात् प्रजा धनाभिलाषी होकर राजा को प्राप्त करे । राजा के ऐश्वर्य का
उपभोग करे और राजा प्रजा के धन पर अपना स्वत्व समझे ।
स न इन्द्र त्वयताया इषे ध्रास्तमना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्त्री षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०॥२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! (नः) हम लोगों में
से (ये) जो (तमना) अपने सामर्थ्य से (मघवानः) उत्तम धन सम्पत्ति
होकर (जुनन्ति) तुङ्गे प्राप्त होते हैं उनको भी तू (त्वयताया)
तेरे से सुप्रबद्ध (इषे) उत्तम प्रेरणा के लिये (धा:) धारण कर ।
(जरित्रे) उत्तम विद्वान् के लिये (ते) तेरी (वस्त्री) ऐश्वर्ययुक्त
(शक्तिः) दान शक्ति (सु अस्तु) खूब अधिक हो । (यूयम्) तुम
लोग हे विद्वानो (नः सदा) हमें सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याण-
कारी उपायोंसे पालन करो । ‘वस्त्रीषु’ इत्येकं पदं सायणाभिमतं पदपाठेन
विरुद्ध्यते । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[२१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ८, ६ विराट् विष्णुप् । २, १०-
निचृत्विष्णुप् । ३, ७ भुरिकपंक्तिः । ४, ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ दर्शचं सूक्तम् ॥
असावि द्रेवं गोऋजीकुमन्थो न्यस्मिन्निन्द्रो जुनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हृर्यश्व युश्वर्वेधानः स्तोममन्धसो मदेषु ॥१॥

भा०—(गो-ऋजीकं) भूमि से सरलता से, न्याय धर्म के अनुसार
प्राप्त होने वाला, (देवं) सुखप्रद वा व्यवहार योग्य (अन्धः) अन्ध
आदि पदार्थ (असावि) उत्पन्न होता है । (अस्मिन्) उस पर (इन्द्रः)

ईम् उत्रोच) जिस प्रकार सूर्य या मेघ जल प्रदान करता और बढ़ाता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (जनुषा) स्वभावतः (अस्मिन् नि उत्रोच) उस अन्न के निमित्त सब प्रकार के उपायों को प्राप्त करावे और बढ़ावे । हे (हर्षश्च) मनुष्यों में श्रेष्ठ ! हम (यज्ञः) सत्कारों से (त्वा बोधामसि) तुझे तेरा कर्तव्य बतलाते हैं (अन्ध-सः मदेषु) अन्न आदि प्राणधारक पदार्थों के सुखों के निमित्त तू (नः) हमें (स्तोमम्) स्तुत्यवचन का (बोध) बोध करा । उनके प्राप्त करने के लिये उत्तम २ उपाय और व्यवस्था का उपदेश कर ।

प्र यन्ति यज्ञं विषयन्ति वृहिः सोममादौ विदथै दुधवाचः ।
न्युं त्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपद्वो वृष्टिणो नृपाचः ॥ २ ॥

भा०—(सोम-मादः) अन्न, ऐश्वर्य और बलवीर्य से हर्ष युक्त, प्रसन्न, और (दुध-वाचः) दुर्घर बड़ी कठिनता से धारण करने योग्य वाणी के स्वामी, शासक लोग (यज्ञः) आदर, सत्कार, यज्ञ, विद्व-त्संग और परस्पर के द्वं संघ को (प्र यन्ति) प्राप्त करते हैं, (वृहिः विषयन्ति) उत्तम वृद्धिशील पद वा आसन को प्राप्त करते और (विदये) यज्ञ वा संत्राम में वा ज्ञान-व्यवहार में विशेष रूप से रहते हैं । वे (यशसः गृभात्) यशोजनक घर से निकल कर (वृष्टिः) बलवान् पुरुष (नृपाचः) मनुष्यों का समवाय बनाकर (दूरेनुपद्वः) दूर २ देशों तक अपनी वाणी वा वक्तव्य पहुंचाते और (नि त्रियन्ते) निरन्तर आदर प्राप्त करते हैं ।

त्वमिन्द्र घवित्वा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।

त्वद्वावके रथ्योऽन धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् (अहिना परिस्थिता) मेघ रूप से या सूर्य द्वारा सर्वत्र व्यापक होकर विद्यमान (अपः) जल परमाणुओं को (सवित्रै अकः) नीचे बहने के लिये प्रवृत्त करता है ।

उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शूर) शूरवीर ! (व्वम्) तु (पूर्वीः) समृद्धि से पूर्ण (अहिना परि स्थिताः) अग्रगन्ता नायक से अधिष्ठित (अपः) आस प्रजाओं को (खवितवै अकः) सन्मार्ग पर चलने के लिये तैयार करता और (अहिना परिस्थिताः) अभिमुख आकर हनन करने वाले शत्रु के अधीन स्थित शत्रु सेनाओं को (अपः) जलों के समान (खवितवै अकः) बहने या भाग जाने को बाधित कर । (व्वत् धेनाः) तेरी वाणियाँ (रथ्यः न) रथारोही वीरों वा रथ के अधीन के समान वेग से वा (वावके) वकता पूर्वक सौन्दर्य से निकलें, प्रकट हों । और (विश्वा) समस्त (कृत्रिमाणि) कृत्रिम, अपने २ स्वार्थकारणों से बने मित्र और शत्रुजन (भीषा रेजन्ते) भय से कांपें ।

भीमो विवेषा युद्धेभिरेषामपास्ति विश्वा नर्याणि विद्वान् ।

इन्द्रः पुरो ज्ञहृषाणो वि दूधोद्विवज्रहस्तो महिना जघान ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्युत् के समान तीक्ष्ण, (आयुधेभिः) शब्दों करके (भीमः) भयानक, (एषां) इन शत्रुजनों के (विश्वा) समस्त (नर्याणि) मनुष्यों से करने योग्य, उनके हितकारी (अपांसि) कर्मों को (विद्वान्) जानता हुआ, (विवेष) शत्रुओं के भीतर उनके एक २ काम में व्याप जाय और सब पता लगावे । वह (जर्हवाणः) हृष्ट प्रसन्न होकर शत्रुओं के (पुरः) नगरियों को (वि दूधोत्) विविध प्रकार से कंपा डाले । (वज्रहस्तः) हाथों में सैन्यबल लिये (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (वि जघान) विविध प्रकार से शत्रुओं को दण्डित करे ।

न यातवै इन्द्र जूजुवुर्त्तो न वन्दना शविष्ट वेद्याभिः ।

स शर्धद्वयों विपुणस्य जन्तोर्मा शिश्रदेवा अपि गुरुर्वृतं नः ॥ ५ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (यातवः),

‘पीड़ा देने वाले, वा आक्रमणकारी लोग (नः न जुजुबुः) हम तक न पहुँचें, हमारा धात न करें । हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! (वेदाभिः) ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं से वे पीड़ादायक लोग (नः वन्दना) हमारे स्तुत्य उपदेश योग्य उत्तम कार्यों तक भी (न जुजुबुः) न पहुँचें, न नाश करें । (अर्थः) स्वामी, राजा (विषुणस्य जन्तोः) विस्तृत फैले प्रजाजन को (शर्धत्) उत्साहित करे और (शिशन-देवाः) उपस्थेन्द्रिय से क्रीड़ा विलास करने वाले, कामी, नीच पुरुष (नः) हमारे (क्रतः) सत्य व्यवहार, धर्म, कर्म, वेद ज्ञान, यज्ञ, और हमारे अन्न जल को भी (मा अपि गुः) प्राप्त न हों । इति तृतीयो वर्गः ॥

अभि क्रत्वैन्द्र भूरधु ज्मन्त्र तें विव्यङ् महिमानं रजांसि ।

स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थु न शत्रुरन्तं विविदद्युधा तें ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः राजन् ! हे (इन्द्र) जीवात्मन् ! (अध) और तू (क्रत्वा) उत्तम ज्ञान और कर्म के सामर्थ्य से (ज्मन्) इस पृथिवी पर (रजांसि) समस्त लोकों और समस्त राजस भावों को (अभि भूः) पराजित कर । (रजांसि) वे लोग (ते) तेरे (महिमानं) महान् सामर्थ्य को (न विव्यङ्) न प्राप्त कर सकें । तू (स्वेन शवसा हि) अपने ही बल से (वृत्रं) आवरणकारी अज्ञान और विघ्नकारी शत्रु को (जघन्थु) विनाश कर । (शत्रुः) शत्रु, तेरा नाश करने वाला, (ते अन्तं) तेरा अन्त (युधा) युद्ध द्वारा (न विविदत्) न पासके ।

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनुकृत्राय ममिरे सहांसि ।

इन्द्रो मूर्धानि दयते विष्वेन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त स्रातौ ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! स्वामिन् ! (असुर्याय क्षत्राय) मेघ में उत्पन्न जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार अज्ञाभिलापी जन नाना यत्करते

हैं उसी प्रकार (पूर्वे देवाः) वे पूर्व के, प्रथम शिक्षित, दीर्घायु वृद्ध विद्वान् मनुष्य (ते असुर्याय क्षत्राय) तेरे मेघ में उत्पन्न विद्युत् के प्रबल बलवीर्य को प्राप्त करने के लिये (सहांसि) नाना साहस और नाना बल युक्त सैन्य (अनु ममिरे) तेरी आज्ञा में करते हैं । वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् तू (विष्णु) विविध प्रकार से शत्रुओं को पराजित करके (मधानि दयते) उत्तम ऐश्वर्यों का दान और रक्षा करता है । प्रजाजन (वाजस्य सातौ) ऐश्वर्य, बल और संग्राम के प्राप्त करने और विजय लाभ करने के लिये (इन्द्रः) शत्रु हनन करने वाले शूरवीर, ऐश्वर्यवान् आप, पुरुष को (जोहुवन्त) बुलाते, पुकारते और उसी की उपासना करते हैं ।

कृरिश्चिद्दि त्वामवसे जुहावेशानमिन्दु सौभगस्य भूरेः ।

अवो वभूथ शतमृते अस्मे अभिक्षुन्तुस्त्वावतो वरुता ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् स्वामिन् ! प्रभो ! (कीरि :) स्तोता, विद्वान्, क्रियाकुशल पुरुष (चित्) भी (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (भूरेः) बहुत बड़े, (सौभगस्य) उत्तम ऐश्वर्य के (ईशानं) स्वामी (वाम्) तुझको ही (जुहाव) पुकारता है । हे (शतम्-ऊते) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न ! तू (अस्मे) हमारा (अवः बभूथ) रक्षा करने हारा हो । (त्वावतः) तेरे जैसे (अभि-क्षत्तुः) सन्मुख आये शत्रु के हिसक वीर, पुरुष को (वरुता) स्वीकार करने और उसको युद्ध में पराजित कर भगाने वाला भी तू ही (बभूथ) हो ।

सखायस्त इन्द्र विश्वहृ स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।

वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके भीतिमयो वरुषां शवांसि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (तरुत्र) शत्रुओं को मारने और शरणागत प्रजाओं को दुःखों और संकटों से पार उतारने वाले राजन् ! स्वामिन् ! प्रभो ! (ते) तेरे हम लोग (विश्वह) सदा (सखायः)

मित्र, स्नेही और (महिना) तेरे महान् सामर्थ्य से (नमोः वृधासः) नमस्कार, विनय, अज्ञ और शश्व बल से बढ़ने और बढ़ाने हारे (खाम) हों। (समीके) रण में (ते) तेरे (अवसा) रक्षण सामर्थ्य से ही प्रजास्थ पुरुष (अभीतिम् वन्वन्तु) अभय प्राप्त करें और (अभि-इतिम् वन्वन्तु) अभिगमन, अर्थात् अभिसुख प्रयाण करें और (वनुपां शबांसि) हिंसक शत्रुओं के बलों के प्रति (अभि-इतिम् वन्वन्तु) प्रयाण करें और उनके आक्रमण को नाश करें। तू उनका (अर्यः) स्वामी होकर रक्षा कर। स ने इन्द्रु त्वयीताया इपे धास्तमना च ये मुघवानो जुनन्ति। वस्त्रीषु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्युं पात् स्वस्तिभिः सदानः ॥१०॥४

भा०—व्याख्या देखो सू० २० (म० १०) इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—भुरिगुणिकू । २, ७ निचृदनुष्टुप् । ६ भुरिगुणुष्टुप् । ५ अनुष्टुप् । ६, ८ विराडनुष्टुप् । ४ आर्ची पंक्तिः । ६ विराट् विष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम्

पिवा सोमामिन्द्रु मन्देतु त्वा यं ते सुपाव हर्यश्वादिः ।
स्रोतुर्वाहुभ्यां सुर्यतो नार्वा ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (अदिः) मेघ, जिस अज्ञ को उत्पन्न करता है उसको सूर्य अपनी किरणों से पान करता है उसी प्रकार (अदिः) मेघवत् शश्ववर्णी और शत्रु द्वारा दीर्ण, खण्डित, या छिन्न भिन्न न होने वाले, दृढ़, हे (हर्यश्व) उत्तम सैन्य के स्वामिन् वा उत्तम मनुष्यों को अश्वों के समान अपने राष्ट्र-रथ में लगाने हारे सुव्यवस्थित सैन्य बल ! (यं) जिस (सोमम्) अज्ञवत् उपभोग्य ऐश्वर्य को (ते) तेरे लिये (अदिः) मेघ व मेघवत् उदार शश्व बल (सुपाव) उत्पन्न करता है तू उसको सोमम्) अज्ञ रस और ओषधि रस के समान (पिव) उपभोग कर। वह

तुक्षे बल दे और तेरे लिये शक्तिकारक हो । वह (त्वा मन्दतु) तुक्षे हर्षित करे । और (सोतुः बाहुभ्यां सुयतः) सञ्चालक सारथि के बाहुओं से उत्तम प्रकार से नियन्त्रित (अर्वा न) अश्व के समान तू भी (सोतुः) उत्तम मार्ग में सञ्चालन करने वाले पुरुष के (बाहुभ्यां) कुमार्ग से रोकने वाले ज्ञान और कर्मरूप बाहुओं से (सु-यतः) उत्तम रूप से नियन्त्रित होकर तू (सोमम् पिब) इस राष्ट्ररूप ऐश्वर्य का पुत्र वा शिष्यवत् पालन कर ।

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्तु येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगयुक्त अश्वों के स्वामिन् ! हे मनुष्यों को अश्वों के समान सन्मार्ग पर चलाने हारे ! (यः) जो (ते) तेरा (युज्यः) सहयोग देने योग्य, (चारुः) उत्तम (मदः) हर्ष (अस्ति) है और (येन) जिससे तू (वृत्राणि) मेधों को सूर्यवत् शत्रुओं को (हंसि) विनाश करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (प्रभूवसो) प्रचुर ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (सः) वह (त्वा) तुक्षको (ममत्तु) अति हर्षयुक्त बनावे ।

बोधा सु मै मघवन्वाच्मैमां यांते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादै जुषस्व ॥३॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (याम्) जिस (प्रशस्तिम्) उत्तम प्रशंसा योग्य (ते) तेरी (वाचम्) वाणी का (वसिष्ठः) उत्तम वसु, विद्वान् (सु अर्चति) आदर कर रहा है तू (इमाम्) उसको (सु बोध) अच्छी प्रकार जान । (इमा ब्रह्म) तू इन ज्ञानों, अन्नों और धनों को (सध-मादै) एक साथ मिलकर हर्ष मनाने के अवसर में (जुषस्व) सेवन कर ।

शुद्धी हृवं विपिपानस्यद्वौधा विप्रस्याचैतो मनीषाम् ।

कृष्वा दुवांस्यन्तस्मा सच्चेमा ॥४॥

भा०—(वि-पिपानस्य) विविध प्रकार के रसों को अपने भीतर पालन:

करने वाले (अद्रेः) मेघ के समान नाना विद्याओं के रसों का पान या पालन करने वाले (अद्रेः) आदर योग्य (विप्रस्य) मेधावी (अर्चतः) अर्चना करने योग्य विद्वान् के (हवम्) उपदेश और (मनीषाम्) बुद्धि का (बोध) ज्ञान कर और (इमा) इन (दुवांसि) नाना सेवाओं को (अन्तमा कृष्ण) समीप कर ।

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुषुप्तिमसुयैस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्षिम ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! (विद्वान्) मैं विद्वान् होकर भी (ते गिरः) तेरी वाणियों का (न अपि मृष्ये) त्याग न करूँ । (तुरस्य) अति शीघ्र कायेकर्त्ता, और शत्रुओं के हिंसक (असुर्यस्य) बलवानों में श्रेष्ठ तेरे (सुन्सुतिम्) उच्चम स्तुति को भी (न अपि मृष्ये) त्याग न करूँ । हे राजन् ! मैं (ते नाम) तेरे नाम या शत्रु को दबाने के सामर्थ्य को ही (स्वन्यशः) अपनी कीर्ति या बल (वि वक्षिम) कहूँ ।

भूरि हि ते सवना मानुपेषु भूरि मनीषी हृवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मध्यवज्ज्योक्तः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मध्वन्) पूज्य ऐश्वर्ययुक्त ! (ते) तेरे (भूरि हि सवना) बहुत से ऐश्वर्य (मानुपेषु) मनुष्यों में हैं । (मनीषी) बुद्धि-मान् पुरुष (त्वाम् इत् हृवते) तेरी ही स्तुति करता है, तुझे ही पुकारता है । तू (अस्मन्) हम से (ज्योक् माकः) विद्वान् पुरुष को वा अपने आपको चिरकाल के लिये दूर मत कर ।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कुणोमि ।
त्वं नृभिर्हृदयो विश्वधासि ॥ ७ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर शत्रुहिंसक ! (तुभ्यं इत् इमा सवना) ये समस्त ऐश्वर्य तेरे ही उपभोग के लिये और तेरे ही अधिकार में हैं ।

(तुर्भ्यं वर्धना) तुझे ही बढ़ाने वाले (विश्वा ब्रह्माणि) ये समस्त धन, अज्ञ और वेद वचन मैं (कृणोमि) करता हूँ। हे राजन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (नृभिः) मनुष्यों से (हव्यः) स्तुति योग्य, स्वीकार करने योग्य, और (विश्वधा असि) समस्त विश्व को धारण करने हारा है।

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दुस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥

भा०—हे (दस्म) दर्शनीय ! हे शत्रुहिंसक ! हे (उग्र) शत्रु-भयजनक राजन् ! प्रभो ! (मन्यमानस्य) मान करने योग्य (ते) तेरे (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को (नु चित् नु) अवश्य सज्जन लोग (उत् अश्नुवन्ति) उत्तमता से प्राप्त करें। परन्तु शत्रु जन (ते महि-मानम् न उद् अश्नुवन्तु) तेरे महान् सामर्थ्य को न पा सकें और वे (न ते वीर्यम्, न ते राधः) न तेरे बल और न तेरे ऐश्वर्य को प्राप्त करें। वे तेरे से अधिक बलवान् और ऐश्वर्यवान् कभी भी न हों।

ये च पूर्वं ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्तु विप्राः ।
श्वस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि युयं पात स्वस्तिभिः सदानः । ११६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे आचार्य विद्वन् ! (ये च क्रपयः) जो मन्त्रार्थों और उत्तम सत्य सत्य ज्ञानों के देखने वाले, (पूर्वं) पूर्वं काल के, वृद्ध, गुरुजन और (ये च नूत्नाः) जो नये शिव्य जन, नव-शिक्षित (विप्राः) विद्वान् पुरुष हैं वे (ब्रह्माणि जनयन्त) वेद मन्त्रों के अर्थों का प्रकाश करें। हे विद्वन् ! राजन् (ते) तेरी (सख्यानि) मित्रता के कार्य (अस्मे) हमारे लिये (शिवानि) कल्याणकारक हों। (यूथम्) आप लोग हे विद्वान् ऋषिजनो ! (नः) हमारी (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो। इति पष्ठो वर्गः ॥

[२३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६ सुरिक्पंक्तिः । ४ स्वराट् पंक्तिः ।

२, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचुतित्रिष्टुप् ॥ पद्मनं सूक्तम् ॥

उदु ग्रह्याग्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्थं महया वसिष्ठ ।

आ यो विश्वानि शवसा तुतानोपश्रोता म ईवतु वचांसि ॥१॥

भा०—हे (वसिष्ठ) प्रजा को उत्तम रीति से वसाने और उनमें स्वयं भी अच्छी प्रकार वसने हारे उत्तम वसो ! राजन् ! प्रजाजन ! विद्वन् ! तू (श्रवस्या) धन, अक्ष, और यश की कामना से (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर (उद् ऐरत उ) उत्तम रीति से उपदेश कर । हे विद्वन् ! तू (श्रवस्या) ज्ञानोपदेश की कामना से (ब्रह्माणि उद् ऐरत) वेद मन्त्रों का उत्तम उपदेश कर । हे राजन् ! हे उत्तम प्रजावर्ग ! तू (समर्थं) संग्राम में वा मनुष्यों के एकत्र होने के स्थान, सभा आदि में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, वीर पुरुष का (महय) आदर सत्कार, विशेष सम्मान कर । हे उत्तम शिष्यवर्ग ! (सम् अर्थं) उत्तम ज्ञानोपाजन के निमित्त (इन्द्रं महय) आचार्य का समान, पूजन किया कर । (यः) जो राजा (उप-श्रोता) प्रजाभों के कष्टों को ध्यान से श्रवण करने वाला (शवसा) बलपूर्वक (ईवतः) समीप आने वाले (मे) मेरे उपकारार्थ (विश्वानि वचांसि) समस्त उत्तम वचन, व आज्ञाएं (आततान) प्रदान करता है अथवा (यः शवसा विश्वानि वचांसि आततान) जो बल के साथ सब प्रकार के आज्ञा वचन विस्तारित करता है वह (ईवतः मे वचांसि उप-श्रोता) शरण में आये मेरे वचनों को भी ध्यान से श्रवण करने हारा हो । इसी प्रकार जो विद्वान् (शवसा वचांसि आततान) ज्ञानपूर्वक वचन कहे वह प्राप्त शिष्य के वचनों को भी श्रवण करे ।

अर्यामि घोषं इन्द्रं देवजामिरिज्यन्त यच्छुरधो विवाचि ।

नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहास्यति पर्यस्मान् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार जब (देवजामिः घोषः) जलदाता मेघ को गर्जना होती है और (विवाचि) विविध मध्यमा वाक् विद्युत के गर्जते हुए (शुरुधः) शीघ्र आने वाली ओषधियां खूब बढ़ती हैं उसी प्रकार है (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! (यत्) जब (देव-जामिः) ‘देव’ व्यवहारवान्, और विजयेच्छु पुरुषों में रहने वाला (घोषः) घोप, या वाणी उठती है उस समय (वि-वाचि) विविध या विशेष वाणी के प्रवक्ता पुरुष के अधीन (शुरुधः) शीघ्र ही शत्रुओं को रोकने में समर्थ वीरजन (इरज्यन्त) आगे बढ़ते हैं । (जनेषु) मनुष्यों में कोई भी (स्वम् आयुः) अपना जीवन सुरक्षित (नहि चिकिते) नहीं जानता तब हे राजन् ! तू ही (तानि इत् अहासि) उन नाना प्रकार के पापाचारों से (अस्मान् अतिपर्षि) हमें पार करता है ।

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।

वि वाधिष्ठस्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥

भा०—(हरिभ्यां रथं) जिस प्रकार दो अश्रों से रथ को जोड़ा जाता है उसी प्रकार मैं भी (हरिभ्याम्) दो उत्तम विद्वान् पुरुषों से (रथम्) सुख देने वाले राष्ट्र को (युजे) युक्त करूँ और समस्त प्रजा वर्ग (ब्रह्माणि जुजुषाणम्) नाना धनों को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्यवान् पुरुष को (उप अस्थुः) आश्रय लेते हैं । वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (रोदसी) शत्रु को रुलाने वाली उभय पक्ष की सेनाओं को (वि वाधिष्ठ) विविध प्रकार से वश करे । और वह (अप्रति) बे-मुकाबला होकर (वृत्राणिजघन्वान्) शत्रुओं को नाश करे और धनों को प्राप्त करे ।

आपश्चित्पिष्युः स्तुर्योन् गावो नक्षत्रूतं जारितारस्त इन्द्र ।

याहि व्रायुर्न नियुतो नो अच्छ्रुत्वं हि धीभिर्दयसु वि वाजान् ॥ ४ ॥

भा०—(स्तर्यः गावः न) जिस प्रकार सुरक्षित गौएं गृहस्थ को (पिष्युः) बढ़ाती हैं (आपः चित्) और जिस प्रकार जलवत् देह में बहती रक्तधाराएं शरीर की वृद्धि करती हैं । उसी प्रकार (आपः) आप विद्वान् और प्रजाएं (स्तर्यः) शत्रुहिंसक और देश की रक्षा करने वाली सेनाएं तथा (गावः) गौएं, वा भूमियें भी देश को (पिष्युः) बढ़ाती, समृद्ध करती हैं । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा और शत्रुओं की जीवन हानि करने वाले वीर पुरुष (ते ऋतं रक्षन्) तेरे सत्य न्याय, ऐश्वर्य आदि को प्राप्त करें । (त्वं) तू (नः) हमारे (नियुतः) लक्षों प्रजाजनों को, नियुक्त भृत्यों को, तथा (नियुतः) अश्व-सैन्यों को भी (वायुः) वायु अर्थात् प्राणवत् प्रिय होकर, वा वायु के समान बल से शत्रु को उखाड़ने में समर्थ होकर (अच्छ याहि) प्राप्त हो । और (धीमिः) अपने कर्मों और सम्मतियों से (वाजान्) ऐश्वर्यों को (वि दयसे) विविध प्रकार से दे और (वाजान् वि दयसे) वेगवान् अश्वों को विविध प्रकार से पालन कर, और संग्रामों को कर । ज्ञानवान् पुरुषों पर (वि दयसे) विशेष दया कृपा कर । ते त्वा मदा॒ इन्द्र माद्यन्तु शुभ्मिण॑ तुविराध॑सं जरि॒त्रे ।

एको॑ देवत्रा॒ दय॑से॒ हि॒ मर्तान॑स्मिक्ष्व॑र॒ सवने॒ माद्यस्व ॥ ५ ॥

भा०—(हि) जिस कारण से हे (शर) शरवीर ! तू (देवत्रा) विजयशील और विद्वान् पुरुषों के बीच, वा उनका त्राता होकर (एकः) अकेला, अद्वितीय होकर (मर्तान् दयसे) सब मनुष्यों को जीवन देता, उन पर विशेष कृपा करता, उनकी रक्षा करता है (जरित्रे) विद्वान् विद्योपदेष्टा के लिये (तुवि-राधसं) बहुत सा धन प्रदान करने वाले (शुभ्मिण॑) बलशाली, (त्वा) तुक्षको है (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) वे (मदाः) तृसिकारक नाना पदार्थ, और (मदाः) हर्षयुक्त नाना सुभट (माद्यन्तु) तृप्त और प्रसन्न करें ।

एवेदिन्द्रं वृष्णं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यकैः ।

स नः स्तुतौ वीरवद्धातु गोमद्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६।७॥

भा०—(वसिष्ठासः) राष्ट्र में बसे उत्तम प्रजाजन (एव) निश्चय से (वृष्णं) बलवान्, मेघवत् वा सूर्यवत् शत्रु पर शरों और प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले (वज्रबाहुम्) शशास्त्र बल और शक्ति को बाहुओं में, अपने वश में रखने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को (अकैः) नाना अर्चना योग्य उपायों से (अभि-अर्चन्ति) सत्कार करते हैं । (सः स्तुतः) वह प्रशांसित शासक (नः) हमारे (वीरवत्) वीर पुरुषों से युक्त सैन्य और (गोमत्) भूमियों से युक्त राष्ट्र की (पातु) रक्षा करे । और हे वीर पुरुषों (नः) हमें (सदा) सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम उपायों से (पात) पालन करो । इति सप्तमो वर्गः ॥

[२४]

वसिष्ठ कृपिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृतिविष्टुप् । २, ५ विष्टुप् ।

४ विराट् विष्टुप् । ६ विराट् पांकिः ॥ घड़चं सूक्तम् ॥

योनिष्ट इन्द्रं सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत् प्र याहि ।

अस्त्रो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि सुमदश्च सोमैः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सदने) विराजने योग्य उत्तम सभा गृह आदि स्थान में (ते) तेरा (योनिः) गृहवत् स्थान (अकारि) बने । हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशांसित ! तू (तम) उस पद या स्थान को (नृभिः) नायकों सहित (आ याहि) प्राप्त कर । और उस मुख्य पद को प्राप्त कर (प्र याहि) प्रयाण कर । (यथा) जिस प्रकार से भी हो उस प्रकार से तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (असः) हो । (नः वृधे च) हमारे वृद्धि के लिये तू (वसूनि आ ददः) नाना ऐश्वर्य प्रदान और ग्रहण कर । तू (सोमैः च) सौम्य पुरुषों, उत्तम ऐश्वर्यों और नाना ओषधि रसों से (सुमदः) हर्ष प्राप्त कर, तृप्त हो और सुखी रह ।

गृभीतं ते मनै इन्द्र द्विवर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥ २ ॥

भा०—(इथम्) यह (सु-वृक्तिः) उत्तम सद् व्यवहार और उत्तम सेवा करने वाली (मनीषा) मन से प्रिय, मनोहारिणी, (विसृष्ट-धेना) विविध उत्तम वाणी बोलने वाली खी (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त पुरुष को (जोहुवती) प्राप्त करती हुई (परि-सिक्ता) गर्भाशय में निपिक्त (मधूनि) बीयाँ को (भरते) धारण करती है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने हारे ! (ते मनः गृभीतं) तेरा मन उस खी द्वारा ग्रहण किया जाय। तेरा (सुतः) उत्पन्न हुआ (सोमः) पुत्र (द्वि-वर्हाः) माता पिता दोनों द्वारा वृद्धि को प्राप्त और दोनों को बढ़ाने हारा हो। इसी प्रकार हे (इन्द्र) राजन् ! राष्ट्र में (मधूनि परिषिक्ता) नाना जल सिंचें। (द्विवर्हाः) मेघ और पृथिवी दोनों से बढ़ने वाला (सोमः सुतः) ओषधिगण उत्पन्न हो। राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों को बढ़ाने वाला राजा अभिषेक को प्राप्त हो। (ते मनः गृभीतम्) तेरा मन राष्ट्र में लगे। (सु-वृक्तिः) उत्तम रीति से विभक्त (इथम्) यह भूमि (विसृष्ट-धेना) नाना शासनाज्ञा से युक्त होकर (मनीषा) मनभावनी होकर (इन्द्रं जोहुवती) राजा को पुकारती, अपनाती और करादि देती हुई, (भरते) समस्त प्रजाजन को अपने में धारण करती, पालती है।

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिनिदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
बहन्तु त्वा हरयो मर्यज्ज्वमाङ्गुपमच्छ्रां तुवसुं मदाय ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) ऋजु, सरल धार्मिक मार्ग में समस्त प्रजाओं को चलाने हारे ! तू (सोम-पेयाय) पुत्रवत् प्रजा के पालन करने, और ऐश्वर्याँ का ओषधिरसवत् उपभोग करने के लिये (दिवः पृथिव्याः) उत्तम व्यवहार, विजय-कामना और भूमि के लिये (नः) हमारे (इदं बर्हिः) इस वृद्धिकारक प्रजावर्ग को (आ याहि) प्राप्त हो। (हरयः)

प्रजास्य पुरुष (तवसं) बलवान् (मद्यञ्चम्) मेरे प्रति आदरपूर्वक आने वाले (त्वा) तुङ्ग को (मदाय) तेरी प्रसन्नता के लिये (आङ्गुष्ठं अच्छ वहन्तु) उत्तम स्तुतियुक्त वचन प्रदान करें ।

आ ना विश्वाभिरुतिभिः सुजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिष्टास्मे दधृष्टपृष्ठं शुष्मामिन्द्र ॥ ४ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ ! अश्वत् राज्य रथ के सञ्चालक ! राजन् ! तू (नः) हमारे (ब्रह्म जुषाणः) धन, अन्न और वेद ज्ञान को प्रेमपूर्वक स्वीकार और सेवन करता हुआ (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार के रक्षा साधनों से (नः) हमें (आयाहि) ग्राप्त हो । हे (सुशिष्ट) उत्तम मुकुटधारिन् ! शोभित मुखावयव, सौम्य मुख ! तू (स्थविरेभिः) विद्या और आशु में वृद्ध पुरुषों सहित, शत्रुओं और हुःखों तथा दैवी, मानुषी विपत्तियों को (वरीवृजत्) सदा दूर किया कर । और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मे) हमारे लिये (वृष्टिं) बलवान् (शुष्मम्) शत्रु शोषक सैन्य को (दधत्) निरन्तर धारण कर ।

एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी वात्यो न वाजयन्नधायि ।
इन्द्र त्वायमर्क ईद्देव सूनां दिवीव द्यामाधि नः श्रोमतं धाः ॥ ५ ॥

भा०—(वाहे धुरि अत्यः न) रथ को उठाने वाले धुरा में जिस प्रकार अश्व लगाया जाता है उसी प्रकार (वाहे धुरि) राष्ट्र को धारण, पोषण और सञ्चालन करने वाले पद पर (महे उग्राय) महान्, बलवान् पुरुष के लिये (एषः स्तोमः) यह स्तुत्य व्यवहार, वा अधिकार (वाजयन् इव) उसको अधिक बल और ऐश्वर्य देता हुआ (अधायि) नियत किया जाता है । (वसूनां मध्ये दिवि अकः) पृथिव्यादि वस्तुओं के बीच आकाश में सूर्य के समान हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वसूनाम्)

बसे प्रजाजनों, विद्वानों, प्रजापालक शासकों के बीच (अयम् अर्कः)
यह अर्चना योग्य पद या अधिकार, मान आदर सत्कार (त्वाम् ईद्देहे)
तुझे ही ऐश्वर्य प्रदान करता है । तू (नः) हमें प्रकाशवत् (यास्)
ज्ञान, उत्तम व्यवहार और (श्रोमतं) श्रवण योग्य यश भी (धाः)
धारण करा ।

एत्वा न॑ इन्द्रं वार्यैस्य पूर्धि प्र ते॒ मही॑ सु॑मतिं वैविदाम ।

इवं पिन्व मूर्धवद्धयः सुवीरां यु॒यं पात् स्वस्तिभिः॑ सदानः॑ ॥१८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें तू (वार्यस्य) उत्तम
धनैश्वर्य से (पूर्धि) पूर्ण कर । (ते) तेरी (महीं) अति पूज्य, (सुमति)
उत्तम ज्ञान को अच्छी प्रकार प्राप्त करें । तू (मधवद्धयः) उत्तम धन
युक्तों को (सुवीराम्) शुभ पुत्रों से युक्त (इवं) अन्न समृद्धि (पिन्व)
दे । हे सम्पन्न पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः स्वस्तिभिः॑ सदा पात्) उत्तम
सुखदायक उपायों से हमारी सदा रक्षा, पालन करो । हृत्यष्टमो वर्गः ॥

[२५]

वमिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पांकिः । २ विराट् पांकिः । ४
पंकिः । ६ स्वराट् पंकिः । ३ विराट् त्रिष्ठुप् । ५ निचृत्प्रिष्ठुप् ॥ पढ़ूचं सूक्तम् ॥

आ ते॑ महे॑ इन्द्रोत्युग्र समन्यवो॑ यत्सुमरन्तु॑ सेनाः ।

पताति॑ दिव्युद्धर्यैस्य ब्राह्मोर्मा॑ ते॑ मनो॑ विष्वद्युग्मिव॑ चारीत् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) शकु नाश करने में
कठोर ! (यत्) जब (महते) तुक्ष महान् की (समन्यवः) क्रोध से
युक्त वा एक समान मन्यु, क्रोध और गर्व से पूर्ण (सेनाः) सेनाएँ
(उत्ती) अपने देश की रक्षा के लिये (सम्भरन्त) अच्छी प्रकार आगे
बढ़े वा युद्ध करें तब (नर्यस्य) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ पूर्व सबके हितैषी
(ते) तेरे (बाह्योः) बाहुओं में (दिव्यत्) चमकता शस्त्राक्ष (पताति)

शत्रु पर वेग से पड़े और (ते मनः) तेरा चित्त (विश्वदूर् मा विचारीत्) सब तरफ न जाय । अथवा —(ते बाह्मोः दिव्युत् मा पताति) तेरी बाहुओं का तेजस्वी अच्छ नीचे न गिरे, प्रत्युत (ते मनः विश्वदूर् विचारीत्) तेरा चित्त, विवेक सब ओर जाये । सब ओर से सावधान रहे कि तेरा बल तेरे हाथों से अष्ट होकर न निकल जावे ।

नि दुर्ग इन्द्र श्राथिद्युमित्रानुभि ये नु मर्तीसो अमन्ति ।
श्रारे तं शंसं कुणुहि निनित्सोरा नो भर सम्भरणं वसूनाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (मर्तीसः) मनुष्य (नः) हमें (अमन्ति) रोगों के समान पीड़ा देते हैं उन (अमित्रान्) हम से न स्नेह करने वाले शत्रुओं को (दुर्गे) दुर्ग या नगर के प्रकोट में बैठ कर (अभि इनयिहि) मुकाबला करके मार । (निनित्सोः) निन्दा करने वाले से (आरे) दूर रह कर ही (नः) हमारी (तं शंसं कुणुहि) वह प्रशंसनीय विजय कर और (नः) हमें (वसूनाम्) नाना ऐश्वर्यों का (सम्भरणं आ भर) समूह लादे । वा (नः वसूनां सम्भरणं आ भर) हमारे राष्ट्र वासियों, और शासकों को अच्छी प्रकार पालन पोषण कर ।

श्रुतं ते शिप्रिन्तुतयः सुदासे सुहस्तं शंसा उत द्वातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मत्यैस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) उत्तम मुख नासिका, सुन्दर ठोड़ी वाले ! सोम्य मुख ! वा उत्तम मुकटयुक्त राजन् ! (सु-दासे) उत्तम दानी पुरुष के लिये (ते) तेरी (शतं) सैकड़ों (ऊतयः) रक्षायें हों । और (सहस्रं शंसाः) सहस्रों प्रशंसाएं हों और (सहस्रं रातिः अस्तु) हज़ारों दान हों । हे राजन् ! तू (वनुषः मर्त्यस्य) हिंसक दुष्ट पुरुष के (वधः) हिंसाकारी साधनों को (जहि) नष्ट कर । और (अस्मे)

हमें (द्युमनम्) यश और (रत्नं च) उत्तम धन (अधि धेहि) बहुत अधिक दे ।

त्वावतो हीन्दु क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।

विश्वेदहानि तविषीव उग्रं ओकः कुणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! स्वामिन् ! प्रभो ! (विश्वा हत् अहानि) मैं सब दिनों (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी के (क्रत्वे) कर्म करने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (अस्मि) रहूँ । हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुनाशक ! मैं सब दिनों (त्वावतः अवितुः) तेरे जैसे रक्षक के ही (रातौ) दिये दान के ऊपर (अस्मि) वृत्ति करूँ । हे (तविषीवः) बलवत्ती सेना के स्वामिन् ! हे शक्तिमन् ! तू सब दिनों (उग्रः) शत्रुओं के लिये भयजनक मेरे लिये (ओकः कुणुष्व) उत्तम स्थान और सेना का उत्तम समवाय बना । हे (हरिवः) अश्वों, अश्वसैन्य और मनुष्यों के स्वामिन् ! तू (न मर्धीः) हमें मत मार, हिंसा मत कर ।

कुत्सा पुते हर्यश्याय शूष्मिन्दे सहौ देवजूतमियानाः ।

सुत्रा कृधि सुहना शूर तृत्रा वृयं तरुत्राः सनुयाम् वाजम् ॥५॥

भा०—(इन्द्रे) शत्रुहत्ता, ऐश्वर्यवन् राजा के अधीन ही (हर्यश्याय) उस नरशेष्ठ, वेगवान् अश्व सैन्य के स्वामी के विजय लाभ के लिये (पुते) ये (कुत्साः) शत्रुख समूह, शत्रु के काटने वाले वीर पुरुष और (कुत्साः) संशयों के काटने वाले वा नाना उत्तम स्तुतियों और नाना शिल्पों के कारने वाले जन भी (देवजूतम्) विजयेच्छुक वीर पुरुषों से प्रेरित, वा उनके अभिलिप्ति (शूष्मम्) सुखकारी (सहः) शत्रुपराजयकारी बल को (इयानाः) प्राप्त करते हुए रहें । और ऐसे ही (वयम्) हम लोग भी (तरुत्राः) सबको दुःखों, कष्टों से तारते और बचाते हुए (वाजम् सनुयाम्) ऐश्वर्य, ज्ञान, बल और धन प्राप्त करें और

अन्यों को भी दान करें । हे (शूर) शूरवोर ! तू (सत्रा) सदा, न्याय और सत्य के अनुसार (वृत्रा) विवक्षारी दुष्ट पुरुषों को (सुहना कुरु) सुख से नाश करने योग्य कर । और (वृत्रा सुहना कुरु) धनैश्वर्य भी सुप्राप्य बना । राजा ऐसा प्रबन्ध करे जिससे दुष्ट सुगमतासे दण्डित हो सकें और प्रजाजन ईमानदारी से सहज ही धन प्राप्त कर सकें ।

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्णि प्रते मृहीं सुमतिं वौविदाम ।
इष्ठं पिन्व मूघवद्धयः सुवीरा॒ यु॒ं पात् स्वस्तिभिः संदा॑ नः । ६।१।

भा०—व्याख्या देखो (स० २४ । म० ६) ॥ इति नवमो वर्गः ॥

[२६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप् ॥ ५ नित्यत्रिष्टुप् ॥
पञ्चमं सूक्तम् ॥

न सोम॒ इन्द्रमसु॑तो ममाद॒ नाव्रह्माणो मूघवा॑नं सु॒तासः ।
तस्मा॑ उक्थं जनये यज्जुजोषन्तृवन्नवीर्यः शृणवृद्यथा॑ नः ॥ १ ॥

भा०—(असुतः सोमः) जिस प्रकार विना तैयार किया हुआ ओषधि रस (इन्द्रम) इन्द्रिय युक्त जीव को (न ममाद) हर्षया सुख नहीं देता और (असुतः सोमः) न उत्पन्न हुआ पुत्र वा अस्तातक शिष्य (इन्द्रं न ममाद) गृह स्वामी, सम्पत्ति पुरुष वा आचार्य को भी हर्षित नहीं करता, उसी प्रकार (असुतः) ऐश्वर्यरहित (सोमः) राष्ट्र (इन्द्रम् न ममाद) राजा को सुखी नहीं कर सकता । (अव्रह्माणः सुतासः) वेदज्ञान से रहित शिष्य वा पुत्र (मधवानम्) पूज्य धन वा ज्ञान के स्वामी पिता को भी हर्ष नहीं देते, उसी प्रकार (अव्रह्माणः) निर्धन, धनसम्पदा न देने वाले उत्पन्न जन वा पदार्थ भी (मधवानं न ममदुः) धनाद्य पुरुषको प्रसन्न नहीं करते । (यत् जुजोषत्) जो प्रेम से सेवन करे मैं (तस्मै) उसी के लिये (उक्थं जनये) उत्तम वचन प्रकट करूं (यथा) जिससे

वह (नः नवीयः) हमारा उत्तम वचन (नृवत्) उत्तम पुरुष के समान (श्रणवत्) श्रवण करे ।

उकथ उक्थे सोम् इन्द्रै ममाद नीयेनीये मध्वानं सुतासः ।

यदौं सुवाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवस्तु हवन्ते ॥ २ ॥

भा०—(उक्थे-उकथे) प्रत्येक उत्तम, उपदेश करने योग्य व्यवहार ज्ञान में (सोमः) शिष्य (इन्द्रं ममाद) उत्तम आचार्य को हर्प देने वाला हो, प्रत्येक उत्तम ज्ञान के लिये शिष्य गुरु को प्रसन्न करे । (नीये-नीये) उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाले प्रत्येक मार्ग वा सत्य व्यवहार, उत्तम २ वचन में (सुतासः) उत्पन्न शिष्य वा पुत्रजन भी (मध्वानं) दान योग्य ज्ञान और धन के स्वामी गुरु वा पिता को प्रसन्न करें । इसी प्रकार (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र पुत्रवत् राजा को प्रसन्न करे । प्रत्येक न्याययुक्त व्यवहारों में वे प्रजाजन ऐश्वर्यवान् राजा को हृष्ट, संतुष्ट रखें । (समान-दक्षाः पुत्राः सबाधः पितरं न) समान बल से युक्त पुत्र जिस प्रकार पीड़ा-युक्त पिता को (अवसे हवन्ते) उसकी रक्षा के लिये प्राप्त होते हैं वा (सबाधः पुत्राः पितरं अवसे हवन्ते) पीड़ायुक्त पुत्र अपनी रक्षा के लिये पिता को पुकारते हैं उसी प्रकार (यत् ईम्) जब भी प्रजाजन (सबाधः) पीड़ा से पीड़ित हों तब वे भी पुत्रवत् ही (पितरं) अपने पालक राजा को (समान-दक्षाः) समान बलशाली होकर (अवसे हवन्ते) अपनी रक्षा के लिये पुकारें । इसी प्रकार जब राजा (सबाधः) पीड़ा युक्त, संकट में हो तो वे (अवसे) उसकी रक्षा करने के लिये उसे (हवन्त) अपनावें ।

चकार ता कृणवन्तुनमन्या यानि द्विवन्ति वेधसः सुतेषु ।

जनीरिव पतिरेकः समृनो नि मामजे पुरु इन्द्रः सु सर्वाः ॥३॥

भा०—(वेधसः) विद्वान् लोग (सुतेषु) अपने उत्पन्न त्रौं में

और विद्वान् जन (सुतेषु) अभिषिक्त पुरुषों में (यानि) जिन २ नाना (अन्या) भिन्न २ उपदेश्य वचनों का (व्रुवन्ति) उपदेश करते हैं (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, राजा (ता) उन २ उत्तम कर्मों को (नूनम्) अवश्य (चकार) करे, और (कृणवत्) अन्य अन्य भी उत्तम कर्म किया करे । (एकः) एक (पतिः) पति जिस प्रकार (जनीः इव) पुत्रोत्पादक धर्मदाराओं को (नि मास्त्रजे) प्रथम ही दोष रहित कर लेता है इसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (एकः) अद्वितीय, (सर्वाः समानः) उत्तम मान आदरयुक्त एवं सबके प्रति समान, निष्पक्ष होकर समस्त (पुरः) समक्ष आये प्रजाओं को (सु) अच्छी प्रकार (नि मास्त्रजे) पापाचरणों से शुद्ध पवित्र करे । जनीः—दारावद्वहुवचनं, जात्याख्यायां वा । एवा तमाहुरुत शृंगव इन्द्रु पको विभुक्ता तुरणिर्मधानाम् ।
मिथस्तुरु ऊतयो यस्य पूर्वीरुस्मे भुद्राणि सञ्चत प्रियाणि ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (पूर्वीः) सदा से विद्यमान (मिथस्तुरः) परस्पर मिलकर अति शीघ्र कार्य करने वाली वा मिलकर शत्रु का नाश करने वाली, (जतयः) रक्षाएं, वा रक्षाकारणी सेनाएं, शक्तियें (अस्मे) हमें (भद्राणि) सुखजनक, (प्रियाणि) प्रिय ऐश्वर्य (सञ्चत) प्राप्त कराती हैं वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा राजा (एकः) एक अद्वितीय, (तरणिः) सबको संकटों से पार उतारने वाला, (मधानां विभक्ता) नाना ऐश्वर्यों का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला है (तम् एव आहुः) उसका ही लोग उपदेश करते हैं (उत तम् एव शृण्वे) और उसको ही मैं गुरुजनों से उपदेश कथाओं द्वारा श्रवण करूं वा उसके प्रति ही मैं कान देकर उसके ज्ञान, आज्ञा वचनादि सुनूं ।

एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नृन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति । सहुचिषु
उप नो माहि वाजान्युयं पात स्वस्तिभिः सदानः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(सुते) अन्न को उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (कृष्टीनां)

खेतियों के बृद्धयर्थ (वृषभं) वर्णन करने वाले मेघ की विद्वान् जनस्तुति करते हैं और अन्न के उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (कृषीनां) खेती करने हारों के बीच (वृषभं) बलवान् बैल की स्तुति की जाती है उसी प्रकार (वसिष्ठः) देश में वसने वाले उत्तम जन (सुते) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के निमित्त, और (ऊतये) रक्षा के लिये भी (कृषीनां) मनुष्यों के बीच (वृषभं) सर्वश्रेष्ठ (इन्द्रं) शत्रुहन्ता और ऐश्वर्य युक्त पुरुष की (गृणाति) स्तुति करता है। इसी प्रकार (वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् ऐश्वर्य प्राप्ति और रक्षार्थ उस राजा को उपदेश भी करे। हे विद्वन् ! हे राजन् ! तू (नः) हमें (सहस्तिणः वाजान्) सहस्रों सुखों से युक्त ऐश्वर्य (उप माहि) प्रदान कर। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा उत्तम २ उपायों से रक्षा करें। इति दशमो वर्गः ॥

[२७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ चन्द्रः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । निचृतित्रिष्टुप् ।

३, ४ त्रिष्टुप् । पञ्चर्च सूक्तम् ॥

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पायीं युनजते धियुस्ताः ।

शूरो नृषीता शवसञ्चकान आ गोमति ब्रजे भंजात्वं नः ॥ १ ॥

भा०—(यत्) जो (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् और विद्वान् को (नेमधिता) संग्राम में (नरः) मनुष्य (हवन्ते) पुकारते हैं, (यत्) जो (पायीः) पालन करने योग्य (धियः) और धारण पोषण योग्य प्रजाएँ उस ऐश्वर्यवान् राजा का (युनजते) सहयोग करती हैं, हे राजन् ! १ वह (शूरः) शूरवीर (नृ-साता) मनुष्यों को विभक्त करने वाला, (शवसः चकानः) बल की कामना करता हुआ (ताः) उन २ मनुष्यों और उन प्रजाओं को और (नः) हमें भी (गोमति ब्रजे) उत्तम वाणियों से युक्त परम प्राप्तव्य ज्ञान मार्ग वा ब्रह्मपद में और (गोमति ब्रजे) भूमियों से

युक्त उत्तम राज्य में (आ भज) हमें रख और हम पर अनुग्रह कर ।
 (२) परमेश्वर पक्ष में—जिसको सब स्वीकार करते (पार्याः धियः युज्ञते)
 जिसको परम पद को प्राप्त होने वाली बुद्धियाँ, योग द्वारा प्राप्त करती हैं
 वह प्रभु हममें हो, उन मनुष्यों और उन बुद्धियों का (गोमति व्रजे)
 वाणियों से युक्त परम गन्तव्य ज्ञानमार्ग में (आ भज) रखे और अनु-
 ग्रह करे ।

य इन्द्र शुष्मो मधवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
 त्वं हि हृळहा मधुवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (मधवन्) उत्तम धन के
 स्वामिन् ! राजन् ! विद्वन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शुष्मः अस्ति) बल
 है, वह तू (सखिभ्यः) मित्र (नृभ्यः) उत्तम मनुष्यों को (शिक्ष)
 प्रदान कर । हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (मधवन्), उत्तम
 धन के स्वामिन् ! (त्वं हि) तू निश्चय से (विचेताः) विशेष ज्ञानवान्
 होकर (परिवृतं राधः नः) छुपे धन के समान ही (दद्धा) दड़ दुर्गों
 और परम ज्ञान को भी (अप वृधि) खोलकर हमें प्रदान कर ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरुपं यदस्ति ।

ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोद्राधु उपस्तुतश्चिद्वांक ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक पुरुष (राजा) सूर्यवत् तेज-
 स्वी, विद्या विनय से प्रकाशित और (जगतः) जगत् या जंगम संसार
 और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का भी स्वामी हो । (अधि क्षमि) पृथिवी
 पर (यत्) जो भी (विषुरुपं) विविध प्रकार का धन है वह भी उसी
 का है । (ततः) उसमें से ही वह (दाशुषे) दानकील पुरुष को भी
 (वसूनि ददाति) नाना धन देता है । वह (उपस्तुतः) प्रशंसित
 होकर (अर्वांक्) हमें प्राप्त होकर (राधः चोदत्) धन प्राप्त करने की
 प्रेरणा करे ।

नु चिन्तु इन्द्रो मधवा सहृती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवृता सखिभ्यः ॥४॥

भा०—(यस्य) जिसकी (अभि-वीता) तेज से युक्त, प्रजा का रक्षण करने वाली, (दक्षिणा) दानशीलता और क्रिया सामर्थ्य, (अ-नूना) किसी से भी न्यून नहीं होकर (सखिभ्यः नृभ्यः) मेंत्र जनों के लिये (वामं) उत्तम ऐश्वर्य को (पीपाय) वढ़ाती है (नु चित्) वह पूज्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (मधवा) उत्तम धन, ज्ञान का स्वामी (दानः) दान करता हुआ (नः) हमारी (ऊती) रक्षा के लिये और (सहृती) समान रूप से सदको देने की नीति से (वाजं) बल और ऐश्वर्य को (नि यमते) नियन्त्रित करता, और प्रदान करता है । राजा प्रजा की रक्षा में और समान मूल्य पदार्थों के विनियय से धन और बल दोनों को नियम में रखते । तब उसका अप्रतिम धन, दानशक्ति और क्रिया सामर्थ्य प्रजा को सुख दे सकते हैं ।

नु इन्द्र राये वरिवस्कृधी नु आ ते मनो वचृत्याम मधाय ।
गोमदश्वावद्रथवद्युन्तो युं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५।११॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तु (नु) शीघ्र ही (राये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और उसकी वृद्धि करने के लिये (नः वरिवः कृधि) हम प्रजाजनों की सेवा कर । प्रजा के ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये राजा भी प्रजा की सेवा करे । हम भी (ते मनः) तेरे मन को (मधाय) उत्तम आदर योग्य प्रशंसनीय उपाय से प्राप्त हुए धन के लिये ही (आ वचृत्याम) आकर्षण करें । आदरपूर्वक वार २ व्यवहार युक्त करें । हे विद्वान् वीर पुरुषो ! (गोमत्) गौओं और भूमियों से युक्त (अश्ववत्) अश्वों से युक्त, (रथवत्) रथों से सम्पन्न ऐश्वर्य का (व्यन्तः) उपभोग, रक्षण और प्राप्ति करते हुए (यूथम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करें । हृत्येकादशो वर्गः ॥

[२८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रा देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृत्तिष्ठप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ४ स्वराट्पंक्तिः ॥ पञ्चमं सूक्तम् ॥

ब्रह्मा ए इन्द्रोप्य याहि विद्वानुर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।
विश्वे चिद्धि त्वां वि हवन्त मर्ता श्रुस्माकुमिच्छुणुहि विश्वमिन्व १

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य और साक्षात् विद्योपदेश देने हारे राजन् ! आचार्य ! प्रभो ! तू (विद्वान्) विद्वान् होकर (नः ब्रह्म उप याहि) हमारा बड़ा राष्ट्र और धन प्राप्त कर । हे विद्वन् ! तू हमें ब्रह्मज्ञान प्राप्त करा । (ते) तेरे अधीन (हरयः) अश्वारोही गण और नियुक्त मनुष्य (अर्वाञ्चः) विनयशील और (युक्ताः) मनोयोग देने वाले हों । (विश्वे चित् मर्ताः हि) समस्त मनुष्य निश्चय से (त्वा वि हवन्त) तुझे विविध प्रकार से पुकारते हैं । हे (विश्वमिन्व) सबके प्रेरक, सर्वज्ञ, सर्वप्रिय ! तू (अस्माकम् इत्) हमारा वचन अवश्य (शृणुहि) श्रवण कर ।

हर्यं त इन्द्र महिमा व्यानुइ ब्रह्म यत्पासे शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद्वर्जे दधिषे हस्ते उग्र घोरः सन्क्तत्वा जनिष्ठा अपाळहः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! दुष्टनाशक ! (ते म-हिमा) तेरा महान् सामर्थ्य (हर्यं) उत्तम वाणी के व्यवहार, तथा यज्ञ और संग्राम को भी (वि आनन्द्) व्याप्त है । (यत्) जिससे हे (शत-सिन्) बलवन् ! तू (क्रषीणम्) ऋषियों, वेदज्ञ विद्वानों के (हरं, ब्रह्म) स्तुत्य ब्रह्मज्ञान और देश के धन को भी (पासि) रक्षा करता है । हे (उग्र) तेजस्विन् ! (यत्) जो (वज्रं हस्ते दधिषे) शस्त्रास्त्र बल को अपने हाथ में धारण करता है वह तू (घोरः सन्) शत्रु को मारने में समर्थ होकर (क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से (अपाढः) अन्यों के लिये असह्य (जनिष्ठाः) होजाता है । अथवा (अषाढः) असह्य, न पराजित होने वाली सेनाओं को प्रकट करता है ।

तव प्रणीतिन्दुं जोहुवानात्सं यन्नन् रोदसी निनेथं ।

मुहे क्षत्राय शवसे हि जडेऽतूर्जि चिन्तूर्जिरशिश्वत् ॥ ३ ॥

भा०—(रोदसी न) सूर्य जिस प्रकार आकाश और पृथ्वी के पदार्थों को सन्मार्ग पर चलाता है उसी प्रकार (यत्) जो पुरुष (जोहुवानात्) निरन्तर आदर से बुलाने, पुकारने वाले, और आदरपूर्वक राज्य के नाना पदों पर बुलाये गये (नन्) नायक पुरुषों को (सं निनेथ) अच्छी प्रकार सन्मार्ग पर चलाता है और जो (तूर्जिः) शत्रुओं का नाशक और प्रजा का पालक होकर (अतूर्जिं) अपनी अहिंसक प्रजा और करन देने वाले शत्रु का (अशिश्वत्) शासन करता है वह तू (हि) निश्चय से (महे क्षत्राय) बड़े भारी क्षात्र बल, और धन प्राप्त करने और (महे शवसे) बड़े भारी बल, सैन्य बल का सञ्चालन करने के लिये (जडे) समर्थ होता है ।

एमिनै दुन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।

प्रति यच्छेष्ट अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) सत्य न्याय के देखने हारे राजन् ! (नः) हमारे (दुःमित्रासः) दुष्ट मित्र और (क्षितयः) हमारे साथ रहने वाले लोग (हि) भी (पवन्ते) तुझे प्राप्त होते हैं । तू (एभिः अहभिः) इन कुछ दिनों में, शीघ्र (दशस्य) न्याय को प्रदान कर । (यः) जो तू (अनृतम्) असत्य को (प्रतिवष्टे) प्रत्याख्यान करता है वह तू (अनेनाः) पाप रहित, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (मायी) बुद्धिमान् होकर (द्विता) सत्य और असत्य इन दोनों के बीच (नः अव सात्) हमारा निर्णय कर ।

बोचेमेदिन्द्रं मृघवानमेनं मुहो रायो राधसुो यद्दद्वः ।

यो अर्चीत्रो ब्रह्मकृतिमविष्टो युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥२॥

भा०—(यत्) जो (महः रायः) बड़े २ ऐश्वर्य (नः दद्वः) हमें प्रदान करता है: (एनं मधवानम्) उस ऐश्वर्यों के स्वामी को हम (इन्द्रम्

इत् वोचेम्) ऐश्वर्यवान्, 'इन्द्र' ही नाम से पुकारें । और (यः) जो (अर्चतः) अपने सत्कार करने वालों को (ब्रह्म-कृतिम्) धनैश्वर्य के उत्पन्न करने के प्रयत्न वा साधन देता वही (अविष्टः) सबसे उत्तम रक्षक है । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात्) हमें सदा उत्तम कल्याणकारी साधनों से पालन करो । इति द्वादशो वर्गः ॥

[२८.]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट्पंक्तिः । ३ पांक्तिः । २ विरा�ट्विष्टुप् । ४, ५ निचृत्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्च सुक्रम् ॥

अयं सोमं इन्द्रं तुभ्यं सुन्व आ तु प्रयाहि हरिवस्तदोकाः ।

पित्रा त्वस्य सुपुतस्य चारोददो मधानि मघवन्नियानः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अयं सोमः) यह ऐश्वर्य (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (सुन्वे) उत्पन्न किया जाता है । हे (हरिवः) उत्तम मनुष्यों के स्वामिन् ! (तदोकाः) तू उस श्रेष्ठ गृह में निवास करता हुआ (तु) भी (आ याहि) हमें प्राप्त हो और (प्र याहि) प्रयाण कर । (अस्य) इस (सु-सुतस्य) उत्तम रीति से उत्पन्न राष्ट्र के ऐश्वर्य तथा प्रजाजन को (तु) भी (पित्र) उपभोग और पालन कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! प्राप्त होता हुआ तू हमें (मधानि) उत्तम ऐश्वर्य (ददः) प्रदान कर ।

ब्रह्मन्वीरं ब्रह्मकृतिं जुपाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।

अस्मिन्नु पु सबने माद्यस्वोपं ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २ ॥

भा०—हे (ब्रह्मन्) विद्वन् ! चारों वेदों के जानने हारे ! हे (वीर) विविध विद्याओं का उपदेश करने हारे ! हे महान् राष्ट्र के पालक ! हे शूरवीर राजन् ! तू (ब्रह्मकृतिं) परमेश्वर के बनाये जगत् को, हे वीर ! तू बड़े राष्ट्र के कार्य को (जुपाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (हरिभिः)

उत्तम पुरुषों सहित (अर्वाचीनः) अब भी (तूयम् याहि) शीघ्र प्राप्त हो । (अस्मिन् सवने) इस ऐश्वर्यमय यज्ञ, वा राष्ट्र शासन के कार्य में (तु सु मादयत्व) शीघ्र ही तू स्वयं प्रसन्न होकर अन्यों को भी सुखी कर । और (नः) हमारे (इमा) इन (व्रह्माणि) उत्तम वेदवचनों को (उप शृणवः) श्रवण कर ।

का तै श्रस्त्यरङ्गकृतिः सूक्ष्मः कृदा तुनं तै मधवन्दाशेम ।

विश्वा सुतीरा तत्तने त्वायाधा म इन्द्र शृण्वो हवुमा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मधवन्) उत्तम और दातव्य ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (ते) तेरी (सूक्ष्मः) उत्तम वचनों और वेदविद्या के प्रवचनों से (का अरंकृतिः अस्ति) क्या ही, कैसी उत्तम शोभा है । वे उत्तम वचन और विद्या के गुप्त रहस्य तुझे आभूषण के समान सुशोभित करते हैं । हे ऐश्वर्यवन् ! हम शिष्यगण (ते) तेरे लिये (नूनं) सत्य कहो, आज्ञा करो (कदा दाशेम) कब २ उपहार गुरु दक्षिणादि प्रदान करें (त्वाया) तुझ से ही हमारी (विश्वा: मत्तीः) सब बुद्धियां (आ तत्तने) विस्तृत ज्ञान वाली होती हैं । (अध) और हे (इन्द्र) अखिल ज्ञानप्रद ! (मे इमा हवा) मेरे ये ग्राह्य पदार्थ और प्रार्थना के वचन (शृणवः) श्रवण करो और (हवा) ग्राह्य ज्ञानोपदेश (मे शृणवः) मुक्षे श्रवण कराओ । उतो धा ते पुरुष्या इदा सुन्येषु पूर्वेषामशृणो ऋषीणाम् ।

अथाहं त्वा मधववज्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रभतिः पितेव ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्या के ऐश्वर्य का दान करने हारे ! (उतो ध) और (येषाम्) जिन (पूर्वेषां ऋषीणाम्) पूर्व के विद्यमान सत्य ज्ञान के द्रष्टा गुरुजनों के ज्ञान को तू (अशृणोः) श्रवण करता रह । (ते इत्) वे भी निश्चय से (पुरुष्याः आसन्) पुरुषों में उत्तम, मनुष्यों के हितकारी ही थे । हे (मधवन्) श्रेष्ठ धनवन् ! (अध) और (अहं) मैं (त्वा) तुझे (जोहवीमि) अपना गुरु स्वीकार करता हूं, (त्वं) तू

(प्रमतिः) उत्तम ज्ञान और दुर्द्विवाला होकर । (नः पिता इव असि) हमारे पालक पिता के समान है ।

ब्रूचेमेदिन्द्रे मध्यवानमेनं मुहो रायो राधसो यद्वद्वनः । यो श्रीचतुर्तो ब्रह्मकृतिमविष्टो युथं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५।१३॥
भा०—ध्याख्या देखो सू० २८ । मं० ५ ॥ इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ इन्द्रः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृतिष्टुप् ।
३ निचृत्पाकिः । ४, ५ स्वराट् पंकिः ॥

आ नो देव शर्वसा याहि शुष्मिन्भवो वृथ इन्द्र रायो अस्य ।
मुहे नृमणाय नृपते सुवज्र महिं कृत्राय पौस्याय शूर ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! राजन् ! हे प्रभो ! तू (शवसा) बल और ज्ञान सहित या उसके द्वारा (नः आयाहि) हमें प्राप्त हो । हे (शुष्मिन्) बलशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्य) इस (रायः) धनैश्वर्य का (वृथः भव) बढ़ाने हारा हो । वा, (अस्य वृथः रायः भव) इस बढ़ाने और बढ़ने वाले ऐश्वर्य का स्वामी हो । हे (सुवज्र) उत्तम वीर्यवन् ! हे (शूर) शत्रुनाशन ! हे (नृपते) मनुष्यों के पालक ! जीवों के पालक ! तू (महे नृमणाय) बड़े भारी धनैश्वर्य और (महि कृत्राय) बड़े भारी शत्रुनाशक राष्ट्र और (पौस्याय) पौरुष, बल के प्राप्त करने के लिये उद्घत हो ।

हवन्त उ त्वा हृद्यं विवाचि त्रनूपु शूरः सूर्यस्य स्रातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं बृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! (शूरः) शूरवीर पुरुष (वि वाचि) विविध वाणियों के प्रयोग करने के अवसर अर्थात् संग्राम में और स्तुतिकाल में (हृद्यं) पुकारने और स्तुति करने योग्य (त्वा उ) तुक्षको ही (हवन्ते)

पुकारते और स्तुति करते हैं। (तनूपु) शरीरों में (सूर्यस्य सातौ) सूर्य नाम दक्षिण नासागत प्राण के प्राप्त होने पर आवेश में अथवा (तनूपु) अंगों में सूर्य के समान तेज के प्राप्त करने के निमित्त भी (त्वा उ हवन्ते) तेरी ही स्तुति करते हैं।। (त्वं विश्वेषु जनेषु) तू सब मनुष्यों में (सेन्यः) सेना नायक होने योग्य है। और (त्वं) तू (वृत्ताणि) बढ़ते शत्रुसैन्यों को (सु हन्तु) अच्छी प्रकार दण्डित कर और (रन्धय) वश कर अथवा (सुहन्तु रन्धय) उत्तम हनन साधनों से शत्रुओं का नाश कर।

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुसुपुमं सुमत्सु ।

न्युग्मिः सीदुदसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (सुदिना) शुभ दिनों को (त्रि उच्छान्) खूब प्रकाशित कर (दधे) धारण करता है (केतुम् दधे) ज्ञान प्रकाशक को भी धारण करता है, वह (सुभगाय देवान् हुवानः होता न) सुख, कल्याण के लिये किरणों को देता हुआ यज्ञ में देवताओं को हवि देता या आह्वान करते हुए होता या अग्नि के समान प्रतीत होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सेनापते ! तू भी (सुदिना अहा) शुभ दिनों को प्राप्त कर (व्युच्छान् देवान् दधः) खूब तेजस्वी उज्ज्वल वीर पुरुषों और शुभ गुणों को धारण कर और (समत्सु) संग्राम के अवसरों में (उपमं) आदर्श रूप (केतुम्) ध्वजा वा ज्ञापक चिह्न को (दधः) धारण कर। तू (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी और (असुरः न) प्राणवत् सर्वत्र सबको जीवन देने वाला वा वायुवत् शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होकर (होता) सबको वृत्ति देने वाला होकर (देवान्) विजयेच्छुक, वीर पुरुषों को (सु-भगाय) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (हुवानः) बुलाता, उनको स्वीकार करता तथा युद्धाग्नि में होता के तुल्य मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ (नि सीदत्) विराजे। (२) विद्वान् (उपमं केतुम् दधत्) सर्वोपमायोग्य ज्ञान धारण करे। (देवान् हुवानः) ज्ञानेच्छुकों को ज्ञान

प्रदान करता हुआ (अग्निः असुरः न निसीदत्) अग्निवत् सुप्रकाशक
और वायुवत् सर्वप्रिय होकर विराजे ।

वृयं ते ते इन्द्रं ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मधानि ।

यच्छ्रौ सुरिभ्य उपमं वरुयं स्वाभुवो जरणामश्वन्त ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! हे (देव) दानशील !
(मधानि) नाना ऐश्वर्य (ददतः) देते हुए (ते) तेरी (ये च स्तवन्त)
जो लोग स्तुति करते हैं (ते) वे और (वयम्) हम (स्वाभुवः)
उत्तम रीति से समृद्ध और सामर्थ्यवान् होकर (जरणाम्) उत्तम स्तुति
और दीर्घ आयु को (अश्वन्त) प्राप्त हों । तू (सुरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों
को (उपमं वरुयं) उत्तम गृह और कष्टवारक सैन्य (यच्छ्रौ) प्रदान कर ।
ब्रूचेमेदिन्द्रं मधवानमेनं मृहो द्यायो राघसो यद्दद्वः ।
योऽर्चत्तो ब्रह्मकृतिमविष्ठो युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥३।१४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २८ । मं० ५ ॥ इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[३१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराङ्गायत्री । २, ८ गायत्री ।
६, ७, ९ निचृद्गायत्री । ३, ४, ५ आर्युष्णिक् । १०, ११ भुरिगनुष्टुप् ।
१२ अनुष्टुप् ॥ द्वादशर्च सूक्तम् ॥

प्र व इन्द्राय मादनं हयैश्वाय गायत ।

सखायः सोमपावने ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र लोगो ! आप लोग (सोमपावने)
सोम पान करने वाले यजमान, ‘सोम’ अर्थात् वीर्य का पालन वा रक्षण
करने वाले ब्रह्मचारी, ‘सोम’ अर्थात् शिष्य और पुत्र के पालन करने वाले
गृहपति और आचार्य, तथा ‘सोम’ ऐश्वर्य और अज्ञ के पालक, राजन्य और
वैद्य तथा ‘सोम’ ब्रह्मज्ञान के पान करने वाले मुमुक्षु और सोम अर्थात्

उत्पन्न जगत् के पालक परमेश्वर (हर्यश्चाय) मनुष्यों में श्रेष्ठ, जिते-निद्र्य, वेगवान् अश्वों के स्वामी (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, अजदाता, भूमिपालक, आत्मा आदि के लिये (मादनं) अतिर्हप्तजनक सुखदायी (प्र गायत) वचन का उपदेश करो वा उसके गुणों का वर्णन किया करो ।

शंसेदुकथं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
चकृमा सुत्यराधसे ॥ २ ॥

भा०—(सु-दानवे) उत्तम दान देने हारे (सत्य राधसे) सत्य ज्ञान और न्याय के धनी पुरुष की प्रशंसा के लिये मैं (उक्थं) उत्तम वचन (शंसे) अवश्य कहूँ । (यथा) जिस प्रकार (नरः) लोग उसके लिये (द्युक्षं) उत्तम अज्ञ आदि का सत्कार करते हैं वैसे ही हम लोग उसका (द्युक्षं चकृम) सत्कार किया करें ।

त्वं न इन्द्र वाज्ययुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
त्वं हिरण्ययुर्वीसो ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे लिये (वाज्युः) अज्ञ, ज्ञान, बल वेग आदि की कामना करने वाला, (गव्युः) भूमि, इन्द्रिय सामर्थ्य, वाणी आदि चाहने वाला हो । हे (शतक्रतो) असंख्य बुद्धि के स्वामिन् ! हे (वसो) सब मैं बसने और बसाने हारे ! (त्वं) तू (हिरण्ययुः) ऐश्वर्य एवं हित, रमणीय कार्य को चाहने वाला हो । अथवा हे राजन् ! विद्वन् ! तू हमारा बल, ऐश्वर्य, भूमि, वाणी, सुर्णादि का स्वामी है ।

ब्रयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृपन् ।
विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे जितेनिद्र्य ! हे (वृपन्) बल-वन् ! सुखों के देने वाले ! हे (वसो) बसने और बसाने वाले ! (वयम्)

हम लोग (त्वायवः) तेरी कामना करते हुए, तुझे चाहते हुए (अभि प्र नोनुमः) खब स्तुति और आदर विनय करते हैं (अस्य तु नः विद्धि), तू हमारी इस अभिलाषा को जान ।

मा नौ निदे च वक्तव्यैऽर्थै रन्धीरराव्ये ।
त्वे अपि क्रतुर्मम् ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्यः) स्वामी होकर (नः) हमें (निदे) निन्दक (वक्तव्ये) गहित, (अराणे) अदानशील, अराति, शत्रु के हित के लिये (मा रन्धीः) मत दण्डित कर, उसके अधीन भी मत कर, और (मम त्वे अपि क्रतुः) मेरी जो तेरे में सद् बुद्धि है उसे भी तू नष्ट मत होने दे ।

त्वं वर्मासि सुप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।
त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥ १५ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे ! (त्वं) तू (सुप्रथः) उत्तम ख्याति से युक्त (वर्म असि) कवच के समान रक्षक, और (पुरः योधः च) आगे बढ़कर युद्ध करने हारा भी है । (त्वया युजा) तुझ सहायक से मैं (प्रति ब्रुवे) शत्रु का उत्तर दूँ ।

मुहाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः ।
ममाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुदलविदारक ! जिस प्रकार सूर्य के अधीन (स्वधावरी रोदसी अनु ममाते) जल और अज्ञ से युक्त आकाश और पृथिवी दोनों परस्पर स्थिर हैं उसी प्रकार (यस्य ते सहः) जिस तेरे बल के (अनु) अनुकूल रहकर (स्वधावरी रोदसी) अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त स्त्री पुरुष, वा राजा प्रजा वा राष्ट्र और सेनावर्ग दोनों ही (ममाते) परस्पर मिलकर रहते हैं वह तू (महान् असि) गुणों और बलों में महान् हो ।

तं त्वा मूरुत्वती परि भुवद्वाणी सृयावरी ।

नक्षमाणा सुह द्युभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (मरुत्वती) बलवान् मनुष्यों वाली, (स-यावरी) तेरे साथ प्रयाण करने वाली (द्युभिः सह) तेजों, और धनों के साथ बढ़ती हुई, (वाणी) शत्रुहिंसक वाक् आदि शब्दों से सम्पन्न सेना (तं त्वा परि भुवत्) उस तुक्षको सदा धेरे रहे, वह सदा तेरी आज्ञाकारिणी हो । और तुक्षको (मरुत्वती वाणी) मनुष्यों की स्तुति उत्तम गुणों सहित वाणी प्राप्त हो । और विद्वान् को (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजों, उत्तम गुणों और काम्य फलों से युक्त (स-यावरी) सदा साथ विद्यमान (मरुत्वती) उत्तम विद्वानों से प्राप्त (वाणी) वाणी, वेदविद्या, (परि भुवत्) सुशोभित करे ।

ऊर्ध्वासु स्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्मसुप द्यवि ।

सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (ऊर्ध्वासः) जो उत्तम कोटि के (इन्दवः) समस्त ऐश्वर्य, एवं ऐश्वर्ययुक्त, आनन्दित जन हैं वे (द्यवि) इस पृथिवी पर (त्वा दस्मम्) शत्रुनाशक तुक्ष को ही (उप-भुवन्) प्राप्त हों और (त्वा अनु भुवन्) तेरे अनुकूल हों । (कृष्टयः) सब प्रजाजन (ते सं नमन्त) तेरे लिये विनय से छुकें ।

प्र वौ मुहे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।

विशः पूर्वीः प्र चरा चर्यणिग्राः ॥ १० ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (वः) अपने मैं से (महि वृधे) बड़ों के बढ़ाने वाले, बड़ों का आदर सत्कार करने वाले, (महे) स्वर्यं गुणों में महान् के आदरार्थ (प्र भरध्वम्) उत्तम २ पदार्थ प्रस्तुत करो । और (प्र-चेतसे) उत्तम चित्त वाले शिष्य और उत्तम ज्ञान वाले विद्वान् के लिये (सुमतिं) शुभ मति और उत्तम ज्ञान (प्र कृणुध्वम्) अच्छी प्रकार

सम्पादन करो । उसको ज्ञान प्राप्त करने के उत्तम से उत्तम साधन प्रदान करो । हे राजन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (चर्षणि-प्राः) मनुष्यों का धन और विद्या, बल से पूर्ण करने वाला होकर (पूर्वीः विशः) पिता पितामहादि से प्राप्त प्रजाओं को (प्र चर) प्राप्त कर । उसमें अपना अधिकार फैला और हे विद्वन् ! तू उनमें परिव्राजक होकर ज्ञान प्रसार कर ।

ऊरुव्यच्चसे मुहिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्मं जनयन्तु विप्राः ।

तस्य ब्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥

भा०—(उह व्यच्चसे) बड़े विश्व में व्यापक (महिने) महान् (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (सुवृक्तिम्) उत्तम स्तुति और (व्रह्म जनयन्त) वेदमन्त्र प्रकट करते हैं । (धीराः) वे उसी के ध्यान में मग्न होकर (तस्य ब्रतानि) उसके निमित्त करने योग्य धर्म कार्यों का (न मिनन्ति) कभी नाश नहीं करते । इसी प्रकार बड़े राष्ट्र में व्यापक सामर्थ्य वाले महान् राजा के लिये विद्वान् लोग (सुवृक्तिम्) उत्तम शत्रुवर्जक और पापनिवारक साधन और (व्रह्म) ऐश्वर्य को उत्पन्न करें उसके बनाये (ब्रतानि) कर्त्तव्य नियमों का नाश न करें ।

इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युसेव सुत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।

हर्यश्वाय वर्हया समापीन् ॥ १२ ॥ १६ ॥

भा०—(वाणीः) वाणवत् शत्रुनाशक सेनाएं (अनुत्तमन्युम्) मन्यु, शत्रु को उच्छित्त करने के प्रबल संकल्प से युक्त (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (राजानं) तेजस्वी राजा को (सत्रा) अपने साथ (सहध्यै) शत्रु को पराजय करने के लिये (दधिरे) धारण करें । हे प्रजाजन ! (हर्यश्वाय) मनुष्यों में, अश्व के समान बलवान्, वेगवान्, श्रेष्ठ पुरुष की वृद्धि के लिये (आपीन्) अपने आप बन्यु जनों को भी (सं बर्हय) अच्छी प्रकार बढ़ा, उनको उत्साहित कर । (२) (वाणीः) उत्तम स्तुतियां, वा याचना-

प्रार्थना करने वाली प्रजाएँ भी, (अनुत्त-मन्युम्) क्रोध रहित, प्रसन्न राजा वा प्रभु को, अन्तः और वाह्य शत्रु के विजय के लिये धारण करें । उसके ही प्राप्त जनों को बढ़ावें । इति पोडशो वर्गः ॥

[३२]

वसिष्ठः । २६ वसिष्ठः शक्तिर्वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, २४
विराङ् वृहती । ६, ८, १२, १६, १८, २६ निचृद्वृहती । ११, २७
वृहती । १७, २५ भुरिग्वृहती । २१ स्वराङ्वृहती । २, ६ पंक्तिः । ५, १३,
१५, १६, २३ निचृत्पंक्तिः । ३ साम्नी पंक्तिः । ७ विराट् पंक्तिः । १०, १४
भुरिग्नुष्टुप् । २०, २२ स्वराङ्ग्नुष्टुप् ॥ सप्तिविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

मो पु त्वा व्याघतश्चनारे श्रुस्मनि रीरमन् ।

आरात्ताच्चित्सधुमादं न आ गंहीह वा सन्नुप॑ श्रुधि ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! (वाघतः) विद्वान् लोग भी (अस्मद् आरे) हम से दूर (त्वा मो सु निरीरमन्) तुझे आनन्द विनोद में न रमने दें । (आरात्तात् चित्) दूर रहता हुआ भी तू (नः सधमादं आ गहि) हमारे साथ आनन्द हर्ष करने के निमित्त प्राप्त हो । (इह वा) और इस राष्ट्र वा जगत् में (सन्) रहकर (नः उप श्रुधि) हमारे वचन श्रवण कर । इमे हि तै ब्रह्मकृतः सुते सच्चा मधौ न मनु आसते ।

इन्द्रे कामं जरितारो वसुयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! हे प्रभो ! परमेश्वर ! (इमे ब्रह्म-कृतः) ये अज्ञ, धन और वेद द्वारा सुति करने वाले लोग (मधौ मक्षः न) मधु, वा मधुर पदार्थ पर मधुमक्खी के समान (ते सुते) तेरे ऐश्वर्य या शासन में (आसते) प्रेम पूर्वक विराजते हैं । और (जरितारः) उप-देष्टा, स्तुतिशील (वसुयवः) धन प्राण और नाना लोकों की कामना वाले लोग (रथे न पादम्) रथ में पैर के समान (इन्द्रे कामम् आदधुः) ऐश्वर्यप्रद, परमैश्वर्ययुक्त तुक्ष प्रभु में ही अपनी समस्त कामना वा अभिलाषा को स्थिर करते हैं ।

रायस्कासो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (रायस्कामः) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ, (पितरं पुत्रः न) पिता को पुत्र के समान (सु-दक्षिण) उच्चम दानशील, उच्चम क्रिया-सामर्थ्यवान्, (वज्रहस्त) बलवीर्य सम्पन्न, बल से शत्रु को मारने वाले राजा को अपना (पितरं) पालक (हुवे) स्वीकार करता हूँ ।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ रु० ॥

इमं इन्द्राय सुन्निवे सोमासो दध्याशिरः ।

ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याहोकु आ ॥ ४ ॥

भा०—(इसे) ये (दध्याशिरः) राष्ट्र को धारण करने और उसका उपभोग करने वाले (सोमासः) ऐश्वर्य युक्त तेरे शासक जन (सुन्निवे) प्रजाओं का शासन करें । हे (वज्रहस्त) बलवीर्य को हाथों में धारण करने हारे राजन् ! (पीतये) राष्ट्र को पालन करने के लिये (तान् आ याहि) उनको प्राप्त कर और (हरिभ्याम्) उच्चम अश्वों से तू (ओकः आयाहि) अपने गृह, भवन को आ । इसी प्रकार ध्यान धारणा वाले जन प्रभु की आराधना करते हैं । वह उनके आनन्द देने और रक्षा करने के लिये प्राप्त हैं ।

श्रवच्छुत्कर्णं ईयते वसूनां नूचिन्नो मर्घिषद् गिरः ।

सुद्यश्चिद्यः सुहस्ताणि श्रता दद्वन्नकिर्दित्सन्तुमा मिनत् ॥५॥१७॥

भा०—(वसूनां) बसे हुए प्रजाजनों की (गिरः) वाणियों को जो राजा (श्रुत्कर्णः) श्रवण करने वाले सावधान कानों से (श्रवत्) सुने, वही (ईयते) आदरपूर्वक प्रार्थना किया जाता है । वह (नः गिरः चित् तु) हमारी वाणियों को (मर्घिषद्) चाहे । (सद्यः चित्) अति शीघ्र (यः) जो (शता सहस्राणि) सैकड़ों और सहस्रों को (ददत्)

प्रदान करे । (दित्सन्तम्) दान देना चाहने वाले को (न कि आ मिनत्) कोई भी पीड़ित या दुखी न करे ।

स वीरो अप्रतिष्कुत् इन्द्रेण शूशुचे नृभिः ।

यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष है (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे ! और धनों के प्राप्त करने हारे राजन् ! (यः) जो (ते) तेरे (गभीरा) गभीर (सवना) शासनों, आदेशों को (सुनोति) करता और (आधावति च) आगे वेग से बढ़ता है (सः) वह (वीरः) विविध विद्या और बल से युक्त पुरुष (इन्द्रेण) ऐश्वर्य और (नृभिः) उत्तम नायकों सहित (अप्रतिष्कुतः) सबसे बढ़कर (शूशुचे) होजाता है ।

भवा वरुथं मधवन्मधोनां यत्सुमजासि शर्धीतः ।

वि त्वाहृतस्य वेदनं भजेमह्या दुणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जो त् (शर्धीतः) बलवान् शत्रुओं को (सम् अजासि) एक साथ उखाड़ने में समर्थ हो, और (शर्धीतः सम् अजासि) बलवान् उत्साहवान् पुरुषों को सम्यक् मार्ग में एक साथ ही सेनावत् सञ्चालित करता है, वह त् (मधोनां) उत्तम धन धान्य वाले, पुरुषों के (वरुथं) गृह के समान शरण योग्य, रक्षक (भव) हो । हम (त्वाहृतस्य) तेरे से मारे गये (शर्धीतः) बलवान् शत्रु के (वेदनं) धन सम्पद को (वि भजेमहि) विविध प्रकार से बांट लें और सेवन करें, (दुःनशः) तू कठिनता से नाश होने योग्य, सुदृढ होकर हमारे (गयम् आ भर) गृह को प्राप्त करा और (नः गृहम् आ भर) हमारे गृह को पूर्ण कर ।

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वृजिणे ।

पचता पक्षीरवसे कुणुध्वमित्पृणवित्पृणते मयः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (सोमपाने) ‘सोम’ ओषधिरस का पान करने वाले के लिये (सोमम् सुनोत) उत्तम ओषधिरस उत्पन्न करो । इसी प्रकार (सोमपाने) ऐश्वर्य को पालन करने में समर्थ (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वज्रिणे) बलवान् पुरुष के लिये (सोमं) ऐश्वर्य (सुनोत) उत्पन्न करो और उक्त वीर्यवान् ‘इन्द्र’ पद के लिये वीर्यवान् पुरुष का अभिषेक करो । (अवसे) तृप्ति के लिये (पक्षीः) नाना पकने योग्य अक्षों को (पचत इत्) पकाओ । (पृष्ठन् इत्) सबको पालन और पूर्ण करने वाला ही (मयः पृष्टे) सबको सुख प्रदान करता है ।
 मा स्मैधत सोमिनो दक्षाता मुहे कुणुध्वं राय आतुजे ।
 तुरणिरिज्जयति ज्ञेति पुष्यति न देवासः कवृत्नवै ॥ ९ ॥

भा०—हे (सोमिनः) ‘सोम’ धनैश्वर्य, वीर्य अज्ञादि के पालक जनो ! आप लोग (मा स्मैधत) विनाश और परस्पर का नाश मत करो । (महे राये) वडे भारी धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये और (आतुजे) सब प्रकार के बल प्राप्त करने कराने वाले के लिये सर्वतः पालक ऐश्वर्य के लिये (दक्षत) सदा यत्न करते रहो । (तरणिः इत्) सब संकटों को पार करने वाला और शीघ्रकारी पुरुषार्थी पुरुष ही (जयति) विजय प्राप्त करता है और (पुष्यति) पुष्ट, समृद्ध हो जाता है । (देवासः) विद्वान् पुरुष और उत्तम गुण भी (कवृत्नवे) कुत्सित आचार वाले पुरुष के हित के लिये (न) नहीं होते ।

नक्तिः सुदासु रथं पर्यासु न रीरमत् ।

इन्द्रो यस्याविता यस्य मृत्यु गमति ब्रजे ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—(यस्य) जिसका (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, तत्वदर्शी वीर, विद्वान् और प्रभु (अविता) रक्षक है यस्य (मृत्युः) जिसके रक्षक और शिक्षक प्राणवत्, प्रिय और वायुवद् बलवान् विद्वान् जन हैं (सः) वह विद्वान् पुरुष (गोमति ब्रजे) वाणियों से युक्त प्राप्तव्य ज्ञान

मार्ग में (गमत्) जाता और (स गोमति व्रजे) वह नाना भूमियों और गवादि पशुओं से सम्पन्न प्राप्तव्य पद को (गमत्) प्राप्त करता है । (सु-दासः) उत्तम दान देने वाले के (रथं) रथ को (नकिः परि आस) कोई पलट नहीं सकता और (न रीरमत्) वह अन्यों को सुख नहीं दे सकता, न स्वयं सुख पाता है ।

गमद्वाजं वाजयचिन्दु मत्योऽयस्य त्वमविता भुवः ।

अस्माकं वोध्यविता रथानाम् स्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (यस्य भुवः) जिसकी भूमि की (त्वम् अविता) तू रक्षा करता (वाजयन्) ऐश्वर्य अन्न आदि की कामना करता रहता है वह (मत्यः) मनुष्य (वाजं गमत्) ऐश्वर्य अन्नादि (गमत्) प्राप्त करता है इसी प्रकार हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यस्य भुवः) जिस उत्पन्न हुए के प्राणों का तू रक्षक है वह (वाजयन् मत्यः) मनुष्य बल, अन्न और ज्ञान की कामना करता हुआ अवश्य (वाजं गमत्) बल, अन्न और ज्ञान प्राप्त करता है । हे (शूर) वात्तुनाशक ! वीर स्थामिन् ! तू (अस्माकम्) हमारा और हमारे (नृणाम्) मनुष्यों और (रथानाम्) रथों का और हे प्रभो ! (अस्माकं नृणाम् रथानाम्) हमारी इन्द्रियों और रमण योग्य देहों का भी (अविता) रक्षक होकर (अस्माकं बोधि) हमें ज्ञान दे और हमारा विचार रख ।

उदिन्दन्वस्य रिच्युतेऽशो धन्तं न जिग्युषः ।

य इन्द्रो हरिवान् दभन्ति तं रिषो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, सूर्य के समान तेजस्वी (हरिवान्) मनुष्यों का स्वामी और अश्व सैन्यों का स्वामी होकर (सोमिनि) बल, वीर्य, और ऐश्वर्यवान् पुरुष में (दक्षं दधाति) अपना ज्ञान और कर्म बल धारण करा सकता है । (जिग्युषः न)

विजेता के समान (अस्य इत् तु) उसका (अंशः धनं न) भाग वा धन (उद्दिच्यते) सबसे अधिक होता है ।

मन्त्रमवर्वं सुधितं सुपेशसुं दधात् यज्ञियेष्वा ।

पूर्वीश्वन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यज्ञियेषु) पूजा सत्कार करने योग्य जनों और (यज्ञियेषु) यज्ञ, दान, सत्संग प्रजापालन आदि व्यवहारों में (अखर्वं) बहुत अधिक (सुधितम्) उत्तम रीति से रक्षित, विहित, हितकारी, (सुपेशसं) उत्तम रूप से युक्त, भव्य, (मन्त्रं) मन्त्र को (आ दधात्) सब ओर से धारण करो । (पूर्वीः चन) पूर्व के भी (प्रसितयः) उत्तम ग्रेमवन्धन (तं तरन्ति) उसको प्राप्त होते हैं (यः) जो पुरुष (कर्मणा) अपने सत्कर्म से (इन्द्रे भुवत्) परम ऐश्वर्य-वान् राजा या प्रभु परमेश्वर में दत्तचित्त रहता है ।

कस्तमिन्दु त्वावसुमा मत्यौ दधर्षति ।

श्रद्धा इत्ते मधवन्पायै दिवि वाजी वाजै सिषासति ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (त्वा वसुम्) तुक्ष से ऐश्वर्य पाने वाले और (त्वा वसुम्) तुक्ष में ही बसने वा रमने और तेरे अधीन रहने वाले (तं) उस पुरुष को (कः) कौन (मत्यः) मनुष्य (आ दधर्षति) तिरस्कार कर सकता है । हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे (पायै दिवि) पालन योग्य व्यवहार और संसार से पार उत्तरने और संकटों से बचाने वाले ज्ञानप्रकाश में (श्रद्धा इत्) सत्य धारण ही है जिससे प्रेरित होकर (वाजी) ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष (वाज-सिषासति) अज्ञ, ज्ञान व ऐश्वर्य का भोग करता है ।

मधोनः स्म वृत्तहत्येषु चोदये ददति प्रिया वसु ।

तव् प्रणीती हर्यश्व सुरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ १५ ॥ १९ ॥

भा०—(ये) जो लोग (प्रिया वसु) प्रिय धन (ददति) प्रदान

करते हैं उन (मधोनः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों को ही (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं का नाश करने के संग्राम आदि कार्यों वा धनों को प्राप्त करने के उद्योगों में (चोदय स्म) नित्य प्रेरित किया कर। हे (हरि-अश्व) हे उत्तम बलवान् मनुष्यों के स्वामिन् (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम नीति और न्याय-पूर्वक शासन में (सूरिभिः) विद्वान् पुरुषों की सहायता से (विश्वा दुरिता) सब प्रकार के दुःखजनक कारणों और दुष्टाचारों को (तरेम) पार कर जावें ।

तदेदिन्द्रावमं वसुं त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।

सूत्रा विश्वस्य परमस्य राजासि नकिष्ठवा गोपु वृणवते ॥ १६ ॥

भा०—हे (हन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (अवमं वसु) निकृष्ट, तुच्छ धन वा प्रजा का पालक धन, गौ, अन्न, भूमि, वस्त्रादि और (मध्यमं वसु) मध्यम कोटि का धन, चान्दी, सोना आदि सिक्के के पदार्थ अन्य पदार्थों के विनिमय का माध्यम बन सके जिससे (तां पुष्यसि) उस प्रजा को पुष्ट करता है वह सब (तव इत्) तेरा ही है और (परमस्य) सर्वोक्तुष्ट (विश्वस्य) समस्ते ऐश्वर्य के द्वारा (सत्रा) तू अपने सत्य और न्याय के बल से (राजसि) राजा के समान है । (गोपु) सब भूमियों पर शासन करने के लिये (त्वा) तुझे (नकि : वृणवते) भला कौन स्वीकार नहीं करे, सभी तुझे सर्वेश्वर स्वीकार करते हैं । अथवा—(नकि : त्वा वृणवते) तुझे भूमियों पर कोई नहीं रोक सकता ।

त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य इँ भवत्युजयः ।

तवायं विश्वः पुरुहृतं पार्थिवोऽवस्युर्नाम मिञ्चते ॥ १७ ॥

भा०—(ये) जो (ईम) सब ओर (आजयः भवन्ति) संग्राम होते हैं उनमें सर्वत्र (त्वं) तू ही (विश्वस्य धनदा : श्रुतः असि) सबका धन देने हारा प्रसिद्ध है । हे (पुरुहृत) वहुतों से प्रशंसित ! (अयं) यह (विश्वः) समस्त (पार्थिवः) पृथिवी में रहने वाला राजवर्ग और

प्रजावर्गं (अवस्थुः) रक्षा चाहता हुआ (तव नाम) तेरे ही दुष्टों को नमाने वाले शासन और तेरे ही अधीन आजीविका, वृत्ति (भिक्षते) चाहता है ।

यदिन्द्रं यावत्स्त्वमेतावद्गमीशीय ।
स्तोतारमिदिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जिस प्रकार और (यावतः) जितने भी धनैश्वर्य का (त्वम्) तू स्वामी है (एतावन्) उतना ही (अहम्) मैं भी (ईशीय) ऐश्वर्य का स्वामी हो जाऊँ । हे (रदावसो) शत्रु कर्षण करने वाले वसी प्रजाजनों के स्वामिन् ! वा धनों के देने वाले ! मैं उस धन से (स्तोतारम् इत्) सुनिति करने वाले को ही (दिधिषेय) पालन करूँ । मैं अपना धन (पापत्वाय) पाप कर्म की वृद्धि के लिये (न रासीय) कभी न दूँ ।

शिक्षेयुमिन्महयुते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।

गुहि त्वदन्यन्मधवन्न आप्य वस्यो अस्ति पिता चन ॥ १९ ॥

भा०—मैं ऐश्वर्यवान् होकर (दिवे दिवे) प्रति दिन (कुह चिद्विदे) कहीं भी विद्यमान वा कुछ भी प्राप्त करने योग्य (महयते) बड़े, पूज्य पुरुष के आदरार्थ (रायः) नाना धन (शिक्षेयम् इत्) दिया ही करूँ । हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् ! (तत् अन्यत्) तुक्षसे दूसरा (नः) हमारा (वसीयः) श्रेष्ठ (आप्यं) बन्धु और (पिता चन) पालक भी (नहि अस्ति) नहीं है ।

तुराणिरित्सिपासति वाजं पुरन्धया युजा ।

आ वृ इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमि तष्टुव सुदृवम् ॥ २०॥२०॥

भा०—(तरणः इत्) संकट से तारने वाला, वा दीघ्रता से कार्य करने में कुशल पुरुष ही (युजा पुरन्धया) नगर को धारण करने वाली नीति वा नगररक्षक (युजा) सहायक वर्ग से (वाजं सिशासति)

अपने ऐश्वर्य और बल को न्यायपूर्वक विभक्त करता है । हे प्रजाजनो ! मैं (वः) आप लोगों में से (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त (पुरुहूतं) बहुतों में प्रशंसित (सुद्रवं) उत्तम, स्थिर पुरुष को (गिरा) वाणी से (तष्टा इव सुद्रवं नेमिम्) शिरी से बनाई काषमय चक्र की धार के तुल्य (नमे) नमाऊं । उसको विनयशील करूँ ।

न दुःपुतीं मत्यै विन्दते वसु न स्वेधन्तं रयिनैशत् ।

सुशक्तिरिन्मध्यचन्तुभ्युं मावते देषाणं यत्पायै द्विवि ॥ २१ ॥

भा०—(मर्यः) मनुष्य (दुःस्तुती) दुष्ट पुरुष की स्तुति, सेवा, बुरी स्तुति अर्थात् निन्दा से (वसु न विन्दते) धन को प्राप्त नहीं करता । (स्वेधन्तं) हिंसक पुरुष को (रयिः) ऐश्वर्य (न नशत्) कभी नहीं मिलता । और उसको (सुशक्तिः इत् न नशत्) उत्तम ग्रशंसनीय शक्ति, सामर्थ्य भी प्राप्त नहीं होता । हे (मधवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! (यत्) जो (पायै द्विवि) पालने और पूर्ण करने योग्य कामनायोग्य व्यवहार में (मावते) मेरे जैसे याचक को (देषाणं) देने योग्य धन देने की (सुशक्ति इत् तुभ्यम्) उत्तम शक्ति भी तेरी ही है ।

अभि त्वा॑ शूर नोनुमोऽदुर्घाइव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वर्वद्शमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! (अदुर्घाः धेनवः इव) न दुही गौओं के समान हम लोग (अस्य जगतः) इस जंगम और (तस्थुषः) स्थावर चल और अचल संसार के (ईशानम्) स्वामी, सञ्चालक और निर्माता (स्वर्वद्शं त्वाम्) सर्वदृष्टा तुझको वा सुख आनन्द दर्शन के लिये तेरे प्रति (अभि नोनुमः) हम झुकते हैं । तेरी प्रेम से स्तुति करते हैं । अथात् जिस प्रकार न दुही गौएँ प्रेम से अपना दुर्घ सर्वस्व देने के लिये गवाले के प्रति नमती हैं उसी प्रकार हम प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण करने

के लिये जुके । हम प्रजाजन भी दुःखी अकिञ्चन तुङ्ग सर्वस्व के स्वामी के प्रति पुत्र, धन, अन्नादि सुख प्राप्तयर्थं जुकते और स्तुति करते हैं ।

न त्वावाँ श्रन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

श्रव्यायन्तो मधवचिन्द्र वाजिनो गृव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अन्न जल, धनादि के देने हारे राजन् ! प्रभो ! (मधवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (त्वावान्) तेरे जैसा, (अन्यः) दूसरा, (न दिव्यः) न ज्ञानवान्, तेजस्वी, शुद्ध (न पार्थिवः) न दूसरा कोई इस पृथ्वी पर प्रसिद्ध है । ऐसा (न जातः) अर्भा तरु न उत्पन्न हुआ (न जनिष्यते) न पैदा होगा । हम (वाजिनः) ज्ञान, ऐश्वर्य, बल आदि से युक्त, (अश्वायन्तः) उत्तम विद्वानों और अश्व, राष्ट्र, अश्वसैन्य के इच्छुक और (गव्यन्तः) गौ, वाणियों और भूमियों के इच्छुक होकर (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति प्रार्थना करते हैं ।

श्रभी प्रतस्तदा भरेन्द्रु ज्यायुः कनीयसः ।

पुरुषसुर्हि मधवन्तसुनादसि भरेभरे च हृव्यः ॥ २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त ! हे (मधवन्) पूजित धन के स्वामिन् ! तू (पुरुषसुः) बहुतों को बसाने वाला, बहुत से ऐश्वर्यों का स्वामी और (सनातः) सनातन से (भरे भरे च हृव्यः) प्रत्येक पालन करने योग्य, कार्य, यज्ञ, संग्रामादि में भी युक्तारने और स्तुति करने योग्य (असि) है । तू (सतः) सत्स्वरूप, (ज्यायः) महान् और (कनीयसः) अति दीमियुक्त, अति सूक्ष्म उस परम तत्व का ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा ।

परा शुद्धस्व मधवब्रमित्रान्तसुवेदा नो वसु कृधि ।

श्रस्माकं वोध्यविता मंहाधुने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २५ ॥

भा०—हे (मधवन्) परम पूजित धन के स्वामिन् ! तू (नः अभित्रान्) हमारे शत्रुओं को (परा तुदस्व) दूर कर और (नः) हमें

(वसु) नाना ऐश्वर्य (सुवेदा कृधि) सुख से प्राप्त करने योग्य कर । अथवा हे (सुवेदाः) उत्तम धनाध्यक्ष ! तू (नः वसु कृधि) हमें उत्तम धन प्रदान कर । (महा-धने) संग्राम के अवसर पर वा भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, तू (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक हो (वोधि) हमें चेताता रह । और (अस्माकं सखीनाम्) हम मित्रों और हमारे मित्रों का (वृथः भव) बढ़ाने हारा हो । ‘सुवेदाः’ ‘सुवेदा’ उभावपि पदपाठौ । इन्द्रु कर्तुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥२६॥

भा०—(पिता) पालक, गुरु और आचार्य (पुत्रेभ्यः) पुत्रों और शिष्यों को (यथा) जिस प्रकार (क्रतुं) ज्ञान का उपदेश करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें भी (क्रतुम् आ भर) धर्म युक्त उत्तम बुद्धि प्रदान कर । (अस्मिन् यामनि) इस वर्तमान समय में, यज्ञ और संसारमार्ग में हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! एवं प्रजाद्वारा स्वीकृत ! तू (नः शिक्ष) हमें ज्ञान दे जिससे (जीवाः) हम सब जीवगण, जीवित रहकर (ज्योतिः अशीमहि) परम प्रकाश-स्वरूप ज्ञानमय तुल्यको प्राप्त हों ।

मा नो अब्राहाता वृजना दुराध्योऽ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वृयं प्रवतः शश्वर्तीरुपोऽतिं शूर तरामसि ॥ २७ ॥ २१ ॥

भा०—(नः) हमें (अज्ञाताः) अज्ञात (वृजनाः) वर्जन करने योग्य, हिंसक, (दुराध्यः) दुःख से ध्यान करने योग्य, दुःखदायी चिन्ताजनक और (अशिवासः) अकल्याणकारी बुरे लोग (मा अव क्रमुः) मत रैंदें । हे (शूर) दुष्टों के नाशक (वयम्) हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से (प्रवतः) अति विनीत होकर (शश्वती अपः) अनादि काल से प्राप्त वा बहुत से कर्मवन्धनों को नदियों के समान (अति तरामसि) पार कर जावें । इत्येकविंशतो वर्गः ॥

[३३]

संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्यन्देशं वा संवादः ॥ १—६ वसिष्ठपुत्राः । १०—१४
वसिष्ठ ऋषिः ॥ त एव देवताः ॥ छन्दः—१, २, ६, १२, १३ त्रिष्टुप् ।
३, ४, ५, ७, ६, १४ निचृतविष्टुप् । १० भुरिक् पंक्तिः ॥ चतुर्दशर्च सूक्तम् ॥
श्वित्यश्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियजिज्ञवासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उच्चिष्ठन्वोचे परि बहिषो नृन्म मै दुरादवित्वे वसिष्ठाः ॥ १ ॥

भा०—(श्रित्यज्ञः) वृद्धि को प्राप्त, उन्नत (दक्षिणतः-कपर्दाः)
दायें भाग में जटा जूट रखने वाले (धियं-जिन्वासः) ज्ञान और उत्तम
मति को स्वयं प्राप्त और उत्तम काम करने वाले (वसिष्ठः) उत्तम व्रह्म-
चारी, विद्वान् वसुराण (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे सदा आनन्दित करें ।
और वे (अवितवे) रक्षा और ज्ञान प्रदान करने के लिये (दूरात्)
दूर देश से भी प्राप्त हों । उन (नृन्) उत्तम मार्गों में ले जाने वाले
उत्तम पुरुषों को मैं (बहिषः) वृद्धियुक्त आसन से (उत् तिष्ठन्) उठ
कर (परि वोचे) आदर युक्त वचन सत्कार करूँ । अथवा उन (बहिषः)
वृद्धिशील अन्यों को बढ़ाने वाले विद्वानों का सत्कार करूँ ।

दुरादिन्द्रमनयुन्ना सुतेन तिरो वैश्नन्तमति पान्तसुग्रम् ।

पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रो अवृणीता वसिष्ठान् २

भा०—विद्वान् लोग (वैशन्तम्) राष्ट्र में प्रविष्ट प्रजा के हितकारी
(उग्रम्) बलवान् (पान्तम्) पालन करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को
(सुतेन) धर्म से उत्पन्न ऐश्वर्य के बल से (दूरात्) दूर देश से भी
(तिरः अनयन्) अपने समीप ले आते हैं उन (वसिष्ठान्) राष्ट्र में बसे
उत्तम पुरुषों को (पाशद्युम्नस्य) धन के पाश में कैसे वैश्यवर्ग और
(वायतस्य) विज्ञानवान् पुरुषों और (वायतस्य) तेज और रक्षा से
युक्त क्षात्रवर्ग के (सुतात् सोमात्) उत्तम अज्ञ ऐश्वर्य और ज्ञान से

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अवृणीत) वरण करे । उनका मान, आदर, सत्कार करे ।

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।

एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासुं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) राष्ट्र में बसे उत्तम प्रजाजनो ! वा अपने बाहुबल से प्रजा को सुखपूर्वक उत्तम रीति से बसाने वाले वीर पुरुषो ! वा आचार्य के अधीन खूब ब्रह्मचर्य पूर्वक वास कर विद्याभ्यास करने हारे जनो ! (वः एभिः) आप लोगों में से ही इन कुछ जनों की सहायता से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सिन्धुं नु कं ततार इन्) बड़े भारी समुद्र को भी पार करे, (एभिः) इन विशेष जनों सहित (भेदं नु कं ततार एव इत्) फूट डालने वाले वा मेघवत् शत्रु को भी पार करे । (वः ब्रह्मणा) आप लोगों के बल, धन और ज्ञान से ही वह (दाशराज्ञे) सुख देने वाले राजा के लिये (एव नु कं) भी (सुदासुं) उत्तमदानशील प्रजा की (प्रावत्) रक्षा करे ।

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितृणामक्षं मव्ययं न किला रिषाथ ।

यच्छक्करीषु वृहृता रवेण्येन्द्रे शुष्म्मुमद्धाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) उत्तम जनो ! आप लोग (वः) अपने (पितृणाम्) पालक जनों के (अव्ययं) कभी नाश न होने वाले उस (अक्षम्) व्यापक और सत्यदर्शक ज्ञान-ऐश्वर्य (ब्रह्मणा) बल और महान् बल को (न किल रिषाथ) नाश न करे प्रत्युत ऐश्वर्य से (जुष्टी) प्रेमपूर्वक (अदधात) धारण करो (यत्) जिस (शुष्म्मं) बल को हे (वसिष्ठाः) ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु के अधीन रहने वाले और राष्ट्र में बसने वाले जनो ! आप लोग (वृहृतः रवेण) बड़े भारी आवोष के साथ (शक्करीषु) शक्ति युक्त सेनाओं और (इन्द्रे) ऐश्वर्य युक्त राजा में या उनके अधीन रहकर (अदधात) धारण करते रहो ।

उद्यामिवेत्तुष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराजे वृतासः ।

वसिष्ठस्य स्तुवत् इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ५।२२-

भा०—(वृतासः) वरण किये गये (तृष्णजः) तृष्णा अर्थात् उत्तम फल वा धन आदि की कामना से युक्त (नाथितासः) धनादि की याचना करने वाले, लोग (दाशराजे) दानशीलों में तेजस्वी राजा के लिये (द्याम् इव द्याम्) सूर्य के समान तेज या उसकी कामना या भूमि को (उद् अदीधयुः) उत्तम रीति से धारण करें । (स्तुवतः) स्तुति करने वाले (वसिष्ठस्य) वसे उत्तम प्रजाजन की (इन्द्रः) शत्रुहन्ता ऐश्वर्य-वान् सूर्यवत् तेजस्वी राजा भी (अश्रोत्) श्रवण करे और वह (तृत्सुभ्यः) शत्रुओं का नाश करने वाले सैनिकों के लिये भी (उरुम् लोकम्) बहुत बड़ा स्थान (अकृणोत्) प्रदान करे ।

दण्डा इवेद्गो अजनास आसुन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अर्भवच्च पुरएता वसिष्ठु आदित्तसूनां विशेषं अप्रथन्त ॥ ६ ॥

भा०—(दण्डा इव परिच्छिन्ना गो-अजनासः) दण्ड जिस प्रकार शाखां से कट कर भी पशु आदि को हाँकने के लिये उत्तम होते हैं इसी प्रकार (परि-च्छिन्नः) सब प्रकार कटे छटे, सुभूषित, सकुशल, (भरताः) प्रजापालक (अर्भकासः) बालकों के समान निर्देष, निर्मोह, स्वच्छ हृदय वा (अर्भकाः = ऋभवः) सत्य न्याय से प्रकाशित जन, दण्डों के समान ही (दण्डाः) दुष्टों के दमन करने वाले (गो-अजनासः) भूमियों को शासन करने वाले (आसन्) हों । (वसिष्ठः) सबसे उत्तम प्रजा को बसाने वाला राजा, इनका (पुरः-एता) अग्रयार्थी नायक (अभवत्) हो और (आत् इत्) अनन्तर (तृत्सूनां) शत्रुहिंसक वीर पुरुषों की ही यह (विशेषः) समस्त प्रजाएं (अप्रथन्त) प्रसिद्ध होती हैं । अथवा—जो (अर्भकासः) बालकवत् वा अल्प बुद्धि बल वाले (भरताः) भरण पोषण योग्य मनुष्य (परिच्छिन्नः) सब ओर से घिरे हुए, सुरक्षितः

(दण्डः इव) दण्डों के समान (गो-अजनासः) वाणी के अभ्यास में अप्रगत्य हों (तुत्सूनां) अनादर योग्य अल्पमान बाले जनों का (पुरः एता वसिष्ठः अभवत्) अग्रयार्थी नायक उत्तम विद्वान् हो तब वे (विशः) उसके अधीन रहकर उसकी प्रजा रूप से प्रसिद्ध होते हैं ।

त्रयः कृणवन्ति भुवनेषु रेतस्तित्वाः प्रज्ञा आर्या ज्योतिरित्राः ।
त्रयो धर्मासं उपसं सचन्ते सर्वा इत्तां अनु विदुर्वासिष्ठाः ॥७॥

भा०—(त्रयः) तीन (भुवनेषु) उत्पन्न हुए लोकों में उनके निमित्त (रेतः) जल, तेज, वीर्य को (कृणवन्ति) उत्पन्न करते हैं और (तित्वः) तीन प्रकार की (अर्याः प्रजाः) श्रेष्ठ प्रजाएँ (ज्योतिः-अग्राः) प्रकाश को मुख्य रूप से प्राप्त होने वाली होती हैं (त्रयः) तीनों (धर्मासः) तेजस्वी, वीर्यवान् ही (उपसं) उषा को सूर्यवत् कामना योग्य भूमि वा शक्ति को (सचन्ते) प्राप्त करते हैं (तान् सर्वान् इत्) उन सब को ही (वसिष्ठाः अनु विदुः) विद्वान् ब्रह्मचारी अच्छी प्रकार जानते और प्राप्त करते हैं । लोक में सूर्य, विद्युत् और अग्नि तीनों (रेतः) प्रजोत्पादक तेज को उत्पन्न करते और सूर्य वायु और भूमि तीनों प्रजोत्पादक प्रकाश, प्राणाधार जल और अज्ञ को उत्पन्न करते हैं, तीनों प्रकार की श्रेष्ठ प्रजाएँ, जेरज अण्डज और उद्दिज्ज तीनों ही (ज्योतिरित्राः) प्रकाश की ओर बढ़ने वाली होती हैं (त्रयः धर्मासः) तीनों तेजो-युक्त सूर्य, अग्नि, विद्युत् वा (धर्मासः) रोचक सूर्य, मेघ और बलवान् पुरुष (उपसं) दाहक तापशक्ति और उपाकाल, और कान्ति तथा कामना योग्य स्त्री को प्राप्त करते हैं । उन सब पदों को (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी जन ही (अनु विदुः) प्राप्त करते हैं ।

सूर्यस्येव ब्रह्मथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गंभीरः ।
वातस्येव प्रज्ञवो नान्येत्तु स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) विद्वान्, ब्रह्मचारी लोगो ! हे राष्ट्र में वसे

जनों में श्रेष्ठ जनो ! (एषां) इन (वः) आप लोगों का (वक्षथः) रोप, तेज और वचनोपदेश, (सूर्यस्य ज्योतिः इव) सूर्य के तेज के समान असद्य और यथार्थ तत्व का प्रकाशक हो । (महीमा) महान् सामर्थ्य (समुद्रस्य इव गभीरः) समुद्र के समान गंभीर हो । (प्र-जवः) उत्तम वेग भी (वातस्य इव) वायु के समान अदम्य हो और (वः) आप लोगों का (स्तोमः) बलवीर्य, अधिकार तथा उत्तम स्तुत्य चरित भी ऐसा हो जो (अन्येन) दूसरे असमर्थ निर्बल पुरुष से (अन्वेतवे न), अनुकरण न किया जासके, वह भी सर्वोत्तम हो ।

त इश्विरायं हृदयस्य प्रकेतैः सुहस्त्रवलशमुभि सं चरन्ति ।

यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरसु उप सेदुर्वसिष्टाः ॥ ९ ॥

भा०—(ते इत् वसिष्टाः) वे ही पूर्ण ब्रह्मचारी, गुरु के अधीन विद्या प्राप्ति के लिये अच्छी प्रकार कर्म करने हारे विद्वान् जन (यमेन) नियन्त्रण करने वाले आचार्य वा परमेश्वर द्वारा (ततं) विस्तारित (परिधिं) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञान, व्रत और दीक्षादि को (वयन्तः) प्राप्त होते और उसका पालन करते हुए (अप्सरसः उप-सेदुः) गृहाश्रम में स्त्रियों को प्राप्त करें । अथवा, वे विद्वान् जन ही (अप्सरसः) प्राप्त प्रजा जनों में और उत्तम कर्म मार्गों पर विचरते हुए (अप्सरसः) आकाश में विचरते हुए सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु और मेघादि के तुल्य ही उपकारक होकर हमें प्राप्त हों । (त इव) वे ही (हृदयस्य) हृदय के (प्रकेतैः) उत्तम ज्ञानों से सहस्रों अंकुरों, शाखा ज्ञानों से युक्त (निष्यं) निश्चित ज्ञान को (अभि सञ्चरन्ति) प्राप्त कर विचरें । इसी प्रकार राज्य में वसे उत्तम वीर पुरुष भी (यमेन ततं) नियन्ता राजा की बनाई (परिधिं) नगर के दीवार की (वयन्तः) रक्षा करते हुए, (प्रकेतैः) उत्तम संकेतों से (सहस्रवल्शं) सहस्रों शाखाओं वाले (निष्यं) सुगुप्त दुर्ग वा राष्ट्र में (अभि सञ्चरन्ति) सर्वत्र

विचरेण । वे ही (अप्सरसः उप सेदुः) प्रजाओं में विचरते हुए सदा अपने कर्त्तव्यों में उपस्थित हों । इसी प्रकार ये सब 'वसिष्ठ' जन वसुओं प्राणों में श्रेष्ठ आत्मा, जीव गण हैं जो नियन्ता प्रभु के बनाये 'परिधि' मर्यादा को पालन करते हुए (अप्सरसः) आकाश में या प्राप्त शरीरों, कर्मों और प्रकृति के घटक परमाणुओं या लिंग । शरीरों में विचरते हुए (उप-सेदुः) इन शरीरों में प्राप्त होते हैं । वे ही हृदय, अन्तःकरण स्थित प्रज्ञानों से अप्रकट सहस्र शाखा वाले संसार के मार्गों पर विचरते हैं ।

विद्युतो ज्योतिः परि सुजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।

तच्चे जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजुभार ॥१०॥२३॥

भा०—जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य बतलाते हैं । हे (वसिष्ठ) देह में वसे प्राणों में से सबसे श्रेष्ठ जीव ! (विद्युतः ज्योतिः) विद्युत् की ज्योति के तुल्य दीप्तिमात्र को (परि संजिहानं) सब प्रकार से धारण करते वाले तुक्षको (यत्) जब (मित्रा वरुणौ) सूर्य चन्द्रवत्, प्राण अपान वा माता पिता दोनों, (त्वा अपश्यताम्) तुक्षको देखते हैं (तत्) तब, वह (ते) तेरा (जन्मः) जन्म होता है (उत) और (एक) एक जन्म तब होता है (यत्) जब (अगस्त्यः) सूर्य (त्वा) तुक्षको (विशः) प्रवेश योग्य देहों में, वा आचार्य प्रजाओं में राजा के समान (आजभार) प्राप्त कराता है । विद्युत् की ज्योति के समान जीव का प्रकाशमय रूप— “तस्यैष आदेश यदेतत् विद्युतो व्यद्युत्तदा॒ इतीतिन्यमीमिषदा॒ इत्यधिदैव-
तम् । अथात्यात्मं ददेतदृग्च्छतीव च मनोऽनेन चैतुपस्मरत्यभीक्षणं संकल्पः ॥
केनोपनिषत् ।” आत्मा के नाना जन्मों का रहस्य देखो ऐतरेयोपनिषत् अ० २ । ख० १ ॥ जैसे सूक्ष्म जीव के दो जन्म हैं एक पुरुष देह से द्वी देह में आना, दूसरा द्वी देह से संसार में प्रकट होना उसी प्रकार इस मनुष्य के दो जन्म हैं, एक मनुष्य योनि में जन्म लेना दूसरा आचार्य गृह में विद्या माता में जन्म लेना ।

उतासि॑ मैत्रावरुणो॒ वसिष्ठोर्वश्या॑ ब्रह्मन्मनुसो॒ अधि॑ जातः॑ ।
द्रृप्सं॒ स्कन्नं॒ ब्रह्मणा॑ दैव्येनु॑ विश्वे॑ देवाः॑ पुष्करे॑ त्वाददन्त॥११॥

भा०—हे (वसिष्ठ) देह में वसे प्राणों में सर्वश्रेष्ठ जीव ! (उत) और तू (मैत्रावरुणः) मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनों का स्वामी (असि) है । हे (ब्रह्मन्) बृद्धिशील जीव ! तू (उर्वश्याः) अति कान्तिमती, तैजस, सात्त्विक विकार से युक्त वा 'उरु' अति विस्तृत च्यापक प्रकृति के ऊपर (मनसः) मनन शक्ति द्वारा (अधि-जातः) भोक्ता रूप से अध्यक्ष होता है । (दैव्येन) समस्त किरणों के समस्त शक्तियों के स्वामी सूर्यवत् तेजस्वी (ब्रह्मणा) महान्, परम ब्रह्म परमेश्वर से (स्कन्नं) ग्रदत्त (द्रृप्सं) वीर्य के समान (त्वा) तुल्यको (देवाः) समस्त द्विव्य शक्तियाँ (पुष्करे) पुष्टिकारक तत्त्व में (अददन्त) धारण करती हैं । श्रेताश्वतर में विविध ब्रह्म का वर्णन हैं वह यहां उर्वशी, वसिष्ठ, और ब्रह्म तीनों रूप हैं । उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ जीव, और ब्रह्म परमेश्वर । (२) इसी प्रकार वह जीव प्राणी भी परस्पर प्रेमी और एक दूसरे को वरण करने वाले वर वधु, माता पिता से उत्पन्न होने से मैत्रावरुण है । वह माता पिता के गृह से उत्पन्न होकर (उर्वश्या) बड़ी भारी वेदविद्या के अभ्यास से (ब्रह्मन्) वेदज्ञान (मनसः) मनशील ज्ञानवान् आचार्य से (जातः) उत्पन्न होता है । पिर वह (दैव्येन ब्रह्मणा) देव, विद्येच्छु शिष्यों के हितैषी चतुर्वेदवित् आचार्य से (स्कन्नः) विसर्जित (द्रृप्सः) कान्तियुक्त, तेजस्वी पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (पुष्करे) पुष्टिकारक, सर्वाश्रमपोषक गृहाश्रम में (अददन्त) नियुक्त करते हैं ।

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्तसुहच्छदान उत वा सदानः ।
युमेन तुतं परिधिं विष्यन्पुरसः परि जडे वसिष्ठः ॥ १२ ॥

भा०—माता और आचार्य से उत्पन्न बालक और शिष्य की तुलना-जिस प्रकार (यमेन) सर्वनियन्ता परमेश्वर से (ततं) फैलाये या बनाये

(परिधि) धारक रक्षक देह सांसारिक जीवन को (वयिष्वन्) पट के समान स्वयं अपने कर्माँ द्वारा बिनता, या बनाता और उसको प्राप्त होना चाहता हुआ (वसिष्ठः) उत्तम वसु जीव (अप्सरसः परि ज्ञे) खी के शरीर से परिपुष्ट होकर प्रकट होता है उसी प्रकार (वसिष्ठः) गुरु के अधीन वास कर रहने वाला उत्तम वसु ब्रह्मचारी भी (यमेन) नियन्ता आचार्य से (ततं) विस्तारित, प्रकाशित (परिधि) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञानमय शास्त्रपट को (वयिष्वन्) प्राप्त, रक्षण और विस्तृत करना चाहता हुआ (अप्सरसः) अन्तरिक्षचारी वायु के समान ज्ञानवान् पुरुष वा आप जनों की व्याप्ति विद्या से (परि ज्ञे) उत्पन्न होता है । (सः) वह (प्र-केतः) उत्तम ज्ञानी और (उभयस्य) पाप और उण्य, इह लोक और परलोक दोनों को (प्र-विद्वान्) भली प्रकार जानता हुआ, (सहस्र-दानः) सहस्रों का दान देने वाला, परमैश्वर्य का स्वामी हो । (उत वा) अथवा (स-दानः) दानशील पुरुषों के दिये दान से अलंकृत मिक्षु, ब्रह्मण हो । अर्थात् विद्वान् होने के अनन्तर धनी और त्यागी दोनों में से एक यथेच्छ होकर रह सकता है ।

सत्रे हूँ ज्ञाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मानु उदियायु मध्यात्ततो ज्ञातमृषिमाहुर्वसिष्टम् ॥१३॥

भा०—(सत्रे) दीर्घ वेदाध्ययन रूप यज्ञ वा गुरु के सदन, आश्रम गृह में (जातौ) उत्पन्न हुए कुमार और कुमारी, दोनों (इषिता) एक दूसरे की इच्छा करने वाले होकर (नमोभिः) आदर सत्कारों सहित (कुम्भे रेतः) कलश में रखे जल से (समानं) मानसहित, वा एक समान (सिषिचतुः) अभिषेक वा स्नान करें, अथवा वे दोनों (समानं) एक दूसरे के समान, परिपक्व (रेतः) वीर्य को (कुम्भे) घट में जल के समान गर्भ में वीर्य का (सिषिचतुः) सेचन करें । (ततः मध्यात्) उन दोनों के बीच से (मानः) उत्तम परिमाणयुक्त बालक (उत-

ज्ञायाय) उत्पन्न होता है (ततः) उससे अनन्तर उसको (ऋषिम्) प्राप्त जीव को (वसिष्ठम् आहुः) वसिष्ठ कहते हैं। ठीक इसी प्रकार सत्र में स्थित गुरु आचार्य, घर में नलवत् पात्र में ज्ञान-जल का प्रदान करते हैं। (ततः) तब (मानः) ज्ञानवान् पुरुष उत्पन्न होता है। उसको विद्वान् जन 'वसिष्ठ ऋषि' उत्तम विद्वान्, ब्रह्मचारी कहते हैं।

उक्थभृतं सामभृतं विभर्ति ग्रावाणं विभृत्प्र वद्वात्यग्रे । उपैन-
माध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः १४।२४।२।

भा०—जो विद्वान् (अग्रे) सबसे पूर्व, (विश्रृत) स्वयं ज्ञान को धारण करता हुआ (प्र वदाति) उत्तम प्रवचन करता है वह (ग्रावाणं) मेघ के समान ज्ञान-जल को धारण करने वाले (उक्थ-भृतं) ऋग्वेद के धारण करने और (साम-भृतं) सामवेद के धारण करने वाले विद्वान् शिष्य को भी (विभर्ति) धारण करता है। वही (वसिष्ठः) वसु, ब्रह्मचारियों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् है। हे (प्र-तृदः) तीनों आश्रमों को अन्नादि देने वाले गृहस्थो ! वा हे (प्रतृदः) खण्ड २ कर वेद का अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियो ! जब वह (वः आगच्छति) तुम्हें प्राप्त हो तब आप लोग (एवं) उसकी (सुमनस्यमानाः) शुभ संकल्पयुक्त होकर (उप आध्वम्) उपासना कर, उसके समीप बैठकर ज्ञान ग्रहण करो। अथवा—वह वसिष्ठ ही अध्याय, वा पद, प्रकृति प्रत्ययादि विच्छिन्न २ कर पढ़ाने हारा, वा संज्ञयों का छेत्ता ज्ञानी पुरुष 'प्रतृद' है वह जब आवे तब सब उसकी उपासना कर ज्ञान-लाभ करें। इसी प्रकार सबमें बसा महान् आत्मा प्रभु 'वसिष्ठ' है। वही सबसे (अग्रे प्र वदाति) प्रथम उपदेश करता है। उक्थ, साम आदि के धारक, उपदेश्य वेद को स्वयं धारण करता है। हे जनो ! आप उसकी उपासना करें। इति चतुर्विंशो वर्गः। द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[३४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—१५, १८—२५ विश्वे देवाः । १६ आहिः । १७ आहि-

वृद्धयो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, १३, १३, १४, १६, १६, २० मुरिगा-
र्चीगायत्रो । ३, ४, १७ आर्ची गायत्री । ६, ७, ८, ६, १०, ११, १५,
१८, २१ निचृत्विपादगायत्रो । २२, २४ अनचृदार्थी त्रिष्ठुप् । २३ आर्धी त्रि-
ष्ठुप् । २५ विराडार्थी त्रिष्ठुप् च ॥ पञ्चविशात्युचं सूक्तम् ॥

प्र शुक्तु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥ १ ॥

भा०—(वाजी) वेगवान् (रथः) रथ (सु-तष्टः) उत्तम रीति
से शिल्पी द्वारा निर्मित होकर जिस प्रकार (मनीषाः एति) मनोऽनुकूल
गतियें करता है उसी प्रकार (सु-तष्टः) उत्तम रीति से अध्यापित,
(वाजी) ज्ञानी पुरुष और (शुक्ता) शुद्ध अन्तःकरणवाली, शुद्धाचार
युक्त (देवी) उत्तम विदुषी स्त्री भी (अस्मत्) हमसे (मनीषाः) उत्तम
उत्तम द्विदियों को (इतु) प्राप्त करे ।

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृणवन्त्यापो अधुः क्षरन्तीः ॥ २ ॥

भा०—(अधः क्षरन्तीः आपः) मेघ से नीचे गिरती जलधाराएं
जिस प्रकार (दिवः) आकाश से (जनित्रं) अपनी उत्पत्ति और
(पृथिव्याः जनित्रं) पृथिवी, अक्ष की उत्पत्ति का कारण होती हैं उसी प्रकार
(अधः क्षरन्तीः) नीचे के अंगों से व्यवित वा ऋतु से होने वाली नव-
युवति (अपः) आप, खियें (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष और (पृथि-
व्याः) पृथिवी के समान बीजों को अंकुरित करने वाली उत्तम माता से
ही (जनित्रं) उत्तम सन्तान के जन्म को जानें और (शृणवन्ति) वैसा
ही उपदेश गुरुजनों से श्रवण करें । नवयौवन के लक्षण प्रकट होने पर
उत्तम सन्तान उत्पन्न होने की विद्या को वे भली प्रकार जानें और शिक्षा
प्राप्त करें ।

आपश्चिद्दस्मै पिन्वन्ति पृथ्वीवृत्तेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥

भा०—(वृत्तेषु) मेवाँ में (आपः चित्) जलधाराएं जिस प्रकार
(अस्मै) इस सूर्य के बल से (पृथ्वीः) भूमियों को (पिन्वन्त)

सींचती हैं और (बृत्रेषु) मेंदों के ऊपर (उग्रः) उग्र बल की प्रचण्ड वायुएं (मंसन्ते) प्रहार करते हैं (चित्) उसी प्रकार (अस्मै) इस राजा के निमित्त ही (आपः) नहरें या आह प्रजाजन (पृथ्वीः पिन्वन्त) भूमियों को सींचते, उस पर कृषि आदि करते और (शूराः) शूरवीर पुरुष (बृत्रेषु) विज्ञकारी पुरुषों पर और नाना धनों के निमित्त (मंसन्ते) उद्योग करते हैं ।

आ धूर्ख्वीस्मै दधाताश्वनिन्दो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अस्मै) इस नायक के ही लिये (धूर्ख्वी) शुराओं में (अश्वान्) अश्वों को (दधात) धारण करो । (इन्द्रः) वह युश्यर्वान् ही (वज्री) हाथ में बत्र, बल, वीर्य, शस्त्रास्त्र सैन्य को धारण करने और (हिरण्य-बाहुः) सुवर्णादि धन को अपने बाहुबल से रखने वाला है ।

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्तमना हिनोत ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (अह इव) और आप लोग (यज्ञं अभि) पूजनीय प्रभु, सत्संग, यज्ञ आदि को लक्ष्य कर (प्र स्थात) आगे बढ़ो । (याता इव) यात्री या जाने वाले पुरुष के समान (त्मना) आत्म सामर्थ्य से (पत्मन्) सन्मार्ग पर (हिनोत) आगे बढ़ो ।

त्मना सुमत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (समत्सु) संग्राम के अवसरों में (त्मना) अपने सामर्थ्य से (यज्ञं) पूज्य नायक को (हिनोत) बढ़ाओ । (जनाय) साधारण प्रजाजन के हितार्थ (केतुं) ध्वजा के समान सबके आज्ञा वक (वीरम्) वीर और नाना विद्योपदेशां पुरुष को (दधात) स्थापित करो । उसको पुष्ट करो । (२) हे स्त्रीजनो ! (समत्सु) हर्षयुक्त अवसरों में (त्मना) अपनी देह से (यज्ञं) संगतियोग्य गृह्ण कार्य वा पति को (हिनोत) बढ़ाओ । और (जनाय) पुत्रोत्पादन के लिये (केतं वीरं दधात)

विद्वान्, रोगरहित, वीर्यवान् पुरुष को धारण करो सथा (जनाय) अपने पति के लिये (वीरं कें दधात) ज्ञानवान् पुत्र को धारण करो । उद्दस्यु शुष्माङ्गानुर्नार्तं विभर्ति भारं पृथिवी न भूम् ॥ ७ ॥

भा०—(भानुः न) जिस प्रकार सूर्य के बल से कान्ति ऊपर उठती है उसी प्रकार (अस्य शुष्मात्) इस नायक के बल से (भानुः) कान्ति या तेजवत् उसके आश्रित प्रजा (उत् आर्त्) उन्नति को प्राप्त होती है । (पृथिवी न) पृथिवी के समान विदुषी स्त्री भी (भूम् भारं) बहुत भारी भार, प्रजाओं के पालन पोषण का भार (विभर्ति) धारण करती और भरण पोषण करती है ।

द्व्यामि देवां अयातुरम् साधन् तेन धियं दधामि ॥ ८ ॥

भा०—हे (अमे) तेजस्विन् ! विद्वन् ! मैं (अयातुः) अन्यत्र कहीं भी न जाकर, वा किसी को भी पीड़ा न देता हुआ, अहिंसावती होकर (देवान्) विद्या, धनादि की कामना करने वाले शिष्यों को (द्व्यामि), प्रेमपूर्वक बुलाता हूँ । मैं (कर्तेन) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार के द्वारा (साधन्) साधना करता हुआ (धियं दधामि) ज्ञान प्रदान करूँ और कर्म करूँ । इसी प्रकार हे विद्वन् ! मैं शिष्य भी विद्वानों को प्रार्थना करूँ कि मैं स्थिर होकर सत्य निष्ठापूर्वक साधना करता हुआ (धियं) ज्ञान, और कर्म को धारण करूँ ।

अभि वौ देवीं धियं दधिध्वं प्र वौ देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥९॥

भा०—हे जनो ! आप लोग (वः) अपनी (देवीं धियं) दिव्य मति को (अभि दधिध्वं) धारण करो । और (वः) अपनी वाणी को भी (देवत्रा वाचम्) विद्वानों में विद्यमान उत्तम वाणी के समान बनाओ । आ चं प्र आसुं पाथो नृदीनां वरुण उग्रः सुहस्त्रचक्राः ॥१०१२५॥

भा०—(उग्रः) प्रचण्ड (वरुणः) सूर्य जिस प्रकार (नदीनां पाथः आ चष्टे) नदियों के जल को खींच लेता है उसी प्रकार (सहस्र-

चक्षाः) सहस्रो आज्ञा-वचन कहने वाला (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (उग्रः) बलवान् होकर (नदीनां) समृद्ध (आसां) इन प्रजाओं के (पाथः) पालनकारक राज्य व्यवहार को (आ चष्टे) स्वयं देखता है । इसी प्रकार सूर्यवत् सहस्रचक्षु प्रभु इन जीव प्रजाओं के सब व्यवहारों को देखता है । इति पञ्चविंशो वर्णः ॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै कृत्रं विश्वायु ॥ ११ ॥

भा०—वरुण, अर्थात् जल जिस प्रकार (नदीनां पेशः) नदियों के स्वरूप को बनाता है, उसी प्रकार यह (राजा) राजा (राष्ट्रानां) राष्ट्रों और समृद्ध प्रजाओं के (पेशः) उत्तम समृद्धि रूप को बनाता, और (अस्मै) उसका (विश्वायु) सर्वगमी, (अनुत्तम्) अवाधित, (क्षत्रं) बल वीर्य होता है ।

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विद्वद्युं कृणोत् शंसं निनित्सोः ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान्, जनो ! आप लोग (अस्मान्) हमें (विश्वासु विक्षु) समस्त प्रजाओं में (अविष्टो) रक्षा करो । और (शंसं कृणोत्) हमें उत्तम उपदेश करो । (निनित्सोः अद्युं कृणोत्) निन्दा करने वाले के सब काम को अन्धकार युक्त करो ।

व्येतु दिद्युद्दिष्पामर्शोवा युयोत् विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥ १३ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (दिद्युत्) खूब चमकता हुआ प्रकाश (वि पतु) विविध दिशाओं में फैले । (दिष्पाम् अशेवा) शत्रुओं को नाना दुःख प्राप्त हों । (तनूनाम्) देह धारियों के (रपः) दुःख अपराधों को आप लोग (विश्वक्) सब प्रकार से (युयोत्) पृथक् करो ।

अवीचो अग्निर्हव्याच्चमोभिः प्रेष्टो अस्मा अधायि स्तोमः ॥ १४ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवन्, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नमोभिः) अज्ञादि पदार्थों से तथा शस्त्रों से (नः) हमारी रक्षा करे । वह (हव्यात्) ग्राह्य, भक्ष्य पदार्थों को खाने वाला, (प्रेष्टः) सर्व प्रिय हो । (अस्मै)

उसके लिये (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अधायि) किया जावे । और वह भी इस राष्ट्र के वासी प्रजा जन के लिये उत्तम व्यवहार करे । सज्जुद्देवेभिरुपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (देवेभिः सज्जः) किरणों पृथिव्यादि तत्वों के सहित वर्तमान अग्नि वा सूर्य के समान (अपां नपातं) जलों को न गिरने देने वाले, मेघवत् उपकारक प्रजाओं को वा ग्राणों को नाश न होने देने वाले पुरुष को अपना (सखायं कृध्वम्) मित्र बनाओ । वह (नः) हमारा (शिवः) कल्याणकारक (अस्तु) हो ।

अब्जामुकथैरहि गृणीषे वुभ्ने नदीनां रजःसु पीदन् ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार (बुझे) अन्तरिक्ष में (अब्जाम्) जलों के उत्पादक (अहिम्) सूर्य को कहा जाता है वही सूर्य (नदीनां रजःसु सीदन्) नदी के जलों या कण २ में भी विराजता है । उसी प्रकार मैं (उक्थैः) उत्तम वचनों से (अब्जाम्) आस जनों के बीच प्रसिद्ध, (अहिम्) शशुओं के नाशक पुरुष के (बुझे) प्रजा के ऊपर आकाश-वत् सर्वप्रबन्धक पद पर (गृणीषे) प्रस्तुत करूँ । वह (नदीनां) समृद्ध प्रजाओं के बीच (रजःसु) ऐश्वर्ययुक्त लोगों और वैभवों में (सी-दन्) विराजें ।

मा नोऽहिर्वुध्न्यो रिषे धान्मा युज्हो अस्य चिधवत्तायोः ॥ १७ ॥

भा०—(बुध्न्यः अहिः) आकाशस्थ मेघ के समान (बुध्न्यः) उदार, बुध विद्वान् पुरुषों द्वारा सन्मार्ग पर सञ्चालित, वा आकाश में स्थित, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (नः) हमें (रिषे) हिंसा पीड़ा के लिये वा हिंसक लाभ के लिये (मा धात्) न रख छोड़े । (अस्य ऋतायोः) इस सत्य व्यवहार, अज्ञ और धनाभिलापी राजा का (यज्ञः) दान, संगति, आदि (मा चिधत्) नष्ट न हो ।

उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र गुये यन्तु शर्धीन्तो अर्यः ॥ १८ ॥

भा०—विद्वान् लोग, (नः) हमारे (एषु नृषु) इन नेता पुरुषों में (श्रवः) यशा, बल, अज्ञ आदि (धुः) धारण करावें । और वे लोग (शर्धनाः) उत्साह करते हुए (राये) धन प्राप्त करने के लिये (अर्यः = अरीन्) शत्रुओं को लक्ष्य कर, उन पर (प्र यन्तु) चढ़ाई करें ।

तपन्ति शत्रुं स्वर्णं भूमा॒ महासेनासो अमै॒भिरेषाम् ॥ १९ ॥

भा०—(एषाम्) इन उत्तम नायकों के (अमैः) सहायक सैन्य बलों से युक्त होकर (महा॑सेनासः) बड़ी सेनाओं के स्वामी लोग (भूमा॒ स्वः न) भुवनों को सूर्य के समान प्रचण्ड होकर (शत्रुं तपन्ति) शत्रु को तपावें । अथवा इनके बलों से राजा लोग शत्रुओं को तपावें, हम भी बड़ी सेना के स्वामी हों ।

आ यज्ञः पत्नीर्गमन्त्यच्छ्रुा त्वष्टा॑ सुपाणिर्दधातु॒ वीरान् २०।२६॥

भा०—(यज्) जब (पत्नीः) खियें (नः) हमें (अच्छ आ गमन्ति) भली प्रकार प्राप्त हों तब (त्वष्टा) तेजस्वी राजा (सु-पाणिः) उत्तम व्यवहारज्ञ होकर (वीरान्) वीर पुरुषों तथा हमारे पुत्रों की भी (दधातु) रक्षा करे । उनको राष्ट्र-रक्षा पर नियुक्त करे । इति षड्विशो चर्गः ॥ प्रति नः स्तोमं त्वष्टा॑ जुषेत् स्यादस्मै अरमतिर्वसूयुः ॥ २१ ॥

भा०—(अरमतिः) अति बुद्धिमान् (वसूयुः) प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी, (त्वष्टा) तेजस्वी राजा (नः) हमारे (स्तोमं) स्तुति वचन, और स्तुत्य कार्य के (प्रति) प्रति (जुषेत) प्रेम करे और वह (अस्मे स्यात्) हमारे हितार्थ प्रीतिमान् हो ।

ता॑ नो॒ रासत्रातिपाच्चो॒ वसून्या॑ रोदसी॑ वरुणानी॑ शृणोतु॒ ।

वरुत्रीभिः॑ सुशरुणो॑ नो॑ अस्तु॑ त्वष्टा॑ सुदत्तो॑ वि॑ दधातु॑ रायः॑ २२

भा०—(राति पाचः) दानयोग्य वृत्ति या भृति को लक्ष्य कर, वा उसके द्वारा सहस्रों जनों को अपने साथ बांधने वाले धनाव्य राजा लोग (नः) हमें (ता) वे नाना प्रकार के (वसूनि) ऐश्वर्य (रासन्)

प्रदान करें । (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाली न्यायसभा तथा पुलिस, और (वरुणानी) स्वयं वृत् श्रेष्ठ राजा की पालक शासन सभा भी (नः आ शृणोतु) हमारी सब बातें सुने । (त्वष्टा) तेजस्वी पुरुष (वरुणीभिः) उत्तम, दुःखवारक सेनाओं और नीतियों से (नः) हमारा (सु-शरणः) उत्तम शरण (अस्तु) हो । वह (सु-दत्रः) उत्तम दानशील पुरुष (रायः वि दधातु) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे ।

तन्नो रायः पर्वैत्तास्तन्न आपस्तद्रातिषाच्च ओषधीरुत द्यौः ।

वनस्पतिभिः पृथिवी सुजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥२३॥

भा०—(तत् रायः) वे नाना ऐश्वर्य (नः) हमारी रक्षा करें (पर्वताः) पर्वत, मेघ और पालनकारी साधनों से सम्पन्न जन हमारी रक्षा करें । (ततः आपः) वे जल, प्राणगण और आसजन और (तत् रातिषाच्चः) वे भूति या दान ग्रहण करने वाले और (ओषधीः उत् द्यौः) ओषधियां और सूर्य, (वनस्पतिभिः सजोषा: पृथिवी) वनस्पतियों से युक्त पृथिवी, और (उभे रोदसी) दोनों आकाश और भूमि ये सब (नः परि पासतः) हमारी रक्षा करें ।

अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षा वरुण इन्द्रसखा ।

अनु विश्वे मुरुतो ये सुहासो रायः स्याम धुरुण धियध्यै ॥२४॥

भा०—(तत् उर्वी रोदसी) वे दोनों विशाल दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति, सेनानायक और सूर्य और भूमि के समान स्त्री पुरुष भी (अनु जिहातम्) एक दूसरे के अनुकूल होकर प्राप्त हों । (द्यु-क्षाः) प्रकाशों का धारक सूर्यवत् तेजस्वी, और (इन्द्र-सखा) ऐश्वर्यवान् का मित्र (वरुणः) दुष्टवारक, सर्वश्रेष्ठ राजा (अनु) अनुकूल रहे । (ये सहासः मरुतः) जो शत्रुविजयी, तपस्वी, वीर विद्वान् पुरुष हैं वे (विश्वे) सब भी (अनु) अनुकूल हों । हम लोग (रायः धियध्यै) ऐश्वर्य को धारण करने के लिये (धरुण) सुरक्षित पात्रवत् (स्याम) हों ।

तश्च इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप् ओषधीर्विनिनो जुषन्त ।

शर्मन्तस्याम् मरुतामुपस्थे युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २५।२७

भा०—(विनिः) किरणों और भौग्य ऐश्वर्यों के स्वामी तेजस्वी, सम्पन्न (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (वरुणः) प्रजा का वृत राजा, (मित्रः) स्नेही, (अग्निः) विद्वान् और अग्नि, (आपः) जल और आपजन, (ओषधीः) वन की ओषधियें ये सब (नः) हमें (तत्) वह अलौकिक सुख (जुषन्त) प्राप्त करावें, जिससे हम लोग (मरुताम् उपस्थे) विद्वान् के समीप (शर्मन् स्याम) सुख में रहें। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[३५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५, ११, १२
त्रिष्टुप् । ६, ८, १०, १५ निच्यत्रिष्टुप् । ७, ६ विराट्त्रिष्टुप् । १३, १४
मुरिकूपंक्तिः ॥ पञ्चदशाच्च सूक्तम् ॥

शं न इन्द्राश्च भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।

शमिन्द्रासोमा सुविताषु शं योः शं न इन्द्रापुष्णा वाजसातौ॥१॥

भा०—(वाजसातौ) ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर (इन्द्राश्च) विद्युत् और अग्नि (अवोभिः) अन्नों और रक्षा साधनों द्वारा (नः शं भवताम्) हमें शान्तिदायक हों। इन्द्र राजा, और ऐश्वर्यवान् अग्निवत् तेजस्वी दोनों वर्ग तृसिदायक अन्न, रक्षासाधन, सैन्य, और ज्ञानों से हमें सुख शान्तिदायक हों। (रात-हव्या) ग्रहण करने और देने योग्य जल अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने वाले (इन्द्रा वरुणा) विद्युत् और बल, तथा सेनापति और राजा दोनों (नः शं) हमें शान्तिदायक हों। (इन्द्रासोमा शम्) इन्द्र आचार्य, सोम शिष्य गण, और विद्युत् औषधिगण, (शम्)

हमें शान्तिदायक हों। वे दोनों ही (सुविताय) सुखमय जीवन और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये भी शान्तिदायक और दुःख दूर करने वाले हों। (इन्द्रा-पूरणा) विद्युत् और वायु दोनों भी (नः शं) हमें शान्तिदायक हों। शं नो भगः शमु उः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शं नः सुत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

भा०—(भगः नः शम्) ऐश्वर्य हमें सुखकारी हो। (शंसः नः शम् उ) उपदेश, अनुशासन, स्तुति, और उपदेशा जन हमें अवश्य शान्ति सुख दें। (पुरन्धिः) बहुत से पदार्थों का धारक आकाश, देहधारक बृद्धि, पुरधारक, राजा, आदि (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (रायः शम् उ सन्तु) ऐश्वर्य, नाना धन हमें शान्ति दें। (सु-यमस्य) उत्तम नियन्ता, शासक, और (सत्यस्य शंसः) सत्य का उपदेशा (नः शम्) हमें सुखकर हो। (पुरुजातः) बहुतों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः शं अस्तु) हमें शान्ति सुख का देने वाला हो।

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरुची भवतु स्वधामिः ।
शं रोदसी वृहती शं नो अट्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु॥३॥

भा०—(धाता नः शम्) पोषक वर्ग हमें शान्ति दे। (धर्ता नः शम् उ) धारण करने वाला, हमें सुख शान्ति दे। (उरुची) बहुत से पदार्थ प्राप्त करने वाली भूमि, (नः) हमें (स्वधामिः) अज्ञों और जलों से (शंभवतु) शान्तिदायक हो। (वृहती रोदसी शं) बड़े, वृद्धिशील, सूर्य और अन्तरिक्ष दोनों (शं) शान्तिदायक हों। (अद्रिः नः शम्) मेघ और पर्वत हमें शान्ति दें। (देवानां) देव, चिद्रानों के (सु-हवानि) सम्बोधन करके किये गये उत्तम २ उपदेश वा उत्तम वचन भी (नः शंसन्तु) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शं ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥

भा०—(ज्योतिः अनीकः) तेज को सैन्य के समान धारण करने वाला (अग्निः) आग और उसके समान तेजस्वी सैन्य वा सुख वाला राजा और विद्वान् पुरुष (नः शम्) हमें सुखकारी हो । (मित्रा वरुणौ नः शं) प्राण और उदान तथा एक दूसरे के स्नेही और एक दूसरे का वरण करनेवाले (अश्विना) रथी सारथी के समान उत्तम अश्वों के समान इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय, स्त्री पुरुष (नः शं) हमें शान्तिदायक हों (सुकृतां) पुण्यात्माओं के (सुकृतानि) पुण्य कर्म (नः शं) हमें शान्ति दें । (इधिरः वातः) सदा गमनशील वायु और सर्वप्रेरक वायुवत् बलवान् पुरुष (नः शं अभि वातु) हमें शान्तिदायक होकर सब ओर बहे ।

शं नो द्यावा॑पृथिवी॒ पूर्व॑हूतौ॒ शमन्तर॑त्कं॒ दृशये॑ नो अस्तु ।
शं नु॒ ओषधी॑र्वनिनो॒ भवन्तु॒ शं नो॒ रजस॑स्पतिरस्तु॒ जिष्णुः॒ ५।२८

भा०—(पूर्वहूतौ) पूर्व के विद्वानों के उत्तम सुति या प्रशंसा के योग्य कार्य में संलग्न (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि वा विद्युत् और भूमिवत् स्त्री पुरुष दोनों (नः शं) हमें शान्तिदायक हों । (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (नः) हमें (दृशये) उत्तम रीति से देखने के लिये (शम अस्तु) शान्तिदायक हो, (वनिनः ओषधीः) वनकी ओषधियें (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों । (रजसः पतिः) समस्त लोकों का पालक (जिष्णुः) विजयशील पुरुष भी (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो । इत्यष्टाविंशो वर्गः॥
शं नु॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्देवो॒ अ॒स्तु॒ शमा॑दित्येभिर्वरुणः॒ सु॑शंसः॒ ।

शं नो॒ रुद्रो॒ रुद्रेभिर्जलापः॒ शं नु॒स्त्वष्टा॒ ग्राम॑भिर्हृ॒ शृणोतु ॥ ६ ॥

भा०—(वसुभिः) प्राणियों को बसने के स्थान रूप पृथिवी आदि उपग्रह, ग्रहों सहित (देवः) तेजस्वी सर्वप्रकाशक (इन्द्रः) अन्धकारनाशक मेघोत्पादक जलदायक सूर्य और प्रजाजनों सहित राजा, ब्रह्मचारियों सहित आचार्य (नः शं) हमें शान्ति सुख दे । (आदित्येभिः) वर्ष के

मासों सहित (वर्णः) जल संघ, समुद्रादि और आदित्यसम तेजस्वी पुरुषों सहित (वर्णः) श्रेष्ठ राजा (सु-शंसः) उत्तम शासक, आज्ञापक और स्तुत्य होकर (शम्) सबको सुखकारी हो । (रुद्रेभिः) प्राणों सहित (रुदः) जीव, दुष्टों के रुलाने वाले सैन्यों सहित सेनापति (जलाषः) सन्ताप का नाशक जलवत् सुखों का दाता होकर (नः शम्) हमें शान्ति दे । (ग्रामिः त्वष्टा) वाणियों सहित विद्वान् और उत्तम गृहपतियों सहित गृहस्थी जन भी (नः) हमारे (शं) शान्तिदायक (शृणोतु) वचन श्रवण करें ।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं ज्ञो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरुणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

भा०—(सोमः) चन्द्र, पुत्र, शिष्य, प्रजाजन और ओषधि वर्ग (नः शं भवतु) हमें शान्तिदायक हो । (ब्रह्म) वेद, धन, ज्ञान, बल, अज्ञ, (नः शं) हमें शान्तिजनक हो । (ग्रावाणः) मेघगण, उदार विद्वान्, उपदेष्टा जन (नः शं) हमें शान्तिदायक हों । (यज्ञः शम् उ सन्तु) यज्ञ, देवपूजन, विद्वत्सत्कार, सत्संग हमें शान्तिदायक हों । (स्वरुणां मितयः) अर्थप्रकाशक शब्दों के ज्ञान वा छन्द (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों । (प्रस्वः) उत्पन्न होने वाली ओषधियां, उत्तम सन्तानजनक स्त्रियां (नः शं) हमें शान्तिदायक हों (वेदिः शम् उ अस्तु) वेदि, यज्ञ-कुण्डादि, भूमि, छी, आदि हमें शान्तिदायक हों ।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चत्वः प्रदिशो भवन्तु ।

शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

भा०—(उरुचक्षाः) बहुत से सम्यग् ज्ञान दर्शनों का कर्त्ता तेजस्वी (सूर्यः) सूर्यवत् सर्वप्रकाशक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शं उदेतु) शान्तिदायक होकर उदय को प्राप्त हो । (चतसः प्रदिशः) चारों दिशाएं (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों । (ध्रुवयः पर्वताः)

ध्रुव स्थिर पर्वत (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों । (सिन्धवः नः शम्) नदियों के जलप्रवाह हमें सुखकारी हों । और (आपः शम् उ सन्तु) जल हमें सुखकारी हों ।

शं नौ अदितिर्भवतु ब्रतेभिः शं नौ भवन्तु स्मृतः स्वर्काः ।

शं नौ विष्णुः शम् पूषा नौ अस्तु शं नौ भवित्रं शम्वस्तु व्रायुः ॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड ब्रत पालन करने वाले ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी और माता पिता, पुत्रादि (ब्रतेभिः) सत्कर्मों से (नः शम्) हमें सुख शान्तिदायक हों । (स्वर्काः मरुतः) उत्तम विचारवान् विद्वान् पुरुष प्राणवत् प्रिय होकर (नः) हमें (शं भवन्तु) शान्तिदायक हों । (विष्णुः नः शम्) व्यापक परमेश्वर हमें शान्ति दे । (पूषा नः शम् उ अस्तु) पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार, सर्वपोषक प्रभु वा राजा भी हमें सुखकारी हो । (भवित्रं नः शम्) भवितव्य जो आगे होने को है वह भी हमें सुख दे । (व्रायुः शम् उ अस्तु) व्रायु हमें शान्तिदायक हो ।

शं नौ देवः सेविता त्रायमाणः शं नौ भवन्तुपसो विभातीः ।

शं नः पञ्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः १०।२९.

भा०—(त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (सविता) सबका प्रेरक, सबका उत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् (देवः) सब सुखों का देने वाला प्रभु (नः शं) हमें शान्ति दे । (विभातीः) विशेष कान्ति से चमकती हुई (उषसः) प्रभात वेलाएँ (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों । (पञ्जन्यः) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ राजा और प्रजाओं को तृप्त करने वाला, एवं जलों का दाता मेघ (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शं भवतु) शान्ति सुख का दाता हो । (क्षेत्रस्य पतिः) निवास करने योग्य क्षेत्र, देश और देह का पालन करने वाला राजा वा प्रभु परमेश्वर (शंभुः) सदा शान्ति शुख का देने वाला (नः शम्) हमें शान्ति देवे । हृत्येकोनविशो वर्गः ॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सुह धीभिरस्तु ।

शमभिषाचः शम् रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥१

भा०—(विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (देवाः) ज्ञान, ऐश्वर्य के देने वाले होकर (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों । (सरस्वती) विद्या, सुशिक्षायुक्त वाणी, उत्तम २ (धीभिः) प्रज्ञाओं (सह) सहित (शं अस्तु) हमें शान्तिदायक हो । (अभिषाचः शम्) आभ्यन्तर से सम्बन्ध रखने वाले हमें शान्ति दें । (रातिषाचः शम् उ) बाह्य पदार्थों के लेने से सम्बन्ध रखने वाले जन भी हमें शान्ति दें । (दिव्यः) दिव्य (पार्थिवाः) और पृथिवीस्थ पदार्थ (नः शम्) हमें सुख दें । और (अप्याः) जल में उत्पन्न, मुक्ता और नौका आदि पदार्थ (नः शं) हमें सुख दें ।

शं नः सत्यस्थ पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शम् सन्तु गावः ।

शं नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

भा०—(सत्यस्थ पतयः नः शम् भवन्तु) सत्य व्यवहार, सत्य धर्म के पालक हमें शान्ति दें । (अर्वन्तः) अश्व (नः शं) हमें सुख दें । (गावः शम् उ सन्तु) गौणुं हमें शान्तिदायक हों । (सुकृतः) उत्तम कार्य करने वाले धर्मात्मा (सुहस्ताः) कार्य, शिल्पादि साधने में सिद्धहस्त, प्रशस्त (ऋभवः) शिल्पी और तेजस्वी, सत्यज्ञानी पुरुष (नः शं) हमें सुख दें । (हवेषु) यज्ञों और संग्रामों के अवसरों में (पितरः) माता पिता, पालक आचार्य, राजादि जन (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों ।

शं नो अज एकपादेवो अस्तु शं नोऽहिर्वृद्ध्यः शं समुद्रः ।

शं नो अपां नपात्पेहरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥ १३ ॥

भा०—(एकपाद) सब जगत् को एक पाद या चरण में धारण करने वाला, (अजः) कभी उत्पन्न न होने वाला, नित्य (देवः) सर्व सुखदाता, सर्वप्रकाशक प्रभु (नः शम् अस्तु) हमें शान्ति सुख दे ।

(अहिः बुद्ध्यः नः शम्) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ हमें शान्ति दे। (समुद्रः शम्) सागर और आकाश हमें शान्ति दे। (अपां) जलों के बीच में (नपात्) चरण रहित नौका (पेरुः) पार उतारने वाला होकर (नः शं) हमें शार्नितिदायक हो। (देव-गोपाः) इन्द्रियों, शुभ गुणों और मनुष्यों का रक्षक (पृथिवीः) आकाशवत् महान् सबको सुखों का वर्षक ज्ञानी (नः) हमें शान्ति दे।

आ दित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः।

शृणवन्तु नो दिव्याः पार्थिवासु गोजाता उत ये युजियासः ॥१४॥

भा०—(आदित्याः) ४८ वर्ष तक के ब्रह्मचारी (रुद्राः) ४४ वर्ष तक के ब्रह्मचर्यवान् और (वसवः) २४ वर्ष तक के ब्रह्मचारी (इदं) इस (नवीयः) उत्तम (क्रियमाणं ब्रह्म) उपदेश किये जाते, धन अन्न और ज्ञान को (जुषन्त) प्रेम से स्वीकार करें। (दिव्याः) उत्तम कम-नीय गुणादि में प्रसिद्ध (पार्थिवासः) पृथिवी में प्रसिद्ध (गो-जाताः) वाणी से सुशिक्षित, विद्वान् तेजस्वी जन (उत) और (ये) जो (यज्ञियासः) यज्ञकर्ता, सेवा सत्संगादि योग्य पुरुष हैं वे सब (नः शृणवन्तु) हमारे वचन श्रवण किया करें। हमारे प्रश्न सुन समाधान करें।

ये देवानां यज्ञियां यज्ञियानां मनोर्यजंत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमृद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५।३०।३॥

भा०—(ये) जो (यज्ञियानां देवानां) यज्ञ करने हारे, उत्तम विद्वानों में भी (यज्ञियाः) दान, मान सत्कार करने योग्य हैं। (मनोः) जो मननशील विद्वान् का (यजत्राः) सत्संग करने वाले (अमृताः) दीर्घायु, जीवन युक्त (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने वाले हैं (ते) वे (नः अद्य) आज (उरुगायम्) बहुत से उपदिष्ट, और कीर्तित ज्ञान का (रासन्ताम्) उपदेश करें। हे विद्वान् जनो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा-

पात) तुम लोग हमें सदा कल्याणकारी उपायों से सुरक्षित करो । इति
त्रिशो वर्गः ॥ इति सृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥



अथ चतुर्थोऽध्यायः

[३६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—२ त्रिष्टुप् । ३, ४, ६ निचृत-
त्रिष्टुप् । ८, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः । १, ७ मुरिक् पंक्तिः ॥

प्र ब्रह्मैतु सदनाहृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।

वि सानुना पृथिवी संच ऊर्वा पृथु प्रतीकुमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य सदनात्) सत्य ज्ञान प्राप्त करने के स्थान, गुरु गृह
से हमें (वह प्र पतु) उत्तम वेदज्ञान प्राप्त हो । (सूर्यः) सूर्य अपनी
(रश्मिभिः) रश्मियों से (गाः) भूमियों को (वि ससृजे) विशेष
गुण से युक्त बनावे । (पृथिवी) पृथिवी, (ऊर्वा) विशाल होकर भी
(सानुना) उन्नत प्रदेश से (वि संखे) विशेष जानी जाती है । (अग्निः)
अग्नि भी (पृथु) बहुत अधिक विस्तृत (प्रतीकं) प्रतीति कराने वाला
प्रकाश (अग्नि पृथे) चमकाता है उसी प्रकार सूर्यवत् विद्वान् वाणियां
प्रकट करे, माता अपने उत्पन्न पुत्र से विशेष ख्याति लाभ करे, अग्निवत्
विद्वान् सबको प्रतीति कराने वाला ज्ञान प्रकाशित करे ।

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषु न कुरवे असुरा नवीयः ।

इनो वामन्यः पद्मवीरदद्वधो जनै च मित्रो यंतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) मित्र वरुण, ज्ञेह युक्त और दुःखवारक
शरीर में प्राण उदान और गृह में माता पितावत् सभा सेनाध्यक्ष जनो !
हे (असुरा) बलवान् जनो ! मैं (वां) आप दोनों की (नवीयः) अति
नवीन, स्तुत्य (सुवृक्तिम्) दुःख अज्ञान के निवारक (इष्म्) इच्छा-

वा अन्न को करुं । (वाम्) आप दोनों में से (अन्यः) एक तो (इनः) स्वामी (पदवीः) पद को प्राप्त (अदवधः) अविनाशी है । (मित्रः) सर्वस्त्रेही (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ (जनं च यतति) प्रत्येक जन को उद्यम कराता है । इसी प्रकार मित्र परमेश्वर है और वसुण जीव है । परमेश्वर जगत् का स्वामी, परम पद रूप से ज्ञानी, अविनाशी, सर्वोपदेशा है । दूसरा जीव भी प्राणों का स्वामी होने से 'इन्', ज्ञान प्राप्त करने से पदवी, प्रत्येक जन्तु को सञ्चालित करता है ।

आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिकदद्वपुभः सस्मिन्नूधन् ॥ ३ ॥

भा०—(वृषभः) श्रेष्ठ बलवान् पुरुष (सस्मिन्) अन्तरिक्ष में मेघ के समान (ऊधन्) उघाकाल में सूर्य के समान तेजस्वी होकर (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (महः दिवः) बड़े भारी प्रकाश, ज्ञान या लोक व्यवहार के (सदने) स्थान, राजसभा, लोकसभा और गुरु-गृह में (अचिकदत्) प्राप्त हो, अन्यों को उपदेश करे । (वातस्य ध्रजतः इत्याः सूदाः न रन्ते) वेग से जाते हुए वायु की गतियों में जिस प्रकार वर्षा-शील मेघ विहरते हैं उसी प्रकार (वातस्य) वायु के समान बलवान् (ध्रजतः) वेग से जाते हुए उस सेनापति के (इत्याः) गमनों को प्राप्त (सूदाः) उत्तम करप्रद प्रजाएं (धेनवः) गौओं के समान (रन्ते) सुखी होती हैं और (अपीययन्त) आप बढ़तीं और राजा को भी समृद्ध करती हैं ।

गिरा य एता युनज्जरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्रयो मन्यु रिरिक्तो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणे ववृत्याम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! हे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरे (एता) इन दोनों (धायू) धारक पोषक (सुरथा) उत्तम रथ वाले (प्रिया) प्रिय (हरी) अश्वों के समान बलवान् मुख्य नायक

वा और पुरुषों को (गिरा) वेद वाणी से (युनजत्) सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है और (एः) जो (रिथतः) हिंसक जनों को (प्र मिनाति) दण्डित करता है उस (मन्युम्) मननशील (सु-क्रतुम्) उत्तम ज्ञानवान् कर्मवान् (अर्थमाणं) न्यायकारी, शत्रुनियामक पुरुष को मैं (आ वृत्त्याम्) प्राप्त करूँ । अध्यात्म में—हे इन्द्र ! आत्मन् ! प्रभो ! जां योगी तेरे प्रति देह में स्थित, प्राण अपान रूप धोड़ों को योगद्वारा युक्त करता है जो मारने वाले के प्रति भी अपने मन्यु, क्रोध को मारता है अकोधी, शमावान् रहता है उस उत्तमकर्मा काम क्रोधादि, अन्तःशत्रु के विजयी को मैं प्राप्त करूँ ।

यज्जन्ते अस्य सुख्यं वयश्च नमस्त्विनः स्व ऋूतस्य धामन् ।
विपृक्षो वावधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्टम् ॥५॥१॥

भा०—(ऋतस्य धामन्) सत्य या न्याय के भवन में (स्वे) उसके अपने जन (नमस्त्विनः) नमस्कार युक्त, अति विनीत होकर (अस्य) इस रुद्र के (सख्यं) मित्रभाव और (वयः च) जीवन वृत्ति को भी (यज्जन्ते) प्राप्त करते हैं वह (नृभिः स्तवानः) मनुष्यों से स्तुति किया जाता हुआ (पृक्षः) अक्षादि की (विवावधे) विविध प्रकार से व्यवस्था करता है । (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले उस महापुरुष को (इदं) उस प्रकार (प्रेष्ट) अतिप्रिय, अतिश्रेष्ठ (नमः) अधिकार वा शक्ति प्राप्त हो । इति प्रथमो वर्गः ॥

आ यत्साकं युशसो वावश्वानाः सरस्वती सुस्थी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुधाः सुधारा अभि स्वेन पर्यसा पीप्यानाः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (स्वेन पर्यसा पीप्यानाः) अपने जल से परिपूर्ण होकर (सु-धाराः) उत्तम जलधाराएँ (सु-स्वयन्त) खूब वेग से गमन करती हैं और उनमें (सरस्वती) अति वेग से चलने वाली (सुस्थी) आगे बढ़ने वाली (सिन्धु-माता) प्रवाह से बहते जलों को अपने भीतर

लेने वाली सबकी माता के समान होती है । वे सब (साकं वावशानाः) एक साथ मिलकर गर्जती हुई जाती हैं उसी प्रकार (सरस्ती) वाणी, (सप्तथी) छः मन सहित ज्ञानेन्द्रियोंके बीच सातवीं (सिन्धुमाता) प्राणमय स्त्रोतों की माता के समान है । और शेष सब भी मिलकर (सु-दुधाः) उत्तम ज्ञान से आत्मा को पूर्ण करने वाली (सु-धाराः) उत्तम धारणा वा उत्तम वाणी से युक्त होकर (स्वेन पयसा) अपने ज्ञान से आत्मा को (पीप्यानाः) पुष्ट करती हुई (सुस्वयन्त) सुखपूर्वक कार्य करती हैं । वे (यशसः) बलयुक्त आत्मा के अधीन (साकं) एक साथ ही (वावशानाः) विषयों की कामना करती हुई (आ) प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (सु-धाराः) उत्तम वाणी से युक्त विदुषी ख्यियें भी (स्वेन पयसा) अपने बल से बढ़ती हुई सन्मार्ग से जावें । (यशसः) बलवीर्य को चाहती हुई एक साथ मिलकर उद्योग करें । उनमें प्रशस्त ज्ञान वाली माता के समान वर्त्ते ।

उत त्ये नो मूरुती मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्युदक्षरा चरन्त्यवीवृध्यन्युज्यं ते रुद्यिः नः ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (त्ये मरुतः) वे विद्वान् (वाजिनः) ज्ञान और बल ऐश्वर्य से सम्पन्न मनुष्य (मन्दसानाः) अति प्रसन्न रहते हुए (नः) हमारे (धियं तोकं च) बुद्धियों, कर्मों और सन्तानों की भी (अवन्तु) रक्षा करें । (ते) वे (नः) हमारे (अक्षरा) न नाश होने वाली वाणी (चरन्ती) प्राप्त होती हुई (मा नः) हमें न (परि ख्यत) त्याग दे । प्र वौ महीमर्मतिं कृणुध्वं प्र पूषणौ विदृथ्यं न वीरम् ।

भर्गं ध्रियोऽवितारं नो श्रस्याः स्रातौ वार्जं रातिषाचं पुरान्धिम् ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (वः) अपनी (महीम्) पूज्य वाणी को (अरमतिं) अति अधिक बुद्धि को (प्र कृणुध्वम्) खूब बढ़ाओ । और (विदृथ्यं) संग्राम में कुशल (वीरं न) वीर पुरुष के समान

(पूर्णं) पोषक पुरुष को (प्र कृणुध्वम्) मान सत्कार से बढ़ाओ । (भगं) ऐश्वर्यवान् पुरुष की और (धियः) ज्ञान और कर्म के (अवित्तारं) रक्षा करने वाले की (प्र कृणुध्वम्) प्रतिष्ठा करो । (अस्याः सातौ) इस वाणी को प्राप्त करने के लिये वा इसके प्राप्त होजाने पर (वाजम्) ज्ञान, (राति-पात्रं) परस्पर दान-प्रतिदान से सम्बद्ध (पुरन्धिम्) नाना ज्ञानों के धारक विद्वान् का भी (प्र कृणुध्वम्) आदर करो ।

अच्छ्रुयां वो मरुतः श्लोकं एत्वच्छ्रुा विष्णुं निषिक्षपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो ! (अथं) यह (नः) आप लोगों की (श्लोकः) उत्तम शिक्षा और वाणी (अवोभिः) रक्षा साधनों, सैन्यादि से (निषिक्ष-पाम्) अभिविक्ष माण्डलिकों तथा निषिक्ष गभौं के पालन करने वाले दयालु (विष्णुम्) सर्वव्यापक शक्तिमान् को लक्ष्य करके (अच्छ एतु) उसे प्राप्त हो । और यह स्तुति उनको भी (अच्छ-एतु) प्राप्त हो जो (प्रजायै गृणते) प्रजाको उपदेश दें और (वयः धुः) जो लोग बल और दीर्घ जीवन धारण करते हैं । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूथं) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा किया करें । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २, ७ निचृत-
त्रिष्टुप् । ५, ८ विराट्त्रिष्टुप् । ४ निचृतपंक्तिः । ६ स्वराट्पंक्तिः ॥

अष्टचं सूक्तम् ॥

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृकः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सर्वनेपु सोमैर्मदै सुशिप्रा मुहाभिः पृणध्वम् ॥१॥

भा०—हे (वाजाः) विज्ञान-ऐश्वर्य और बलशाली जनो ! हे (ऋभु-
क्षणः) महान् तेज, प्रकाश से चमकने वाले सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषो ! (वः)

तुम लोगों को (रथः) अति रमणीय, रसस्वरूप (अमृकः) अविनाशी (वाहिषः) रथ के समान सबको उद्देश्य तक उठाकर पहुंचा देने में सर्वश्रेष्ठ ही (आ वहतु) सब प्रकार से आप लोगों को धारण करे वही (स्तवध्यै) स्तुति योग्य है । हे (सु-शिप्राः) सौम्य मुखों वाले जनो ! (सवनेषु) उत्तम यज्ञादि कर्मों के अवसरों में आप लोग (महभिः) बड़े महत्व युक्त (ग्रिष्टष्टः सेमैः) तीन २ रूपों वाले ऐश्वर्यों, अन्नों और ज्ञानों से (मदे) आनन्द में (अभि पृणध्वम्) सबको पूर्ण करो । युयं हृ रत्नं मध्यवत्सु धत्थ स्वर्द्धशो ऋभुक्तणो अमृकम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मृतिभिर्दयध्वम् २

भा०—हे (स्वर्द्धशः) सुख, आनन्द का साक्षात् करने वाले (ऋभु-श्नः) सत्य प्रकाश से चमकने वाले विद्वानो ! (युयं) आप ल्यैंग (मध्यवत्सु) उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुषों में (अमृकं) कभी नाश न होने योग्य (रत्नम्) अति सुन्दर विद्यामय धन (ह) अवश्य (धत्थ) धारण कराया करो । आप लोग (स्वधावन्तः) उत्तम अन् के स्वामी होकर (यज्ञेषु) यज्ञों में (सं पिबध्वम्) सब मिलकर उत्तम रसका पान करो । और (मृतिभिः) उत्तम ज्ञानों से (नः) हमारे (राधांसि) नाना धनों को (वि दयध्वम्) विशेष रूप से रक्षित करें और दें ।

उवोचिथ हि मध्यवन्देष्यं महो अभीस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनूता नि यमते वसुव्या ॥३॥

भा०—हे (मध्यवन्) ऐश्वर्यवन् ! (महः) बड़े, बहुत, और (अभीस्य) थोड़े से भी (वसुनः) धन के (विभागे) विभाग करने में तू (देख) देने योग्य वा उपदेश करने योग्य ज्ञान का (उवोचिथ हि) अवश्य उपदेश कर ! (वसुना पूर्णा ते गभस्ती) धन से भरे पूरे तेरे बाहुओं को (वसव्या) धन को उचित विभाग करने का उपदेश करने बाली (सूनूता) उत्तम न्याययुक्त वाणी (न नियमते) दान करने से

नहीं रोकती । वह वाणी तो स्वल्प और अधिक धन देने और विभक्त करने के लिये उत्तम पात्रापात्र के विवेक वा उपदेश करती है ।

त्वमिन्दु स्वयंशा ऋभुक्षा वाज्ञो न साधुरस्तमेष्यूक्वा ।

व्यं तु ते दाश्वांसः स्याम् ग्रह्यं कृणवन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (व्यम्) तू (क्षमुक्षाः) सत्य ज्ञान से दीसियुक्त पुरुषों को राष्ट्र में बसाने हारा, स्वयं न्यायपूर्वक धन का उपभोग करने वाला (वाजः न) ज्ञानवान्, वलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष के समान (साधुः) सत्कर्मनिष्ठ, साधक, (ऋक्वा) वेद मन्त्रों का ज्ञाता, उत्तम जनों का सत्कार करने हारा होकर (अस्तम् एषि) गृह को प्राप्त होता है । हे (हरिवः) जितेन्द्रिय, हे मनुष्यों के स्वामिन् ! (व्यम्) हम लोग (तु) शीघ्र ही (व्रह्य दाश्वांसः) ज्ञान, अज्ञ, धन के देने वाले जन (ते) तेरे लिये (कृणवन्तः) सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी (स्याम) हों ।

सनितासि प्रवतो दाशुर्ये चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।

ववन्मा तु ते युज्याभिरुती कृदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ५।३॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगवान्, हरणशील अश्वों वाले ! एवं हे उत्तम मनुष्यों के स्वामिन् ! (येभिः) जिन (धीभिः) ज्ञानयुक्त बुद्धियों, कर्मों से (विवेषः) सर्वत्र व्याप्त रहता है तू उनसे ही (दाशुर्ये) दानशील पुरुष को (प्रवतः) उत्तम गुण युक्त (रायः) ऐश्वर्य (सनितासि) प्रदान करने हारा है । (ते) तेरी (युज्याभिः) नियुक्त, आज्ञाकारी (ऊती) सेनाओं तथा (उत्ती) रक्षण नीति से प्रभावित होकर (ते तु ववन्म) तेरी याचना करते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (रायः) वे नाना ऐश्वर्य (कृदा दशस्येः) कब दान करेगा ? । इति तृतीयो वर्गः ॥

वासयसीव वेधसुस्तवं नः कुदा न इन्द्रु वचसो वुवोधः ।
अस्तं तात्या धिया रुर्यि सुवीरं पृक्षो ज्ञो अर्वा न्युहीते वाजी ६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू(नः) हम (वेधसः) विद्वान् पुरुषों को (वासयसि इव) अपने राष्ट्र में बसास्ता रहा है । तू(नः) हमारे (वचसः) वचनों को (कदा) कब (बुवोधः) समझेगा ? (वाजी अर्वा) वेगवान् अश्व के समान समर्थ बलवान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष (तात्या धिया) व्यापक परमेश्वर में निष्ठ बुद्धि और त्याग युक्त कर्म से प्रेरित होकर (नः अस्तं) हमारे घर में कब (सुवीरं-र्यि) उत्तम पुत्रों और बीरों से युक्त धन और (पृक्षः) शान्तिदायक, अज्ञ को (नि उहीत) प्राप्त करावे ।

अभि यं देवी नित्रैतिश्चुदीशो नक्षन्तु इन्द्रै शरदः सुपृक्षः ।
उप॑ त्रिवन्धुर्जरद॑ष्टेष्मुत्यस्ववेशं यं कृणवन्तु मर्ताः ॥ ७ ॥

भा०—(देवी) उत्तम स्त्री (चित्) जिस प्रकार (निर्झतिः) नित्य रमण करने वाली, सदा सुप्रसन्न रहकर अपने स्वामी को प्राप्त होकर (ईशे) स्वामिनी होजाती है उसी प्रकार (देवी) दिव्य गुणों से युक्त (निर्झतिः) भूमि (यम् अभि) जिसको प्राप्त कर (ईशे) ऐश्वर्यवती होजाती है (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् को (शरदः सुपृक्षः) उत्तम अन्नादि युक्त जीवन के वर्ष (नक्षन्तः) प्राप्त होते हैं और (मर्ताः) मनुष्य (यं) जिसको (अस्ववेशं) अपने गृहादि से रहित, परिवार-जक (कृणवन्त) करते हैं वह (त्रिवन्धुः) तीनों आश्रमों का बन्धु, परम मित्र होकर (जरद्-अष्टम) वृद्धावस्था को (उपेति) प्राप्त हो । इसी प्रकार राजा को भी सब प्रजाजन 'अस्त-वेश' करते हैं । राजा का न अपना कोई जन, न अपना कोई गृह हो । राष्ट्र ही उसका गृह और प्रत्येक व्यक्ति उसका 'स्व' है ।

आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषकु युर्यं पात स्वस्तिभिः सदानः ॥८॥

भा०—हे (सवितः) सबके उत्पादक ईश्वर ! (नः) हमें (स्तव-
ध्यै) स्तुति करने और स्तुति प्राप्त करने के लिये (राधांसि आ यन्तु) नाना
धन प्राप्त हों और (पर्वतस्य) मेघ के समान दानशील पुरुष के (रायः)
नाना ऐश्वर्य (रातौ) दान करने के निमित्त (नः आयन्तु) हमें प्राप्त
हों । (दिव्यः) शुद्ध, (पायुः) रक्षक (नः) हमें सदा (सिषकु)
सुखों से युक्त करे । हे विद्वान् जनो ! (युयम्) आप लोग (नः) हमारी
(सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) उत्तम कल्याणकारी साधनों से
रक्षा करो । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—६ सविता । ६ सविता भगो वा । ७, ८ वाजिनो
देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ८ निचृतविष्टुप् । ५ विराट् विष्टुप् । २, ४, ६
स्वसूट् पंक्तिः । ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ इत्यष्टर्चं सूक्तम् ॥

उदु ष्य देवः सविता यथाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्विं यो रत्ना पुरु वसुर्दधाति ॥ १ ॥

भा०—(स्यः देवः सवितः) वह सब सुखों और ऐश्वर्यों का देने
वाला, सब जगत् को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (याम) जिस (हिर-
ण्ययीम्) हितकारी और रमणीय सुखप्रद, तेजोमय (अमतिम्) उत्तम
रूप युक्त लक्ष्मी को (अशिश्रेत्) धारण करता है उसको हम (उत्थ-
याम) उद्यम करके प्राप्त करें । (यः) जो (भगः वसुः) २४ वर्ष का
ब्रह्मचारी होकर (पुरु रत्ना दधाति) बहुत से उत्तम गुणों, बलों और
ज्ञानों को धारण करता है (नूनं) निश्चय से वही (हव्यः) स्तुति योग्य और
(भगः) सेवनीय, ऐश्वर्यवान् है ।

उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्यस्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।

ब्युवीं पृथ्वीसमर्ति सृजान आ नृभ्यो मर्त्योजनं सुवानः ॥२॥

भा०—हे (सवितः) सब जगत् के उत्पन्न करने हारे ! सब ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू (उत् तिष्ठ) सब से ऊपर के पद पर विराजमान हो । तू (अस्य) इस जीव, प्रजाजन के दुःखों को (श्रुधि) श्रवण कर । हे (हिरण्यपाणे) हित, रमणीय व्यवहार वाले ! और समस्त तेज और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (क्रतस्य) सत्य ज्ञान, सत् कारण और अज्ञ, धन, जीवनादि को (प्रभृतौ) उत्तम रीति से धारण करने के निमित्त (उर्वाम्) विशाल, (अमतिम्) उत्तम रूप वाली सुन्दर (पृथ्वीम्) भूमि को (वि स्जानः) विविध प्रकार का रचता हुआ और (मर्त्योजनं) मरणशील प्राणियों के लिये भोजन और रक्षा साधन को (आसुवानः) सर्वत्र सब और पैदा करता हुआ तू सबसे ऊपर विराजमान हो ।

अपि पृतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्रिश्वे वसवो गृणन्ति ।

स नः स्तोमाच्चमस्य श्रवनो धादिश्वेभिः पातु पायुभिर्निसूरीन् ३

भा०—(यम्) जिसको (विश्वे वसवः) सब बसने योग्य पृथ्वी आदि लोक और प्राणी (आ गृणन्ति) सब ओर आकर्ष से स्तुति करते हैं वह (देवः) सब सुखों का दाता और (सविता) सबका उत्पादक (अपि-स्तुतः अस्तु) सब स्तुति करने योग्य है । (सः) वह (नमस्यः) सबसे नमस्कार करने योग्य (नः) हमें (स्तोमान्) स्तुति योग्य वेद मन्त्रों का और (चनः) अज्ञ का भी (आधात्) उपदेश करता और प्रदान करता है । वह (विश्वेभिः पायुभिः) समस्त पालम् साधनों से (सूरीन्) पुरुषों की (नि पातु) अच्छी प्रकार रक्षा करे ।

अभि यं देव्यदितिर्गुणाति सूवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।

अभि सुप्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासौ अर्यमा सुजोषाः ॥४॥

भा०—(देवस्य) सर्व प्रकाशक, सर्व सुखदाता (सवितः) सर्व

जगदुत्पादक प्रभु के (सर्वं) शासन, ऐश्वर्य को (जुषणा) सेवन करती हुई (देवी) अन्नादि कांदे देने वाली (अदितिः) यह पृथिवी, और प्रकृति उत्तम देवी पत्नी के समान (यम् अभि गृणाति) जिसका गुणानुवाद करती है। और (यम् अभि सन्नाजः वरुणः) जिसकी स्तुति श्रेष्ठ पुरुष सम्राट् चक्रवर्ती राजे और (मित्रासः) मित्रगण तथा (सजोपाः अर्यमा) न्यायकारी न्यायाधीश ये सब भी समान प्रीतियुक्त होकर करते हैं हे पुरुषो ! (सः नः चनः धात्) वह हमें सब अन्न दे और (पायुसिः नि पातु) वह नाना साधनों से हमारी रक्षा करे ।

अ०५। अभि ये मिथ्यो वनुषः सपन्ते राति दिवो रातिपाचः पृथिव्याः ।
अहिर्वृद्ध्य उत नः शृणोतु वरुद्ध्येकधेनुभिर्नि पातु ॥ ५ ॥

भा०—(ये) जो हम लोग (मिथः) परस्पर मिलकर (वनुषः) ज्ञानैश्वर्य के दाता (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी, प्रकाशस्वरूप (पृथिव्याः) भूमि के समान विशाल (राति-पाचः) दानदाता प्रभु की (रातिम्) दान सम्पदा को (सपन्ते) मिलकर प्राप्त करते हैं वे (उत) और (वृद्ध्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न या स्थित मेघ के समान उदार प्रभु (नः श्रृणोतु) हमारी विनय सुने । और वह (वरुद्धी) श्रेष्ठ माता के समान (एक-धेनुभिः) एक वाणी से बद्ध सहायकों द्वारा (नः नि पातु) हमारी रक्षा करे ।

अनु तच्चो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।

भग्गमुग्रोऽवसु जोहवीति भग्गमनुग्रो अध्य याति रत्नम् ॥ ६ ॥

भा०—(देवस्य) सर्वैश्वर्य के दाता (सवितुः) सर्व शासक, सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर के (रत्नम्) रमणीय, उत्तम (भग्गम्) ऐश्वर्य को (इयानः) प्राप्त करता हुआ (उग्रः) बलवान् (जास्पतिः) प्रजा का पालक (तत्) उसे (नः अनु मंसीष्ट) हमें शक्ति प्रदान करे । (अध्य) इस प्रकार (अनुग्रः) निर्बल पुरुष भी (अवसे) अपनी

रक्षा के लिये जिस (रत्नं) उत्तम (भगं) ऐश्वर्य की (जोहवीति) आचना करता है वह भी उसे (याति) प्राप्त कर लेता है ।

शं नौ भवन्तु वाजिनो हर्वेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।

जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्यवन्नमीवाः ॥ ७ ॥

भा०—(देवताता) विद्वानों द्वारा करने योग्य यज्ञादि कार्यों और विजयेच्छुक वीरों से करने योग्य (हर्वेषु) यज्ञों और युद्धों में (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् और ऐश्वर्यवान् (मितद्रवः) परिमित गति से आगे बढ़नेवाले (स्वर्काः) उत्तम अज्ञ, प्रार्थना और तेज से युक्त पुरुष (नः शं भवन्तु) हमें शान्ति सुख के देने वाले हों । वे (अहिं) सर्प के समान कुटिल (वृकं) चोर स्वभाव के पुरुष को और (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को भी (जम्भयन्तः) मारते और दबाते हुए (सनेमि) सदा (अस्मत्) हम से (अमीवाः) रोगों को और दुःखदायी शत्रुओं को भी (युध-वन्) छुड़ावें ।

वाजेवाजेऽवत् वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।

श्रस्य मध्वः पिवत् मादयध्वं तृष्णा यात् पथिभिर्देवयानैः ॥८॥५॥

भा०—हे (वाजिनः) बल, वीर्य, ज्ञानवान् पुरुषो ! हे (विप्राः) विविध विद्याओं में पूर्ण, दुद्धिमान् जनो ! (अमृताः) दीर्घायु, ब्रह्मज्ञ, और हे (ऋत-ज्ञाः) सत्य, वेद और ऐश्वर्य तत्व के ज्ञाता जनो ! आप लोग (वाजेवाजे) प्रत्येक संग्राम में (नः अवत) हमारी रक्षा करो । (नः धनेषु) हमारे धनों के आश्रय पर (अस्य मध्वः पिवत्) इस मधुर सुख और अज्ञ का उपभोग और पालन करो । (मादयध्वं) स्वयं तृष्ण होकर भी सदा प्रसन्न रहो । और (तृष्णाः) तृष्ण होकर (देव-यानैः) विद्वानों और उत्तम जनों के जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (यात) जाया करो । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ७ निर्चत्तिष्ठुप् । ३
स्वराट्त्रिष्ठुप् । ४, ६ विराट्त्रिष्ठुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ऊर्वाँ अग्निः सुमृतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिंद्वतातिमेति ।
भेजाते अद्री रुथयेव पन्थासृतं होता न इपितो यजाति ॥ १ ॥

भा०—(अध्वः) अध्वं अर्थात् उदात्त मार्ग से जाने वाला (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष (वस्वः) अधीन बसाने वाले आचार्य वा प्रभु की (सुमृतिम्) शुभमति, ज्ञान का (अश्रेत्) सेवन करे । (प्रतीची) प्रत्यक्ष में प्राप्त (जूर्णिः) वृद्धावस्था (देवतातिम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी कार्य में (एति) लगे । (अद्री) अनिन्दित, स्त्री पुरुष (रथ्या इव) रथ में जुड़े अश्वों के समान (ऋतम्) सत्यमय सम्मार्ग का (भेजाते) सेवन करें । (इपितः) इच्छावान् पुरुष (होता न) दाता वा गृहीत के समान (यजाति) दान तथा सत्संग करे, धन दे और ज्ञान ले ।

प्र वावृजे सुप्रया वर्हिरेषामा विश्पतीव वारिट इयाते ।
विशामूकोरुषसः पूर्वहृतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥२॥

भा०—(एषाम्) इन प्रजाजनों के बीच (सु-प्रयाः) उत्तम अन्नादि सम्पद, उत्तम रीति से प्रसन्न तृप्त करने वाला (बहिः) उनको बढ़ाने और स्वयं बढ़ने वाला पुरुष ही उनको (प्र वावृजे) उत्तम मार्ग से गमन करावे । (एषाम्) इनके बीच स्त्री पुरुष दोनों (वीरिटे) अन्तरिक्ष में सूर्य चन्द्र के समान (विश्पती इव) प्रजापालक राजा रानी के तुल्य (इयाते) व्यवहार करें । (अक्तोः उषसः पूर्वहृतौ) रात्रि और दिन दोनों के पूर्वांगमन-काल में (वायुः) वायु के समान प्राण प्रिय और (पूषा) पृथ्वी के समान पोषक स्त्री और पुरुष (नियुत्वान्) नियुक्त भूत्यादि के स्वामी होकर (विशाम् स्वस्तये) प्रजाओं के कल्याण के लिये कार्य करें ।

जमया अत्र वस्वो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाकपथ उरुज्यः कृणुध्वं श्रोतां दूतस्य जग्मुपो नो अस्य॥३॥

भा०—हे (वस्वः) राष्ट्र में वसे जनो ! (अत्र) इस राष्ट्र में आप लोग (जमयाः) भूमि के बीच में (रमन्त) आनन्द प्रसन्न रहो । हे (शुभ्राः) सुशोभित (देवाः) खी पुरुषो ! आप (उरौ) विशाल (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में नक्षत्रों या वायुओं के तुल्य (मर्जयन्त) सब व्यवहारों को स्वच्छ शुद्ध करो । हे (उरुज्यः) बड़े २ मार्गों के ऊपर चलने हारे आप लोग (अर्वाक्) हमारी ओर (पथः) अपने गन्तव्य (मार्गः कृणुध्वं) मार्ग बनावें । (जग्मुपः) जाने वाले आप लोगों के प्रति (नः) हमारे (अस्यदूतस्य) इस दूत के वचनों को (श्रोत) श्रवण करो । ते हि यज्ञेषु यज्ञियासु ऊमाः सृधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः । ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भग्नं नासत्या पुरन्धिम् ॥४॥

भा०—(ते) वे (ऊमाः) रक्षक (देवाः) विद्वान् पुरुष (विश्वे) समस्त (यज्ञियासः) यज्ञ के करने वाले (यज्ञेषु) हमारे यज्ञों में (हि) अवश्य (सधस्य अभि सन्ति) एक साथ विराजने योग्य सभास्थान में प्राप्त हों । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (तान् उशतः) उन चाहने वाले पुरुषों और (भग्न) ऐश्वर्यवान्, (नासत्या) कभी असत्य भाषण न करने वाले, सत्याचारी पुरुषों और (पुरन्धिम्) बहुत सुखों के धारक, वा पुर के रक्षक आदि जनों को (श्रुष्टी) शीघ्र ही (यक्षि) आदर सत्कार किया कर ।

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमुग्निम् ।
आर्यमणमदिति विष्णुमेषां सरस्वती मूरती मादयन्नाम् ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (दिवः) विद्युत् सूर्य आदि के और (पृथिव्या) पृथिवी के सम्बन्ध की (गिरः) ज्ञान वाणियों को (आवह) धारण कर । तू (मित्रं) मित्र, प्राण वायु (वरुणं) उदान वायु (इन्द्रं)

आत्मा और (अग्निम्) जाठर अग्नि और (अर्थमणम्) स्वामिवत् नियन्ता मन और (अदिति) अविनाशी (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर को (आ वह) धारण कर । (एषां सरस्वतीं) इन सबके सम्बन्ध की वेदवाणी से हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मादवन्ताम्) स्वयं प्रसन्न होकर अन्यों को भी प्रसन्न करो ।

रे हृव्यं मृतिभिर्यज्ञियाऽन्तं नन्तत्कामं मत्याऽनामसिन्वन् ।

धाता रुयिमविदस्यं सदासां सद्गीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥ ६ ॥

भा०—मैं (यज्ञियान्) यज्ञ के योग्य, पूजा सत्कारोचित जनों के (हृव्यं) योग्य अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को (मतिभिः) सद् बुद्धियों और ज्ञानवान् पुरुषों से व्रेतित होकर (रे) दिया करूँ । (यज्ञियानां मत्यानाम्) आदर योग्य मनुष्यों की भी (कामं) अभिलाषा को (नक्षत) प्राप्त होओ । जो विद्वान् लोग (असिन्वन्) हमें प्रेमादि से बांधते हैं उन (युज्येभिः) सदा सहयोगी (देवैः) विद्वानों, के साथ (सक्षीमहि) मिल जुल कर रहें । और हे विद्वान् जनो ! आप लोग (सदासां) सदा सेवन करने योग्य (अविदस्यं) अविनाशी (रुयिम्) ऐश्वर्य को (धात) धारण करो ।

नूरोदसी ऋभिष्टुते वसिष्टैर्ऋतावाऽनो वरुणो मित्रो अग्निः ।

यच्छुन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं युयं पात स्वस्तिभिः सदानः ॥६

भा०—(वसिष्टैः) उत्तम विद्वान् पुरुषों द्वारा (रोदसी) सूर्य भूमि के तुल्य व्यवहार युक्त स्त्री पुरुषों की (अभिस्तुते) अच्छी प्रकार प्रशंसा होती है और (ऋतावानः) सत्य धारण, न्याय, ऐश्वर्य के स्वामी (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) स्त्रेहवान् और (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, सभी (चन्द्राः) आहादकारी होकर (नः) हमें (उपमं) ज्ञान और (अर्कं) उत्तम सत्कार (यच्छुतु) प्रदान करें । हे विद्वान् जनो !

(यूं) आप सब लोग (नः) हमारी (स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम कल्याणकारी उपायों से सदा रक्षा करें । इति पष्ठो वर्गः ॥

[४०]

वसिष्ठ कृष्णः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ३ भुरिक्पंक्तिः । ६ विराट्पंक्तिः । २, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत्रिष्टुप् ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

ओ श्रुष्टिर्विदृथ्याऽ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।

यदृथ्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनौ विभागे ॥ १ ॥

भा०—(ओ) हे विद्वानो ! (विद्या) यज्ञादि कार्यों और संग्रामों में होने योग्य (श्रुष्टिः) शीघ्रकारिता (तुराणां) शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (स्तोमं) समूह को (प्रति समेतु) प्रति पुरुष प्राप्त हो, ऐसे (स्तोमं) जन समूह या सैन्य को हम (दधीमहि) धारण करें । (यद् देवः) जो दानशील, तेजस्वी (सविता) सूर्यवत् सर्वज्ञापक पुरुष (अद्य सुवाति) आज शासन करता और ऐश्वर्य प्रदान करता है (अस्य) उसके (विभागे) विशेष इस व्यवहार में हम भी (रत्निनः स्याम) उत्तम धनादि सम्पन्न हों ।

मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तुमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेकणो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) म्नेही, मित्र (वरुणः) जलवत् श्रेष्ठ पुरुष, (रोदसी च) आकाश और गुथियों के तुल्य स्त्री और पुरुष और (इन्द्रः अर्यमा) सूर्य और मेघ के तुल्य राजा और न्यायाधीश (नः) हमें (तत्) वह नाना प्रकार का (द्युभक्तम्) बहुत दिनों तक सेवन करने योग्य ऐश्वर्य (ददातु) प्रदान करे । (अदितिः देवी) अज्ञदात्री भूमि के तुल्य विदुषी, अखण्ड व्रतचारिणी स्त्री, (भगः च वायुः च) ऐश्वर्यवान् और बलवान् सूर्य और वायु के तुल्य तेजस्वी बलवान् पुरुष (यत्

रेकणः) जो धन और बल वीर्यं (नि-युवैते) अच्छी प्रकार परस्पर मिल कर उत्पन्न करते हैं उसका हमें भी (दिदेषु) विद्वान् पुरुष उपदेश करे । सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मत्यं पृष्ठदश्वा अवाथ ।

उतेमधिः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु तुल्य बलवान्, शत्रुओं को मारने हारे वीर मनुष्यो ! हे (पृष्ठदश्वाः) सिद्धन किये जलामि से वेग पूर्वक जाने हारे वा (पृष्ठदश्वाः) हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले सैन्य जनो ! आप लोग (यं मत्यं अवाथ) जिस मनुष्य की रक्षा करते हो (सः इत् उग्रः अस्तु) वह ही बलवान्, शत्रुओं को भयभीत करने में समर्थ हो । (उत्) और (ईम्) सब ओर से (तस्य सरस्वती) उसकी उत्तम वाणी और वेग-वती सेना (अम्भिः) अम्भि के समान अर्थ की प्रकाशक, शत्रु को दग्ध करने वाली हो जिसको (जुनन्ति) विद्वान् लोग सन्मार्ग पर चलाते हैं (तस्य रायः) उसके ऐश्वर्यों को कोई (पर्येता न अस्ति) छीन कर लेने वाला नहीं होता ।

अर्थं हि नेता वरुण क्रृतस्य मित्रो राजानो अर्थमाप्नो धुः ।

सुहवा देव्यदितिरन्वा ते नो अंहो अति पर्षुन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (हि) ही निश्चय से (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ पुरुष (नेता) सबका नाथक होता है । (मित्रः) सर्व स्नेही (अर्थमा) शत्रुनियन्ता और (राजा नः) अन्य राजागण उसके अधीन (अपः धुः) नाना काम अपने कन्धों ले लेते हैं । (सुहवा) उत्तम ज्ञान से युक्त (देवी) उत्तम भजादि देने वाली एवं विदुषी (अदितिः) अखण्ड चरित्र वाली, भूमिवत् माता और (अनर्वा) अश्वादि से रहित यन्त्रमय रथपर जाने वाला अथवा (अनर्वा) अहिंसक पुरुष (ते) वे सब (अंहः) पाप और कष्ट से (अरिष्टान्) विना पोड़ित हुए (नः) हमें (अति पर्षन्) पार करें ।

अस्य देवस्य मीढ़हुषो वृया विष्णोरेषस्य प्रभूये हविर्भिः ।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वृत्तिरश्विनाविरावत् ॥५॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) तेजोमय, सुखप्रदाता (मीढुषः) वीर्यसेक्ता, बलवान् पिता के तुल्य, (विष्णोः) व्यापक बल शाली, (एषस्य) सबके चाहने योग्य, सर्वप्रिय (हविर्भिः प्रभूये) ग्राह्य अन्नों या आज्ञावचनों द्वारा उत्तम रीति से परिपोषित इस जगत् वा राष्ट्र में अन्य सब (वयाः) शाखा के समान हैं । (रुद्रः) दुष्टों का रुलाने वाला वह ही (रुद्रियं महित्वं विदे) रुद्र होने योग्य महान् सामर्थ्य को प्राप्त करता है । हे (अश्विनौ) स्त्रीपुरुषो ! सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी जनो ! (इरावत् वर्तिः) अन्नादि से समृद्ध गृह को तुम लोग (यासिष्टं) प्राप्त करो ।

मात्रं पूषन्नाघृण इरस्यो वरुत्री यद्रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वन्तु नि पान्तु वृष्टिं परिज्ञा वातो ददातु ॥६॥

भा०—हे (आघृणे) सब ओर दीप्ति वाले तेजस्विन् ! (पूषन्) सर्वपोषक ! तू (अत्र) इस राष्ट्र में (मा इरस्य) विनाश मत कर । (यत्) जो (वरुत्री) वरण करने योग्य विदुषी स्त्री और जो (रातिषाचः च) दानशील पुरुष भी (रासन्) प्रदान करते हैं वे (मयः-सुवः) शान्ति सुख के दाता (नः अर्वन्तः) हमें प्राप्त होकर (नः निपान्तु) हमारी रक्षा करें । और (परिज्ञा) पृथ्वी पर शासक (वातः) वायु के समान बलवान् होकर मेघवत् (वृष्टिं ददातु) प्रजा को समस्त सुखों की वृष्टि प्रदान करे ।

नू रोदसी श्रीमेष्टुते वासेष्टुर्भृतावानो वरुणो मित्रो श्रग्निः ।
यच्छ्रन्तु चन्द्रा उपमं नो श्रक्षं युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३९ । ७ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[४१]

चतिष्ठ क्रूरिः ॥ १ लिङ्गोक्ताः । २—६ भगः । ७ उषा देवता ॥ चन्द्रः—१
निचृजगती । २, ३, ५, ७ निचृतिवृष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ४ पंक्तिः ॥ सप्तर्ष सूक्तम् ॥

प्रातरश्चि प्रातरिन्द्रै हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्चिना ।

प्रातर्भर्गं पूषणं ब्रह्मणस्पति प्रातः सोमसुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (प्रातः) प्रभात समय में ही (अश्मम्) अग्नि के समान तेजःस्वरूप प्रभु की (हवामहे) स्तुति करें । हम (प्रातः इन्द्रम् हवामहे) प्रातःकाल ही विद्युत् वा सूर्य के समान सर्व प्रकाशक परमेश्वर वा आत्मा की उपासना किया करें । (मित्रा वरुण) प्राण और उदान दोनों को (प्रातः) प्रातःकाल में ही हम प्राणायाम द्वारा अपने वश करें । (अश्चिना प्रातः) वैद्य, अध्यापक और देह में सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्रातः ही सेवन करें । (भगं) ऐश्वर्यमय, भजने योग्य (पूषणं) सर्वपोषक वायु का (प्रातः) प्रभात में सेवन करें । (ब्रह्मणः पतिम्) वेद, ब्रह्मण्ड और समस्त ऐश्वर्य के स्वामी जगदीश्वर और वेदोपदेष्टा विद्वान् को शिष्य और (सोमम्) ओपधि की रोगी और आचार्य की शिष्य और (रुद्रं) पापियों को रुलाने वाले प्रभु की भक्तजन, उपासक (प्रातः हुवेम) प्रातःकाल ही सेवा और शुश्रूषा करें ।

प्रातर्जितं भगसुत्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेयों विधृता ।

आधश्चिद्यं मन्यमानस्तुराश्चिद्राजो चिद्यं भगं भक्तीत्याह ॥२॥

भा०—(प्रातःजितम्) प्रभात वेला में ही सबसे अधिक उत्कर्ष प्राप्त करने योग्य (भगं) सेवने योग्य (उग्रं) दुष्टों को भयकारी, (पुत्रं) बहुतों के रक्षक प्रभु की (वयं) हम (हुवेम) स्तुति करें, (यः) जो (अदितेः) अखण्ड, प्रकृति सूर्य को और (विधर्ता) विविध लोकों को धारण करता है (यं मन्यमानः) जिसका मनन करता हुआ

(आश्रः चित्) अन्यों से धारण पोषण योग्य दरिद्र भी और (यं) जिस (भगं) ऐश्वर्यवान् सेव्य प्रभु को (तुरः चित्) शीघ्रकारी (राजा चित्) राजा भी (भक्षि) मैं भजन करता हूँ (इति आह) ऐसा ही कहता है । जिसकी उपासना करने से कोई निषेध नहीं करता है ।

भग् प्रणेतुर्भग् सत्यराधो भगेमां धियुमुदवा ददन्नः ।

भग् प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग् प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥

भा०—हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! हे (प्रणेतः) उत्तम मार्ग में लेजाने हारे ! हे (भग) सेवन योग्य, हे (सत्यराधः) सत् पदार्थों में विद्यमान कारणरूप प्रकृति और सत्यज्ञान वेद के धनी, उसको वश करने हारे, हे (भग) ऐश्वर्य-सुखदातः ! आप (नः) हमारी (इमां) इस (विष्यम्), तुम्हि को (उत् अव) ऊपर की ओर ले चलो, उच्चत करो । (नः ददत्) हमें दान करते हुए हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें (गोभिः अश्वैः) गौओं, वाणियों इन्द्रियगणों और अश्वों से (प्र जनय) उत्तम बना-इये ! जिससे हे (भग) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हम (नृभिः) उत्तम पुरुषों के साथ मिलकर (नृवन्तः) उत्तम मनुष्यों के सहयोगी होकर (प्र स्याम) उत्तम बनें ।

उतेदार्नीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।

उतोदिता मध्वन्त्सूर्यस्य ब्रुय देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥

भा०—(उत इदार्नी) और इस समय, (उत प्र-पित्वे) औरऐश्वर्य ग्रास होने पर, सूर्य के आगमन काल में और (अह्नाम् मध्ये) दिनों के बीच में (उत) और (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय-काल में या (उत-इता) अस्तकाल में भी हे (मध्वन्) ऐश्वर्यवन् हम (भगवन्तः) ऐश्वर्यों के स्वामी (स्याम) होकर रहें । और सदा हम (देवानां) विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुषों की (सु-मतो) शुभ मति के अधीन (स्याम) रहें ।

भगं एव भगंवां अस्तु देवास्तेन वर्यं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्वं इज्जोहवीति स नो भग पुरप्रता भवेह ॥ ५ ॥

भा०—(भगः एवं) सबको भजन करने योग्य सर्वं कल्याणकारक प्रभु ही (भगवान् अस्तु) सब ऐश्वर्यों का स्वामी हो । हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (तेन) उस परम स्वामी से ही (वर्यं) हम सब (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान् हों । हे (भग) सेवा करने योग्य ! (सर्वं इत्) सबही (त्वां तं) उस तुल्यको (जोहवीती) पुकारता है, (सः भगः) वह ऐश्वर्यवान् तू ही (इह) इस लोक में यहां (पुरः-प्रता भव) हमारा अग्रगामी हो ।

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेत् शुचये प्रदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिनु आ वहन्तु ॥६॥

भा०—(उपासः) सब प्रातःकाल के अवसरों में आप लोग (अध्वराय) हिंसा रहित और कभी नाश या निष्कल न होने वाले यज्ञ, उपासनादि कर्म के लिये और (शुचये) शुद्ध, पवित्र, (पदाय) प्राप्तव्य परम प्रभु को प्राप्त करने के लिये (दधिक्रावा इत्) अपने ऊपर बोझ लेकर चलने वाले अश्व के समान ही दृढ़ कमर कसकर, उद्देश्य को धारण करके आगे पैर बढ़ाते हुए (सं नमन्त) अच्छी प्रकार छुको । (अश्वाः रथं न) अश्व जिस प्रकार रथ को लेजाते हैं उसी प्रकार (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् लोग (अर्वाचीनं) साक्षात् करणीय (वसु-विदं) नाना ऐश्वर्यों, लोकों, जीवों को प्राप्त और उनसे प्राप्त करने योग्य (भगं) ऐश्वर्यमय, प्रभु तक (नः आवहन्तु) हमें पहुंचावें ।

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहोना विश्वतः प्रपीता युयं पात् स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

भा०—(उपासः अश्ववतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः) जिस प्रकार प्रभात वेलाएं सूर्य से युक्त, किरणों से युक्त, उत्तम वायु से युक्त होकर

भद्र अर्थात् कल्याण और सुख देती हैं उसी प्रकार (उषासः) कान्ति-युक्त, कामनायुक्त, प्रिय स्त्रियों भी (अश्वावतीः) उत्तम भोक्ता पुरुष से सनाथ, (गोमतीः) उत्तम वाणियों को धारण करने वाली, (वीरवतीः) उत्तम पुत्र युक्त होकर (नः सदम्) हमारे घर को (उच्छन्तु) प्रभात चेलाओं के समान नित्य प्रति प्रकाशित करें। वे (घृतं दुहानाः) गृह में दीसिवत् जल और ज्ञानप्रकाश को पूर्ण करती हुईं (विश्वतः प्रवीताः) सब प्रकार हृष्ट पुष्ट, तृप्त होकर रहें। हे विदुषी स्त्रियो ! (यूथं) आप सब (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा कल्याण उपायों से रक्षा करो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[४२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्विष्टुप् । ४, ५
विराटांश्टुप् । २ विष्टुप् । ६ निचृत्यंकिः ॥ पद्मचं सूक्तम् ॥

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त् प्र क्रन्दनुर्भन्यस्य वेतु ।

प्र धेनवं उद्ग्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥ १ ॥

भा०—(अङ्गिरसः) देह में प्राणवत्, तेजस्वी (ब्रह्माणः) वेद के जानने हारे पुरुष (प्र नक्षन्त) आया करें। (क्रन्दनुः न भन्यस्य) जिस प्रकार मेघ वायु के वेग को प्राप्त करता है या विद्युत् अन्तरिक्षस्य मेघ को उत्थापती है उसी प्रकार (क्रन्दनुः) उपदेष्टा पुरुष (न भन्यस्य) स्तुति करने योग्य प्रभु के ज्ञान का (वेतु) प्रकाश करे। विद्युतवत् रोदनशील कोमल प्रकृति या विदुषी स्त्री (न भन्यस्य) सम्बन्ध योग्य पुरुष का आश्रय प्राप्त करे। (उद्ग्रुतः) जल से भरी नदियों के समान (धेनवः) वाणियां और गौणं (प्र नवन्त) प्रभु की स्तुति करें। और इस प्रकार (अद्री) मेघ वा पर्वतवत् स्थिर स्त्री पुरुष (अध्वरस्य वेशः) अहिंसामय यज्ञ के स्वरूप को (प्र युज्याताम्) सम्पन्न करें।

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्ब्रह्मरूपा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सृत्तः ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते) तेरा (सनवित्तः) सनातन से वेद द्वारा जाना गया (अध्वा) मार्ग (सुगः) सुख से गमन करने योग्य है । तू भी (सुते) उत्पन्न इस जगत् में वा ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये रथ में (हरितः रोहितः च) लाल, अश्वों को (युक्ष्व) नियुक्त कर । (ये वा अरुषाः वीरवाहः) जो अरुण वर्णवीरों को पीठ पर लेने वाले हौं (देवानां जनिमानि) उन विद्वानों और वीरों के जन्मों की मैं (सृत्तः) स्थिर होकर प्रशंसा करूँ । (२) गृहस्थ पक्ष में—(सुते) पुत्र के निमित्त (रोहितः च हरितः) तेजस्विनी, लतावत् वृद्धिशील, काम्य छियों को विवाह धर्म में नियुक्त कर । जो छी पुरुष (अरुषाः) रोष रहित (वीरवाहः) पुत्रों के लालन पालन का भार उठा सकें उन कामवान् पुरुषों के उत्पन्न सन्तानों को मैं (सृत्तः) स्थिर गृहपति सदा (हुवे) प्रशंसा करूँ । या मैं आसनस्थ होकर उनको उपदेश करूँ ।

समु वो युज्ञं मंहयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सुपुर्वणीक देवानां यज्ञियामृरमर्तिं चवृत्याः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! (घः) आप लोगों में (मन्द्रः) अति स्तुत्य (होता) विद्वान् उपदेष्टा (नमोभिः) हव्यों और नमस्कार योग्य मन्त्रों से (यज्ञं) उपास्य, यज्ञमय परमेश्वर की (महयन्) पूजा करता हुआ (उपाके) हमारे समीप रहकर (प्र रिरिचे) पापों से पृथक् रहता है । हे (पुर्वणीक) बहुत से सैन्यों, बलों के स्वामिन् ! तू (देवान् सुयजस्व) विद्वान् पुरुषों का आदर सहित सत्संग कर । उनको दान दे और (यज्ञियाम्) यज्ञ, करने, प्रभु की ध्यानोपासना करने की और सत्संगोचित

(भ्रमति) उत्तम बुद्धि को (आ ववृत्याः) सब प्रकार स्वीकार और उसका व्यवहार में प्रयोग कर ।

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।

सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम् आ स विशे दाति वार्यमियत्यै॥४॥

भा०—अतिथि यज्ञ । (यदा) जब (वीरस्य) वीर, क्षत्रिय और (रेवतः) धनाल्य वैश्य के (दुरोणे) गृह में (अतिथिः) पूज्य अतिथि, अमणशील विद्वान्, परिव्राजक, ब्राह्मण (स्योनशीः) सुख से रहे और प्राप्त हो, वह (दमे) गृह में (सुधितः) सुखपूर्वक धारित (अग्निः) अग्नि के समान ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष (सुप्रसन्न होकर (इयत्यै) सुख चाहने वाली (विशे) प्रजा के लिये (वार्य आदाति) उत्तम ज्ञान प्रदान करता और उसके हित के लिये ही स्वयं भी (वार्यम् आ दाति) वरणीय हृविष्यवत् धनादि ग्रहण करता है ।

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मुरुत्स्वन्द्रे युशसं कृधी नः ।

आ नक्ता बृहिः सदतामुपासोशन्ता मित्रावरुणा यजुह ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! (नः इमं अध्वरं) तू हमारे इस यज्ञ को (जुषस्व) सेवन कर । (मरुत्सु) मरुष्यों और (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में भी (नः) हमारे (अध्वरं यशसं कृधि) यज्ञ को कीर्तियुक्त कर । (नक्ता उषासः) रात और दिन, सदा, (उशन्ता) परस्पर चाहने वाले (मित्रावरुणा) स्नेही परस्पर को वरण करने वाले गृहस्थ स्त्री पुरुषों को (इह भज) इस स्थान पर धर्मोपदेश दे, सत्संग कर । तू (बृहिः सदताम्) उत्तमासन पर विराज । एवाग्नि सहस्रं । वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।

इष्टं रुद्यिं पंप्रथुद्वाजमस्मे युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥५॥

भा०—(वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् (रायः कामः) ऐश्वर्यों की दृच्छा वाला होकर (विश्वप्स्न्यस्य) समस्त रूपों में वर्तमान, सर्वत्र

विद्यमान अग्नि आदि तत्व के (सहस्रं) बलोत्पादक (अग्निं) अग्नि या विद्युत् तत्व के गुणों का (स्तौत्) उपदेश करे । और (अस्मे) हमारे (इष्ठं रथिम् वाजम् प्रथद्) अज्ञ, धन, बल आदि का विस्तार करे । हे विद्वान् युरुषो ! आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात्) हमें कल्याणकारक उपायों से सदा सुरक्षित रखिये । इसी प्रकार मनुष्य भी पैश्चर्य का इच्छुक विश्वरूप भगवान् के तेजोमय रूप की स्तुति उपासना करे । इच्छा, बल, वीर्य, ज्ञान की वृद्धि करे । इति नवमो वर्गः ॥

[४३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ निचृत्विष्टुप् । ४ विष्टुप् ।

३ विराट् विष्टुप् । २, ५ भुरिक्पंक्तिः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इवध्यै ।
येषां ब्रह्माग्यसमानि विप्रा विष्वग्निवयन्ति वनिनो न शाखाः ॥ १ ॥

भा०—(यज्ञेषु) सत्संगों, देवपूजा, दान आदि कार्यों में (वः) आप लोगों के बीच (व्यावा पृथिवी) आकाश या सूर्य और भूमि दोनों को (इवध्यै) चाहने और जानने के लिये (देवयन्तः) विद्वानों और परमेश्वर की (नमोभिः) विनयों और अन्नादि से (प्र अर्चन्) अच्छी प्रकार अर्चना करते हैं (येषां) जिनके (ब्रह्माणि) ज्ञान, वेद-वचन और धनैश्वर्य (असमानि) सबसे अधिक हैं वे (विप्राः) विद्वान् पुरुष (वनिनः शाखाः न) सूर्य की आकाश में फैली किरणों वा वृक्ष की शाखाओं के समान (विश्वग् वियन्ति) सब ओर जाते हैं ।

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तुरुद्युच्छुद्धवं समनसो धृताचीः ।

स्तुसीत वृद्धिरध्वराय साधूर्धर्वा शोर्चीषि देवयन्यस्थुः ॥ २ ॥

भा०—(हेत्वः सप्तिः न) वेगवान् अश्व के समान (यज्ञः प्र एतु) अज्ञ प्रोस हो, वह उत्तम रीति से चले । हे विद्वान् लोगो ! आप लोग

(समनसः) एकचित्त होकर (धृताचीः उद्यच्छध्वम्) धृत से युक्त सुवे उठाओ । अथवा आप लोग एक चित्त होकर (उद्यच्छध्वम्) उद्यम करो । और आप लोग (धृताचीः) जलों से युक्त मेघमालाओं को (बर्हिः) आकाश में (स्तृणीति) आच्छादित करो । (साधु) अच्छी प्रकार (अध्वराय) यज्ञ की (देवयूनि) दीसियुक्त (शोर्चीषि) ज्वालाएं (ऊर्ध्वा अस्थुः) ऊंचे उठें । (२) (यज्ञः) पूज्य राजा अश्व के समान बलवान् होकर प्राप्त हो, आप लोग एकचित्त (धृताचीः) तेजस्विनी सेनाओं को उठाओ । (बर्हिः स्तृणीति) राष्ट्र, प्रजाजन का विस्तार करो (देवयूनि शोर्चीषि) विजयेच्छु पुरुषों की ज्वालाएं (अध्वराय) राष्ट्र के पालनरूप यज्ञ के लिये वा शत्रु से न हिंसित होने के लिये खूब उठ खड़ी हों ।

आ पुत्रासौ न मातरं विभृत्राः सानौ देवासौ वर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विद्यथामनकत्वग्ने मा नौ देवताता मृधस्कः ॥३॥

भा०—(विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) भरण-पोपणयोग्य पुत्र जिस प्रकार माता को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (विभृत्राः) विशेष रूप से भृति द्वारा रक्षित राजपुरुष (पुत्रासः न) राजा के पुत्रों के समान ग्रिय होकर (मातरं) उत्पादक मातृभूमि को प्राप्त होकर (देवासः) विजयेच्छु जन (बर्हिषः) वृद्धिशील राष्ट्र तथा प्रजाजन के (सानौ) समुच्चत पदों पर (सदन्तु) विराजें । (विश्वाची) समस्त जनों की बनी सभा (विद्यथाम्) संग्राम सम्बन्धिनी नीति को (आ अनक्तु) सर्वत्र प्रकट करे । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! नायक ! (देवताता) यज्ञ और युद्ध में (नः मृधः) हमारे हिंसकों को (मा कः) मत उत्पन्न कर । ते सीपपन्त जोपुमा यज्ञत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।

ज्येष्ठे वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन् समनसो यति ष्टा ॥४॥
भा०—(ते) वे (यज्ञत्राः) एकत्र संगत, वा राजा के भृति, दान

के पात्र जन (क्रतस्य) सत्य वचन, और धन की (सुदुधाः धाराः दुहानाः) उत्तम रीति से सुख से पूर्ण करने वाली वाणियों का प्रयोग करते हुए (जोषम्) प्रीतिपूर्वक (आ सीपन्त) परस्पर शपथ करें । और (वः वसूनां) वसने वाले आप लोगों में से (महे) पूज्य (ज्येष्ठ) सब से बड़े को (अव) आज आप (समनसः) समान चित्त होकर (आ गन्तन) प्राप्त होओ और (यति स्य) सदा यज्ञ में लगे रहो ।

एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वृयं सहसावन्नास्काः ।

राया युजा सधमादो अरिष्टा युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५।१०

भा०—हे (सहसावन्) बलवन् ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! नायक ! तेजस्विन् ! तू (एव) अवश्य (विक्षु) प्रजाओं में (आ दशस्य) सब और दान कर । सबके प्रति उदार हो । (त्वया युजा वृयं) तुक्ष सहयोगी से मिलकर हम (आस्काः) सब ग्रकार से मानो खरीदे भूत्यवत् हों और (अरिष्टाः सधमादः) अहिंसित, अपीडित और (राया) एक साथ (सधमादः) प्रसन्न होकर रहें । हे विद्वान् वीर पुरुषो ! (युयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) धन से आप लोग हमें सदा उत्तम साधनों से रक्षित करो । इति दशमो वर्गः ॥

[४४]

वसिष्ठ क्रष्णिः ॥ लिङ्गोका देवताः ॥ छन्दः—१ निचूजजगती । २, ३ निचूत्रिष्ठुप् । ४, ५ पंक्तिः ॥

दुधिकां वः प्रथमस्मिन्नोपस्मिन्नि समिद्धुं भग्नमुतये हुवे ।

इन्द्रं विष्णुं पूष्यां ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः १

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों में से (दुधिकाम्) शिष्यों को धारण कर उनको उपदेश देने वाले (प्रथमम्) सबसे प्रथम, (अविमा) सूर्य चन्द्रवत् प्रकाश कर (उपसम्) प्रभात वेला के समान

कान्तियुक्त (समिद्धं अग्निम्) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, (भग्म्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (उत्तये) रक्षा, ज्ञान और सुख प्राप्त करने के लिये (हुवे) आदरपूर्वक स्वीकार करुं। मैं (इन्द्रम्) विद्युत्, (विष्णुं) व्यापक शक्ति वाले, (पूषण्) पोषक ओषधिवर्ग, (ब्रह्मणः पतिम्) अन्न धनादि के पालक और (आदित्यान्) १२ मासों (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी और (अपः) जलों और (स्वः) सूर्य प्रकाश और सुख को भी (हुवे) प्राप्त करुं।

द्विक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।

इलां देवीं बृहिंषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (द्विक्राम्) राज्य के कार्य भार को अपने ऊपर लेने वालों को सन्मार्ग पर चलाने वाले सारथिवत् राजा को (नमसा बोधयन्तः) विनय से निवेदन करते हुए (उद्द-ईराणाः) उत्तम ज्ञान वा उत्तम २ उपदेश देते हुए, (यज्ञम् उप प्रयन्तः) सत्संगति और यज्ञ वा, पूज्य पुरुष के समीप जाते हुए, (बृहिंषि) बृद्धिकारी व्यवहार वा राष्ट्र में वसे प्रजाजन में (देवीं) उत्तम गुण युक्त (इलां) वाणी की (सादयन्तः) व्यवस्था करते हुए हम लोग (सु-हवा) उत्तम वचन बोलने वाले (विप्रा) बुद्धिमान् (अश्विना) रथी सारथिवत् सहयोगी खी पुरुषों को हम (हुवेम) प्राप्त करें और उनकी प्रशंसा करें।

द्विक्रावाणं बुवुधानो श्रुग्निमुप् ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।

ब्रह्मं मंश्वतोर्वरुणस्य ब्रुम् ते विश्वास्मद् रिता यावयन्तु ॥३॥

भा०—(बुवुधानः) निरन्तर ज्ञानवान् रहकर मैं (द्विक्रावाणं) धारण करने वाले, रथादि को ले चलने में समर्थ, अश्व के समान अग्रगत्ता, (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (उषसं) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त (गाम्) पृथिवी के समान गतिमान् (मंश्वतः वरुणस्य)

अभिमान करने वाले के नाशकारी वा विद्वानों से ज्ञानादि के याचक श्रेष्ठ राजा के (बश्रुं) भरण पौषण करने वाले (ब्रध्नं) महान्, आकाश वा सूर्य के समान अन्यों को अपने में बांधने वाले ऐसे २ पुरुषों से मैं (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूं कि (ते) वे (अस्मद्) हम से (विश्वा दुरिता यावयन्तु) सब प्रकार की डुराइयां दूर करें ।

दृधिक्रावा प्रथमो व्राज्यर्वाग्ने रथानां भवति प्रजानन् ।

संविदान उपसा सूर्येणादित्येभिर्वर्षसुभिरद्वग्निरोभिः ॥ ४ ॥

भा०—दधिक्रावा का स्वरूप । (रथानाम् अग्ने वाजी) रथों के आगे जिस प्रकार वेगवान् अश्व मुख्य होता है वह भी (दधिक्रावा) रथी सारथी, तथा अन्यों को धारण करने वाले रथों को धारण करने से 'दधिक्रावा' है उसी प्रकार (प्र-जानन्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष भी (रथानां) समस्त रमणीय, व्यवहारों के (अग्ने) अग्र वा मुख्य पदपर (प्रथमः) सर्व, प्रथम, सर्वश्रेष्ठ (भवति) होता है वह भी (दधिक्रावा) कार्य भार को अपने ऊपर उठाने वाले जिम्मेवार पुरुषों को उपदेश देकर ठीक राह पर ले चलने से 'दधिक्रावा' कहाता है । वह (उपसा) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त, दुष्टों के दाहक शक्तिमान् (सूर्येण) सूर्यवत् तेजस्वी राजा (आदित्येभिः) १२ मासों के समान नाना प्रकृति के विद्वान् अमात्य सदस्यों से, (वसुभिः) वा प्रजा में वसे, ब्रह्मचारी आठ विद्वानों से और (अंगिरोभिः) अंगारों के समान तेजस्वी, वा अंग अर्थात् देह में रमने वाले, बलस्वरूप प्राणोंवत् देश के प्रिय पुरुषों से (संविदानः) भली प्रकार ज्ञान की वृद्धि करता रहे ।

आ नो दधिक्राः पृथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वतेवा उ ।

शृणोतुं नो दैव्यं शधोऽग्निः शृणवन्तु विश्वे महिषा अमूराः ५।११

भा०—जिस प्रकार (दधिक्राः) रथ वा मनुष्यों को पीठ पर धर कर चलने में समर्थ अश्व मार्ग चलते हुए अच्छी चाल प्रकट करता है उसी

प्रकार (नः) हममें से (दधि-क्राः) सब सहयोगी जनों को अपने जिस्मे-
लेकर आगे बढ़ने वाला पुरुष (ऋतस्य पन्थाम्) सत्य, न्याय के मार्ग को
स्वयं चलने और औरों को चलाने के लिये ये (नः) हमारे लिये (प-
थाम्) धर्मयुक्त, हितकारिणी नीति को (अनक्तु) प्रकट करे । वह सन्मार्ग
प्रकट करने से ही (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशक होकर (नः) हमारे
(दैव्यं) मनुष्यों के हितकारी (शर्धः) बल को (शृणोतु) श्रवण
करे, जाने और इसी प्रकार (विश्वे) समस्त (अमूराः) मोह रहित
ज्ञानी (महिषाः) बड़े लोग भी (शृणवन्तु) हमारे कार्यों को सुनें ।
इत्येकादशो चर्चा ॥

[४५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ अन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३,
४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्वर्णं सूक्तम् ॥

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरुणि निवेशयच्च प्रसुवच्च भूमै ॥ १ ॥

भा०—(सविता देवः) प्रकाशक सूर्य के समान (सविता) सब
का प्रेरक तेजस्वी पुरुष (अन्तरिक्ष प्राः) आकाश को द्यापने वाला,
(सु-रत्नः) उत्तम रत्नों के समान रमणीय गुणों को धारण करने वाला,
(अश्वैः वहमानः) अश्वों के समान विद्वानों की सहायता से कार्य-भार
को उठाता हुआ (आ यातु) आवे । वह (हस्ते) अपने हाथ में (पुरुणि)
बहुत से (नर्या) मनुष्यों के हितार्थ नाना पदार्थों को (दधानाः) धारण
करता हुआ और (नि-वेशयन् च) सबको बसाता और (प्र-सुवन् च)
उत्तम रीति से शासन करता हुआ हमें प्राप्त हो । वैसा ही हम भी (भूम)
हों । अथवा वह (भूम प्रसुवन् च) बहुत से ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता
हुआ हमें प्राप्त हो ।

उद्स्य ब्राहू शिथिरा वृहन्ता हिरण्या दिवो अन्तौ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनुदादपस्याम् ॥२॥

भा०—(अस्य) इसकी (शिथिरा) शिथिल, दद (वृहन्ता) बड़ी २ (हिरण्या) सुवर्ण से मणित (ब्राहू) ब्राहुएं (दिवः अन्तान्) समस्त कामना और विजय योग्य व्यवहारों के पार तक (उत् अनष्टाम्) उत्तम रीति से पहुंचती हैं । (नूनं) निश्चय से (अस्य) इसका (सः महिमा) वह महान् सामर्थ्य (पनिष्ट) स्तुति योग्य होता है कि (सूरः चित्) विद्वान् पुरुष भी (अस्मै) इसकी (अपस्याम्) कर्मभिलाषा में (अनु दात्) सहयोग देता है । (२) परमेश्वर—सर्वोत्पादक सविता की ब्राहुओं के समान निग्रहानुग्रह की शक्तियां समस्त आकाश के दूर २ तक फैली हैं । उसकी महिमा गाई जाती है, सूर्य भी उसी की कर्मशक्ति के पीछे २ चलता है ।

स धा॑ नो देवः सविता सहावा सविपद्मसुपत्रिवसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिसुरुचीं मर्त्तभोजनमधं रासते नः ॥ ३ ॥

भा०—(सः देवः सविता) यह सर्वसुखदाता शासक, ऐश्वर्यवान् राजा (सहावा) बलवान् (वसु-मतिः) धनों का स्वामी होकर (वसूनि) नाना धनों को (सविपद्) उत्पन्न करे । (उरुचीं) बहुत पदार्थों को प्राप्त करने वाली (अमतिम्) उत्तम रूप की नीति को (वि-श्रयमाणः) विशेष रूप से आश्रय लेता हुआ (नः) हमें (मर्त्त-भोजनं) मनुष्यों से भोगने योग्य ऐश्वर्य और मनुष्यों का पालन, शासन, न्याय (रासते) प्रदान करे ।

इमा गिरः सवितारै सुजिहूं पूर्णगमस्तमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वर्यो वृहद्दस्मे दधातु युं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४।१२

भा०—(इमाः) ये (गिरः) उत्तम वाणियां (सु-जिहूं) उत्तम वाणी बोलने वाले (पूर्ण-गमस्तम्) पूर्ण रश्मियों से युक्त सूर्य के समान

पूरे परिमाण की बाहुओं वाले, तेजस्वी, (सुपाणिस्) उत्तम हाथों वाले वा उत्तम व्यवहारवान्, (सवितारं) शासक, आज्ञापक, ऐश्वर्यवान् पुरुष की (ईडते) प्रशंसा करती हैं अर्थात् उत्तम वाणियें ही उत्तम विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुष की प्रशंसा का कारण होती हैं। वह विद्वान् पुरुष (अस्मे) हमें (चित्रं) अद्वित (वयः) ज्ञान और बल (दधातु) प्रदान करे। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी साधनों से पालन करें। इति द्वादशो वर्गः ॥

(४६)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ रुद्रो देवता ॥ छन्दः—२ निचृतिनिष्ठुप् । १ विराङ्जगती ।

३ निचृजगती । ४ स्वराट्पंक्तिः ॥ चतुर्कृचं सूक्तम् ॥

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधावने ।
अषाङ्क्लहायु सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः १
भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (इमाः) ये (गिरः) उत्तम वाणियें, (स्थिर धन्वने) स्थिर धनुष वाले, दृढ़ लक्ष्यभेदी (क्षिप्रेषवे) तीव्रवेग से वाण चलाने में चतुर (देवाय) विजय की कामना वाले (स्वधावने) अपने राष्ट्र, अपने जन और अपने तन आदि की रक्षा करने में कुशल, (अपादाय) शत्रुओं से अपराजित (सहमानाय) शत्रुओं को पराजित करने वाले (वेधसे) कार्यों के विधान करने वाले, (तिग्मा युधाय) तीक्ष्ण शशाखों के स्वामी (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति, राजा के प्रति (भरत) कहो। और वह (नः) हमारे निवेदन (शृणोतु) सुना करे ।

स हि क्षयेणु क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवृन्नवन्तीरुपं नो दुरश्चरान्मीवो रुद्र जासु नो भव ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह राजा या सेनापति (क्षम्यस्य) क्षमा योग्य

या इस भूमि में रहने योग्य (जन्मनः) प्राणी या जनों के (क्षयेण) निवास और ऐश्वर्य और (दिव्यस्य) आकाश से होने वाले (क्षयेण) वृष्टि आदि ऐश्वर्य तथा (साम्राज्येन) बड़े भारी साम्राज्य से (हि) निश्चय से (चेतति) जाना जाय । वा ऐश्वर्य और साम्राज्य के नाते ही सबको जाने । हे राजन् ! तू (अवन्तीः अवन्) रक्षा करने वाली सेनाओं और प्रजाओं की रक्षा करता हुआ (नः) हमारे (दुरः) बनाये द्वारों के (उपचर) समीप आ । हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने और रोगों को दूर करने हारे विद्वन् ! (नः) हमारे (जासु) अपत्यादि प्रजाओं के बीच तू (अनमीवः) रोगरहित और अन्यों के रोगों से मुक्त करने वाला (भव) हो । अथवा वैद्य (क्षम्यस्य जन्मनः) भूमि पर उत्पन्न पदार्थों को (क्षयेण चेतति) दृष्टव्यहार या उनके रोग-नाशक सामर्थ्य से जाने और (दिव्यस्य जन्मनः) आकाश में उत्पन्न मेघ, जल, नक्षत्र, वायु आदि का ज्ञान (साम्राज्येन) सूर्यादि के आकाशविज्ञान से करे । (अवन्तीः) रोगों से बचाने वाली ओषधियों को (उप चर) प्राप्त कर (नः दुरः) हमें दुख देने वाले रोगों का उपचार कर । जिससे (नः) हमारा (जासु) पीड़ा देने वाला रोग (अनमीवः) पीड़ादायक न हो ।

या तै दिव्युद्वृष्टपृष्ठा दिवस्पर्ति क्षमया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सुहस्तं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥३॥

भा०—हे (सु-अपिवात) उत्तम रीति से शत्रुओं को वायु के प्रवण वेग के सदृश वेगयुक्त आक्रमण से दूर करने हारे (या) जो (ते) तेरी (दिव्युत) चमचमाती, तीक्ष्ण सेना (दिवः परि) विजय कामना से सब और (अवसृष्टा) छोड़ी हुईं (क्षमया) भूमि के साथ (परि चरति) सब और जाती है (सा नः) वह हमें (परि वृणक्तु) कष्ट न दे । हे विद्वन् ! (ते) तेरी (सहस्रं भेषजा) सहस्रों ओषधियां हैं । तू (नः

तोकेषु) हमारे बच्चों और (तनयेषु) पुत्रों पर (मा रीरिषा) हिंसा का प्रयोग मत कर ।

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीङ्गितस्य ।

आ नो भज वर्हिषि जीवशंसे युर्य पात स्वस्तिभिः सदा नः ४। १३

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने और प्रजा के दुःखों को दूर करने वाले ! तू (नः मा वधीः) हमें मत मार, मत दण्डित कर । (मा परा दाः) हमें त्याग मत कर, परे मत कर । हम (हीङ्गितस्य) क्रुद्ध हुए (ते) तेरे (प्रसितौ) बन्धनागार में (मा भूम) न हों । तू (जीव-शंसे) जीवित जनों से प्रशंसनीय (वर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र में (नः) हमें (आ भज) प्राप्त हो । हे विद्वान् जनो ! (युर्य) आप सब (नः) हमें (स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम साधनों से सदा पालन करो । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[४७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आपो देवताः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । विराट्निष्टुप् ।
४ स्वराट्पंक्तिः ॥ चतुर्शृचं सूक्तम् ॥

आपो यं वः प्रथमं देवयन्ते इन्द्रपानमूर्मिमक्षरवतेऽङ्गः ।
तं वो ब्रुयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवयन्तः) सूर्यवत् रश्मियें (इङ्गः) अक्ष या भूमि के (ऊर्मिम्) ऊपर उठने वाले जलों के अंश को (इन्द्र-पानम् अकुर्वत्) सूर्य द्वारा पान करने योग्य करते हैं उसी प्रकार है (आपः) विद्वान् प्रजाओ ! (देवयन्तः) देव अर्थात् राजा के समान आचरण करते हुए राजपुरुष (वः) आप लोगों में से (यं) जिस (प्रथमं) अग्रगण्य (ऊर्मिम्) तरंग के समान उज्ज्वत् पुरुष को (इङ्गः) भूमि और वाणी के ऊपर (इन्द्र-पानं) राजावत् पालक रूप से (अकु-

र्वत्) नियत करते हैं (वयं) हम लोग (तं) उस (शुचिम्) शुद्ध, धार्मिक (अरि-प्रम्) निष्पाप (घृत-प्रुणं) जल से अभिषिक्त (मधुमन्तं) मधुर स्वभाव वाले पुरुष को (अद्य) आज हम (वनेम) सेवन करें, आप हों, उसी से प्रार्थना करें।

तमुर्मिमाणो मधुमत्तमं ब्रोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।

यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥२॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आधार पर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, राजा, सेनापति, (वसुभिः) वसे प्रजाजनों के साथ (मादयते) सबको प्रसन्न करता है, हे (आपः) आप जनो! (तं वः ऊर्मिम्) आप लोगों के उस उत्तम उच्चत (मधुमत्तमं) अति मधुर गुणों से युक्त, अति वलवान् अंश ऐश्वर्य वा पुरुष वर्ग को (आशुहेमा) सेना, रथों वा अश्वों को अति शीघ्र प्रेरणा करने वाला (अपां नपात्) जलों के बीच नाव के समान तारक, प्रजाओं को नीचे न गिरने देने और प्रबन्ध में बांधने हारा पुरुष (अवतु) बचावे। हे विद्वानो! (वः) आप लोगों के उस ज्ञानमय या ऐश्वर्यमय अंश को हम (देवयन्तः) कामना करते हुए (अश्याम) प्राप्त करें।

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीदुवीदेवानामपि यन्ति पाथः ।

ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हृव्यं घृतघञ्जुहोत ३

भा०—(शत-पवित्राः) सैकड़ों रशिमयों से पवित्र (देवीः) दिव्य गुणयुक्त जलांश (स्वधया) अज्ञांश से (मदन्तीः) प्रजाओं को तृप्त करते हुए (देवानां) सूर्य-रशिमयों के (पाथः अपियन्ति) मार्ग को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार (शत-पवित्राः) सैकड़ों उत्तम संस्कारों से पवित्राचरण वाली (देवीः) विदुषी, उत्तम छिथां (स्वधया) अज्ञादि से (मदन्तीः) आनन्द लाभ करती हुईं (देवानां) उत्तम विद्वान् पुरुषों के (पाथः)

पालन योग्य ऐश्वर्य को (अपिथन्ति) प्राप्त करती हैं । (तः) वे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य युक्त अपने पति के (ब्रतानि) कर्मों को (न मिनन्ति) नाश नहीं करतीं । (सिन्धुभ्यः) पुरुषों को सम्बन्धों से बांधने वाली उन स्त्रियों के भी (धृतवत्) धृत से युक्त (हव्यं) जलों का खाद्य अज्ञों का उत्पादक अंश 'इन्द्रपान' अर्थात् जीवों के उपभोग योग्य इस अंश को रक्षित्यें उत्पन्न करती हैं । (२) विद्वान् लोग प्रजाओं और भूमि के श्रेष्ठ अंश को 'इन्द्रपान' अर्थात् राजोपभोग्य करते हैं । इसी प्रकार शिष्यवत् विद्या की कामनायुक्त पुरुष आप्त जनों की (इडः ऊर्मिम्) वाणी के उत्तम अंश को (इन्द्र-पानम् अकृष्णत) उत्तम जीवों में से रसवत् पान करने योग्य वा इन्द्र आचार्य द्वारा पान करने योग्य ज्ञान का अभ्यास करें ।

याः सूर्यौ रुशिमभिरात्तान् याभ्यु इन्द्रो अरदद्ग्रातुमूर्मिम् ।

तेसिन्धवो वरिवो धातना नो युयं पात् स्वस्तिभिः सदा नः ४।१४

भा०—(सूर्यः) सूर्य (रशिमभिः) अपनी किरणों से जिस प्रकार जलों को (आततान) फैला कर आकाश में व्यापक कर देता है और (याभ्यः) जिन जलों के लिये (इन्द्रः) विद्युत् (ऊर्मिम्) गमन योग्य (गातुम्) मार्ग को (अरदद्) बनाता है, उसी प्रकार (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (रशिमभिः) रक्षित्यों के समान अपने अधीन शासकों से (याः आततान) जिन आप्त प्रजाओं को विस्तृत करता है । और (याभ्यः) जिन प्रजाओं के हित के लिये (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (ऊर्मिम्) उच्चत भूमि को (अरदत्) कृषि द्वारा सम्पन्न करता है । अथवा (याभ्यः अन्द्रयः) जिन जल-धाराओं के लिये राजा भूमि खुदवा कर नहरें बनवाता है (ते) वे (सिन्धवः) नदियाँ वा जल-धाराएं (वः) हमें (वरिवः धातन) उत्तम धन प्रदान करें । हे उत्तम प्रजाजनों (ते) वे (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमें सदा उत्तम कल्याणजनक उपायों से पालन करो । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३ ऋभवः । ४ ऋभवो विश्वेदेवा वादेवताः ॥ छन्दः—१
मुरीकपंक्तिः । २ निचृत्विष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्कूचं सूक्तम् ॥

ऋभुद्गणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।

आ वोऽर्वाच्चः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नयं वर्तयन्तु ॥ १ ॥

भा०—हे (ऋभुक्षणः) सत्य ज्ञान वा महान् ऐश्वर्य का सेवन और
पालन करने वाले वडे पुरुषो ! हे (वाजाः) ज्ञानी पुरुषो ! हे (मघ-
वानः) प्रशस्त धनों के स्वामी जनो ! हे (नरः) उत्तम नाथको ! आप
लोग (सुतस्य) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य से (अस्मे) हमें (मादयध्वम्)
खूब प्रसन्न, सुखी करो । (वः) आप लोगों में से (अर्वाचः) नये नये
(क्रतवः न विभ्वः) बुद्धिमान एवं विशेष सामर्थ्यवान् पुरुष (यातां
यात्री जनों के लिये (नयं रथं) सब मनुष्यों को सुखदायी रथ (वर्त-
यन्तु) चलाया करें ।

ऋभुर्कूभुभिरुभिं वः स्याम् विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो ऋस्मां अवतु वाजसातुविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥२॥

भा०—(वः) आप लोगों में से (क्रभुः) सत्य व्यवहार, यज्ञ,
धन और बल से चमकने वाला वा महान् सामर्थ्यवान् पुरुष (क्रभुभिः)
उसी प्रकार सत्य धनादि से समृद्ध, अधिक सामर्थ्यवान् पुरुषों के साथ
मिलकर और (वाजः) बलवान् पुरुष भी (वाज-साती) युद्ध काल में
(अस्मान् अवतु) हमारी रक्षा करे । हम लोग (विभ्वः) विशेष बल-
शाली होकर (विभुभिः) विशेष सामर्थ्यवान् पुरुषों के साथ मिलकर
(शवसा) अपने बल से (शवांसि) शत्रु के सैन्यों को (अभि स्याम)
पराजित करें । और (युजा) सहयोगी (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा के
साथ मिलकर (वृत्रं तरुषेम) बड़ते हुए शत्रु को नोश करें ।

ते चिद्धि पुर्वीरभि सन्ति शासा विश्वां अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभां ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथुत्या कृणवन्विनृमणम् ३

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (ऋभुक्षाः) अति तेजस्वी पुरुषों को अपने अधीन बसाने हारा (वाजः) संग्राम-कुशल (अर्यः) स्वामी, (शत्रोः मिथुत्या) शत्रु के मारने के लिये (विभवान्) बड़े २ सामर्थ्यवान् पुरुषों को प्राप्त करे । और वे सब मिलकर (नृमणम्) धनै-शर्य को (वि कृणवन्) विविध प्रकारों से उत्पन्न करें । (उपर-ताति) मेघादि के समान शरवर्णी अस्त्रों से करने योग्य युद्ध काल में (ते चित् हि) वे ही (विश्वान् अर्यः) सब बढ़ते शत्रुओं को मारे और (शासा) शासन और शत्रु-बल से (पूर्वीः) अपने से पूर्व विद्यमान सेनाओं को भी (अभि सन्ति) मात करें ।

नू देवासा वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
सम्स्मे इषं वस्वो ददीरन्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४।१५॥

भा०—(देवासः) विद्वान्, दानशील पुरुष (नः) हमारे (वरिवः) उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि (कर्तन) करें । (विश्वे देवासः) सब वीर पुरुष (स-जोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः अवसे भूत) हमारी रक्षा के लिये तैयार रहें । (वस्वः) समस्त वसु, वसे प्रजाजन, वसाने वाले शासक और पृथिवी, वायु सूर्यादि (अस्मे) हमें (इषं ददीरन्) अन्न और इच्छानुकूल ऐश्वर्य प्रदान करें । हे विद्वानो ! (यूयं) आप सब लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारा सदा कल्याणकारी उपायों द्वारा पालन करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

(४६)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आपो देवताः ॥ इन्द्रः—१ निचृतिविष्टुप् । २, ३ विष्टुप् ।
४ विराट् विष्टुप् ॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनराना यन्त्यनिविशमानाः ।

इन्द्रो या वज्री वृषभो रुराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१॥

भा०—(समुद्र-ज्येष्ठाः) एक साथ ऊपर उठने वाले, उत्तम मेघों में स्थित, (देवीः आपः) उत्तम जल (अनिविशमानाः) कहीं भी स्थिर न रहते हुए, (सलिलस्य मध्यात् पुनरानाः) अन्तरिक्ष के बीच में से पवित्र करते हुए (यन्ति) आते हैं । (याः) जिनको (वज्री इन्द्रः) तीव्र बल से युक्त विद्युत् वा सूर्य (वृषभः) और वर्षणशाली मेघ या वायु (रुराद) छिन्न भिन्न करता है । (ताः आपः) वे जल (इह) इस पृथिवी पर (माम्) मुक्ष वसे प्रजाजनों को (अवन्तु) रक्षा करते हैं । इसी प्रकार (देवीः आपः) उत्तम आस प्रजाएँ और सेनाएँ (समुद्र-ज्येष्ठाः) समुद्र के समान अपार धन-बलशाली पुरुष को बड़ा मानने वाली (सलिलस्य मध्यात् पुनरानाः) अभिषेक योग्य जल के बीच स्थयं पवित्र हुई या सेनापति को पवित्र करती हुई कहीं भी स्थिर स्थान को न प्राप्त होकर प्राप्त होती हैं उनको बलशाली राजा ही (रुराद) वश करता है, वे राष्ट्र जन की रक्षा करें ।

या आपो दिव्या उत वा स्वर्वन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।

समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

भा०—(यः) जो (आपः) जल (दिव्याः) आकाश में उत्पन्न, या सूर्य विद्युतादि से उत्पन्न (उत वा) और जो (स्वर्वन्ति) बहती हैं जो (खनित्रिमाः) खोदकर प्राप्त की जायें (उत वा) और (याः स्वयं-जाः) जो स्वयं आप से आप भूमि से उत्पन्न हुई हों, (याः) जो (समुद्रार्थाः) समुद्र आकाश से आने वाली या नदी रूप से समुद्र को जाने वाले, (शुचयः) शुद्ध (पावकाः) पवित्र करने वाली (आपः) जलधाराएँ हैं वे (देवीः) उत्तम गुणों से युक्त होकर (इह माम् अवन्तु) इस राष्ट्र में मेरी रक्षा करें । इसी प्रकार आस प्रजाएँ भी लोक-च्यवहारों, विद्याविज्ञान-

में कुशल 'दिव्य' हैं। 'खनि' खान आदि की रक्षक 'खनित्रिम' या कृषि, कूप, खननादि से जीने वाली 'खनित्रिम' हैं। स्वयं अपने व्यवसाय या धन से बढ़ने वाले 'स्वयंजा' समुद्रवत् गम्भीर पुरुष के लिये अपने को सौंपने वाले भृत्यजन, ईमानदार और (पावकाः) अभिवत् अन्यों को उपदेश ज्ञानादि से पवित्र करने वाले गुरु आदि सभी मुक्ष प्रजा वा राजा की यहां इस राष्ट्र वा राष्ट्रपति पद पर मेरी रक्षा करें।

यासुं राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानुते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३॥

भा०—(यासुं मध्ये) जिन जलों वा प्रजाजनों के बीच में अभिपिक्त होकर (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रजा द्वारा स्वयंवृत राजा (जनानाम्) सब मनुष्यों के (सत्यानुते) सत्य और झड़ दोनों का (अवपश्यन्) विवेक करता हुआ (याति) प्राप्त होता है। वे (मधुश्चुतः) मधुर गुणों से युक्त, (शुचयः) शुद्ध और (याः) जो (पावकाः) पवित्र करने वाली हैं (ताः देवीः आपः) वे उत्तम गुणयुक्त जलधाराएं और विद्वान् प्रजाएं (माम् अवन्तु) मुक्ष राजा वा प्रजाजन का पालन करें।

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासुर्जं मदन्ति ।
वैश्वानुरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४॥१६॥

भा०—(यासु) जिन जलों वा प्रजाओं के बीच (वरुणः) प्रजाओं द्वारा वरण किया गया पुरुष अभिपिक्त होकर (राजा) राजा बन जाता है। (यासु सोमः) जिनके बीच में नाना ओषधिवर्ग, तथा सौम्य स्वभाव के विद्वान् हैं (यासु) जिन के बल पर (विश्वे देवाः) सब मनुष्य (ऊर्जम् मदन्ति) अज्ञ से तुसि लाभ करते, और बल प्राप्त करते हैं (यासु) जिनके बीच में (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों के बीच हितकारी (अग्निः) अभिवत् तेजस्वी नेता (प्रविष्टः) प्रविष्ट है (ताः आपः देवीः)

वे आप्त दिव्य गुण युक्त जल और प्रजाजन (माम् इह अवन्तु) मुझे
इस लोक में रक्षा करें। इति षोडशो वर्गः ॥

(५०)

बसिष्ठ ऋषिः ॥ १ मित्रावरुणैः ॥ २ आप्तिः ॥ ३ विश्वेदेवाः ॥ ४ नद्यो देवताः ॥

बन्दः—१, ३ स्वराट् विष्णुप् । २ निचूज्जगती । ४ मुरिंग्जगती ॥
चतुर्क्रमं सूक्तम् ॥

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दीर्शीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रप्सा विद्वत्सरुः ॥ १ ॥

भा०—हे (मित्रावरुण) स्नेहवान् और कष्टों के निवारण करने
वाले जनो! (इह) इस लोक में आप दोनों माता पिता के समान
(माम् रक्षतम्) मेरी रक्षा करें। (कुलाययत्) घर, या स्थान
घेर कर संघ बना कर रहने वाला वा कुत्सित रूप प्राप्त कराने वाला,
और (विश्वयत्) विविध रूपों में फैलने और विविध प्रकार से शोथ
प्रगट करने वाला रोग, विषादि पदार्थ (नः मा आगन्) हमें प्राप्त
न हो। (अजकावं) 'अजक' अर्थात् भेड़ बकरियों के समान छोटे जन्तुओं
को खा जाने वाले (दुर्दीर्शीकं) कठिनता से दीखने वाले अजगरादि-
वत् नाशकारी जन्तु को मैं (तिरः दधे) दूर करूँ। (त्सरुः) कुटिल-
चारी सर्प आदि (पद्येन रप्सा) पैर से होने वाले दोष द्वारा (मां मा
विदत्) मुझे प्राप्त न हो। कुटिलचारी सर्पादि मेरे पैर में न काट खावें।
इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा का प्रयोग विष दूर करने में पूर्वाचार्यों ने
लिखा है। इस दृष्टि से इस मन्त्र में आपे 'मित्र' शब्द से स्नेहयुक्त धृत
और 'वरुण' शब्द से 'जीरे' का ग्रहण होता है। दोनों के गुण देखिये
राजनिष्ठण्ड में—गोधृत—“वातपित्त विषापहम्”। 'जीरक शुक्ल'—
'कुमिन्नी विषहन्त्रो च' ॥ अथवा—जो पदार्थ विषादि का योग हो जाने पर

भी जीव को मरण से बचा सकें वे 'मित्र' तथा जो पदार्थ कष्टों का पहले ही वारण कर सकें, जिनकी उपस्थिति में रोगकारी जन्मतु वा सर्प, वृश्चिक, दंश, मशकादि दूर भाग जायं वे पदार्थ 'वरुण' वर्ग में रखने योग्य हैं। इसी प्रकार विष भी दो प्रकार के हैं। एक 'कुलाययत्' जो देह में कुत्सित रूप लावे, दूसरा 'विश्वथृत्' जो विविध शोथ उत्पन्न करे। इसी प्रकार रोगकारी जन्मतु दो प्रकार के हैं एक बड़ी सर्प जाति अजगरादि, और 'अजकाव', दूसरे दुर्दशीक जो कठिनता से दृष्टिगोचर हों। प्रायः ये सब वर्ग कुटिल या छद्मगति से जाने से 'त्सरु' हैं। वे प्रायः (पद्येन रपसा) पैर के अपराध से मनुष्यों पर आघात करते हैं। सांप बिचू आदि पर पैर आजाने से वे काट खाते हैं।

यद्विजामन्त्परुषि वन्दनं भुवदष्टीवन्तौ परि कुलफौ च देहत् ।

अग्निष्ठच्छ्रोच्चन्नप॑ बाधतमसितो मा मां पद्येन रपसा विदत्सरुः २

भा०—(यत्) जो (वन्दनं) देह को जकड़ने वाला विष (विजामन्) विविध पीड़ा के उत्पत्ति स्थान रूप पेट या (परुषि) पोरु या सन्धि स्थान पर (भुवत्) उत्पन्न होता है और जो (अष्टीवन्तौ) स्थूल अस्थि से युक्त गोड़ों और (कुलफौ) पैर के दखनों को (परि देहत्) सुजा दे, (तत्) उस विषमय रोग को (अग्निः) अग्नि तत्व (शोचत्) सन्तप्त करता हुआ (इतः बाधतम्) इस देह से दूर करे। (त्सरुः) छद्म गति से हुए देह में फैलने वाला रोग (पद्येन रपसा) पैर में विद्यमान दुखदायी रोग रूप से (मा मां विदत्) मुक्षे प्राप्त न हो। अर्थात् सन्धिवात, गठिया आदि मुक्षे न हो। 'अग्निः' शब्द से अग्नि तत्व, सूर्यताप, अग्नि बीज, रसटोक्स, ब्रायोनिया आदि आगनेय पदार्थ लिये जाते हैं।

अग्निकः चित्रकः । अग्निको भल्लातकः । अग्निजः अग्निजारः । अग्निर्गर्भा तेजस्विनी । अग्निगर्भः सूर्यकान्तः । अग्निजिहा कलिकारी, अग्निज्वाला धातकी महाराष्ट्री च । अग्निदमनी । अग्नि धमनो निम्बः । अग्नि-

भासा ज्योतिप्मती । अग्निमन्थः । अग्निवल्लभः राजा सर्वकश्च । अग्नि
वीर्यम् सुवर्णम् । अग्निसंभवः कसुभम् । अग्नि सहायः परावतः । अग्नि-
सारो रसाज्ञनम् । अग्निकालः चित्रकः भल्लत्कः सुवर्णं च । इत्येते सर्वे-
पदार्था वातदोपशमनाः भवन्ति । ऐतेषां गुणाः आयुर्वेदवैद्यकग्रन्थेषु द्रष्टव्याः ।
यच्छ्रुलम्लौ भवति यन्नदीषु यदोपधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरुतस्तत्सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदुत्सरः ३-

भा०—(यत् विषम्) जो जल या रस (शालमलौ भवति)
शालमलि वर्ग के वृक्षों में होता है (यत् विषम् नदीषु) जो जल, वा रस-
नदियों में होता है, (यत् विषम्) जो रस (ओषधिभ्यः परि जायते)
ओषधियों से उत्पन्न होता है, (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् जन (तत्)-
उस नाना प्रकार के जलों या रसों को (इतः) इन २ स्थानों से (निः
सुवन्तु) ले लिया करें और चिकित्सा का कार्य करें । जिससे (त्सरः)
झुपी चाल का रोग (मां) मुक्ते (पद्येन रपसा) आने वाले पापाचरण
से वा चरणादि के अपराध से (मा विदत्) न प्राप्त हो । बड़, पीपल,
गूलर आदि का दुग्ध रस आदि भी वातनाशक, सूजाक, सिफ़लिसादि
रोगों के भयंकर विषों का नाश करते हैं इसी प्रकार नाना नदियों और
ओषधियों के रसों से आने वाले सब प्रकार के कष, ज्वर, कुष्ठ, पामा आदि
रोग नष्ट होते हैं ।

या: प्रवतो निवत उद्वत उद्वन्वतीरनुदकाश्च याः ।

ता श्रुस्मभ्यं पर्यसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपुदा भवन्तु
सर्वां नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥ १७ ॥

भा०—(या:) जो नदियां (प्रवतः) दूर २ देशों तक जाने वाली,
(या: निवतः) जो नीचे की ओर बहने वाली, (या: उद्वतः) जो ऊंचे
की ओर जाने वाली, (उद्वन्वतीः) जो प्रचुर जल वाली, (या: च अनु-

दकाः) और जो जलरहित या अल्प जल की नदियां हैं (ताः) वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये (पयसा) उत्तम जल से देश को सींचती हुई (शिवाः भवन्तु) कल्याणकारी हों (देवीः) सुखप्रद, अज्ञादि देने वाली हों और (अशिपदाः) भोजनार्थ सब प्रकार के अज्ञोत्पादक हों और (सर्वाः नद्यः) सब नदियें (अशिमिदाः भवन्तु) अहिंसाकारिणी हों। अध्यात्म में—(१) (कुलाययत्) कुलाय अर्थात् अहंकारादि कृति को उत्पन्न करने वाला और (विश्वयत्) विश्व को बनाने वाला प्रधान प्रकृतितत्त्व (नः मा आगन्) हमें प्राप्त न हो। 'मित्र' और 'वरुण' प्राण और उदान गुरुजन मेरी रक्षा करें। (अजकावं) 'अजक' आत्माओं के समूह का रक्षक परब्रह्म (हुर्दृशीकं) बड़ी कठिनता से देखे जाने योग्य है। तो भी मैं उसे (तिरः) सदा विद्यमान के समान वा सब से तीर्ण, पृथक् रूप में (दधे) धारण करूँ। जिससे (त्सरुः) ब्रह्मचारी, कुटिल काम क्रोधादि (पद्येना रपसा मा विदत्) आचार सम्बन्धी पाप से हमें प्राप्त न हो। (२) जो आप (विजामन्) विविध जन्म लेने में और पर्व पर बाधक होता है, जो (अष्टीवन्ती परिकुलफौ च) अस्थि वाले (कुलफौ = कुलपौ) प्राणगणों के पालक स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के देहों में (परि रेहत्) व्यापता है 'भग्निः' ज्ञानी पुरुष प्रभु उस अज्ञान दोष को इसी जन्म में नाश करे। (३) जो (विषम्) विविध बन्धनों को काटने में समर्थ ज्ञान-शान्तिप्रद (नदीषु) उपदेष्टा गुरुओं में हो या प्रभु में हो और जो बल वा ज्ञान (ओषधीभ्यः) पापदाहक तेज को धारण करने वाली प्रजाओं में है सब विद्वान् उस ज्ञान को ओषधि रसवत् मेरे लिये प्राप्त करावें। (४) इसी प्रकार उत्तम, मध्यम, निकृष्ट ज्ञानवान् अज्ञानवान् सभी मनुष्य प्रजाएं सुख कल्याणकारिणी हों, ज्ञान अज्ञादि दें, सब (अशि-पदाः) अज्ञ देने वाली और (अशिमिदाः) अहिंसक हों। इति सप्तदशो वर्गः ॥

(५१)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आदित्यादेवताः ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्रिष्टुप् ॥
तृचं सूक्तम् ॥

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन ।

अनागास्त्वे अदितित्वे तुरासे इमं यज्ञं दधतु श्रोपमाणाः ॥१॥

भा०—(आदित्यानाम्) ‘अदिति’ अखण्ड और अदीन परमेश्वर के उपासक, प्रजाओं को अपनी शरण में लेने वाले उत्तम पुरुषों के (नूतनेन अवसा) अति उत्तम ज्ञान से और (शन्तमेन शर्मणा) अति शान्तिदायक गृहवत् देह से हम (सक्षीमहि) अपने आपको सम्बद्ध करें । वे (तुरासः) अति शीघ्रकारी, (श्रोपमाणाः) हमारे दुःख-सुख, विनयादि को सुनते हुए हमारे (इमं यज्ञं) इस उत्तम सत्संग ज्ञान दान आदि सम्बन्ध को (अनागास्त्वे) हमें पाप रहित करने और (अदितित्वे) अखण्ड बनाये रखने के लिये (दधतु) सदा स्थिर रखें ।

आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्थमा वरुणो रजिष्टाः ।

अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिवन्तु सोममवसे नो अद्य ॥२॥

भा०—(आदित्यासः) पूर्ण वस्त्राचारी विद्वान्, ‘अदिति’ प्रभु परमेश्वर के उपासक स्वयं (अदितिः) यह भूमि या, माता पितादि, (मित्र) स्नेही जन, (अर्थमा) न्यायकारी दुष्टों का नियन्ता (वरुणः) श्रेष्ठ जन, (रजिष्टः) अति धर्मात्मा, वे सब (अस्माकं) हमारे (भुवनस्य) समस्त लोग (गोपाः) रक्षक (सन्तु) हों । वे (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (अद्य) आज (सोमम् पिवन्तु) ओषधि रस के समान अपने को सदा स्वस्थ रखने के लिये अल्प मात्रा में ही सदा ऐश्वर्य का भोग करें ।

आदित्या विश्वे मूरतश्च विश्वे देवाश्च विश्वे ऋभवश्च विश्वे ।

इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टवाना युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१८

भा०—(विश्वे आदित्यः) समस्त बारह मासों के समान नाना सुखप्रद विद्वान् (विश्वे मूरतः) समस्त वायुगण, समस्त मनुष्य, (विश्वे देवाः च) समस्त विद्वान् पुरुष, और पृथिवी आदि लोक, (विश्वे ऋभवः च) समस्त सत्य और तेज से प्रकाशित जन (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (अग्निः) तेजस्वी, (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय ढी पुरुष, ये सब (तुष्टवानाः) स्तुति किये जायं । हे स्वजनो ! (युयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप सब लोग हमें उत्तम कल्याणकारी साधनों से सदा पालन करें । दृथ्यष्टादशो वर्गः ॥

[५२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आदित्या देवताः ॥ छन्दः—१, ३ स्वराट्पंक्तिः । २ निचू-
त्रिष्ठुष्टुप् ॥ तृचं सक्तम्

आदित्यासु अदितयः स्याम् पूर्वैवत्रा वसवो मर्युत्रा ।

सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥ १ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ब्रह्मचारी निष्ठ पुरुषो ! हम लोग भी (अदितयः) अखण्ड बलशाली (स्याम) हों । हे (वसवः) गुरु के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने हारे विद्वान् पुरुषो आप लोग, (देवत्रा) विद्वानों और (मर्युत्रा) मनुष्यों के बीच (पूः) नगरी के समान सब के रक्षक होओ । हे (मित्रावरुणा) प्राण उद्धान के समान प्रिय और श्रेष्ठ जनो ! हम लोग (सनन्तः) ऐश्वर्य को प्राप्ति वा भोग करते हुए भी (सनेम) दान किया करें । हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवीवत् माता पिता जनो ! हम (भवन्तः) उत्तम सामर्थ्यवान् होकर (भवेम) सदा रहें ।

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्तु शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मावो भुजेमान्यजातुमेनो मा तत्कर्म वसवोयच्यध्वे ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही और (वरुणः) दुःखों और पापों के वारक
श्रेष्ठजन और (गोपाः) रक्षक जन (नः) हमें (तत् शर्म मामहन्तु) वह
नाना सुख प्रदान करें । (तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रों को भी सुख दें ।
(वः) आप लोगों में रहते हुए हम (अन्य-जातम् एनः) औरों से
उत्पन्न अपराध, या पाप का (मा भुजेम) भोग न करें । हे (वसवः)
वसे विद्वान् जनो ! (एत् चयध्वे) जिसको आप लोग नाश करो (तत्
मा कर्म) वह काम हम न करें ।

तुरुण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्तु रत्नं देवस्य सवितुर्विद्यानाः ।

पिता च तन्नो मुहान्यजंत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ३।१९

भा०—(तुरुण्यवः) शीघ्र कर्म करने में कुशल, अग्रमादी, (अंगि-
रसः) देह में प्राणवत् राष्ट्र में तेजस्वी पुरुष (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पा-
दक सर्वसुखदाता प्रभु को (विद्यानाः) स्मरण करते हुए उसके (रत्नं)
परमैश्वर्यमय राज्य-रूप रत्न को प्राप्त करें । (तत्) वह ही (नः) हमारा
(यजत्रः) अति पूज्य, सर्व सुखदाता (महान्) बड़ा (पिता च)
पालक पिता है । (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुष (समनसः) एक
समान चित्त होकर (जुषन्त) प्रेम से वर्ताव करें । इत्येकोनविद्वा वर्गः ॥

[५३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१ विष्टुप् । २, ३ निचृ-
त्विष्टुप् ॥ तृतीं सूक्तम् ॥

प्र यावो यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सुवाध ईळे वृहती यज्ञत्रे ।

ते खिद्धि पूर्वै कुवयो गृणन्तः पुरो मुही दधिरे देवपुंत्रे ॥ १ ॥

भा०—(यावा पृथिवी) भूमि और सूर्य के समान (वृहती)

बड़ी, (यजत्रे) सत्संग करने योग्य, पूज्य (देव-पुत्रे) विद्वान् पुत्रों के माता पिताओं को मैं (यज्ञः) दान, मान, सत्कारों से, और (नमोभिः) नमस्कारों से (सबाधः) जब र बाधा या पीड़ा युक्त होऊँ (ईडे) उनकी पूजा करूँ । (त्ये चित् मही) उन दोनों पूज्यों को (पूर्वे) पूर्व के (गृणन्तः) उपदेश देने वाले (कवयः) विद्वान् पुरुष (पुरः दधिरे) सदा अपने सन्मुख, पूज्य पद पर स्थापित करते रहे हैं ।

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नौ द्यावापृथिवी दैवयेन जनेन यातुं महि वां वरुथम् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पूर्वजे पितरौ) पूर्व के विद्वानों से शिक्षित होकर विद्वान् हुए (ऋतस्य सदने) सत्य व्यवहार के आश्रय रूप (पितरा) माता पिताओं को (नव्यसीभिः गीर्भिः) अतिस्तुत्य वाणियों से (प्र कृणुध्वम्) विशेष आदरयुक्त करो, उनके प्रति आदरयुक्त वचनों का प्रयोग किया करो । हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि के समान अज्ञ, जल, तेज और आश्रय से प्रजा का पालन करनेवाले माता पिताओ ! आप लोग (नः) हमें (दैवयेन जनेन) विद्वान् पुरुषों से शिक्षित जनों के साथ (वाः महि वरुथं) अपने बड़े भारी घर को (आ यातं) प्राप्त होओ ।

उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरुणि द्यावापृथिवी सुदासे ।

अस्मे धत्तं यदस्त्वक्धोयु युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।२०

भा०—हे (द्यावा पृथिवी) भूमि सूर्य वा भूमि विद्युत् के तुल्य माता पिताओ ! (सु-दासे) आप दोनों उत्तम भूत्यों और उत्तम दानशील गुणों से युक्त होओ । अथवा उत्तम दानशील पुरुष के लिये (वां) आप दोनों के (पुरुणि रत्न-धेयानि) बहुत से सुन्दर ऐश्वर्य (सन्ति) हैं । (यत्) जो भी (अस्त्वक्धोयु) बहुत अधिक जीवनप्रद (भसत्) हो वह (अस्मे धत्तं) हमें प्रदान करो । (यूयं) आप सब लोग (स्वस्तिभिः)

उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करें । 'अस्कृ-
धोयु'—अस्कृधोयुरकृध्वायुः । कृध्विति ह्रस्व नाम । निकृत्तं भवति । इति
विंशो वर्गः ॥

[५४]

वास्तोष्पिः ॥ वास्तोष्पितिदेवता ॥ अन्दः—१, ३ निचृतश्चिष्ठप् । २ विराट्
त्रिष्ठप् ॥ तुचं सूक्न् ॥

वास्तोष्पते प्रति जानीद्युस्मान्तस्वावैशो अनमीवो भवा नः ।
यत्त्वेमहे प्रति तन्मो जुषस्व शं नौ भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

भा०—हे (वास्तोः) वास करने योग्य गृह और राष्ट्र के (पते)
पालक ! गृहपते ! राजन् ! तू (अस्मान् प्रति जानीहि) हम में प्रत्येक को
जान वा प्रतिज्ञा पूर्वक हमारे प्रति व्यवहार किया कर । (नः) हमारे प्रति
(सु आवेशः) उत्तम भावों और वर्तावों वाला तथा (स्व-आवेशः) अपने
ही गृह के समान प्रेम से वर्तने वाला और (अनमीवः) रोगादि
से पीड़ा न होने देने वाला (भव) हो । (यत् त्वा ईमहे) जो हम तेरे समीप
आते और तुझ से याचना करते हैं (नः तत् प्रति जुषस्व) वह तू हमारे
प्रति मान दर्शा और प्रदान कर । (नः द्विपदे शम्, नः चतुष्पदे शम्)
हमारे दो पाये भृत्य पुत्रादि और चौ पाये गाय, मैंस अश्व आदि का भी
कल्याणकारी हो ।

वास्तोष्पते प्रतरणो न पृथि गयुस्फानो गोभिरश्वभिरिन्दो ।

श्रुजरासस्ते सुख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥२॥

भा०—हे (वस्तोः पते) निवास करने के योग्य देह, गृह, और राष्ट्र
के पालक प्रभो ! गृहपते ! और राजन् ! तू (नः) हमारा (प्रतरणः)
नाव के समान संकट से पार उतारने वाला और (गय-स्फानः) गृह, प्राण
और धन का बढ़ाने वाला (पृथि) हो । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् !

चन्द्रवत् आह्लादक ! तू (नः) हमें (गोभिः अश्वेभिः) गौओं और अश्वों सहित प्राप्त हो । (ते सख्ये) तेरे मित्र-भाव में हम (अज-रासः) जरा, वृद्धावस्था से रहित, सदा उत्साह और बल से युक्त होकर रहें । (नः) हम से तू (पिता इव पुत्रान्) पुत्रों को पिता के समान (जुषस्व) प्रेम कर ।

वास्तोष्पते शृग्मया सुंसदा ते सक्षीमहि रुणवया गातुमत्या ।
प्राहि क्षेम उत योगे वरं नो युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२६॥

भा०—हे (वास्तोः पते) गृह, देह और राष्ट्र के पालक ! (ते) तेरी (रण्वा) अति रमणीय (शृग्मया) सुखदायक (गातुमत्या) उत्तम वाणी और उत्तम भूमि से युक्त (संसदा) सहवास और सभा से हम लोग (सक्षीमहि) सदा सम्बन्ध बनाये रखें । (क्षेमे) रक्षा-कार्य और (योगे) अप्राप्त धन को प्राप्त करने में (नः) हमारी (वरं) अच्छी प्रकार (पाहि) रक्षा करो वा (नः वरं पाहि) हमारे धन की रक्षा करो । हे विद्वान् जनो ! (युयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा किया करें । इत्येकोनविश्वो वर्गः ॥

[५५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ वास्तोष्पतिः । २—८ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृ-द्वायत्री । २,३,४ वृहत्ती । ५,७ अनुष्ठप् । ६,८ निचृदनुष्ठप् । अष्टर्च सूक्तम् ॥

अमीवृहा वास्तोष्पते विश्वा रूपारथ्याविशन् ।

सखा सुशेव पधि नः ॥ १ ॥

भा०—हे (वास्तोः पते) गृह, देह और राष्ट्र के पालक प्रभो ! गृह-पते ! राजन् ! तेरे अधीन (विश्वा रूपाणि) सब प्रकार के नाना रूप अर्थात् जीवगण बसते हैं । तू (अमीव-हा) सब प्रकार के रोगों, कष्टों का नाशक

और (सुशेवः) उत्तम सुखदायक (नः) हमारा (सखा एवि) मित्र होकर रह ।

यदर्जुन सारमेय द्रुतः पिशङ्ग यच्छुसे ।

वीव भ्राजन्त ऋष्य उप स्वर्वेषु वप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥

भा०—हे (अर्जुन) धनादि के उत्तम रीति से उपार्जन करने वाले ! हे प्रतियतनशील ! हे शुभ्र ! विद्वन् ! हे (सारमेय) सारवान्, बलवान् बलयुक्त एवं बहुमूल्य पदार्थों का मान-प्रतिमान करने और उनसे जाने जाने चाह्य ! हे (पिशङ्ग) तेजस्विन् ! तू (द्रुतः) अपने दांतों और अन्यों को खण्डित करने वाले शस्त्रों को (यच्छुसे) नियम में रख । (वप्सतः) खाते हुए मनुष्यों के दांत जिस प्रकार (स्वर्वेषु उप) ओंठों के पास चमकते हैं उसी प्रकार (स्वर्वेषु) बने नगरों के पास (वप्सतः) राष्ट्र का भोग करते हुए तेरे (ऋष्यः) शस्त्र-अस्त्रादि, (वि इव भ्राजन्त) विशेष रूप से चमकते हैं । (नि षु स्वप) हे बलवान् राजा के प्रजाजन ! तू अच्छी प्रकार सुख की निद्रा ले ।

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनः सर ।

स्तोतैनिन्द्रस्य रायसि किंस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥३॥

भा०—हे (सारमेय) उत्तम बल को धारण करने वाली सेना के उत्तम जन ! तू (स्तेनं) चौर और (तस्करं) उस निन्द्य कार्य को करने वाले ढाकू के (राय) पास पहुंच और उसे पकड़ । (पुनः सर) तू उस पर वार २ आक्रमण कर । तू (हन्द्रस्य स्तोतैन्) राजा के प्रति उत्तम उपदेश करने वाले विद्वानों को (किं रायसि) क्यों पकड़ता है । (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमारे प्रति दुष्ट कुत्ते के समान क्यों कष्ट पीड़ा देता है, तू (नि षु स्वप) नियमपूर्वक सुख से निद्रा ले और अन्यों को भी सुख से सोने दे ।

त्वं सूकरस्य दर्दहि तव दर्दनुं सूकरः ।

स्तोतृनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप् ॥४॥

भा०—हे राजन ! (त्वं) तू (सूकरस्य) उत्तम कार्य करने वाले को (दर्दहि) खूब बढ़ा । (सूकरस्य = सु-करस्य) उत्तम रीति से वश करने योग्य, सुसाध्य शत्रु को (दर्दहि) विदीर्ण कर । उसमें अच्छी प्रकार भेद नीति का प्रयोग कर । और (सूकरः) उत्तम युद्धकर्ता शत्रुजन (तव दर्दहि) तेरे राष्ट्र में भी भेदन करने में समर्थ है । तू (स्तोतृन्) उत्तम विद्वानों के प्रति (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य का (रायसि) दान दिया कर । (अस्मान् किम् दुच्छुनायसे) हमारे प्रति क्यों दुष्ट कुत्ते के समान दुर्व्यवहार करता है, (नि षु स्वप्) तू सदा सावधान रहकर सुख की निद्रा सोया कर ।

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विशपतिः ।

सुसन्तु सर्वे ज्ञातयः स स्त्वयमुभितो जनः ॥ ५ ॥

भा०—राष्ट्र और गृह के उत्तमप्रबन्ध रहने पर (माता सस्तु) माता सुख की नींद सोवे । (पिता सस्तु) पिता भी सुख की नींद सोवे । (श्वा सस्तु) कुत्ता आदि रखवारे भी सुख से सोवें । (विशपतिः सस्तु) प्रजाभौं का स्वामी राजा भी सुख से सोवे । (सर्वे ज्ञातयः ससन्तु) सब सम्बन्धी जन भी सुख से सोवें । (अयम्) यह (अभितः जनः) चारों ओर बसा प्रजाजन भी (सस्तु) सुख से सोवे ।

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।

तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हुमर्य तथा ॥ ६ ॥

भा०—(यः आस्ते) जो बैठा हो (यः च चरति) जो चलता है, (यः जनः) जो मनुष्य (नः) हमें (पश्यति) देखता हो (तेषां) उन सबके (अक्षाणि) आंखों आदि इन्द्रियों को हम (संहन्मः) अच्छी प्रकार निर्मीलित करें जिससे बाहर के भीतर, भीतर के बाहर वालों को नहीं देख पावें ।

ऐसे (यथा) जैसे (इदं हम्यु) यह उत्तम भवन बना है (तथा) उसी प्रकार हम भी घर बनावें।

सुहस्त्रशृङ्गो वृपभो यः समुद्रादुदाचरत् ।

तेनां सहस्येना वृयं नि जनान्तस्वापयामसि ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रात् सहस्र-शृङ्गः) समुद्र से सहस्रों किरणों वाले उगते सूर्य के समान (यः) जो तेजस्वी पुरुष (वृपभः) बलवान्, प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला होकर (उत् आचरत्) उत्तम पद पर विराज कर न्यायानुकूल वर्तता है, (तेन सहस्येन) उस बलवान् पुरुष के सहयोग से (वर्यं) हम (जनान्) सब प्रजाजनों को (नि स्वापयामसि) सुख की निद्रा सोने दिया करें।

प्रोष्टेश्या वृष्टेश्या नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।

स्थियो याः पुरुषगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥ २२ ॥ ३ ॥

भा०—(याः नारीः) जो स्थियां (प्रोष्टे-शयाः) आंगन या उत्तम भवन पर सोती हैं (या वृष्टे-शयाः) रथ आदि में सोती हैं (याः तल्प-शीवरीः) जो उत्तम सेजों में सोती हैं और (याः पुरुषगन्धाः स्थियः) जो पुण्य, उत्तम गन्ध वाली, शुभ-लक्षणा स्थियां हैं (ताः सर्वाः) उन सबको (स्वापयामसि) सुख की नींद सोने दें। ऐसा उत्तम राज्य और गृह का प्रबन्ध करें। अनुक्रमणिका में इस सूक्त को 'उपनिषत्' लिखा है। अतः अध्यात्म योजना देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य कां० ४ सू० ५। मं० १, ३, ६॥ इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[५६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ आर्ची गायत्री । २, ६, ७, ८ भुरिगार्ची गायत्री । ३, ४, ५ प्राजापत्या वृहती । ८, १० आच्युष्णिक् । ११

निचृदार्ढुष्टिक् १२, १३, १५, १८, १६, २१ निचृतिष्ठप् । १७,
२० त्रिष्ठप् । २२, २३, २५ विराट् त्रिष्ठप् । २४ पंक्तिः । १४, १६
स्वराटपंक्तिः ॥ पञ्चविशत्यृचं स्फूर्तम् ॥

क ई व्यक्ता नरः सनीढा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥

भा०—(ईम्) सब प्रकार से (वि-अक्ता:) विशेष रूप से तेजस्वी, कान्तियुक्त, कमनीय गुणों से सम्पन्न, (सनीढा:) एक ही समान स्थान में रहने वाले, (रुद्रस्य) दुःखों, कष्टों को दूर करने वाले, दुष्टों के खलाने वाले, प्रभु, परमेश्वर, विद्योपदेष्टा आचार्य के (के मर्याः) कौन विशेष मनुष्य (नरः) उत्तम नायक और (सु-अश्वाः) उत्तम अश्वों वाले वा जितेन्द्रिय हैं । (२) रुद्र, सेनापति के नायक विशेष कान्तियुक्त, (स-नीढा:) नीले तुरं वाले, (मर्याः) शत्रु को मारने में समर्थ, उत्तम धुड़सवार सब ओर रहें । (३) रुद्र परमेश्वर के (नरः) जीव (स-नीढा:) देह सहित, मरणधर्मी, उत्तम इन्द्रियों से सम्पन्न हैं ।

नक्तिहैंपां जनूषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन जीवों के (जनूषि) जन्मों को (नक्तिः वेद हि) निश्चय से कोई भी नहीं जानता । (अङ्ग) हे विद्वन् ! (ते) वे सब (मिथः) स्त्री पुरुष, नर मादा परस्पर मिलकर (जनित्रम्) जन्म (विद्रे) प्राप्त कर लेते हैं । इसी प्रकार सेनापति सैन्य भट्टों की जन्म जाति कौन जाने ? वे परस्पर मिलकर अपना सैन्य रूप प्रकट करते हैं । अभि स्वपूर्भिर्मिथो वृपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृधन् ॥ ३ ॥

भा०—वे जीवगण (मिथः) परस्पर (स्वपूर्भिः) अपने साथ सोने वाली अथवा (स्वपूर्भिः = स्व-भूमिः) अपने उत्पन्न होने योग्य भूमियों से (मिथः) परस्पर मिलकर (अभि वपन्त) परस्पर सन्मुख होकर बीज वपन करते हैं । वे (वातस्वनसः) वायु के समान प्राण के होकर बीज वपन करते हैं । वे (वातस्वनसः) वायु के समान प्राण के बल पर ध्वनि करने वाले (श्येनाः) वाजपक्षी के समान एक देह से

दूसरे देह में जाने वाले होकर भी (अस्पृधन्) परस्पर स्पर्द्धा करते हैं, भोग्य पदार्थों में ममता करते हैं । (२) वीर सैनिक (मिथः) परस्पर मिलकर (स्वपूभिः) अपने शत्रुओं से (अभि वपन्त) सन्मुख शत्रुओं का छेदन करते और (वात-स्वनसः) वायुवत् गर्जन करते हुए (इयेनाः) बाज के समान आक्रमण करते हुए (अस्पृधन्) शत्रु के साथ स्पर्द्धा करते, उससे बल में बढ़ने और जीतने का यत्न करते हैं ।

एतानि धीरो निष्णा चिकेत् पृश्निर्यदूधो मुही ज्ञभार् ॥ ४ ॥

भा०—(पृश्निः) सेचन करने वाला सूर्य और (मही) भूमि (यत्) जिस प्रकार से (ऊधः) जलधारक मेघ को (ज्ञभार) धारण करता है, इसी प्रकार (पृश्निः) वीर्यसेक्ता पुरुष और (मही) पूज्य माता (यत्) जो मिलकर बालक और उसके पान के लिये (ऊधः) स्तनादि धरती है (एतानि निष्णा) इन सत्य सिद्धान्तों को (धीरः) बुद्धि-मान् पुरुष (चिकेत) अवश्य जाने ।

सा विद् सुवीरा मरुद्धिरस्तु सुनातसहन्ती पुष्यन्ती नृमणम् ॥५॥

भा०—(सा) वह (विद्) प्रजावर्ग (मरुद्धिः) वायुवत् बल-चान् विद्वान् पुरुषों से ही (सु-वीरा) उत्तम वीरों वाली (अस्तु) हो । वह (सनात) सदा (सहन्ती) शत्रु को पराजित करती हुई और (नृमणं पुष्यन्ती) धनैश्वर्य को पुष्ट, समृद्ध करती हुई रहे । इसी प्रकार स्त्री में पुत्र रूप से पति प्रवेश करता है इससे वह 'विद्' है । वह भी गृहस्थ का भार सहती हुई, धन की बुद्धि करती हुई उत्तम पुत्रों से सुपुत्रा हो ।

याम् येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया सम्मिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥६॥

भा०—इसी प्रकार राजा की प्रजाएँ और गृहस्थ में खियें और सेनापति की सेनाएँ भी (येष्ठाः) अपने लक्ष्य की ओर जाने में उत्तम, (शुभाः) कान्तियुक्त, कल्याणकारिणी (शोभिष्ठाः) उत्तम रीति से सुशोभित

(श्रिया) उत्तम लक्ष्मी से (सं-मिश्छः) संयुक्त वा (श्रिया) आश्रय करने योग्य सहचर, सहचरी से युक्त (ओजाभिः) बल पराक्रमों से (उग्राः) सदा बलवान् हों। वे (यामं येष्ठाः) उत्तम नियम, प्रबन्ध, विवाहादि बन्धनों को प्राप्त हों।

उग्रं ब्रु ओजः स्थिरा शवांस्यधां मुख्निर्गृणस्तुविष्मान् ॥७॥

भा०—हे विद्वानो, वीरो, प्रजाजनो वा जीवो ! (वः) आप लोगों का (ओजः) बल पराक्रम (उग्रं) उन्नत कोटि का, शत्रुओं को भयप्रद, गम्भीर और (वः शवांसि स्थिरा) आप लोगों का बल स्थिर और (मुख्निः सहगणः) बलवान् वीरों, प्राणों तथा विद्वानों सहित गण (तुविष्मान्) बलवान् हो ।

शुभ्रो वृः शुष्मः क्रुद्धमी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्वस्य धृष्णोः ८

भा०—हे वीर प्रजाजनो ! विद्वानो एवं जीवो ! (वः) आप लोगों का (शुष्मः) बल, बलवान् देह (शुभ्रः) शोभायुक्त, प्रशंसनीय हो । आप लोगों के (मनांसि) मन (क्रुद्धमी) दुष्टों के प्रति क्रोधयुक्त हों । और (शर्वस्य) आप लोगों के बलवान् और (धृष्णोः) शत्रुपराजयकारी सैन्य का (धुनिः) सञ्चालक शत्रुओं और अधीनस्थों को कंपाने हारा, प्रभाववान् नायक (मुनिः इव) मनवशील विद्वान् के समान गम्भीर विचारशील हो । सेना का नायक ओछा और अति कटुभाषी, क्षुद्रमति न हो ।

सनैम्यस्मद्युयोति दिव्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ् नः ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् वीर जनो ! (अस्मद्) हम से अपना (सनेमि) चक्रधारा से युक्त (दिव्यम्) चमचमाते तेजस्वी शश बल को (युयोति) सदा पृथक् रखतो । और (वः) आप लोगों की (दुर्मतिः) दुष्ट त्रुद्धि (नः) हमें और (नः मतिः वः) हमारी दुष्टमति आपको (मा प्रणक्) कभी प्राप्त न हो, एक दूसरे का विनाश भी न करे ।

प्रिया वो नाम् हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥१०।२३॥

भा०—(यत् नाम्) जो उत्तम, नाम, कीर्ति वा अन्न (वः मरुतः) प्राणवत् प्रिय आप लोगों को (तृपत्) तृप्त करे, सुखी, प्रसन्न करे है (वावशानाः) उत्तम अन्न, यशादि की कामना करने वाले सज्जनो ! मैं कुशल (तुराणां) अति शीघ्रकारी, अप्रमादी, शत्रुहिंसक (वः) आप लोगों के लिये वही (प्रिया नाम्) प्रिय नाम वा अन्नादि पदार्थ (आ हुवे) आदर पूर्वक कहूँ और प्रदान करूँ । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

स्वायुधासं इष्मिणः सुनिष्का उ त स्वयं तन्वः शुभमानाः ११

भा०—हे वीर ! विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (स्वायुधासः) उत्तम शश्वास सम्पन्न, (इष्मिणः) उत्तम अन्न के स्वामी, (सु-निष्काः) उत्तम सुवर्णादि के मोहरों से व्यवहार करने और उनको पदकादि रूप में शोभार्थ धारण करने वाले (उत्) और (स्वयं) स्वयं (तन्वः शुभमानाः) अपने शरीरों को सुशोभित करने वाले होओ । अध्यात्म में—हे उत्तम जीवो ! आप लोग (स्वायुधासः = स्व-आयुधासः) उत्तम हथियारों वाले वा स्वयं अपने काम क्रोध आदि दुष्ट भीतरी शत्रुओं से लड़ने हारे (इष्मिणः) उत्तम इच्छा शक्ति से युक्त (सु-निष्काः) सुखपूर्वक देह से निष्क्रमण करने में समर्थ, और केवल देहमात्र से अलंकृत हो ।

शुचीं वो हृव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।

ऋतेन सुत्यामृतसापं आयुद्धुचिजन्मानः शुचयः पावकाः १२

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (हृव्या) खाने और लेने देने के सब पदार्थ (शुची) शुद्ध पवित्र हों । मैं (शुचिभ्यः) शुद्ध पवित्र पदार्थों और सच्च हृदय के पुरुषों से उनकी वृद्धि के लिये (शुचिभ्य अध्वरं) शुद्ध पवित्र अहिंसक यज्ञ की (हिनोमि) वृद्धि करता हूँ । (ऋत-सापः) सत्य के आधार पर प्रतिज्ञाबद्ध होने वाले (शुचयः) कर्म, वाणी

में शुद्ध, (पावकाः) पवित्र, अश्विवत् तेजस्वी, पुरुष (ऋतेन) सत्य ज्ञान से ही (सत्यम् आयन्) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार को प्राप्त होते हैं ।

अंसेष्वा मरुतः खादयोऽवो वक्षः सु रुक्मा उपशिंश्रियाणाः ।

वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥३

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (अंसेषु) कन्धों पर (खादयः) उत्तम शश और (वक्षः सु) छातियों पर (रुक्माः) कान्तियुक्त आभूषण (उपशिंश्रियाणाः) शोभा दे रहे हों । आप लोग (वृष्टिभिः विद्युतः न) वर्षाओं से विजुलियों के समान (आयुधैः) उत्तम हथियारों से (रुचानाः) चमकते हुए (स्वधाम्) जलवत् अज्ञ और अपने राष्ट्र भूमि के (अनुयच्छमानाः) अनुसार उसको वश करते हुए सुख से विजय करो ।

वक्षः । सुरुक्माः इति सायणाभिभतः पदपाठः ॥

प्र बुध्यां व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।

सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ १४ ॥

भा०—(बुध्याः) आकाश में उत्पन्न मेघ जिस प्रकार (महांसि नामानि प्र ईरते) तेज और बहुत अधिक जलों को नीचे प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे (बुध्याः) उच्च पद के योग्य, सर्वाश्रय योग्य (प्रयज्यवः) उत्तम यज्ञ दानशील पुरुषो ! आप लोग भी (महांसि) देने योग्य (नामानि) अज्ञों को (प्रतिरध्वम्) उत्तम रीति से बढ़ाओ और दान किया करो । हे (मरुतः) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (एतम्) इस (गृहमेधीयं) गृहस्थों से प्राप्त वा गृह के निर्वाह योग्य (सहस्रियं भागम्) सहचरों ग्रामों वा गृहों से प्राप्त करादि अंश को (जुषध्वम्) प्रेम पूर्वक स्वीकार करो ।

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीयेत्था विप्रस्य वृजिनो हवीमन् ।
मूल्लरायः सुवीर्यस्य दातु नू चिद्मन्य आदभूदरावा ॥१५।२४॥

भा०—है (मरुतः) वायु के समान दृढ़ बलवान्, प्राणों के समान प्रिय वीरो और विद्यप्रेमी, आलस्य रहित शिष्य जनो ! आप लोग (यदि) यदि (वाजिनः) ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् और (विप्रस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (हवीमन्) देने योग्य उत्तम ज्ञान और धन के लेने देने के व्यवहार में (इथा) सत्य २ (स्तुतस्य) उपदिष्ट शास्त्र का (अधीय) स्मरण रखें । (यम्) जिस धनादि को (अन्यः) दूसरा (अरावा) शत्रु वा वचनादि से रहित मूकजन (नू चित् आदभूत्) अवश्य विनाश कर देवे ऐसे (रायः) प्रदेय धन ज्ञानादि को आप लोग (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्यवान् सुट्ठ, ब्रह्मचारी के हाथ (दातु) प्रदान किया करो । विद्वानों को चाहिये कि गुरुपदिष्ट शास्त्र को अच्छी प्रकार याद रखें और विद्वान् उत्तम ब्रह्मचारी, विविध विद्योपदेश के योग्य पात्र में ही ज्ञान प्रदान करें । क्योंकि ज्ञान का (अरावा) अन्यों को प्रवचन द्वारा न देने वाला अवश्य नाश कर देता है । इसी प्रकार मनुष्यों को चाहिये धन के लेन देन में अपना २ इकारार स्मरण रखें । अपना धन भी बलवान् की रक्षा में रखें जिससे दूसरा शत्रु नष्ट न कर दे । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अत्यासु न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षादशो न शुभयन्तु मर्याः ।

ते हर्म्येष्टाः शिश्रवो न शुभा वृत्सासो न प्रक्रीलिनः पयोधाः १६

भा०—(ये) जो (मरुतः) मनुष्य, वायु के तुल्य बलवान् और प्राणों के समान प्रिय (अत्यासः न) निरन्तर गति करने वाले अश्वों के समान (सु-अञ्चः) उत्तम आचरण करने और उत्तम आदर योग्य होवे (मर्याः) मनुष्य (यक्षदशः न) पूज्य जनों को दर्शन करने वालों के समान (शुभयन्त) सदा उत्तम वस्त्रालंकार धारण कर सजें और सदा शुभ, उत्तम आचरण किया करें । और (ते) वे (हर्म्येष्टाः) बड़े २

महलों में रहकर भी (शिशवः न शुश्राः) बालकों के समान स्वच्छ निष्पाप आचार वाले और (वत्सासः न) गाय के बछड़ों के समान सदा (प्रक्रीडिनः) खूब खेलने, विनोद करने के स्वभाव वाले और (पयः-धाः) दूध, अश्चादि के पीने खाने वाले हों ।

दृशस्यन्तो नो मृहतो मृलन्तु वरिवस्यन्तु रोदसी सुमेके ।

आरे गोहा नृहा वृधो वौ अस्तु सुमेभिरुस्मे वैसवो नमध्वम् १७.

भा०—(मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुष (दशस्यन्तः) दान देते हुए और (सुमेके) उत्तम पूज्य (रोदसी) माता पिताओं की (वरिवस्यन्तः) सेवा शुश्रूषा करते हुए (नः मृदयन्तु) हमें सुख प्रदान करें । (गोहा) गौ आदि पशु समूह का मारने वाला गोहल्यारा और (नृहा) मनुष्यों को मारने वाला (वः) आप लोगों से (आरे) दूर हो और (वधः अस्तु) वध वा दण्ड करने योग्य हो ।

आ वौ होतो जोहवीति सृत्तः सृत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उकथैः १८.

भा०—हे (मरुतः) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! (होता) उत्तम दाता, (गृणानः) उपदेश करने हारा (सत्तः) उत्तमासन पर विराज कर (सत्राचीं) सत्य से युक्त वा एक साथ मिलकर प्राप्त करने योग्य (दातिं) दान, ज्ञान वा ऐश्वर्य को (जोहवीति) प्रदान करता है और जो (ईवतः) जल से युक्त (वृषणः गोपाः) मेघ के रक्षक वायु के समान (ईवतः) धनशाली, (वृषणः) बलवान् पुरुष का (गोपाः) रक्षक है (सः) वह (अद्वयावी) भीतर बाहर दो भाव न करता हुआ, निष्कपट होकर (उकथैः) उत्तम वचनों से (वः) आप लोगों के प्रति (हवते) ज्ञान प्रदान करे और आप लोगों को आदर से बुलावे ।

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहृः सहस्र आनन्दिति ।

इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥१९॥

भा०—(इमे) ये (मरुतः) वायुवत् बलवान् और प्राणवत् प्रिय विद्वान् लोग (तुरं) शीघ्र ही वा शीघ्रकार्य करने में कुशल, शत्रुओं को मारने वाले राजा को (रमयन्ति) सदा प्रसन्न रखते हैं और (इमे) ये (सहः) अपने बल से (सहसः) बलवान् शत्रुओं को भी (आनन्दिति) छुका लेते हैं । वा (सहसः सहः आनन्दिति) बलवान् राजा के बल के आगे छुकते हैं । वा (सहसः बलं आनन्दिति) बलवान् शत्रु पराजयकारी बल, सैन्य वा धनुष को अपने अधीन रखते और नमाते हैं । (इमे) ये (वनुष्यतः) हिसक वा क्रोधी से (शंसं नि पान्ति) प्रशंसनीय जन को बचा लेते हैं । (अरुषपे) अदानी और अतिक्रोधी जन के विशेष दमन के लिये वे (गुरु द्वेषः) बड़ा भारी द्वेष अप्रीतिकर व्यवहार (दधन्ति) करते हैं ।

इमेरुधं चिन्मुरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्ति ।

अप वाधध्वं वृषणस्तमांसि धृत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे २०।२५।

भा०—हे (वरुण) वर्णशील, मेघों को लाने वाले वायुओं के तुल्य बलवान् पुरुषो ! (इमे) ये (मरुतः) वायुगण जिस प्रकार (रुधं चित् जुनन्ति) दृढ़ वृक्ष को भी हला देते हैं । उसी प्रकार आप लोग भी (रुधं) वश करने योग्य प्रबल, समृद्धिमान् पुरुष को भी सन्मार्ग पर चलाओ । और (वसवः) पृथिवी आदि लोक जिस प्रकार (भृमिं) धारक सूर्य के प्रकाश का सेवन करते हैं उसी प्रकार आप लोग (भृमिं) अपने भरण पोषण करने वाले स्वामी तथा (भृमिं) ऋमण-शील, विद्वान् परिव्राजक का भी (जुषन्ति) प्रेम से सेवन करें । आप लोग (तमांसि) सूर्य की किरणों के समान अन्धकारों को (अप वाधध्वं) शत्रुओं और खेदजनक मोह आदि को भी दूर करो । इति पञ्चविंशो वर्षः॥ मा चो दात्रान्मरुतो निरराम् मा पञ्चाद्धरमरथ्यो विभागे ।

आ नः स्पृहैँ भंजतना वसुव्येऽयदीं सुजातं वृषणो चो अस्ति २१

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् एवं वीर पुरुषो ! हम लोग (वः) आप लोगों को (दात्रात्) दान करने से (मा निर् अराम) कभी न रोकें, और (वः दात्रात् मा निर् अराम) आप लोगों के प्रति देने से हम कभी स्वयं न रुकें । हे (रथ्यः) उत्तम अश्वारोही जनो ! (विभागे) धन के विभाग से (नः पश्चात् मा दध्म) आप लोगों को पीछे न रखें । हे (वृषणः) बलवान्, सुखवर्षक उदार जनो ! (वः यत् हैम् सुजातम् अस्ति) आप लोगों का जो भी उत्तम द्रव्य है उसे (वसव्ये) धन सम्बन्धी (स्पाहे) अभिलाषा योग्य पदार्थ के निमित्त (नः आ भजतन) हमें प्राप्त करो ।

सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यद्वीषोषधीषु विक्षु ।

अध॑ स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत् पृतनास्त्वर्यः ॥२२॥

भा०—(यत्) जो (जनासः) मनुष्य (विक्षु) प्रजाओं के बीच में (शूराः) शूरवीर होकर (यद्वीषु ओषधीषु) बड़ी और बहुत सी ओषधियों में से (मन्युभिः) नाना ज्ञानों द्वारा (संहनन्त) नाना ओषधियों को मिलाते हैं हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! वे आप लोग (रुद्रियासः) रोगों को दूर करने वाले वैद्यजन (पृतनासु अर्यः) सेनाओं में स्वामी के समान (नः त्रातारः भूत) हमारे रक्षक होओ । वीरों के पक्ष में—प्रजाओं में जो (संयत्) युद्ध क्षेत्र में (शूराः) शूरवीर (जनासः) जन (मन्युभिः हनन्त) कोधों से प्रेरित होकर आघात करते हैं वे (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वाले वीर पुरुष के जन, और (अर्यः) स्वामी स्वयं भी (पृतनासु नः त्रातारः भूत स्म) संग्रामों में हमारे रक्षक होवें ।

भूरि चक्र मरुतः पित्र्याणयुक्थानि यां वः शुस्यन्ते पुरा चित् ।

मुरुद्धिरुग्र पृतनासु साल्हा मुरुद्धिरित्सनिता वाजुमर्वी ॥ २३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, बलवान् पुरुषो ! (या) जिन कर्मों

का (वः) आप लोगों के हितार्थ (पुराचित्) पहले ही (शस्यन्ते) उपदेश किया गया है उन (पित्याणि) माता पिता की सेवा और पालक जनोचित् (उक्थानि) प्रशंसनीय कर्मों को आप (भूरि) खूब (चक्र) किया करो । (उग्रः) बलवान् पुरुष (मरुद्धिः) वायुवत् बलवान् पुरुषों से ही (सादा) शत्रु को पराजय करने वाला और (अर्वा मरुद्धिः यथा वाजं सनिता) जैसे अश्व प्राण के बल से वेग को प्राप्त करता है उसी प्रकार (अर्वा) शत्रुहिंसक पुरुष ही (मरुद्धिः) विद्वान् पुरुषों की सहायता से ही (वाजं सनिता) संग्राम करने में समर्थ होता है ।

श्रुस्मे वीरो मरुतः शुष्ठ्यस्तु जनानां यो असुरो विधृता ।

अपो येन सुक्षितये तरेमाध् स्वमोक्तो अभि वः स्याम ॥ २४ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! हे प्राणवत् प्रिय-जनो ! (वीरः) शूरवीर और विविध विद्याओं का प्रवक्ता पुरुष और हमारा पुत्र (अस्मे) हमारे उपकारार्थ (शुभ्मी अस्तु) बलवान् हो । (यः) जो (असुरः) उत्तम प्राणों के बल पर रमण करता हुआ (असुरः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ बलवान् होकर (जनानां) मनुष्यों का (विधृता) विशेष रूप से धारण पालन करने में समर्थ हो । (येन) और जिसके द्वारा हम (सु-क्षितये) उत्तम भूमि को प्राप्त करने के लिये (अपः) जलों के समान शत्रु और कर्मवन्धनों को और (अपः) आष, धर्मदाराओं को भी (तरेम) तरें, उनको प्राप्त कर गृहस्थ को सफल करें । (अध) और (स्वम् ओकः) अपने गृह को प्राप्त कर (वः अभि स्याम) आप लोगों के कृतज्ञ होकर रहें । समुद्रों में उत्तम भूमि प्राप्त करने के लिये विशेष दिशा में जहाज को लेजाने वाला विशेष वेगवान् प्रबल वायु भी 'वीर' है जिसके बलपर हम (अपः तरेम) समुद्री जलों को पार करने में समर्थ होते हैं और (स्वम् ओकः अभि स्याम) पुनः विदेशादि भ्रमण के बाद अपने गृह को कुशल से प्राप्त करते हैं ।

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप् ओषधीर्विनिनो जुषन्त ।

शर्मन्तस्याम मरुतामुपस्थे युयं पात् स्वस्तिभिः सदा नः २५।२६

भा०—(तत्) वह (इन्द्रः) सूर्य, विद्युत् आदि (वरुणः) जल का स्वामी, (मित्रः) मित्र, (अग्निः) अग्नि, (आपः) जल, और (ओषधीः वनिनः) ओषधियें और वन के वृक्ष सब (नः जुषन्त) हमें सुख प्रदान करें । हम लोग (मरुताम् उपस्थे) विद्वान् पुरुषों के समीप (शर्मन् स्याम) सुख से रहें । हे विद्वान् पुरुषो ! (युयं नः स्वस्तिभिः सदा पात्) तुम लोग हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो । इति घड्विंशो वर्गः ॥

[५७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—२,४ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् ।

३, ५, ६, ७ निचुत्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

मध्वो वो नास्त मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।

ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयांसुरुग्राः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (उग्राः) प्रबल वायुगण (उर्वी रोदसी रेजयन्ति) विशाल भूमि और अन्तरिक्ष दोनों को कंपाते हैं और (यत् अयासुः) जब चलते हैं तब (उत्सं पिन्वन्ति) मेघ को बरसाते हैं उसी प्रकार (उग्राः) बलवान् पुरुष (यत् अयासुः) जब चलते वा प्राप्त होते हैं (उर्वी) बड़ी (रोदसी) सेनापतियों के अधीन स्थित उभयपक्ष की सेनाओं को (रेजयन्ति) कंपाते, भयभीत करते हैं, और (उत्सं) ऊपर उठने वाले विजेता को (पिन्वन्ति) जलों से अभिषिक्त करते हैं । हे (यजत्राः) दानशील, पूज्य सत्संगति युक्त जनो ! हे (मध्वः) मनन शील, हर्षकारी जनो ! (वः) आप लोगों का (मारुतं नाम) मनुष्यों का सा नाम, सामर्थ्य है आप लोग (यज्ञेषु) यज्ञों और युद्धों में (शवसा) बल और ज्ञान से (प्र मदन्ति) हर्षित होते और उत्तम उपदेश करते हो ।

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यज्मानस्य मन्म ।
अस्माकमूद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत् पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् जनो ! आप लोग (निचेतारः हि) उत्तम धनों और ज्ञानों के संग्रहशील और (यजमानस्य) दान शील के (मन्म) अभिमत वस्तु (गृणन्त) उपदेश देने वाले को (पिप्रियाणाः) प्रसन्न करते हुए आप लोग (प्रणेतारः) उत्तम कर्म कुशल होकर (अस्माकं विदथेषु) हमारे यज्ञों में (वीतये) रक्षा और ज्ञानप्रकाश के लिये (बर्हिः) उत्तमासन पर (आसदत्) विराजों । इसी प्रकार उत्तम नायक और उत्तम संग्रही जन संग्रामों, धनादि लाभों के लिये (बर्हिः) प्रजाजन पर अध्यक्ष होकर विराजें ।

नैतावदन्ये मरुतो यथेषु मे भाजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।

आ रोदसी विश्वपिशाः पिशानाः समानमञ्जयते शुभे कम् ॥ ३ ॥

भा०—(यथा इसे) जिस प्रकार ये (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वीर मनुष्य (रुक्मैः) कान्तियुक्त (आयुधैः) हथियारों और (तनूभिः) शरीरों से (आजन्ते) चमकते हैं (एतावत्) उतने (अन्ये मरुतः न) आजन्ते) और दूसरे मनुष्य नहीं चमकते । ये (विश्वपिशाः) सर्वाङ्ग सुन्दर जन (रोदसी पिशानाः) आकाश और भूमि दोनों को सुक्षोभित करते हुए सूर्य किरणों के समान (समानम् अज्ञि) एक समान दीसियुक्त चिह्न को (शुभे कम्) शोभा के लिये (अज्ञते) प्रकट करते हैं ।

ऋधुक्सा वो मरुतो दिव्यादस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम ।

मा वृस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमातिश्चनिष्ठा ४

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों की (सा दिव्यत्) चमकती हुई उज्ज्वल नीति (ऋधक् अस्तु) सदा सच्ची हो (यत्) यदि चाहे हम (वः) आप लोगों के प्रति (पुरुषता) पुरुष होने से (आगः कराम) अपराध भी करें । हे (यजत्राः) पूज्य जनो !

(तस्याम्) उस नीति में रहकर (वः मा अपि भूम) आप लोगों के प्रति अपराधी न हों । (वः चनिष्ठा) आप लोगों की अज्ञ ऐश्वर्यादि युक्त (सुमतिः अस्मे अस्तु) उत्तम मति हमारे लिये हो ।

कृते चिद्व्रं मुरुतो रणन्तानव्यासः शुचयः पावकाः ।

प्र णोऽवत् सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत् पुष्यसेनः ॥५॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर जनो ! (कृते चिद्व्रं अत्र) इस संसार में अपने किये कर्म और करने योग्य कर्तव्य में ही (रणन्त) सुख लाभ करो । आप लोग (अनव्यासः) अनिन्दित उत्तम धर्म करने वाले, उत्तम कीर्तियुक्त (शुचयः) शुद्ध पवित्र आचारवान्, ईमानदार (पावकाः) अन्यों को भी पवित्र करने वाले होओ । हे (यजत्राः) उत्तम संगति योग्य, ज्ञान मान देने वाले सज्जनो ! आप लोग (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों और ज्ञानों से (नः अवत) हमारी रक्षा करो । आप लोग (वाजेभिः) अन्नों से (पुष्यसे) हमें पुष्ट करने के लिये (प्र तिरत) बढ़ाओ ।

उत् स्तुतासो मुरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हृवींषि ।

ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मधानि ॥६॥

भा०—हे (मरुतः नरः) उत्तम नायक जनो ! आप लोग (विश्वेभिः नामभिः) सब प्रकार के उत्तम नामों से (स्तुतासः) प्रशंसित और शिक्षित होकर (हृवींषि) उत्तम ज्ञान और नाना ऐश्वर्य (उप व्यन्तु) प्राप्त करें । (नः) हमारी प्रजाओं को (अमृतस्य ददात) अमृत, अज्ञ, दीर्घ जीवन प्रदान करो । (उत) और (रायः) उत्तम ऐश्वर्य (सूनृता) शुभ वचन और (मधानि) उत्तम धन (जिगृत) प्रदान करो ।

आ स्तुतासो मरुतो विश्वं ऊती अच्छ्रुं सुरीन्त्सुर्वताता जिगात ।
ये तु स्तमना श्रुतिनो वृध्यन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।२७।

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो ! आप (विश्वे) सब (सर्वताता) सबके सुखकारक कार्य में (सुतासः) प्रशंसित होकर (ऊती) उत्तम रक्षा सहित (सूरीन्) विद्वानों की (आ जिगात) आदरपूर्वक प्रशंसा करो । (ये) जो (शतिनः) सैकड़ों, असंख्य बलों या ग्रामों के स्वामी होकर (तमा) स्वयं (नः) हमें (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं वे (यूयं) आप लोग (नः) हमें (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करो । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

(५८)

वसिष्ठ ऋषोः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—३, ४ निचृत्रिष्ठुप् । ५ त्रिष्ठुप् ।
१ विराट् त्रिष्ठुप् । २, ६ मुरिकपंक्तिः ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

अ सर्कुमुक्षे अर्चता गुणायु यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्मीतेरवंशात् ॥१॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! (यः) जो (दैव्यस्य) देंगे, विद्वान् तेजस्वी, दानशील, विजिगीषु पद के योग्य (धाम्नः) नाम, स्थान और जन्म के कारण (तुविष्मान्) सबसे अधिक बलशाली हैं, उन एक साथ अभिषिक्त होने वाले वा राजा का स्वयं एक साथ मिलकर अभिषेक करने वाले (गणाय) वीर प्रमुख जन का (प्र अर्चत) अच्छी प्रकार आदर करो । जिस प्रकार वायुगण (महित्वा) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और धृथिकी दोनों में (क्षोदन्ति) जल ही जल करके शान्ति सुख वरसाते हैं उसी प्रकार (महित्वा) अपने बड़े सामर्थ्य से (रोदसी) राजा और प्रजा वर्ग में (क्षोदन्ति) जल के समान आचरण करते, सबको शान्ति सुख से तृप्त करते हैं वा (महित्वा) बड़े सामर्थ्य से जो प्रजाजन (रोदसी क्षोदन्ति) दुष्टों के रुलाने वाले, रुद्र सेनापति की सेनाओं का अवयव बनते हैं, स्वयं सेनाओं के अंग प्रत्यंग के घटक हैं वा जो (रोदसी

क्षोदन्ति) भूमि को अन्नोत्पत्ति के लिये तोड़ते हैं और (निः-ऋतेः) सर्व दुःखमय संसार कष्ट और (अवंशात्) सन्तानरहित होने आदि दुःखों से दूर होकर खूब सुखी, सुसन्तान होकर (नाकं नक्षन्ते) दुःखरहित सुख-मय लोक को प्राप्त होते हैं । उनका भी आप लोग आदर सत्कार करो ।
 जनूश्चद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासुस्तुविभन्यवोऽयासः ।
 प्रये महोभिरोजसुत सन्ति विश्वौ ब्रोयामन्भयते स्वर्द्धक् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार वायु गण की उत्पत्ति (त्वेष्येण) प्रखर तेज से है और वे ताप पाकर बड़े वेग से प्रकट होते हैं कि सब कोई कांप जाते हैं, उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् वीर जनो ! (ये) जो आप लोग (त्वेष्येण) अति तीक्ष्ण तेज से और (महोभिः) बड़े २ गुणों और (ओजसा) बड़े बल पराक्रम से युक्त होकर (भीमासः) अति भयंकर और (तुवि-मन्यवः) अति क्रोध युक्त और बहुज्ञान युक्त (अयासः) आगे बढ़ने वाले हो (वः जनूः चित्) आप लोगों की उत्पादक माताएं, वा प्रकृतियें भी (प्र सन्ति) उत्तम कोटि की हैं । (यामन्) अपने २ मार्ग में चलते हुए भी (विश्वः) सभी (स्वर्द्धक्) सुख से देखने वाले कुशल के इच्छुक, लोग (वः भयते) आप लोगों से अधर्म करने से भय करते हैं ।

वृहद्यो मधवदभ्यो दधात् जुजोष्विन्मरुतः सुषुर्तिं नः ।
 गुतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्रणः स्पार्हाभिरुतिभिस्तिरेत ॥३॥

भा०—जो (मरुतः) वीर और विद्वान् जन (मधवद्यः) ऐश्वर्य-वान् लोगों के हितार्थ (बृहत् वयः) बहुत बड़ा जीवन, अन्न और बल (दधात्) धारण करते हैं और जो (नः) हमारी (सु-सुर्तिं) उत्तम सुर्ति को (जुजोष्व इत्) अति प्रेम से सेवन करते हैं और जो (गतः) प्राप्त होकर (अध्वा) मार्ग के समान (जन्तुं न वितिराति) प्राणि को नाश नहीं करता प्रत्युत विशेष रूप से बड़ता है, वह (स्पार्हाभिः ऊतिभिः)

स्पृहणीय, उत्तम उपायों से (नः प्रतिरेत) हमें भी बढ़ावे । हम सब उनका आदर सत्कार किया करें ।

युष्मोत्तो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोत्तो अर्वा सहृदिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्रालुत हन्ति वृत्रं प्रतद्वौ अस्तु धूतयो देष्णम् ॥४॥

भा०—हे (धूतयः) भोग-वासनाओं और कर्मवंधनों को कॅंपा कर शिथिल कर देने वाले विद्वान् जनो ! और शत्रुओं को कॅंपा देने वाले वीर पुरुषो ! (युष्मा-ज्ञतः विप्रः) तुम लोगों से सुरक्षित विद्वान् पुरुष जिससे (शतस्वी) सैकड़ों धनों का स्वामी और सैकड़ों को अपना बन्धु बना लेने हारा हो । और जिससे (युष्मा-ज्ञतः अर्वा) आप लोगों से सुरक्षित अश्वारोही वीर पुरुष (स-हुरिः) शत्रु-पराजयकारी, सहनशील, और (सहस्री) सहस्रों ऐश्वर्यों और सहस्रों पुरुषों का स्वामी, सहस्रपति होता है । और जिससे (युष्मा-ज्ञतः सम्राट्) आप लोगों से सुरक्षित महाराजा होकर (वृत्रम् उत हन्ति) बढ़ते शत्रु को भी नाश करता और (वृत्रं हन्ति) धन को प्राप्त करता है हे विद्वानो और वीरो ! (वः) आप लोगों का (तत्) ऐसा ही (देष्णम्) दान हो ।

ताँ आ रुद्रस्य मीळहुषो विवासे कुविंचसन्ते मुरुतः पुनर्नः ।
यत्सुस्वर्तीं जिहीङ्गिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥५॥

भा०—मैं (मीढुषः) वर्णणशील, नाना सुखों के दाता, (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुष के अधीन रहने वाले (तान्) उन नाना वीर जनों को (आ विवासे) बड़े आदर से राष्ट्र में बसाऊं । उनकी सेवा सत्कार करूं वे (मरुतः) शत्रुओं के हन्ता लोग (नः) हमें (पुनः) वार २ (नंसन्ते) विनयपूर्वक प्राप्त हों । (यत्) जिस (सस्वर्ती) उपतापजनक शब्द से, या अप्रकट रूप से (यद् आविः) वा जिससे प्रकट, रूप से वे (जिहीङ्गिरे) कोधित हों वा हमारा अनादर करें

(तुराणाम्) अति शीघ्रकारी वा अपराधियों के दण्डकर्ता जनों के (तद् एन्) उस अपराध को हम (अव ईमहे) दूर करें ।

प्र सा वाचि सुषुतिर्मध्योनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।

आराच्छिद्देवो वृषणो युयोत युर्यं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।२८

भा०—(मधोनां) उत्तम आदर योग्य धन, ऐश्वर्य के स्वामी जनों की (सा सु-स्तुतिः) वह उत्तम स्तुति (प्र-वाचि) अच्छी प्रकार कही जाती है । हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इदं) इस प्रकार के (सूक्तम्) उत्तम वचन (जुषन्त) सेवन किया करें । हे (वृषभः) बलवान् पुरुषो ! आप लोग (द्वेषः) द्वेषी शत्रुओं और द्वेष भावों को भी (आरात् चित् युयोत) दूर ही पृथक् करो । और (स्वस्तिभिः) उत्तम सुखकारी साधनों से (सदा नः युर्यं पात) सदा हमें आप लोग बचाइये ।

[५६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १-१ मरुतः । १२ रुद्रो देवता, मृत्युविमोचनी ॥ छन्दः १ निचृद् वृहती । ३ वृहती । ६ स्वराङ् वृहती । २ पंक्तिः । ४ निचृतपंक्तिः । ५, १२ अनुष्ठुप् । ७ निचृतविष्टुप् । ८ विष्टुप् । ६, १० गायत्री । ११ निचृद्गायत्री ॥

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।

तस्मा अमे वरुण मित्रायैस्त्वन्मरुतः शर्म यच्छ्रुत ॥ १ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् जनो ! आप लोग (यं त्रायध्वे) जिस २ की भी रक्षा करते हो और (यं च) जिसको (इदम् इदम्) यह सन्मार्ग है, यह सत् कृत्य है इस प्रकार स्पष्ट बतला र कर (नयथ च) सन्मार्ग में और सत्कर्म में प्रवृत्त करते हो, हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! हे (मित्र) स्तेहवन् ! हे (अर्यमन्) शत्रुओं और दुष्टों के नियन्तः ! हे (मरुतः) विद्वान् प्रजाजनो ! आप

उसको अवश्य (शर्म यच्छत) शान्ति प्रदान करो । अर्थात् उसको कभी धोखा दे, कुमार्ग पर डाल कर संकट में मत डालो ।

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥

भा०—हे (देवा:) विद्वान् जनो ! (प्रिये अहनि) प्रिय, मनोहर किसी दिन (ईजानः) यज्ञ वा आप लोगों का सत्संग करता हुआ पुरुष (वः) आप लोगों को (वराय) स्वीकार करने के लिये (महीः इषः दाशति) अपनी उत्तम २ इच्छाएं प्रकट करता और बड़े पूज्य अन्नादि समृद्धियों वा सैन्य का प्रदान करता है वह (युष्माकं अवसा) आप लोगों के ही ज्ञान और बल से (द्विषः) अप्रतिकर भावों और शत्रुओं को (तरति) पार कर जाता है । (सः) और वह (क्षयं) अपने ऐश्वर्य को (प्र तिरते) खूब बढ़ा लेता है ।

नृहि व॒श्वरुमं चून वसि॑ष्टः परि॑मंसते ।

अ॒स्माक॑म॒द्य मंरुतः सु॑ते सच्चा विश्वे॑ पिवत कृमिनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (कामिनः) उत्तम संकल्प और शुभ इच्छा से युक्त होकर (विश्वे) सब (सच्चा) एक साथ मिलकर (अस्माकं सुते) हमारे ऐश्वर्य के बल पर (अस्माकम् पि-वत) हमारा ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करो । (वः चरमं चन) आप लोगों में से अन्तिम को भी (वसि॑ष्टः) श्रेष्ठ वसु राजा (न परि-मंसते) त्याज्य नहीं समझता । प्रत्युत सबको आदर और प्रेम से देखता है । सभी लोग उत्साह पूर्वक राजा के राज्य-प्रजाजन की रक्षा में सदा तत्पर रहते ।

नृहि व॑ ऊतिः पृत॑नासु॒ मर्ध॑ति॒ यस्मा॑ अराध्वं॒ नरः ।

अ॒भि॒ व॑ आ॒व॑त्सु॒ म॒तिर्नवी॑यसु॑ त॒यं॑ यात॑ पि॒पी॑षवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) मनुष्यो ! आप लोग (यस्मै अराध्वम्) जिसको सुखादि प्रदान करते हों (वः ऊतिः) आप लोगों की रक्षाकारिणी सेनादि (पृतनासु) मनुष्यों और संग्रामों के बीच में भी (नहि मर्धति) उसको नाश नहीं करती । (वः सुमतिः नवीयसी) आप लोगों की उत्तम से उत्तम शुभमति (अभि आवत्) प्राप्त हो । आप लोग (पिषीषवः) प्रजा के पालन करने की इच्छा से युक्त होकर (तूयं) शीघ्र ही (यात) प्रयाण करो और (आयात) आओ जाओ ।

ओ पु घृष्णिवराधसो यातनान्धांसि पीतये ।

इमा चौं हृव्या मरुतो रे हि कुं मो ष्वन्यत्रं गन्तन ॥ ५ ॥

भा०—(ओ) हे (मरुतः) वीरो और विद्वान् पुरुषो ! हे (घृष्णिवराधसः) एक दूसरे से बढ़ने वाले, सम्बद्ध धनैश्वर्य से सम्पन्न, आप लोग (पीतये) उपभोग के लिये (अन्धांसि) नाना प्रकार के अन्नों को (सुयातन) सुखपूर्वक प्राप्त करो । मैं (इमा) ये नाना प्रकार के (हृव्या) खाने और लेने देने योग्य द्रव्यादि (रे) प्रदान करता हूं । (हि कं) आप लोग (अन्यत्र) और अन्य स्थान में (मो सु गन्तन) मत जाइये । मेरे राष्ट्र में सुख से रहिये ।

आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।

अस्तेऽधन्तो मरुतः सौम्ये मधौ स्वाहैह मादयाधौ ॥ ६ ॥ २९ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, वीर, प्रजाजनो ! (नः बर्हिः आसदत च) आप लोग हमारे वृद्धियुक्त गृह, आसन और यज्ञ आदि को प्राप्त होओ और उत्तमासन पर विराजो (नः) हमें (स्पार्हाणि) चाहने योग्य, उत्तम, (वसु) धनों को (दातवे) देने के लिये (नः) हमें (अविता च) प्राप्त हों हमारी रक्षा करें । आप लोग (अस्तेऽधन्तः) प्रजा का नाश न करते हुए, अहिंसक रहकर (सौम्ये मधौ) सोम, आदि औषधिरस से युक्त मधु के समान विद्वानों के योग्य आनन्ददायक इस राष्ट्र में और उत्तम-

बलदायक अन्नादि के ऊपर (इह) इस गृहादि में (स्वाहा) उत्तम सत्कार, सुवचन और सुखपूर्वक अभ्यवहार एवं अपने न्यायोचित उपरिंत धन द्वारा (मादयात्र्वै) आनन्द लाभ करिये ।

सुस्वश्चिद्दित् तन्वः शुभमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपसन् ।

विश्वं शर्धोऽभितो मा नि पैदै नरो न रुग्वाः सवैन् मदन्तः ॥ ७

भा०—(सत्त्वः) गुप्त भाव से विद्यमान, इन्द्रिय और अन्तःकरण को सुरक्षित और आकारचेष्टादि सुगुप्त रखने वाले वा (सत्त्वः) एक समान तेज, एक समान शब्द और एक समान ऐश्वर्यादि रखने वाले, (तन्वः शुभमानाः) अपने देहों आत्माओं को उत्तम गुणों और आभरणों से अलंकृत करने वाले (नीलपृष्ठाः) इयामवर्ण की पीठ वाले (हंसासः चित्) हंसों के समान, (नीलपृष्ठाः) नील, इयाम या काले वर्ण की पोशाकों वाले, वा कृष्ण मृगछाला पहने (हंसासः) हंसवत् विवेकी, अन्तःशत्रु और बाहरी शत्रुओं को मारने वाले वा ध्येय तक पहुंचाने हारे, (आपसन्) आवें । वे (रण्वाः नरः न) रणकुशल नायकों के समान (सवने) ऐश्वर्यमय राष्ट्र या सेनापति के उत्तम शासन में (मदन्तः) आनन्दपूर्वक रहते हुए (अभितः) सब ओर (विश्वशर्वः) समस्त बल को (मा अभितः) मेरे चारों ओर (नि पैद) बनाये रक्खो ॥ ‘नीलपृष्ठाः’—काली या नीली पोशाकें जैसे प्रेणुपुर्णों, वकीलों के गौन हों ।

यो नो मस्तो श्रुभि दुर्दृणायुस्तिरश्चित्तानि वसव्योजिधांसति ।
दुःहः पाशान्त्रिति स मुचीषु तपिष्टेन् हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मस्तः) विद्वानों और वीर जनो ! (थः) जो (नः) हमारे बीच में (दुर्दृणयुः) दुःखदायी, क्रोध करने वाला, दुष्ट हृदय का पुरुष, हमारे (चित्तानि) अन्तःकरणों को (तिरः) तिरस्कारपूर्वक (अभि जिधांसति) आघात करता या हृदयों को चोट पहुंचाना चाहता है (सः) वह (दुःहः पाशान्) द्वोही के योग्य फाँसों या बन्धनों को

(प्रति मुचीष) धारण करे । और (तद्) उसको (तपिष्ठेन हन्मना) अति तापदायक हथियार से (हन्तन) दण्डित करो ।

सान्तपना इदं हृषिर्मरुत् स्तज्जुञ्जुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥९॥

भा०—हे (मरुतः) उत्तम मनुष्यो ! हे (सान्तपना:) उत्तम तप करने वाले जनो ! आप लोग (इदं हृषिः) यह उत्तम अज (जजुष्टन) प्रेम से सेवन करो । हे (रिशादसः = रिशात्-असः, रिशा — अदसः) हिंसकों को नाश करने वाले जनो ! (युष्माक-ऊती) तुम लोगों की उत्तम रक्षा से ही हम लोग भी उत्तम अन्नादि का लाभ करें ।

एष ह वै सान्तपनोऽमिर्यद् ब्राह्मणः । यस्य गर्भाधानं पुंसवनसीमन्तोन्नय-
नजातकर्मनामकरणनिष्कमणाक्षाशनगोदानचूड़ाकरणोपनयनस्तावनामिहो-
त्रवत्तचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स-सान्तपनः ॥ गो० प० २ । २३ ॥
जिस विद्वान् ब्राह्मण के गर्भाधान से लेकर उपनयन समावर्त्तनादि तक संस्कार हो चुके हों और अश्विहोत्र व्रतचर्यादि टीक पालन किये हों वह 'सान्तपन' कहाता है ।

गृहमेधासु आ गत् मरुतो मापं भूतन । युष्माकोती सुदानवः १०

भा०—हे (गृहमेधासः) गृह में उत्तम बुद्धि रखने वाले, वा गृह में यज्ञ करने हारे उत्तम गृहस्थ जनो ! हे (मरुतः) मनुष्यो ! आप लोग (आ गत) आइये । (मा अपभूतन) हमसे दूर मत होइये । हे (सु-दानवः) उत्तम दानयुक्त, एवं दानशील पुरुषो ! (युष्माक-ऊती) आप लोगों की रक्षा, ज्ञान और सत्कार से ही हम भी प्रसन्न हों ।

इहेह वः स्वतवसुः कवयः सूर्यैत्वचः । यज्ञं मरुत् आ वृणे ॥११॥

भा०—हे (स्वतवसः) स्वयं अपने शरीर आत्मा और धनैश्वर्य से बलशाली पुरुषो ! हे (कवयः) क्रान्तदर्शी जनो ! हे (सूर्यैत्वचः) सूर्य के समान देह की कान्ति वालें तेजस्वी, उज्ज्वल पुरुषो ! हे (मरुतः) विद्वान्, वीर जनो ! मैं (नः) आप लोगों को (इह इह) इस २ कार्य और पद

के निमित्त (आवृणे) वरण करता हूं । आप लोग (यज्ञ) यज्ञ को (आ गत) आकर प्राप्त हों और (मा अप भूतन) हमसे दूर न होवें । ऋग्वेदकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योमुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥ ३० ॥ ४ ॥

भा०—(ऋग्वेदकं) तीनों शब्दमय वेदों का उपदेश करने वाले, वा तीनों लोकों, तीनों वेदों और तीनों वर्णों के उपदेष्टा रक्षक द्विपात् चतुष्पात् और सरीसृप तीनों के माता के समान पालक, (सुगन्धिं) उत्तम गन्ध से युक्त, उत्तम कुलोत्पन्न, शत्रुओं के उत्तम रीति से नाशक वा शुभ पुण्यमय गन्ध वाले, सत्कर्मा, (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टि, समृद्धि को बढ़ाने वाले पूज्य पुरुष वा प्रभु की हृम (यजामहे) सदा उपासना और पूजा करते हैं । मैं (मृत्योः) मृत्यु के (वन्धनात्) वन्धन से (उर्वारुकम् इव) खरबूजे के फल के समान (मुक्षीय) मुक्त होऊँ और मैं (अमृतात्) अमृतमय मोक्ष सुख वा दीर्घ जीवन से (मा मुक्षीय) पृथक् न होऊँ ।

(ऋग्वेदकं)—अवि शब्दार्थः । अभ्वति शब्दायते इत्यम्बः, अम्बकः । त्रयाणां अम्बकः ऋग्वेदकः । 'सुगन्धिः'—गन्ध हिंसने । शोभनः शरीरगन्धः पुण्यगन्धो वा यस्यासौ सुगन्धिः । यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद् गंधो वाति एवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद् गन्धो वातीति श्रुतेः । सायणः ।

[६०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ सर्व्यः । २—१२ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ६ विराट् पंक्तिः । १० स्वराट् पंक्तिः । २, ३, ४, ६, ७, १२ निचृत् विष्टुप् । ५, ८, ११ विष्टुप् ॥

यदृद्य सूर्यं व्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय चरुणाय सूत्यम् ।
वृयं देवत्रादिते स्याम् तद्व प्रियासौ अर्यमन्गुणन्तः ॥ १ ॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे (अदिते) अविनाशिन् ! हे (अर्यमन्) न्यायकारिन् ! तू (अनागाः) अपराधों और छल कपटादि पापों से रहित होकर (मित्राय) स्नेहवान् और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के प्रति (उत् अद्य) जो आज के समान सदा ही (उत् यन्) उत्तम पद को प्राप्त होता हुआ (सत्यं ब्रवः) सत्य का ही उपदेश करता है, (देवता) विद्वान् मनुष्यों के बीच (वयं) हम लोग (तव) तेरे ही दिये (सत्यं) सत्य ज्ञान का (गृणन्तः) उपदेश करते हुए एवं तेरे शासन में सत्य भाषण करते हुए (तव प्रियासः स्वाम्) तेरे प्रिय होकर रहें ।

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उमे उदैति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥२॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) परस्पर के स्नेही और एक दूसरे को वरण करने वाले स्त्री पुरुषो ! (ज्मन् सूर्यः) भूमि पर, या अन्तरिक्ष में सूर्य के समान (एषः स्यः) वह यह प्रसिद्ध तेजस्वी (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों का द्रष्टा (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः च) स्थावर और जंगम का (गोपाः) रक्षक (मर्तेषु) मनुष्यों में (ऋजु) सरल धार्मिक कार्यों और (वृजिना) पापों को भी (पश्यन्) न्यायपूर्वक देखता हुआ (उमे अभि) स्त्री और पुरुष, वादी और प्रतिवादी दोनों के प्रति (उद् एति) उदय को प्राप्त होता है, प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है ।

अयुक्त सुप्त हृरितः सधस्थाद्या इं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो युथेव जनिमानि चष्टे ॥३॥

भा०—(सधस्थात्) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार सूर्य (सप्त हृरितः) सातों जलाहरण करने वाली किरणों को (अयुक्त) नियुक्त करता है । और जिस प्रकार (घृताचीः हृरितः) तेज से युक्त वा जल से युक्त किरणें वा रात्रियाँ वा दिशाएं (इं वहन्ति) उस सूर्य को धारण करती

हैं उसी प्रकार वह राजा (सप्त हरितः) राष्ट्र के सात प्रकार के राज
काज चलाने वाले उन अमात्य प्रकृतियों का (सधस्थात्) मिलकर
बैठने के सभास्थान से शासन करता हुआ (अयुक्त) उचित २ कार्यों में
नियुक्त करे (याः) जो (धृताचीः) तेज और स्नेह से युक्त होकर
(सूर्यं वहन्ति) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को धारण करते हैं । (यः) जो
राजा (युवाकुः) उभ दोनों की शुभ कामना करता हुआ, हे (मित्रा-
वरुणौ) प्राण उदान के समान राष्ट्र के आधार रूप स्त्री पुरुषो ! (यूथा
इव) गौओं के यूथों को ग्वाले के समान समस्त (धामानि) स्थानों
और पदों को तथा (जनिमानि) सब प्राणियों, जनों और कार्यों को भी
(सं चष्टे) अच्छी प्रकार देखता है ।

उद्धौ पृक्षासुो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यौ अरुहच्छुकमर्णीः ।

यस्मा॒ श्राद्धित्या अध्वन्तो रद्वन्ति मि॒त्रो अर्यमा वरुणः सु॒जोषाः ४

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप लोगों के लाभार्थ ही (मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः) जल से युक्त मेघ ऊपर आकाश में उठते हैं, उसी प्रकार (मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः) मधुर गुणयुक्त अन्न भूमि पर उत्पन्न होते हैं । सूर्य जिस प्रकार (शुक्रम् अर्णः अरुहत्) शुद्ध जल को ऊपर उठाता है उसी प्रकार सूर्यवत् तेजस्वी राजा शुद्ध निष्पाप धन वा प्राप्तव्य पद को (आ अरुहत्) प्राप्त करे । (यस्मै) जिसके हितार्थ (आदित्याः) १२ मासों के सदृश नाना रूप से सर्वोपकारक विद्वान् तेजस्वी १२ सचिव (अध्वनः) राज-कार्यों के नाना मार्ग (रद्वन्ति) बनाते हैं वही (स-जोषाः) समान रूप से सबको प्रिय, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सबके वरने योग्य हो ।

इमे चेतारो अनृतस्य भूर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।

इम ऋूतस्य वावृधुर्दुरोगे शुग्मासः पुत्रा आदितेरद्विधाः ॥ ५ ॥

भा०—(इसे) ये उक्त विद्वान् जन और (मित्रः) सर्वस्त्रेही, (अर्थमा) न्यायकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ राजा ये सब (भूरेः) बहुत बड़े (अनुत्तम) असत्य को भी (चेतारः) विवेक द्वारा छान बीन करने वाले (हि सन्ति) अवश्य हों। (दुरोणे) गृह में पुत्र जिस प्रकार धन की वृद्धि करते हैं उसी प्रकार (दुरोणे) अन्यों से दुष्प्राप्य पद पर स्थित हो कर, वा (इह) इस राष्ट्र में भी (अदितेः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के अधीन उसके (पुत्राः) पुत्रों के समान आज्ञाकारी (शग्मासः) सुखकारक और (अदव्धाः) प्रजाओं की हिंसा न करने और शत्रुओं से स्वयं भी पीड़ित न होने वाले होकर (ऋतस्य वावृधुः) सत्य न्याय और धन की सदा वृद्धि करें।

इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।

अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥६॥१॥

भा०—(इसे) ये (मित्रः) सर्वस्त्रेह, (वरुणः) राजा और (दूळ-भासः) दूर र तक चमकने वाले प्रसिद्ध, कीर्तिमान् और प्रतापी पुरुष (दक्षैः) अपने कर्मों और ज्ञानों से (अचेतसं चित्) ज्ञान रहित को भी (चितयन्ति) ज्ञानवान् करते हैं। (अपि) और (स-चेतसं) उत्तम चित्त वा ज्ञान वाली (क्रतुं) बुद्धि वा कर्म का (वतन्तः) सेवन करते हुए (सु-पथा) उत्तम मार्ग से (अंहः तिरः चित्) पाप को दूर करते और अन्यों को सन्मार्ग से (नयन्ति) ले जाते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसौ अचेतसं नयन्ति ।

प्रव्राजे चिन्तयो ग्राधमस्तु पुरं नौ ऋस्य विष्णितस्य पर्णन् ॥७॥

भा०—(इसे) ये (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमि के समस्त पदार्थों को (चिकित्वांसः) जानने वाले, विद्वान् लोग (अनिमिषाः) कभी आंखे न झपकते हुए, सदा सब कार्यों में सचेत, आलस्य रहित होकर

(अवेतसम्) अज्ञानी पुरुष को भी (प्र-त्राजे चित्) उत्तम गन्तव्य मार्ग में (नयन्ति) लेजाते हैं । (प्र-त्राजे) मार्ग में जाते हुए भी जैसे (नदः गाधम्) नदी का गहरा जल (अस्ति) हुआ करता है वे विद्वान् लोग (अस्य) इस (विविषतस्य) दूर २ तक फैले हुए विन्न रूप अथाह जल से भी (नः पारं पर्षन्) हमें पार करें ।

**यद्गोपावददितिः शर्म्भद्रं मित्रो यच्छुन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्नातोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेदनं तुरासः ॥ ८ ॥**

मा०—(यत्) जो (अदितिः) विदुषी माता और विद्वान् पिता के तुल्य अखण्ड शासक राजा, (मित्रः) मित्र, स्त्रीही, (वरुणः) सर्वोपरि उत्तम पुरुष ये सब (सुदासे) उत्तम करादि के दाता प्रजाजन के हितार्थ वा वृत्ति आदि देने वाले मुख्य राजा के लिये (भद्रं) कल्याणकारी सुख (यच्छुन्ति) प्रदान करते हैं । (तस्मिन्) उसके अधीन हम अपने (तोकं तनयं आ दधानाः) पुत्र पौत्रादि का पालन पोषण करते हुए (तुरासः) अति शिघ्रकारी होकर (देव-हेदनं) विद्वानों के अनादर और क्रोधजनक कोई काम (मा कर्म) कभी न करें ।

**अव वेदिं होत्राभिर्यजेत् रिपः काश्चिद्वरुणभुतः सः ।
परि द्वावेभिर्युमा वृणकूरं सुदासे वृषणा उलोकम् ॥ ९ ॥**

मा०—जो व्यक्ति (होत्राभिः) उत्तम वाणियों से (वेदिम्) सब सुखों को प्राप्त कराने वाली यज्ञ वेदी, विदुषी स्त्री और भूमि को (अव-यजेत्) प्राप्त नहीं करता, उसका उत्तम रीति से आदर सत्कार नहीं करता (सः) वह (वरुण-भुतः) श्रेष्ठ जनों से विनाशित, दण्डित होकर (काः चित् रिपः अव यजेत्) कई प्रकार के कष्ट प्राप्त करता है । अर्थात् जो (होत्राभिः) दान आदान किया और सत्कार युक्त वाणियों से (वेदिं) सुखप्रद स्त्री, यज्ञ वेदी, भूमि आदि का सत्संग करता है वह (वरुण-भुतः) श्रेष्ठ पुरुषों

से धारित होकर (का: चित् रिपः अव) कई प्रकार के नाना दुःखों और पीड़ाओं से युक्त रहता है। (अर्थमा) न्यायकारी दुष्टों का नियन्ता, हे (वृषणः) बलवान् स्त्री पुरुषो ! (द्रेषोभिः परि वृणक्तु) द्रेषकारी दुष्ट जनों से हमें दूर रखें। और (सु-दासे) सुखप्रद, उत्तम दानशील पुरुष को (उरुं लोकं) विशाल स्थान प्रदान करें।

सुस्वशिच्छि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन् सहसा सहन्ते ।

युष्माद्विया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृढता नः ॥१०॥

भा०—(एपां) इन उक्त बलवान् राष्ट्रसञ्चालक प्रधान पुरुषों की (समृक्तिः) एक साथ मिलकर हुई संगति, सम्मति आदि सदा (सस्वः चित्) गुप्त और (त्वेषी) अति तीक्ष्ण, तेजस्विनी हो। वे लोग (अपीच्येन) अति सुन्दर, सुगुप्त, सुदृढ़ (सहसा) बल से (सहन्ते) शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ होते हैं। हे (वृषणः) बलवान् पुरुषो ! (युष्मद्विभिया) आप लोगों से भयपूर्वक (रेजमानाः) कांपते हुए शत्रुजन हों। और आप लोगों के (दक्षस्य महिना चित्) बल के महान् सामर्थ्य से ही आप लोग (नः मृढत) हमें सुखी करें।

यो ब्रह्मणे सुमतिमायज्ञाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।

सीक्षन्त मन्युं मधवानो श्र्वय उरु क्षयाय चकिरे सुधातु ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो मनुष्य (ब्रह्मणे) विद्वान् ब्रह्मवेत्ता पुरुष के हितार्थ वा ज्ञान और धन के प्राप्तार्थ (सुमतिम्) शुभ कल्याणकारी ज्ञान और बुद्धि (आ यजाते) प्राप्त करता है, और जो (वाजस्य) बल, ज्ञान और (परमस्य रायः सातौ) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य के लाभ के लिये (सुमतिम् आ यजाते) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष का सत्संग और उपासना करता है (मधवानः अर्यः) उत्तम पूज्य ज्ञान धनादि सम्पन्न पुरुष उसको (मन्युं सीक्षन्त) ज्ञान प्रदान करते और (क्षयाय) रहने और

उसकी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (उरु) बहुत (सु-धातु) उत्तम भरण पोषण, उत्तम गृह और उत्तम सोना चान्दो का आभूषण, वेतन, वृत्ति आदि (चक्रिरे) प्रदान करते हैं ।

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।

विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२॥२

भा०—हे (मित्रा वरुणौ) स्नेहयुक्त श्रेष्ठ उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे माता पिता के तुल्य सभा सेनापति जनो ! हे (देवा) विद्वानो ! (यज्ञेषु) सत्सगों, और यज्ञों में, (इयं) यह (युवभ्यां) आप दोनों के लिये (पुरोहितः अकारि) आदर पूर्वक उत्तम वस्तुओं की भेट की जाती है । आप लोग (विश्वानि) समस्त (दुर्गा) दुर्गम, विषम कष्टों को भी (तिरः) दूर करके हमें (पिपृतं) पालन करो । और (यूयं) आप सब लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमारा उत्तम २ साधनों से सदा पालन किया करो । इति द्वितीयो वर्गः ॥





